नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

(हिन्दी)

पहला खण्ड १-२-३-४ सूत्र

सम्पादक—
'पुप्फभिक्खू'

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

एकादशांग

प्रथम खण्ड

(आचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग-स्थानाङ्ग-समवायाङ्गसूत्र)

विविध टिप्पण-परिशिष्टादि-समलंकृत

सम्पादक

जैन धर्मोपदेष्टा पंडित रत्न

१०८ मुनि श्री फूलचन्द जी महाराज 'पुप्फ भिक्खू'

प्रकाशक

श्री प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन

C/o श्री प्यारेलाल ओमप्रकाश, नया बांस, देहली-६.

अध्यक्ष—श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति 'अनेकान्तविहार'

सूत्रागम स्ट्रीट, S.S. जैन बाज़ार, गुड़गांव-छावनी (हरियाना).

वीर संवत २४९८
विक्रमाब्द २०२८
सन् १९७१ ई०

प्रथमावृत्ति १०००
मूल्य ३२-०० रुपये
डाक-व्यय अलग

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

ARTHĀGAMA

VOLUME I

(Containing 4 Angas)

Critically edited by

MUNI SHRĪ PHŪLCHAND JI MAHĀRĀJ

Published by

SHRĪ PYARE LĀL OM PRAKĀSH JAIN

President of

SHRĪ SŪTRĀGAMA PRAKĀSHAKA SAMITI

'Anekant Vihar'

Sutragama Street, S. S. Jain Bazar, Gurgaon Cantt (Haryana).

V.E. 2028 1971 A.D.

First Edition] 1000 Copies [Price Rs. 32-00

समप्पणं

जाण किवाए मम मणस्स चवलया नट्ठा, जेसिमुवएसेण मज्झंतक्करणे संति-
संचारो हूओ, जाणमब्भुअचरित्तजोगेण संपदाइगयावंधणुम्मूलणनिच्छयं
पत्तो, जेसिं वोहवयणेहिं अखंडअत्तसुहमग्गो लद्धो, जेसिमपार-
अणुग्गहवच्छल्लुच्छाहदाणेण मह लेहणकलाए पउत्ती जाया,
जेसि णं धारणाववहाराणुसारं पयासणमिणं वट्टए, तेसि-
मज्झप्पसत्थाणुराइअप्पडिवद्धविहारिक्कवइनिकाम-
परोवयारिसंतमुद्दभव्वुद्धारगमहारिसिपवरथ-
विरपयविभूसियणायपुत्तमहावीरजइण-
संघाणुयाइगयसग्गपरमपुज्ज १०८
सिरिजइणमुणिफकीरचंदमहा-
रायाणं पुणीयसमरणे
हिययविसुद्धभत्तिपुव्वगं
अंगचउक्कसंजुयमेयं
अत्थागमपढमखंडं
समप्पि-
णोमि ।

पुप्फभिक्खू

समर्पण

जिनकी अपार कृपा से मेरे मन की चपलता विनष्ट हुई। जिनके उपदेशामृतसे मेरे अन्त:करणमें शान्तिका सञ्चार हुआ। जिनके अद्भुत चरित्रयोगसे साम्प्रदायिकताबंधनोन्मूलननिश्चय को प्राप्त हुआ। जिनके बोध वचनोंसे अखण्ड आत्मसुखमार्ग की ओर अग्रसर हुआ। जिनके अपार अनुग्रह-वात्सल्य-उत्साहप्रदानसे मेरी लेखनकला की ओर प्रवृत्ति हुई। जिनकी धारणाव्यवहारानुसार यह प्रकाशन है। उन्हीं अध्यात्मशास्त्रानुरागी-अप्रतिबद्धविहारी-निष्काम-परोपकारी-शांतमुद्र-भव्योद्धारक-महर्षिप्रवर-स्थविरपदविभूषित-ज्ञातपुत्रमहावीर-जैनसंघानुयायी-स्वर्गीय परमपूज्य १०८ श्री जैनमुनि फकीरचंद्र जी महाराज की पुनीत स्मृतिमें हृदयविशुद्धभक्तिपूर्वक आचारांग-सूत्रकृताङ्ग-स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग सूत्रयुक्त यह अर्थागम का प्रथम खण्ड समर्पित है।

पुप्फभिक्खू

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

श्री सूत्रागम प्रकाशक समिति

के

स्थापन करने का कारण

श्रीज्ञातपुत्र महावीर जैनसंघीय मुनि श्री फूलचन्द्र जी महाराज जैनधर्मोपदेष्टा की सेवा में हरियानेके एक किसान ने वैदिक प्रेस अजमेर द्वारा प्रकाशित चारों वेदों की एक पुस्तक पेश की तथा विनयपूर्वक निवेदन किया कि क्या जैन शास्त्र भी एक पुस्तकाकार रूपमें कहीं मिलते हैं? श्री महाराज ने फर्माया कि नहीं। इस घटना के समय वहां की जैनसभा और विशेषतया जैनधर्मोपदेष्टा जी को यह त्रुटि वहुत ही अखरी और वड़ा ही खेद हुआ। जैन साधु सैंकड़ोंकी संख्यामें होते हुए और लाखों धनिक श्रावक होने पर भी वे जैन सिद्धान्त का अणुमात्र भी प्रचार न करें! कितना खेद है कि अपनी पवित्र समाज के पास प्रेस और प्लेटफॉर्म जैसी आधुनिक प्रचार की सामग्री न होने के कारण इतर लोकसमाजका वहुभाग जैन सिद्धान्तों से विल्कुल अपरिचित है। ईसाइयोंने एक अरवसे अधिक रुपया व्यय करके जगत् भर की ५६६ भाषाओंमें वाईविलका प्रचार किया है, इसी भांति गीता और कुरान आदि का प्रचार भी करोड़ों प्रतियों में पाया जाता है, परन्तु अपने सूत्र-सिद्धान्तोंका प्रचार लोकभाषामें कितना है। इसका उत्तर हम सगर्व मस्तक उठाकर नहीं दे सकते। इस भारी कमीको पूरा करनेके लिए श्री महाराजने हमें यह प्रेरणा दी कि कमसे कम १०० लोकभाषाओंमें ३२ सूत्रोंकी १००००० एक लाख प्रतियोंका प्रकाशन करके भारतके कोने कोनेमें जैनसिद्धान्तोंका विस्तार किया जाय। अतः सूत्रागम, अर्थागम और उभयागमकी प्रकर्ष एवं आर्ष पद्धति से "श्री सूत्रागम प्रकाशक समिति" ने इस भगीरथ कार्य को अपने हाथ में लिया है और कार्य वहुत वर्षोंसे आरम्भ कर दिया है। सुत्तागमे के प्रकाशन का कार्य १७ वर्ष पूर्व समाप्त हो चुका है। 'अर्थागम' में भी आचारांग आदि कई सूत्र अनूदित होकर अलग अलग प्रकाशित हो चुके हैं। 'सुत्तागमे' की तरह अर्थागम को भी अंग, उपांग, मूल और छेदसूत्र चार जिल्दोंमें प्रकाशित करने की योजना है। ग्यारह अंग छप चुके हैं। जिनमें आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग और समवायांग युक्त प्रथम खण्ड आपके करकमलोंमें है। अतः जिन-शासनके प्रेमियोंको उचित है कि समितिके प्रकाशनोंका स्वाध्याय आप स्वयं करें और अपने घर में भी समस्त कुटुम्व में स्वाध्याय तप का उत्साह पैदा करें। "न स्वाध्यायसमं तपः।"

निवेदक—

प्यारेलाल रामनिवास जैन

अध्यक्ष–श्रीसूत्रागमप्रकाशकसमिति
नया वांस दिल्ली-६.

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

श्री सूत्रागम प्रकाशक समिति

C/o प्यारेलाल ओंप्रकाश जैन नयाबांस, देहली ६.

हवाई तूफान की अंधड़ प्रगतिके समान चलने वाले इस युगमें प्रचार के कार्य का महत्व समझानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। क्योंकि "मूली गाजर और साग भी बोलने वाले के ही बिकते हैं।" इसे कौन नहीं जानता, तदनुसार हमारी संस्थाने भी जिस काम का भार उठाया है, जैन जगत को इस विषय में कुछ समझाने की आवश्यकता है। यदि आप ध्यान देकर पढ़ जायें तो परि-स्थिति समझने में तनिक भी विलंब न होगा। इस संस्था को साधन-सामग्री संयोग मिलने पर पांच कार्य अपनी समाज के हितार्थ करने हैं, जैसे कि—

(१) आगम-सूत्र तथा भगवान् के सिद्धान्तों को अनेक लोकभाषाओं में प्रगट करना।

(२) अपने मुनिराजों को प्रखर एवं प्रकाण्ड विद्वान् बनाना।

(३) दुनिया भर के पुस्तकालयों में आगमसूत्रों के पहुंचाने की व्यवस्था करना।

(४) जैन धर्म के तत्वों का प्रचार करने के लिए उच्चकोटी के योग्य लेखक और प्रचारक तैयार करना तथा भारत के मुख्य २ केंद्रोंमें चर्चासंघ स्थापन करना, जिनमें अनेकांतीय चर्चाकार भगवान् के स्याद्वादको विश्वव्यापी बनाने में तारतम्य रूप से चर्चा कर सकें।

(५) जैन-विचारों की अपेक्षा रखकर जैन-यूनीवरसिटी स्थापन करना।

इनमें सबसे पहले १-२-३ नं० के कार्योंको सफल बनाने का निश्चय किया गया है।

पहला कार्य—सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम की सौत्रिक रीति के अनु-सार ३२ आगमोंका मूल तथा उनके हिन्दी आदि अनुवादों का प्रकाशन। मूल 'सुत्तागमे' दो खण्डों में तथा अलग अलग जिल्दों में छप चुका है। ११ अंगों का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। इससे पूर्व आचाराङ्ग सूत्र, सूत्रकृताङ्ग, उपासकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरण, विपाक, राजप्रश्नीय, निरयावलिकादि पञ्चक,

कल्पसूत्र आदि हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं। शेष उपाङ्ग, छेद, मूल, आवश्यक-सूत्रादि का हिन्दी अनुवाद यथासमय प्रकाशित करने की योजना है। तदनन्तर ३२ आगमों की प्राकृत व संस्कृतटीका आधुनिक युग की पद्धतिसे प्रकाशित की जायेंगी। जो कि अपने समय की अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व वस्तु होगी। साथ ही समाज में प्राकृत भाषा के प्रचारार्थ 'प्राकृतम्' या 'पाइयं' जैसे पत्र भी निकाले जायेंगे, जिनमें मात्र प्राकृत और अर्धमागधी के लेखों को ही स्थान मिलेगा। सूत्रा-गम-प्रकाशन के साथ साथ एक 'प्राकृतकोष' प्राकृत गाथावद्ध तैयार हो रहा है। यह सागर के समान बड़ा और रचना में अद्वितीय विलक्षण और सुगमता में इतना उत्तम होगा कि फिर किसी भी प्राकृतकोष का आश्रय लेने की तनिक भी आवश्यकता न पड़ेगी। इसके अतिरिक्त स्थानकवासी धारणा के अनुसार त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र और एक हजार कथाओं का एक बड़ा कथाकोष भी तैयार किया जायगा। ये दोनों ग्रन्थ भी प्राकृत में होंगे। प्राकृतव्याकरण 'पाइयपुप्फ-माला' प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। शेष भाग भी यथासमय प्रकाशित होंगे।

आपको यह भी स्मरण रहे कि 'सुत्तागम' ३२ सूत्र मूलपाठ महान् पुस्तक-रत्न दो भागों में प्रकाशित हो चुका है। यह महाकाय ग्रन्थ अनुपम पद्धति एवं उच्चशैली में अत्यन्त शुद्धतम प्रकाशित हुआ है जो कि प्रत्येक जैन के 'गृहपुस्तका-लय' की अमूल्य विभूति है और साधु मुनिराजोंके हृदय की तो आदर्श वस्तु है। अधिक क्या लिखा जाय! हाथ कंगन को आरसी क्या? इसे देख कर आपकी अन्तरात्मा एकदम यही कह उठेगी कि यह तो बौद्धों के "ए-र-रि-य-ङ्, क्यू-अर-रिय-ङ्" के समान महाकाय विभूति हमारी समाज में भी है! इस का अर्थागम और उभयागम लोकभाषाभाषियों के लिए तो मानों सम्यग्ज्ञान का महाभंडार ही होगा। इसका देहसूत्र इतना विशालतम होगा जैसा कि एनसाईकलोपीडिया-ब्रिटानिका का महाग्रंथ है। इस ग्रंथ महोदधि में जिस जटिल विषय को ढूंढोगे उसका उत्तर तुरंत आपको उसी में मिलेगा! मिलेगा! और फिर मिलेगा! यह छाती ठोक कर दावे से कहा जा सकता है, जिनवाणी के द्वार से भला कोई मुमुक्षु या जिज्ञासु कभी निराश लौटा है? कभी नहीं। तब फिर रेडियो पर यद्वा तद्वा बोलने वालों व जिनधर्म के विरुद्ध प्रलाप करने वालों की तूती बन्द हो जाएगी।

ये प्रकाशन इतने शुद्धतम और पवित्र होंगे कि धर्मानन्द कौशाम्बी जैसे धर्मोपहासकों के पैरों तले धरती खिसकती प्रतीत होगी। आगम के तीनों भागों का स्वाध्याय आपको बता देगा कि सचमुच जैनधर्म कितना विश्वव्याप्य धर्म है।

कुछ वर्ष पूर्व विश्वशांति के इच्छुक (लगभग ४० देशों के) विद्वानों की एक सभा शांतिनिकेतन में हुई थी। उन्होंने वहां जैनधर्म-सम्बन्धी चर्चा खूब जी भर कर की थी। जिसका सार कलकत्ता यूनीवरसिटी के अंतरराष्ट्रीय

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

श्री सूत्रागम प्रकाशक समिति

C/o प्यारेलाल ओंप्रकाश जैन नयाबांस, देहली ६.

हवाई तूफान की अंधड़ प्रगतिके समान चलने वाले इस युगमें प्रचार के कार्य का महत्व समझानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। क्योंकि "मूली गाजर और साग भी बोलने वाले के ही बिकते हैं।" इसे कौन नहीं जानता, तदनुसार हमारी संस्थाने भी जिस काम का भार उठाया है, जैन जगत को इस विषय में कुछ समझाने की आवश्यकता है। यदि आप ध्यान देकर पढ़ जायें तो परिस्थिति समझने में तनिक भी विलंब न होगा। इस संस्था को साधन-सामग्री संयोग मिलने पर पांच कार्य अपनी समाज के हितार्थ करने हैं, जैसे कि—

(१) आगम-सूत्र तथा भगवान् के सिद्धान्तों को अनेक लोकभाषाओं में प्रगट करना।

(२) अपने मुनिराजों को प्रखर एवं प्रकाण्ड विद्वान् बनाना।

(३) दुनिया भर के पुस्तकालयों में आगमसूत्रों के पहुंचाने की व्यवस्था करना।

(४) जैन धर्म के तत्वों का प्रचार करने के लिए उच्चकोटी के योग्य लेखक और प्रचारक तैयार करना तथा भारत के मुख्य २ केंद्रोंमें चर्चासंघ स्थापन करना, जिनमें अनेकांतीय चर्चाकार भगवान् के स्याद्वादको विश्वव्यापी बनाने में तारतम्य रूप से चर्चा कर सकें।

(५) जैन-विचारों की अपेक्षा रखकर जैन-यूनीवरसिटी स्थापन करना।

इनमें सबसे पहले १-२-३ नं० के कार्योको सफल बनाने का निश्चय किया गया है।

पहला कार्य—सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम की सौत्रिक रीति के अनुसार ३२ आगमोंका मूल तथा उनके हिन्दी आदि अनुवादों का प्रकाशन। मूल 'सुत्तागमे' दो खण्डों में तथा अलग अलग जिल्दों में छप चुका है। ११ अंगों का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। इससे पूर्व आचाराङ्ग सूत्र, सूत्रकृताङ्ग, उपासकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरण, विपाक, राजप्रश्नीय, निरयावलिकादि पञ्चक,

कल्पसूत्र आदि हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं। शेष उपाङ्ग, छेद, मूल, आवश्यक-सूत्रादि का हिन्दी अनुवाद यथासमय प्रकाशित करने की योजना है। तदनन्तर ३२ आगमों की प्राकृत व संस्कृतटीका आधुनिक युग की पद्धतिमें प्रकाशित की जायेंगी। जो कि अपने समय की अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व वस्तु होगी। साथ ही समाज में प्राकृत भाषा के प्रचारार्थ 'प्राकृतम्' या 'पाइयं' जैसे पत्र भी निकाले जायेंगे, जिनमें मात्र प्राकृत और अर्धमागधी के लेखों को ही स्थान मिलेगा। सूत्रागम-प्रकाशन के साथ साथ एक 'प्राकृतकोष' प्राकृत गाथाबद्ध तैयार हो रहा है। यह सागर के समान बड़ा और रचना में अद्वितीय विलक्षण और सुगमता में इतना उत्तम होगा कि फिर किसी भी प्राकृतकोष का आश्रय लेने की तनिक भी आवश्यकता न पड़ेगी। इसके अतिरिक्त स्थानकवासी धारणा के अनुसार त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र और एक हजार कथाओं का एक बड़ा कथाकोष भी तैयार किया जायगा। ये दोनों ग्रन्थ भी प्राकृत में होंगे। प्राकृतव्याकरण 'पाइयपुप्फ-माला' प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। शेष भाग भी यथासमय प्रकाशित होंगे।

आपको यह भी स्मरण रहे कि 'सुत्तागम' ३२ सूत्र मूलपाठ महान् पुस्तक-रत्न दो भागों में प्रकाशित हो चुका है। यह महाकाय ग्रन्थ अनुपम पद्धति एवं उच्चशैली में अत्यन्त शुद्धतम प्रकाशित हुआ है जो कि प्रत्येक जैन के 'गृहपुस्तकालय' की अमूल्य विभूति है और साधु मुनिराजोंके हृदय की तो आदर्श वस्तु है। अधिक क्या लिखा जाय! हाथ कंगन को आरसी क्या? इसे देख कर आपकी अन्तरात्मा एकदम यही कह उठेगी कि यह तो बौद्धों के "ए-र-रि-य-ङ्, क्यू-अर-रिय-ङ्" के समान महाकाय विभूति हमारी समाज में भी है! इस का अर्थागम और उभयागम लोकभाषाभाषियों के लिए तो मानों सम्यग्ज्ञान का महाभंडार ही होगा। इसका देहसूत्र इतना विशालतम होगा जैसा कि एनसाईकलोपीडिया-ब्रिटानिका का महाग्रंथ है। इस ग्रंथ महोदधि में जिस जटिल विषय को ढूंढोगे उसका उत्तर तुरंत आपको उसी में मिलेगा! मिलेगा! और फिर मिलेगा! यह छाती ठोक कर दावे से कहा जा सकता है, जिनवाणी के द्वार से भला कोई मुमुक्षु या जिज्ञासु कभी निराश लौटा है? कभी नहीं। तब फिर रेडियो पर यद्वा तद्वा बोलने वालों व जिनधर्म के विरुद्ध प्रलाप करने वालों की तूती बन्द हो जाएगी।

ये प्रकाशन इतने शुद्धतम और पवित्र होंगे कि धर्मानन्द कौशाम्बी जैसे धर्मोपहासकों के पैरों तले धरती खिसकती प्रतीत होगी। आगम के तीनों भागों का स्वाध्याय आपको बता देगा कि सचमुच जैनधर्म कितना विश्वव्याप्य धर्म है।

कुछ वर्ष पूर्व विश्वशांति के इच्छुक (लगभग ४० देशों के) विद्वानों की एक सभा शांतिनिकेतन में हुई थी। उन्होंने वहां जैनधर्म-सम्बन्धी चर्चा खूब जी भर कर की थी। जिसका सार कलकत्ता यूनीवरसिटी के अंतरराष्ट्रीय

स्वनामधन्य ख्यातिप्राप्त डा० कालीदास नाग ने स्पष्ट शब्दों में विना किसी लागलपेटके यह प्रगट किया है कि "जैनधर्म सार्वभौमिक धर्म है।" परन्तु खेद का विषय है कि जैनों ने जैनसिद्धान्तों का विश्वव्यापी प्रचार ही नहीं किया, वरन् यह अखिल विश्व का लोकप्रिय धर्म बनता। सच कहा जाय तो जैनसाहित्य का प्रचार१ दुनियां के सौवें भाग में भी लोकभाषाओं में दृष्टिगत नहीं है। फिर भी जैनधर्म ने भारतीय संस्कृति के नाते वहुत कुछ अर्पण किया है। सचमुच मानवजीवन की सार्थकता भी इसीमें समाई हुई है। जो कि प्रत्येक मानवके लिए उपादेय और आवश्यक है। विश्वसिद्धान्त के समान इसका प्रचार करने की भी पूरी आवश्यकता है। जब अखिल विश्व के विद्वान् इतने ऊंचे स्पष्ट अभिप्राय दे रहे हैं तब हमारे पास विशेष समझाने के लिए क्या कुछ शेष रह गया है?

विश्वजगत् में एनसाईकलोपीडिया ब्रिटानिका नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। हमारे प्रिय आगमत्रय भी उसी पद्धति के अनुसार महनीयता और महानता प्राप्त होंगे। एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका ग्रंथ १२० वर्ष पहले बना है। अब तक कई परिवर्तनों के साथ २ उसकी १४ आवृत्तिएं निकली हैं। प्रकाशन की दृष्टि

---

१. लंदन में "ब्रिटिश एण्ड फारेन बाइविल सोसायटी" नाम की एक संस्था वहुत पुरानी है। इसका उद्देश्य वाइविल का प्रचार करना है। इसके १२० वें नियम से वहुत कुछ ज्ञातव्य सामग्री मिलती है। इसका कुछ सार भाग इस प्रकार है—

इस संस्था की स्थापना सन् १८०४ ई० में होने के पश्चात् इसने वाईविल की ३४५०००,००० प्रतियां प्रकाशित करके वितरण की हैं और अब तक ५६६ भाषाओं में वाईविल प्रकाशित किया है। वाईविल का अनुवाद अंग्रेजी साम्राज्य की ३६६ भाषाओं में हो चुका है। भारतवर्ष में १०२ भाषाओं में वह अब तक छप चुकी है। इस संस्था की पुस्तकों का मूल्य लागत पर न लिया जाकर लोगों की शक्ति के अनुसार लिया जाता है। गोस्पेल की प्रकाशित वाईविल आपको भारतवर्ष में कभी धेले में मिलती थी और चीन में एक पेनी की ६ प्रति। जहां पैसे की व्यवस्था न हो वहां यथासमय जो वस्तु मिल सकती हो उसी वस्तु को लेकर पुस्तक दी जाती है। कोरिया में पुस्तक के भार से दुगुना अनाज लेकर वाईविल दिया जाता है। तथा किसी को अधिक आवश्यकता वताने पर एक आलू लेकर वाइविल की एक प्रति दी जाती है। भारतवर्ष में तो लाखों प्रतिएं मुफ्त भी दी जाती हैं।

नोट—जैनधर्म के स्तंभ दानवीर उदार लखपति करोड़पतियों ने भी क्या कभी इस प्रचार की ओर ध्यान दिया है? भगवान् महावीर की प्रत्येक जैन को देन है और उसे भगवान् की वाणी की उन्नति से ही पूरा किया जा सकता है।

से यह ३५ बार प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक संस्करण में कम से कम १० लाख से ५० लाख तक प्रतिएं प्रकाशित हुई हैं। कुछ दानियों के प्रोत्साहन मिलने से हम भी इसी परिपाटी के अनुसार आगमत्रय को सारे संसार के योग्य हाथों में पहुंचाना चाहते हैं। जिससे समस्त मानवप्रजा लाभ उठा सके। ऐसी आशा ही नहीं बल्कि हमारा पूर्ण दृढ़ विश्वास है। मात्र आप तो प्रस्तुत आगम पाकर उनका स्वाध्याय करके हमारे हौसले को बढ़ाएं।

एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका हजार पेज का वोल्युम है, इसी भांति तीस वोल्युम का वह एक सेट है अर्थात् वह महान् ग्रन्थ तीस हजार पेजों में पूरा हुआ है। इसी प्रकार हम आगमत्रय को इससे भी बड़ा बनाने के इच्छुक हैं। यद्यपि इस भागीरथ कार्य को पूरा करने में कई वर्ष लग सकते हैं। फिर भी जगत के मानव आशा की दीवार पर खड़े हैं। पुरुषार्थ करना ही तो मात्र अपना काम है।

राम को सुग्रीव का साथ मिला तो लंका पर राम को विजय प्राप्त हुई। बुद्ध को तो मात्र पंचवर्गीय भिक्षुओं ने अपने जीवन का योग दिया तो आज करोड़ों बौद्ध दुनिया में फैले हुए हैं। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में पुष्ट सहयोग की आवश्यकता हुआ ही करती है। इसी दृष्टि से आपकी ज्ञातपुत्र महावीर भगवान् के शासन का सम्मानध्वज ऊंचा उठाने के लिए इस संस्था के सहायक बनकर सच्चे साथियों की भांति सेवा की आवश्यकता है और इसे जातीयता एवं साम्प्रदायिकता के मोह और भेदभाव को छोड़कर साथ दें तो अति उत्तम हो। इसकी उन्नति कामना और सेवा की अभिलाषा की साध पूर्ण करने के लिए सहयोगियों के नाते आप भी स्तंभ, संरक्षक, सहायक और सदस्य बनकर २०००) १०००) ५००) और २५०) रु० की आर्थिक सेवा द्वारा जिनशासन के उत्थान का बीजारोपण करें। उपरोक्त चारों वर्गों के आजीवन सदस्यों को एक २ प्रति के रूप में समिति के प्रकाशन अमूल्य भेंट किये जायेंगे। समिति की नीति का निर्धारण करते समय उनसे सब प्रकार का परामर्श किया जायगा। अब तक जिन साथियों की सेवा से यह भीष्म कार्य हो रहा है उनका विवरण इस प्रकार है।

अब तक के साथी—

स्तम्भ—श्री विजयकुमार चुनीलाल फूलपगर, पूना। लाला प्यारेलाल जैन दूगड़, अम्बरनाथ। श्री रतनचन्द भीखमदास बांठिया, पनवेल। मास्टर दुर्गाप्रसाद जैन, गुड़गावां। जैन संघ दोंडायचा। जैनसंघ माटुंगा।

संरक्षक—श्री मोहनलाल धनराज कर्णावट, कोयालीकर पूना। श्री धूलचन्द मेहता, ब्यावर। श्री नाथालाल पारख, माटुंगा। श्री चुनीलाल जसराज

मुणोत, पनवेल । श्री छबीलदास त्रिभुवनदास, रंगून । श्री जुगराज श्रीश्रीमाल, येवला ।

सहायक—श्रीमती लीलादेवी चुनीलाल फूलपगर, पूना । श्रीमती पतासीबाई धनराज कर्णावट, पूना । D. हिम्मतलाल एण्ड कं० बम्बई । श्री वीरचन्द हर्षचन्द मंडलेचा, श्री चांदमल माणिकलाल मंडलेचा, येवला । श्री व०स्था० जैन संघ धरनगांव, हिंगोना । श्री धन जी भाई मूलचन्द दफ्तरी, वडाला । लाला सुमेरचन्द लक्ष्मीचन्द चन्द्रभान बम्बई, देहली । श्री शिवलाल गुलाबचंद. माटुंगा । श्री मणिलाल लक्ष्मीचन्द वोरा, दादर । श्री चिमनलाल सुखलाल गांधी, शिवसाइन । लाला कस्तूरीलाल वंशीलाल जैन, जम्मू-तवी । श्री अमरनाथ, न्यादरमल जैन, कटरा गौरीशङ्कर-देहली ।

सदस्य—श्री धनराज दगड़ूराम संचेती, पूना । श्री फूलचन्द उत्तमचन्द कर्णावट, पूना । श्रीमती शांतादेवी फूलचन्द कर्णावट, पूना । श्री रूपचन्द दगड़ूराम मुथा, पूना । श्री चन्द्रभान रूपचन्द कर्णावट, पूना । श्री माणकचन्द राजमल वाफना, वड़गांव-पूना । श्री मणिलाल केशव जी खेताणी, बम्बई । श्री रामलाल जैन, गुड़गावां । श्री पानाचंद डाह्याभाई, माटुंगा । श्री अमृतलाल अविचल महता, माटुंगा । डाक्टर चुनीलाल दाम जी वैद्य, बम्बई । श्री वेल जी कर्मचन्द कोठारी, बम्बई । श्री कान्तिलाल जे० गांधी, बम्बई । श्री नरभेराम मोरार जी मेहता, अम्बरनाथ । श्री भाईचन्द लाखानी, बम्बई । श्री केसरमल हजारीमल धाड़ीवाल, कोपरगांव । जैन संघ सोनई । मणिलाल रूपचन्द गांधी, बम्बई । त्रिकम जी लाधाजी, जुन्नरदेव । जैन संघ शाहादा । वख्तावरमल चान्दमल भंसाली, खेतिया । श्री धनराज रामचन्द पगारिया, हिंगोना । श्री कीमतराय जैन, B.A. दादर । श्री खींवराज आनन्दराम बांठिया, पनवेल । वेरसी नरसी, त्रंबोऊ-कच्छ । श्री शोभाचन्द घूमरमल वाफणा, घोड़नदी । श्री रविचन्द सुखलाल शाह, बम्बई । श्री भाण जी पालण छेड़ा, डोंबीवली । श्री रामलाल तिलकराज जैन, जम्मू । श्री वशेशरदयाल आनन्दस्वरूप जैन, गुड़गांवा- कैण्ट (हरियाना) । लाला जानकीदास जैन, सोनीपत । लाला ज्योतिप्रसाद जैन, सोनीपत । लाला तुलसीराम परसराम जैन खत्री, रोपड़ । मास्टर लखमीचन्द-पाटोदी । बाबू बद्रीप्रसाद जैन, पोलीस इं० जम्मू-तवी । श्री शांतिलाल, तारदेव-बम्बई ।

———

प्रस्तुत प्रकाशन में सहायक

१. श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति — ३०००)

स्तम्भ—२. श्रीमती प्रकाशदेवी अग्रवाल (अपने पति स्वर्गीय श्री अमरनाथ अग्रवाल की पुण्य स्मृति में) हौज़ खास देहली। — २०००)

सहायक—३. भगत हुकमचंद जैन, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। — ५००)

४. प्रकाशचन्द जी जैन फर्म लाला कश्मीरीलाल महावीर-प्रसाद जैन गुणा वाले हाल शक्तिनगर देहली। — ५००)

सदस्य—५. मास्टर लखमीचन्द जैन पटौदी वाले हाल बहादुरगढ़ रोड देहली। — २५१)

६. श्रीमती शर्वती देवी जैन डिप्टीगंज, देहली। — २५१)

७. सेठ शीतलप्रसाद जैन, मेरठ। — २५१)

८. सेठ हरिकिशनलाल अग्रवाल, मेरठ। — २५१)

९. श्री प्रेमनाथ जी जैन, मेरठ। — २५१)

१०. लाला प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन, नयाबांस देहली — २५१)

११. मिट्ठनलाल कालूराम जी जैन, पटौदी वाले, शांतिनगर दिल्ली। — २५०)

१२. सेठ हरीराम पृथ्वीचन्द जैन, गली नत्थनसिंह पहाड़ी धीरज देहली। — २५०)

१३. लाला रामचन्द होशियारसिंह जैन हिसार वाले हाल गुड़गांवा। — २५०)

अन्य सेवा प्रदायक

१. सेठ आनन्दराज जी सुराणा, चांदनी चौक देहली (टाइप सेवा)।

२. टेकचन्द जी जैन, रूपनगर दिल्ली (टाइप सेवा)।

३. लाला फूलकुमार जी अग्रवाल, नई सड़क देहली। (२० रिम कागज सेवा)

४. लाला मूलचन्द जी जैन, नया बांस देहली। (१० रिम कागज सेवा)

५. बाबू सुमतप्रकाश जी जैन कासन वाले। (५ रिम कागज सेवा)

प्रकाशकीय

आज आपके सन्मुख अर्थागम का प्रथम खण्ड जिसमें कि चार अंगसूत्र (आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग व समवायाङ्ग) हैं प्रस्तुत करते हुए हम परम प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। आपको विदित ही है कि श्री सूत्रागमप्रकाशक-समिति द्वारा 'सुत्तागमे' (३२ सूत्र मूलपाठ) दो खण्डों में व अलग अलग प्रकाशित हो चुका है। जिसकी देश व विदेशके प्रकाण्ड विद्वानोंने भूरि भूरि प्रशंसा की है। जो ६० से अधिक अन्तरराष्ट्रीय पुस्तकालयोंमें शोभा पा चुका है। वहां के वड़े वड़े प्राध्यापकोंने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है व सम्मतियां भेजी हैं और लिखा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ शोधकर्ताओंके लिए परमोपयोगी है। वहुतसे विश्व-विद्यालयोंमें यह ग्रन्थ पढ़ाया भी जाता है। भारत में भी हमारे साधु मुनिराजों, महासतियों, सुज्ञ गृहस्थोंने इसे अपनाया है। कई साधु महाराज तो इसी के आधार पर व्याख्यान भी देते हैं, अस्तु !

अर्थागममें भी अव तक समिति की ओर से आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, उपासकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, राजप्रश्नीय, निरयावलिका पंचक, कल्पसूत्र आदि अलग अलग प्रकाशित हो चुके हैं।

आजसे लगभग चार वर्ष पूर्व सुत्तागमे की तरह अर्थागम के प्रकाशन की योजना वनी। अर्थात् ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद वत्तीसवां आवश्यक, इस प्रकार चार जिल्दोंमें अर्थागम का प्रकाशन किया जाय। परन्तु "श्रेयांसि वहुविघ्नानि" के अनुसार जव कुछ दिन वाद म० श्री ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया तो मार्गमें उन्हें फालिज हो गया, जिससे प्रकाशन का कार्य स्थगित करना पड़ा। इसके पश्चात् गुड़गांवमें प्रकाशन कार्य प्रारंभ हुआ, परन्तु प्रेस की असुविधा के कारण काम रोकना पड़ा। तत्पश्चात् गुरुदेव आगरा, कानपुर आदि पधारे। दिल्लीमें प्रेस-सुविधा उपलब्ध होने पर दिल्लीमें प्रकाशनका कार्य प्रारम्भ करने का विचार किया गया। परन्तु मार्गमें गुरुजी को फिर तकलीफ (नासिकारक्त-स्राव) हुआ। उपचार किया गया। अन्तमें चैत्र नवरात्रसे मुद्रण प्रारंभ हुआ और दीपावली को ११ अंगोंका मुद्रण समाप्त हुआ। हमें आशा थी कि १५००-१६०० पृष्ठों में ११ अंग पूर्ण हो जाएंगे, परन्तु पृष्ठ संख्या लगभग १८०० तक पहुंच गई है। अतः हमको प्रस्तुत ग्रन्थके तीन खण्ड करने पड़े। प्रथम खण्ड में आचाराङ्ग-सूत्रकृतांग-स्थानांग व समवायांग रक्खे गए हैं। द्वितीय खण्डमें

भगवती सूत्र (५०७-१२६०) पृष्ठ तक, तृतीय खण्ड में [ज्ञाताधर्मकथासे लेकर विपाक तकके अंग समाविष्ट हैं।

इसका सारा श्रेय जैनधर्मोपदेष्टा उग्रविहारी वंग-सिंधु-उत्तरप्रदेश-विहार-पांचाल-हिमाचल-महाराष्ट्र-गुजरात-मध्यभारत-मरुस्थलादि-देश-पावनकर्ता परम पूज्य १०८ श्री फूलचन्द जी महाराज को है जिन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी अपना अमूल्य समय देकर इस महान् ग्रन्थका संपादन किया है। आपकी विद्वत्ता, वक्तृत्व और प्रभाव सर्वविदित है। आपने 'नवपदार्थज्ञानसार' 'परदेशी की प्यारी वातें' 'गल्पकुसुमाकर' 'गल्पकुसुमकोरक' 'सम्यक्त्वछप्पनी' 'आगम-शब्द-प्रवेशिका' आदि कई ग्रन्थोंकी रचना की है। 'वीरस्तुति' की विस्तृत टीका, शांतिप्रकाशसारमंजरी आदि संस्कृत रचनाएं भी की हैं। आपके द्वारा लिखा गया 'मेरी अजमेर-मुनिसम्मेलन-यात्रा' इतिहासविशेषज्ञों एवं अन्वेषकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। आपने कई एक ग्रन्थोंका सुन्दर संपादन भी किया है। 'सुत्ता-गम' का संपादन करके आपने जो उपकार किया है वह वर्णनातीत है।

इनके अतिरिक्त सेवाभावी, राजप्रश्नीय आदि सूत्रोंके सम्पादक, 'काश्मीर से कराची'के लेखक अनेक ग्रन्थ निर्माता 'मुनिश्री सुमित्रदेवजी' का भी हम आभार मानते हैं, जिन्होंने गुरुसेवामें दत्तचित्त रहते हुए भी प्रूफ संशोधनादिमें पूर्ण सहयोग दिया।

अपि च पंडित जगप्रसाद त्रिपाठी, शास्त्री, षड्भाषाविशारद, वैद्याचार्य (धर्माध्यापक श्री जैन श्रमणोपासक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय रुई मण्डी सदर बाजार देहली) का भी हम धन्यवाद करते हैं जिन्होंने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी पांडुलिपि-लेखन व प्रूफ संशोधनमें पूर्ण योग दिया।

साथ ही प्रेसके अधिष्ठाता श्री नारायणसिंह जी शास्त्री व कर्मचारीगण भी धन्यवादके पात्र हैं जिनके निरन्तर परिश्रमसे यह महाग्रन्थ इतने थोड़े समय में आपके सन्मुख उपस्थित हो सका है।

इसके अतिरिक्त इस प्रकाशनमें जिन जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें किसी भी प्रकारकी जिनवाणीकी सेवा की है, उनका हम हार्दिक आभार मानते हैं। जिन जिन मुनिराजों व विद्वानोंने 'सुत्तागमे' के सम्बन्धमें अपनी शुभ सम्मतियां प्रेषितकी हैं उनके भी हम अनुगृहीत हैं। सहधर्मि बंधुओंसे निवेदन है कि वे समितिके प्रकाशनोंका स्वाध्याय करें व इस प्रकाशनके पवित्र कार्यमें सहयोग देकर हमारे उत्साहमें अभिवृद्धि करें।

हम हैं जिनवाणीके सेवाकांक्षी

प्रधान—लाला प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन

मंत्री—बाबू रामलाल जैन तहसीलदार

प्रकाशकीय

आज आपके सन्मुख अर्थागम का प्रथम खण्ड जिसमें कि चार अंगसूत्र (आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग व समवायाङ्ग) हैं प्रस्तुत करते हुए हम परम प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। आपको विदित ही है कि श्री सूत्रागमप्रकाशक-समिति द्वारा 'सुत्तागमे' (३२ सूत्र मूलपाठ) दो खण्डों में व अलग अलग प्रकाशित हो चुका है। जिसकी देश व विदेशके प्रकाण्ड विद्वानोंने भूरि भूरि प्रशंसा की है। जो ६० से अधिक अन्तरराष्ट्रीय पुस्तकालयोंमें शोभा पा चुका है। वहां के वड़े वड़े प्राध्यापकोंने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है व सम्मतियां भेजी हैं और लिखा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ शोधकर्ताओंके लिए परमोपयोगी है। वहुतसे विश्व-विद्यालयोंमें यह ग्रन्थ पढ़ाया भी जाता है। भारत में भी हमारे साधु मुनिराजों, महासतियों, सुज्ञ गृहस्थोंने इसे अपनाया है। कई साधु महाराज तो इसी के आधार पर व्याख्यान भी देते हैं, अस्तु !

अर्थागममें भी अब तक समिति की ओर से आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, उपासकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, राजप्रश्नीय, निरयावलिका पंचक, कल्पसूत्र आदि अलग अलग प्रकाशित हो चुके हैं।

आजसे लगभग चार वर्ष पूर्व सुत्तागमे की तरह अर्थागम के प्रकाशन की योजना वनी। अर्थात् ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद वत्तीसवां आवश्यक, इस प्रकार चार जिल्दोंमें अर्थागम का प्रकाशन किया जाय। परन्तु "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" के अनुसार जव कुछ दिन वाद म० श्री ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया तो मार्गमें उन्हें फालिज हो गया, जिससे प्रकाशन का कार्य स्थगित करना पड़ा। इसके पश्चात् गुड़गांवमें प्रकाशन कार्य प्रारंभ हुआ, परन्तु प्रेस की असुविधा के कारण काम रोकना पड़ा। तत्पश्चात् गुरुदेव आगरा, कानपुर आदि पधारे। दिल्लीमें प्रेस-सुविधा उपलब्ध होने पर दिल्लीमें प्रकाशनका कार्य प्रारम्भ करने का विचार किया गया। परन्तु मार्गमें गुरुजी को फिर तकलीफ (नासिकारक्त-स्राव) हुआ। उपचार किया गया। अन्तमें चैत्र नवरात्रसे मुद्रण प्रारंभ हुआ और दीपावली को ११ अंगोंका मुद्रण समाप्त हुआ। हमें आशा थी कि १५००-१६०० पृष्ठों में ११ अंग पूर्ण हो जाएंगे, परन्तु पृष्ठ संख्या लगभग १८०० तक पहुंच गई है। अतः हमको प्रस्तुत ग्रन्थके तीन खण्ड करने पड़े। प्रथम खण्ड में आचाराङ्ग-सूत्रकृतांग-स्थानांग व समवायांग रक्खे गए हैं। द्वितीय खण्डमें

भगवती सूत्र (५०७-१२६०) पृष्ठ तक, तृतीय खण्ड में [ज्ञाताधर्मकथासे लेकर विपाक तकके अंग समाविष्ट हैं।

इसका सारा श्रेय जैनधर्मोपदेष्टा उग्रविहारी वंग-सिंधु-उत्तरप्रदेश-विहार-पांचाल-हिमाचल-महाराष्ट्र-गुजरात-मध्यभारत-मरुस्थलादि-देश-पावनकर्ता परम पूज्य १०८ श्री फूलचन्द जी महाराज को है जिन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी अपना अमूल्य समय देकर इस महान् ग्रन्थका संपादन किया है। आपकी विद्वत्ता, वक्तृत्व और प्रभाव सर्वविदित है। आपने 'नवपदार्थज्ञानसार' 'परदेशी की प्यारी वातें' 'गल्पकुसुमाकर' 'गल्पकुसुमकोरक' 'सम्यक्त्वछप्पनी' 'आगम-शब्द-प्रवेशिका' आदि कई ग्रन्थोंकी रचना की है। 'वीरस्तुति' की विस्तृत टीका, शांतिप्रकाशसारमंजरी आदि संस्कृत रचनाएं भी की हैं। आपके द्वारा लिखा गया 'मेरी अजमेर-मुनिसम्मेलन-यात्रा' इतिहासविशेषज्ञों एवं अन्वेपकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। आपने कई एक ग्रन्थोंका सुन्दर संपादन भी किया है। 'सुत्ता-गम' का संपादन करके आपने जो उपकार किया है वह वर्णनातीत है।

इनके अतिरिक्त सेवाभावी, राजप्रश्नीय आदि सूत्रोंके सम्पादक, 'काश्मीर से कराची'के लेखक अनेक ग्रन्थ निर्माता 'मुनिश्री सुमित्रदेवजी' का भी हम आभार मानते हैं, जिन्होंने गुरुसेवामें दत्तचित्त रहते हुए भी प्रूफ संशोधनादिमें पूर्ण सहयोग दिया।

अपि च पंडित जगप्रसाद त्रिपाठी, शास्त्री, षड्भाषाविशारद, वैद्याचार्य (धर्माध्यापक श्री जैन श्रमणोपासक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय रुई मण्डी सदर बाजार देहली) का भी हम धन्यवाद करते हैं जिन्होंने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी पांडुलिपि-लेखन व प्रूफ संशोधनमें पूर्ण योग दिया।

साथ ही प्रेसके अधिष्ठाता श्री नारायणसिंह जी शास्त्री व कर्मचारीगण भी धन्यवादके पात्र हैं जिनके निरन्तर परिश्रमसे यह महाग्रन्थ इतने थोड़े समय में आपके सन्मुख उपस्थित हो सका है।

इसके अतिरिक्त इस प्रकाशनमें जिन जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें किसी भी प्रकारकी जिनवाणीकी सेवा की है, उनका हम हार्दिक आभार मानते हैं। जिन जिन मुनिराजों व विद्वानोंने 'सुत्तागमे' के सम्बन्धमें अपनी शुभ सम्मतियां प्रेषितकी हैं उनके भी हम अनुगृहीत हैं। सहधर्मि वंधुओंसे निवेदन है कि वे समितिके प्रकाशनोंका स्वाध्याय करें व इस प्रकाशनके पवित्र कार्यमें सहयोग देकर हमारे उत्साहमें अभिवृद्धि करें।

हम हैं जिनवाणीके सेवाकांक्षी

प्रधान–लाला प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन

मंत्री–वावू रामलाल जैन तहसीलदार

सुत्तागमे पर लोकमत

प्राकृत

(१) णायसाहिच्चविसारयस्स मुणिपुक्खरस्स सम्मई

सुट्ठुरूवेण दिट्ठं मए पुत्थयं, भिक्खुणा पुप्फनामेण संवाइयं ।
भवजलहितरणि गयकुमइलयसूरणे, वज्जडंडुव्व परवाइधरचूरणे ।
कूवअण्णाणपडियाण हत्थावलं,-वणं पाववणडहणडहणुव्व जं ।
कम्मरिउहि भिडंताण सण्णाहमिव, सुत्तपासायचडणत्थ सोवाणमिव ।
मोक्खमग्गे पयट्टाण पाहेज्जमिव, णाणति॰ियाण णं सुहरुइरपेज्जमिव ।
मिठु इव चवलमणकरिणिरोहे अलं, णं जयव्वाहिलुग्गाण महुरोसहं ।
वाइमयमेहपडिसेहणे वाऊँ णं, दाही साहेज्ज मित्तं व अब्भासिणं ।
दुहजलणउल्हवणमेहु सत्थाहु णं, दीहसंसारकंतारनित्थारणे ।
गिम्भदिनमणिण तत्तहं विडविसीयछायऽज्झत्ताखुहियहं सुभोज्जं व हरिही अवाय ।
हिययकुमुय वोसट्टिही, मईसिंधू परिवड्ढिही ।
पुण्णिमससिपुत्थयमिणं, जो निच्चलमणुपड्ढिही ॥
णायसाहिच्चतित्थाइपयवीधरें, पेसिया सम्मई इय मुणीपुक्खरें ।
सादडी नामधेज्जाउ णयरा इमा, भयगयणवोमनेत्तम्मि संवच्छरे ।
माहसियपक्ख वीयाए दियहे बुहे, सक्कया पाइए मइ समणुवाइया ॥

(२) भवया संपादिओ सुत्तागमस्स इक्कारसंगसंजुओ पढमो अंसो उवंगछेय-मूलावस्सयसंगओ य बीओ अंसो सुचारुरूवेण मुद्दिओ तइया भोमवासरे संपत्तो, सा साभारसीकओ मए । दिट्ठिपहं णीओ सो महागंथो, तम्हि संखित्तपागयवागरण-विसओ वि सुट्ठु उवदसिओऽत्थि । तस्स संसोहणं समीचीणं कयमत्थि भवया । एसो गंथो सज्झायकरणे अज्झयणे अज्झावणे वा बहूवओगी अत्थि साहगाणमिति ।

रयणचंदो मुणी-मंडणउरं (मांडवी कच्छ)

(३) अणोरपारसिंधुसरिसे एयम्मि 'सुत्तागमे' विविहविसयाणमपुव्वो संगहो । अओ जिणधम्मसरूवजिण्णासूहिं एस गंथो अवस्सं पढेयव्वो । त्ति णिवेएइ ।

गजाणणभि. जोसीति णामधिज्जो, कव्ववेदंतपुराणतित्थो, साहिच्चपण्णो, रट्ठभासाकोविओ, पणवेलत्थ 'हाईस्कूल' सक्कयपाइयअज्झावगो ।

संस्कृत

अभिप्रायप्रदर्शनम्

(४) पुस्तकमिदं ज्ञातपुत्र-महावीरजैनसंघीय 'पुप्फभिक्खु' नाम्ना महात्मना सम्पादितमास्ते । श्लाघ्यतरोऽयं परिश्रमनिकरः । जिज्ञासूनां स्वाध्यायार्थिनाञ्च लाभप्रदो भविष्यति । एवमेव भाविन्यपिकाले समाजोपयोगिभिः साहित्यैर्मुनिवरा उपकरिष्यन्तीत्याशया विरमामि वाचां पल्लवनात् ।

(न्यायसाहित्यविशारदो मुनिपुष्करः)

(५) श्रीपुष्पभिक्षुसम्पादितसूत्रागमग्रन्थो मयाऽवलोकितोऽत्यन्तानन्दितोऽस्मि विलोक्यमेनमद्भुतप्रकाशनमेवंभूताय प्रयत्नाय धन्यवादमर्हन्ति भवन्तः । जैन-धर्मोपदेष्टोग्रविहारि-पण्डितप्रवर — मुनिश्रीपुष्पचन्द्रस्यागमसाहित्यदिशायामेतत्स-त्प्रयत्नमभिनन्दनीयमस्ति । जैनसमाजः विराटागमसम्पादनयोजनायामुदारहृदयेन साहाय्यं प्रदास्यतीति आशया विज्ञापयति ।

जैनन्यायसाहित्यतीर्थः तर्कमनीषी पण्डित–मुनिश्री–मिश्रीमल्लः (मधुकरः) ।

गुजराती

(६) तमारा तरफ थी सुत्तागमे ए नाम नुं पवित्र आगम मूलपाठे सम्पा-दक भिक्खु फूलचन्द जी महाराज ! सदरहु पुस्तक तमोए रवाना करेल ते अमोने गई काले मल्यो छे अने ते महाराज 'श्री शाम जी स्वामी' ने आपेल छे, पुस्तक नी शुद्धि अने व्यवस्थित जोई महाराज श्री घणा खुशी थया छे.

शा० मोहनलाल रतन जी कच्छ मांडवी.

(७) तमारा तरफ थी मागधी भाषा मां आपणा शास्त्रनी पुस्तिकाओ मोकली ते मली छे. आप आ ज्ञानोद्धारक शास्त्रोद्धार ने माटे कार्य करो छो अने जैन समाज नी सेवा बजावी रह्या छो ते माटे तमो ने खरेखर धन्यवाद छे. ए प्रकाशन जगत्‌उपयोगी छे. तमोए सूत्रानुवाद गुजराती अने हिंदी मां अनुवाद करवा नी भावना प्रदर्शित कीधी छे ए अति स्तुत्य छे.

मुनि श्री आंबा जी स्वामी पोरबंदर.

(८) कवि मुनि श्री नानचंद्र जी महाराज सायला तमारा तरफ थी 'सुत्तागमे' नुं दलदार वोल्युम मल्युं. पुस्तक आवी रीते सुन्दर आकार मां (भेगा) बंधाएल हशे एनी कल्पना पण न हती. हुं एम मानतो हतो के बधा पुस्तको छटा छटा हशे...पण आ तो घणुं सुन्दर काम थयेल छे. आमा नां कागलो पण सारा छे.

आ ऊपर थी एम चोक्कस थाय छे के शास्त्रोद्धार नु' कार्य गृहस्थिओ करतां कोई सुविहित अने कर्मनिष्ठ साधु करे तो ते केवु' सर्वोत्तम निपजी सके छे ! आवा कार्यो मां साधु ने जरूर अपवाद सहन करवा पड़े छे पण हिम्मत होय तो परिणामे एनी योग्य कदर जरूर थाय छे. अस्तु ! श्री फूलचन्द्र जी म० ने अमारा अभिनन्दन पहोंचाड़शो.

(९) चरित्ररूपी सुगंधी वडे वासित पुष्प अने चन्द्र समान शीतल स्वभाववाला एहवा हे पुष्पचन्द्रजित् स्वामिन् ! आप श्री वीतराग प्रणीत जिनागमो नी भाषा ना अने तेमां दर्शाविला भावो नां घणाज निष्णात होई आप श्रीए जिनागमोद्धार नु' जे मंगल कार्य हाथ धर्यु' छे ते मंगल कार्य आप श्री ना हाथ थी निर्विघ्नपणे चालु रहो, अने आपना सत्पुरुषार्थ थी जेम बने तेम वेलासर आप श्री ए धारेल शुभ कार्य पूर्ण थाओ एहवी मारी आपना प्रत्ये हार्दिक शुभ भावना छे. मूल पाठ शुद्ध अने छपाई उत्तम छे. जेथी सुवर्ण अने सुगध बन्ने नो सुमेलाप थयो छे, ते जोई हृदय मां प्रमोद भाव उद्‌भवे छे, हवे पछी नु' आगमोद्धार अगे नु' दरेक कार्य तेवु'ज सु'दर बने तेम हुँ इच्छु' छु'.

लींबडी संप्रदाय मंगल जी स्वामी ना शिष्य मुनि शाम जी जेतपुर.

(१०) आप श्री तरफ थी संशोधित 'सुत्तागमे' (मूलसूत्रो) प्रगट थया छे. तेनी नकलो अमने मली, ते जोतां सतोप थयो. आम शास्त्रीय साहित्य अन्य धार्मिक साहित्य आप श्री तरफ थी संशोधित थई प्रचार पामे छे जेथी समाज ने अलभ्य लाभ मले छे. समाज आप श्री जी नो ऋणी छे।

वहुत ही उपयुक्त सिद्ध होगा। इस दिशामें श्री पुप्फ भिक्खु का यह सत्प्रयास चिरस्मरणीय रहेगा। सर्वसाधारण जनताके लिए वड़े कामकी वस्तु है। प्रस्तुत संस्करण समाजमें अधिकाधिक स्थान ग्रहण करे, यही हार्दिक अभिलापा है।

कविरत्न उपाध्याय मुनि श्री १००८ श्री अमरचंद्र जी महाराज

(१२) मेवाड़ भूषण पूज्य श्री १००८ श्री मोतीलाल जी महाराज फर्माते हैं कि "आपकी तरफसे 'सुत्तागमे' नामकी किताव मिली। पुस्तक वड़ी ही सराहनीय है। आपने वड़े परिश्रमके साथ आगमोद्धार करना आरम्भ किया है। आपको हार्दिक धन्यवाद है।"

कालूराम हरकलाल जैन कपासन (मेवाड़)

(१३) मैंने श्रद्धेय मुनि श्री फूलचन्द जी महाराज द्वारा संपादित सुत्तागमे मूलसंस्करण को देखा। इस संस्करणके मूलपाठ वहुत शुद्ध हैं। स्वाध्यायरसिकों के लिए यह प्रकाशन वहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

श्रद्धेय मुनि श्री हजारीमल जी म० (प्रेषक धूलचंद जी महता व्यावर)

(१४) 'सुत्तागमे' पुस्तक पहुंच गई, यह उनकी वहुत कृपा है, संपादन सुन्दर है, सव दृष्टिसे विद्वानों के लिए महतोपयोगी है। उनको महाराज साहव कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं, और अर्ज करते हैं कि और कोई अन्य पुस्तक अगर आपने छपवाई हो तो कृपा करके भेजें।

गणावच्छेदक मुनिश्री रघुवरदयाल जी महाराज. प्रेषक तेलूराम जैन रईसे-आजम

जालंधर छावनी (पंजाव)

(१५)···स्वाध्याय करने वालों के लिए वड़ी उच्चकोटिकी वस्तु है, सुत्तागमे की यह प्रति वहुत ही शुद्ध है, ऐसा मुनिश्री हीरालालजी म० ने फर्माया है।

लाल भवन जयपुर

(१६) मैंने पण्डितरत्न मधुर व्याख्याता उग्रविहारी अनथक प्रचारक जैन धर्मोपदेष्टा मुनि श्रीफूलचंद्रजी महाराज द्वारा सम्पादित सुत्तागम रूप पुस्तकाकार देखा। संपादकने इसमें पाठोंकी शुद्धि, उपकरणमें हलका तथा मुद्रणकलाकी दृष्टि से सुन्दर व्यवस्थित छपाई आदिका विशेष ध्यान रक्खा है, अतः स्वाध्याय प्रेमियों के लिए विशेष उपयोगी है। इस नई शैलीके प्रकाशनको देखकर प्रत्येक व्यक्ति यह खुले दिलसे कह सकता है कि गागरमें सागरकी उक्ति साफ चरितार्थ है। संपादक और सहायक शतशः धन्यवादार्ह हैं।

मुनि प्रेमचन्द मानसा (पंजाव)

आ ऊपर थी एम चोक्कस थाय छे के शास्त्रोद्धार नुं कार्य गृहस्थिओ करतां कोई सुविहित अने कर्मनिष्ठ साधु करे तो ते केवुं सर्वोत्तम निपजी सके छे ! आवा कार्यो मां साधु ने जरूर अपवाद सहन करवा पड़े छे पण हिम्मत होय तो परिणामे एनी योग्य कदर जरूर थाय छे. अस्तु ! श्री फूलचन्द्र जी म० ने अमारा अभिनन्दन पहोंचाड़शो.

(६) चरित्ररूपी सुगंधी वडे वासित पुष्प अने चन्द्र समान शीतल स्वभाव-वाला एहवा हे पुष्पचन्द्रजित् स्वामिन् ! आप श्री वीतराग प्रणीत जिनागमो नी भाषा ना अने तेमां दर्शाविला भावो नां घणाज निष्णात होई आप श्रीए जिनागमोद्धार नुं जे मंगल कार्य हाथ धर्युं छे ते मंगल कार्य आप श्री ना हाथ थी निर्विघ्न-पणे चालु रहो, अने आपना सत्पुरुषार्थ थी जेम वने तेम वेलासर आप श्री ए धारेल शुभ कार्य पूर्ण थाओ एहवी मारी आपना प्रत्ये हार्दिक शुभ भावना छे. मूल पाठ शुद्ध अने छपाई उत्तम छे. जेथी सुवर्ण अने सुगंध वन्ने नो सुमेलाप थयो छे, ते जोई हृदय मां प्रमोद भाव उद्भवे छे, हवे पछी नुं आगमोद्धार अंगे नुं दरेक कार्य तेवुंज सुंदर वने तेम हुँ इच्छुं छुं.

लींबडी संप्रदाय मंगल जी स्वामी ना शिष्य मुनि शाम जी जेतपुर.

(१०) आप श्री तरफ थी संशोधित 'सुत्तागमे' (मूलसूत्रो) प्रगट थया छे. तेनी नकलो अमने मली, ते जोतां संतोष थयो. आम शास्त्रीय साहित्य अन्य धार्मिक साहित्य आप श्री तरफ थी संशोधित थई प्रचार पामे छे जेथी समाज ने अलभ्य लाभ मले छे. समाज आप श्री जी नो ऋणी छे।

मुनि रत्नचंद्र कच्छ मांडवी.

हिन्दी

(११-१) "श्री पुप्फभिक्खु" द्वारा सम्पादित 'सुत्तागमे' का मैंने भली भांति अवलोकन किया है, धर्मोपदेष्टा जी का यह प्रयास प्रशंसनीय है, संपादन वहुत ही सुन्दर वना है, विशेषत: स्वाध्यायप्रेमियोंके लिए। इस शैलीसे अन्यसूत्रोंका भी संपादन हो। मुद्रणकलाकी दृष्टिसे भी रमणीय रहा है, आशा है आगमप्रेमी सज्जन गण इस प्रयासमें अधिकसे अधिक सहयोग देकर जिनवाणीका प्रचार करेंगे।

१००८ पूज्य श्री पृथिवीचंद्र जी महाराज आगरा (लोहामंडी)

(११-२) जैन जगतके सुप्रसिद्ध पर्य्यटक एवं जैनधर्मोपदेष्टा श्री पुप्फ भिक्खू द्वारा सम्पादित 'सुत्तागमे' का मूल संस्करण देखकर महती प्रसन्नता हुई। मूलपाठ का शुद्ध रूप उत्तम सम्पादन और नयनाभिराम प्रकाशन, वस्तुत: आज के युगमें सर्वतोभावेन आदरणीय है। स्वाध्याय प्रेमी विद्वानोंके लिए यह बहुत ही स्तुत्य प्रयत्न है। स्वाध्याय प्रेमियोंके लिए और साधु-साध्वियोंके हितार्थ यह संस्करण

बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होगा। इस दिशामें श्री पुप्फ भिक्खु का यह सत्प्रयास चिरस्मरणीय रहेगा। सर्वसाधारण जनताके लिए बड़े कामकी वस्तु है। प्रस्तुत संस्करण समाजमें अधिकाधिक स्थान ग्रहण करे, यही हार्दिक अभिलाषा है।

कविरत्न उपाध्याय मुनि श्री १००८ श्री अमरचंद्र जी महाराज

(१२) **मेवाड़ भूषण पूज्य श्री १००८ श्री मोतीलाल जी महाराज** फर्माते हैं कि "आपकी तरफसे 'सुत्तागमे' नामकी किताब मिली। पुस्तक बड़ी ही सराहनीय है। आपने बड़े परिश्रमके साथ आगमोद्धार करना आरम्भ किया है। आपको हार्दिक धन्यवाद है।"

कालूराम हरकलाल जैन कपासन (मेवाड़)

(१३) मैंने श्रद्धेय मुनि श्री फूलचन्द जी महाराज द्वारा संपादित सुत्तागमे मूलसंस्करण को देखा। इस संस्करणके मूलपाठ बहुत शुद्ध हैं। स्वाध्यायरसिकों के लिए यह प्रकाशन बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

श्रद्धेय मुनि श्री हजारीमल जी म० (प्रेषक धूलचंद जी महता ब्यावर)

(१४) 'सुत्तागमे' पुस्तक पहुंच गई, यह उनकी बहुत कृपा है, संपादन सुन्दर है, सब दृष्टिसे विद्वानों के लिए महतोपयोगी है। उनको महाराज साहब कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं, और अर्ज करते हैं कि और कोई अन्य पुस्तक अगर आपने छपवाई हो तो कृपा करके भेजें।

गणावच्छेदक मुनिश्री रघुवरदयाल जी महाराज. प्रेषक तेलूराम जैन रईसे-आजम
जालंधर छावनी (पंजाब)

(१५)...स्वाध्याय करने वालों के लिए बड़ी उच्चकोटिकी वस्तु है, सुत्तागमे की यह प्रति बहुत ही शुद्ध है, ऐसा **मुनिश्री हीरालालजी म०** ने फर्माया है।

लाल भवन जयपुर

(१६) मैंने पण्डितरत्न मधुर व्याख्याता उग्रविहारी अनथक प्रचारक जैन धर्मोपदेष्टा मुनि श्रीफूलचंद्रजी महाराज द्वारा सम्पादित सुत्तागम रूप पुस्तकाकार देखा। संपादकने इसमें पाठोंकी शुद्धि, उपकरणमें हलका तथा मुद्रणकलाकी दृष्टि से सुन्दर व्यवस्थित छपाई आदिका विशेष ध्यान रक्खा है, अतः स्वाध्याय प्रेमियों के लिए विशेष उपयोगी है। इस नई शैलीके प्रकाशनको देखकर प्रत्येक व्यक्ति यह खुले दिलसे कह सकता है कि गागरमें सागरकी उक्ति साफ चरितार्थ है। संपादक और सहायक शतशः धन्यवादार्ह हैं।

मुनि प्रेमचन्द मानसा (पंजाब)

(१७) आपका भिजवाया हुआ बुकपोष्ट लाला परसराम जैन खत्री द्वारा हमें प्राप्त हुआ है। एतदर्थ सुमहान धन्यवाद। पुस्तक की छपाई-शुद्धता-सुन्दरता-लघुता-आकार-प्रकार यथेष्ट है। यह संस्करण स्वाध्याय-परायणं लघुविहारी मुनिराजोंके लिए परमोपयोगी है।

भवदीय—
मुनि फूलचंद्र (श्रमण) रोपड़

(१८) श्रद्धेय धर्मोपदेष्टा जी ने जो आगमोंका संशोधित मूलपाठ प्रकाशित करवाया है इसकी परमावश्यकता थी, इस भगीरथ कार्यके लिए श्री जैनधर्मोपदेष्टाजी का जैन समाज सदैव ही आभारी रहेगा।

कविराज श्री चंदनमुनि, गीदड़बहा मंडी (पंजाब).

(१९) मुनि श्री फूलचन्द्र जी म० द्वारा संपादित 'सुत्तागमे' प्राप्त हुआ। जिज्ञासु और स्वाध्याय करने वालोंके लिए यह बहुत उपयोगी साधन है। सूत्रागमप्रकाशकसमिति' ने आगमप्रचारविपयक विशाल योजना रक्खी है। यदि सुत्तागमकी भांति १०० सौ भाषाओंमें श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा निर्दिष्ट जगज्जंतुकल्याणक अनेकान्त स्याद्वादगर्भित जैन सिद्धान्त का प्रतिदेश प्रतिप्रान्त और प्रतिघरमें प्रचार हो तो इसके सिवाय दूसंरा पुण्यकार्य क्या हो सकता है। यह धर्मप्रचारकी सर्वोपरि योजना है, यह कहते हुए हमें हर्ष होता है। जैन समाजके श्रीमान् विद्वानोंका और श्रीमान् लक्ष्मीनन्दनोंका इसमें पूरा साथ हो तो कार्य जल्दी सुचारु रूपसे हो सकता है, अतः दोनों उदार बनें।

शुभेच्छुक जैनभिक्खु गब्बूलाल जी म० जाम जोधपुर.

(२०) सुत्तागमेका सम्पादन अनोखे ढंगसे किया गया है, इसके गूढ़ रहस्य को पूर्ण शास्त्रज्ञ ही समझ सकते हैं, अज्ञ या दुर्विदग्ध नहीं। आपके अथक परिश्रम से ही यह कार्य पूर्ण हो पाया है, अस्तु बधाई। इसमें शुद्धिका विशेष ध्यान रक्खा गया है। वर्तमान ढंगसे यह आयोजन आदरणीय है, इसी ढंग के सौत्रिक प्रकाशन की आज आवश्यकता हैं। मैं चाहता हूं कि आप श्री अन्य सूत्रों का भी इसी प्रकार पुनरुद्धार करें ताकि ये शुद्ध प्रतियां जगतीतलमें भ्रामक तमस्तोम को दूर कर सही मार्ग प्रदर्शन कर सकें।

मुनि श्री मांगीलाल जी० म० चींचपोकली मुंबई १२

यहां ग्रन्थ-विस्तारके भयसे केवल थोड़ी सी सम्मतियां दी गई हैं। अन्य सम्मतियोंके लिए 'सुत्तागमे' के दोनों अंश देखें।

ENGLISH

21 DANIAL H.H. INGALLS
Chairman:— Harvard University
Cambridge 38.Mass.

"The volume is not only ornament of my library but I frequently put to use".

22 DR. F.R. HAMM
Hamburg-13, Hasastr-14.

I want to express my deep gratitude for your splendid gift. My first impression of the books is the very best indeed. It is a very handy and neat edition of the "AGAMA" Printed with great care.

23 DR. W. NORMAN BROWN
Bennat Hall,
University of Penonsylvania,
Philadelphia-4, Pa. (America)

"I am pleased to have this and shall find it usefull in my studies of Jainism".

24 *Prof.* SHOZENKUMOI
53-59, Shimogamo IzumigaiVacho,
Sakyo-Kukyoto (Japan)

"The text is very brilliant and very good. Now I have begun to study it."

25 Prof. DR. H.V. GLASENAPP
(14B) Tabingen (Germany).

"The work is a very valuable contribution to the *library of the Institute* and I am very thankfull that we are now in the possession of second volume".

26 SHINKO SAYEKI
1-68 Horinouchi-Machi,
Minami-Ku yokohama (Japan)

I have no words to express my heart felt thanks for you and for your Samiti. What a great service you have rendered for the world-wide propogation of the jaina teachings.

27 DR. HEINZ BECHERT. DR. PHILL
Institut fur Sprachwissenschaft und
Orientalistic University of the Saraland.

"I am throughly convined that your edition is a surprising progress in the feild of Scince and indispensable aid to any work on any Jain litrature. The contents as well as the exterior and the wonderfull printing always give great pleasure to me. I congratulate you in every way for having printed the "Suttoagame" and thank you warmly that you placed this fine edition at disposel of the European Scholers.

28 H. TOSAKI Ph.D.

Prof. of Eastern Thought Chikushijoga,

Kuen Junior College, Higashitakamiva 2,

Fukuoka-Shi (Japan).

"I hope the canons of Jainism will be translated into many languages and its doctrine will come to be near to the hand of mass, and so that Jainism will be not only the treasure of India but allso that of the world".

29 HANS RUELIUS
34, Gottingen,
Brudergrimen, Allee 58.

"It will be able me to deep in my studies and help me to understand Jaina Ethics and philosophy, wich are not only of scholery interest for me but allso a fountain of ancient wisdom which has not lost its importence and usefullness for life in our days. Every body who will read these two volums which are very carefully edited and printed, must be grateful to His Holiness Shri '*Pupph Bhikkhu*' for such an excellent work".

30 Prof. MCINRAD SCHELLER
University of Munich
(Switzerland)

It is indeed a most precious edition to the library, and I am very much impressed by the neat and careful printing and presentation. It is to have now the extermly helpfull the canonical impressive collection of Texts in a form worthy of their contents and handy in size. How deeply greatful our ansestors would have felt for such an opportunity.

NOTE :- These are not only the few letters. Besides there are number of other receipts of letters received from various universiti es, libraries *all* over the world which could not be published since their addition would increase the size of the volume.

—*Secretary.*

(नोट) आपने इन पृष्ठपटों पर अंकित सम्मतियों से यह तो जान ही लिया होगा कि ये प्रकाशन कैसे हैं। वैसे भी सब सम्प्रदायों के मुनियों और महासतियों एवं जिज्ञासुओं की ओर से सूत्रों की मांग धड़ाधड़ आती रहती है। अर्थात् सूत्रों का प्रचार आशा से अधिक हो रहा है। 'सुत्तागमे' महान् ग्रन्थ की प्रशंसा बड़े बड़े महाविद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है। यह अपूर्व ग्रन्थराज केंब्रिज, वाशिंगटन, येले, फिलाडेल्फिया, कैलीफोर्निया, क्लीवीलैण्ड, न्यूयार्क, प्रिस्टन, चिकागो (अमेरिका), जर्मन, जापान, चीन, पैरिस, सिंगापुर, वम्बई, कलकत्ता, बनारस, मद्रास, आगरा, पंजाब, देहली, भांडारकर ओरंटियल इंस्टीच्यूट पूना आदि के महापुस्तकालयों एवं यूनिवर्सिटियों में भी शोभा प्राप्त कर चुका है। तथा वहां से पर्याप्त संख्या में प्रमाणपत्र और प्रशंसापत्र आए हैं जिन्हें ग्रंथराज के देहसूत्र के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण नहीं दिया गया। अधिक क्या कहें इसकी ज्यादह प्रशंसा करना मानों सूर्य को दीपक दिखाना है। इसी प्रकार अर्थागम और उभयागमों को भी यथासमय मुनियों महासतियों एवं जिज्ञासुओं के कर कमलों में पहुँचा कर समिति अपना ध्येय पूरा करने का प्रयत्न करेगी। समिति यही चाहती है कि हमारे मुनिगण प्रकाण्ड विद्वान बनकर जिन-शासन का उत्थान करें एवं आगमोंका सर्वत्र प्रचार हो।

—मंत्री

———

27 DR. HEINZ BECHERT. DR. PHILL
Institut fur Sprachwissenschaft und
Orientalistic University of the Saraland.

"I am throughly convined that your edition is a surprising progress in the feild of Scince and indispensable aid to any work on any Jain litrature. The contents as well as the exterior and the wonderfull printing *always give great pleasure to me. I congratulate you in every way for having printed the "Suttoagame" and thank you* warmly that you placed this fine edition at disposel of the European Scholers.

28 H. TOSAKI Ph.D.

Prof. of Eastern Thought Chikushijoga,

Kuen Junior College, Higashitakamiva 2,

Fukuoka-Shi (Japan).

"I hope the canons of Jainism will be translated into many *languages and its doctrine will come to be near to the hand of mass,* and so that Jainism will be not only the treasure of India but allso that of the world".

29 HANS RUELIUS
34, Gottingen,
Brudergrimen, Allee 58.

"It will be able me to deep in my studies and help me to understand Jaina Ethics and philosophy, wich are not only of scholery interest for me but allso a fountain of ancient wisdom which has not lost its importence and usefullness *for life in our days. Every body who will read* 'iese two *volums which are very carefully edited and printed, must be* 'ateful to His Holiness Shri '*Pupph Bhikkhu*' for such an excellent work".

0 Prof. MCINRAD SCHELLER
University of Munich
(Switzerland)

It is indeed a most precious edition to the *library, and I am very* .uch impressed by the neat and careful printing and presentation. It to have now the extermly helpfull the canonical impressive collection ' *Texts in a form worthy of their contents and handy in size. How* ɜeply greatful our ansestors *would have felt for such an opportunity.*

NOTE :- These are not only the few letters. Besides there are number of other receipts of letters received from various universiti es, libraries *all* over the world which could not be published since their addition would increase the size of the volume.

—*Secretary.*

(नोट) आपने इन पृष्ठपटों पर अंकित सम्मतियों से यह तो जान ही लिया होगा कि ये प्रकाशन कैसे हैं। वैसे भी सब सम्प्रदायों के मुनियों और महासतियों एवं जिज्ञासुओं की ओर से सूत्रों की मांग धड़ाधड़ आती रहती है। अर्थात् सूत्रों का प्रचार आशा से अधिक हो रहा है। 'सुत्तागमे' महान् ग्रन्थ की प्रशंसा बड़े बड़े महाविद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है। यह अपूर्व ग्रन्थराज कैंब्रिज, वाशिंगटन, येले, फिलाडेल्फिया, कैलीफोर्निया, क्लीवीलैण्ड, न्यूयार्क, प्रिंस्टन, चिकागो (अमेरिका), जर्मन, जापान, चीन, पैरिस, सिंगापुर, बम्बई, कलकत्ता, बनारस, मद्रास, आगरा, पंजाब, देहली, भांडारकर ओरंटियल इंस्टीच्यूट पूना आदि के महापुस्तकालयों एवं यूनिवर्सिटियों में भी शोभा प्राप्त कर चुका है। तथा वहां से पर्याप्त संख्या में प्रमाणपत्र और प्रशंसापत्र आए हैं जिन्हें ग्रंथराज के देहसूत्र के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण नहीं दिया गया। अधिक क्या कहें इसकी ज्यादह प्रशंसा करना मानों सूर्य को दीपक दिखाना है। इसी प्रकार अर्थागम और उभयागमों को भी यथासमय मुनियों महासतियों एवं जिज्ञासुओं के कर कमलों में पहुँचा कर समिति अपना ध्येय पूरा करने का प्रयत्न करेगी। समिति यही चाहती है कि हमारे मुनिगण प्रकाण्ड विद्वान बनकर जिन-शासन का उत्थान करें एवं आगमोंका सर्वत्र प्रचार हो।

—मंत्री

———

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

जैन धर्म के दस नियम

(१) पदार्थों के स्वरूप का सत्य श्रद्धान Right belief सत्य ज्ञान Right Knowledge और सत्य आचरण Right Conduct ही यथार्थ में मोक्षका साधन है। सत्य आचरण में निम्नलिखित बातें गर्भित हैं—

(क) 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्तानुसार जीव मात्र पर दया करना, कभी किसी को शरीर से कष्ट न देना, वचन से बुरा न कहना और मन से बुरा न विचारना (ख) क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषाय भाव से आत्मा को मलिन न होने देना, शांति-विनय-सरलता संतोष धारण करना। (ग) इन्द्रियों और मनको वश में करना एवं बहिरंग अर्थात् संसार भावमें लिप्त न होना। (घ) उत्तम क्षमा—निर्लोभता-सरलता-मृदुता-लाघवता-भावशुद्धि-संयम--तप-त्याग--ज्ञान-ब्रह्मचर्यात्मक धर्म को धारण करना। (ङ) झूठ-चोरी-कुशील-मानवद्रोह-विश्वासघात-सप्त दुर्व्यसन का त्याग करना।

(२) जगत् में दो द्रव्य Substances मुख्य हैं। एक जीव Soul दूसरा अजीव Nonsoul. अजीव के पुद्गल Matter, धर्म Medium of motion to soul and Matter जीव और पुद्गल के चलने में सहकारी, अधर्म Medium of Rest to soul and matter जीव और पुद्गल के ठहरने में सहकारी, काल Time वर्तना लक्षणवान् और आकाश Space स्थान देने वाला, इस प्रकार ५ भेद हैं।

(३) वस्तुएं अनन्त धर्मात्मक हैं, स्याद्वाद-अनेकान्तवाद ही उनके प्रत्येक धर्म का सत्यता से प्रतिपादन करता है।

(४) ऊंच-नीच-छूत-अछूत का विकार मनुष्य का निजका किया हुआ है, वैसे मनुष्य मात्र में प्राकृतिक भेद कुछ भी नहीं है। मनुष्य कर्म से ही श्रेष्ठ है और कर्म से ही नीच।

(५) यह संसार स्वयं सिद्ध अर्थात् अनादि अनन्त है।

(६) आत्मा Soul और परमात्मा God में केवल विभाव और स्वभाव का अंतर है। जो आत्मा आठों कर्मों को रागद्वेष रूप विभाव को छोड़ कर निज स्वभाव रूप हो जाता है, उसे ही परमात्मा कहते हैं।

(७) जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय इन आठ कर्मों के कारण आवागमन के चक्र में फंसता है। अच्छे बुरे कर्मों का कर्ता व भोक्ता जीव स्वयं है।

(८) सुगुरु, सुदेव व सुधर्म संसार सागर से तिराने वाले हैं। कुगुरु, कुदेव व कुधर्म संसार में भटकाने वाले हैं। अतः अरिहन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु व दयामय धर्म आदरणीय हैं।

(९) अरिहन्त भगवान् शरणरूप हैं, सिद्ध भगवान् शरण रूप हैं, साधु जन शरणरूप हैं, और केवली-प्ररूपित धर्म शरणरूप है। अन्य धन-धान्यादि वस्तुएं जीव के लिए शरणभूत नहीं।

जैसे एक पहिए से रथ नहीं चलता, एक बाजू (के पंखों) से पक्षी नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार एकान्तज्ञान अथवा केवल क्रिया से ×मुक्ति नहीं मिलती। "ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्षः" सम्यग्ज्ञान और तदनुकूल स्वपुरुषार्थ करने से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

× किसी से मांगने से।

सूयणा

पयासणमिणमम्ह धम्मगुरूण गरिमजियमेरूण साहुकुलचूलामणीण अहिं-
लसग्गुणखणीण चत्तअदत्तकलत्तपुत्तमित्ताण पसंतचित्ताण अग्गिव्व
उग्गतवतेयदित्ताण पोम्मं व अलित्ताण पागयजणमुच्छाविहाणनियाणविसयगाम-
विरयाण पंचविहायारनिरइयारचरणनिरयाण भवोयहितारणतरंडाण अण्णाण-
तमोहपयंडमायंडाण मोहेभनिवारणवरंडाण पासंडिमाणसेलमद्दणवज्जदंडाण
वाउरिव अपडिबद्धाण तवसिरिसमिद्धाण सम्मअवगयजिणमयसम्मयसुहुमयर-
वियारसयलभवसिद्धियलोयहिययंगमाण सुसंजयपंचपमियतरलयरकरणतुरंगमाण
दुज्जयअणंगमायंगभंगसारंगपुंगवसरिच्छाण अक्कुव्व सुयणंबुरुहबोहण-
अण्णाणमोहतिमिरभरहरणधम्मुज्जोयकरणिक्कतल्लिच्छाण दुहतरुउम्मूलणे-
क्कवरपवणाण चरित्तणाणदंसणफललुद्धमुणिदसउणमेरुवणाण सारयसलिलं
व सुद्धमणाण पाविघणोहहुयासणाण संसारण्णवमज्जंतजीवगणतारणसमत्थ-
बोहित्थाण अद्दिव्व धीरिमापडिहत्थाण जिणपवयणगयणनिसायराण मेराणाण-
चरणाइनिम्मलगुणरयणरयणायराण नियसुद्धुवएसदेसणाणिण्णासियभव्व-
जंतुजायजीवियभूयसम्मदंसणणासणपच्चलमिच्छादंसणुग्गगरलाण दुज्जणदुव्व-
यणपवणवाए वि अतरलाण विसयसुहनिप्पिवासाण मुक्कगिहवासपासाण
दूरपरिचत्तविइगिच्छाअरइरइभीइहासाण मित्तसत्तुजणजुम्मसमाणमणोविलासाण
नवविहबंभचेरगुत्तिसम्मसंरक्खणेक्कपरायणाण दुक्कम्मदइच्चनिवहविद्धंसण-
नारायणाण सुत्तत्थविसारयाण जिणधम्मपसारयाण मरालुव्व परगुणखीरगहण-
दोसंबुविवज्जणवियक्खणाण कयछक्कायरक्खणाण खं व अणप्पकुवियप्प-
संकप्पसुण्णाण खंतिमुत्तिअज्जवमद्दवलाघवाइपुण्णाण धरामंडलव्व सव्वसहाण
भवदुक्खायवसंतत्तपंथिसंतिदायगदहाण चंदणवणं व सुसीयलाण जसच्छाइय-
धरणीयलाण कंदप्पदप्पदलणिक्कमल्लाण नीसल्लाण नियनिरुवमवयणकलारं-
जियसयललोगाण सव्वहा निम्ममयाए निरासीकयसोगाण आइच्चुव्व तेयसा
फुरंताण धम्मुव्व मुत्तिमंताण जियतिजयदप्पकंदप्पमत्तगयवियडकुंभयडदलणसी-
हाण निरीहाण जिणगणहरसमणुचिण्णसम्ममग्गाणुयाईण निहिलागमपारयाईण
परजियपियहियमियफुडभासीण सयलगुणरासीण माणावमाणपसंसणिंदणला-
हालाहसुहदुहसमाणमणसाण अंसुमालिव्व फेडियदुम्मइतमसाण संतिमुत्तीण
सियकित्तीण जीवुव्व अप्पडिहयगईण जिणपवयणाणुसारमईणं अमंयनिग्गमुव्व
सोमसहावाण महापहावाण पंचाणणुव्व दुप्पधंसणिज्जाण सयलजणाभिगम-
णिज्जाण सासणपभावगाण जीवे सम्मग्गे ठावगाण जम्मजरमरणकल्लोल-

लोलजलंपडलपुण्णविविहमहायंकसमुल्लसंतलल्लक्कणवक्कचक्कअणवरयविसप्पिर-रोगसोगमयराइभीमभवण्णाउ भव्वे धम्मदोणीतारणसमट्ठकुसलकण्णधाराण धीरधुरधवलुव्व उव्वहियदुव्वहपंचमहव्वयगुरुभाराण उदहिव्व गहीराण मोहमल्लिक्कवीराण पावदावग्गिनीराण दुरियरयसमीराण जिणधम्मरहस्सुसार-हीण धम्मकहीण तिगुत्तिवग्गावसीकयदुट्ठमणस्साण अवगयदुग्गमसिद्धंत-रहस्साण अपसत्थासवदारनिरोहगाण वहुभव्वजणसमाजवोहगाण जिइंदियाण धम्मपियाण पंचविहिसज्झायविहिविहा णविहावणसावहाणाण अहिलजगज्जंतु-जायवियरंतअभयदाणाण भवजलहिवुड्डंतजंतुसंतरणअणहवरजाणाण भवभय-चारयवंधणविच्छेयनिमित्तसत्ताणाण समतिणमणिलेट्ठुकंचणाण छड्डियमय-तण्हावंचणाण अण्णाणतिमिरावरियअन्तरणयणजणताविइण्णतदुग्घाडणारिह-तव्विमलयाहेउपरमणाणंजणाण संखुव्व निरंजणाण कम्ममहीरुहकुमइलउप्पाड-णगइंदाण परतित्थियमियमइंदाण कासकुसुमालिनिम्मलजसपरिभरियभुवणय-लाण दारिद्दुमदवानलाण सोमुव्व सोम्मयागुणगरिट्ठाण सव्वसाहुजणपगिट्ठाण सीहुव्व असंखोहाण आहिवाहिउवाहिकसायग्गिउल्हवणमेहसंदोहाण वज्जिय-लोहनियडिमयकोहाण पणट्ठसंपदायपक्खनायमोहाण अण्णाणंधयारावडियदावि-यमुत्तिमग्गाण गयसग्गाण किं वहुणा सव्वसाहुगुणोवमाजुत्ताण ससहरुव्व विवुहजणमणचओरामंदाणंददायगभव्वहिययकेरवविद्यासगनियसियसुजसजुण्हाध-वलियदियंतरअण्णउत्थियचक्कविहडणपयडमाहप्पपावकलंकवंकत्तणमुत्ताण अज्जपरमपुज्जाण वंदणिज्जाण ४ सिरि १०८ सिरिफकीरचंदमहारायाण धारणाववहाराणुसारं वट्टए। जइ मे पयासेण कस्स वि किंचिवि लाहो होहिइ तो सपयत्तसाहल्लं मण्णिस्सं, दिट्ठिमुद्दणक्खरजोजगदोसा कहिं पि कावि असुद्धी होउ सोहिज्जउ, पेसिज्जउ ससम्मई, इमस्स सज्झायं कट्टु वुहा निरावाहं सुहं पाउणंतुत्ति।

गुरुपयंबुरुहदुरेहो—पुप्फभिक्खू

सूचना

यह प्रकाशन मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य साधुकुलशिरोमणि स्वर्गीय १०८ श्री फ़कीरचंद्र जी महाराज के धारणाव्यवहारानुसार है। यदि कोई दृष्टि-मुद्रण दोष हो तो स्वाध्यायप्रेमी सज्जन सुधार कर पढ़ें। यदि इस प्रयत्न से मुमुक्षुओं को ज्ञानसाधना का लाभ मिला तो परिश्रम सफल समझ कर सन्तोष होगा। इसका अहर्निश स्वाध्याय करते हुए वे निरावाध सुख प्राप्त करें। मुनिगण अपनी सम्मति समिति को भेजें।

गुरुचरणचंचरीक—पुप्फभिक्खू

प्रस्तावना[1]

जैनागम—सुत्तागमे (स्थानाङ्गसूत्र) के पांचवें ठाणे (स्थान) में कहा है कि नाणे पंचविहे पण्णत्ते अर्थात् ज्ञान पांच प्रकारका कहा है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान। इनमें श्रुतज्ञान को इसलिए परमोपयोगी माना गया है कि इसके द्वारा स्व-पर का उत्थान व कल्याण होता है। यह समुद्रकी तरह अगाध होने के कारण इसका माप छद्मस्थ नहीं लगा सकता। १४ पूर्व का ज्ञान (दृष्टिवाद नामक १२ वें अंग का) परम्परा धारणा से विच्छेद माना है। शेष ११ अंग सूत्र (गणिपिटक) ज्ञान भी कितना विशाल है, इसका वर्णन समवायांग सूत्रानुसार इस प्रकार है—

आचारांग—के दो श्रुतस्कंध और १८००० पद हैं।

सूत्रकृतांग—,, ,, ,, ,, ३६००० ,, ,,

स्थानांग—में १ ,, ,, ७२००० ,, ,,

समवायांग—,, ,, ,, १४४००० ,, ,,

भगवती— ,, १०० अध्ययन, १०००० उद्देशक, इतने ही समुद्देशक और ८४००० पद हैं। इसमें ३६००० प्रश्नोत्तर हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में १६ अध्याय, धर्मकथा के १० वर्ग, एक-एक धर्मकथांगमें पांच २ सौ आख्यायिकाएं, एक २ आख्यायिका में पांच २ सौ उपाख्यायिकाएं, एक २ उपाख्यायिका में पांच २ सौ आख्यायिकोपाख्यायिकाएं हैं। इसके १६ उद्देशनकाल, उतने ही समुद्देशनकाल और ५७६००० पद हैं।

उपासकदशांग में १ श्रुतस्कंध, १० अध्ययन, १० उद्देशनकाल, १० समुद्देशनकाल और ११५२००० पद हैं।

अन्तकृद्दशांग में १ श्रु०, १० अ०, ७ वर्ग, १० उद्देशनकाल, १० स० काल और २३०४००० पद हैं।

अनुत्तरोपपातिकदशांग में १ श्रु०, १० अ०, ३ वर्ग, १० उ० काल, १० स० काल और ४६०८००० पद हैं।

---

१ सम्पादकीय।

प्रश्नव्याकरण में १०८ प्रश्नोत्तर, एक श्रु०, ४५ उ० काल, ४५ स० काल और ६२१६००० पद हैं।

विपाकसूत्र में, २ श्रु०, २० अ०. २० उ० काल, २० स० काल और १८४३२००० पद हैं।

दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत (पूर्व), अनुयोग और चूलिका के पांच भेद बताये गये हैं। इसकी पद संख्या कई करोड़ है।

कहते हैं भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग १५० वर्ष पश्चात् महान् दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी विराजमान थे। वे हिमालयपर्वत की गुफा में ध्यानस्थ थे। श्रीसंघ ने उनसे जाकर प्रार्थना की कि भगवन् आप साधुओंको पूर्वज्ञान का अभ्यास कराइए, परन्तु उन्होंने कहा कि मुझे आत्मध्यानसे ही अवकाश नहीं है। संघ ने कहा भगवन्! जो संघ की आज्ञा न माने उसे क्या दंड देना चाहिए। भद्रबाहु स्वामी बोले उसे संघ से बाहर कर देना चाहिए। 'भदन्त! आपके साथ क्या व्यवहार किया जाय' संघ ने कहा। भद्रबाहु समझ गए और उन्होंने कहा मैं वहां तो नहीं जा सकता। परन्तु साधुओं को यहां भेज दो। कहते हैं कि स्थूलिभद्र आदि बहुतसे साधु पढ़ने के लिए भेजे गए। उनमें से केवल स्थूलिभद्र १० पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर सके। शेष पूर्वज्ञानकी विशालता से घबराकर लौट आए। क्रमशः यह पूर्वज्ञान काल दोषसे विच्छिन्न हो गया।

समवायांग में जो सूत्रोंकी पद संख्या बताई गई है। वर्तमान में उस परिमाण में कथित सूत्र प्राप्त नहीं होते। उपरोक्त कथनानुसार समवायांग स्थानांग से दूना होना चाहिए। परन्तु वर्तमान में उपलब्ध समवायांग स्थानांग से छोटा है। इसका कारण यह है कि जैन साहित्य भी विधर्मियों के आक्रमणों से नहीं बचा, व हमारा बहुतसा साहित्य अग्नि व जल की भेंट चढ़ गया[१]।

आगम—गुरुपरम्परा से प्रचलित, जीवादि तत्वों और पदार्थोंका ज्ञान कराने वाला आगम कहलाता है और वह लौकिक और लोकोत्तर भेद से दो प्रकार का बताया गया है। अज्ञानी मिथ्या धारणा वाले का ज्ञान लौकिक-आगम है और त्रिकालाबाधित सर्वज्ञ-सर्वदर्शी द्वारा प्रतिपादित सम्यग्ज्ञान (पूर्वापर-विरुद्ध, वादी प्रतिवादी द्वारा अकाट्य) लोकोत्तर आगम है। यह द्वादशांग गणिपिटक कहलाता है। अथवा आगम तीन प्रकार का है-सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम। सुत्तागम अर्थात् सूत्र-शास्त्र-आगम-प्रवचन का मूलपाठ या जिसके

१. देखिए 'वर्तमान आगमों का इतिहास व जैन साहित्य पर नई २ आपत्तियां' सुत्तागमे प्रथम अंश।

अक्षर थोड़े और अर्थ अधिक अगाध हो१ (आगम-सिद्धान्त-निश्चितार्थ-एकवाक्यता-सूत्र-आप्तवाक्य द्वारा सम्प्राप्त ज्ञान) अनादि अनन्त ज्ञान की परम्परा की वस्तु है।

सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम इन तीनों में वास्तव में 'अर्थागम' को पहला आगम कहा जा सकता है। 'अत्थं भासइ अरहा' के न्याय से। क्योंकि तीर्थकर-अर्हत् सर्वप्रथम अर्थका ही प्रतिपादन करते है, वस्तु का तथ्य बताते हैं।

फिर उसे गणधर या पूर्वधर पद्य-गद्य बद्ध करके सूत्र रूप में लाते हैं। मूल और अर्थ दोनों को मिला कर उभयागम कहा जाता है। अथवा आगम के अन्य रीति से भी तीन भेद किए गए हैं—

१. अत्तागम-(आत्मागम-आप्तागम) सर्वज्ञ द्वारा रचा हुआ (स्वोपज्ञरचना), २. अनन्तरागम-गणधरों-पूर्वधरों द्वारा रचा गया, ३. परम्परागम-अनाद्यनन्त परम्परा से प्रचलित सार्वज्ञान। तीर्थंकर अर्थागम-अर्थ (वस्तु-तथ्य या उसका सरलातिसरल अभिप्राय२) को प्रकाश में लाते हैं वही आप्तागम (आत्मागम) कहलाता है। उसी भावको गणधर-पिटकधर सूत्रका रूप देते हैं और वह सुत्तागमे (आप्तागम) प्रामाणिक शास्त्ररत्न समझा जाता है। आगे चल कर ज्ञानी शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा सूत्रित सूत्र अनन्तरागम कहलाता है। गुरुपरम्परा से प्राप्त ज्ञान परम्परागम कहलाता है। यही लोकोत्तर-आगम का सही निष्कर्ष है। इसी को अनुयोगद्वार में प्रामाणिक कहा गया है।

सौत्रिक साम्य—१. आचारांग एवं दशवैकालिक का पिण्डैषणा अध्ययन, भाषा-अध्ययन (पण्णवणा सूत्र का भाषा पद), पांच महाव्रतों का वर्णन मिलता जुलता है, एवं आचारांग अ० २४ गाथा ८ तथा दश० अ० ८ गा० ६३ समान हैं। कल्पसूत्र-महावीरचरित्र आचारांग के अनुसार है।

२. ठाणांग सूत्र के छठे ठाणे और भगवतीगत तप-वर्णन और औपपातिक सूत्र में तपके १२ भेदोंका वर्णन समान है।

३. स्थानांग सूत्र के नवमस्थानगत पर्वत-द्रह-नदी-नामादि जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिमें उपलब्ध होते हैं।

४. स्थानांग के पाठ बृहत्कल्प, व्यवहार तथा निशीथ में मिलते हैं। सात स्वर व आठ विभक्ति अनुयोगद्वार में मिलती हैं।

५. पण्णवणा के बहुत से पाठ भगवतीसूत्रानुगत हैं।

---

१. सूत्र की व्युत्पत्ति-गुण-दोष के लिए देखिए 'संपादकीय सुत्तागमे द्वितीय अंश'।

२. देखिए 'आगमों की भाषा' सुत्तागमे प्रथम अंश।

६. दशाश्रुतस्कंध में आचार-सम्पत् आदि स्थानांग के अनुसार व १-२-३-६ दशा समवाय के अनुसार हैं।

७. समवायगत अंगसूत्रों का वर्णन नन्दीसूत्र में उपलब्ध होता है।

८. श्रावकावश्यक में वारह व्रतों के अतिचारादि उपासकदशा के प्रथम अध्ययन के अनुसार हैं।

६. अन्तकृद्दशांगगत अतिमुक्तकुमार का शेप वर्णन भगवती सूत्र में है।

(नोट) और भी कई सूत्रों के पाठों में साम्यता है। यहां तो मात्र थोड़ा सा दिग्दर्शन कराया गया है।

दैगम्बरीय

उपरोक्त दुष्काल के समय जैनधर्म के दो भेद हो गये-दिगम्बर व श्वेताम्बर। यद्यपि दिगम्बर लोग द्वादशांगी वाणी का वर्तमान में विच्छेद मानते हैं तथापि आचार्यों द्वारा रचित साहित्य जैसे पट्खंडागम, समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, गोमट्टसार, कर्मप्रकृति, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि जिन शास्त्रों को वे प्रामाणिक मानते हैं। उनकी यदि वर्तमान में उपलब्ध आगमों से तुलना की जाय तो बहुत सी बातें ज्यों की त्यों मिलेंगी।

जैसे कि—१. अंगों के नाम पदसंख्या आदि में समानता है[१]।

२. तत्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) जिसे वे प्रमुख स्थान देते हैं और श्वेताम्बर लोग भी मानते हैं जैन सूत्रों के आधार पर ही रचा गया है[२]।

३. नमस्कार-मन्त्र व 'चत्तारि मंगलं' का पाठ उसी तरह है। केवल 'नमो आयरियाणं' की जगह 'नमो आइरियाणं' बोलते हैं। प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से दोनों ही रूप शुद्ध हैं।

४. प्रतिक्रमण के पाठ 'इरियावहिया०', 'तस्स उत्तरी०' 'लोगस्स०' आदि भी कुछ अन्तर के साथ उसी प्रकार हैं।

५. दशवैकालिक की गाथाएं 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' व 'जयं चरे जयं चिट्ठे' कुछ रूपान्तर के साथ मूलाचार में भी मिलती हैं[३]।

---

१. देखो 'पट्खंडागम प्रथम भाग', अंगपण्णत्ती पृ० २५७।

२. देखिए 'तत्वार्थाधिगम सूत्र' पूज्य श्री आत्माराम जी म० द्वारा कृत समन्वय।

३. और भी बहुत से पाठों में साम्यता है। विशेष जिज्ञासु 'दैगम्बरीय प्रतिक्रमण' 'तुलनात्मक अध्ययन' सूत्रागम भाग २ व 'सूक्ति त्रिवेणी जैनधारा' देखें।

वैदिक समानता

जैन परम्परा में चार अनुयोग माने गए हैं। वैदिक परम्परा चार वेद मानती है। अर्धमागधी व वेदों की भाषा वैदिक संस्कृतमें बहुत कुछ समानता है१। सूत्रों मे एक ही पाठका पुनरावर्तन व प्रस्तुत आगम का प्रस्तुत आगम में निर्देश मिलता है, जैसे समवायांगसूत्र में १२ अंगों के वर्णन में समवायांग का भी वर्णन है, यही प्राचीन पद्धति वेदों में भी पाई जाती है जैसे—

"सुपर्णोऽसि गरुत्मां स्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्वृ हद्रथान्तरे पक्षौ स्तोमं आत्मा छन्दा ँ स्यङ्गानि यजू ँ षि नाम।"

१. 'एगे आया'—'एकोऽहं' 'एको ब्रह्म'।
२. 'णाणे पुण णियमा आया'—'प्रज्ञानं ब्रह्म'।
३. 'अप्पा सो परमप्पा'—'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्वमसि'।

४. 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ'—'आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।'

५. 'मित्ती मे सव्वभूएसु'–'मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष्ये।' 'अन्यो अन्यमभिहर्यत' सबसे प्रेम करो, किसीसे घृणा न करो। अथर्व० ३/३०।१

६. 'सद्धा परम दुल्लहा'—'श्रद्धया विन्दते वसु।' श्रद्धासे (आत्म) धन मिलता है। ऋ० १०।१५१।४।।

७. 'तवसा वोदाणं जणयइ'—'दिवमारुहत् तपसा तपस्वी' तपस्वी तपसे ऊपर उठता है। अथर्व० १३।२।२५।।

८. 'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि'–'पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति' पका हुआ पदार्थ पकाने वाले को पुनः आ मिलता है अर्थात् जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। अथर्व० १२।३।४२।।

९. 'जागरिया साहू अजागरिया असाहू'—"भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वप्नम्' जगना कल्याणके लिए व सोना दुःखके लिए है। यजु० ३०।१७।।

१०. 'असंविभागी नहि तस्स मुक्खो'—'केवलाघो भवति केवलादी' अकेला खाने वाला पापी होता है। ऋ० १०।११७।६

११. 'न कुप्पेज्जा'—'मा क्रुधः' क्रोध मत कर। अथर्व० ११।२।२०।।

१२. 'तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, देवदाणवगंधव्वा···' —'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' ब्रह्मचर्य रूपी तप के द्वारा विद्वान् लोग मृत्यु को मार भगाते हैं। अथर्व० ११।५।१९।।

---

१. देखिए 'भाषात्मक साम्य' सुत्तागमे अंश २।

१३. 'पडिवज्जाहि धम्मं'—'धर्म प्रयज' धर्मका आचरण कर।
ऋ०३।१७।५॥

१४. 'सव्वे पाणा न हंतव्वा...'—'मा हिंस्या सर्वा भूतानि' 'मा हिंसी पुरुषं जगत' 'मा स्त्रेधत' हिंसा मत करो। ऋ० ७।६२।६॥

१५. 'पिट्ठिमंसं न खाएज्जा'–'मा निन्दत' निन्दा मत करो। ऋ० ४।५।२॥

इनके अतिरिक्त उत्तराध्ययन की गाथाओं व महाभारत के बहुत से श्लोकों मे[1] आचारांग व गीता में[2] तथा अन्यान्यग्रन्थों में[3] भी एकरूपता दृष्टिगोचर होती है।

जैनागम व बौद्धसाहित्य

(१) जैन लोग द्वादशांगी वाणी को गणिपिटक कहते हैं। बौद्ध भी अपने साहित्य को 'त्रिपिटक' के नामसे पुकारते हैं।

(२) अर्धमागधी व पाली भाषामें भो बहुत कुछ समानता है।[4]

(३) रायपसेणइय-सुत्त के समान दीघ-निकायमें पायासी-सुत्त मिलता है। मात्र थोड़ा सा अन्तर है।[5]

(४) उत्तराध्ययन सूत्र की बहुत सी गाथाएं शाब्दिक परिवर्तन के साथ धम्मपद में पाई जाती हैं। जहां कुछ परिवर्तन भी है वह केवल नाम मात्र है, परन्तु विषय चर्चा में कोई अन्तर नहीं है।[6]

उदाहरणार्थ—(i) जो सहस्सं सहस्साणं, संगामं दुज्जए जिणे। एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥ उ० अ० ६॥

यो सहस्सं सहस्सेन, संगामं मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं, स वे संगामजुत्तमो ॥ ॥४॥ ध० सहस्सवग्ग ॥

(ii) मासे मासे उ जो वालो, कुसग्गेणं तु भुंजए।
न सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥ उ० अ० ६॥
मासे मासे कुसग्गेनं, वालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो संखतधम्मानं, कलं अग्घति सोलसिं ॥११॥ ध० वालवग्ग ॥

---

१. देखिए 'ऐतिहासिक-पौराणिक—नैयायिक साम्य' सुत्तागमे अंश २।
२. ,, 'आचाराङ्ग-सूत्र' सन्तबाल।
३. ,, 'सूक्ति-त्रिवेणी वैदिक धारा' उपाध्याय कविरत्न अमरमुनि कृत।
४. ,, 'भाषात्मक साम्य' सुत्तागमे अंश २।
५-६ देखिए 'बौद्धिक-साम्य' सुत्तागमे अंश २।

(iii) जहा पउमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७॥ उ० अ० २५॥
वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१६॥ ध० ब्राह्मणवग्ग ॥

(५) चित्तसंभूतिजातक उत्तराध्ययन सूत्रके १३ वें अध्ययनके अनुसार है।

(६) अंगुत्तरनिकाय में उत्तराध्ययनके १६ वें अध्ययनके 'नो निग्गंथे इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा०' के समान पाठ मिलता है जैसे कि 'अपि च खो मातुगामस्स सद्दं सुणाति तिरो कुड्डा वा''' ।' अंगु० ७ वग्ग ५।

(७) उत्तराध्ययनके १८ वें अध्ययनमें वर्णित चार प्रत्येकबुद्धों की कथाओं के समान कुंभारजातकमें भी कुछ रूपान्तर के साथ चारों कथाएं मिलती है।१

ऐतिहासिक दृष्टिसे भी समकालीन होने के कारण दोनोंमें बहुत कुछ समानता है।२ भगवान महावीरका उल्लेख बौद्ध साहित्यमें कई जगह मिलता है।

इनके अतिरिक्त जैन व बौद्ध साहित्य में बहुत कुछ साम्य दृष्टिगोचर होता है।३

आगम व विज्ञान—

इस वैज्ञानिक युगमें बुद्धिवादी व्यक्ति प्रत्येक बातको प्रत्यक्ष की कसौटी पर परखना चाहता है। वह 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' मानने को तैयार नहीं। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त अपरिपूर्ण हैं। प्रतिदिन नए नए तथ्य प्रकट होते हैं पुराने परिवर्तित होते जाते हैं, परन्तु यदि सत्य की शोध का यही क्रम जारी रहा तो एक न एक दिन हमें जैनागमोंमें वर्णित सभी तथ्यों को स्वीकार करना होगा।४

१, मूल गाथाओंकी तुलनाके लिए देखिए 'सुत्तागमे अंश २'।
२. देखिए 'सूत्रकृतांग-भूमिका' लेखक–श्री राहुल सांकृत्यायन।
३. ,, 'सूक्ति-त्रिवेणी बौद्ध धारा।'
४. "अभी तो विज्ञान ने दो सौ वर्षोंमें भौतिक जगत्‌का कुछ ही अन्वेषण किया है, जिसमें इतने नवीन २ तथ्य व आविष्कार हमारे सम्मुख उपस्थित हुए हैं, जिनसे हम चमत्कृत व विस्फारित नेत्र हैं। पर अभी तो आध्यात्मिक, मानसशास्त्र व सौरमंडल के सहस्रों विषय अवशेष हैं जिनकी अभी तक शोध ही नहीं हो सकी है। जिन दिनों इनकी शोध प्रारम्भ होगी उन दिनों वे नवीन २ तथ्य सम्मुख आएंगे, जिनको पढ़ सुन कर हम चकित, विस्मित और स्तंभित रह जायंगे और तब शायद हमारी भौतिकवादी विचारधारा भी बदल जाय।"
डा० एस० सी० कोठारी।

आधुनिक विज्ञानको ही यदि सत्यता की कसौटी माना जाय तो विज्ञान द्वारा स्वीकृत कुछ आगमिक सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

१. आगमों ने समस्त द्रव्यों को अनादि माना है। इसी बात को प्रसिद्ध प्राणीशास्त्रवेत्ता J. B. S. हाल्डनने भी माना है वे कहते हैं कि मेरे विचारमें जगत् की कोई आदि नहीं है।

२. आगमों में कहा है कि शब्द (Sound) जड़ मूर्तिमान और लोक के अन्त तक प्रवाहित होने वाला है, आजके विज्ञानने भी ग्रामोफोन और रेडियोका आविष्कार करके यह सिद्ध कर दिया है।

३. जीवों का उत्पत्तिस्थान मृत शरीर (अन्तर्मुहूर्तके बाद) जीवित प्राणी का अंग और पुद्गल भी हो सकता है ऐसा जैन शास्त्र मानते हैं जिसे किसी अपेक्षा से चौथी हाइपोथिसिस (Hypothesis iv) द्वारा वैज्ञानिकोंने भी स्वीकार किया है।

४. जैन धर्म किसी को सृष्टिका कर्ता हर्ता नहीं मानता, इसे आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है।

५. आगमोंमें कहा है कि 'पुढवी चित्तमंतमक्खाया' अर्थात् पृथ्वीकायमें जीव हैं। इसी बात को प्रसिद्ध भूगर्भ-वैज्ञानिक फ्रांसिस अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Ten years under earth' में लिखते हैं कि मैंने पृथ्वीके ऐसे ऐसे रूप देखे हैं जिनमें जीवत्वशक्ति प्रतीत होती है।

६. आचारांग सूत्रमें वनस्पतिमें जीवोंका अस्तित्व बतानेके लिए निम्न लक्षण दिए हैं—'जाइधम्मयं' उत्पन्न होने वाला है, 'वुड्ढिधम्मयं' इसके शरीरमें वृद्धि होती है, 'चित्तमंतयं' चैतन्य है, 'छिन्नं मिलाइ' काटने पर सूख जाता है, 'आहारगं' आहार भी ग्रहण करता है, 'अणिच्चयं असासयं' इसका शरीर भी अनित्य और अशाश्वत है, 'चओवचइयं' इसके शरीरमें भी घट बढ़ होती रहती है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसुने अपने परीक्षणों द्वारा उपरोक्त सब लक्षण सिद्ध किए हैं जिसे समस्त वैज्ञानिक लोग मान चुके हैं।

७. विज्ञान ने जीव, पुद्गल, आकाश (Space), काल (Time) और धर्मास्तिकाय को भी ईथरके रूपमें माना है।

८. भगवान् महावीर ने पुद्गलकी अपरिमेय शक्ति बताई है, जिसे आजके विज्ञानने 'ऐटम बम' 'परमाणुबम' 'उद्जन बम' आदि से सिद्ध कर दिखाया है।

९. प्रसिद्ध वैज्ञानिक आस्टाइन का 'थ्योरी आफ रिलेटिविटी' स्याद्वादसे बहुत सा साम्य रखता है।

१०. आगम मानते हैं कि पानी की एक बूंद में असंख्य जीव होते हैं। वैज्ञानिकों ने भी सूक्ष्मवीक्षण यंत्र द्वारा पानी की एक बूंद में ३६००० से भी

अधिक जीव देखे हैं और यह भी मानते हैं कि वहुतसे जीव ऐसे हैं जो सूक्ष्मवीक्षणयंत्र द्वारा भी नहीं देखे जा सकते ।१

११. शब्द—ज्योति-ताप और आतप को आगम ने पुद्गल कहा है जिसे विज्ञान ने भी मैटर के रूप में मान लिया है। और इसे भी स्वीकार किया है कि ये सब पुद्गल-द्रव्यके पर्याय विशेष हैं।

१२. आगम कहते है कि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा न कोई द्रव्य घटता है न वढ़ता है, जो रूपान्तर होता है वह उसका पर्याय है। वैज्ञानिक भी मानते हैं कि कोई पुद्गल (Matter) नष्ट नहीं होता, केवल दूसरे रूप (Form) में वदल जाता है । वे लोग इसे Principle of conservation of Mass and Energy कहते है।

१३. स्थानांग सूत्र ५-२-३ में आता है कि कि स्त्री विना संयोग के भी शुक्र पुद्गल ग्रहण कर गर्भवती हो सकती है। आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने भी कृत्रिम गर्भाधान द्वारा इसे सिद्ध कर दिया है।

१४. भगवान् महावीर के गर्भस्थानान्तरण को कई लोग असंभव मानते हैं जिसे प्राणीशास्त्रवेत्ता डां० चांग ने वोस्टन विश्वविद्यालय की जैव रसायन-शाला में गर्भ-स्थानांतरण-परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया है। अमेरिकन हिरनी के गर्भवीज को एक अंग्रेजी हिरनी के गर्भाशय में स्थानान्तरित करने में उन्हें सफलता भी मिली है।

(नोट) ऐसे अनेक तथ्य हें जिनको विज्ञान ने स्वीकार किया है२। और कई तथ्यों तक तो वह अभी पहुंच भी नहीं सका है। सच है कहां जड़वादी विज्ञान और कहां अध्यात्मवादी आगम! दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है।

वर्तमान आगमों का इतिहास

भगवान् महावीर के निर्वाण से ६८० वर्ष तक तत्कालीन साधु-साध्वीगण आगमों को तीक्ष्ण वुद्धि के कारण कंठस्थ रखते रहे। परन्तु कालदोष से स्मरण शक्ति में कमी आ गई व जहां तहां स्खलना पड़ने लगी। तत्कालीन आचार्य श्री देवर्द्धि गणी क्षमा-श्रमण ने इस कमी को महसूस किया व वीर संवत् ६८० विक्रम संवत् ५११ तदनुसार ई० सन् ४५४में वल्लभी नगरीमें तत्कालीन समस्त जैन मुनियों

---

१. देखो 'हाई निकोल की मिक्राप्स वाई द मिलियन पेनगिन द्वारा १६४५ में प्रकाशित।'

२. देखिए 'वैज्ञानिक समन्वय' सूत्रागम अंश २।

को एकत्रित किया१ जिसे जितना याद था सुना और फिर उसे यथाक्रम पुस्तका-रूढ़ किया। तत्पश्चात् मूलरूप से गणधर भाषित होने पर भी सव आगमों के संकलयिता देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ही समझे जाने लगे। उदाहरण के लिए श्री भगवती सूत्र श्री सुधर्माचार्य प्रणीत है और प्रज्ञापना सूत्र भगवान् महावीर प्रभु के निर्वाण के ३३५ वर्ष बाद श्री श्यामाचार्य द्वारा संकलित किया गया। पर भग-वती में कई स्थलों पर 'जहा पण्णवणाए' ऐसा पाठ मिलता है। इसी भांति और अंगोंमें भी उपांगों की साक्षियां पाई जाती हैं अर्थात् अमुक उपांगों से समझ लेना चाहिए। इससे यह स्वयंसिद्ध है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण ने लिपिवद्ध करते समय पाठों में साम्य देख कर समय का अपव्यय न हो इसलिए ऐसा निर्देश किया। उनके किए हुए उपकार को हम कभी नहीं भुला सकते।

तत्पश्चात् जैन साहित्य पर वड़ी वड़ी विपत्तियां आई। हमारा वहुत सा साहित्य नष्ट हो गया। इसके अनन्तर चैत्यवासियों का युग आया, उन्होंने चैत्य-वाद का प्रचार करने के लिए नई नई बातें घड़ीं२। वे यहां तक ही नहीं रुके बल्कि उन्होंने आगमों में भी अनेक वनावटी पाठ घुसेड़ दिए। इसके बाद युग ने करवट वदली और उसी कटाकटी के समय धर्मप्राण लोंकाशाह जैसे क्रान्तिकारी पुरुष प्रगट हुए। उन्होंने जनता को सन्मार्ग सुझाया और उस पर चलने की प्रेरणा दी। उन्हें अनेकों कष्ट दिए गए, पर वे कहां टससे मस होने वाले थे। 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' गाथा पढ़कर और चैत्यवासियों में आचार विचार संबंधी शिथिलता देख कर उन्होंने वह आवाज उठाई कि जिससे लोगों में क्रान्ति और जागृति उत्पन्न हुई और लवजी, धर्मशी, धर्मदास जी, जीवराज जी जैसे भव्य भावुकों ने धर्म की वास्तविकता को अपनाया और उसके स्वरूप का प्रचार आरंभ किया। परिणामस्वरूप आज इनके अनुयायी लाखों की संख्या में पाए जाते हैं। लोंकाशाह सहित इन चारों महापुरुषों ने चैत्यवासी-मान्य अन्य आगमों में परस्पर विरोध एवं मनघड़न्त बातें देख कर ३२ आगमों को ही मान्य किया।

आगमोद्धार

जैसा कि हम ऊपर आगमों के इतिहास प्रकरण में लिख चुके हैं स्थानक-वासी समाज में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई, अतः ज्ञान में वृद्धि होनी ही थी। सवसे पहले श्री धर्मशी स्वामी ने मूलसूत्रों पर टब्वे लिखे, जो कि साधारण अभ्यासी के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। मुद्रणयुग प्रारम्भ होने पर सन्

---

१. इससे पूर्व पाटलीपुत्रका सम्मेलन व नागार्जुन क्षमाश्रमण के तत्त्वाव-धान में माथुरी वाचना हो चुकी थी। देखो 'आगमोंकी भाषा' सूत्रागम अंश १।

२. जैसे कि 'अंगूठे जितनी प्रतिमा बनवा देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, जो पशु मन्दिर की ईटें ढोते हैं वे भी देवलोक जाते हैं' आदि २।

१८८२ में प्रो० हर्मन जैकोवी ने लंदन में प्राकृत Text series में आचारांगसूत्र छपवाया। और Sacred books of the east बाइसवीं पुस्तक में उसका अनुवाद किया गया। इसके बाद प्रो० शुब्रिंग ने १९१० में लिपझिग नामक स्थान में German oriental Series के १२ वें मुक्तक में पूर्वार्ध छपवा कर प्रगट किया। उसीका जर्मन भाषानुवाद "Words of Lord Mahavira" में पृष्ठ ६६ से १२१ तक दिया। इसके अतिरिक्त जर्मनी से और भी कई जैनागम प्रकाशित हो चुके हैं।

भारत में रायबहादुर धनपतसिंह (मकसूदाबाद वाले) और आगमोदय-समिति आदिने भी आगमों का प्रकाशन किया है पर वे भी अशुद्धियों से खाली नहीं। कई प्राध्यापकों ने भी इंग्लिश अनुवाद सहित कुछ सूत्र प्रकाशित किए परन्तु अतिसंक्षिप्त और महाराष्ट्री प्रधान होने के कारण स्वाध्यायी के लिए अधिक उपयोगी नहीं। स्थानकवासी समाज में सबसे पहले पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म० ने ३२ सूत्र छपवाए जिसका समस्त व्यय श्रीमान् राजा बहादुर शेठ दानवीर सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद जौहरी ने किया, परन्तु अशुद्धि, कागज़ की खराबी व मिश्रित हिन्दी होने के कारण समाज को उतना लाभ न मिल सका जितना मिलना चाहिए था। इसके अनन्तर जैनाचार्य पूज्य श्री आत्माराम जी म० और पूज्य श्री हस्तीमल जी म० ने भी कई सूत्रोंके अनुवाद किए और मुनि घासी-लाल जी भी कर रहे हैं।

मूल सूत्रों का प्रकाशन

सूत्रागमप्रकाशकसमिति की स्थापना से पूर्व उत्तराध्ययन-दशवैकालिक-सुखविपाक-नन्दी बहुत से और सूयगडांग-आचारांग-अनुयोगद्वार न्यून संख्यामें मूलरूपसे मिलते थे। परन्तु अनुक्रमसे सबके सब आगम नहीं। इसी कमी को पूरा करनेके लिए श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति की स्थापना हुई व समिति ने अपने भगीरथ प्रयत्न से बत्तीसों सूत्र शुद्ध मूल पाठ युक्त ७२००० गाथाओंसे समृद्ध २६०० पृष्ठों में 'सुत्तागमे' के रूप में दो भागों में प्रकाशित किए।

तदनन्तर अर्थागम में आचारांग, सूत्रकृतांग, उपासकदशांग, प्रश्नव्या-करण, विपाक, राजप्रश्नीय व निरियावलिका पंचक, कल्पसूत्र आदि प्रकाशित हुए। तत्पश्चात् सुत्तागमे की तरह ११ अंगोंको एक जिल्दमें प्रकाशित करने की योजना बनी। परन्तु प्रेस की असुविधा तथा स्वास्थ्यसंबंधी कारणोंसे इस कार्य में विलम्ब हुआ। पुस्तक का आकार बढ़ जाने के कारण प्रस्तुत ग्रन्थके तीन खंड करने पड़े। (१) आचारांगसे समवायांग तक (२) भगवती सूत्र (३) ज्ञातासे विपाक तक। इस प्रथम खण्ड में पहले चार अंग हैं। आचारांग में साधु-साध्वियोंके आचार, भगवान् महावीर की परिषह सहिष्णुता व उनका जीवन

चरित्र, एषणा, पांच महाव्रतों की २५ भावना आदि का वर्णन है। आचाराङ्ग प्रथम श्रुतस्कंधकी भाषा सबसे प्राचीनतम है१। सूत्रकृतांगमें अन्यमतोंका दिग्दर्शन२, उनका खंडन और स्वसमय का मंडन किया गया है।३ स्थानाङ्ग सूत्रमें १ से लेकर १० पर्यंत संख्या की वस्तुओं का वर्णन है। विशेष नौवें ठाणेमें श्रेणिक राजाके आगामी भव पर प्रकाश डाला गया है। समवायाङ्गसूत्रमें १ से लगाकर कोड़ाकोड़ी संख्या तक के विषय वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त द्वादशांगी-स्वरूप, भूत-भविष्यत्-वर्तमान त्रिषष्ठिशलाकापुरुषों के माता पिताओंके नाम एवं उनके नाम, पूर्वभव और आगामी भवके नामों का वर्णन है। ठाणांग और समवायांग की यही विशेषता है कि कोई भी विषय इनसे अछूता नहीं।४

प्रस्तुत प्रकाशन की विशेषताएं—

(१) पाठशुद्धि का पूरा पूरा लक्ष्य रक्खा गया है।

(२) इसका सम्पादन शुद्ध प्रतियोंके आधार पर किया गया है।

(३) पाठान्तर भी यथास्थान दे दिए गए हैं।

(४) कठिन शब्दोंके विशेषार्थ टिप्पणमें दे दिए गए हैं ताकि समझने में आसानी हो।

(५) जहां तक सम्भव हुआ पुनरुक्तिसे बचने का प्रयत्न किया गया है और उसके लिए······चिन्हका प्रयोग किया गया है अर्थात् पूर्ववत् समझें।

(६) जहां स्पष्टीकरणकी आवश्यकता समझी गई वहां टिप्पण या कोष्ठक में स्पष्टीकरण भी दे दिया गया है।

(७) अध्ययन का सार भी कहीं कहीं (उपासकदशांग आदिमें) दिया हुआ है।

(८) पारिभाषिक शब्दकोष भी दे दिया गया है ताकि पारिभाषिक शब्दों को समझनेमें कठिनाई न हो।

(९) अकारादि अनुक्रमणिका व शुद्धिपत्र भी दे दिया गया है।

---

१. देखिए 'आचारांग-निदर्शन' डा० टी. एन. दवे एम. ए. बी. टी (बम्बई) पी. एच. डी (लंदन).

२. ,, ,, 'षड्दर्शन-मीमांसा' सन्तवाल।

३. 'सूत्रकृतांग-भूमिका' पं० राहुल सांकृत्यायन।

४. विशेष जानकारीके लिए विषयानुक्रमणिका देखिए।

कार्य विवरण—आज से लगभग ४ वर्ष पूर्व इसकी योजना बनी व चैत्र नवरात्र (अप्रैल) में मुद्रणका कार्य प्रारम्भ हुआ व दीपावली (वीरनिर्वाण-दिवस) के दिन कार्य सम्पन्न हुआ।

सहयोगी—आचारांगके अनुवादक श्री 'संतबाल जी' सूत्रकृतांगके अनुवादक 'श्री राहुल सांकृत्यायन जी' व उपासकदशांग व विपाकसूत्रके अनुवादक 'श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह' व इनके अतिरिक्त जिन जिन महानुभावोंके प्रकाशनों से सहायता ली गई है वे सब तथा जिन जिन धर्मप्रेमियोंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आगम-प्रचारमें योग दिया है वे सब धन्यवादके पात्र हैं। मैं उन सबका आभार मानता हूं। मेरे अन्तेवासी सुमित्तभिक्खूने अहर्निश सेवा करते हुए जो प्रूफ संशोधनादिमें योग दिया है वह उल्लेखनीय है।

अन्तिम—इस प्रकाशनमें यदि कहीं कोई भूल रह गई हो या सिद्धान्तके विरुद्ध हुआ हो तो उसका खालिस हृदय से अनन्त सिद्धों की साक्षीसे 'मिच्छामि दुक्कडं'। सुज्ञेषु किं बहुना

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥

श्री गुरुचरणचंचरीक
पुप्फ भिक्खू

प्रकाश भवन, १३ माडलवस्ती देहली.
(दीपावली) दिनांक १८-१०-७१.

अनुक्रमणिका

आचारांग

सूत्रकृतांग

स्थानांग

समवायांग

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स
श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्र महावीरको नमस्कार

अर्थागम

आचारांग (आचार)

पहला श्रुतस्कन्ध-शस्त्रपरिज्ञा-१

पहला उद्देशक—विवेक

अनुष्टुप्

[**मंगल**–ज्ञातपुत्र महावीर- के अर्हन् पदको प्रणाम।
पुनः गुरु फकीरेन्दु, ज्ञानदकी, कर वन्दना ॥१॥
सुत्तागम सम्पादन कर, अर्थागमको भी कहूं।
गुरुकी धारणा का है, आश्रय महान पुष्फको ॥२॥

भावार्थ–ज्ञातपुत्र महावीरके अर्हन् पदको प्रणाम करके, फिर गुरुदेव फकीरचन्द जी महाराज, जो कि मुझे श्रुतज्ञानका दान करते थे। उनकी विनय-युत भाव वन्दना करके, सुत्तागमका सम्पादन पूर्ण होनेपर अर्थागमका सम्पादन करता हूं। और व्यवहार-पंचकन्यायसे उनकी धारणाके अनुसार, सुत्तागम सम्पादन किया है और अर्थागम भी तदनुसार ही होगा। इसके आगे **उभयागम** भी लिखूंगा। जो कि मूल और अर्धमागधी-प्राकृत टीकामें होगा। वह भी गुरु कृपा ही होगी। मेरा उसमें कोई कारण न होगा, वसन्तमें कोकिल मीठा बोलनेके समान। 'पुष्फ']

आयुष्मन्! श्रमण भगवान् महावीरने जो कुछ कहा है, 'मैंने उसको जिस प्रकार सुना है' इस रीतिसे अपने शिष्य श्री जम्बूकी अपेक्षा रखकर श्री सुधर्मा स्वामी गणधरने कहा ॥१॥

आत्म-विचार–इस जगतमें बहुतसी ऐसी आत्माएँ हैं जिन्हें 'यह भान नहीं हैं कि मैं—पूर्व दिशासे, दक्षिण दिशासे, पश्चिम दिशासे, उत्तर दिशासे, ऊंची दिशासे, नीची दिशासे या किसी विदिशा (ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायव्य) से या अनुदिशा (कहां) से आया हूं'।

फिर बहुतसे अधिकारी जीवोंके मनमें यह प्रश्न भी उठता है कि 'मेरा

आत्मा पुनर्जन्म पाने वाला है या नहीं ? मैं पहले कौन था ? और यहांसे मरने के बाद परभव (जन्मान्तर) में मुझे क्या होना है ? (मैं कहां जाऊंगा), इसका उसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता' ॥२॥

[१] अपने आप—जातिस्मरण ज्ञान [पूर्वजन्मके स्मरण] से,

[२] ज्ञानी, तीर्थकर या केवली महापुरुषोंके कहनेसे, या

[३] उपदेशकों द्वारा यथार्थ तत्व सुननेसे ऐसा पारमार्थिक ज्ञान हो सकता है, कि मैं पूर्वदिशा, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, उर्ध्व, अधो, विदिशा या अनुदिशा, इनमें से किधरसे आया हूं।

वहुतसे जीवोंको ऐसा भी ज्ञान होता है कि मेरा आत्मा पुनर्जन्मको पाने वाला है, कि जो अमुक दिशा या अमुक अनुदिशासे आया है। किं वा जो अनु-दिशा या सर्वदिशासे आया है, वह स्वयं मैं हूं। इस प्रकार जिसे ज्ञान होता है, वह आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी या क्रियावादी है ऐसा जानना चाहिए॥३॥

(१) मैंने किया (२) मैंने कराया (३) मैंने किसी अन्यके करने वालेकी अनुमोदना की (४) मैं करता हूं (५) मैं करवाता हूं (६) मैं 'करने वाला ठीक करता है', ऐसा मानता हूं, (७) मैं करूँगा (८) मैं कराऊंगा, (९) मैं करने वालोंको अनुमोदन दूंगा, यों नव भेदोंको मन वचन और कायसे गुणन करने पर २७ भेद होते हैं। इस प्रकार कर्मबन्धके कारणभूत क्रियाओं के भेद और प्रभेदसे प्रत्येक पुण्य पापकी तथा धर्माधर्मकी व्यवस्था माननी चाहिए, और इसी तरह कर्मसमारंभोंके—कर्म बन्धनके कारणभूत क्रियाभेदोंको भी जानना चाहिए ॥४॥

अज्ञात-कर्मा जीव सचमुच इन दिशा विदिशाओंमें परिभ्रमण किया करते हैं। अथवा सर्व दिशाओं और अनुदिशाओंमें चक्कर काटते रहते हैं। फिर वे नाना प्रकारकी योनियों (पशु, कीड़ा, पक्षी, नरक और ऐसी ही अधम गतियों) में उत्पन्न होते हैं, और अनेक प्रकारके दुष्कर्मजन्य प्रतिकूल स्पर्श आदिके दुखोंका अनुभव करते रहते हैं ॥५॥ सचमुच इन क्रियाओंमें भगवान्ने परिज्ञा (विवेक) को समझाया है ॥६॥

इस जीवितव्यको दीर्घ वनानेके लिए सुयशकी प्राप्तिके लिए, सत्कार, सन्मान, का विपाक भोगनेके लिए, जन्म-मरणके वन्धनसे अलग होनेके लिए और दुखोंको मिटानेके लिए, इस विश्वमें पाप क्रियाओंको लोग अंध परम्परासे आच-रणमें लाते रहते हैं ॥७॥

प्रज्ञ अर्थात् समझदार साधकको उसका परिपूर्ण विवेक जानना आवश्यक है (अखिल विश्वकी क्रियाओंका ऊपरके वर्णनमें समावेश हो जाता है) ॥८॥

इस संसारमें पूर्वोक्त सव कर्मसमारंभ (क्रियाओं) को जो ज्ञ परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे त्याग (विवेकपूर्वक समझकर और विवेकपूर्वक

त्याग) करता है, वही परिज्ञातकर्मा कर्मज्ञ (विवेकवान् संयमी) गिना जाता है। इस प्रकार मैं कहता हूं ॥९॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययनका पहला उद्देशक समाप्त ॥

—o—

दूसरा उद्देशक—पृथ्वीकाय

गुरुदेव बोले—जंबू ! देखो, इस संसारमें प्राणी लोक विचारे कैसे विषयकषायादिक से सब तरह हीनतामय, दुःखमय, दुर्बोधमय और अज्ञानमय जीवन विताते दीख पड़ते हैं। वे अपने अज्ञानसे आतुर (अधीर) होकर इस संसारकी जलती हुई क्लेशभट्ठीमें स्वयं सुलग रहे हैं, और दूसरों (उनके समीप रहने वाले अन्य प्राणियों) को भी परिताप दे रहे हैं ॥१०॥

जंबू ! देख, इस संसारमें अलग-अलग सब जगह ये भिन्न-भिन्न प्रकारके प्राणी बसते हैं। इन्हें परिताप न हो ऐसे ढंगसे संयमी पुरुप संयम की देखभाल रखते हुए जीवन निर्वाह चलाते हैं ॥११॥

तब बहुतसे तो "हम त्यागी पुरुष हैं" यह कहलाने वाले भी विविध प्रकार के शस्त्रोंसे पृथ्वी सम्बन्धी कर्मके समारंभ (बहुलतया पापकर्म) करते हुए पृथ्वी पर शस्त्रोंके प्रहार करते हैं, और वे जीवोंकी हिंसा करते-करते उनके आश्रय में रहने वाले अनेक प्राणियों की हिंसा कर डालते हैं ॥१२॥

भगवान् महावीर ने इस परिज्ञा को समझाते हुए कहा है कि जो श्रमण जीवन निर्वाह के लिए, वंदन, सन्मान या प्रतिष्ठा पानेके लिए, भ्रमसे मान लिए गए सिद्धान्त के अनुसार जन्म-मरणसे छूटनेके लिए या दुःख (प्रतिघात) के निवारणके लिए पृथ्वीकाय जैसे सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा स्वयं करते हैं, औरोंसे करवाते हैं, अथवा हिंसा करने वालोंको अनुमोदन देते हैं। वह हिंसा इनके लिए अकल्याण और अबोधकी जननी बनती है, अर्थात् उससे अश्रेय और अज्ञान ही बढ़ता है ॥१३॥

सर्वज्ञदेव किंवा श्रमणवरों (ज्ञानीजनों) के सहवाससे आत्म विकासके लिये ग्रहण करने योग्य उपयोगी ज्ञानको पाकर इस विश्व में बहुतसे भव्यजीव यह जान सकते हैं कि हिंसा कर्मबन्ध का कारण है, मोह तथा आसक्ति का कारणभूत है, साथ ही नर्क जैसी दुर्गतिका भी निमित्तभूत है। परन्तु जो अति ही आसक्त रहने वाले जीव होते हैं, वे भिन्न-भिन्न प्रकारके शस्त्रों द्वारा पृथ्वी कर्मके समारंभ से पृथ्वीशस्त्रका आरंभ करके अविवेक से अनेक प्रकार प्राणियों की हिंसा करते हैं, वे सब खाने-पीने में तथा कीर्ति आदि पाने के मोह में ही फंसे पड़े हैं ॥१४॥

(यह सुनकर जम्बू आश्चर्यपूर्वक अपने गुरुदेव से पूछते हैं कि पूज्यपाद ! पृथ्वीके जीवोंको तो आंख, नाक, जीभ–वाणी या विकसित मन आदि में से कुछ भी नहीं है। तब उन्हें दुःख का अनुभव कैसे होता होगा ?)

गुरुदेव बोले–आत्मार्थी शिष्य ! जैसे कोई जन्मसे अंधा, बहरा और गूंगा हो, उस मनुष्यके कोई पैर, घुटने, जांघ, गट्टे, सांथल, कमर, नाभि, पेट, पसली, पीठ, छाती, हृदय, स्तन, कंधे, बाहें, हाथ, अंगुलियां, नख, गर्दन, दाढ़ी, होठ, दांत, जीभ, हलक, कनपटी, कपाल, नाक, आंख, भवें, मस्तक आदिमें (भाले आदि से) छेदन-भेदन करके मारे या तकलीफ दे, तो चाहे वह कहकर न बता सके फिर भी अव्यक्त वेदना उसे अवश्य होती है। इसी तरह जिन जीवों को दुःख व्यक्त करनेका साधन प्राप्त नहीं है, उन्हें भी दुःख तो होता है ॥१५॥

जो हिंसकवृत्ति के जीव होते हैं, उन्हें स्वयं हिंसा का प्रयोग करते हुए भी हिंसक क्रिया का भान नहीं रहता (परन्तु आरम्भका पाप तो उन्हें अवश्य लगता है) तथापि जो पुरुष हिंसकवृत्ति से निवृत्त हो गये हैं, वे सूक्ष्म या स्थूल शस्त्रका प्रयोग कभी नहीं करते, और हिंसाके परिणामको जानकर उनका विवेक कर सकते हैं ॥१६॥

इसलिए यह सब कुछ जानकर प्रज्ञ साधक पृथ्वीशस्त्र पृथ्वीकाय की हिंसाका स्वयं प्रयोग नहीं करता, किसी अन्यके द्वारा भी नहीं करवाता और करनेवाले का अनुमोदन भी नहीं करता।

इस भांति पृथ्वीकायके जीव सम्बन्धी हिंसाकी क्रियाओंको भी जो ज्ञ परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे छोड़ता है, वह सचमुच विवेकयुक्त संयमी गिना जाता है। इस प्रकार कहता हूं ॥१७॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तीसरा उद्देशक—जलनिकाय

गुरुदेव बोले—जम्बू जो कुछ मैं कहता हूं उसे सुन—जो जीवनके प्रपंच से छूटकर गृहस्थसे अणगार हुआ है जिसका अंतःकरण और कार्य सरल है, जो मोक्षमार्गकी ओर मुड़ चुका है, और जो माया (कपट) का आचरण नहीं करता, उस अणगारने स्वयं ही जिस श्रद्धासे, जिस भावनाबलसे, त्याग मार्ग अंगीकार किया है, उसी भावसे जीवनके अंत तक अपने जड़ संसर्गजन्य पूर्वस्वभावकी आधीनता में न फंसकर उसे त्यागमार्गका यथार्थ पालन करना चाहिए। इस मोक्षके मार्ग में वीर ही चलते हैं और उन्होंने ही भवाटवीका पार पाया है तथा

उस मार्ग का आराधन किया है, इसमें शंकाको स्थान नहीं है ॥१८॥

जंबू ! इस रीतिसे जैनशासनकी आज्ञा (वीरताके वचन) से संसारको पहचानकर स्वयं निर्भय बनता है, और [अन्य जलनिकायादिके जीवोंको] भी निर्भय बनाता है ॥१९॥

जंबू ! सुन, मैं तुझसे कहता हूं:—(इस संसारमें अनेक तरहके प्राणी बसते हैं, वे सब चेतनावान् हैं। उनके विषयमें शंकाको कोई स्थान ही न होना चाहिए। और जो आत्माके विषयमें शंकाशील बनता है, अथवा अपने आत्मा का अपलाप करता है, (कारण जीव और जगत् का गाढ़ सम्बन्ध है) तब वह लोकके विषयमें भी शंकाशील बन जाता है (ऐसा करना विकासके मार्गमें बाधारूप है यह समझकर आत्मप्रतीति पर अडिग होकर डटे रहना उचित है) ॥२०॥

प्रिय जंबू ! संयमी पुरुष जब इस रीतिसे मनका समाधान करके विवेक-पूर्वक बर्ताव करते हैं, तब उनमें से कुछ तो अपनेको त्यागी कहलाते हुए भिन्न-भिन्न प्रकारके शस्त्रोंसे जलादिके जीवों पर क्रिया का समारंभ किया करते हैं, और इस जलादि समारंभमें (अविवेक दृष्टिसे) औरोंकी भी हिंसा कर डालते हैं ॥२१॥

भगवान् महावीरने इस सम्बन्धमें परिज्ञाको समझाते हुए कहा है कि कोई श्रमण जीवन निर्वाहके लिए, वन्दनआदिकके लिए, जन्म-मरणसे मुक्तिके लिए जलकायके जीवोंकी हिंसा स्वयं करता है, औरोंसे करवाता है, अथवा हिंसा करने वालेको अनुमोदन देता है, तब वह हिंसा, उसको अहित, और अज्ञानको उत्पन्न करती है ॥२२॥

सर्वज्ञ भगवान् किं वा अन्य ज्ञानियोंके पाससे आत्मविकासके लिए आचरण करने योग्य उपयोगी वस्तुको पाकर इस विश्वमें बहुतसे भव्य जीव यह जान सकते हैं, कि हिंसा कर्मबन्धन, मोह और नरकादि दुर्गतिका कारण है, परन्तु जो प्राणी अत्यन्त आसक्त होते हैं वे लोग भिन्न-भिन्न प्रकारके शस्त्रोंसे जलकाय के महारम्भ द्वारा जलके जीवों पर अपना हिंसक शस्त्र आज़माकर और भी अनेक प्रकारके प्राणियों की हिंसा कर डालते हैं ॥२३॥

जंबू ! जल स्वयं चेतनावान् है, इसी तरह इसके आश्रयमें दूसरे भी अनेक जीव रहते हैं। जिन शासनमें यह बात स्पष्टतासे समझाई गई है। यह विवेक साधुजनोंको भूलना नहीं चाहिए, और शस्त्र परिणत प्राशुक-निर्दोष जलसे उन्हें अपना जीवन निभाना चाहिए, परन्तु सचित्त (कच्चा) पानी काममें न लाना चाहिए ॥२४॥

ऐसा करनेसे इनके ऊपर हिंसा और प्रतिज्ञा भंग होनेसे चोरीका दोषा-रोपण भी होता है ॥२५॥

बहुतसे श्रमण यह कहते हैं कि हमें पीनेके लिए वह कल्प्य है, आवश्यक कार्यके लिए भी कल्पनीय है, यह कहकर वे अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे सचित्त जलादिकी स्वयं हिंसा करते हैं। यह बात भिक्षु श्रमणके लिये योग्य नहीं है॥२६॥

मैं ठीक कहता हूं जंबू ! जो अज्ञानी अथवा हिंसक वृत्ति वाले जीव होते हैं, उन्हें स्वयं हिंसा का प्रयोग करते हुए भी हिंसाकी क्रियाका भान होता या रहता नहीं,परन्तु जो पुरुष हिंसक वृत्तिसे निवृत्त हो चुके हैं, वे सूक्ष्म या स्थूल हिंसा का प्रयोग नहीं करते और हिंसाके परिणामको जानकर वे उसका विवेक भी कर सकते हैं। ऐसे उपयोग वाले साधक छूते तक नहीं। इसलिए समझदार साधक जलकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर जलकाय का आरंभ स्वयं न करे, दूसरे द्वारा न करावे, और करता हो तो उसे अनुमोदन भी न दे। इस प्रकार जलकायके जीवोंकी हिंसाको अहितकर जानकर जो श्रमणवर विवेक पुरःसर संयमको रखते हैं, वे ठीक परिज्ञातकर्मा (विवेकी) कहाते हैं। इस प्रकार कहता हूं॥२७॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चौथा उद्देशक—अग्निकाय

हे जंबू ! भगवान् महावीरके शब्दोंमें कहता हूं, कि जिज्ञासुको इस संसार और उसमें रहनेवाले प्राणियोंके विषयमें शंकाशील, और आत्माके अस्तित्वके विषयमें शंकाशील न होना चाहिए।

जंबू ने पूछा—गुरुदेव ! इस प्रकार के विचारसे क्या हानि होती है ?"

गुरुदेव बोले—"आत्मार्थी शिष्य !" जो जिज्ञासु संसारके विषयमें शंकाशील हो जाता है, वह आत्माके अस्तित्वमें भी शंकाशील रहता है, और जो आत्माके अस्तित्वके विषयमें शंकाशील रहता है, वह संसारके चराचर जीवोंके अस्तित्वके विषयमें भी शंकाशील बनता चला जाता है॥२८॥

जंबू बोले—"गुरुदेव ! जो आत्मा नित्य है, उसकी परिपूर्ण साधनाके लिए आपने अहिंसा का राजमार्ग बताया है। परन्तु उसे जीवन में साध्य कैसे बनाया जाय ?"

गुरुदेव बोले—'प्रिय जंबू ! भगवान् यह कह गए हैं, कि जो आत्मा इस दीर्घ लोक के शस्त्र की परिस्थिति का रहस्य जानने वाला है, वह अशस्त्र-संयम का रहस्यवेत्ता है, और जो संयम का रहस्य जानने वाला है, वही इस महासंसार में हिंसाके साधनों का रहस्य जानने वाला है॥२९॥

सदा जितेन्द्रिय, सदा अप्रमत्त और संयमी वीर महापुरुषों ने इन सबल

शस्त्रों द्वारा आत्मा पर विजय पाकर वीतरागभाव की पराकाष्ठा का जो अखंड, अनंत और स्थिर सुख है, उसका यथार्थ साक्षात्कार किया है ॥३०॥

गुरुदेव बोले - "प्रिय शिष्य ! मोक्षार्थी होने पर भी जो प्रमत्तदशा में आ जाता है, वह सचमुच इस शिक्षा (दंड) का अधिकारी ही है [कारण जहां तक प्रमादरूपी घातक विष का कूंडा गिरकर फूट नहीं जाता, वहां तक शांति-रूपी अमृत के बिंदु उसे छूते ही नहीं और कदाचित् भावनारूप से स्पर्शित होते भी हैं, तो भी इनका अन्त:करण पर स्थायी असर नहीं रहता] इसलिए मेधावी साधक ! जिस कार्य को मैंने प्रमाद से कर डाला है, उसे अब न करूं" ऐसी हृदयस्पर्शी भावना का चिंतन करते हुए वह निरन्तर जागता रहता है ॥३१॥

श्रीसुधर्मास्वामी ने कहा 'यहां अग्निकाय के जीवों का वर्णन करता हूं। इसकी हिंसा करना भी अघटित है। फिर भी बहुत से अपने को धर्मज्ञ कहलाने वाले भी अग्निकर्मके महारम्भके द्वारा अग्निके जीवों पर अनेक शस्त्र चलाते हैं, और उनको तथा उनके आश्रय तले रहने वाले कीड़े, दीमक और अनेक छोटे बड़े बहुतसे जीवों को मार डालते हैं, यह उचित नहीं है ॥३२॥

इसी कारण भगवान् ने इस जीवितव्य को निभाने का विवेक समझाया है। फिर भी कई वंदन, मान या सत्कार के लिए, अथवा जीवन के लिए कर्मबन्ध से मुक्त होने के लिए या शारीरिक तथा मानसिक दु:ख से निवारण के लिए (धर्म के निमित्त) स्वयं अग्निका आरंभ हिंसा करते हैं, औरों से करवाते हैं, या फिर करने वाले को अनुमोदन देते हैं, तब तो वह वस्तु उनके हित के बदले हानिकारक और ज्ञान के बदले अज्ञानजनक सिद्ध होती है ॥३३॥

भगवान् कि वा ज्ञानी पुरुषों से संसर्ग से रहस्य को पाकर उनमें से बहुतों को ऐसा ज्ञान हो जाता है कि "जो विविध प्रकारके शस्त्रोंसे अग्निकर्मका समारंभ करते हुए अग्नि के जीवों पर शस्त्र का आरम्भ करते हैं, और उस क्रियाको लेकर तथाश्रित रहने वाले अनेक जीवों को मार डालते हैं, उन्हें वह वस्तु सचमुच बन्धन, आसक्ति मार और नरक का कारणभूत है। इतने पर भी लोग उसमें आसक्त रहते हैं। यही कारण है कि अज्ञान में मूर्छित होकर ऐसे अधार्मिक कार्य कर डालते हैं ॥३४॥

गुरुदेव बोले —"प्रिय शिष्य ! सुन, अग्नि के समारंभसे पृथ्वी, घास, पत्ते, लकड़ी, उपले और कूड़े कचरेमें रहे हुए छोटे मोटे अनेक जीव जन्तु तथा पतंगे भुनगे आदि उड़ने वाले जीव अग्नि को देखकर जब आग में पड़ जाते हैं, तब उनमें से बहुतसे जीव तो तुरन्त ही राख हो जाते हैं, और बहुत से संकुचित होकर बेहोश हो जाते हैं, और मूर्छित होने पर वहीं प्राण दे डालते हैं ॥३५॥

हिंसक को उनके बचाने का विवेक होता ही नहीं, पर अहिंसक को यह विवेक होता है ॥३६॥

इस प्रकार बुद्धिमान् श्रमण हिंसा के परिणाम को बुरा जानकर स्वयं अग्निकाय के जीवों का आरम्भ न करे, अन्यके द्वारा न करावे, और करने वाले को अनुमोदन भी न दे। इस प्रकार अग्निकाय के जीवों की हिंसा का दुष्परिणाम जानने वाला परिज्ञात कर्मा (विवेकी) श्रमण कहलाता है। इस प्रकार कहता हूं ॥३७॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

पांचवाँ उद्देशक—वनस्पतिकाय

जंबू ! जो बुद्धिमान् और सावधान साधक अभय को यथार्थ रूप से पहचानकर 'किसी भी प्राणीजात को तकलीफ न दूंगा' यह निश्चय करता है, हिंसादि कार्यों से तथा संसार के बंधनोंसे विरक्त होता है, वही जैन संघ का अणगार (त्यागी) श्रमण कहाता है ॥३८॥

गुरुदेव ने कहा—"शब्दादि विषय काम गुण संसार के कारण हैं, और संसार विषयों का कारण है ॥३९॥

ऊंची, नीची, तिर्छी और पूर्वादि दिशाओं में जाकर या रहकर यह जीवात्मा अनेक पदार्थोंके संसर्ग में आता है, वहां वह अलग-अलग तरह के रूपों को देखता है, तथा अनेक प्रकार के शब्दों को सुनता है, और वह इस भांति से देखी हुई स्वरूपवाली वस्तु पर और सुने हुए मंजुल शब्दों पर मोहित हो जाता है, आसक्त होता है, बस आसक्ति ही संसार है। इसलिए विषयों पर संयम रखना ही वीतराग की आज्ञा है। जो साधक विषयों पर संयम न रखता हो वह वीतराग की आज्ञासे बाहर है। कारण उसे भोगों में तृप्ति नहीं है, फिर वह आसक्तिके वशसे बार-बार विषयव्यामूढ जीव प्रमादसे (भूलों का भंडार बनकर) तथा सद्वर्तनसे विमुख होकर गृहस्थाश्रम को बिगाड़ देता है ॥४०॥

सुधर्मास्वामी ने कहा कि—यहां वनस्पतिकायके जीवोंका वर्णन करता हूं। उनकी हिंसा भी न करनी चाहिए। फिर भी अपने को साधु कहाने वाले बहुत से मनुष्य वनस्पतिकाय के महारंभ द्वारा वनस्पति जीवों पर शस्त्र चलाते हैं, और उन्हें तथा उनके आश्रय में रहने वाले कीड़े, मकड़ी, दीमक और छोटे बड़े बहुतसे जीवोंके प्राण नाश कर डालते हैं ॥४१॥

अतः भगवान् ने इनके जीवितव्य को निभाने का विवेक समझाया है। फिर भी बहुतसे वंदन, मान, सत्कार, जीवन जन्म-मरणसे मुक्ति और शारीरिक तथा मानसिक दुःखके मिटानेके लिए (धर्म निमित्त) स्वयं वनस्पति का समारंभ

(हिंसा) करते हैं दूसरों के द्वारा करवाते हैं और करने वाले का अनुमोदन करते हैं। तब तो वे वस्तुके हितके बदले हानिकर्ता और ज्ञानके बदले अज्ञानजन ही हैं ॥४२॥

भगवान् अथवा ज्ञानी सत्पुरुषोंके संसर्ग से इसके रहस्य को पाकर उनमें से बहुतों को ऐसा ज्ञान हो जाता है, कि जो विविध प्रकार के शस्त्रोंसे वनस्पति-काय का समारंभ करता हुआ वनस्पतिके जीवों पर शस्त्र का आरंभ करता है और उसे लेकर तदाश्रित रहने वाले अनेक जीवों को मार डालता है। उसके लिए यह काम सचमुच बन्धन, आसक्ति मार और नरक का कारणभूत है। इतने पर भी जो लोग आसक्त हैं, वे अज्ञानों की तरह इस ढंग के अधार्मिक काम ही कर डालते हैं ॥४३॥

गुरुदेव ने कहा—इस विषय को मैं अपनी निजी शरीर रचनाके साथ तुलना करके समझाऊंगा। देखो, यह अपना शरीर जिस प्रकार जन्मने के स्वभाव का है, इसी प्रकार वनस्पतिके जीव भी जन्म लेते हैं। जैसे हम बढ़ते हैं, इसी तरह वे भी बढ़ते हैं, जैसे हमारे में चैतन्य है, उसी तरह उनमें भी चैतन्य है। जैसे यह हमारा शरीर काटने से सूखता है, उसी प्रकार वनस्पति भी काटने से सूखती है। जिस प्रकार हमारे शरीरादिको आहारादिकी जरूरत है, उसी तरह उन्हें भी आहार की आवश्यकता होती है। जैसे हमारा शरीर अनित्य है, वैसे ही उनका शरीर भी अनित्य है। जिस प्रकार हमारा शरीर अशाश्वत है वैसे ही उनका शरीर भी अशाश्वत है। जिस प्रकार इस शरीर की हानि वृद्धि होती है, उसी तरह उनके शरीर की भी हानि वृद्धि होती है। इसलिए वे सजीव हैं ॥४४॥

यह बहुत बार जानते हुए असंयमी को इस तरह का विवेक होता ही नहीं। जो अहिंसक रहना चाहता है, उसे ही विवेक होता है अथवा जो वनस्पतिकाय का समारंभ करता है, उसको ही आरंभ लगता है। जो उसका आरंभ नहीं करता उसे पाप नहीं लगता, इस रहस्य का विचार हर एक साधक करे। इस रीति से बुद्धिमान् श्रमण हिंसा के परिणाम को जानकर स्वयं वनस्पतिकायके जीवों का आरम्भ न करे, अन्य के द्वारा न कराये और दूसरे करने वाले को अनुमोदन भी न दे। इस रीति से जो वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा का दुष्परिणाम जानता है, वह परिज्ञातकर्मा (विवेकी) श्रमण है। इस प्रकार कहता हूं ॥४५॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

छठा उद्देशक–त्रसकाय

प्रिय जंबू ! अब त्रस जीवोंके भेदोंको कहता हूं, उन्हें सुन ! वे इस प्रकार हैं :—अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, स्वेदज, संमूर्छिम, उद्भिज, औपपातिक।

इस समस्त संसारमें हिलते चलते सब जीवोंका संक्षेपमें किया हुआ वर्णन इन आठ भेदोंमें है। मंद और अज्ञानी प्राणी इस संसारमें परिभ्रमण किया करते हैं ॥४६॥

आस पासकी परिस्थितिका गंभीर विचार तथा अच्छी तरह मंथन करके मैंने आद्योपान्त जान लिया है, कि दो—इन्द्रियादि सब प्राणी, वनस्पति आदि सब भूत, पंचेंद्रियादि सब जीव, और पृथ्वी आदि सब सत्त्वोंको सुख ही प्यारा है, दुःख जरा भी अच्छा नहीं लगता। वे दुःखसे डरते हैं। वे सदा महाभयसे उद्विग्न रहते हैं, और सुखकी शोधके पीछे प्रयत्नशील रहते हैं ॥४७॥

विषय और कषायादि शत्रुओंसे पीड़ित होते हुए कुछ पामर जीव अपने स्वार्थके लिए आतुर बनकर औरोंको पीड़ा देते रहते हैं। आपसके त्राससे वे विचारे जहां तहां अलग स्थल पर अत्रस्त स्थलपर त्रस्त होकर फिरते हैं। देख ! संसारमें यह कैसी विचित्रता है ॥४८॥

सुधर्मास्वामी बोले—कि यहां अब त्रसकायके जीवोंका वर्णन करता हूं। उनकी हिंसा अघटित है। फिर भी अपनेको साधु कहलाने वाले बहुतसे लोग त्रसकायके महारंभ द्वारा त्रस जीवों पर शस्त्र चलाते हैं, और उनको तथा उनके आश्रयमें रहने वाले छोटे बड़े कुछ इतर जीवोंको मार डालते हैं ॥४९॥

इसलिए भगवान्ने वहां इस जीवत्वको निभानेके लिए उत्तम विवेक समझाया है। फिर भी जो वंदन, मान, सत्कार, जीवन, जन्म मरणसे मुक्ति और शारीरिक और मानसिक दुःखका निवारण करनेके लिए (धर्मनिमित्त) स्वयं त्रस—समारंभ (हिंसा) करते हैं, दूसरोंसे करवाते हैं, या करने वालेका अनुमोदन करते हैं। उनके लिए यह उनके हितके बदले हानिकारक और ज्ञानके बदले अज्ञानजनक होती है ॥५०॥

अनन्तज्ञानी भगवान् तथा ज्ञानी सत्पुरुषोंकी संगतिसे रहस्य पाकर उनमें से बहुतोंको यह ज्ञान हो जाता है, कि "जो विविध प्रकारके शस्त्रोंसे त्रसकायका समारंभ करते हुए त्रसजीवों पर शस्त्रका आरंभ करते हैं और उसीको लेकर तदाश्रित रहने वाले अनेक जीवोंको मार डालते हैं, उनके लिए यह काम सचमुच बंधन, आसक्ति, मार और नरकका कारण भूत है। तथापि जो आसक्त होते हैं, वे लोक ऐसा अधार्मिक कार्य कर डालते हैं ॥५१॥

उनमें से बहुतसे अज्ञानी और बहमी जीव त्रसजीवोंको देव देवियोंके भोग निमित्त भी मारते हैं (यंत्र मंत्र द्वारा सोनेका पुरुष बनानेकी स्वार्थपूर्ण इच्छासे

जवान आदमीको भी मार डालते हैं) । कोई चमड़ेके लिए, कोई खून-हृदय या उसमेंसे पित्त निकालनेके लिए, चरबी, पांख, पूंछ, बाल या सींगोंके लिए, कोई दांत, दाढ़, नख, हड्डी या हड्डीकी गिरीके लिए, कुछ जानबूझ कर और कुछ निरर्थक रीतिसे हिंसा कर डालते हैं । बहुतसे पिछले वैरकी अपेक्षा रखकर हिंसा करते हैं, बहुतसे 'मुझे मारते हैं', यह मानकर प्रतिहिंसाके रूपमें हिंसा करते हैं, और बहुतसे 'भविष्यमें यह मुझे मारेगा' इस भ्रांतिसे भी हिंसा करते हैं ॥५२॥

बहुत बार यह जानते हुए भी असंयमीको ऐसा विवेक होता ही नहीं । जो अहिंसक रहना चाहता है, उसे ही यह बोध होता है ॥५३॥

इस रीतिसे बुद्धिमान् श्रमण हिंसाके परिणामको जानकर स्वयं वायुकायके जीवोंकी हिंसाका आरंभ नहीं करता, दूसरोंके द्वारा नहीं कराता और करने वालेको अनुमोदन भी नहीं देता। इस प्रकार त्रसकायके जीवोंकी हिंसाका दुष्परिणाम भी जो जानता है, वह परिज्ञातकर्मा (विवेकी) श्रमण कहलाता है। इस प्रकार कहता हूं ॥५४॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययनका छठा उद्देशक समाप्त ॥

सातवां उद्देशक-वायुकाय

गुरुदेव बोले—जो मानसिक और शारीरिक चिकित्सक होता है, वह समर्थ आत्मा सूक्ष्महिंसाको भी अहितकर जानकर वायुकायके जीवोंकी हिंसाका परिहार कर सकता है। कारण यह है कि जंबू ! जो अपने लिए होने वाले सुख दुःखका ठीक तरह निदान कर सकता है, वही दूसरे जीवोंको होनेवाले सुखदुःख का निदानकर सकता है । और जो दूसरे जीवोंके सुखदुःखकी मनोवृत्तिको जान सकता है। वही अपनी मनोवृत्तिको समझ सकता है । कारण स्व और परको वह परस्पर समान जानता है। यह जानकर यहां मोक्षमार्गके साधन (ज्ञान, दर्शन, चरित्रादि) को पाए हुए संयमीपुरुष सूक्ष्मजीवोंकी भी हिंसा करके स्वयं जीना नहीं चाहते ॥५५॥

परंतु दूसरे संयमीपुरुषोंको देखकर बहुतसे व्यक्ति अपने को त्यागी कहलाते हुए भी वायुकायके महारंभ द्वारा वायुके जीवों पर शस्त्र चलाते हैं, और उन्हें तथा उनके आश्रयमें रहनेवाले दूसरे छोटे-बड़े बहुतसे जीवोंको मार देते हैं ॥५६॥

वहां भगवान्ने इस जीवितव्य को निभानेके लिए, विवेकपूर्वक समझाया है। फिर भी जो वंदन, मान या सत्कारके लिए, अपना पेट पालनेके लिए, जन्म-मरणसे मुक्त होनेके लिए, और शारीरिक तथा मानसिक दुःखको मिटानेके लिए (धर्मके निमित्त) स्वयं वायुका समारंभ (हिंसा) करता है, दूसरेसे करवाता है

या करने वालेको अनुमोदन देता है, उसे वह काम उसके हितके बदले हानिकारक और ज्ञान के बदले अज्ञानजनक ही है ॥५७॥

ज्ञानी भगवान् किं वा ज्ञानी सत्पुरुषोंकी संगतिसे रहस्यको पाकर इन साधकोंमें से बहुतोंको ऐसा ज्ञान हो जाता है कि "जो नानाप्रकारके शस्त्रोंसे वायुकायका समारंभ करते हुए वायुकायके जीवों पर शस्त्रका आरंभ करते हैं और इस प्रकरणको लेकर उनके आश्रयतले रहनेवाले अनेक जीवोंको मार देते हैं, उनके लिए यह काम सचमुच बंधन, आसक्ति, मार और नरकका कारणभूत है। फिर भी जो लोग इसमें आसक्त हैं, ऐसा अधार्मिक कार्य कर ही डालते हैं ॥५८॥

प्रिय जंबू ! तुझे कहता हूं, कि उन वायुकायोंके जीवोंके साथ और भी उड़ते हुए मच्छर आदि प्राणी हैं। वे वायुके साथ इकट्ठे होकर पड़ते हैं और वायुकी हिंसा होनेपर वे पीड़ित, और मृत्युका ग्रास तक बन जाते हैं ॥५९॥

यह सब बहुत बार जानते हुए भी असंयमी आदमियोंको यह विवेक नहीं होता, जो आदमी अहिंसक रहना चाहता है, उसे ही यह विवेक होता है ॥६०॥

इस प्रकार बुद्धिमान् हिंसाके परिणामको जानकर स्वयं वायुकायका समारंभ न करे, न करावे, न करतेकी अनुमोदना करे, इस प्रकार वायुकायके जीवोंकी हिंसाके दुष्परिणामका ज्ञाता परिज्ञातकर्मा मुनि कहलाता है ॥६१॥

उपरोक्त छःजीवनिकाय (छः प्रकारके जीवों) की हिंसासे कर्मबंध होता है, यह जानते हुए जो ऐसे आचारमें नहीं रमते और आरंभ आदि (हिंसक) कार्योंपर आसक्त होनेपर भी 'हम संयमी हैं' ऐसा बोलते हैं तथा स्वच्छन्दचारी होकर आरंभमें तल्लीन रहते हैं, वे आठों कर्मोंके बन्ध बांधते हैं ॥६२॥

इसलिए संयम वाले साधकको सावधान और समझदार होकर न करने योग्य पापकर्मका आचरण न करना चाहिए ॥६३॥

यह जानकर बुद्धिमान्-पुरुष छः कायके जीवोंकी हिंसा न करे, दूसरोंसे भी न करावे, और करते हुएको अनुमोदन भी न दे। ऐसे आरंभमें जिसे सम्पूर्ण विवेक होता है, वही आरंभ त्यागी कहलाता है। इस प्रकार कहता हूं ॥६४॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा अध्ययनका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ शस्त्रपरिज्ञा नामक पहला अध्ययन समाप्त ॥

लोक विजय

२

पहला उद्देशक—संबंध मीमांसा

गुरुदेव बोले—प्रिय जंबू ! जो शव्दादि विषय हैं वे संसारके हेतुभूत हैं, और जो संसारके मूल (हेतु) हैं वे विपय हैं, अतः जो मनुष्य विपयार्थी होता है, वह प्रमादी वनकर अतिपरितापमे परितप्त रहा करता है।

मेरी मां, मेरा वाप, मेरा भाई, मेरी वहन, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, मेरे मित्र, मेरे सगे, मेरे सम्वन्धी, मेरी जान पहचान वाले, (अनेक तरहके हाथी, घोड़े शयनादि) साधन, मेरी दौलत, मेरा खाना पीना और मेरे वस्त्र, ऐसे अनेक पदार्थोंके वन्धनोंमें फंसे हुए लोग जीवनके अन्त तक ग़ाफ़िल वनकर आसक्तिसे ही कर्मवन्ध करते रहते हैं ॥६५॥

मानव आसक्तिके कारण, साधन और सम्पत्तिके लिए रात दिन चिंता करता हुआ, काल-अकालकी कुछ भी पर्वाह न करके, राग-सम्वन्ध और धनादि का लोभी वनकर, विषयोंमें चित्त फंसाकर निर्भयतासे विश्वमें लूटपाट मचाने लग पड़ता है, और वारम्वार अनेक प्रकारसे हिंसा कर डालता है ॥६६॥

गुरुदेव बोले—देख, प्रथम तो इस संसारमें मनुष्योंकी आयु ही वहुत छोटी है, फिर उसमें बुढ़ापा आने पर कान, नाक, आंख, जीभ और स्पर्शेन्द्रियों का ज्ञान घटता जाता है। अचानक वुढ़ापेको देखकर उस समय वह दिङ्मूढ़ वन जाया करता है (कुछ नहीं सूझता, अतः इस वातको खूब समझ) ॥६७॥

फिर जरा अवस्थावाला वूढ़ा आदमी जिस किसीके साथ रहता है, उसके वे सगे सम्वन्धी ही वुढ़ापेमें उसे तिरस्कृत करके धक्का देकर निकाल देते हैं, मानो एक तरहसे उसे मझधारमें छोड़ देते हैं। साथ ही वह भी स्वयं अपने कुटुम्विओंकी निन्दा करने लगता है, या फिर कुटुम्बको निराधार बनाकर परलोक चला जाता है, सारांश यह है कि जीव ! यह कुटुम्ब तुझे दुःखोंसे वचाने वाला या आश्रय देने वाला नहीं हैं, और तू भी उन्हें वचाने या आश्रय देनेमें असमर्थ है। फिर वुढ़ापेमें तो जीव हास्य, क्रीड़ा, भोग-विलास या शृंगारके योग्य भी नहीं रहता ॥६८॥

यह जानकर धीर एवं धीमान् पुरुष इस उत्तम अवसरको पाकर यथाशीघ्र विचार मार्गके अभिमुख होकर संयमी वनता है। घड़ी भर भी प्रमाद नहीं करता, कारण वह जानता है, कि यह समय, जवानी और आयु ये सव एक दम कूचकर जायेंगे (ऐसा विचार करनेसे आसक्ति घटती है) ॥६९॥

परन्तु जो मनुष्य ऐसा विचार नहीं करते वे असंयमसे जीवित रहनेके

लिए आतुर होकर गाफ़िल होते हुए विश्वमें जैसा काम किसी दूसरेने नहीं किया होगा वैसा काम मैं करूँगा, यों सबसे स्पर्धा करके बहुतसे प्राणियोंका भेदन करता है, मारता, काटता, लूटता है, प्राण विहीन करता है, उसका धन दौलत हर लेता है, इत्यादि अनेक प्रसंगमें आए हुए जीवोंको त्रास पहुंचाता रहता है ॥७०॥

(परन्तु इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न करते हुए जो ऐहिक प्राप्ति न हो तो 'सगे सम्बन्धियोंका मैं पोषण करूँगा' ऐसे अहंकारके वचन निष्फल हो जाते हैं) पहिले या पीछे उसके कुटुंबको ही उसका पालन पोषण करना पड़ता है अथवा मानलो, कि कदाचित् (अर्थप्राप्तिके द्वारा) कुटुम्बी जनोंका वह पोषण करता है तो भी (इससे क्या ?) वे कुछ उसे आपत्तिसे बचा सकने वाले तो नहीं हैं, एवं वह स्वयं भी उन्हें नहीं बचा सकता ॥७१॥

इस ढंगसे परिग्रह भावनावाला अपने ऐसे अनर्थजन्य धनका (मेरे और मेरे कुटुम्बके काम आयेगा यही सोचकर उसका) संग्रह किए जाता है, परन्तु अन्तमें उसे भी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे वह अपने आप भी उसका उपयोग नहीं कर सकता, तब आगेकी तो बात ही क्या की जाय ? ॥७२॥

ऐसे समयमें धन भी काम नहीं आता, और जिनके साथ रहता है (या जिनके लिए धन संग्रह करता है) वे सगे सम्बन्धी भी उससे तंग आकर पहिले या पीछे उसे धिक्कारते हैं, और उसे मझधारमें छोड़ देते हैं। या वह स्वयं ही रोगोंसे तंग आकर लाचार होकर उन्हें छोड़ देता है, और यह कदाचित् न बने तो भी, जीव ! वे सब तुझे अथवा तू स्वयं अपने सगोंको बचा सकनेमें समर्थ नहीं है, इस बातको कई बार अपने चिंतनमें रख ॥७३॥

फिर प्रत्येक प्राणी अपने सुख और दुःखका स्वयं ही निर्माता और भोक्ता है यही समझकर तथा अपनी आयुको नदीके वेगकी तरह जाते हुए देखकर (भविष्य पर आधार न रखते हुए) पंडित आत्मन् ! तू स्वयं ही अपने अवसर को पहचान ॥७४॥

साधक ! जहां तक कान, आंख, जीभ और कायकी अथवा ज्ञानशक्ति मंद नहीं पड़ी है, वहीं तक आत्मार्थ सिद्ध करनेका प्रयत्न करना योग्य और कार्यकारी है (इस बातका विचार करो और अपनी आत्माको प्रतिक्षण समझो)। इस प्रकार कहता हूं ॥७५॥

॥ लोकविजय अध्ययन का पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

दूसरा उद्देशक—संयम की सुदृढ़ता

जंबू ! बुद्धिमान् साधकको त्यागमार्गमें कदाचित् कुछ अच्छे बुरे, कड़वे मीठे निमितसे अरुचि होने लगे तो वह उसे दूर रक्खे, क्योंकि ऐसा करने से कर्मबन्धनसे वहुत ही थोड़े काल में मुक्त होता है ॥७६॥

वहुतसे अज्ञानी मूढ जीव परिषह या उपसर्ग आनेपर वीतरागदेवकी आज्ञा से विपरीत वर्ताव करते हुए संयमसे भ्रष्ट हो जाते हैं ॥७७॥

'हम अपरिग्रही रह सकेंगे' यह कहकर वहुतसे दीक्षित होते हुए भी वीतरागकी आज्ञा से भ्रष्ट होकर मुनिवेशको लजाकर काम भोगका सेवन करते रहते हैं। तथा उसे पानेके उपायोंमें रचे पचे रहकर मोहमें बारम्बार डूबे पड़े रहते हैं, वे न इस पार के रहते हैं, न उस पार पहुंचते हैं ॥७८॥

सचमुच वे ही विमुक्त पुरुष हैं, जो सदा संयमका पालन करते हैं। तथा जो निर्लोभसे लोभको जीतकर पाए हुए काम भोगोंकी वांछा भी नहीं करते, और पहिले ही लोभको निर्मूल करके फिर ही त्यागी बनते हैं, ऐसे पुरुष कर्म-रहित होकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं। यही विचारकर जो लोभको नहीं चाहते वे साधक असल अणगार कहलाते हैं ॥७९॥

अज्ञानीजीव काल या अकालकी कुछ भी अपेक्षा रक्खे विना धन और वनिता में गहरी आसक्ति रखकर, रात दिन (चिन्ताकी भट्ठीमें) सुलगता रहता है...और बिना विचारे बार-बार हिंसकवृत्तिसे अनेक दुष्कर्म कर डालता है ॥८०॥

आत्मवल, जातिवल, स्वजनवल, मित्रवल, प्रेत्यवल, देववल, राजवल, चोरबल, अतिथिवल, कृपणवल तथा श्रवणवल, इत्यादि अनेक प्रकारके वलोंकी प्राप्तिके लिए, जीवहिंसादि कार्य में प्रवेश करता है। बहुत वार 'इसकार्य के द्वारा पापका क्षय होगा अथवा परलोकमें सुख मिलेगा' ऐसी वासनासे भी वहुतसे अज्ञानीजन ऐसे आरम्भके काम किया करते हैं ॥८१॥

इसलिए बुद्धिमान् साधक ऐसे कर्मो के लिए आप स्वयं हिंसा न करे, दूसरे आदमीके द्वारा न कराये, और हिंसा करने वालेको अनुमोदन भी न दे ॥८२॥ यह मार्ग आर्योका वीतरागदेवों ने वताया है, अतः चतुर पुरुषों को अपनी आत्माके ऊपरकी वृत्तिसे लिप्त न होना पड़े अतः इस मार्ग में लगना चाहिए। इस प्रकार कहता हूं ॥८३॥

॥ लोकविजय अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चतुर्थ उद्देशक—भोगोंसे दुःख किसलिए ?

गुरुदेव बोले— जंबू ! कामभोगोंकी आसक्तिसे रोग उत्पन्न होते हैं ॥१०२॥

ऐसे समय जिनके साथ वह रहता है उसके वे स्नेही जन ही उसकी उपेक्षा करते हैं अथवा (सेवा सुश्रुषा न होने पर) वह (रोगिष्ठ) उनकी उपेक्षा करता है। कभी-कभी स्नेही स्नेहाधीन रहें तब भी वे उसे अपने रक्षण या शरणमें नहीं रख सकते और इसी तरह खुद भी उन्हें रक्षण या शरण देनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥१०३॥

अपने अपने सुख-दुःख सब जीवोंको अलग-अलग भोगने पड़ते हैं ॥१०४॥

ऐसी प्रकृतिके जीव भी इस संसारमें हैं कि जिन्हें (मृत्युके किनारे तक निरन्तर) भोगकी ही वांछा रहा करती है। उन्हें थोड़े बहुत जो कुछ धन या कामभोग मिले हैं, उन्हें भोगने के लिए मन, वाणी और शरीरसे उनमें खूब आसक्त हो जाते हैं ॥१०५॥

और वह धन आगे काम आएगा यह मानकर उसका रक्षण करनेकेलिए और बहुतसे कारणों को रोक लेता है। इतने पर भी उसका एकत्र किया हुआ धन किसी तरह नष्ट ही हो जाता है। या तो वह धन भाइयों द्वारा बांट लिया जाता है, या चोरी हो जाती है, राजा दंडित करके लूट लेता है, या फिर किसी तरह विनष्ट हो जाता है, या आगमें जल बल कर खाक हो जाता है ॥१०६॥

इस रीतिसे कुटुम्बादिके लिए क्रूरकर्म करके इकट्ठा किया हुआ धन भी इसी तरह जब अपने बदले औरोंके यहां चला जाता है, तो उसे बहुत दुःख होता है, और दुःखके बोझसे मूढ़ होकर जीव बारम्बार विपर्यास भाव पाता है ॥१०७॥

इसलिए धीर पुरुषो ! तुम्हें विषयोंकी आशा और लालसासे दूर रहना ही उचित है ॥१०८॥

तुम खुद ही आशारूप शल्य अंतःकरणोंमें रखकर अपने आप ही दुःखी होते हो ॥१०९॥

पैसेसे भोगोपभोग मिलते हैं और नहीं भी ॥११०॥

फिर भी जो जीवात्मा मोहसे अंधा हो गया है, यह अनुभव होनेपर भी ऐसी सीधी और सरल बातको समझ नहीं सकता यही विश्वकी विचित्रता है ॥१११॥

उलटा स्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाले जन यह भी बोलते हैं कि "केवल स्त्रियां ही सुख पानेका साधन हैं" ॥११२॥

परन्तु ठीक तरह देखो तो यह मान्यता भ्रांतिमूलक हैं, और ऐसी आसक्ति

ऐसे मूढ जीवोंके लिए दुःख, मोह, मरण, नरक और तिर्यंचगतिका कारणभूत बनती है ॥११३॥

परन्तु मोहसे मूढ़ होनेवाले प्राणी अपने वास्तविक धर्मको नहीं जान सकते ॥११४॥

अतः अनंतज्ञानी तीर्थंकर देव पहलेसे ही कह गए हैं, कि कंचन और कामिनी (परिग्रह और अब्रह्मचर्य) ये महामोहके निमित्तभूत हैं, इसलिए प्रवीण और चतुर साधक ऐसे निमित्तोंमें प्रवृत्त नहीं होते ॥११५॥

इस भांति कुशल पुरुषको अप्रमादसे मोक्ष और प्रमादसे होनेवाले मरण को विचारकर तथा शरीरको क्षणभंगुर समझकर प्रमादको दूर करना चाहिए ॥११६॥

भोगोंसे कुछ तृप्ति नहीं होती इसलिए ये किसी कामके नहीं हैं। ओ मुनि ! सदा यही विचार रख कि कामभोग की इच्छा महाभयंकर है ॥११७॥ संयमी मुनि किसी जंतुको पीड़ा नहीं देते ॥११८॥ जो साधक ऐसे उत्कृष्ट संयमको पालते हुए किसी प्रकारका खेद नहीं पाते ऐसे अप्रमादी और पराक्रमी मुनि ही प्रशंसाके योग्य हैं ॥११९॥

ऐसा मुनि साधक अपने संयमनिर्वाहके साधन गृहस्थके पाससे निर्दोष रीतिसे पा सकता है। कदाचित् कोई दे या न दे तो भी उसके ऊपर क्रोध न करे। थोड़ा मिलने पर निन्दा न करे, और यदि वह स्पष्ट नाहीं करदे तो, वहां से तुरन्त वापस मुड़ जाय, और कुछ दे भी तो लेकर उसी समय अपने स्थान पर आ जाय ॥१२०॥

मुनिराज ऐसे मुनित्वका पालन करें। इस प्रकार कहता हूं ॥१२१॥

॥ लोकविजय अध्ययनका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—×—

पंचम उद्देशक—भिक्षा कैसी ले ?

गुरुदेव बोले—जंबू ! लोग अपने लिए तथा अपने पुत्र, पुत्री, बंधु, जात-पांत, धायमाता, राजमाता, राजा, दास, दासी, नौकर, चाकर, महमान या सगे संबंधियोंकेलिए, खानेपीने की वस्तुकेलिए, सवेरे या सायंकालमें अनेक तरहके शस्त्रोंसे आरम्भ करते हैं और बहुत कुछ संग्रह करके भी रखते हैं ॥१२२॥

इसलिए ऐसे प्रसंगमें संयममें उद्यम करनेवाला, आर्य, पवित्र बुद्धिमान् न्यायदर्शी, समयज्ञ तथा तत्वज्ञ अणगार दूषित आहार न ले, लिवाये नहीं तथा लेने वाले की प्रशंसा न करे ॥१२३॥

चतुर्थ उद्देशक—भोगोंसे दुःख किसलिए ?

गुरुदेव बोले— जंबू ! कामभोगोंकी आसक्तिसे रोग उत्पन्न होते हैं ॥१०२॥

ऐसे समय जिनके साथ वह रहता है उसके वे स्नेही जन ही उसकी उपेक्षा करते हैं अथवा (सेवा सुश्रुपा न होने पर) वह (रोगिष्ठ) उनकी उपेक्षा करता है। कभी-कभी स्नेही स्नेहाधीन रहें तब भी वे उसे अपने रक्षण या शरणमें नहीं रख सकते और इसी तरह खुद भी उन्हें रक्षण या शरण देनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥१०३॥

अपने अपने सुख-दुःख सब जीवोंको अलग-अलग भोगने पड़ते हैं ॥१०४॥

ऐसी प्रकृतिके जीव भी इस संसारमें हैं कि जिन्हें (मृत्युके किनारे तक निरन्तर) भोगकी ही वांछा रहा करती है। उन्हें थोड़े बहुत जो कुछ धन या कामभोग मिले हैं, उन्हें भोगनें के लिए मन, वाणी और शरीरसे उनमें खूब आसक्त हो जाते हैं ॥१०५॥

और वह धन आगे काम आएगा यह मानकर उसका रक्षण करनेकेलिए और बहुतसे कारणों को रोक लेता है। इतने पर भी उसका एकत्र किया हुआ धन किसी तरह नष्ट ही हो जाता है। या तो वह धन भाइयों द्वारा बांट लिया जाता है, या चोरी हो जाती है, राजा दंडित करके लूट लेता है, या फिर किसी तरह विनष्ट हो जाता है, या आगमें जल बल कर खाक हो जाता है ॥१०६॥

इस रीतिसे कुटुम्बादिके लिए क्रूरकर्म करके इकट्ठा किया हुआ धन भी इसी तरह जब अपने बदले औरोंके यहां चला जाता है, तो उसे बहुत दुःख होता है, और दुःखके बोझसे मूढ़ होकर जीव बारम्बार विपर्यास भाव पाता है ॥१०७॥

इसलिए धीर पुरुषो ! तुम्हें विषयोंकी आशा और लालसासे दूर रहना ही उचित है ॥१०८॥

तुम खुद ही आशारूप शल्य अंतःकरणोंमें रखकर अपने आप ही दुःखी होते हो ॥१०९॥

पैसेसे भोगोपभोग मिलते हैं और नहीं भी ॥११०॥

फिर भी जो जीवात्मा मोहसे अंधा हो गया है, यह अनुभव होनेपर भी ऐसी सीधी और सरल बातको समझ नहीं सकता यही विश्वकी विचित्रता है ॥१११॥

उलटा स्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाले जन यह भी बोलते हैं कि "केवल स्त्रियां ही सुख पानेका साधन हैं" ॥११२॥

परन्तु ठीक तरह देखो तो यह मान्यता भ्रांतिमूलक हैं, और ऐसी आसक्ति

ऐसे मूढ जीवोंके लिए दुःख, मोह, मरण, नरक और तिर्यचगतिका कारणभूत बनती है ॥११३॥

परन्तु मोहसे मूढ़ होनेवाले प्राणी अपने वास्तविक धर्मको नहीं जान सकते ॥११४॥

अतः अनंतज्ञानी तीर्थकर देव पहलेसे ही कह गए हैं, कि कंचन और कामिनी (परिग्रह और अब्रह्मचर्य) ये महामोहके निमित्तभूत हैं, इसलिए प्रवीण और चतुर साधक ऐसे निमित्तोंमें प्रवृत्त नहीं होते ॥११५॥

इस भांति कुशल पुरुषको अप्रमादसे मोक्ष और प्रमादसे होनेवाले मरण को विचारकर तथा शरीरको क्षणभंगुर समझकर प्रमादको दूर करना चाहिए ॥११६॥

भोगोंसे कुछ तृप्ति नहीं होती इसलिए ये किसी कामके नहीं हैं। ओ मुनि ! सदा यही विचार रख कि कामभोग की इच्छा महाभयंकर है ॥११७॥ संयमी मुनि किसी जंतुको पीड़ा नहीं देते ॥११८॥ जो साधक ऐसे उत्कृष्ट संयमको पालते हुए किसी प्रकारका खेद नहीं पाते ऐसे अप्रमादी और पराक्रमी मुनि ही प्रशंसाके योग्य हैं ॥११६॥

ऐसा मुनि साधक अपने संयमनिर्वाहके साधन गृहस्थके पाससे निर्दोष रीतिसे पा सकता है। कदाचित् कोई दे या न दे तो भी उसके ऊपर क्रोध न करे। थोड़ा मिलने पर निन्दा न करे, और यदि वह स्पष्ट नाहीं करदे तो, वहां से तुरन्त वापस मुड़ जाय, और कुछ दे भी तो लेकर उसी समय अपने स्थान पर आ जाय ॥१२०॥

मुनिराज ऐसे मुनित्वका पालन करें। इस प्रकार कहता हूं ॥१२१॥

॥ लोकविजय अध्ययनका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—×—

पंचम उद्देशक—भिक्षा कैसी ले ?

गुरुदेव बोले—जंबू ! लोग अपने लिए तथा अपने पुत्र, पुत्री, बंधु, जात-पांत, धायमाता, राजमाता, राजा, दास, दासी, नौकर, चाकर, महमान या सगे संबंधियोंकेलिए, खानेपीने की वस्तुकेलिए, सवेरे या सायंकालमें अनेक तरहके शस्त्रोंसे आरम्भ करते हैं और बहुत कुछ संग्रह करके भी रखते हैं ॥१२२॥

इसलिए ऐसे प्रसंगमें संयममें उद्यम करनेवाला, आर्य, पवित्र बुद्धिमान् न्यायदर्शी, समयज्ञ तथा तत्वज्ञ अणगार दूषित आहार न ले, लिवाये नहीं तथा लेने वाले की प्रशंसा न करे ॥१२३॥

भिक्षु साधक सब दूषणोंसे अलग रहकर निर्दोष संयमका पालन करता है ॥१२४॥

वह मुनि क्रयविक्रय (लेनदेन) का कार्य स्वयं न करे, न करावे, और करने वाले की प्रशंसा भी न करे ॥१२५॥

ऐसा मुनि अपनी शक्ति, अपनी आवश्यकता, क्षेत्र, काल, अवसर, ज्ञानादिका विनय तथा अपने शास्त्र, परमत के शास्त्र और औरों के अभिप्रायको जाननेवाला, परिग्रहकी ममता दूर करने वाला, तथा अनासक्त भाव से यथाकाल धर्मानुष्ठान करनेवाला होकर राग और द्वेषके बन्धनों का छेदन करते हुए मोक्ष मार्गमें आगे बढ़ता है ॥१२६॥

फिर मुनिको वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, स्थानक, और आसन आदि संयमके साधन भी गृहस्थके पाससे निर्दोष रीतिसे ही ग्रहण करने चाहिएं ॥१२७॥

मुनि आहारादि भी विवेकपूर्वक परिमित ग्रहण करे, जैसा कि भगवान्ने फ़र्माया है ॥१२८॥

ऐसा अभिमान न करे, कि 'सचमुच मैं बड़ा लब्धिपात्र हूं—देखो मुझे आहारादि का कैसा लाभ मिला है" और याचना करते हुए न मिले तो खेद न करे। पदार्थोका योग मिलने पर संग्रह करके न रक्खे, एवं परिग्रहकी वांछा न करे। सारांश यह है कि अपनी आत्माको परिग्रहवृत्तिसे हमेशा दूर रक्खे ॥१२९॥

यह मार्ग आर्य पुरुषोंने बताया है, इसके अनुसार बर्ताव करने वाला कुशलपुरुष कर्मबन्धन में नहीं बंधता ॥१३०॥

विषयों की वांछासे दूर रहना बड़ा कठिन काम है। फिर आयु भी नहीं बढ़ सकती, इसलिए साधक को सतत जाग्रत रहना उचित है। असलमें जो जीव निरन्तर विषय वांछा किया करता है, वह विषयोंका वियोग होने पर शोकसागर में पड़कर क्षण क्षण झुरता रहता है वह केवल झुरता ही नहीं बल्कि लज्जा छोड़ देता है और पीड़ित होता है ॥१३१॥

जो संसारकी विचित्रताको जानता है, वह पुरुष लोकके ऊंचे-नीचे या तिर्छे भागको भी जानता है (अर्थात् लोकमें जीव किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, उनके विवेक तकको जान सकता है)॥१३२॥

यह जीव विषयों में अत्यन्त आसक्त होकर संसारमें परिभ्रमण करता है। इसलिए मनुष्यजन्म जैसा पाया हुआ यह उत्तम अवसर जानकर जो आदमी विषयादिकी आसक्तिसे बहुत ही दूर रहता है वही वीर और प्रशंसनीय है। ऐसे वीरपुरुष ही संसारमें बंधे हुए दूसरे जीवको बाहर तथा भीतरके बंधनोंसे मुक्त कर सकते हैं ॥१३३॥

यह शरीर जैसे बाहरसे असार है वैसे ही भीतरसे भी निस्सार है और जैसा भीतर से सारहीन है वैसा ही बाहरसे भी निस्सार है ॥१३४॥

पंडित साधक इस शरीरके भीतर रहे हुए वदवूदार पदार्थ तथा शरीरके भीतरकी स्थितियां जो सदा शरीरके वाहर मलादि के रूपमें झरते रहते हैं, उन्हें देखकर इस शरीरकी यथार्थता समझकर उसका उपयोग करना योग्य समझता है ॥१३५॥

ये सब यथार्थ वातें जानकर जैसे वालक मुंहसे टपकनेवाली लारको चूसता है,वह बुद्धिमान पुरुष इस प्रकार लार–चूसनेवाला न हो अर्थात् भोगे हुए विषयके चाहनेवाला न बने, और स्वाध्याय और चिंतनादिकी ओरसे विमुख न रहे ॥१३६॥

'यह किया और यह करूंगा' ऐसी चिंता वाला साधक पुरुष व्याकुल रहता है, अति मायावी–कपटी वनता है। फिर वह ऐसा लोभ भी करता है कि जिस लोभके द्वारा वह अपनी आत्माका ही वैरी बनकर दुःखोंकी परंपराको वढ़ाता है ॥१३७॥

आसक्ति—आकर्षण ही क्रोध, मान, माया और लोभको वढ़ानेवाला है, जो साधक यह मानता है कि पेटकेलिए ये दोष सेवन करने पड़ते हैं, यह उसका निरा अज्ञान है ॥१३८॥

जंवू ! यह भी कहा जाता है कि अति आसक्तिवाला पुरुष इस क्षणभंगुर शरीरको भी मानों 'यह अजर अमर' ही है, यह समझकर उसकेलिए सदा चिंतातुर रहा करता है। लेकिन चतुर साधक ऐसे पुरुषको दुःखी जानकर स्वयं ऐसे पदार्थोंमें आसक्ति नहीं रखता।

मूढ़ जीव जो कि वस्तुस्वरूपके ज्ञानसे अनभिज्ञ है, वह इच्छा और शोक के अनेक दुःख भोगता है। इसलिए मैं कामपरित्याग के विषय में ही उपदेश करता हूं, इसे तू धारण करके रख ॥१३९॥

परमार्थ न समझते हुए पंडिताईका अभिमान रखकर व्यर्थ वातें करनेवाले, वहुतसे वेशधारी श्रमण कामविकारका उपशमन करनेके उपदेशक होकर वरतनेवाले, और मानों हम कोई अपूर्वकार्य करेंगे ऐसा डौल वनाकर फिरनेवाले, परन्तु वैसे न करके उलटे वे छोटे वड़े जीवजन्तुओंको मारनेवाले, काटने, फोड़ने, लूटने, छीनने, तथा प्राण लेनेवाले हो जाते हैं, यह शोचनीय है। ऐसे अज्ञानी व्यक्ति जिन्हें उपदेश देते हैं या जो आदमी उनके संसर्ग में आते हैं वे कर्मबंधसे प्रतिबद्ध हो जाते हैं और वे व्यक्ति स्वयं भी बंध जाते हैं, इसलिए ऐसे वालजीवोंका संसर्ग न करे। इतना ही नहीं वल्कि जो आदमी ऐसे व्यक्तिकी संगति करते हैं, उनका सहवास भी न करे। जो गृहवास छोड़कर श्रमण होते हैं उनको तो ऐसी रीतिसे कायचिकित्सा करने का उपदेश करना भी अयोग्य है। इस प्रकार कहता हूं ॥१४०॥

॥ लोकविजय अध्ययन का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

छठा उद्देशक—लोकसंसर्ग रखना भी ममत्व बंधन है

संयमी मनुष्यको भी तीव्र से तीव्र ममत्व हो सकता है, ममता ममत्वबुद्धि में से जन्म लेती है,अतः उस पर काबू करने की चेष्टा करना उचित है ॥१४१॥

जंबू ! पूर्वोक्त वस्तुस्वरूपको जानकर संयमाभिमुखी साधक स्वयं थोड़ा-सा भी पापकर्म नहीं करता, और न अन्य आदमियों द्वारा कराता है॥१४२-१४३॥

जो कोई छः कायके जीवोंमेंसे एक कायके जीवके भी आरम्भमें प्रवृत्त होता है वह छः कायका आरम्भ करने वाला गिना जाता है ॥१४४॥

अपने सुखके लिए दौड़धूप करता हुआ बालजीव अपने हाथों ही दुःख उत्पन्न करके मूढ़ होकर दुःखी होता है, तथा स्वयं अपने व्रतनियमका प्रमादसे भंग करता है। यह दशा भयंकर और दुःख देनेवाली है। यह जानकर वह मुनि साधक ऐसा काम न करे, जिससे दूसरेको पीड़ा उत्पन्न हो। यही परिज्ञातकर्म (सच्चा विवेक) कहलाता है, और ऐसी परिज्ञासे ही क्रमपूर्वक कर्मक्षय होते हैं जो ममत्व बुद्धिको छोड़ सकता है, वही ममत्व छाड़ सकता है, और जिसे ममत्व नहीं, वह मोक्षमार्गका ज्ञाता साधक समझा जाता है, जंबू ! यह सब देखकर बुद्धिमान् साधक लोकस्वरूपको जानकर लोकसंज्ञासे अलग होकर विवेकपूर्वक अपने पथमें लगा रहे ॥१४५॥

जंबू ! संसारकी ओर झुकनेकी बुद्धिके गन्दे या अच्छे संस्कार हरेक साधकमें होते हैं। अतः ऐसे किसी मोहक वस्तुके निमित्त द्वारा उनके ताजा होने पर साधनाके मार्ग में अरति (विवशता) उत्पन्न होती है, फिर भी वीर साधक अपने मन पर नहीं लाता। एवं प्रलोभन उत्पन्न करने वाले पदार्थोपर आसक्ति भी नहीं करता। परन्तु ऐसे प्रसंगोंमें वह सावधान और स्वस्थ होकर समता योगका साधक (सब वस्तुओंमें तटस्थ वृत्तिवाला) बनकर किसी भी पदार्थपर रागवृत्ति को उत्पन्न होने नहीं देता ॥१४६॥

ओ साधको ! (तुम्हारे पथमें) मनोहर मोहक शब्द, स्पर्श इत्यादि विषय उपस्थित होने वाले हैं, परन्तु ऐसे प्रसंगमें इस पतित जीवनके मोहसे तुम सदा अलग रहना, और उस प्रसंगको भी सह लेना अर्थात् अपनी वृत्तिपर इनका स्पर्श न होने देना ॥१४७॥

(इस दुखद संसारमें भी बहुतसे) मुनि-रत्न संयमका आराधन करके मानसिक, वाचिक और कायिककर्मरूप शरीरको आत्मासे अलग करते हैं, अर्थात् वे देहभावसे छूटनेका प्रयत्न करते रहते हैं। जंबू ! सत्पुरुषार्थी और तत्वदर्शी महापुरुष रूखे सूखे पदार्थोंका सेवन करते हैं ॥१४८॥

ऐसे साधक मुनि, संसारके प्रवाहको तैर सकते हैं, और ऐसे पुरुष ही संसारसे पार पाये हुए, परिग्रहसे मुक्त रहकर त्यागीजनके रूपमें पहचाने जाते हैं ॥१४६॥

तीर्थंकरदेवोंकी आज्ञाको न मानकर जो साधक स्वच्छन्दताका वर्ताव करता है वह सचमुच मुक्तिकी प्राप्तिके लिए अयोग्य है, और ऐसे साधक विज्ञानसे भी अपूर्ण रहनेके कारण किसीको सीधा प्रत्युत्तर नहीं दे सकते। इसी कारण शर्मा कर भयभीत होते हुए अपना जीवन कष्टमें बिताते रहते हैं ॥१५०॥

इसलिए जो वीतरागकी आज्ञाके आराधक होकर दुनियाके जंजाल (आंतरिक तथा बाहरी ममत्व) से अलग हो जाते हैं, वे ही सच्चे वीर पुरुष होनेके कारण बखान करने योग्य हैं, और वे ही कर्मबंधनसे छूटनेकी योग्यता होनेसे सिद्ध होते हैं ॥१५१॥

जंबू ! अनुभूत महापुरुषोंका कहा हुआ (उपर्युक्त) मार्ग ही न्यायमार्ग है। अतः (उन ज्ञानी पुरुषोंने) मनुष्यको दुःख उत्पन्न होनेके जो कारण बताए हैं, उन्हें जो कुशल साधक ज्ञ परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे त्याग करते हैं, वे ही पुरुष अन्य जनोंके दुःखोंके कारण समझाकर इनका परिहार करनेका उपाय बता सकते हैं ॥१५२॥

इस रीतिसे पहले स्वयं कर्मका यथार्थस्वरूप जानकर फिर सर्वरीतिसे उपदेश करना उचित है ॥१५३॥

जो आदमी परमार्थदर्शी होता है वह मोक्षमार्गके अतिरिक्त और कहीं रमण नहीं करता। और जो मोक्षमार्गके सिवाय और किसी स्थानमें नहीं रमता वही परमार्थदर्शी है ॥१५४॥

सच्चा उपदेशक और साधक जैसा उपदेश कुल, रूप और धनसे सम्पन्न आदमियोंको करता है, वैसा ही उपदेश एक सामान्य (रंक) मनुष्यको भी देता है ॥१५५॥

उपदेशकको श्रोताजनोंका अभिप्राय धर्म, विचार आदि जानकर फिर ही उपदेश करना चाहिए, अन्यथा अनजानपनसे उसकी योग्यतासे विरुद्ध कहा जाय तो कदाचित् वह कुपित हो जाय अथवा मारने धमकाने उठ खड़ा हो, इसलिए उपदेश देनेकी रीति जाने विना किसीको उपदेश देनेमें कल्याण नहीं है ॥१५६॥

श्रोता किस ढंगका है ? किस मत, पंथ या धर्मको मानता है ? किस देव को मानता है ? (इत्यादि वातें जानकर उपदेश दे) इस रीतिसे सत्य उपदेश देकर संसारके ऊर्ध्व, अधः या तिर्छे भागमें (संसारके बंधनोंसे) बंधे हुए जीवों को जो पराक्रमी पुरुष छुड़ा सकते हैं, उनकी इस लोकमें बड़ाई होती है ॥१५७॥

ऐसे सत्पुरुष सदा अपने जीवनमें ज्ञान और क्रिया इन दोनोंको बल देकर हिंसा (दूषित जीवन) से लिप्त नहीं होते ॥१५८॥

जो पुरुष कर्मकी निर्जरा (दूर) करनेमें निपुण है, और बंध तथा मोक्षके स्वरूपको यथार्थ रीतिसे जान सकता है वही असल पंडित समझा गया है ॥१५९॥

जिन्होंने बंध तथा मोक्षके स्वरूपको यथार्थ रीतिसे जान लिया है, और जो (घाती)कर्मको दूर करनेमें सफल हुए हैं उन कुशल पुरुषों(केवली भगवंतों) के लिए तो फिर बंधन और मुक्तिका प्रश्न ही नहीं उठता (कारण उन्होंने अपनी साधना पूरी करली है) ॥१६०॥

ऐसे सम्पूर्ण पुरुष जिस मार्गमें प्रवर्तित हुए हैं समझदार साधक उस मार्गमें प्रवर्तित हों, और जहां से वे नहीं गए हैं उस ओर न चलें, एवं हिंसा तथा लोकसंज्ञाको जानकर उन दोनोंका परिहार करें ॥१६१-१६२॥

तत्वज्ञ पुरुषोंको उपदेशकी अथवा विधिनिषेधकी आवश्यकता ही नहीं है ॥१६३॥

परंतु जो अज्ञानी (आत्मस्वरूपको न जाननेवाला) जीव होता है उसके लिए वह उपयोग वस्तु है, कारण वे जिस भूमिका पर हैं वहां आसक्तिपूर्वक आशा, इच्छा और विषयोंका सेवन करते रहते हैं और इस रीतिसे वे दुःखोंको किसी भी तरह कम न करते हुए उलटे अधिक दुःखी होकर शारीरिक और मानसिक दुःखोंके चक्करमें ही फिरा करते हैं। इस प्रकार कहता हूं ॥१६४॥

॥ लोकविजय अध्ययनका छठा उद्देशक समाप्त ॥

॥ लोकविजय नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥

—०—

(३) शीतोष्णीय

पहला उद्देशक-अनासक्ति

गुरुदेव बोले—(अमुनि) अज्ञानी जन (जागते हों तो भी) सदा सोए हुए पड़े हैं। पर (मुनि) ज्ञानी जन सदैव (आत्माभिमुख)जागृत हैं ॥१६५॥

ओ लोगो! संसार में अज्ञान ही दुःख है और अज्ञान ही अहितकर्त्ता है, यह निश्चय जानें ॥१६६॥

संसार का ऐसा स्वरूप जानकर ज्ञानी पुरुष संयम के जो बाधक शस्त्र, अज्ञानी को पीड़ा पहुंचाते हैं, उनसे दूर रहे ॥१६७॥

जो साधक, शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श ये सब सुन्दर या असुन्दर प्राप्त होते हुए, दोनों में समानभाव (राग द्वेष रहित)रख सकता है, वही साधक चैतन्य, ज्ञान, आगम, धर्म तथा ब्रह्मनिर्विकल्पको जानकर समझा गया है, और

ऐसा ही साधक विज्ञान बलसे लोकस्वरूपको जान सकता है। एवं ऐसा ही साधक मुनि कहाता है। ऐसा धर्मको जानकर सरल मुनि संसारचक्र तथा आसक्ति का रागादिके साथके संबंधको जानता है, और सुख और दुःखकी जरा भी पर्वाह न करते हुए, संयम मार्गमें उपस्थित होकर सानुकूल और प्रतिकूल प्रसंगोंको सह लेता है। ऐसे धीर मुनि ही जागृत रहकर वैर, विरोध, वैमनस्य आदि दूर करके दुःखोंसे भी मुक्त हो जाता है ॥१६८॥

परंतु जरा और मृत्युके फेरमें आया हुआ और उससे सदा महामोहसे चकरानेवाला पुरुष धर्मके रहस्यको नहीं जान सकता ॥१६९॥

(इस संसारमें मोह ही विव्हलताका कारण है ऐसे) विव्हल प्राणिओंको देखकर मुनि सावधानतासे संयममें प्रवर्तमान होकर रहता है ॥१७०॥

बुद्धिमान् मुनि! (मोहसे भाव—निद्रा और उत्पन्न होनेवाले दुःख) ऐसा जानकर तू विव्हल होनेकी इच्छा न करना (अर्थात् सावधान रहना) ॥१७१॥

सारे दुःख आरम्भसे होते हैं यह समभकर विज्ञ साधक जागृत होता है। कारण, प्रमादी और मायावी (कषायवान्) प्राणी वार वार गर्भमें आकर जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ता है परन्तु जो साधक जन्म मृत्युसे डरकर शब्दादि विषयोंमें राग-द्वेष नहीं करता हुआ सरल (समभावी) होकर रहता है वह ठीक तरह मृत्युके भयसे मुक्त होता है ॥१७२॥

जो पुरुष पर-विभाव (विषयासक्ति) से होनेवाले दुःखोंको जानते हैं वे वीर पुरुष आत्मसंयमको सुरक्षित रखते हुए विषयोंमें न फंसकर पापकर्मसे दूर रहते हैं ॥१७३॥

जो विषयभोगके अनुष्ठानको शस्त्ररूप जानता है, वह अशस्त्र (संयम) को पा सकता है, और जो संयमको जानता है वह विषयभोग के अनुष्ठानको शस्त्ररूप जानता है ॥१७४॥

अकर्मा साधुको संसार सम्बन्ध नहीं रहता। कर्मसे ही सब उपाधियाँ पैदा होती है ॥१७५॥

इस रीतिसे साधक कर्मका यथार्थ स्वरूप जानकर और हिंसक वृत्तिको कर्मका मूल समभकर उससे दूर रहे ॥१७६॥

ये सब स्वरूप विचारकर (कर्मसे दूर होनेके) सब उपायोंको ग्रहण करके मतिमान् साधक राग और द्वेषका मूलमें से ही परिहार करता है ॥१७७॥

कारण, बुद्धिमान् साधक समभता है कि राग और द्वेष ये दोनों अहित-कर हैं। संसारके लोग उनसे ही दुःखी दिखाई देते हैं। प्रत्येक साधकको यही समभकर लोकसंज्ञासे दूर रहकर संयममें परिक्रमण करना चाहिए। इस प्रकार कहता हूं ॥१७८॥

॥ शीतोष्णीय अध्ययनका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

दूसरा उद्देशक—त्यागमार्गकी आवश्यकता

गुरुदेव बोले—आत्मार्थी शिष्य ! तू इस संसारमें जन्म और बुढ़ापेके दुःखको देख ! जैसे तुझे सुख प्रिय है वैसे ही सारे संसारके जीवोंको सुख प्रिय है—यही विचारकर तू अपना वर्ताव वैसा ही कर। बंधनसे मुक्त होनेका यह एक उत्तम मार्ग है। यही जानकर तत्वदर्शी साधक पापकर्म (हिंसा) नहीं करता ।।१७६।।

पुनः मुनिसाधक ! जो व्यक्ति जीव हिंसादि आरंभ और गाढ़ परिग्रहादिके कीचड़में जीवित रहनेवाले और इस लोक तथा परलोकमें केवल कामभोग प्राप्त करनेकी लालसा वाले हैं, वे अपनी उस लालसा द्वारा कर्ममल को इकट्ठा करते रहते हैं और कर्ममलको लेकर वारम्वार जन्म-मरण प्राप्त करते हैं। इसलिए ऐसे जालमें तू मत फंस ।।१८०।।

पुनः अज्ञानी और कामगुणोंमें आसक्त पुरुष हंसी तथा विनोद की खातिर दूसरोंके प्राण लेनेकी चेष्टा करते हैं, इसलिए ऐसे वाल जीवोंका साथ न करना चाहिए, कारण ऐसा करनेसे परिणामस्वरूप अनेक तरहकी उपाधि (खरावी) उत्पन्न होती हैं ।।१८१।।

इसलिए सच्चा तत्वदर्शी साधक अपने परमध्येयको अनुलक्ष्यमें रखकर ऐसे अपायों (वाधककरणों) से सचेत रहकर पापकर्म नहीं करता ।।१८२।।

परन्तु धीर पुरुषो ! तुम मूलकर्म और अग्रकर्मके भेदको विवेक बुद्धिसे समझो। ऐसा करनेसे कर्मोंके परिच्छेदनका अनुभव पाकर तुम सहज निष्कर्म-दर्शी—निष्कर्मा हो जाओगे ।।१८३।।

इस रीतिसे कर्मभेदका ज्ञाता वही साधक मरणसे छूट सकता है जिसे (संसारके) भयका भी संपूर्ण ज्ञान हो चुका है। वह मोक्षका दृष्टा वनकर लोक में रहते हुए एकांत-रागद्वेष—रहित समभावजीवी, शांत, समिति (उपयोग) वान् ज्ञानवान् और पुरुषार्थी वनकर, काल की पर्वाह न करते हुए वीरतापूर्वक आगे वढ़ता है ।।१८४।।

साधको ! इस साधनामार्गमें वढ़ते हुए तुम्हें वृत्ति ठगने लगे तो पहले पापकर्म वहुत किए हैं, ऐसा मानकर अव तुम्हें सत्य मार्ग पर आरूढ़ होकर अधिक से अधिक धैर्य धारण करना उचित है। संयममें लीन बुद्धिमान् साधक सवके सव (पूर्वकृत और पश्चात्कृत) दुष्कर्मोंका नाश कर डालता है ।।१८५।।

इस मृगतृष्णाके समान सुखके पीछे फिरने वाले विलासी पामर जीवोंको देखो, जो वेचारे चंचलचित्त होकर छलनीमें समुद्रका पानी भरनेकी चेष्टा करते हैं, उसके लिए औरोंको मारने और हैरान करनेके लिए तैयार रहते हैं ।।१८६।।

लोभवश ऐसे कर्म करके भी अन्तमें (भान होते हुए उस मार्गको छोड़कर) वहुतसे साधक जीव पीछेसे संयममार्गमें उद्यमवान् हुए हैं। उनके अनेक दृष्टांत

हैं इसलिए जिस ज्ञानी साधकने एक वार भोगवांछा तथा असत्यादि दोषोंका त्याग किया है, वह साधक (अनेक प्रकारके प्रलोभन मिलते हुए) पाए हुए भोगों को निःसार जानकर फिरसे सेवन करनेकी (स्वप्नमें भी) इच्छा नहीं करता ॥१८७॥

प्रिय साधक ! संसारके प्रत्येक प्राणीके पीछे जन्म-मरण लगा हुआ है (फिर चाहे वह देव है या पशु प्राणी), यह जानकर संयममार्गको अङ्गीकार करो, अर्थात् किसी भी जीवको कष्ट न दो, अन्यके द्वारा न दिलवाओ, और यदि कोई त्रास दे उसे अनुमोदन भी न दो ॥१८८-१८९॥

और स्त्री आदिमें आसक्ति न करके वासनाजन्य सुख (सुखाभास) को धिक्कारो (इच्छा न करो) एवं ज्ञान, संयम इत्यादि गुण प्राप्त करके पापकर्मों से सदा दूर रहो ॥१९०॥

पराक्रमी साधको ! क्रोध और उसके कारणरूप अहंकारको भी नष्ट कर डालो, और लोभसे भी अति दुःखसे भरी हुई नरक जैसी अधम गतिमें जाना पड़ेगा, यह समझकर मोक्षार्थी साधक ! हिंसक वृत्तिसे दूर रहकर शोक संताप न कर ॥१९१॥

इसी प्रकार धीर साधको ! (वाहर और भीतरके) परिग्रहको अहित-कारी जानकर उसे तुरन्त दूर कर डालो और इस संसारके (विषय वांछा रूप) प्रवाहको अहितकर जानकर इंद्रियोंको काबूमें लानेका प्रयत्न करो। इस उच्च मनुष्य जीवन जैसे उच्चजीवन पर और साधककी भूमिका जैसे ऊंचे पद पर तुम आ पहुंचे हो, तुम तो किसी भी छोटे या वड़े प्राणियोंके प्राणोंको त्रास न दो। इस प्रकार कहता हूं ॥१९२॥

॥ शीतोष्णीय अध्ययनका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तीसरा उद्देशक—सावधानता

गुरुदेव बोले—जंवू ! अवसरको पाया समझकर कोई भी त्यागी प्रमाद न करे ॥१९३॥

इसी प्रकार जैसे अपनी ओर देखता है, उसी दृष्टिसे दूसरेको देखो। इस दृष्टिको पालेने पर वह न किसीको मारता है और न किसीका दूसरेके द्वारा घात कराता है ॥१९४॥

आत्मार्थी शिष्य गुरुदेवको विनीतभावसे सम्वोधन करके पूछता है कि गुरुदेव किसी दूसरेकी या आपसकी लज्जासे दवकर या आसपासके संयोगोंके

आधीन बहुतसे साधक, वृत्तिमें पाप होने पर भी क्रियारूपमें पापकर्म करते नहीं देखे जाते, तब क्या उसे त्याग कहा जा सकता है ?

गुरुदेव बोले—प्रिय शिष्य ! वहां तो समताकी उपेक्षा है । जहां लोकैषणा है वहां समता कैसे टिक सकती है ? कारण समभाव का सम्बन्ध आत्माके साथ है । अतः सच्चा साधक समभावसे ही आत्माको प्रसन्न रखता है ॥१६५॥

इसलिए ऐसा ज्ञानवान् साधक समभाव-आत्माके समतोलनको अपना सर्वोत्कृष्ट ध्येय बनाकर कभी जरासा भी प्रमाद न करे, और आत्मरक्षक एवं सदैव धीर बनकर देहको संयम यात्राका वाहन और साधन समझकर उसका उपयोग करे ॥१६६॥

साधक अतिमोह या सामान्यतया स्वरूपोंमें विरक्त रहे ॥१६७॥

इसी रीतिसे आगति (आगमन) और गति (गमन) का स्वरूप जानकर (या संसारका रहस्य समझकर) जिन महापुरुषोंने (आत्मसमतोलसे) साधनके द्वारा राग और द्वेष दूर किया है, वे समस्त लोकमें किसीसे भी छिन्न-भिन्न या भस्म न हो सकेंगे (यह तो मात्र देहधर्म है और वह देहभावसे उत्पन्न होता है । आत्मज्ञान होने पर देहभाव जीर्ण—पुराना हो जाता है, और देहभाव नष्ट होनेपर देहधर्म अपने आप विरम जाता है । ऐसे उच्चकोटिके साधकको शस्त्र छेद भेद नहीं सकते, या आग उसे जला नहीं सकती) ॥१६८॥

इस जगतमें बहुतसे ऐसे (अज्ञानी) प्राणी भी होते हैं, जो भूत वा भविष्यकालकी घटनाओं (पहले मैं कौन था, अब क्या हूं, मेरा क्या होगा, आदि जीवनके उपयोगी विषय)को याद नहीं करते, और इस जीवात्मा पर जड़कर्मके प्रभावसे क्या क्या हुआ है, और क्या क्या होनेवाला है, इसे नहीं विचारते । फिर बहुतसे तो यह भी मानते हैं कि इस आत्माको जैसा सुख या दुःख हो गया है, वैसा ही भविष्यमें भी होगा ॥१६९॥

परन्तु तत्वज्ञ पुरुष इस तरह न कहते हैं न मानते हैं (वे तो यह कहते हैं कि कर्मकी परिणति-परिणाम विचित्र होनेसे कर्मानुसार सुखदुःख होगा ही) इसलिए पवित्र चरित्रवाले महर्षि साधकको इस तथाकथित वस्तुको यथार्थ विचारकर, कर्मबंधनोंका क्षय करना चाहिए ॥२००॥

योगी साधकके मनमें पुनः सुख क्या है ? और उदासीनता क्या है ? (इतने पर भी साधना यह कुछ सिद्धदशा नहीं है अतः) कदाचित् ऐसा प्रसंग आ जाय तो उस प्रसंगको अनासक्तभावसे वेद (सह) ले । साधक हास्य तथा कुतूहल इत्यादि को छोड़कर इन्द्रिय, मन, वाणी और कायको कछुवा जिस तरह अपने अंगोंको छुपाकर रखता है, उसी तरह सदा निग्रह कर रक्खे ॥२०१॥

जीव ! तू स्वयं ही अपना मित्र है बाहरके मित्रोंको क्यों ढूंढ़ रहा है ?

(किसलिए वाहरके मित्रकी इच्छा करता है ?) ॥२०२॥

जो साधक कर्मको दूर करनेवाला है, वही मुक्ति पानेका अधिकारी है, और जो मुक्ति पानेका अधिकारी है, वही कर्मको भगानें (निर्जरा करनें) में समर्थ है ॥२०३॥

पुरुष ! अपने आत्माको विषयमार्गमें (जड़जन्य भोगाकर्पणमें) जानेसे रोककर रख। इस प्रकार करनेसे तू दुखों (के वंधन) से छूट सकेगा ॥२०४॥

पुरुष ! तू सत्यका ही सेवन कर, क्योंकि सत्यकी आज्ञामें ही लगे हुए बुद्धिमान् साधक संसारको पार करते हैं, और धर्मको यथार्थ रीतिसे पालन करते हुए कल्याणको प्राप्त करते हैं ॥२०५॥

राग और द्वेपसे कलुषित होनेवाले वहुतसे (कहानेवाले) साधक इस क्षणभंगुर जीवनके लिए कीर्ति, मान या प्रतिष्ठा पानेके लिए पापकर्म करनेमें संलग्न रहते हैं, और वे पापकर्म द्वारा (भी) पाई हुई कीर्ति आदिसे वहुत प्रसन्न होते हैं ॥२०६॥

इसलिए साधक अपने साधना मार्गमें दुःख या प्रलोभन आ पड़ने पर व्याकुल न हो। और प्रिय जंवू ! मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं, कि समदृष्टिमंत और मोक्षार्थी साधक लोकमें रहते हुए लोक और परलोक संवंधी सव प्रपंचोंसे दूर रह सकता है। इस प्रकार कहता हूं ॥२०७॥

॥ शीतोष्णीय नामक अध्ययनका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चौथा उद्देशक—त्यागका फल

गुरुदेव बोले—अन्तेवासी जंवू ! जो साधक ऊपर वताए गए त्यागका उपासक है, वह क्रोध, मान, माया और लोभको अवश्य वम देगा, अर्थात् वह आदर्श त्याग उस साधकके कपायोंको घटाएगा ही। इस तरह (अनुभवहीन पुरुषका नहीं वल्कि) अपने पूर्वकालीन सकल कर्मोका अन्त करने वाला, कर्मके आनेके द्वार-बन्द करके कर्म वन्धनसे सर्वथा मुक्त होने वाला, और उसीसे सर्वज्ञ पदको पाने वाले सिद्ध पुरुषोंका यह साक्षात् अनुभव है ॥२०८॥

जो एकको जानता है वह सवको जानता है, और जो सवको जानता है वह एकको जानता है ॥२०९॥

प्रमादीको सब (प्रकार) से भय रहता है, अप्रमादीको कहीं या किसी ओरसे भय नहीं होता ॥२१०॥

जो एकको झुकाता है वह अनेकोंको झुका देता हैं, और जो अनेकको नमाता है वह एकको नमाता है ॥२११॥

इसीसे वीर साधक संसार सम्बन्धी दुःखोंको जानकर संसारके संयोग जोड़ने वाले तत्वों (आसक्ति आदि) को वम देता है और उन्हें वम (उगल) कर महायान-उत्कृष्ट मार्ग यानी सत्ययाम संयममार्गकी ओर जाता हुआ क्रम-पूर्वक उत्तरोत्तर आगे-आगे बढ़ता है (परम पद निर्वाणको पाता है) उसे फिर जीवित रहनेकी आकांक्षा नहीं रहती ॥२१२॥

जो एक पर विजय पाता है वह सबको खपाता है, और जो सबको खपाता है वह एक पर विजय पाता है ॥२१३॥

यदि बुद्धिमान् साधकको आज्ञामें श्रद्धा है, वह लोकका यथार्थ स्वरूप जानता है। जो संसारका यथार्थ स्वरूप जानता है उसे अन्यका, और दूसरे आदमीको उसका भय नहीं रहता ॥२१४-२१५॥

शस्त्र एक दूसरेसे चढ़ते, उतरते, तीक्ष्ण, सामान्य, तेज या नरम हो सकते हैं, परन्तु अशस्त्रमें चढ़ाव उतराव नहीं होता ॥२१६॥

जो क्रोधको छोड़ता है, वह मानको छोड़ता है, जो मानको छोड़ता है, वह मायाको छोड़ता है, जो मायाको त्याग देता है, वह लोभको छोड़ता है। जो लोभको छोड़ता है वह रागको छोड़ता है, जो रागको छोड़ता है वह द्वेषका त्याग करता है। जो द्वेषको त्यागता है वह मोहको छोड़ता है, और जो मोहको छोड़ता है वह गर्भसे छुट्टी पा जाता है। जो गर्भसे मुक्त होता है वह जन्मसे मुक्त होता है। जो जन्मसे मुक्त होता है वह मरणसे मुक्त होता है। जो मरणसे मुक्त होता है वह नरकसे मुक्त होता है। जो नरकसे मुक्त होता है वह तिर्यच गतिसे मुक्त होता है। जो तिर्यंच गतिसे मुक्त होता है वह दुःखसे मुक्त होता है ॥२१७॥

इसीलिए बुद्धिमान् साधक (आवेशका मूल जलाकर इस रीतिसे) क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष तथा मोहसे अलग होकर गर्भ, जन्म, मरण, नरक-गति और तिर्यचगतिके दुःखोंसे निवृत्त होता है। इन शस्त्रोंसे विरमा हुआ और अशस्त्र (त्याग) द्वारा आगे बढ़कर संसारको पार करता है। सर्वज्ञ पुरुषोंका यह अनुभवपूर्ण वाक्य है ॥२१८॥

इस प्रकार पहले कार्योंके मूलकारणोंको छेदकर (आगेके आने वाले कर्मो के द्वारोंको रोककर) फिर पूर्वकृत कर्मोका अन्त किया जा सकता है ॥२१९॥

पश्यक अर्थात् दृष्टाको उपाधि क्या है ? उत्तर, नहीं है और फिर नहीं है, तब उसका प्रयोग भी नहीं है। इस प्रकार कहता हूं ॥२२०॥

॥ चौथा उद्देशक समाप्त ॥

॥ शीतोष्णीय नामक तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

—०—

(४) सम्यक्त्व

पहला उद्देशक—अहिंसा

गुरुदेव बोले—जंबू ! मेरी वात सुन ! मैं कहता हूं कि जितने तीर्थंकर हो गए हैं, जो वर्तमानमें हैं और भविष्यमें होंगे, वे इसी रीतिसे वताते और वर्णन करते हैं, कि दो-इन्द्रियादि सव प्राणी, वनस्पति आदि सव भूत, पंचेंद्रियादि सव जीव तथा पृथ्वी आदि सव तत्वोंका हनन न करे, उनके ऊपर अनियमितरूप से शासन न करे। उन्हें ममत्व भावसे अपने अधिकारमें न ले, संताप न दे और न मारे॥२२१॥

यही धर्म पवित्र, सनातन और शाश्वत (नित्यवर्ती) है। इससे ही संसार के दु:खोंको जानने वाले (हितकर) तीर्थंकर भगवान्ने, सुननेको तैयार रहने वाले, या न रहले वाले गृहस्थों रागियों त्यागियों, भोगियों और योगियोंको सबको समान बताया है ॥२२२॥

यह धर्म, सत्य-निसंदेह है और मात्र जिन प्रवचनमें ही वर्णित है ॥२२३॥

अत: प्रज्ञसाधक निर्दोष धर्मका यथार्थस्वरूप जानकर श्रद्धा करनेके वाद [उसके पालनमें] आलसी न बने, और उसे समझकर ग्रहण करनेके वाद उस धर्मका प्राण जाने तक त्याग न करे ॥२२४॥

साधक आंखों दिखते रंग रागमें (न दबकर) वैराग्य धारण करे ॥२२५॥

अंधानुकरण भी न करे ॥२२६॥

जिस मोक्षार्थी साधकमें प्रवृत्ति (लौकैषणा-वहिर्मुखदृष्टि (वाहवाही प्राप्त करनेकी इच्छा) नहीं होती, उस साधकमें (एक सत्य प्रवृत्तिके सिवाय) दूसरी कोई प्रवृत्ति नहीं होती (अथवा दूसरा अर्थ यहां यह भी घट सकता है कि जिसमें पहले कही हुई हिंसकवृत्ति है, उसमें सत्यप्रवृत्ति नहीं हो सकती) ॥२२७॥

आत्मार्थी जंबू ! मैंने भगवान् द्वारा कही गई जो मूल वातें हैं, वे देखी सुनी और अनुभूत की हैं ॥२२८॥

जो संसारमें आसक्त होकर फंसे रहते हैं, वे जीव संसारमें बारम्बार परि-भ्रमण करते हैं ॥२२९॥

अत: तत्वदर्शी वीरसाधक इन प्रमादी जनोंको धर्मसे विमुख जानकर दिनरात उद्यमी होकर साधनामार्गमें सावधान बनकर रहता है। इस प्रकार कहता हूं ॥२३०॥

॥ सम्यक्त्व अध्ययनका पहला उद्देशक समाप्त ॥

दूसरा उद्देशक—अहिंसा और धर्म

जो आस्रव (कर्मबंधन)के हेतु हैं वे संवर (कर्म रोकने)के हेतु भी हो सकते हैं, और जो कर्मक्षय करने के हेतु हैं वे कर्मबांधने के हेतुरूप भी हो जाते हैं ॥२३१॥

अथवा जितने कर्मक्षीण करनेके हेतु हैं, उतने ही कर्मबांधने के हेतु भी हैं; और जितने कर्मबांधने के हेतु हैं, उतने ही कर्मक्षयके हेतु भी हैं ॥२३२॥

इन पदों (उपरोक्त रहस्यों) को संपूर्ण रीतिसे समझने वाले तीर्थंकर देवोंके वचनके अनुसार इस संसारके जीवोंको इस रीतिसे कर्मों द्वारा बंधते हुए देखकर कौन साधक सदुद्यमी न होगा ? ॥२३३॥

प्रिय जंबू ! ज्ञानी भगवान् संसारमें रहते हुए सरलबोधी (मुमुक्षु, सुपात्र, भूमिका-योग्य) और बुद्धिमान् पुरुषोंको ऐसी रीति से धर्म कहते हैं, जिससे वे क्लेश, शोक और परिताप के स्थानमें तथा क्रोधादि–विषयादि या निन्दादि दुष्टदोषोंके वातावरणमें होनेपर भी धर्माचरण कर सकें। जंबू ! यह अनुभव से प्राप्त सत्य है ॥२३४॥

कितना आश्चर्य ! जो ये सब जीव मौतके मुंहमें आ पड़े हैं। ऐसे प्राणी के लिए मृत्यु न आवे ऐसा निश्चय तो कुछ नहीं है, फिर भी आशामें बहते हुए उलटे स्थान वाले प्राणी कालके मुंहमें पड़े पड़े भी 'मानों कभी मरना ही न होगा' इस प्रकार पापक्रियामें मस्त–सराबोर रहा करते हैं [कर्मबंधनों से] विचित्र जन्म परम्परा बढ़ाते हैं। और फिर उसी आशाके जालमें फंसे पड़े रहते हैं ॥२३५॥

इस संसार में ऐसे भी बहुतसे भारीकर्मी [मोहमूढ़] होते हैं, जिन्हें नरकादि दुःख भोगने का मानों नाद ही नहीं लगा है। इस प्रकार वे घोर पापकर्म करके फिर दूसरी बार ऐसे स्थानोंमें उत्पन्न होकर इस प्रकारके दुःख सहा करते हैं ॥२३६॥

अतिक्रूर कर्म करने से जीव अतिभयंकर दुःखवाले स्थानमें उत्पन्न होता है। और जो जीव अतिक्रूरकर्म नहीं करते, वे वैसे दुःखी स्थानमें उत्पन्न नहीं होते ॥२३७॥

इस प्रकार जो सत्य श्रुतकेवली पुरुष कहते हैं, वही सत्य केवलज्ञानी पुरुष कहते हैं, और जो सत्य केवलज्ञानी पुरुष कहते हैं, वही सत्य श्रुतकेवली पुरुष भी (इस संसारके जीवोंको सद्बोध देनेकेलिए) कहते हैं ॥२३८॥

इस जगतमें कोई श्रमण तथा ब्राह्मण सत्य और सनातनधर्मसे विरुद्ध प्रलाप करते हैं, जैसे कि "हमने देखा है, हमने सुना है, निश्चित किया है, तथा प्रत्येक दिशासे ठीक तरह निर्णय किया है कि (धर्म के निमित्त) प्राण, भूत,

जीव, या सत्व इन चार प्रकार के किसी भी जीव को, मारने, दवाने, पकड़ने, दुःखी करने या प्राणहीन कर डालनेमें कोई दोष नहीं होता।" सचमुच ऐसा मिथ्याप्रलाप करना उन अनार्योका ही वचन है ॥२३९॥

जो आर्यसाधक होते हैं, वह तो यह कांड देखकर ऐसे मौके पर यही कहते हैं, कि ओ दयापात्रो ! तुम्हारा वह देखना, सुनना, मानना, निश्चित जानना, तथा सब दृष्टिकोणों से कसौटी पर कसना सब दुष्ट (असत्य अनर्थ-कारी)है, कारण तुम यह कहते हो कि "जीवोंको मारनेमें कुछ दोष नहीं" परन्तु यह तुम्हारा कहना अनार्य लोगोंका अनुसरण करनेके समान ही है ॥२४०॥

और हम तो कहते हैं, बोलते हैं, और वर्णन भी करते हैं,कि–किसी प्राणी को किसी भी प्रयोजन से न मारना, न दुःख देना, न संताप देना–पीड़ित करना या प्राणरहित नहीं करना, और इस (अहिंसक) रीतिसे वर्तावमें दोष नहीं है। यह वचन आर्यपुरुषोंका है ॥२४१॥

प्रत्येक मतावलंबीके धर्मशास्त्रोंमें क्या क्या कहा गया है, इसे ठीक तरह इसप्रकार प्रत्येक मतके अनुयायियोंसे प्रश्न किया जाता है कि (शास्त्रवादके वहाने झूठे झगड़े खड़े करके किसलिए इसमतके संस्थापकोंके रूपमें अन्याय करते हो ?)ओ परवादियो ! अच्छा बताओ, तुमको सुख बुरा लगता है या दुःख ? यदि तुम्हें दुःख अप्रिय है, तो तुम्हारे जैसी चेतनावाले सब प्राणियोंको भी दुःख ही महाभयंकर और अनिष्ट लगता है। यह सिद्ध होता है, इसलिए आप उसी प्रकारका वर्ताव करो। इस प्रकार कहता हूं ॥२४२॥

॥ सम्यक्त्व अध्ययनका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तीसरा उद्देशक—तपश्चरण

गुरुदेव बोले—साधक ! धर्मभ्रष्ट, अधर्मप्रचारक या सद्धर्मके विरोधक वर्ताव की ओर तू विल्कुल ध्यान न दे। जो अधार्मिकोंकी ओर उपेक्षाबुद्धि रखते हैं (और शांतिपूर्वक अपने साधनमार्गमें लगे रहते हैं) वे ही सच्चे आदर्श विद्वान् हैं ॥२४३॥

साधक ! तू ठीक विचार कर कि जो पापकर्मको दुःखका कारण जानकर उन असदाचरणोंका त्याग करनेकेलिए, शरीरशुश्रूषाकी कुछ भी पर्वाह किये विना, धर्मके ज्ञाता और अन्तःकरणके शुद्ध तथा सरल होकर कर्मवन्धके तोड़ने का प्रयत्न करते हैं। सचमुच वे ही उत्तम विद्वान् हैं, इस प्रकार प्रत्येक तत्वदर्शी ने कहा है ॥२४४॥

ये तत्वदर्शी पुरुष दुःखनाशके उपायको तथा मूलकर्म के स्वरूपको जानने में कुशल, शारीरिक और मानसिक दुःखके प्रवल चिकित्सक और यथार्थ रीतिसे मितभाषी होते हैं। तथा वे रूपपरिज्ञा (विवेकबुद्धि)से पदार्थके स्वरूपको जानकर (सच्चा मार्ग ग्रहण करके) खोटे का त्याग करने वाले होते हैं ।।२४५।।

अतः इस जगतमें सत्पुरुषोंकी आज्ञा पालन करनेका इच्छुक पंडित साधक अनासक्त होकर (इच्छा का निरोध करके)अपनी आत्माको यथार्थ (ज्ञानपूर्वक) जानकर तपश्चरण द्वारा शरीरको साधनाके क्षेत्रमें स्थापन करे ।।२४६।।

इसलिए साधको ! अपनी दुष्ट मनोवृत्तिका (तप द्वारा)कृश करो, जीर्ण करो ।।२४७।।

कारण जिस प्रकार हरी लकड़ियों की अपेक्षा सूखी लकड़ियां और सूखी लकड़ियों की वनिस्वत पुरानी लकड़ियों को आग शीघ्र जला देती है। इसी तरह जो आसक्तिरहित और आत्मनिष्ठ साधक होगा, उसके कर्म शीघ्र जल जायंगे ।।२४८।।

परन्तु साधक ! मनुष्यभव की आयु (इस साधनाकाल का समय) बहुत कम है। और कितनी है ? इसका विश्वास भी नहीं किया जा सकता। अतः धैर्यका सेवन करते हुए सबसे पहले क्रोध को [अपनी आत्मा से] दूर कर ।।२४९।।

आत्मार्थी, जंबू बोले, भगवन् ! क्रोधादि दोष कैसे दूर हो सकते हैं ? इसके उत्तरमें गुरुदेव कहते हैं कि साधक ! इस जगतके जीव क्रोधादिसे कैसे दुःख भोगते हैं, उसके कटु विपाकको कैसे भोगेंगे इसका स्वरूप समझकर अपनी समझकी कसौटी कर ।।२५०।।

फिर जो आदमी कषायोंको उपशमाकर पापकर्मसे निवृत्त हो गए हैं, वे कैसे वासना-रहित (शान्त) और परमसुख में निमग्न रहते हैं, उनका भी अनुभव करो ।।२५१।।

ऊपरके दोनों पहलुओंको देखकर बुद्धिमान् और तत्वदर्शी साधक कदापि प्रवल निमित्त मिलने पर भी किसी पर क्रोध नहीं करता। इस प्रकार कहता हूं ।।२५२।।

।। सम्यक्त्व अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

———

चौथा उद्देशक—तपश्चर्या का विवेक

साधकवृत्तिके पूर्वाध्यास (कर्मसंगको लेकर वहुतकालसे आत्मामें रही हुई जड़भावजन्य ममता) के प्रभावसे निवृत्त होकर और मानसिक शांति पाकर फिर ही क्रमपूर्वक पहले कुछ कम और फिर कुछ विशेप, इसक्रमसे तपश्चरणकी वृद्धि करते हुए दमन करे ।।२५३।।

और इसीलिए वीरसाधकको निश्चल और शांत मनसे (जीवनके अन्त तक) अपने स्वरूपमें प्रेम धारण करके आत्मलीनताकी शिक्षा पाकर समिति तथा ज्ञानादि हितकारक सद्‌गुणोंको साथ रखकर सदैव यत्नपूर्वक स्थिरतासे सद्वर्तनमें रहे ।।२५४।।

इसलिए भगवान् कहते हैं कि :—मोक्षार्थी और वीर साधकोंके लिए भी यह मार्ग वहुत विकट (कठिन) है ।।२५५।।

साधको ! अपने शरीरमें मांस और रक्तको इस तरह न वढ़ाओ, कि अहंकार और कामवासनाको उत्तेजना मिले, वल्कि तत्पश्चर्या द्वारा देहदमन करो । जो ब्रह्मचर्य आत्मस्वरूपका लक्ष्य अथवा काम-परित्याग) में रहकर शरीर का तपसे दमन करते हैं, वे ही वीर पुरुष मुक्ति पानेके अधिकारी होनेसे माननीय गिने जाते हैं ।।२५६।।

जंवू ! वहुतसे साधक पहले तो नेत्रादि इंद्रियोंको (शब्दादि विषयों पर जाते हुए) रोककर साधनामार्गमें जुड़ते हैं, परन्तु (वासना पर कावू करनेका प्रयत्न चालू रखनेसे) पीछेसे मोहवश होकर विपयोंकी ओर आसक्त हो जाते हैं। ऐसे वालजीव किसी भी वंधनसे या प्रपंचसे छूट नहीं सकते । और ऐसे अज्ञानी जीव मोहरूपी अंधकारको लेकर तीर्थंकरदेवकी आज्ञा-सद्धर्म की आराधना भी नहीं कर सकते ।।२५७।।

जिसने पूर्वजन्ममें धर्मसाधना नहीं की, और भविष्यमें धर्मसाधना प्राप्त करनेकी योग्यता प्राप्त न की, वह वर्तमानकालमें धर्मसाधना करनेके योग्य किस तरह हो सकता है ? ।।२५८।।

प्रिय जंवू ! इस ओर दृष्टि डाल :—पापवृत्ति द्वारा इस जीवात्माको वध, वंधन आदि भयंकर दुःख और असह्य वेदना भोगनी पड़ती है, यह समझकर जो परमार्थी और ज्ञानी पुरुष ऐसी वृत्तिसे दूर रहनेके लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उनका व्यवहार कितना सच्चा, सुन्दर और प्रशंसनीय है ।।२५९।।

अतः साधको ! तुम भी वाहरके प्रतिबंधोंको काटकर पापकर्मोंसे दूर होकर मोक्ष (कर्मवन्धनसे मुक्त होने) की ओर लक्ष्य रखकर साधनामें आगे वढ़ो ।।२६०।।

किये हुए कर्मोका फल अवश्य ही मिलता है। यह जानकर तत्वज्ञ साधक कर्मबन्धनके हेतुओंसे सदैव दूर रहे ॥२६१॥

जो साधक सचमुच वीरभावसे सद्वृत्तिमें लगनेवाला, ज्ञानादि गुणोंमें रमण करनेवाला, सदैव स्वभाव-भावमें उद्यमशील, कल्याणकी ओर ध्यान देनेवाला, पापसे परिनिवृत्त और लोकको यथार्थ सत्यसे देखनेवाला है वह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर आदि सब दिशाओंमें रहकर सत्यसे ही चिपटा रहा है ॥२६२॥ इस प्रकार कहता हूं ॥२६३॥

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

॥ सम्यक्त्व नामक चौथा अध्ययन सम्पूर्ण ॥
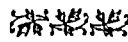
(५) लोकसार

पहला उद्देशक—चरित्र प्रतिपादन

उपर्युक्त गुणोंवाले सत्पुरुषोंका अभिप्राय मैं सबको बताता हूं कि "तत्व-दर्शी पुरुषको उपाधियां नहीं रहती।"

जो कोई इस जगतमें सप्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन जीवोंकी हिंसा करते हैं, वे फिर उन ही जीवोंकी गतियोंमें जाकर उत्पन्न होते हैं। ऐसे अतत्वदर्शी जीवोंको विषयजन्य सुखोंसे छुड़ाना अत्यन्त कठिन है। ऐसे जीव कर्मबंधनको लेकर जन्ममरणकी परम्परासे नहीं छूट सकते। और मोक्षमार्गसे अथवा सत्य-सुखसे भी अलग हो जाते हैं। और कई बार ऐसा भी बनता है, कि विषय सुखको वे भोग तो नहीं सकते, परन्तु चित्तका वेग विषयोंकी ओर होनेसे वे विषयों से दूर भी नहीं रह सकते ॥२६४॥

तत्वदर्शी स्पष्ट देख सकता है, कि जैसे कुशाकी नोकपर रहे हुए जलबिंदु को पानीके दूसरे बिंदु पड़नेसे अथवा हवासे कंपित होनेसे शीघ्र नीचे पड़ना आसान है, इसी प्रकार अज्ञानी जीवोंका आयुष्य अस्थिर है ॥२६५॥

इस पर भी अज्ञानी जन क्रूरकर्म करते समय क्षोभ नहीं कर पाता, परन्तु जब उसका दुःखद परिणाम भोगना पड़ता है, तब वह मूढ़ हो जाया करता है, और खूब खेद करता है, बल्कि मोहांधकारके कारण उसे सन्मार्ग ही नहीं सूझता। और फिर मोहके प्राबल्यसे वह गर्भ और मरणादि दुःखके कुचक्रमें बारंबार फिरा करता है ॥२६६॥

जो संशयको जानता है, वह संसारको भी जानता है, और जिसने संशय को नहीं जाना वह संसारको भी नहीं जान सका है ॥२६७॥

जो निपुण साधक संसारके स्वरूपका जानकार है, वह कभी संसारके चक्करमें नहीं फंसता ॥२६८॥

वासनाका सूक्ष्म प्रभाव जीवों पर दृढ़रूपसे होता है, इससे कदाचित् वासनामय विकल्प आवें, कि वा अनजानपनमें बन्धनका कार्य हो जाय, तो उस भूलको उसी समय सुधार ले, परन्तु उसे छुपानेका प्रयत्न न करे। कारण ऐसा करनेसे उसे दुगुना पाप लगता है ॥२६९॥

इसलिए वासनाको रोकनेके लिए साधक कामभोगोंके प्रलोभनोंको पाकर भी उनके परिणामको खूब विचारकर उनके परिचय (सहवास) से दूर रहे, और चित्तको भी उनसे अलग रक्खे [बुरे संकल्पोंको उत्पन्न तक न होने दे] ॥२७०॥

देखो :—बहुतसे जीव बेचारे विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होकर अधमगतियों में बहे जाते हैं। और इस संसारमें यदि कोई आरंभसे जीवित रहने वाले हैं, वे सब बारम्बार मोहजालमें फंस जाते हैं ॥२७१॥

फिर बहुतसे साधु वेशधारण करने वाले होते हुए भी आसक्तिके वशसे बाहरसे पापकर्मोंकी निवृत्ति करके परिणाममें दुःखी होते हैं ॥२७२॥

इसमें से बहुतसे त्यागी तो भूल जानते हुए उसे सुधारने के बदले दूसरा ही मार्ग पसन्द करते हैं। वे स्वच्छन्दाचारी होकर एकचर्या करते हैं। उनकी एकचर्या स्वच्छन्दतासे पैदा होती है। उसके गुण ही उसकी प्रतीति करा देते हैं। वे बहुक्रोधी, अतिदंभी, अतिठग, अतिदुष्टवासनावाले, हिंसक और कुकर्मी होते हुए "मैं तो धर्मके लिए विशेष उद्यमवान् हो गया हूं" इस तरहकी बकवास करते हैं, परन्तु असलमें "शायद कोई मुझे जान न जाय" ऐसे भयसे वे अकेले होकर फिरते हैं, और अज्ञान तथा प्रमाद दोनों दोषोंसे निरंतर मूढ़ बनकर वास्तविक धर्मको नहीं समझ सकते ॥२७३॥ इस प्रकार कहता हूं ॥२७४॥

॥ लोकसार नामक अध्ययनका पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

दूसरा उद्देशक—चरित्र विकासके उपाय

ओ मनुष्यो ! जो स्वयं पापके अनुष्ठानसे अलग नहीं और स्वयं अज्ञानी होते हुए मोक्ष जैसी मनमानी डींग हांका करते हैं, ऐसे दुःखी जीव बेचारे कर्ममें ही कुशल होते हैं न कि धर्ममें। ऐसे जीव संसारके चक्रमें घूमने रहनेके अधिकारी हैं।

इस विश्वमें जो साधक पापवृत्तिसे निवृत्त हैं, वे साधक अपने शरीरादिका निर्वाह भी अनारंभीपन (निर्दोष रीति) से चला सकते हैं ॥२७५॥

साधक ! तू दूषित प्रवृत्तिसे दूर रहकर पूर्ववत् दोषोंको साधन द्वारा दूर किया कर "अब ही यह अवसर है" यह विचार कर पवित्र संयमकी ओर दृष्टि रख। यह शरीर, साधक जीवन और साधनाके इन अनुकूल साधनोंका समय वार वार नहीं आता। इसलिए इनका पुनः पुनः शोधन कर ॥२७६॥

तीर्थंकरदेवने यह मार्ग वताया है (और यह भी समझाया है) कि सब जीवोंको अलग अलग सुख दुःख होता है। यह जानकर आत्माभिमुख होनेके लिए संयमी साधकको साधनाके मार्गमें जरा भी प्रमाद न करना चाहिए ॥२७७॥

जैसे इस विश्वमें जीवोंके आशय अलग अलग हैं, इसी तरह उनके सुख दुःख भी अलग अलग हैं, इसलिए किसी भी हिंसा या मृषाभाषण जैसे दूषणको न छूकर, संयममार्गमें उपस्थित होकर कठिन से कठिन संकटोंको भी समभावसे सहन करे, और इस ढंगका वर्ताव करने वाला मुनि ही उत्तम प्रकारका चरित्र-शील मुनि समझा जाता है ॥२७८॥

जो साधक वर्तमानमें स्वयं पापमें प्रवृत्त नहीं होता फिर भी कदाचित् पूर्वकर्मके फलस्वरूप उसे विविधप्रकारकी उपाधियां आने लगें तो उस समय होने वाले दुःखको समभावपूर्वक सहन करना चाहिए। इस प्रकार वीर-तीर्थंकर देवने कहा है ॥२७९॥

यह शरीर देर सवेर अवश्य छूटने या टूटने वाला है, क्योंकि यह अध्रुव (अनियमित), अनित्य, क्षणभंगुर, घटने बढ़नेके स्वभाव वाला और नाशवान् है। इसलिए साधको ! इस देहस्वरूपको और इस दुर्लभ अवसरको वारवार सोचो, विचारो ॥२८०॥

जो साधक उपरोक्त कथनानुसार शरीरका स्वरूप तथा अवसर विचार कर ऐसे चेतनका ज्ञान, विज्ञान, सुख, आनन्द आदि गुणमें रमण करता है, वही अनासक्त भावका स्वामी साधक अनंत संसारमें परिभ्रमण नहीं करता ॥२८१॥

इस दुनियामें साधुवेश धारण करके भी वहुतसे साधक थोड़ा वहुत, छोटा मोटा, सचित्त या अचित्त परिग्रह रखते हैं। वे साधु होते हुए भी परिग्रही गृहस्थोंके समान अथवा उनसे भी हीन हैं ॥२८२॥

वहुतसे जीवोंके लिए वह परिग्रह ही अधमगतिमें दुःखरूप महाभयका कारण वनता है। अथवा संसार की (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संवंधी) संज्ञावृत्ति भी वैसी ही भयजनक होती है, यह सोचकर ऐसी वृत्तिसे जिज्ञासु साधक दूर रहता है ॥२८३॥

इस प्रकार आसक्तिसे रहित त्यागी पुरुष सच्चा साधक है। यह निश्चय-रूपसे जानकर हे साधको ! तुम दिव्यदृष्टिवाले वनो और इस वीरके मार्ग में

सच्चा अभिनिष्क्रमण करे; क्योंकि अपरिग्रही और दिव्यदृष्टिवाले साधकोंको ही ब्रह्म, अर्थात् आत्मप्राप्ति हो सकती है ।।२८४।।

जंबू ! मैंने सुना भी है और अनुभव भी किया है, कि "कर्मनिर्जरामे मुक्ति पाना" यह कार्य स्वयं आत्मा द्वारा ही होता है ।।२८५।।

इसलिए साधक परिग्रहसे सतत मुक्त होकर साधनाके मार्गमें जो संकट आ जाय उसे समभावसे सहन करे ।।२८६।।

जो साधक प्रमाद सेवन करते हैं वे धर्मसे पराङ्मुख हो गए हैं यह जान कर विशेषज्ञ साधक अप्रमत्त होकर विचरे ।।२८७।। इसप्रकार कहता हूं ।।२८८।।

।। लोकसार अध्ययनका दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

—०—

तीसरा उद्देशक—वस्तु-विवेक

जो कोई गृहस्थ या भिक्षु इस जगत्में निष्परिग्रही होता है, वह सब तीर्थंकरदेवोंकी वाणी सुनकर अथवा महापुरुष या ज्ञानी पुरुषके वचनोंपर विचार करते हुए, विवेकी बनकर सब प्रकारसे परिग्रह का त्याग करके ही निष्परिग्रही होता है ।।२८९।।

प्रिय जंबू ! तीर्थंकरदेवने समतासे (समतामें) धर्म बताया है। उन्होंने कहा है कि साधको ! जिस रीतिसे मैंने यहां कर्म क्षीण किये हैं, उसी रीतिसे दूसरे मार्गोमें कर्म खपाना असंभव है।

इसीलिए कहता हूं कि मेरा दृष्टान्त लेकर और मुमुक्षुओंको भी अपना वीर्य (शक्ति) न छुपाना चाहिए ।।२९०।।

(१) बहुतसे साधक पहले (सिंहके समान) त्याग ग्रहण करते हैं, और फिर पतित नहीं होते। (२) बहुतसे पहले तो (वैराग्यपूर्वक) त्यागमार्ग ग्रहण करते हैं, परन्तु फिर पीछेसे पतित हो जाते हैं। कई आदमी पहले त्यागमार्ग में नहीं जाते और पतित भी नहीं होते। जो समग्रलोकका स्वरूप जानकर तदनुसार व्यवहार में लाते हैं वे भी वैसे ही ज्ञातव्य हैं (अर्थात् ऊपरके तीसरे वर्गके समान निरासक्त हैं)। यह सब भगवान् वीर प्रभुने अपने अनन्त अनुभव से कहा है ।।२९१।।

तीर्थंकरदेवकी आज्ञा पालन करनेकी चाह रखनेवाला और आसक्तिरहित विवेकी साधक रातके अन्तिम पहरमें उपयोग (मन, वाणी और कायाकी एकवाक्यता) पूर्वक सदैव शील को (कर्मबंधनसे छूटनेके कारणरूप चरित्र) को विचारकर उसे यथार्थ रीतिसे (अपने जीवनकी पड़ताल करता हुआ) पालन करे ।।२९२।।

सदाचार का पालन न करनेवालों की दुर्दशा सुनकर प्रज्ञसाधक वासना और लालसा रहित रहता है ॥२९३॥

साधक! इन भीतर के शत्रुओं से युद्ध कर। दूसरे बाहरके युद्ध से क्या मिलना जाना है? आत्मयुद्ध करने योग्य जो सामग्री इस समय मिली है उसका फिर मिलना बहुत ही कठिन है ॥२९४॥

तीर्थंकर देवने विचित्र अध्यवसायोंकी जिस रीतिसे समझने की तालिका दी है, उसे उसी ढंगसे स्वीकार कर, कारण बहुतसे बालसाधक धर्मको पाकर भी भ्रष्ट हो जाते हैं और भ्रष्ट होकर गर्भादिके दुःख पाते हैं ॥२९५॥

जिन शासनमें ही ऐसा कहा है, कि जो रूपादिक विषयों में आसक्त होता है, वह (पहले या पीछे अवश्य) हिंसामें प्रवृत्त होता है ॥२९६॥

मुनि साधक तो सचमुच उसे ही समझा जाय कि जो लोगों को मोक्षके मार्ग से उलटी प्रवृत्ति करते देखकर, उनकी दुःखित दशा पर विचार करके, मात्र मोक्षमार्ग की ओर ही लक्ष्य रखकर प्रसन्नतापूर्वक मार्ग (निर्वृत्ति) मार्जन करता चला जाता है ॥२९७॥

ऐसे साधक इस प्रमाणसे कर्मके स्वरूपको जानकर "प्रत्येक जीवका सुख और दुःख अलग २ विचारकर किसी भी जीवको कष्ट न देते हुए संयममार्गमें लगकर बुड़बुड़ाहट तक भी नहीं करते वे दुर्ध्यानसे दूर रहते हैं ॥२९८॥

प्रज्ञसाधक ऐहिक कीर्ति के लिए यशका अभिलाषी होकर सर्वलोकमें किसी भी प्रकारकी पापवृत्ति का सेवन नहीं करता, और (दूसरा मार्ग न पकड़ते हुए केवल) मोक्षकी ओर दृष्टि रखकर स्त्री आदिसे विरक्त रहकर आरंभसे भी उदासीन रहे ॥२९९॥

इसलिए ऐसे संयमी साधकों को सब तरहसे उत्तम और पवित्र बोध मिलने पर न करने योग्य पापकर्म की ओर कभी भी दृष्टि न रखनी चाहिए ॥३००॥

जो सम्यक्त्व है वही मुनित्व (चरित्र) है और जो मुनित्व है वही सम्यक्त्व है ॥३०१॥

धैर्यहीन निर्बल मनवाले, विपयासक्त, मायावी, प्रमादी और घरका ममत्व रखनेवाले साधकोंसे इस सम्यक्त्व या साधुत्व को धारण नहीं किया जा सकता ॥३०२॥

जंबू! मुनिसाधक ही सच्चा साधुत्व धारण करके शरीरको कसते-निर्विकार रखते हैं। और ऐसे सत्यदर्शी वीरसाधक रूखा और हल्का भोजन करते हैं [खाने पीनेमें खूब संयमका खयाल रखते हैं]। इस तरह पापवृत्तिसे पर [अलग] रहने वाले मुनिजन ही संसारके तारक, तैरकर स्वयं पार पाए हुए तथा आसक्ति से सर्वथा मुक्त होनेसे महापुरुषोंने उन्हें मुक्त [जीवनमुक्त] के रूपमें वर्णित किया है। इस प्रकार कहता हूं ॥३०३॥

॥ लोकसार अध्ययनका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चौथा उद्देशक—स्वातन्त्र्य-मीमांसा

गुरुदेव बोले—(ज्ञान और आयु दोनों से) अपरिपक्व मुनि साधक अकेला होकर गांव गांव में घूमता है, तो उसका फिरना तथा जाना (आगे बढ़ना) दुःशक्य बन जाता है ॥३०४॥

बहुत से साधक केवल वचन द्वारा ज्ञानी जनकी शिक्षा मिलते ही आवेश के आधीन होकर अप्रसन्न हो जाते हैं, और वे विवेकशून्य उच्छृंखल बनकर साधक संघसे अलग हो जाते हैं। ऐसे अनजान और अतत्वदर्शी साधकोंको बादमें पेश आने वाली अनेक कठिनाइयोंका जिनका उसे पहले खयाल भी न था उल्लंघन करना कठिन हो जाता है। इसलिए हे ज्ञानाभ्यासी साधक! तुम्हारे लिए इस प्रकार बाधा न होने पावे, इसी कारण श्री वीरजिनेश्वरोंका यह अभिप्राय है ॥३०५॥

इसलिए साधक सदैव सद्गुरुओं द्वारा बताई हुई दृष्टिसे देखनेमें सद्-गुरुद्वारा कही हुई अनासक्ति पालन करनेमें, सद्गुरुका पुरुषकार स्वीकार करने में, सद्गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखनेमें उपयोग पूर्वक विचरे, सद्गुरुदेवके अभिप्रायका अनुसरण करके विवेकपूर्वक भूमंडलमें विचरना ही नहीं बल्कि जाते, आते, उठते, बैठते, मुड़ते तथा प्रमार्जन आदि करते हुए प्रत्येक क्रियामें सार संभालके साथ सदैव सद्गुरुकी आज्ञापूर्वक ही विचरे ॥३०६॥

सद्गुणी मुनिसाधक, सबक्रियाओंमें उपयोगपूर्वक बर्ताव करता है। इस पर भी कदाचित् शरीरसंस्पर्श (अपनी क्रिया) द्वारा किसी जीवको तकलीफ हो तो उसपापका उसी भवमें क्षय हो सके, ऐसी समदृष्टिके प्रयोगमें थोड़ासा पाप लगता है और कभी भी किसी को महाकारण वशात् जान बूझकर पाप करना पड़े, तो उसके कर्म आचार्यदेवके पास यथोचित प्रायश्चित लेनेसे क्षय होते हैं। पर यह प्रायश्चित उपयोगपूर्वक आचरणमें लाना चाहिए। यह आगम के जानकार महापुरुषोंका उत्कृष्ट कथन है ॥३०७॥

दीर्घदर्शी, बहुज्ञानी, क्षमावान् पवित्रवृत्तिवाले, सद्गुणी और सदा यत्न-वान् साधक स्त्री आदि मोहक पदार्थोंको देखकर यह विचार करे, कि यह वस्तु मेरा क्या कल्याण करेगी? इस संसार में स्त्रियोंका मोह ही चित्तको अतिशय उलझनोंमें डाल देता है। ऐसी हितशिक्षाएं बार बार श्रमण भगवान् महावीरने दी हैं, उनका रातके तीन बजे बाद चिंतन करे ॥३०८॥

(प्रयत्न करते हुए भी यदि वासना के पूर्वसंस्कारोंके वश होकर) मुनि-साधक विषयोंसे पीड़ित हो जाय तो वह इंद्रियोंके उत्तेजित होनेपर उन्हें रोकते

सदाचार का पालन न करनेवालों की दुर्दशा सुनकर प्रज्ञसाधक वासना और लालसा रहित रहता है ॥२९३॥

साधक! इन भीतर के शत्रुओं से युद्ध कर। दूसरे वाहरके युद्ध से क्या मिलना जाना है? आत्मयुद्ध करने योग्य जो सामग्री इस समय मिली है उसका फिर मिलना वहुत ही कठिन है ॥२९४॥

तीर्थंकर देवने विचित्र अध्यवसायोंकी जिस रीतिसे समझने की तालिका दी है, उसे उसी ढंगसे स्वीकार कर, कारण वहुतसे वालसाधक धर्मको पाकर भी भ्रष्ट हो जाते हैं और भ्रष्ट होकर गर्भादिके दुःख पाते हैं ॥२९५॥

जिन शासनमें ही ऐसा कहा है, कि जो रूपादिक विषयों में आसक्त होता है, वह (पहले या पीछे अवश्य) हिंसामें प्रवृत्त होता है ॥२९६॥

मुनि साधक तो सचमुच उसे ही समझा जाय कि जो लोगों को मोक्षके मार्ग से उलटी प्रवृति करते देखकर, उनकी दुःखित दशा पर विचार करके, मात्र मोक्षमार्ग की ओर ही लक्ष्य रखकर प्रसन्नतापूर्वक मार्ग (निर्वृत्ति) मार्जन करता चला जाता है ॥२९७॥

ऐसे साधक इस प्रमाणसे कर्मके स्वरूपको जानकर "प्रत्येक जीवका सुख और दुःख अलग २ विचारकर किसी भी जीवको कष्ट न देते हुए संयममार्गमें लगकर बुड़बुड़ाहट तक भी नहीं करते वे दुर्ध्यानसे दूर रहते हैं ॥२९८॥

प्रज्ञसाधक ऐहिक कीर्ति के लिए यशका अभिलाषी होकर सर्वलोकमें किसी भी प्रकारकी पापवृत्ति का सेवन नहीं करता, और (दूसरा मार्ग न पकड़ते हुए केवल) मोक्षकी ओर दृष्टि रखकर स्त्री आदिसे विरक्त रहकर आरंभसे भी उदासीन रहे ॥२९९॥

इसलिए ऐसे संयमी साधकों को सब तरहसे उत्तम और पवित्र बोध मिलने पर न करने योग्य पापकर्म की ओर कभी भी दृष्टि न रखनी चाहिए ॥३००॥

जो सम्यक्त्व है वही मुनित्व (चरित्र) है और जो मुनित्व है वही सम्यक्त्व है ॥३०१॥

धैर्यहीन निर्वल मनवाले, विषयासक्त, मायावी, प्रमादी और घरका ममत्व रखनेवाले साधकोंसे इस सम्यक्त्व या साधुत्व को धारण नहीं किया जा सकता ॥३०२॥

जंबू! मुनिसाधक ही सच्चा साधुत्व धारण करके शरीरको कसते-निर्विकार रखते हैं। और ऐसे सत्यदर्शी वीरसाधक रूखा और हल्का भोजन करते हैं [खाने पीनेमें खूब संयमका खयाल रखते हैं]। इस तरह पापवृत्तिसे पर [अलग] रहने वाले मुनिजन ही संसारके तारक, तैरकर स्वयं पार पाए हुए तथा आसक्ति से सर्वथा मुक्त होनेसे महापुरुषोंने उन्हें मुक्त [जीवनमुक्त] के रूपमें वर्णित किया है। इस प्रकार कहता हूं ॥३०३॥

॥ लोकसार अध्ययनका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चौथा उद्देशक—स्वातन्त्र्य-मीमांसा

गुरुदेव बोले—(ज्ञान और आयु दोनों से) अपरिपक्व मुनि साधक अकेला होकर गांव गांव में घूमता है, तो उसका फिरना तथा जाना (आगे बढ़ना) दु:शक्य बन जाता है ॥३०४॥

बहुत से साधक केवल वचन द्वारा ज्ञानी जनकी शिक्षा मिलते ही आवेग के आधीन होकर अप्रसन्न हो जाते हैं, और वे विवेकशून्य उच्छृंखल बनकर साधक संघसे अलग हो जाते हैं। ऐसे अनजान और अतत्वदर्शी साधकोंको बादमें पेश आने वाली अनेक कठिनाइयोंका जिनका उसे पहले खयाल भी न था उल्लंघन करना कठिन हो जाता है। इसलिए हे ज्ञानाभ्यासी साधक! तुम्हारे लिए इस प्रकार बाधा न होने पावे, इसी कारण श्री वीरजिनेश्वरोंका यह अभिप्राय है ॥३०५॥

इसलिए साधक सदैव सद्गुरुओं द्वारा बताई हुई दृष्टिसे देखनेमें सद्-गुरुद्वारा कही हुई अनासक्ति पालन करनेमें, सद्गुरुका पुरुषकार स्वीकार करने में, सद्गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखनेमें उपयोग पूर्वक विचरे, सद्गुरुदेवके अभिप्रायका अनुसरण करके विवेकपूर्वक भूमंडलमें विचरना ही नहीं बल्कि जाते, आते, उठते, बैठते, मुड़ते तथा प्रमार्जन आदि करते हुए प्रत्येक क्रियामें सार संभालके साथ सदैव सद्गुरुकी आज्ञापूर्वक ही विचरे ॥३०६॥

सद्गुणी मुनिसाधक, सबक्रियाओंमें उपयोगपूर्वक बर्ताव करता है। इस पर भी कदाचित् शरीरसंस्पर्श (अपनी क्रिया) द्वारा किसी जीवको तकलीफ़ हो तो उसपापका उसी भवमें क्षय हो सके, ऐसी समदृष्टिके प्रयोगमें थोड़ासा पाप लगता है और कभी भी किसी को महाकारण वशात् जान बूझकर पाप करना पड़े, तो उसके कर्म आचार्यदेवके पास यथोचित प्रायश्चित लेनेसे क्षय होते हैं। पर यह प्रायश्चित उपयोगपूर्वक आचरणमें लाना चाहिए। यह आगम के जानकार महापुरुषोंका उत्कृष्ट कथन है ॥३०७॥

दीर्घदर्शी, बहुज्ञानी, क्षमावान् पवित्रवृत्तिवाले, सद्गुणी और सदा यत्न-वान् साधक स्त्री आदि मोहक पदार्थोंको देखकर यह विचार करे, कि यह वस्तु मेरा क्या कल्याण करेगी ? इस संसार में स्त्रियोंका मोह ही चित्तको अतिशय उलझनोंमें डाल देता है। ऐसी हितशिक्षाएं बार बार श्रमण भगवान् महावीरने दी हैं, उनका रातके तीन बजे बाद चिंतन करे ॥३०८॥

(प्रयत्न करते हुए भी यदि वासना के पूर्वसंस्कारोंके वश होकर) मुनि-साधक विषयोंसे पीड़ित हो जाय तो वह इंद्रियोंके उत्तेजित होनेपर उन्हें रोकते

हुए बहुत निर्बल (रूखा) आहार करे। भूखसे कम खावे, एक स्थानपर खड़ा रहकर कायोत्सर्ग करे या दूसरे गांव चला जाय। इतना कुछ प्रयत्न करने पर भी यदि मन वशमें न हो, तो आहारका त्याग भी कर डाले, परन्तु स्त्रीसंग (अब्रह्मचर्य सेवन) तो कभी न करे ॥३०६॥

स्त्रियों में फंसनें (अब्रह्मचर्य सेवन करने) से पहले बहुतसे पापसेवन करने पड़ते हैं, और उसके बाद ही कामभोगका सेवन हो सकता है। (चेतनाको बेचे बिना विकारकी तृप्ति शक्य नहीं) और कभी कोई पहले कामभोगका सेवन करे तो पीछेसे और पाप सेवन करनें पड़ते हैं। इस प्रकार यह स्त्रीसंसर्ग साधना में अपार रुकावट OBSTACLE उत्पन्न करने वाला है। यह सब अच्छी प्रकार गंभीरतासे जान (विचार) कर मुमुक्षु साधक इससे सदैव दूर रहे, उसका सेवन कदापि न करे ॥३१०॥

वासनाका नाश करनेकी इच्छा रखनेवाले साधकको स्त्रियोंकी शृंगार कथा न करनी चाहिए, स्त्रियोंके अवयव न देखे, स्त्रियोंके साथ एकान्तमें गाढ़ परिचय न रक्खे, स्त्रियोंसे स्नेह न करे, स्त्रियोंके अङ्गोंको छूकर सेवा न करे, अधिक क्या कहा जाय स्त्रियोंके साथ बातचीत करते हुए भी मर्यादित रहे। सारांश यह है, कि अपना मानसिक संयम अच्छे प्रकार सुरक्षित रखकर पापाचारसे डरता (दूर) रहे। इस प्रकार कहता हूं ॥३११॥

॥ लोकसार अध्ययनका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

पांचवां उद्देशक—अखंड विश्वास

गुरुदेव बोले—हे साधक! इस ओर देखो; जैसे कोई जलाशय, समप्रदेशमें भी अपने स्वरूपमें मस्त रहकर सदा निर्मल जलसे भरपूर और प्रवाहको अपने में समाविष्ट करके आत्मरक्षण करता है, इसी प्रकार इस संसारमें महर्षि-साधक जो कि महान बुद्धिमान्, जागरूक आरंभ शस्त्रोंसे विराम (त्याग) पाये हुए हैं, वे भी इस सत्यका पालन करते हैं और मृत्युका भय किये बिना सतत पुरुषार्थ करते रहते हैं (इसका दृष्टान्त चित्तमें स्थापन करो) ॥३१२॥

जो साधक इस मार्गकी यथार्थताको जानकर और उसमें प्रवेश कर जाने के बाद "फल होगा या नहीं" घड़ी घड़ी ऐसा संशय रखता है, उस साधकको साधना में उद्यमवान् रहते हुए भी समाधि प्राप्त नहीं होती ॥३१३॥

महापुरुषोंके गंभीर वचनोंको बहुतसे मुनिदेव समझकर उनका अनुसरण करते हैं और बहुतसे गृहस्थ गृहस्थजीवनमें रहते हुए भी अनुकरण कर सकते हैं। और ऐसे प्रसंगमें यदि कोई साधक (अपने कर्मोदयसे) तत्वदर्शी पुरुषोंके साथ

रहकर भी उसे न समझ सकनेके कारण आचरणमें न ला सके, तो उसे खेद कैसे न हो ? अवश्य होता ही है। परन्तु (ऐसे प्रसंगमें उस साधकको दूसरे विचक्षण साधक ठिकाने पर लाने के लिए कहना चाहें कि आत्मबंधु!) जिनवरदेवोंने (स्वानुभवसे) जो कुछ कहा है वह बिना शंकाके सत्य है। इस प्रकार विचार करनेसे उसमें महापुरुषोंकी आज्ञाको आराधित करनेकी श्रद्धा प्रगट हो सकती है ॥३१४॥

महापुरुषों द्वारा वस्तुके स्वरूपको समझकर श्रद्धालु होने वाले बहुतसे मुनिसाधक त्याग ग्रहण करते समय "जिनभाषित ही सत्य है" ऐसा ठीक मानते हैं, परन्तु उनमें बहुतसे तो अन्त तक ऐसा विश्वास टिकाकर रखते हैं। कितने ही पहले श्रद्धालु होते हैं, परन्तु पीछेसे असंयमशील बन जाते हैं। बहुतसे आरंभमें दृढ़विश्वासी नहीं होते, परन्तु बादमें श्रद्धासे टकराकर शुद्ध श्रद्धावान् बन जाते हैं और बहुतसे कदाग्रही जीव तो पहले या पीछे वैसे ही अश्रद्धालु बने रहते हैं ॥३१५॥

जिस साधककी श्रद्धा पवित्र है, उसे सम्यक् या असम्यक् पथ दिखलाने वाले तत्व सम्यक्रूपसे परिणमते हैं ॥३१६॥

परंतु यदि साधककी श्रद्धा ही अपवित्र है, तो उसे सम्यक् या असम्यक् दोनों वस्तु (असम्यक् विचारके कारण) विपरीत रूपसे ही परिणमित होती है ॥३१७॥

इसलिए साधको ! तुम्हारे में जिसे ऐसा सत्य दर्शन हुआ है, उनको होनेवाले और असत्य दृष्टिवाले (विकल्पवान्) साधकोंको सत्य विचारणा करनेके लिए अपने अनुभवकी किरण फेंककर इस रीतिसे प्रेरित करें कि हे पुरुष! तू सत्यकी ओर मुड़, क्योंकि सत्यकी ओर मुड़नेसे ही इस संसारका अंत आता है। कर्मोंका क्षय होता है ॥३१८॥

ये अनुभवी फिर यह भी कहते हैं, कि साधक ! श्रद्धावान् और गुरुकुलमें रहनेवाले मुनिसाधककी गति और स्थान बड़ा उत्तम है। इसी प्रकार स्वच्छंदाचारियोंकी गति और स्थिति कैसी अधम है, इसे अच्छी प्रकार देखले। यह मार्ग उत्तम है, और यह अधम है, इन दोनों स्थितियोंको परख। आत्मज्ञ जंबू ! ये अनुभवी साधक दूसरे साधकको केवल इस ढंगसे समझानेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु स्वयं वे साधक साथके प्रसंगमें उसकी जैसे अपनी आत्मा बालभावमें न खिंच जाय अर्थात् दुराग्रही न बन जाये इतना ध्यान रखते हैं ॥३१९॥

जिसे तू दुःखी करना चाहता है वह भी स्वयं तू ही है, जिसे पकड़ना चाहता है वह भी तू है, और जिसे तू मारना चाहता है वह तू स्वयं अपने आप ही है। सचमुच ऐसी ऊंची समझसे सत्पुरुष सब जीवोंके प्रति मैत्रीभाव धारण कर

सकते हैं। इस रीतिसे अन्तःकरणपूर्वक विचार करके किसी भी जीवको हनन करना या मारना न चाहिए। क्योंकि दूसरेका हनन करने या मारनेसे उसका परिणाम उसके कर्ताको भी उसी तरह भोगना पड़ता है यह जानकर किसीके मारनेका इरादा तक न करे (इस प्रकार परिणामको भली प्रकार विचारने से) तो वैरवृत्तिका लय हो सकता है ॥३२०॥

जो आत्मा है वही विज्ञाता है, और जो विज्ञानका दृष्टा है, अथवा जो ज्ञानके द्वारा जान सकता है, वह ज्ञान ही आत्माका गुण है, और इस ज्ञानको लेकर ही हमें आत्माकी प्रतीति होती है। इस तरह ज्ञान और आत्माके पारस्परिक संबंधोंको जो आदमी यथार्थ रीतिसे जानता है, वही सच्चा आत्मवादी है, और ऐसे साधकोंका अनुष्ठान ही यथार्थ है। ज्ञानी पुरुषोंने यह कहा है। इस प्रकार कहता हूं ॥३२१॥

॥ लोकसार अध्ययनका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

छठा उद्देशक—सत्पुरुषोंकी आज्ञाका फल

गुरुदेव बोले—प्रिय जंबू ! बहुतसे साधक पुरुषार्थी तो होते हैं परन्तु आज्ञाके आराधक नहीं होते। कुछ साधक आज्ञाके आराधक होते हुए पुरुषार्थी नहीं होते। ये दोनों स्थितियां तुझसे साधकमें न होने पाएं, यों श्री जिनेश्वरदेव ने दर्शाया है ॥३२२॥

(जिन्होंने) गुरुदेवके दृष्टिकोणसे देखनेका, गुरुदेवकी बताई हुई अनासक्ति से प्रगति करनेका, उनके आदेशका बहुमान करनेका, उनके ऊपर श्रद्धा रखनेका और इसी तरह गुरुकुलवास करनेका अपना ध्येय बनाया है, वे आदमी विजय पाकर आत्मदर्शन अवश्य पायेंगे। और जिस आत्मार्थी पुरुषका मन अपने वशमें है अर्थात् जिसने मन पर पूरा अधिकार कर लिया है, वह पुरुष किसी भी प्रकार के सुन्दर या असुन्दर निमित्तोंसे तिरस्कार नहीं पा सकता, और वही समभावी रह सकता है। इसलिए वह निरावलंबी रहनेके लिए सम्पूर्ण समर्थ है ॥३२३॥

यह आत्मदर्शन जातिस्मरणज्ञानसे, सर्वज्ञपुरुषोंके अनुभूत उद्‌गारोंसे या दूसरे आत्मज्ञ महापुरुषोंके मुखसे (तत्वज्ञान) श्रवण करने आदिसे होता है, इसलिए प्रवादसे प्रवादको जानें ॥३२४॥

इसलिए बुद्धिमान् साधक "यह सब अनेक प्रकारसे, और सब क्षेत्रोंसे, विवेकपूर्वक खोजकर उसमें सत्वको ही जाने, और स्वीकार करे," इस प्रकार अनुभूति प्राप्त पुरुषोंकी जो आज्ञा है उसका उल्लंघन न करे ॥३२५॥

जीवात्मा जिस सुखको खोज रहा है, वह आनन्द संयममें है, इसे समझकर प्रत्येक साधक जितेन्द्रिय होकर प्रगतिकी साधमें लगे और जहां कठिनाइयां

खड़ी होने लगें, वहां वह मोक्षार्थी और वीर बनकर आगम अर्थात् सर्वज्ञदेवोंके अनुभवजन्य वाक्योंका सहारा लेकर सतत पुरुषार्थी होकर साधनामें डटा रहे। इस प्रकार कहता हूं ॥३२६॥

अखिल विश्वमें ऊंची, नीची और तिरछी, इन तीन दिशाओंमें कर्मबंधके कारण (पापके प्रवाह) रहे हुए हैं। इसलिए जहां आसक्ति देखो, वहां कर्मबंध होता है, ऐसा जानले ॥३२७॥

शास्त्रोंके जानने वाला साधक संसारमें रहे हुए घुमावको देखकर दूरसे ही विराम ले ॥३२८॥

क्योंकि इस प्रवाहको आते हुए रोका जाय, कर्मबंधसे मुक्त होनेके लिए जो पुरुष अभिनिष्क्रमण (त्यागमार्ग) अंगीकार करते हैं, वे महापुरुष अनासक्त बन जाते हैं, अनासक्त साधककी प्रतीति यह है कि वह अकर्मी होकर रहता है, दृष्टारूप बना रहता है, वह सब कुछ जानता है, और देखता है, परन्तु किसी भी फलकी वांछा नहीं करता। अनासक्त साधकका कोई भी कर्म वांछापूर्वक नहीं होता, क्योंकि वह संसारके गमनागमन स्वरूपको भलीप्रकार जानता है। इसलिए जन्मस्वरूप संसारके चक्रवालमें न फंसकर वह अपने निजीस्वरूपमें मगन रहता है ॥३२९॥

इस स्वरूपका वर्णन करनेके लिए कोई भी शब्द कहनेमें समर्थ नहीं होते, जहां मति नहीं पहुंच सकती, तर्क दौड़ नहीं सकते, और कल्पना उड़ नहीं सकती, वहांका वर्णन कैसा ? प्रिय जंबू ! इतना याद रख, कि उस भूमिकामें सकल कर्मरहित अकेला चैतन्य सम्पूर्ण ज्ञानमय दशामें विराजमान है ॥३३०॥

यह मुक्तजीव लम्बा, चौड़ा, छोटा, गोल, त्रिकोण, चौरस, मण्डलाकार, काला, नीला, लाल, पीला, सफ़ेद, सुगन्धित, दुर्गन्धित, तीक्ष्ण, काषाय, खट्टा, मीठा, कठोर, सुकुमार, भारी, हलका, ठण्डा, गर्म, चिकना, रूखा, शरीरवाला, जन्म धारण करनेवाला, आसक्तिवाला, स्त्रीरूप, पुरूषरूप, नपुंसकरूप, नहीं है। बल्कि ज्ञाता और परिज्ञातरूपसे अपनी स्थितिमें विराजमान है ॥३३१॥

कर्ममुक्त चेतनका स्वरूप समझने के लिए इस सारे संसारमें कोई ऐसी उपमा ही नहीं है, क्योंकि वह स्वयं अरूपी स्थितिमें है और उसकी कोई साकार अवस्था नहीं है। इसलिए उसके स्वरूपका वर्णन करनेके लिए किसी भी शब्दकी शक्ति या गति है ही नहीं ॥३३२॥

वे मुक्तजीव शब्दरूप नहीं है और आकाररूप नहीं है, गंधरूप नहीं है, या स्पर्शरूप नहीं है। इस प्रकार कहता हूं ॥३३३॥

॥ छठा उद्देशक समाप्त ॥

॥ लोकसार नामक पाँचवां अध्याय समाप्त ॥

(६) धूत

पहला उद्देशक—पूर्वग्रहोंका परिहार

वे ज्ञानी पुरुष इस जगत् के मानवोंमें सच्चे नररत्न हैं जो तत्वको यथार्थ जानते हैं, और जगत्कल्याणके लिए औरोंको भी वाणी द्वारा कहकर बताते हैं। जन्म-मरणरूप संसारका स्वरूप उन्होंने सब प्रकारसे जान लिया है, और इसीसे वे जब कुछ श्रीमुखसे कहते हैं तब मानों ऐसा लगता है जैसे वे कुछ अद्वितीय ज्ञान अर्पण कर रहे हैं ।।३३४।।

जो ज्ञानी पुरुष त्याग मार्गकी ओर झुके हुए, हिंसक क्रियासे निवृत्त, बुद्धिमान् और समाधिकी इच्छा करने वाले, साधकोंको ही मुक्तिका मार्ग बताते हैं तो भी वह मार्ग उसमेंसे जो महावीर होते हैं वे ही उसे पचा सकते हैं, और उसे पचाकर पराक्रमवान् बन सकते हैं। बाकी तो इस ओर जो बेचारे बहुतसे संयमकी दीक्षा पाए हुए साधक भी आत्मभानसे परवर्ती बनकर विभावके वश होकर उल्टे मार्गसे ठोकरें खाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ।।३३५।।

सुन ! सेवालसे ढँके हुए किसी जलाशयमें रहने वाला कछुवा, दैवयोगसे थोड़ासा सेवाल हट जानेके कारण पानीकी तह पर जानेके मार्गको खोज सकेगा, परन्तु वह यदि पानीकी तहके नीचे जाकर वहीं आसक्त हो जाय और अजागृत बनकर ऊपर न आवे और इतनेमें ही तालाबका जल फिरसे सेवाल तथा कमल-पत्रोंसे आच्छादित हो जाय तो उस कछुवेको पानीकी तह पर आनेके लिए मार्ग मिलना कठिन हो जाता है। इसीप्रकार इस जीवात्माको जब संसाररूपी जला-शयमें आसक्तिका गाढ़ा आवरण मिलता है तब उससे बाहर निकलनेका मार्ग मिलना उसके लिए दुःशक्य हो जाता है ।।३३६।।

जिस प्रकार वृक्ष अनेक संकट पड़ने पर भी अपना स्थान नहीं छोड़ता, इसीप्रकार ऐसी कोटीके जीव अलग-अलग कुल और क्षेत्रोंमें युज्यमान होकर, विविध प्रकारके विषयों में आसक्त बनकर, पूर्व अध्यासोंमें फंसे रहनेसे, उसमेंसे निकल सकनेमें समर्थ नहीं होते, और परिणामकी भयंकरताका उन बाल जीवों को अनुभव न होनेसे, जब उसका दुःखद परिणाम आता है, तब वे सिर पटक-कर रोया करते हैं। ऐसे बेचारे जीव "दुःखका मूल अपना ही कर्म है" इस बातसे अनभिज्ञ होकर दुःखमेंसे छूट भी नहीं सकते। अर्थात् कर्मसे मुक्ति नहीं पा सकते ।।३३७।।

जंबू ! देख इस ओर दृष्टि डाल ! इन अलग-अलग योनियों में, तथा अलग-अलग कुलोंमें ममत्वको और कर्मकी पकड़को लेकर जीव उत्पन्न होते हैं ।।३३८।।

किसी को गंडमाल रोग होता है, किसी को पागलपन या सन्निपात होता है, किसी को आंखों का रोग तो किसी को शरीर की जड़ता का रोग, किसी को अंगों की हीनता का दोष तो किसी को कुबड़ेपन का दोष, किसी को पेट का दर्द, तो किसी को गूंगापन, किसी को सूजन, अति भूख की वेदना, कंपनवायु, पीठ का टेढ़ा होकर मुड़ना, श्लीपद (हाथी के पैर के समान इतना कठोर पैर हो जाता है कि उसे यथेच्छ मोड़ न सके), मधुमेह आदि सोलह तो राज रोग होते हैं, और इसके सिवाय शूल आदि अनेक पीड़ायें, घाव आदि दूसरे अनेक भयंकर रोग होते हैं। इन रोगोंकी पीड़ाओं से शरीर की क्षीणता और मानसिक पीड़ा रहा करती है, एवं पीड़ित अवस्थाके अन्तमें मर भी जाता है। फिर जिसे जीवन भर रोग ही नहीं होते ऐसे देवादि जीवोंके पीछे भी जन्ममरण तो होता ही है। क्योंकि किए हुए कर्म कभी निष्फल नहीं जाते। इसलिए प्रज्ञसाधकोंको कर्मके फलोंको जानकर कर्मके उच्छेदन की ओर दृष्टि रखनी चाहिए ॥३३९॥

कर्मवशात् ही जीव (ज्ञानचक्षु मंद हो जानेसे अज्ञानतिमिर को लेकर) अंधा होकर, अंधोंकी तरह घोर कर्म करके घोर अंधकारमय (नरक आदि घटिया योनिके) स्थलोंमें बार-बार जन्म लेते हैं, और दारुण दुःख भोगते हैं। इस प्रकार ज्ञानीपुरुषोंने अनुभवपूर्वक कहा है ॥३४०॥

दो-इंद्रियादि जीव, संज्ञी पंचेंद्रियादि जीव, जलकायके जीव, जलचर जंतु तथा पक्षी आदि ये सब आपसमें एक दूसरेको दुःख देते रहते हैं ॥३४१॥ इस रीतिसे विश्वमें महाभय बरत रहा है ॥३४२॥

संसारमें फंसे हुए जीवोंको दुःखकी कोई परिसीमा ही नहीं ॥३४३॥

इतना जानते हुए भी मूढ़ मनुष्य कामभोगोंमें सतत आसक्त होकर निस्सार और क्षणभंगुर शरीरके (मानलिए गए मृगतृष्णा के पानी की तरह) सुखकेलिए पापकर्मका काम करके अपने आप दुःखी होते हैं ॥३४४॥

तो भी विवेक हीनताकेकारण अति दुःख पानेवाले ये बेचारे अज्ञानी जीव अपनी भूलके परिणामसे शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होने लगे तब चिंतातुर होकर उसका मूल कारण (भीतर से) न खोजकर बाहरके दूसरे निमित्त या जीव सामने क्रूर बन जाते हैं। कई बार चिकित्सा या प्रतीकारके लिए वे दूसरे जीवोंको हिंसा कर डालते हैं, अथवा उन्हें परिताप देते हैं ॥३४५॥

परन्तु ऐसी प्रतिक्रियासे कुछ (कर्मोदय होनेसे) रोग तो मिटते ही नहीं। इसलिए हे मुनिसाधक! तू पापवृत्ति न कर। अपने स्वार्थ (बचाव)के लिए दूसरे को पीड़ित करना बड़ा भयंकर है। इसलिए मुनिसाधक ऐसा काम नहीं करते, जिससे दूसरेको पीड़ा हो ॥३४६॥

इस संसारमें वहुतसे संस्कारी जीव अपने किये कर्मोंकी परिणतिको भोगने केलिए उन-उन कुलों (अलग-अलग स्थलों) में माता पिताके शुक्रवीर्यके संयोग से गर्भरूपमें आकर—क्रमपूर्वक परिपक्व अवस्थामें होकर, और फिर प्रतिवोध पाकर त्याग अंगीकार करके अनुक्रम से महामुनिके रूपमें प्रसिद्ध हुए ।।३४७।।

जव ऐसे वीर पुरुष त्यागमार्गमें जानेको तैयार होते हैं, तव इनकी वृत्ति की Inclination सच्ची कसौटी होती है। इनके माता-पिता, स्त्री तथा पुत्रादि (मोहजन्य पूर्व संस्कारोंको उत्तेजित करने वाले प्रलोभनोंको खड़ा करके) शोक करते–करते कहते हैं :–हम तुम्हारी इच्छाके अनुसार वर्ताव करेंगे और तुम्हारे होकर रहेंगे। जो स्नेहकी अवगणना करके मां वापको छोड़ देते हैं, वे कुछ आदर्श मुनि नहीं गिने जाते । और ऐसा मुनि संसारसे पार नहीं हो सकता ।।३४८।।

ऐसे समय में यदि कोई आदमी अपरिपक्व वैराग्यवाला होता है वह (उनके मनका यथार्थ समाधान करके) मोहसे अलग रह सकता है। उसके हृदय में आत्मविकासकी दृढ़ प्रतीति होनेसे उस मोहजन्य सम्बन्धमें रच पच नहीं सकता। प्रत्येक साधकको यह वात अच्छी प्रकार जानकर ऐसे विवेककी उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार कहता हूं ।।३४९।।

।। धूत अध्ययनका पहला उद्देशक समाप्त ।।

—o—

दूसरा उद्देशक—सर्वोदय सरलमार्ग-स्वार्पण

गुरुदेव बोले—इस अखिल विश्वकी चंचलता तथा आतुरता के रूपको समझकर माता पिता तथा सगे स्नेहियोंके पूर्व संयोग (पूर्वमोहक सम्बन्ध) को छोड़कर तथा सच्ची शान्ति प्राप्त करके, साधना मार्गमें प्रवेश करके, ब्रह्मचर्य (आत्मतत्वकी चर्या) में निवास करनेवाले, वहुतसे मुनिसाधक या गृहस्थ साधक अपने स्वीकार किए हुए धर्मके उत्तरदायित्त्वको जानते हुए भी किसी पूर्वके कुसंस्कारोंके उदयके आधीन होकर मोहजालमें फंस जाते हैं और सदाचारके मार्गको छोड़ देते हैं। इसी प्रकार मुनि पक्ष देखें, तो साधना मार्गमें आनेवाले प्रलोभनोंको न पचासकनेसे वस्त्र, पात्र, कंवल तथा रजोहरणादिक (श्रमणके चिन्ह या उपकरण) छोड़कर भ्रष्ट होते हुए, कामभोगोंमें (सुखकी भ्रांतिसे) एकान्त आसक्त होते हैं और अतिआसक्तिसे भटककर मर जाते हैं। परन्तु कुछ समयमें क्षणभंगुर शरीरसे अलग पड़नेके पश्चात् ऐसे पुरुष को अनन्तकाल तक ऐसी सामग्री फिर मिलना कठिन है। इससे वे वेचारे इस रीतिसे कामभोगमें

अतृप्त रहनेसे फिर दुःखमय जीवन बिताकर संसारमें चक्कर ही काटते रहते हैं ।।३५०।।

बहुतसे भव्य पुरुष, संस्कारी साधक, धर्मको पाकर तथा त्याग को अंगीकार करके पहलेसे सावधान रहकर जगतके किसी भी प्रपंचमें न फंसकर ली हुई प्रतिज्ञामें दृढ़ होकर रहते हैं ।।३५१।।

जो साधक यह मानता है, कि आसक्ति ही दुःखका कारण है और यह जानकर जो उससे बिल्कुल अलग रहता है, वही संयमी महामुनि होता है ।।३५२।।

जंबू ! साधक सब प्रपंचोंका त्याग करके 'मेरा कोई नहीं है' 'मैं अकेला हूं', ऐसी एकांत (रागद्वेप रहित) भावना रखकर पापक्रियासे निवृत्त होकर त्यागीके आचारमें उपयोगपूर्वक रमण करे, और द्रव्य तथा भावसे दोनों प्रकारसे मुंडित होकर अचेल (वस्त्रादि सामग्रीमें अपरिग्रही) होकर संयममें उत्साहपूर्वक रहे और अतिपरिमित आहार लेकर सहज तपश्चरण करता रहे ।।३५३।।

कभी कोई पुरुष, मुनिसाधकको (उसके पहलेके निंदित कामोंकी ओर ध्यान दिलाया जाकर अथवा किसी दूसरे) संबोधन करके असभ्य रीतिसे कहकर झूँठे आरोप लगाकर इसकी निंदा करे अथवा उसके अंग पर आक्रमण करे, मारे, बाल खींचे, आदि कष्ट दे, तो भी उस समय वह वीर साधक, 'अपने पूर्वकृत कर्मोका ही यह परिणाम है' यह सोचकर व्याकुलता करनेवाले प्रतिकूल परिषहों का, एवं कोई स्तुति करे, मनोहारी पदार्थोंका आमंत्रण करे आदि (प्रलोभन) अनुकूल परिषहोंको भी समभावसे सहन करे ।।३५४।।

इसलिए साधको ! इस प्रकार जो दोनों प्रकारके संकटोंको यथार्थ रीतिसे सहकर निष्परिग्रही रहता है और आसक्तिका त्याग करनेके पश्चात् फिर उसमें नहीं फंसता, वही वास्तविकरूपसे निर्ग्रथ मुनि या नग्न साधक कहलाता है ।।३५५।।

तीर्थकर देवोंने कहा है कि आज्ञामें ही मेरा धर्म अथवा आज्ञा ही मेरा धर्म है। (मेरी आज्ञाका खयाल रखकर ही मेरा धर्म पालन करना चाहिए) इस प्रकार जो साधक आज्ञाको शिरोधार्य करके रहता है, वही साधनाके पार पहुंचता है। जंबू ! साधकोंके लिए यह कितनी उत्तम कोटि की आज्ञा है ।।३५६।।

इसलिए विशेषज्ञ साधकको संयममार्गमें लीन रहकर हेतुपूर्वक कर्मनाश करनेवाली धर्मक्रियाका आचरण करना चाहिए। धर्मका यथार्थ स्वरूप जाननेके बाद ही धर्मक्रिया करनेसे कर्मोका क्षय होता है ।।३५७।।

जंबू ! बहुतसे प्रतिमाधारी महर्षि साधकोंको अमुक समयके लिए एकाकी विचरनेकी प्रतिज्ञा होती है। ऐसे प्रतिमाधारी मुनियोंको सामान्य या विशेषका भेदभाव रक्खे विना प्रत्येक कुलमें से शुद्ध भिक्षा लेनी चाहिए और प्राप्त हुई भिक्षा सुन्दर हो या असुन्दर तो भी उसमें सुन्दरता या असुन्दरताका आरोप किये विना समभावसे उसका उपयोग करे। एवं एकाकी विचरते हुए मार्गमें कुछ जंगली पशुओं द्वारा किसी प्रकारका उपद्रव हो तो, उस समय भी धैर्यपूर्वक उस प्रसंगको समभावसे सहन करे। इस प्रकार कहता हूं ॥३५८॥

॥ धूत अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तीसरा उद्देशक—देहदमन और दिव्यता

सद्धर्मका आराधक और पवित्र चरित्रको पालनेवाला मुनिसाधक धर्मोपकरणोंके सिवाय सब पदार्थोंका त्याग करता है ॥३५९॥

जो मुनि अल्पवस्त्रादि (उपयोग पूर्तिके साधन) रखता है, अथवा बिल्कुल वस्त्र रहित रहता है, ऐसे मुनि को यह चिता नहीं रहती, कि जैसे "मेरे कपड़े फट गए हैं, मुझे दूसरा नया कपड़ा लाना है, सुई डोरा लाना है, वस्त्र जोड़ना है, सीना है, बढ़ाना है, तोड़ना-फाड़ना है, पहनना है, लपेटना है।" ॥३६०॥

वस्त्ररहित रहनेवाले साधक मुनियोंको कभी (तृण शय्या पर सोनेके कारण) घासकी सलियां या कांटे चुभें अथवा सर्दी, हवा या ताप लगता हो, अथवा डांस या मच्छर काटते हों, इत्यादि प्रतिकूल (अनिच्छित) परिषह आ पड़ें, तब जो मुनि साधक अपनी प्रतिज्ञामें अडिग होकर उन सबको समभावपूर्वक सहता रहता है, वही सच्चा तपस्वी गिना जाता है ॥३६१॥

इसलिए जिस आशयसे भगवान्ने यह कहा है, उस पवित्र आशय सहित प्रत्येक साधक समभावपूर्वक बर्ताव करे, और पहले जो जो भव्य महर्षि साधक बहुत वर्षोंसे सतत संयममें रहकर जो जो तितिक्षा सह गए हैं, उन उनका दृष्टिबिंदु रक्खे ॥३६२॥

ज्ञानी साधकोंकी भुजाएं कृश होती हैं, इनके शरीरमें मांस और खून बहुत कम होता है। ऐसे मुनि समता भावनासे रागद्वेप तथा कपायरूप श्रेणीका नाश करके क्षमा आदि उच्च गुणोंके धारक बनते हैं, और इससे वे संसार समुद्रको तैरकर भवबंधनसे छूटकर पापवृत्तिसे दूर रहनेवाले निरंजन निर्लेप गिने जाते हैं ॥३६३॥

इस तरह अधिक समयसे संयममार्गमें रमे रहने वाले, असंयमसे निवृत्त

होकर और उत्तरोतर प्रशस्त भावमें बरतने वाले मुनि साधकको क्या संयममार्ग में होने वाली अरुचि संयमसे विचलित कर सकती है ॥३६४॥

उत्तरोत्तर प्रशस्त भावनाकी श्रेणी पर चढ़ने वाले साधक (समुद्रके) पानीसे न ढंका जा सके ऐसे सुरक्षित द्वीप (समुद्रके बीचमें रहे हुए) के समान है ॥३६५॥

इसी प्रकार तीर्थंकर भाषित सद्धर्म भी द्वीपके समान है ॥३६६॥

मुनिसाधक संसारके भोग विलासका सर्वथा त्याग करके किसी भी प्राणी को न सताते हुए सर्वलोकका प्रियपात्र वनकर, मर्यादामें रहकर सचमुच वह पंडित पद को पाता है ॥३६७॥

जिस तरह पक्षी धीरे-धीरे सतर्कता (सावधानी) के साथ अपने वच्चों का पालन करते हैं, उसीप्रकार पंडित और स्थविर साधक ऐसे साधकोंको वड़े यत्नसे सुरक्षित रखकर उन्हें धर्ममें कुशल बनाते हैं, क्योंकि इसी भांति अनुक्रम-पूर्वक दिन रात शिक्षा देनेसे वे इस संसारके वंधनोंको तोड़ सकनेमें समर्थ हो सकते हैं। इस प्रकार कहता हूं ॥३६८॥

॥ धुत अध्ययनका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चौथा उद्देशक—साधना की सम-विषम श्रेणियाँ

पहले कहे गये कथनानुसार वीर और विद्वान् गुरुदेव दिन रात सतत शिक्षा देकर शिष्योंको तैयार करते हैं। फिर भी उनमें वहुतसे शिष्य गुरुदेवसे ज्ञान पानेके वाद, उनके आशयको न पहचानने से, शान्त भावको छोड़कर अभिमानी, स्वच्छंदाचारी और उद्धत वन जाते हैं, और कई साधक पहले तो उत्साहपूर्वक संयममें लग जाते हैं, परन्तु संयमी होनेके बाद सत्पुरुषों की आज्ञा का अनादर करके सुखलंपट होकर विविध विषयोंके जालमें फंस जाते हैं ॥३६९—३७०॥

साधक जंबू ! (ऐसा भी देखते हैं कि) वहुतसे साधक माननीय और पूजनीय वनकर मान पानेकी वृत्तिसे त्याग ग्रहण करते हैं, परन्तु वे आगे चलकर मोक्षमार्गमें वढ़ते हुए कामेच्छासे जलकर वाहरके सुखमें मूर्छित होते हुए विषयों का ध्यान करते हैं और तीर्थंकर भाषित समाधि साधनोंमें असफल होते हैं। ऐसे समय यदि कोई उन्हें हित शिक्षा दे तो वह सुननेको तैयार न होकर उलटा उस शिक्षककी निंदा करने लग जाते हैं ॥३७१॥

परंतु कई साधक तो स्वयं भ्रष्ट होते हुए दूसरे सुशील, क्षमावान और

विवेकपूर्वक संयममार्गमें लगनेवाले मुनिदेवोंको भी भ्रष्ट करते फिरते हैं। ऐसे मंदबुद्धि साधक सचमुच दुगने अपराधके पात्र हैं ।।३७२।।

फिर कई साधक स्वयं शुद्ध संयमका पालन नहीं कर सकते, परन्तु दूसरों को शुद्ध संयम पालन करनेके लिए प्रेरणा करते हैं, और शुद्ध संयम पालन करने वालोंका बहुमान भी करते हैं ।।३७३।।

जिज्ञासु जंबू ! परन्तु जो स्वयं साधनामार्गसे भ्रष्ट होकर यह कहते हैं, कि हम जो कुछ पालन करते हैं वही शुद्ध संयम है, दूसरा नहीं ऐसे मूढ़ साधक ज्ञान और दर्शनसे भी भ्रष्ट हो जाते हैं। यद्यपि व्यवहारसे वे उत्तम कोटिके (आचार्यादि) साधकोंको (दंभसे) नमते हैं, परन्तु ऐसे भ्रष्ट साधक सदाचारसे गिरे हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए ।।३७४।।

कुछ निर्बल साधक परिषहों (साधनामार्गकी कठिनाइयों) से डरकर संयमादि साधनोंसे भ्रष्ट होते हुए संयमके नामसे असंयमी जीवन विताते हैं। ऐसे साधक यदि त्यागी हों, तो भी उनका "घर छोड़कर चल निकलना" अर्थात् घरका त्याग देना इनके लिए अरुचिकर हो जाता है ।।३७५।।

कई साधक "हम ही ज्ञानी हैं" ऐसा ढोंग बताकर औरोंको नीचा मानते हुए पतनके मार्गमें अतिवेगसे चले जा रहे हैं। इनके साथके जो साधक ऐसे दिखावेसे उदासीन रहते हैं उल्टा वे उन्हें दुत्कारते हैं, पामर मानते हैं और दूसरोंकी दृष्टिमे नीच कोटिका मानते हैं। (इतना कहकर सूत्रकार कहते हैं कि) ऐसे वाल पंडित साधारण आदमियोंसे भी धिक्कार पाते हैं, और सचमुच अधिक लंबे काल तक इस संसारमें वे परिभ्रमण किया करते हैं। इसलिए बुद्धिमान् साधकको सद्धर्मका रहस्य यथार्थ रीतिसे जानना या सीखना चाहिए ।।३७६।।

(ऐसे साधकोंको सत्पुरुष इस रीतिसे सद्बोधामृत पिलाते हैं) हे पुरुष ! तू जगतको मूर्ख मान रहा है, परन्तु यह तेरी मान्यताही मूर्खतापूर्ण है इसकी प्रतीति देती है। तू अधर्मको धर्म मान रहा है। हिंसावृत्तिसे छोटे-बड़े जीव-जन्तुओंको तू स्वयं मार रहा है। 'अमुकको मारो' ऐसा हिंसाका उपदेश करता है। कि वा यह मारा जाये तो अच्छा हो यह मानता है। इससे यह लगता है, कि तू सच्चे धर्मसे बिल्कुल अनभिज्ञ है। तू अधर्मको विशेष चाहता है और हिंसा में ही मानने वाला है। ओ साधक ! ज्ञानी पुरुषोंने ऐसा मार्ग कहा है, जिसका आराधन किया जा सके, परन्तु तू उन महापुरुषोंकी बातका रहस्य न जानकर उनकी आज्ञाका भंग करके आज इसी उत्तम कोटिके सद्धर्मकी उपेक्षा कर रहा है और इसके परिणाममें सचमुच तू मोहमें मूर्छित और हिंसामें तत्पर दिखता है। मैं ऐसा कहता हूं ।।३७७।।

कई साधक त्यागमार्गकी दीक्षा अंगीकार करते समय पाए हुए भोग संबंधोंको इनसे क्या होना है ? यह मानकर तथा माता, पिता, स्त्री, पुत्र, जाति तथा धनमाल इत्यादिकी आसक्तिवाले संबंधको छोड़कर पराक्रमसे दीक्षा लेते हैं; अहिंसा, सत्य, इत्यादि व्रतोंका पालन करना चाहते हैं, और जितेंद्रिय भी बनते हैं, परन्तु यह वैराग्य जरा नरम पड़ते ही फिर कायर होकर संयम धर्मसे भ्रष्ट हो जाते हैं ॥३७८॥

जो आदमी विषय और कषायके आधीन होकर दुष्ट संकल्प विकल्प किया करते हैं, और जिनमें पूर्वकथित दुष्ट विचारोंको दबानेका पूर्ण बल भी नहीं है, यदि वे ऐसी समय साधनासे गिर जायं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥३७९॥

ऐसा करनेके बदले, दुनिया संयमसे भ्रष्ट होनेवाले साधकोंकी अपकीर्ति फैलाती है। लोग उनके बारेमें कहते हैं, "अरे यह देखो त्यागको अंगीकार करके साधु होकर फिर भी संसारकी भूल भुलैयामें पड़ा है ॥३८०॥

साधको ! इधर देखो और विचारो; तुम बहुतसे ऐसे साधकोंको देख सकोगे जो उद्यमवान् (अप्रमत्त) मुनिसाधकके सत्संगमें रहते हुए भी आलस्य करते हैं, संयम तपश्चरणादि प्रशस्त क्रियाओंमें विनय रखनेवाले साधकोंके साथ रहते हुए भी अविनीत रहते हैं, और पवित्र पुरुषोंके नित्यसमागममें रहने पर भी अपवित्र हैं ॥३८१॥

इस सारे रहस्यको विचारकर (मर्यादाशील) नियमित, पंडित मोक्षार्थी और वीरसाधक अपना जोर सदा ऐसे आगमके मार्गमें प्रवाहित करे अर्थात् अपनी शक्तिका वेग इस मार्गमें लगादे। इस प्रकार कहता हूं ॥३८२॥

॥ धूत अध्ययनका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

पाँचवाँ उद्देशक—सदुपदेश और शान्त साधना

मुनिसाधकको भिक्षाके लिए जाते समय घरों और उनके आसपास, गांव या गांवके आसपास, नगरोंमें या नगरोंके आसपास (विहार करते समय), और दूसरे देशोंमें या देशोंके आसपास, कोई व्यक्ति उपसर्ग करे, (बुरी तरह कष्ट या अतिकष्ट दे अथवा दूसरे कुछ संकट या दुःख आ पड़ें) तो ऐसे प्रसंगमें धैर्य धारण करके, अडिग रहकर सम्यग्दृष्टि (समदृष्टिवाले) मुनिको ये सब दुःख समभावपूर्वक सहन करने चाहिएं ॥३८३॥

आगमके ज्ञाता, ज्ञानी अनुभवी साधक; पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तरदिशाके अलग अलग स्थलोंमें जो लोग रहते हैं, उन सबकी अनुकंपाबुद्धिसे

उनकी योग्यताके अनुसार धर्मके अलग अलग विभाग बतायें तथा धर्मकी वास्तविकताको समझायें ॥३८४॥

ऐसे समर्थ साधक सद्‌बोध श्रवण करनेकी इच्छा वाले सब आदमियोंको धर्मका रहस्य समझाते हैं। फिर चाहे वे मुनिसाधक हों या गृहस्थसाधक, सबको अहिंसा, त्याग, क्षमा, तथा धर्मका सुन्दरफल, सरलता, कोमलता, तथा निष्परिग्रहता इत्यादि सब विषयोंको यथार्थ रूपमें (समझाकर ठीक) बोध देते हैं ॥३८५॥

प्रत्येक मुनिसाधक इस रीतिसे विचारे और विवेकपुरःसर सब छोटे बड़े जीवात्माओंको धर्मका स्वरूप बताना उचित है ॥३८६॥

पूर्वापर सम्बन्धको विचारपूर्वक इस रीतिसे सद्धर्म कहते हुए मुनिसाधकों को यह लक्ष्यमें रखना चाहिए, कि वे ऐसा करते हुए अपनी या औरोंकी आत्मा का, दूसरोंका या अन्य किसी भी प्राण, भूत, जीव या सत्वका अंतर न दूखे, उनकी किसी प्रकारकी हानि न कर डाले ॥३८७॥

आत्मार्थी जंबू ! इसप्रकार जागृत रहा हुआ महामुनिसाधक इस संसारमें अज्ञानसे टकराकर डूबते हुए अनेक निराधार जीवोंका आधारभूत द्वीप (टापू) के समान शरणभूत होकर रहता है ॥३८८॥

साधनामार्गमें उद्यमवान् साधक क्रमपूर्वक इच्छाका निरोध करके स्थितप्रज्ञ तथा अचंचल चित्त वाला बने और सतत संयमाभिमुख होकर एक ही स्थल पर गांव गांव विचरे ॥३८९॥

जो साधक ऐसे पवित्र धर्मको जानकर सत्क्रियाका आचरण करते हैं वे साधक सचमुच मुक्ति ही पाते हैं ॥३९०॥

परन्तु साधक ! (सत्प्रवृत्तिके बहानेसे) तुम किसी बुरे प्रपंचमें न फंस जाना। इस विचित्र विश्वमें धनमालको पानेके लिए तड़पने वाले कुछ पामर जीव अनेक कामनाओंसे पीड़ित रहते हैं। इसलिए (ऐसोंके जालमें न फंसकर) तुम संयममार्गमें जरा भी विचलित न हो जाना ॥३९१॥

जंबू ! हिंसकवृत्ति वाले और अविवेकी आदमी पाप वृत्तियोंको दुःखके हेतुरूप जानकर ज्ञानी साधक इनसे सर्वथा दूर रहता है और इस मार्गमें क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि आत्माके आंतररिपुओंको भी वम देता है। ऐसा साधक ही कर्म बंधनसे मुक्त होता है, ऐसा मैं कहता हूं ॥३९२॥

(देहभावसे पर होकर) देहनाशके भय पर विजय पाना ही संग्रामका शिखर है (आत्मसंग्रामकी अंतिम विजय है। जो साधक मृत्युसे बेचैन नहीं होता) वह साधक इस संसारका पार अवश्य पा सकता है। इसलिए मुनिसाधक

जीवनके अंततक साधना मार्गमें आने वाले संकटोंसे न डरकर लकड़ीके तख्ते की तरह अचल रहे, और मृत्युकाल आने पर भी जहां तक यह शरीर जीवसे अलग न हो वहां तक मृत्युको वरनेकी बड़े हौंसलेके साथ तैयारी रक्खे। इस प्रकार कहता हूं ॥३६३॥ ॥ पाँचवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ धूत नामक छठा अध्ययन समाप्त ॥

—o—

(७) महापरिज्ञा

सात उद्देशकोंसे अलंकृत यह सातवां महापरिज्ञा नामक अमूल्य अध्ययन विच्छेद हो गया है। कोई इस अध्ययनके १६ उद्देशक मानते हैं।

—o—

(८) विमोक्ष

पहला उद्देशक—कुसङ्गपरित्याग

गुरुदेव बोले—मैं प्रत्येक सदाचारी साधकको लक्ष्यमें रखकर कहता हूं कि देखनेमें सुन्दर (जैन धर्मका श्रमण) होते हुए चरित्र पालन करनेमें शिथिल भिक्षुको या दूसरे पंथके चरित्रहीन साधकोंका अतिशय आदरपूर्वक अशन (खाना) पान (पेय) खाद्य (मेवा आदि) स्वाद्य (मुखवास आदि) वस्त्र, पात्र, कंबल या पैरपूंछना या रजोहरण आदि न दे, देनेके लिए निमंत्रण भी न दे या उसकी सेवा भी न करे ॥३६४॥

अथवा (कभी) ऐसे असंयमी साधु (स्वयं उनसे कुछ न मांग कर उलटा उन्हें देनेका प्रयत्न करते हुए) यह कहें कि मुनियो! तुम इस बातको निश्चय-पूर्वक याद रक्खो कि 'हमारे यहांसे खाने पीनेकी सब वस्तुएं तुम्हें सदैव मिल सकेंगी, इसलिए किसी दूसरी जगह मिले न मिले, तुमने भोजन किया या नहीं, तो भी हमारे स्थानपर अवश्य पधारें। हमारा स्थान आपके आने जानेके मार्ग पर ही है। और न हो तो भी क्या? जरा चक्कर खाकर आ जाइएगा। इस प्रकार ललचाकर ये चरित्रहीन साधु रास्तेसे आते जाते समय कुछ देने लगें, या देनेके लिए निमंत्रण करें अथवा कुछ सेवा चाकरी करने लगें तो भी इसे न स्वीकार कर इनके संसर्गसे सदाचारी भिक्षु सदा अलग रहे ॥३६५॥

कई साधक बेचारे ऐसी भूमिका पर होते हैं कि जिन्हें क्या ग्राह्य है? क्या आचरणीय है? इसका भी स्पष्टज्ञान अभी तक नहीं हुआ है। ऐसे साधकों को अधर्मियों (विभिन्नवृत्ति वालों) के अंधअनुकरणमें मिलते देर नहीं लगती।

वे अमुकको मारो यह कहकर दूसरोंके द्वारा जीवोंको मरवा डालते हैं। अथवा प्राणिहिंसा करने वालेको (गुप्त या प्रकट रीतिसे) अनुमोदन देते हैं। दाता द्वारा न दी हुई वस्तु ले डालते हैं। और इसप्रकारकी अज्ञान तथा भ्रमजनक युक्तियां दिया करते हैं। उनमें वहुतसे कहते हैं कि "लोक है" कुछ कहते हैं कि "लोक नहीं है," कुछ कहते हैं कि "लोक स्थिर है" कुछ कहते हैं कि "नहीं अखिल संसार अनादि है"। कोई कहते हैं "इस लोकका अंत है," तव कोई कहते हैं कि "इस संसारका अंत नहीं (अर्थात् अनन्त) है"। कोई कहते हैं कि "(पाप कर्मकी अपेक्षा) यह ठीक किया," दूसरा कहता है कि "यह वुरा किया"। कोई कहता है "यह कल्याण है" दूसरा उसी कार्यके लिए कहता है कि "अकल्याण है" एक कहता है कि "यह साधु है" कोई उसीको कहता है कि "यह असाधु है"। वहुतसे कहते हैं कि "सिद्ध है" वहुतसे कहते हैं कि "सिद्ध नहीं है"। कई कहते हैं "नरकगति है" कई कहते हैं कि "नरकगति नहीं" ॥३९६॥

वे तो मात्र कुयुक्तिसे सिद्ध करना चाहते हैं, इतना ही नहीं वल्कि एक ओर दुराग्रहपूर्वक अपना माना हुआ ही सच्चा और मुक्तिदाता कहकर दूसरोंको उसमें ठसानेका प्रयत्न करते हैं। और दूसरी ओर दूसरेकी निन्दा करते फिरते हैं। (वे स्वयं डूवते हैं और दूसरोंको डुवोते हैं) ऐसे एकांतवादी और कदाग्रहियों का प्रसंग आ पड़े तो तटस्थ साधकको उन्हें यही उत्तर देना चाहिए, कि तुम्हारा कहना अकस्मात् (हेतु और विवेकसे रहित) है, क्योंकि सर्वज्ञ सर्वदर्शी और जगतकल्याणके इच्छुक भगवान्ने कहा है, कि :—जो अपनेको ही सत्य मानते हैं या कहते हैं वे एकांतवादी हैं, और सत्यसे स्वयं दूर रहते हैं। अथवा ऐसे प्रसंगमें मौन रहना चाहिए ॥३९७॥

यदि कोई मताग्रही मुनिसाधकको संक्षेपमें इसप्रकार समझा दे कि "जो जो धर्मके वहाने पापकर्म हो रहे हैं (इन्हें मैं नहीं मानता) उन सवको मैं छोड़ देना चाहता हूं" मेरी और आपकी मान्यतामें यही भिन्नता है ॥३९८॥

जो साधक इतना विवेक समझे उसे गांवमें भी सत्यकी आराधना करना सुलभ है और जंगलमें भी सुलभ है और जिसमें इतना विवेक नहीं है वह (यदि) गांवमें रहे तो भी धर्मकी आराधना नहीं कर सकता और जंगलमें चला जाय तो भी धर्मकी आराधना नहीं कर सकता। इस प्रकार जगतके सव जीवोंके प्रति-पूर्ण समभावसे जीवित रहने वाले श्रीसर्वज्ञभगवान्ने अनुभवके पश्चात् ऐसा कहा है ॥३९९॥

इसीसे श्रीभगवान्ने उपादानकी शुद्धि को विशेष महत्व दिया है, और उस शुद्धिकेलिए मुख्यतासे साधकके तीन साथी तीन यम (व्रत) वताये हैं। आर्य पुरुष इन तत्वों के रहस्य को पाकर सदा सावधान रहे ॥४००॥

इस रीतिसे साथियोंकी आराधना करके जो क्रोधादि दोषोंके सामने लड़कर उनके बल को शान्त करता है, वही पापकर्मसे और पापवृत्तिसे अलग रह सकता है। और यही अनिदान अर्थात् अपने आत्माको न बेचने वाले के रूप में प्रसिद्ध हुआ है ॥४०१॥

साधको ! देखो:—ऊंची, नीची, तिर्छी और समस्त दिशाओं या विदिशाओं में जितने जीव रहते हैं, उन प्रत्येक छोटे बड़े जीव जन्तुओं को कर्मसमारंभ लगा हुआ है ॥४०२॥

इसलिए विवेकपूर्वक समझकर मर्यादाको सुरक्षित रखकर प्रज्ञसाधक अपनेसे छोटे बड़े किसी भी जीवको स्वयं दंड न दे, दूसरेके द्वारा दंड न दिलावे और यदि कोई ऐसा करता हो तो उसका अनुमोदन भी न करे ॥४०३॥

जो जीवात्मा (मूढता, स्वार्थ तथा अज्ञानके वश होकर) पाप कर्म करता हो उसकी वह क्रिया 'हमसे किस प्रकार देखी जा सकती है' ऐसी भावना उत्तरकथित धर्ममय जीवन वाले साधकमें सहज होती है ॥४०४॥

इसप्रकार पापकर्मका रहस्य समझाकर बुद्धिमान्, संयमी और पापभीरु साधक इससे और ऐसे दूसरे दंडोंसे विरमता है। इस प्रकार कहता हूं ॥४०५॥

॥ विमोक्ष अध्ययनका पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

दूसरा उद्देशक—प्रलोभजय

भिक्षु साधक श्मशानमें अथवा सूने घरमें, पर्वतकी गुफा में, किसी वृक्षके नीचे,कुम्हारकी खाली जगहमें या दूसरे किसी एकांत स्थानमें फिरता हो, खड़ा हो, बैठा हो, सोया पड़ा हो और ऐसे प्रसंगमें इसे देखकर कोई पूर्व परिचित अथवा कोई अन्य गृहस्थ उसके पास जाकर भक्तिपूर्वक आमंत्रण करे कि आयुष्मन् ! तपस्विन् ! मैं आपके लिए खान, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादपूँछन आदि सुन्दर पदार्थ आपके उद्देश्यसे, नाना जीवोंके आरंभसे बनाकर, विकती वस्तु लेकर, उधार लेकर, अमुकके पाससे छीनकर या कोई पदार्थ किसी दूसरेके पास होनेपर उसकी आज्ञा लिये विना लाकर, और या मैं अपने घरसे लाकर देता हूं। अथवा आपके लिए यह मकान बनवाता हूं, या जीर्णोद्धार करवाता हूं, इसलिए आप (कृपा करके) यहां रहकर और खाएँ पिएँ (रंग रली करें) ॥४०६॥

आयुष्मान् साधको ! (कभी ऐसे प्रसंग तुम्हें भी मिल जायें तो) अपने उन जाने पहचाने मित्र अथवा अन्य मनस्वी गृहस्थोंको इस प्रकार कहो कि हे

आयुष्मन् ! महोदय ! मैं आपके इस वचन को स्वीकार नहीं कर सकता और उसका पालन भी नहीं कर सकता। इसलिए तुम क्यों मेरे लिए उपरोक्त ऐसी आरंभादि क्रियाएं करके खान, पान, वस्त्रादि की खटपट करते हो और किस लिए मकान बनवाते हो ? आयुष्मन् ! गृहस्थ ! मैं ऐसे कार्यों से दूर रहनेके लिए ही तो त्यागी हुआ हूं ॥४०७॥

मुनिसाधक श्मशानादिमें फिरता हो या किसी दूसरे बाहरके स्थानमें विचरता हो उसे देखकर उस मुनिको जिमाने की अपनी हृदयेच्छासे कोई गृहस्थ उस मुनिसाधकके निमित्त आरंभ द्वारा आहारादि देने लगे, अथवा रहने के लिए मकान बनवादे इस बातको वह साधक अपने बुद्धिबलसे किसी दूसरेके कहने या सुननेसे विचार करे कि "यह गृहस्थ मेरे लिए आहारादि बनवाकर मुझे देना चाहता है, अथवा बना हुआ मकान देना चाहता है, अथवा ऐसे प्रसंगोंमें मुनि साधकको पूरी शोध खोज करके इस घटना को यथार्थ रीतिसे अथ से अन्त तक जान लेना चाहिए, और परिचित होने के बाद उस गृहस्थको स्पष्ट कह दे कि "मैं मुनि साधक हूं" इसलिए मेरे लिए बनाएगए मकान या आहारका मैं उपयोग नहीं कर सकता ॥४०८॥

कोई गृहस्थ मुनिसाधक को पूछकर (मुनिके इन्कार करने पर भी) छल-प्रपंच करके अथवा बिना पूछे व्यर्थ का व्यय करके तथा बड़ा कष्ट उठाकर, आहारादि बनाकर मुनिके पास लाकर रख दे तो उस आहारको मुनिसाधक नहीं ले। और तब उसको अपनी भावनापूर्ण न होते देख वह गृहस्थ क्रोध करे, मारे या यों कहने लगपड़े, कि "इसे मारो, इसकी कुटाई करो, कत्ल कर दो, जला दो, पकड़ लो, लूटलो, इसका सब छीन लो, इसकी जीवन लीला समाप्त कर डालो, और सब प्रकारसे इसे खूब सताओ।" अचानक ऐसे संकट में आ पड़ने पर भी उस समय धैर्य और समता रखकर मुनिसाधक यह सब प्रसन्नतापूर्वक सहन करे। यदि व्यक्ति सुयोग्य हो तो उसे ऐसे प्रसंगमें विवेकपूर्वक श्रमणवरों के आचार (नियमों) से परिचित करने का प्रयत्न करे, और यदि उससमय उपदेशका प्रभाव उल्टा पड़नेकी संभावना हो तो मौन होकर उच्च भावना के सन्मुख रहे। परन्तु ऐसे भयसे डरकर दूषित आहार न ले। मुनिसाधक प्रत्येक क्रियामें पूर्ण सावधान रहे, ज्ञानी पुरुषों ने यह बार-बार कहा है ॥४०९॥ समनोज्ञ साधु आदरपूर्वक अमनोज्ञ साधुको आहार वस्त्रादि न दे, तथा निमंत्रण भी न दे, या सेवा भी न करे॥४१०॥ श्रमण भगवान् महावीर यह बार बार समझाते हैं कि सदाचारी मुनिको आहार, वस्त्रादि आवश्यकता की दृष्टि से आदरपूर्वक अर्पण करे, उसे देनेकेलिए निमंत्रित करे और उसकी प्रसंगोपात्त सेवासुश्रुषा भी अवश्य करे। इस प्रकार कहता हूं ॥४११॥

॥ विमोक्ष अध्ययनका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तीसरा उद्देशक—दिव्य दृष्टि

बहुतसे साधक मध्यवयमें जागृत होकर पुरुषार्थी हो गए हैं और उन्होंने त्यागमार्ग को पचा लिया ।।४१२।। बुद्धिमान् साधक ज्ञानीजनोंके वचन सुनकर उनका अवधारण करता है ।।४१३।।

आर्यपुरुषोंने "समतामें ही धर्म" का अनुभव किया और दर्शाया ।।४१४।।

आदर्श त्यागके पथमें चढ़े हुए मुमुक्षु साधक भोगोंकी तीव्र आसक्तिको मन पर स्थान नहीं देते, किसी भी जीवका दिल दुखाना नहीं चाहते, और किसी भी पदार्थके ऊपर ममत्व न जगने का खयाल रखते हैं। और इस रीतिसे वृत्तिमें निष्परिग्रहता आनेसे सारे लोकके प्रति वे निष्परिग्रही रहते हैं। उनके निष्परिग्रही होनेका प्रमाण यह है कि फिर वे प्राणी समूहके साथ सद्व्यवहार रखते हुए भी अशुभकर्म नहीं करते। अथवा किसी दूसरेको दंडित करनेकी वृत्तिका त्याग करनेसे उनके द्वारा कोई भी अशुभकर्म नहीं होता। जिस साधककी ऐसी सहजदशा है, उस साधकको ज्ञानीजन महानिर्ग्रन्थ कहते हैं। ऐसा साधक जन्म और मृत्युका रहस्य जानता है। ज्योतिमार्गका निष्णात समझा जाता है। और ओजस्वी होकर जगतकी दृष्टिसे अद्वितीय लगता है ।।४१५।।

जंबू ! ऐसे साधकको देह जैसे संकट या श्रमसे ग्लानि होती है, वैसे संकट या श्रमसे ग्लानि होती है ? वैसे ही आहारसे पुष्टि हो सकती है।" ऐसा लगनेसे देहका मूल्य वह ऐसी और इतनी मर्यादा तक आंकता है। एवं यही समझकर उसका उपयोग भी उसी प्रकारसे करता है। अतः देहग्लानि हो तो भी उसे खेद नहीं होता, और प्रेरणापूर्वक देहपुष्ट होनेके उपाय करनेके लिए भी उसकी वृत्ति नहीं चाहती। अब जरा जगत्के सामने देखो; जगत्के बहुतसे बेचारे जीवोंको देह ग्लानि होती है कि सारी इन्द्रियां एक साथ ग्लानियुक्त दीख पड़ने लगती हैं ।।४१६।।

ऐसे प्रसंगमें भी पूर्वोक्त ओजस्वी साधक दयाका रक्षण करता है, दयाको आन्तरसे नहीं छोड़ता ।।४१७।।

जंबू ! यह भूलना नहीं चाहिये कि जो साधक संयमके यथार्थ स्वरूपका कुशल जानकार है, वही अक्सर अपनी शक्ति-विभाग, अभ्यास, विनय तथा शास्त्रदृष्टिसे सबका समन्वय साधकर विवेकबुद्धिपूर्वक लोकप्रपंचसे अपने स्वभावका मार्ग खोज लेते हैं। एवं ऐसे साधक ही परिग्रहसे ममता उतारकर सर्वथा नियमित होते हुए, किसी भी प्रकारका आग्रह न रखकर निरपेक्ष होकर साहजिक जीवनसे जीवित रहते हैं, और राग तथा द्वेषको अथवा आंतरिक एवं

बाह्य दोनों प्रकारके बंधनको काटकर विकासकी पराकाष्ठा तक पहुंचनेका पुरुषार्थ करते हैं ॥४१८॥

ऐसे ध्येयसे जीवित, साधकका शरीर (शीतज्वर या शीतके प्रभावसे) कदाचित् कांपता हो, इतनेमें कोई गृहस्थ (उपहास करने या साधुताकी कसौटी करनेके लिए) जानबूझकर अथवा अनजानपनसे यह कहे कि "आयुष्मान् श्रमण! आपको यह कंपन कामपीड़ासे तो नहीं हो रहा है ? क्या आप जैसे त्यागीको भी विषय-विकार पीड़ित करता है ? पूर्ण ब्रह्मचारी और प्रचंड साधकके कान पर ऐसे कातिल बीभत्स वचन पड़ने पर ऐसे प्रसंगमें (जरा न चिढ़कर केवल) शांत चित्तपूर्वक वह मुनिसाधक उस समय मात्र इतना ही कहे, "प्रिय आयुष्मान् गृहस्थ ! मुझे काम पीड़ित नहीं कर रहा है बल्कि सर्दी और हवाका त्रास हो रहा है, और शरीर उसे सहन न कर सकनेके कारण कांप रहा है । मुनिके इस कथनका उत्तर देते समय यदि गृहस्थ यह कहे कि "यदि यह बात सत्य ही है तो फिर किसलिए आप अपने देहको ठंडसे बचानेके लिए आगसे ताप क्यों नहीं लेते ?" तब वह मुनिसाधक यह कहे कि गृहपति ! जैन श्रमणको आग सुलगाना या जलाना कल्प्य (उचित) नहीं है (क्योंकि इसमें जीवजंतु की हिंसाका भय है) । इतना ही नहीं बल्कि आगके पास जाकर तापना या ऐसा करनेके लिए किसी दूसरेको कहना भी वर्जित है ॥४१९॥

साधककी इस बातको सुनकर फिर ऐसे उच्च त्यागको देख, भक्तिसे रंजित गृहस्थ कदाचित् स्वयं मुनिके पास आग सुलगाकर मुनिका शरीर तपाना चाहे तो भी वह मुनिसाधक इस प्रकार उसके मनका हार्द भाव जानकर उसे ऐसा करनेसे प्रेमपूर्वक पहले ही रोक दे, और समझा दे कि मेरे लिए ऐसा करना भी उचित नहीं है, क्योंकि जैनभिक्षु जिस प्रकार किसी का मन नहीं दुःखाते उसी प्रकार अपने लिये किसी को भी कष्टमें डालना ईप्सित नहीं समझते । इस प्रकार कहता हूं ॥४२०॥

॥ विमोक्ष अध्यायका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चौथा उद्देशक—संकल्पबलकी सिद्धि

जो अभिग्रहधारी (वस्त्रपात्रकी अमुकमर्यादा रखनेवाला) भिक्षुसाधक साधनाकेलिये साधनाके रूपमें एकपात्र और तीनवस्त्रोंकी छूट रक्खी है, उसे यह विचार ही न आ पाये कि मुझे चौथा वस्त्र आवश्यक है । कदाचित् उसके पास मर्यादित किये तीनवस्त्र पूरे न हों तब उसे साधुधर्मके अनुयोग्य (सूझते) वस्त्र

की याचना करना उचित है। किन्तु जैसा मिले वैसा लेकर पहने, कपड़ोंको सुगन्ध धूप देकर सुवासित न करे अथवा कपड़ोंको नाना प्रकारके रंगोंमें न रंगे। धुले वस्त्र या धोकर रंगे मिलें तो न ले एवं दूसरे ग्राममें वस्त्र छुपाकर भी न रक्खे, अर्थात् स्वच्छ और सादे (जिनसे उठाईगीरेका भय न लगे ऐसे) वस्त्र धारण करे। यह वस्त्रधारी मुनिका आचार है ॥४२१॥

जब मुनि यह जाने कि सर्दी गई और गर्मी आगई, तब जो कपड़े हेमन्त-ऋतुके अनुलक्षसे लिये हों उनका वह त्याग करे-छोड़दे, और यदि उपयोगी हों तो सबका त्याग न करे या कम रक्खे, अर्थात् तीनमेंसे एकको छोड़कर दो पहने, अथवा दो छोड़कर एक पहने, या ठंड दूर हो जानेपर आवश्यकता न हो तो सब कपड़े त्याग दे, इसका मन स्वाभाविक होना चाहिये। कपड़ों का त्याग करना इसलिये भी कहा है कि इस प्रकार करनेसे निर्ममत्वगुणकी प्राप्ति और साधनों में लाघवता भी प्राप्त होती है। भगवान्ने यह भी तप कहा है। इसे इस भान्ति समझकर साधु वस्त्ररहित या सवस्त्रभावमें जैसे बने वैसे समतायोगी होकर रहे ॥४२२॥

यदि मुनिसाधकको कठिन पथमें चलते हुये भी प्रकृतिके प्रभावसे यह विचार आ जाये कि "मैं परिषह या उपसर्गोंके कुचक्रमें फँस गया हूं, और उसे सहन करने में किसी भी प्रकार शक्तिमान् नहीं रहा" तब ऐसे प्रसंगमें विचार, चिन्तन, ध्यानादि अनेक साधनों द्वारा उन आर्तध्यानोंसे बच निकले, परन्तु प्रतिज्ञाभंगादि-अकार्य दुष्प्रवृत्तिका सेवन न करे। यदि किसी प्रकार प्रतिज्ञामें दृढ़तापूर्वक न रहा जाय तो वेहानसादि (आकस्मिक मरण) से जीवनलीला समाप्त करना उचित समझे (परन्तु अकार्य आचरण न करे) क्योंकि ऐसे प्रसंग में आकस्मिकमरण भी अनशन और समाधिमरणके समान निर्दोष और हितकर्ता, माना है। ऐसे प्रसंगमें मरणके शरणमें आनेवाले भी मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। बहुतसे निर्मोही पुरुषोंने ऐसे प्रसंगमें मरण-शरण लिया है अतः वह हितकारी, आत्मसुखकारी, सुयोग्य कर्मनिर्जराका हेतुभूत एवं आगामी जन्ममें पुण्यप्रद होता है। इस प्रकार कहता हूं ॥४२३॥

॥ विमोक्ष अध्ययनका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

पांचवाँ उद्देशक—प्रतिज्ञामें प्राणों का अर्पण

जिस मुनिसाधकके पास एक वस्त्र एक पात्र या मात्र दो ही कपड़े हों उसे कभी ऐसी इच्छा न हो कि मैं तीसरा वस्त्र लूं। परन्तु यदि उसके पास दो वस्त्र भी पूरे (काम चलाऊ) न हों तो उसे आवश्यकतानुसार यथायोग्य दो सादे कपड़ोंकी याचना करना भी उचित है, परन्तु आसक्तिरहित, जैसे मिलें वैसे पहने। इस प्रकार साधुका आचार है ॥४२४॥

जब मुनि यह जानले कि ठंडका समय चला गया और गर्मी आगई है, तब जो कपड़े हेमन्तके आने पर अधिक स्वीकार किये हों उन्हें छोड़ दे। अर्थात् एक वस्त्र रक्खे और अन्तमें यदि उसकी भी आवश्यकता न समझे तो उसे भी त्याग दे, अनासक्तिका आनन्द ले। यों भी तपश्चर्या होती है। भगवान् महावीरने ऐसा कहा है, परन्तु इस कथनका रहस्य समझकर मुनिसाधक वस्त्रसहित और वस्त्र-रहित इन दोनों दशाओंमें समतायोगकी साधनामें थोड़ासा भी न चूककर अडिग रहे ॥४२५॥

प्रसंगवश कभी किसी भिक्षुसाधकको ऐसा लगे कि रोगादिक परीषह-संकटमें अशक्त हो गया है, अतः घर-घर जाकर आहार लानेमें असमर्थ है (इस परिस्थितिको यदि स्वाभाविकतया कहे) और वह विकट परिस्थिति देखकर गृहस्थ उसके लिये वहीं आहारादिकी व्यवस्था करने लगें, तब मुनिसाधक लानेसे पूर्व ही विवेकपूर्वक कहे कि आयुष्मन्! मेरे निमित्त लाया हुआ यह सब मुनि नियमके अनुसार न होनेसे अकल्प्य है (न ग्रहण करे) ॥४२६॥

किसी मुनिसाधककी यदि यह प्रतिज्ञा हो कि "मैं बीमार हो जाऊं, तो भी किसी अन्य समान-धर्मी श्रमणसे सेवा न कराऊंगा, न कहूंगा, परन्तु ऐसी परिस्थितिमें अन्य-समानधर्मी श्रमण-साधक स्वस्थ, कर्मनिर्जरा हेतु, निस्स्वार्थ-बुद्धिसे, स्वेच्छासे, यदि सेवा-सहायता करे तो स्वीकार है, और यदि मैं स्वास्थ्य-पूर्ण होऊं, और अन्य-अस्वस्थ सहधर्मी श्रमणकी स्वेच्छापूर्वक किसी की प्रेरणा बिना निःस्वार्थ सेवा-सहायता करूं।" इस प्रकार मुनिसाधक अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मृत्यु वरकर भी प्राणाहुति दे परन्तु कभी किसी स्थिति में अपने प्रण-का भंग न करे ॥४२७॥

किसी श्रमणसाधकने इन भंगोंकी अपेक्षा रखकर प्रतिज्ञा की है कि "(१) मैं अन्य श्रमणके लिये खानपान वस्त्रादि लाकर दूंगा एवं अन्यका लाया हुआ भी लूंगा, (२) अन्यके लिये भक्ति-प्रेमपूर्वक लाकर दूंगा परन्तु अन्यका लाया हुआ न लूंगा, (३) मैं अन्यके लिये न लाऊंगा, परन्तु अन्यका प्रेमपूर्वक लाया हुआ ले लूंगा, (४) किसी अन्यके लिये लाऊंगा भी नहीं, न अन्यका लाया

हुआ लूंगा।" उपरोक्त चार विभागोंमें से जिस प्रकार की प्रतिज्ञा ली हो उसी ढंगसे सद्धर्माराधन करता हुआ मुनिसाधक संकट पड़नेपर भी विरल शान्त वन कर सद्भावश्रेणी पर चढ़ते हुए देहका अवसान स्वीकार करे, परन्तु स्वकृत प्रतिज्ञा भंगका संयोग न आने दे, इस परिस्थितिमें मरण होना भी यशस्वीमृत्यु कहलाता है। उसे कालपर्यायके रूपमें कहा है। (कालपर्याय अर्थात् बारह वर्ष तककी क्रमशः दीर्घतपश्चर्याके अनन्तर शरीर निःसत्व होने पर अनशन (समाधि) पाना) इस प्रकार वीरसाधक कर्मनिर्जरा कर सकता है। पहले इस भांति दृढ़संकल्पका उपयोग बहुतसे निर्मोहि-साधकों ने किया है, वह दशा-हित-कर्ता है, सुखकर्ता, कर्मक्षयका हेतुभूत है। जन्मान्तर में भी इस संस्कृतिका उत्तराधिकार साधकको अवश्य मिलता है। इस प्रकार कहता हूं ॥ ४२८॥

॥ विमोक्ष अध्ययनका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

छठा उद्देशक—स्वादपर विजय पाना

जिस महामुनि साधकको केवल एक ही वस्त्र और एक पात्र रखनेकी प्रतिज्ञा है उसे "मैं दूसरा वस्त्र लूं या (लेकर) रख छोड़ूं" ऐसी चिन्ता भी न करनी चाहिये। (क्योंकि वह थोड़ेसे साधनोंसे अपना काम चला ले) ऐसा मुनि-साधक वस्त्रकी आवश्यकता पड़ने पर निर्दोष वस्त्रकी ही याचना करे, और पवित्र (निष्काम) भावोंकी याचनासे जैसा वस्त्र मिले उसमें ही सार ले। गर्मी आने पर उसे भी त्याग दे, आवश्यकता समझे तो रहने दे, उपयोग करे। परन्तु लघुभाव को पाकर सर्वत्र समभावपूर्वक रहना उचित समझे। मुनिसाधक यह चिन्तन भी करे कि "मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, न मैं किसी का हूं।" इस प्रकार अपनेमें एकत्व विचार समझकर अनुभव द्वारा लघुभाव निरभिमानता के गुणको प्राप्त कर सकता है। इसे भी तप कहा है और कर्मनिर्जरा होती है। अतः भगवान् ने जो कहा है उसे यथार्थ जानकर सर्वस्थल पर सब जीवोंके प्रति सब प्रकार (मन-वाणी-कर्म) से समभावकी शिक्षाका स्मरण करता हुआ आत्मानुभव द्वारा स्थिर होकर रहे ॥४२९॥

साधक-साधिका स्वाद की दृष्टिसे (संयम में) कभी आहार को चबाते समय बायें गलाफूसे दहने या दहनेसे बायें गलाफूमें न ले जाय। इस रीति से भी स्वादेंद्रिय पर अधिकार पाने से बहुत सी पंचायत (विकृति) हल्की-अलग हो जायगी, और तप भी सहज निष्पन्न होगा, अतः भगवान् ने स्वयं कहा है कि सब प्रकार से विचार कर-समझकर, आचरण में लाने का यत्न कर-समभाव से विचर ॥४३०॥

पथ में विचरते हुये साधक को जब इस प्रकार विचार आया करता है कि अब यह मेरा शरीर रोग या तपसे नितान्त क्षीण हो गया है, तथा साधन संयमक्रियाओं के लिये उपयोगी नहीं रहा—अर्थात् अब तो मृत्यु के किनारे पर पहुंच गया है-तब जीवनकाल के योग रूप मरण से टक्कर लेने के लिये तत्पर हो जाय और अन्तकाल को सुधारने के लिये द्रव्यसे आहार आदि पर, और भाव से कषायादि विरोधी तत्वों पर क्रमशः विजय पाकर अन्त में शरीरजन्य व्यापारों को रोक दे, अर्थात् समाधिस्थ हो कर कटी टहनी के समान (सहज सहिष्णुता और समतासाधना द्वारा) शरीरका ममकार छोड़ दे। इस विधि से देह-रोगादि में फंसा रहने पर भी साधक समाधिमरण द्वारा धैर्य-गुण पाकर तथा सन्ताप से अलग रहते हुये सुखदमरण (पण्डितमरण) पा सकता है। इस मरण को पण्डितमरणपूर्वक इंगितमरण भी कहा जाता है। उसकी मर्यादाविधि इस प्रकार है। ग्राम, नगर, खेडा, कस्बा, मण्डप, पत्तन, टापू, आगर, आश्रम, गड़रियों का दडवा (झोंपड़ी), व्यापारस्थल, अथवा राजधानी में जाकर वहां से कुशादिका घास या पुआल के तुनके मांग लावे और उसे लाकर एकान्त-स्थान में जाकर जहां कीड़ियों के विल न हों उनके अण्डे न हों, अन्य जीवजन्तु, वीज, वनस्पति, धुन्धका पानी, नीलनफूलन (काई आदि-फूही) कच्ची मिट्टी, तथा मकड़ी के जाले भी न हों, आदि पृथ्वीका उपयोग, और यतनापूर्वक सुन्दर रीति से झाड़ पोंछकर (प्रमार्जन) कर उस घासकी शय्या बनाकर वहां इत्वरिकनामक अनशन करे१ ॥४३१॥

सत्यवादी, पराक्रमी, संसारपारगामी, "हाय-हाय मेरा फिर क्या होगा" सर्वथा इस भय और पश्चात्ताप से रहित वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञाता दृष्टा, किसीप्रकारके वन्धन जालमें न फँसनेवाला, मुनिसाधक जिन-सर्वज्ञप्रवचन में अन्त तक दृढ़विश्वासी रहकर ही भयंकर परिषह-उपसर्गों में अडिग रह सकता है, और इस नश्वर शरीर के ऊपर मुग्ध न होकर उपर्युक्त सत्य और कठिन साधन-कार्यको पूर्ण कर सकता है। इस प्रकार का मरण स्वेच्छया निमंत्रित मरण होनेसे वह अपघात नहीं वल्कि कालपर्याय-प्रशस्तमरण समझा जाता है, अतः साधक कर्मके ऊपर विजय प्राप्त करता है। इसरीतिसे-इस ढंगके इंगितमरणका शरण बहुतसे निर्मोहियोंने लिया है अतः हितकारी, सुखकारी, सुयोग्य, कर्मक्षयका हेतुभूत, और पुनर्भव में वह अनुकूलप्रद होता है। इस प्रकार कहता हूं ॥४३२॥

॥ विमोक्ष अध्ययनका छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

१मर्यादित क्षेत्रमें उसने घूमने फिरने की छूट ली है।

सातवां उद्देशक—साध्यमें सावधानी

आत्मार्थी जंबू ! जो साधक सदैव वस्त्ररहित हो और उसे यह विचार आ जाय कि मैं घासके स्पर्शका दु:ख सहन कर सकता हूं, तापका दु:ख सहन कर सकता हूं, डांस-मच्छरकी पीड़ा भी सह सकता हूं, अथवा अन्यान्य अनुकूल प्रतिकूल परीषह भी सहन कर सकता हूं, परन्तु वस्त्ररहित होने में संकोच होता है—मुझे शर्म आती है, तब वह साधक कटिवस्त्र रख सकता है ।।४३३।।

अथवा वह साधक उच्चकोटि (देहलज्जासे परे रहने वाली स्थिति) पर पहुंचा हो या अपने लिए (वसति पर रहता हो) वस्त्रकी आवश्यकता न लगती हो, तब वस्त्ररहित भी रह सकता है, परन्तु इस प्रकार रहते हुए तृणस्पर्श-सर्दी-गर्मी-डांस-मच्छर तथा अन्यान्य अनेक प्रकारके अनुकूल-प्रतिकूल परीषह आने पर उन्हें समभावपूर्वक सहन करनेकी उसमें शक्ति होनी चाहिए तब अल्प-चिन्तावान् रहकर आदर्श तपश्चरणकी उसे प्राप्ति हो सकती है, अतः इस विषय में श्रमणभगवान्ने जो प्रतिपादन किया है उसका पूर्ण रहस्य समझकर दृढ़तम समतायोगकी सिद्धि उज्ज्वल बनानेका अनुभव करता रहे ।।४३४।।

यदि श्रमणसाधकने (१) अन्य श्रमणसाधकोंके लिए अशन-प्राशन-वस्त्रादि लाकर दूंगा, एवं किसी अन्य श्रमणसाधकका लाया हुआ स्वयं मैं भी ले लूंगा, (२) दूसरेको लाकर दूंगा परन्तु स्वयं मैं न लूंगा, (३) दूसरेका लाया ले लूंगा परन्तु उसे लाकर न दूंगा, (४) मैं किसी अन्यके लिए न लाऊँगा और अन्य का मैं लूंगा भी नहीं, इन चार भंग (विभाग) में किसी एक प्रकारकी प्रतिज्ञा की हो अथवा किसी भी प्रकारकी इच्छा रक्खे विना निर्दोष रीतिसे प्रणको पुगाए । उसमें किसी प्रकारका व्यवधान न आने दे तथापि अपनी आवश्यकताकी अपेक्षा पदार्थोंका अधिक संयोग मिले तो इनके द्वारा स्वधर्मी मुनिसाधकोंकी सेवा करूंगा, या इस दृष्टिकोणसे यदि अन्य साधकमुनि सेवा करे तो उसे स्वीकार करूंगा (इनमेंसे किसी भी प्रकारकी प्रतिज्ञा की है) तो उसमें प्राणान्त तक दृढ़ रहे परन्तु उस प्रतिज्ञामें कदाग्रह-अहंकार-मात्सर्यदोषसे दूषित होकर किसी प्रकारका परिवर्तन न करे । गुरुदेव बोले :—क्योंकि श्रमण भगवान् महावीरने कहा है कि प्रतिज्ञासे लाघवता होती है, और तपश्चर्या सहज हो जाती है, अतः भगवान्के कहे हुए सद्धर्मका रहस्य समझकर सब प्रकारके स्थानोंमें समभावकी वृद्धिका अभ्यास बढ़ाना चाहिए ।।४३५।।

निरासक्त जंबू ! श्रमणसाधकको यह विचार आवे कि 'मेरा देह अशक्य हो गया है' अर्थात् धर्मक्रियाके वहन करने योग्य नहीं रहा, अब इस शरीरकी

मुझे क्या आवश्यकता है ? तब वह क्रमसे द्रव्यकी अपेक्षा आहारादि तथा भाव की अपेक्षा कषायादिको कम करनेका पूर्ण प्रयत्न करे, और क्रमशः शरीरसे सम्बन्धित व्यापारोंको तख्तेके समान समभावको सुरक्षित रखकर आयुके अन्त तक धैर्यपूर्वक-आर्तध्यान रहित सद्भावपूर्वक पादपोपगमन-अनशन (समाधि द्वारा) मृत्युकी भेंट चढ़ जाय। उस समय पहले ग्रामादि स्थानोंमें जाकर, पुआल, घास या कुशा (दाभ) आदि लाकर निर्जीव-एकान्त पवित्र भूमि देखकर तथा वहां शय्या बनाकर फिर शरीर, शरीरका व्यापार हलन-चलनादि सब क्रियाओंको छोड़ दे ॥४३६॥

सत्यवादी, पराक्रमी, संसार पारगामी, "फिर मेरा क्या होगा ?" इस प्रकार आर्त्तसे रहित, वस्तुस्वरूपज्ञ, रागादि बंधनमें न बंधने वाला मुनिसाधक, जिन-प्रवचनमें अन्त तक दृढ़प्रतिज्ञ विश्वासपूर्वक भयंकर परीषह तथा उपसर्गोंमें समता रख सकता है, और इस विनश्वरदेहमें मुग्ध न होकर, समताको निभाकर जीवनके अन्त तक सत्य और दुष्करात्मसाधनाकी सिद्धि निरन्तर किए जाता है। इस भांति स्वेच्छासे मरणकी भेंट होना-अपघात न होकर बल्कि प्रशस्त मृत्यु है। इस प्रकार उच्च श्रमण आत्म-साधक अन्तरके शत्रुओंका अन्त कर सकता है। इस प्रकार यह समाधिमरणके समान पादपोपगमनका शरण भी बहुतसे निर्मोही-आत्माओंने लिया है। अतः हितकर्ता, सुखकर्ता-सुयोग्य, कर्मनिर्जराका हेतुरूप, भवान्तरमें आत्मफल प्रद-सिद्ध, (इस प्रकार यह साधना स्वीकार करने में अपाय नहीं है) इस प्रकार कहता हूं ॥४३७॥

॥ विमोक्ष अध्ययनका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

आठवां उद्देशक—समाधि-विवेक

संयमी धीर और ज्ञानी मुनिसाधक क्रमशः साधना करते-करते मृत्यु-समय प्राप्त होने पर अपनी शक्तिके अनुसार मोहमलसे रहित तीन मरणमें से (अपने लिये जो मरण उचित लगे उससे) चाहे जिस किसी एकका आह्वानाचरण करते हुए अन्तिम समाधिका यथार्थ पालन करे ॥४३८॥

जो बाह्य (शरीरादि) तथा आन्तरिक (रागादि विरोधी) इन दोनोंको यथातथ्य समझेगा, और फिर क्रमशः उनके बुरे प्रभावसे अलग हो जायगा, ऐसा साधक, धर्म पारगामी एवं ज्ञानी मुनिसाधक अनुक्रमसे साधनामार्गमें आगे बढ़कर सम्पूर्ण कर्म निर्जरा द्वारा सर्वथा छूट सकेगा ॥४३९॥

देहके साधन योग्य न रहने पर साधक क्रमशः द्रव्यसे आहारादि एवं भाव से कषायादि कम करता हुआ अनशनपूर्वक आये हुये परीषहउपसर्गोंको समभाव से सहन करे ॥४४०॥

जीवन और मरण स्थितिमें प्रज्ञसाधक किसी भी वासनाको आगे न रखे। सारांश यह कि किसी भी दशा पर आसक्त न हो ॥४४१॥

अनशनके समय कदाचित् आकस्मिक रोग उत्पन्न हो जायं और चित्त-समाधि यथार्थ तथा स्थिर न रहे तब उस स्थितिमें साधकमुनि (अनशन-समाधि में भी) रोग मिटानेके शुद्ध उपाय कर सकता है, परन्तु इन उपायोंको करनेके पश्चात् जब सहज समाधि प्राप्त हो तब तुरन्त उसका पहले प्रयोग चालू कर देना उचित है ॥४४२॥

'ग्राम हो या जंगल हो', 'स्थानमात्र' छोटे वड़े जन्तुओंसे व्याप्त न हों, एवं शुद्ध होनेका सहज विचार रखना उचित है। निर्विकार स्थल देखकर पहले वहां सूखा घास अथवा दाभादिकी शय्या बनानी उचित है ॥४४३॥

पुनः उस शय्यापर बैठकर आहार त्यागकर अनशनपूर्वक शयन करे। इस भांति अनशनका आचरण करने वाला विशिष्ट साधक, जो परिषह-उपसर्ग (संकट) उत्पन्न हों उसे समभावपूर्वक सहन करे और यदि कोई मनुष्य-पशु अनेकानेक रीतिके कष्ट पहुंचावे तव उन्हें सहिष्णुतापूर्वक सहन करे, कलुपितभाव उत्पन्न न करे ॥४४४॥

यदि कीड़ी, मकोड़े, मच्छर, गिद्ध आदि आमिषभोजी या खून पीने वाले हिंसक प्राणी, सांप-सिंहादि श्वपदादि जीव (वनमें अनशन करके देहावसान-पर्यन्त समभावमें स्थिर रहनेवाले साधकको) कुछ उपद्रव करें तो ऐसे प्रसंगमें मुनि अपने हाथ अथवा रजोहरणादि-साधनों द्वारा कुछ भी प्रतीकार न करे ॥४४५॥

मेरा क्षणभंगुर देह प्राणीगण भक्षणकर रहे हैं, यह सोच विचारकर अपने नियत स्थल को (भयसे) छोड़कर किसी दूसरे निर्भय स्थान पर न चला जाय। अशुभ हेतुओंको छोड़कर आत्मानन्द में रहते हुये सब विरोधी तत्वोंको समभाव-पूर्वक सहन करनेमें अग्रगामी रहे।

गीतार्थ मुनिसाधक इस भाँति शास्त्रों द्वारा समय एवं ध्यानके रहस्यको जानकर देहावसान-काल आने पर इंगितमरणका समाचरण करता है। यह अन-शन भक्तपरिज्ञाकी अपेक्षा अधिक कठिन कहा है ॥४४६-४४७॥

ज्ञातपुत्र भगवान् महावीरने फर्माया है कि इस प्रकार अनशन करनेवाला साधक अपने आप उठे, करवट वदले, और प्राकृतिक आवश्यकताओंका निवारण स्वयं करे। विधान इस प्रकारका है कि किसी अन्य द्वारा अपना कार्य नहीं करा सकता ॥४४८॥

इस रीतिसे अनशनको धारण करनेवाला मुनि साधक वनस्पति या क्षुद्र जन्तुके स्थानमें नहीं सोता, मात्र निर्जीव (प्राशुकस्थान) निर्दोष स्थान चुनकर

वहीं शयन करता है, एवं आहारत्याग करते हुए जो कुछ मानव-देव-पशु तथा प्राणीजन्य संकट आ पड़ें तो उन्हें समभावपूर्वक सहन करे ।।४४९।।

अनशन स्वीकार करने पर नैजशय्या पर सोते-सोते कदाचित् साधकके हाथ-पैरादि इन्द्रियां अधिकाधिक अकड़ जायं तो इन्द्रियोंका हेरफेर करके भी समाधि प्राप्त करे, क्योंकि इन क्रियाओं के करनेसे यदि समाधिस्थ रहे तो इन क्रियाओंके होते हुये भी पवित्र एवं अटल प्रतिज्ञ समझा जाता है ।।४५०।।

जंबू ! इंगित अनशनके लिये नियुक्त (निश्चित) की हुई भूमिमें अनशन करने वाला श्रमणसाधक चित्तकी समाधिके लिये जाना, आना, बैठना, पैर पसारना, संकोच करना, आदि क्रियायें कर सकता है, परन्तु यदि वह समर्थ हो तो उसे जानबूझकर छूट लेनेकी आवश्यकता नहीं । केवल अचेतन-जड़ पदार्थकी तरह एक आसन पर अडिग होकर रहे ।।४५१।।

यदि साधक स्थिर न रह सके और बैठा-बैठा थक जाय तो उसे (चित्त समाधिके लिये) घूमना-फिरना, अथवा घूमते फिरते हुये थक जाय तो यत्नापूर्वक बैठे, बैठते हुए थक जाय तो शयन करना (उसके लिये उचित है ।।४५२।।

ऐसे पवित्र अनशनके मार्गमें 'प्रवृत्त' श्रमणसाधक अपनी इन्द्रियां विषयों की ओर न खिंच जायं, इसके बचावके लिये, पूरा संयम रक्खे । बहुत निर्बलता हो जानेके कारण यदि कमरके पीछे सहारा लेनेकी इच्छा हो तो लकड़ीका तख्ता रख सकता है । परन्तु यह तख्ता भीतर से पोला न हो, क्योंकि उसकी थोथमें छोटे-बड़े जीव-जन्तुओंका होना सम्भव है । अतः यदि भीतर से पोला हो तो उसे बदलकर दूसरा ले सकता है ।।४५३।।

ऐसे समय जिस क्रियासे आत्मा दूषित हो जाय साधक ऐसी किसी भी क्रियाका अवलंबन कभी न ले । सारे सदोष योगोंसे आत्माको अलग करके (मात्र उपस्थित होनेवाले) सब परिषह तथा उपसर्गोंको समभावपूर्वक सहन करे ।।४५४।।

(पादपोपगमन) अनशनको जो श्रमणसाधक स्वीकार करता है, उस समय उसका शरीर अकड़ जाय या प्राणियोंसे पीड़ित हो तो भी इसे अपने स्थानसे लेशमात्र डिगना न चाहिये । सारांश यह है कि इस रीतिसे पादपोपगमन अनशन की विधि अतिदृढ़ और कठिन होती है ।।४५५।।

इसी से यह अनशन तीन प्रकारके अनशनोंमें सर्वोत्तम है । क्योंकि पहले बताये गए भक्तपरिज्ञा और इंगितमरण इन दोनोंकी अपेक्षा यह पादपोपगमन अनशन नियम और साधनसे अधिक कठिन है । (इसकी विधि इस प्रकार है) । प्रथम तो प्रासुक निर्जीव-निर्दोष स्थान उचित समझकर अनशन करना चाहिये ।।४५६।।

और ऐसा साधक, शुद्धस्थान पर अथवा अच्छा फलक मिल जाय तो उस पर स्थित होकर चार प्रकारके आहारका परित्याग करे तथा सुमेरुके समान अप्रकम्प-निष्कम्प होकर देहभाव-देहाभिमानसे सर्वथा अलग रहे (ऐसे प्रसंगमें कदाचित् परिषह अथवा उपसर्ग आ पड़ें तव यह विचार करे कि—परिषहका और मेरा क्या लागलपेट है ? क्योंकि शरीर स्वयं ही जव आत्मरूप (मेरा) नहीं है तव मुझ (आत्माको) क्या हानि है ॥४५७॥

आगे उसे यह विचार भी आ सकता है कि जहां तक जीवित हूं वहीं तक परिषह-उपसर्ग सहन करने होते हैं, फिर आगे ये अन्तराय कर्मकी सर्वथा निर्जरा होने पर कुछ नहीं है, यही सोचकर मैंने स्वेच्छापूर्वक शरीरसे अलग होनेके लिये ही शरीरका त्याग किया है, अतः पीछे न हटकर प्रत्युत आगे ही शुक्लध्यानकी ओर वढ़नाही युक्तिसंगत है, इस चिन्तनसे साधकके उपस्थित होनेवाले शुद्धभाव द्वारा आस-पास मंडरानेवाले परिषह और उपसर्गोंको सुगमतया सहन कर सकता है ॥४५८॥

प्रसंगोपात्त कदाचित कोई राजा सामन्त आदिक अथवा श्रीमान् (धनिक) कामभोग सम्बन्धी नाना प्रलोभन वताकर भोगोंका निमंत्रण देकर श्रमणसाधक का मन लुभाते हैं, तव उस प्रसंगमें श्रमणसाधक क्षणभंगुर शब्दादि विषयोंकी ओर अपने आत्माको रागवृत्तिके भीतर न ढलने दे। वह सदैव स्थिरात्मा होकर रहे। निजानन्द स्वरूपकी अभिलाषा रखकर आत्मदशामें लीन रहे ॥४५९॥

अथवा कोई शाश्वत-अर्थात् मरणपर्यन्त स्थिर रहें इस भांतिके भोग-वैभव या द्रव्यका लोभ देकर श्रमणसाधक को आमन्त्रण करें, तब वह उस समय यह विचार करे कि जव मेरा शरीर स्वयं ही शाश्वत नहीं है तव इसके द्वारा दूसरी भोग्य वस्तुयें कैसे शाश्वत हो सकती हैं ? फिर कोई देव आकर किसी प्रकारका मायाजाल वतावे तव उपरोक्त श्रद्धामें वह स्थिर रहे। सव प्रपंचोंसे अलिप्त रहकर वह समझे कि यह सव पुद्गल-प्रपंच भ्रान्तिरूप है ॥४६०॥

इन विचारोंसे साधनामें आगे वढ़ने वाला साधक सव विषयोंमें अनासक्त होकर आयुष्यकालका जानकार होकर मृत्युके समय उपरोक्त तीनमें से किसी एक अनशनको यथाविधि, यथाशक्ति स्वीकार करे, और सहनशीलताको सर्वोत्कृष्ट स्थानमें रखे। इन तीनों अनशनोंमें से किसी एक अनशनको अपनी योग्यतानुसार चुनकर मुनिसाधक स्वीकार करे। उसके लिये यह मरण सचमुच कल्याणकर्ता है ॥ इस प्रकार कहता हूं ॥४६१॥

आठवां उद्देशक समाप्त ॥ विमोक्षनामक आठवां अध्ययन समाप्त ॥

(९) उपधानश्रुत—पहला उद्देशक—पादविहार

गुरुदेव बोले—प्रिय जम्बू ! (तेरी जिज्ञासाको देखकर भगवान् महावीर के विषयमें) जैसा मैंने सुना है वही कहूंगा। श्रीमहावीरने प्रबल वैराग्यपूर्वक हेमन्त ऋतुमें दीक्षा (गृहस्थका वेश छोड़कर त्यागका वेश स्वीकार करके तुरन्त) ही वहांसे विहार किया ॥४६२॥

(दीक्षा लेते समय भगवान् महावीरको एक दिव्य (देव द्वारा) दूष्य-वस्त्र मिला था), परन्तु उस श्रमण साधकने यह विचार न किया कि इस वस्त्रका मैं शीतकालमें उपयोग करूंगा। आत्मार्थी शिष्य ! इस महाश्रमणने जीवनपर्यन्त परिषह (संकट) सहन करनेका तो पहले ही निश्चय कर लिया था (इतने पर भी उन्होंने वस्त्रसे घृणा नहींकी) फिर भी मात्र तीर्थंकरोंकी प्रणालीका अनुसरण करने के लिये उन्होंने वह वस्त्र धारण किए रक्खा ॥४६३॥

श्रीमहावीरके उस सुवासित (सुगंधित) वस्त्रकी दिव्य वाससे आकर्षित होकर अधिकमास सहित चतुर्मास जैसे लम्बे समय तक भौंरे आदि बहुतसे जन्तु उनके शरीर पर बैठते थे, उनके आसपास चक्कर काटकर उन्हें हैरान करते थे। (तब भी वह योगी समभावपूर्वक अडोल रहता था) ॥४६४॥

श्रीमहावीरने पूर्वोक्त दिव्यवस्त्र लगभग तेरह महीने तक (कंधों पर रक्खा) छोड़ नहीं दिया। परन्तु फिर यह योगी वस्त्ररहित हो गये ॥४६५॥

विहार-भ्रमण करते समय त्यागी महात्मा पुरुष रथकी धुराके परिमाण जितना चक्षुका उपयोग बराबर रख कर जुये जितना मार्ग (सीधी तरह सावधानीसे देखकर) अर्थात् 'ईर्यासमिति' पूर्वक भलीभान्ति चलते थे। विहारके समय बहुतसे छोटे-छोटे बालक उन्हें देखकर डर जाते थे। कोई धूल उड़ाकर भाग जाते और कई तो रोने लग जाते थे तब भी वे समभावमें रमण करते थे ॥४६६॥

कई बार गृहस्थ और अन्यतीर्थियोंकी मिश्रित वसतिमें आनेजानेका प्रसंग आता तब उस समय श्रमण-भगवान्-महावीरके अंगोपांग देखकर कई व्यक्ति उनकी ओर आकृष्ट होकर अलग अलग प्रकारकी प्रार्थना करती हुई उनके पास आतीं। उस समय वे तो अपनी आत्मगुफा में प्रविष्ट होकर ध्यानमग्न ही रहते और ऐसे बलवत्तर विरोधी निमित्तोंके मिलनेपर भी उनकी क्रिया आत्मविकास से विरुद्ध न होती ॥४६७॥

श्रमण-महावीर गृहस्थोंके साथका अतिसंसर्ग छोड़कर प्रायः ध्यानमग्न रहा करते थे। ऐसे समय गृहस्थ उनसे पूछते तब वे कुछ भी उत्तर न देकर मौन ग्रहण कर लेते, अपनी साधना में ही दत्तचित्त रहते। इस प्रकार वे पवित्र अन्तःकरण वाले त्यागी साधक मोक्षमार्गका अनुसरण करते रहते ॥४६८॥

कोई प्रशंसा करे या निन्दा, कोई वन्दना करे या निन्दा, और कोई विचारे पामर, भाग्यहीन-अनार्य उस योगीको ताड़ना करते, बाल खींचते, दुःख देते, तब भी भव्य और शान्त भावको धारण करनेवाले उस श्रमणके मन पर उन यातनाओंका कुछ भी प्रभाव नहीं होता था। इस प्रकार साहजिकदशामें लगना प्रत्येकके लिये सुलभ नहीं है ॥४६९॥

फिर वे महायोगी मार्गमें चलते समय असह्य एवं अतिकठोर परिषहोंकी कुछ भी अपेक्षा (पर्वाह्) किये बिना संयममार्गमें वीरता पूर्वक अडिग रहते। मार्गमें लोगोंसे होनेवाले नृत्य-गीतोंमें वे कुछ भी रागभाव नहीं रखते, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्धको देखकर कभी उत्सुक नहीं होते थे ॥४७०॥

कदाचित् ज्ञातनन्दन-श्रीमहावीरको एकान्तमें रहते हुए बहुतसे कामकथा में तल्लीन पाये जाते, तो वहां भी वे राग-द्वेषरहित मध्यस्थभाव रखते थे और इस प्रकार अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगोंपर कुछ भी लक्ष्य न देकर ये ज्ञातपुत्र-महावीर संयममार्ग में स्थिर एवं शुद्धभावमें लगे रहते थे ॥४७१॥

श्रीमहावीरने त्यागपूर्वक दीक्षा अंगीकार करनेसे पूर्व, अर्थात् गृहवासमें भी अनुमान दोवर्षसे अधिक काल पर्यन्त अप्राशुक छोड़ कर अपने लिये पीने तथा वर्तनेमें अचितजलका ही उपयोग किया था, और अन्यव्रतोंका भी घरमें यथाशक्य पालन किया। ज्ञातपुत्र-श्रमण-भगवान् महावीर एकत्वभावसे सराबोर होकर कषायाग्नि शमित करके शुद्धभावपूर्वक सम्यक्त्वभावसे भरे पूरे रहे। इतनी योग्यता अभ्यास होनेके अनन्तर श्रमण-महावीरने स्वयं सम्पूर्ण त्यागमार्ग अंगीकार किया ॥४७२॥

वे श्रमण ज्ञातनन्दन-प्रभु पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु-सेवाल-बीज-हरी-(वनस्पति) एवं त्रसकाय (दूसरे हिलते-चलते छोटे-बड़े जन्तु इत्यादि में 'आत्मा है' अतः इसीकारण) सब सजीव हैं। इसभांति तथ्य-जानकर विचारपूर्वक चिन्तन करके वे अन्यान्यप्राणी जहां भी कष्ट न पायें' ऐसी रीतिसे उपयोग रख कर विचरते हुये आरम्भसे अलग-अलग रहते थे ॥४७३॥

तथा च श्रमणतपस्वी महावीरने अपने ज्ञानसे यह भी अनुभव किया कि स्थावर-जीव भी कर्मानुसार त्रसपर्यायमें और त्रस भी स्वकर्मानुसार त्रसरूपमेंसे निकलकर भवान्तरमें स्थावरपर्यायमें उत्पन्न हो सकते हैं। सारांश यह कि जितने प्रमाणमें जीवोंका राग-द्वेष न्यून या अधिक होता है उतने ही प्रमाणमें समस्त प्राणी सब योनियोंमें कर्मानुसार नाना पर्यायोंमें परिभ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकारके संसारका वैचित्र्य सम्पूर्ण ज्ञान होनेपर उन्हें प्रतीत हुआ था ॥४७४॥

(६) उपधानश्रुत—पहला उद्देशक—पादविहार

गुरुदेव बोले—प्रिय जम्बू ! (तेरी जिज्ञासाको देखकर भगवान् महावीर के विषयमें) जैसा मैंने सुना है वही कहूंगा। श्रीमहावीरने प्रबल वैराग्यपूर्वक हेमन्त ऋतुमें दीक्षा (गृहस्थका वेश छोड़कर त्यागका वेश स्वीकार करके तुरन्त) ही वहांसे विहार किया ॥४६२॥

(दीक्षा लेते समय भगवान् महावीरको एक दिव्य (देव द्वारा) दूष्य-वस्त्र मिला था), परन्तु उस श्रमण साधकने यह विचार न किया कि इस वस्त्रका मैं शीतकालमें उपयोग करूंगा। आत्मार्थी शिष्य ! इस महाश्रमणने जीवनपर्यन्त परिषह (संकट) सहन करनेका तो पहले ही निश्चय कर लिया था (इतने पर भी उन्होंने वस्त्रसे घृणा नहींकी) फिर भी मात्र तीर्थकरोंकी प्रणालीका अनुसरण करने के लिये उन्होंने वह वस्त्र धारण किए रक्खा ॥४६३॥

श्रीमहावीरके उस सुवासित (सुगंधित) वस्त्रकी दिव्य वाससे आकर्षित होकर अधिकमास सहित चतुर्मास जैसे लम्बे समय तक भौंरे आदि बहुतसे जन्तु उनके शरीर पर बैठते थे, उनके आसपास चक्कर काटकर उन्हें हैरान करते थे। (तब भी वह योगी समभावपूर्वक अडोल रहता था) ॥४६४॥

श्रीमहावीरने पूर्वोक्त दिव्यवस्त्र लगभग तेरह महीने तक (कंधों पर रक्खा) छोड़ नहीं दिया। परन्तु फिर यह योगी वस्त्ररहित हो गये ॥४६५॥

विहार-भ्रमण करते समय त्यागी महात्मा पुरुष रथकी धुराके परिमाण जितना चक्षुका उपयोग बराबर रख कर जुये जितना मार्ग (सीधी तरह सावधानीसे देखकर) अर्थात् 'ईर्यासमिति' पूर्वक भलीभान्ति चलते थे। विहारके समय बहुतसे छोटे-छोटे बालक उन्हें देखकर डर जाते थे। कोई धूल उड़ाकर भाग जाते और कई तो रोने लग जाते थे तब भी वे समभावमें रमण करते थे ॥४६६॥

कई बार गृहस्थ और अन्यतीर्थियोंकी मिश्रित वसतिमें आनेजानेका प्रसंग आता तब उस समय श्रमण-भगवान्-महावीरके अंगोपांग देखकर कई व्यक्ति उनकी ओर आकृष्ट होकर अलग अलग प्रकारकी प्रार्थना करती हुई उनके पास आतीं। उस समय वे तो अपनी आत्मगुफा में प्रविष्ट होकर ध्यानमग्न ही रहते और ऐसे बलवत्तर विरोधी निमित्तोंके मिलनेपर भी उनकी क्रिया आत्मविकास से विरुद्ध न होती ॥४६७॥

श्रमण-महावीर गृहस्थोंके साथका अतिसंसर्ग छोड़कर प्रायः ध्यानमग्न रहा करते थे। ऐसे समय गृहस्थ उनसे पूछते तब वे कुछ भी उत्तर न देकर मौन ग्रहण कर लेते, अपनी साधना में ही दत्तचित्त रहते। इस प्रकार वे पवित्र अन्तःकरण वाले त्यागी साधक मोक्षमार्गका अनुसरण करते रहते ॥४६८॥

कोई प्रशंसा करे या निन्दा, कोई वन्दना करे या निन्दा, और कोई विचारे पामर, भाग्यहीन-अनार्य उस योगीको ताड़ना करते, वाल खींचते, दुःख देते, तव भी भव्य और शान्त भावको धारण करनेवाले उस श्रमणके मन पर उन यातनाओंका कुछ भी प्रभाव नहीं होता था। इस प्रकार साहजिकदशामें लगना प्रत्येकके लिये सुलभ नहीं है ॥४६९॥

फिर वे महायोगी मार्गमें चलते समय असह्य एवं अतिकठोर परिपहोंकी कुछ भी अपेक्षा (पर्वाह) किये विना संयममार्गमें वीरता पूर्वक अडिग रहते। मार्गमें लोगोंसे होनेवाले नृत्य-गीतोंमें वे कुछ भी रागभाव नहीं रखते, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्धको देखकर कभी उत्सुक नहीं होते थे ॥४७०॥

कदाचित् ज्ञातनन्दन-श्रीमहावीरको एकान्तमें रहते हुए वहुतसे कामकथा में तल्लीन पाये जाते, तो वहां भी वे राग-द्वेषरहित मध्यस्थभाव रखते थे और इस प्रकार अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगोंपर कुछ भी लक्ष्य न देकर ये ज्ञातपुत्र-महावीर संयममार्ग में स्थिर एवं शुद्धभावमें लगे रहते थे ॥४७१॥

श्रीमहावीरने त्यागपूर्वक दीक्षा अंगीकार करनेसे पूर्व, अर्थात् गृहवासमें भी अनुमान दोवर्षसे अधिक काल पर्यन्त अप्राशुक छोड़ कर अपने लिये पीने तथा वर्तनेमें अचितजलका ही उपयोग किया था, और अन्यव्रतोंका भी घरमें यथाशक्य पालन किया। ज्ञातपुत्र-श्रमण-भगवान् महावीर एकत्वभावसे सरावोर होकर कषायाग्नि शमित करके शुद्धभावपूर्वक सम्यक्त्वभावसे भरे पूरे रहे। इतनी योग्यता अभ्यास होनेके अनन्तर श्रमण-महावीरने स्वयं सम्पूर्ण त्यागमार्ग अंगीकार किया ॥४७२॥

वे श्रमण ज्ञातनन्दन-प्रभु पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु-सेवाल-बीज-हरी-(वनस्पति) एवं त्रसकाय (दूसरे हिलते-चलते छोटे-वड़े जन्तु इत्यादि में 'आत्मा है' अतः इसीकारण) सब सजीव हैं। इसभांति तथ्य-जानकर विचारपूर्वक चिन्तन करके वे अन्यान्यप्राणी जहां भी कष्ट न पायें ऐसी रीतिसे उपयोग रख कर विचरते हुये आरम्भसे अलग-अलग रहते थे ॥४७३॥

तथा च श्रमणतपस्वी महावीरने अपने ज्ञानसे यह भी अनुभव किया कि स्थावर-जीव भी कर्मानुसार त्रसपर्यायमें और त्रस भी स्वकर्मानुसार त्रसरूपमेंसे निकलकर भवान्तरमें स्थावरपर्यायमें उत्पन्न हो सकते हैं। सारांश यह कि जितने प्रमाणमें जीवोंका राग-द्वेप न्यून या अधिक होता है उतने ही प्रमाणमें समस्त प्राणी सब योनियोंमें कर्मानुसार नाना पर्यायोंमें परिभ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकारके संसारका वैचित्र्य सम्पूर्ण ज्ञान होनेपर उन्हें प्रतीत हुआ था ॥४७४॥

इस सम्यक्ज्ञानोपायसे सत्यके सम्पूर्ण अंशोंको प्राप्त करनेके पश्चात् उन्होंने यह स्पष्टतया जान लिया कि उपाधि (ममत्व) ही इस संसारमें बन्धन है और ममत्व अशुभभावसे ये पामर जीव संसारके सब अज्ञ दुःख सह रहे हैं। अत. कर्मोंके यथार्थ स्वरूपको समझकर उसके मूल हेतुभूत शुभाशुभभावप्रवृत्तिको आप रोकते और जगत्को भी वही आदर्श-अनुभव बताते थे ॥४७५॥

वे ज्ञानी भगवान् ईर्याप्रत्ययिककर्म तथा साम्परायिक (इस प्रकार) दोनों कर्म के आनेका मार्ग और योग-अर्थात् इनका आत्माके साथ जुड़ना, इस प्रकार तीन वस्तुतत्वोंको ठीक अनुभवमें लाकर स्वयं ईर्या-प्रत्ययिक में लगे रहते और जगत्को भी वही आदर्श अर्पण किया करते ॥४७६॥

इसभान्ति भगवान् स्वयं शुद्ध अहिंसाका अनुसरण करनेवाले, और अन्य सुयोग्य साधकोंको भी इसमार्गमें लगाकर उन्हें अधःपतनसे रोकनेमें समर्थ हुये। फिर उन्होंने स्त्रीसंसर्ग तथा उसके परिणामको यथार्थ देखनेके अनन्तर यह कहा कि अब्रह्मचर्य सारे कर्मोंका मूल है, अत. पदार्थ मोह और नारी मोहसे अलग रहना चाहिये। श्रीमहावीर स्वयं भी इन दोनोंका त्याग करके ही स्वयं सब कर्मोंका क्षय कर सके, और फिर परमार्थदर्शी केवलज्ञानी सर्वज्ञ बन सके ॥४७७॥

भगवान्ने आधाकर्मादिसे दूषित आहार सेवनसे (वृत्ति कलुषित होती है और ऐसी वृत्ति से) कर्मबंधन होता है यह अनुभव किया, और इससे जो कुछ बंधनके कारणरूप हैं उनका त्याग करके भगवान् शुद्ध-सात्विक और परिमित आहार लेते ॥४७८॥

फिर श्रमण-महावीर परवस्त्रको अपने अंग पर धारण नहीं करते थे और पर-पात्रमें भोजन जीमते भी न थे तथा मानापमानकी पर्वाह न करते हुये वीरतापूर्वक भिक्षार्थ जाया करते थे ॥४७९॥

तथा च श्रमण महावीर, भिक्षासे मिलनेवाले अन्नपानमें भी नियमित और परिमित भिक्षा ही लेते, और इस परिमितभिक्षासे सम्प्राप्त रसमें भी आसक्त न होते, एवं रसकी अपेक्षा भी न करते। वे देहभावसे इतने पर (अलग) हो गए थे कि आंखमें कुणक (छोटे से छोटा तिनका) पड़ जाने पर भी उसे निकालने की तथा खाज चलने लगे तब यहाँ खुजलानेकी तथा औषध लगानेकी भी उन्हें इच्छा न होती ॥४८०॥

वे मार्गमें चलते समय पीठ फिराकर पीछे की ओर तथा दायें बायें देखकर भी नहीं चलते थे, बल्कि मार्गपर सीधी दृष्टि रखकर एक मात्र चलने की ही क्रिया करते रहते थे। उस क्रियाके अन्तर्गत कोई बुलाने लगता और विशेष प्रसंग पड़ने पर भी कम बोलते वरन् मौन रखकर केवल अपने मार्गके सन्मुख देखकर यत्नापूर्वक चलते रहते ॥४८१॥

वे निर्ग्रन्थ महावीर हेमन्तऋतुमें दीक्षित हुये थे, और वर्षकी वर्षाऋतुके अनन्तर शरद तथा हेमन्त व्यतीत होने के पश्चात् दूसरे वर्ष शिशिर आते ही उन्होंने अपने पासके रहे हुये वस्त्र का त्याग कर दिया था, और इस वस्त्रको त्यागकर जितेन्द्रिय श्रमण वीर महावीर रीते हाथ एवं खुले कन्धेसे विचरते थे ॥४८२॥

इसरीतिसे ज्ञानी, अहिंसक और अत्यन्त निस्पृह श्रमण भगवान् महावीर ने त्यागके सब नियमोंका पालन किया। अतः अन्य मुनिसाधक भी इसदृष्टिसे और इसी विधिसे उनका ठीक अनुकरण करके पालन करें। इस प्रकार कहता हूं ॥४८३॥

॥ उपधानश्रुत अध्ययन का पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

दूसरा उद्देशक—महावीरके विचरनेके स्थान

निर्ग्रन्थ जंबूने भगवान् सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न किया कि भदन्त गुरुदेव ! श्रमण-भगवान्-महावीरने विहार करते हुए कहां और कैसे स्थानोंमें निवास किया उसे आप कृपा करके कहें ॥४८४॥

गुरुदेव बोले जंबू ! झोंपड़े-धर्मशाला-प्याऊ, पीठमें रहते; तब कभी लुहारादिके कारखानें अथवा घासके गंजके नीचे भी रह जाते ॥४८५॥

श्रमण-महावीर किसी समय मुहल्ले, बाग या नगरमें रहते; तब कभी मसाण और सूने घरोंमें या किसी वृक्षके तले भी रह जाते ॥४८६॥

इस प्रकार उपरोक्त स्थानोंमें अप्रतिबद्धरूपसे विचरकर वे तरुणतपस्वी प्रमाद छोड़कर समाधिस्थ, आत्मलीन होकर तेरह वर्ष तक पवित्र ध्यान-चिन्तन में लगे रहे ॥४८७॥

ये अप्रमत्त-महावीर आत्म-साधमें लगे रहे तब भी प्रमाद-निद्राका कभी सेवन न करते। (दिन-रात ध्यान-समाधि-शुद्धभावकी साधमें इतने अधिक एकाग्र-चित्त रहते कि मानसिक सुख पानेके लिए सामान्यतया निद्राकी जो आवश्यकता रहा करती वह इन्हें अत्यन्त अल्पतम थी) कभी सुषुप्ति आ भी जाती तो भी वे आत्माभिमुख होकर फिर आत्मानुष्ठानमें संलग्न होनेके लिए तुरन्त जागृत हो जाते। उनका शयन लम्बा-आसन भी सदैव अप्रमत्तदशाके समान था ॥४८८॥

जंबू ! यद्यपि उपरोक्त कथनसे जाना कि श्रमण-भगवान् महावीर साधनाकालके अवसरमें आत्मभानपूर्वक जागृत थे, तथापि जहांतक इनकी साधना की पूर्ण सिद्धि नहीं हुई वहां तक वे बाह्यभावमें सविशेष ध्यानस्थ और जागृत

ही रहते थे। उन्हें किसी समय प्रसंगवश यदि निद्रा आने लग पड़ती तो उठकर संभलकर तनकर बैठ जाते, और बैठने पर भी नींद आने लगती तो वे शीतकाल की कड़कड़ाती सर्दीकी रातमें भी मुहूर्तमात्र भलीभांति (चंक्रमण द्वारा) निद्रा टालनेका पुरुषार्थ करनेमें लग जाते ॥४८९॥

उपरोक्त निर्जनस्थान या वृक्षोंके तले रहकर, ध्यान-समाधिका आचरण करते हुए इस तरुणतपस्वी श्रमण महावीरपर (अगोचर स्थान होनेसे) कई बार सांप नेंवले या किसी अन्य प्रकारके विषैले जीवजन्तु तथा श्मशान जैसे स्थानके समीप रहते हुए गिद्धादि पक्षी आकर उपद्रव करते, काटते या मनोरंजन करते, तथा ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके उपसर्ग (संकट) उस ध्यानस्थ महावीरके मार्गमें आकर बाधा डालते थे ॥४९०॥

इसी प्रकार यह योगी जब सूने घरोंमें ध्यानमग्न हो जाते तब कई बार चोर इस एकान्त स्थानको देखकर वहां उन्हें सतानेके लिए आ जाते। कभी लंपट-जन भी इस एकान्त स्थानका लाभ लेनेकेलिए आ धमकते, तथा इन्हें अडिग ध्यान में खड़े तपस्वी देखकर ये अपने काममें बाधक समझकर उन्हें वहांसे भगानेकेलिए खूब तंग करते। कई गांवके रक्षक (पुलिस) आदि चोरकी खोज करने जाते समय "यही चोर है" स्वयं पकड़ा न जाय अतः ध्यानका बहाना कर रहा है, वहमी विचारसे अपने हथियारों द्वारा उन्हें कष्ट देते थे और कई बार तो उनकी मनोमोहकमुद्रा देखकर बहुतसी मुग्धा उनपर कामासक्त होकर उनसे धृष्टता करने लगतीं। अज्ञजन ऐसे अनेक अनुकूल प्रतिकूल आवरणोंके कांटे उनके सुकोमल निवृत्ति पथमें बिखेरते थे ॥४९१॥

परन्तु फिर भी इस श्रमणने ऐसे-ऐसे मनुष्य-देव और पशुजन्य-अनुलोम-प्रतिलोम दोनों प्रकारके भयंकर संकट तथा सुवासमय-दुर्वासमय अनेक शब्दोंके तथा प्रशस्त-अप्रशस्त स्पर्श आदिके उपसर्ग सहन किए ॥४९२॥

ऐसे प्रसंगमें यह आदर्श तपस्वी हर्ष-शोककी विभागजन्यस्थितिसे पर रहें। इतना ही नहीं बल्कि इस महाश्रमणने उस समय वाणीका भी उपयोग नहीं किया। वे विरोधी कारणके अतिरिक्त मौनका अधिक सेवन किया करते ॥४९३॥

(निर्जन स्थलोंमें इस योगीश्वरको इकला देखकर) रात या दिनमें चोर-जार या कुछ ऐसे इतर अप विचारके गुण्डे-लोग उनसे पूछते कि "अरे तू कौन है! यहां क्यों खड़ा है?" इस ढंगसे पूछने पर भी इस ध्यान-मग्न मुनिवरकी ओरसे जब कुछ भी उत्तर न मिलता तब ये मूर्ख लोग चिढ़कर उन्हें खूब ही सताते, तब भी देहभावसे पर रहने वाले ये मुक्त-योगी समाधिमें ही तल्लीन रहते, कई बार चिन्तन और मन्थनमें लगे रहने वाले इस शान्त और वीरश्रमण महावीरको जब कभी कोई यह पूछता कि "अरे यहां कौन खड़ा है?" तब वे यदि

ध्यानस्थ न होते तो अवश्य उत्तर देते कि भिक्षुक हूं! इस उत्तरको सुनकर वे लोग कहते कि चला जा, निकल जा, यहांसे जल्दी बाहर निकल जा।" तब वे मुनीश्वर तुरन्त उत्तर दिए विना उत्तमपुरुषोंकी रीतिके अनुसार निःसंकोच वहां से उठकर अन्यत्र चले जाते, परन्तु वे लोग जानेके लिए न कहकर कुपित ही हो जाते तो वे मौन रह जाते, ध्यानस्थ हो जाते ॥४६४-४६५॥

जब शिशिर ऋतुमें शीतल पवन जोरसे चलता, जब कि लोग थर-थर कांपते थे, जब अन्य जन ठंडक सहन न कर सकनेके कारण निर्वात (जहां वायुका प्रवेश न हो सके) ऐसे स्थानको खोजते थे, अथवा वे लोग कपड़ा पहनना चाहते थे, या तापस लोग लकड़ियां जलाकर शीतका निवारण करते थे। इस प्रकार सर्दीका सहन करना अत्यन्त कठिन था तब ऐसे समयमें संयमीश्वर-भगवान् वीरप्रभु निरीह-इच्छारहित होकर खुले स्थानमें रहकर भी शीतको सहन करते थे। कभी अत्यन्त शीत पड़ने पर उसे दुसह्य समझकर रात्रिमें चंक्रमण द्वारा घूमफिर कर समभाव रखते हुए पुनः भीतर आकर ध्यान और शुद्धभाव द्वारा सर्दीके प्रकोपको सहन करते ॥४६६॥

इस रीतिसे योगी-वशीश्वर-श्रमण-महावीरमें देहाध्यासका लेशमात्र भी प्रभाव न था। अधिकाधिक जागरूक रहकर उपरोक्त जिस विधिका संयम-पालन किया है; उस विधिका संयम पालन प्रत्येक साधकके लिए विवेकपूर्वक पालन करना हितावह है॥ इस प्रकार कहता हूं ॥४६७॥

॥ उपधानश्रुत अध्ययनका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तीसरा उद्देशक—योगी-श्रमणकी सहिष्णुता

महानिर्ग्रन्थ महावीर कर्कशस्पर्श-सर्दी-ताप, तथा डांस और मच्छरके डंक आदि नाना परिषहोंको समभावपूर्वक सहन करते थे ॥४६८॥

फिर वे दीर्घतपस्वी महावीर दुर्गम्य लाटदेशकी वज्रभूमि और शुभ्रभूमि नामके दोनों विभागोंमें विचरते थे। वहां उनको रहनेके स्थान भी निकृष्ट-घटिया-विषम मिलते और आसन-बैठनेके स्थान भी ऐसे ही अप्रशस्त मिलते थे ॥४६९॥

लाट देशमें विचरते समय उस महाश्रमणको अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। भिक्षाके लिए जाते समय वहांके अनार्यलोक उस वीरश्रमणको तरसाने-मारनेके अनेक प्रपंच करते। अथवा घरमें बैठे-बैठे बहुतसे अनार्य तो अपने जंगली आखेटक (शिकारी) कुत्तोंको उस ओर छोड़ देते। फिर भी इन संकटोंको सम-

भावसे सहते। ऐसे उपसर्ग सहकर फिरते-फिरते कभी किसी स्थलसे भिक्षा मिलती तो वह भोजन अति-रूक्ष और बहुत थोड़ा मिलता ॥५००॥

इन अनार्य प्रदेशोंमें सामान्य रीतिसे विचरते समय भी बहुतसे वन्य-प्राणी एवं श्वपद उन्हें कष्ट देते। परन्तु यह समां देखकर अनार्योंको कौतूहल भी होता और बहुतसे अज्ञजन तो कुत्तोंको शू शू के संकेतों द्वारा उस श्रमणको काटखानेंकी उलटी प्रेरणा देते, उनमें से कोई दैववश ऐसे भी मिलते कि जो ऐसा दुःसाहस करना न चाहते हों, इसके अतिरिक्त कोई विरले इस धृष्टताके रोकनेंका प्रयत्न भी करते ॥५०१॥

ऐसे अनार्यो की वसतिमें वे भगवान् मात्र एक दो ही नहीं वल्कि कई वार विचरे थे। वहां की वासभूमिमें वसनेंवाले लोगों को अपने लिये भी रूक्ष-तामसी भोजन वड़ी कठिनाई द्वारा मिलनेंसे वे इतनें अधिक तामसी-स्वभावके हो गये थे कि साधुको भिक्षार्थ दूर से देखते ही द्वेषी होकर अपने कुत्तों को पुनः पुनः 'शू शू' के संकेतसे उनके ऊपर छोड़कर एक प्रकार से दानवी उपद्रव करते। इसीलिये बौद्धादि दूसरे कई भिक्षुओंको यदि उस प्रदेश में विचरनेंका काम पड़ता तो वे (कान तक की) लंबी लाठी (अथवा उनके उपद्रवसे वचनेंका पूर्ण साधन) हाथ में लेकर बाहर निकला करते, तो भी कुत्ते उनके पीछे लगजाते और अपनी चालाकीसे उन्हें काट खाते। इस प्रकार लाटप्रदेश मुनिविहारकेलिये सर्वथा विकट था तव भी भगवान्नें उस परिस्थिति में रहकर देहभाव भुलाते हुये तथा अशुभ-मनोवृत्ति न आने देकर प्रत्येक प्राणी के प्रति-प्रेम-समदर्शीभाव बताते हुये अनेक प्रकारके संकट और अनार्यलोगों के अशुभ-कड़वे वचनों को समभाव और प्रसन्न चित्तसे सहन किया ॥५०२॥

जैसे संग्रामके प्रमुखभाग में रहनेंवाला वलवान हाथी पराक्रमपूर्वक विजय प्राप्त करता है वैसे ही साधकपुंगव महावीर भी आन्तरिक-संग्राम में (अहिंसा-सत्य और संयम साधनों द्वारा) विजय पाकर पार हुये ॥५०३॥

किसी समय उन्हें लाटप्रदेशके भयानक और वड़े जंगलों में चलते-चलते सांझ हो जाती तव कई वार श्रमणको रुकने के लिये गांव भी न मिलता (और वहां ही किसी वृक्षके नीचे रहजाना पड़ता), और वे किसी गांव में प्रवेश करनें का मन करते तव वहांके गांवके बाहर से ही अनार्य सामनें आकर उन्हें धमकाते भय दिखलाते हुये यह कहते कि *यहां स्थान नहीं है। ओय ! उधर जा।* अर्थात् दूसरे गांव चला जा ॥५०४॥

कई बार इस श्रमणको लाटदेश में वसनेंवाले, अनार्य, लकड़ी, मुक्का, भाला, पत्थर-खपरैल-दिखाकर डराते, और उपहासपूर्वक यह भी कहते कि "यह भूत

जैसा कौन आगया है ?" यह कहकर केवल औरों को इकट्ठा करने के लिये चिल्लाने भी लग पड़ते तब दमभर में दूसरे लोगोंका ठट्ट जोड़ लेते ॥५०५॥

किसी समय तो वहांके निवासी अनार्य इस महा—श्रमणको पकड़ लेते, और कौतूहलसे उनके देह पर अनेक पीड़ायें देकर उनके शरीर का मांस तक नोच लेते, और उनपर धूल भी फेंकते। कुछ मूर्ख तो उनको कई वार ऊपर उछालकर नीचे पटक देते। अथवा ध्यानस्थ आसनसे बैठे हुये होने पर उन्हें ध्यानसे डगमगाकर विचलित करने का दुःसाहस करते, परन्तु ऐसे विकटतर प्रसंगों में देहाध्यास-देहममत्व को दूरकरके वासना रहित होकर ये योगी समभाव धारण किये रहते ॥५०६॥

इस रीति से जैसे कवच से सज्जित वीर-सुभट युद्ध के मोरचे पर डटकर, भालेसे भेदित किया जानेपर भी (कवच होनेसे) भेदित होता-डरता नहीं, ऐसे ही प्रवल सत्यवान् भगवान् भी इन कदर्थनाओं से उपसर्गोके सब कष्ट सहते हुये भी चंचल चित्त न होकर शुद्धभावपूर्वक अडोल-अचल रहे ॥५०७॥

इस रीतिसे श्रमण भगवान् महावीरने जिस मार्ग का पालन किया है उस मार्ग का अन्यसाधक भी अनुसरण करें ॥ इस प्रकार कहता हूं ॥५०८॥

॥ उपधानश्रुत अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चौथा उद्देशक—वीर प्रभुकी तपश्चर्या

श्रमण भगवान् महावीर रागके रोगोंसे अछूत रहकर नीरोगी रहते हुये मिताहार अल्पभोजन करते। वे नैसर्गिक जीवनसे जीवित रहते। उनका शरीर अपने आप चमचमाट करता था, क्योंकि-नीरोग था। फिर भी यदि अकस्मात् व्याधि-रोग आ पड़े तो उसका प्रतीकार (दूर करनेका उपाय) करनेकी इच्छा तक नहीं करते थे ॥५०९॥

वे तरुण-तपस्वी प्रतीकार वृत्तिसे पर रह कर उनको रोगोंकी चिकित्सा रूप वमन, विरेचन, तैलमर्दन, स्नान, पगचम्पी दातनकी आवश्यकता नहीं होती थी ॥५१०॥

वे श्रमण इन्द्रिय धर्मोसे विषयोंसे विरक्त रहते और अल्पभाषी होकर विचरते ॥५११॥

उस तपस्वीने अपना देह इतना अधिक ऋतुसहिष्णु बना लिया था कि वे शरद् ऋतुमें शीतल छायाके नीचे, और गर्मीके मौसममें खुले तापमें उकड़ आसन रखकर ध्यानावस्थामें डटे रहते ॥५१२॥

यह तपस्वी-महावीर पारणेके दिन मात्र शरीरके निर्वाह निमित्त आहारार्थ जाते; और कई वार तो मात्र रूखा भात, कुटे वेरोंका चूर्ण और सावत उड़दके आहार में ही निर्वाह कर लेते। इस प्रकार इन तीनों वस्तुओं पर आठ आठ महीने विता दिये ॥५१३॥

कई वार एकदम १५-१५ उपवास, मास-क्षमणतप-पूरे महीनेके उपवास, २-२ मासोपवास तथा ६-६ महीने तक अन्न पानीको छोड़ कर-चउविहार उपवास, भोजनकी इच्छाके विना अप्रमत्त होकर विचरते। एवं २-२, तीन-तीन, ४-४ उपवासके पारणक पर भी जव अन्न-पानी लेते तव निरासक्तभाव रहता, शरीरमें पूर्ण समाधि रहती, सादा आहार लेते ॥५१४॥

इस भांति देहादि संयोग तथा कर्मका यथार्थ स्वरूप जाननेके अनन्तर उनके जीवन में भूल नहीं होती थी—अशुभभावसे वचते थे ॥५१५॥

वे गांवमें, नगरमें जाकर किसी अन्यके लिये किया गया आहार (यदि उस दाताको संयमी भावनापूर्वक देनेकी इच्छा हो तव) ग्रहण करते और इस रीतिसे विशुद्धाहार प्राप्त करके नीरागवृत्तिसे (संयम के हेतुसे) उसका उपयोग करते ॥५१६॥

आहारार्थ जाते समय मार्गमें कौवे-कवूतर या अन्य पक्षी चुगते हों या अन्य प्राणी कुछ खाते-पीते हों तो उनके काम में भंग न पड़े इस भांति शनैः शनैः चलते अथवा उस मार्गको छोड़कर या वह घर छोड़कर दूसरे मार्गसे चले जाते ॥५१७॥

ये श्रमण आहारचर्या के लिये किसीके घर प्रवेश करते समय कोई अन्य ब्राह्मण-श्रमण-भिखारी-अतिथि-चाण्डाल-विल्ली-कुत्ता आगे पीछे आया हुआ देखते, अथवा उसे खान-पान प्राप्त करते देखते, तव वे प्रभु उनकी क्रियामें विक्षेप या द्वेष न करते, न उनके कार्यमें अन्तराय-निमित्त होते, अतः दूर चले जाते, इस रीतिसे वे छोटे-वड़े किसी जीवको अपने द्वारा लेशमात्र भी दुःख उत्पन्न न हो ऐसा लक्ष्य रखते ॥५१८॥

प्राप्त आहार भीगा हो, सूखा-ठंडा-नीरस-धान्यका आहार हो तो उसे समभावसे उपयोगमें लेते, कुछ न मिलने पर सहज तप मानकर मस्त-अनपेक्ष रहते ॥५१९॥

वे उकड़ू गोदोहासन-वीरासनादि आसनोंको साधकर, उन पर स्थिर होकर समाधिस्थ रहकर, ध्यानमें लय रहते, उस अवस्थामें ऊर्ध्व-अधो-तिर्यक् तीनों लोकका स्वरूप विचारने लगते ॥५२०॥

ये कषायरहित-आसक्तिरहित होनेसे शब्दादि विषयके चक्करमें न आते थे। ये सदैव आत्मध्यानमें मग्न रहते, छद्मावस्थामें भी उपयोगपूर्वक कर्मस्तरको

दूर करनेके लिये अतिप्रवल पुरुषार्थ किया करते थे। वे किसी भी समय प्रमाद जालमें न फंसते ॥५२१॥

इस प्रकार उन्होंने स्वयं आत्मयोगमें लगकर आत्मशुद्धिको पाया, साधना के अन्त तक सत्प्रवृत्तिमान होते हुये अमायी रह सके। अन्तमें साधनासिद्ध होकर सर्वथा कर्मनिर्जरा की। तथा सिद्ध-बुद्ध सर्वज्ञ भगवान् वन गये। साधनाका यह क्रमिक विधिविधान उन्होंने ऐहिक-पारलौकिक लालसाके विना निस्पृहतापूर्वक आचरण किया। उस हेतुको लक्ष्यमें रखकर अन्यसाधक भी उस मार्गमें विचरें और उसी प्रकारका व्यवहार भी करें। इस प्रकार कहता हूं ॥५२२॥

चौथा उद्देशक समाप्त ॥ उपधान श्रुत नामक नौवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ आचारांगका प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त ॥

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त—महावीरस्स

श्री आचाराङ्ग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कंध

पहली चूडा

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा—प्रथम उद्देशक

आहारके लिए गृहस्थके घरमें प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी इन पदार्थोंका अवलोकनकरके यह जाने कि यह अन्न, पानी, खादिम और स्वादिम पदार्थ, द्वीन्द्रियादि प्राणियों से, शाली चावल आदिके बीजोंसे और अंकुरादि हरी सब्जी की विराधनासे संयुक्त है या मिश्रित है या सचित्त जलसे गीला है तथा सचित्त मिट्टीसे अवगुंठित—सना हुआ है। यदि इसी प्रकारका आहार—पानी, खादिम, स्वादिम आदि पदार्थ गृहस्थके घरमें या गृहस्थके पात्रमें हो तो साधु उसे अप्रासुक—सचित्त तथा अनैषणीय—सदोष मानकर ग्रहण न करे ॥५२३॥

यदि भूलसे उस आहारको ग्रहण कर लिया है तो वह भिक्षु उस आहारको लेकर एकान्त स्थानमें चला जाए और एकान्त स्थानमें या आराम—उद्यान या उपाश्रयमें अण्डादि—द्वीन्द्रियादि जीव-बीज-हरित-ओस-जलसे रहित, जहाँ पर चींटिएँ, लीलन-फूलन (फूही), मिट्टीयुक्त जल अथवा उल्ली काई आदि तथा मकड़ीके जाले एवं दीमकोंके घर आदि न हों ऐसे स्थानोंमें जाकर उस आहारसे उन जीवोंको अलगकर, उसमें मिश्रित हों तो विशोधकर तदनन्तर यत्नापूर्वक उस आहार एवं पानीका उपभोग करले। यदि वह उसे खाने पीनेमें असमर्थ है तो साधु उसको लेकर एकान्त स्थान पर चला जाए और वहां जाकर दग्ध (जली) स्थंडिल भूमिपर, लोहके कूड़े पर, तुषके ढेरपर, या इसी प्रकारके अन्य प्रासुक एवं निर्दोष स्थान पर जाकर उस स्थानको आंखोंसे अवलोकन करके और रजोहरणसे प्रमार्जित करके उस आहारको उस स्थानपर परठ—डाल दे ॥५२४॥

आहारके लिए···साध्वी औषधिके विषयमें यह जाने कि इन औषधियोंमें जो सचित हैं, अविनष्टयोनि हैं, जिनके दो या दो से अधिक भाग नहीं हुए हैं, जिसका तिरछा छेदन नहीं है,जो प्राशुक नहीं हुई हैं अथवा अपक्वफली जो सचित्त या अभग्न है ऐसी औषधिको देखकर उसे अप्रासुक एवं अनेषणीय मानता हुआ साधु उसके मिलने पर भी उसे ग्रहण न करे ॥५२५॥

परन्तु औषधिके लिए……जो अचित्त हैं, विनष्टयोनि वाली हैं, जिसके दो भाग हो गए हैं, जिनके सूक्ष्म खंड किए गए हैं, जो जीव जन्तुसे रहित हैं, तथा मर्दित एवं अग्नि द्वारा परिपक्व की गई हैं, इस प्रकारकी प्रासुक—अचित्त एवं एषणीय–निर्दोष औषध गृहस्थके घरसे प्राप्त होने पर साधु ग्रहण करे ।।५२६।।

साधु अथवा साध्वी भिक्षार्थ गृहस्थके घरमें प्रविष्ट होने पर, शाली-यव-गोधूमादि अथवा जिसमें सचितरज वहुत है गोधूमादिका चूर्ण अथवा चावल या धान्यादिका चूर्ण एवं कण सहित एक बार भुनें हुए अप्रासुक यावत् अनेषणीय पदार्थोंको ग्रहण न करे ।।५२७।।

…चूर्ण जो कि दो तीन बार या अनेक बार अग्निसे पका लिया गया है। ऐसा एषणीय निर्दोष पदार्थ उपलब्ध होने पर साधु उसे स्वीकार करे ।।५२८।।

गृहस्थीके घरमें भिक्षाके निमित्त प्रवेश करनेकी इच्छा रखने वाला साधु या साध्वी अन्यतीर्थी या गृहस्थके साथ भिक्षाके लिए प्रवेश न करे, तथा दोषको दूर करने वाला उत्तम साधु-पार्श्वस्थादि आचरणमें शिथिल साधुके साथ भी प्रवेश न करे और पहले प्रविष्ट हुओंके साथ निकले भी नहीं ।।५२९।।

वह साधु या साध्वी बाहर स्थंडिल भूमि (मलोत्सर्गका स्थान) में या स्वाध्यायभूमिमें जाता हुआ या प्रवेश करता हुआ अन्यतीर्थी……नहीं ।।५३०।।

गृहस्थके घरमें प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी अन्यतीर्थी परपिंडोपजीवी गृहस्थ-याचक और शिथिलाचारी साधुको निर्दोष भिक्षा ग्रहण करने वाला श्रेष्ठ साधु, अन्न, जल, खादिम और स्वादिमरूप पदार्थोंको न तो स्वयं देवे और न किसीसे दिलावे ।।५३१।।

वह साधु या साध्वी एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जाते हुए अन्यतीर्थी यावत् पार्श्वस्थ आदिके साथ न जावे ।।५३२।।

गृहस्थके घरमें प्रविष्ट साधु-साध्वी इस बातकी गवेषणा करे कि किसी भद्र गृहस्थने एक साधुका उद्देश्य रखकर प्राणी, भूत, जीव और सत्वोंका आरम्भ करके आहार बनाया हो, तथा साधुके निमित्त मोल लिया हो, उधार लिया हो, किसी निर्बलसे छीनकर लिया हो, एवं साधारण वस्तु दूसरेकी आज्ञाके विना दे रहा हो, और साधुके स्थान पर घरसे लाकर दे रहा हो, इस प्रकारका आहार लाकर देता हो तो इस प्रकारका अन्न, जल, खादिम और स्वादिम आदि पदार्थ दातासे भिन्न पुरुषकृत, अथवा दाताकृत हो, घरसे बाहर निकाला गया हो या न निकाला गया हो, दूसरेने स्वीकार किया हो अथवा न किया हो, आत्मार्थ किया हो, या दूसरेके निमित्त किया गया हो, उसमेंसे खाया गया हो, अथवा न खाया गया हो, थोड़ासा आस्वादन किया हो,

या न किया हो, इस प्रकारका अप्रासुक अनेषणीय आहार मिलनेपर भी साधु ग्रहण न करे ॥५३३॥

इसी प्रकार बहुतसे साधुओंके लिए बनाया गया हो, एक साध्वी अथवा बहुतसी साध्वियोंके निमित्त बनाया गया हो वह भी ग्राह्य नहीं है। इसी भाँति चारों आलापक जानने चाहिएँ ॥५३४॥

...कि जो आहारादि बहुतसे शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, भिखारी आदिको गिन २ कर या उनके उद्देश्यसे जीवोंका आरम्भ-समारम्भ करके बनाया हो यावत् ग्रहण न करे ॥५३५॥

......कि अशनादिक चतुर्विध आहार जो कि शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, अतिथि, दीन और भिखारियोंके निमित्त तैयार किया गया हो और दाता उसे दे, तो इस प्रकारके अशनादि आहारको जो कि अन्य पुरुषकृत न हो, घरसे बाहर न निकाला गया हो, अपना अधिकृत न हो, खाया या आसेवन न किया गया हो तथा अप्रासुक और अनेषणीय हो, तो साधु ऐसा आहार भी ग्रहण न करे ॥५३६॥

और यदि साधु इस प्रकार जाने कि यह आहारादि पदार्थ अन्यकृत है, घरसे बाहर ले जाया गया है, अपना अधिकृत है तथा खाया और भोगा हुआ है एवं प्रासुक और एषणीय है, तो ऐसे आहारको साधु ग्रहण करे ॥५३७॥

गृहस्थके कुलमें आहार प्राप्तिके निमित्त, प्रवेश करनेकी इच्छा रखने वाले साधु या साध्वी इन वक्ष्यमाण कुलोंको जाने—जिन कुलोंमें नित्य आहार दिया जाता है, अग्रपिंड-आहारमें से निकाला हुआ पिंड दिया जाता है, नित्य अर्द्धभाग......, नित्य चतुर्थ भाग आहार......इस प्रकारके कुलोंमें जो कि नित्य-दान देने वाले हैं तथा जिन कुलोंमें भिक्षुओंका भिक्षार्थ निरन्तर प्रवेश हो रहा है, ऐसे कुलोंमें अन्न पानादिके निमित्त साधु न जावे ॥५३८॥

यह साधु और साध्वीकी समग्रता—निर्दोषवृत्ति है, वह सर्व शब्दादि अर्थों में यत्न वाला, संयत अथवा ज्ञान, दर्शन और चारित्रसे युक्त है। अतः वह इस वृत्तिका परिपालन करनेमें सदा यत्नशील हो। इस प्रकार मैं कहता हूं ॥५३९॥

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

वह साधु व साध्वी, गृहस्थीके घरमें आहार प्राप्तिके निमित्त प्रविष्ट होने पर अशनादि चतुर्विध आहार आदिके विषयमें इस प्रकार जाने—यह अशनादि

आहार अष्टमी, पौषध-व्रत विशेषके महोत्सवमें एवं अर्धमासिक, मासिक, द्विमासिक, त्रिमासिक, चतुर्मासिक, पंचमासिक और षाण्मासिक महोत्सवमें, तथा ऋतु, ऋतुसन्धि और ऋतु परिवर्तन महोत्सवमें, बहुतसे श्रमण शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारियोंको एक बर्तनसे, दो बर्तनोंसे एवं तीन और चार बर्तनोंसे परोसते हुए देखकर तथा छोटे मुखकी कुम्भी और बांसकी टोकरीसे परोसते हुए देखकर एवं संचित किए हुए घी आदि पदार्थोंको परोसते ······कर इसप्रकारका अशनादि चतुर्विध आहार जो पुरुषान्तरकृत नहीं है, यावत् अनासेवित, अप्रासुक अनेषणीय है, ऐसे आहारको मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे ॥५४०॥

और यदि इसप्रकार जाने कि यह आहार पुरुषान्तरकृत यावत् एपणीय है, तो मिलने पर ग्रहण कर ले ॥५४१॥

साधु अथवा साध्वी गृहस्थके घरमें प्रवेश करते हुए इन कुलोंको जाने, यथा—उग्रकुल, भोग०, राजन्य०, क्षत्रिय०, इक्ष्वाकु०, हरिवंश०, गोपालादि०, वैश्य०, नापित०, वर्द्धकी (बढ़ई) कुल, ग्रामरक्षक०, और तन्तुवायकुल तथा इसी प्रकारके और भी अनिन्दित, अगर्हित, कुलोंमें से प्रासुक अन्नादि चतुर्विध आहार यदि प्राप्त हो तो साधु उसे ग्रहण कर ले ॥५४२॥

······में प्रविष्ट होनें पर यदि यह जाने कि यहां पर महोत्सवके लिए लोग एकत्रित हो रहे हैं, तथा पितृपिण्ड या मृतकके निमित्त भोजन हो रहा है या इन्द्र महोत्सव, स्कन्ध०, रुद्र०, मुकुन्द०, भूत०, यक्ष०, नाग०, इसीप्रकार स्तूप, वृक्ष, गिरि, गुफा, कूप, तालाब, ह्रद (भील), नदी, सागर और आकर-सम्बन्धी महोत्सव हो रहा है तथा इसीप्रकारके अन्य महोत्सवोंपर बहुतसे श्रमण········(देखो सूत्र ५४०) न करे ॥५४३॥

और यदि इसप्रकार जाने कि जिनको देना था दिया जा चुका है तथा वहां पर यदि वह गृहस्थोंको भोजन करते हुए देखे, तो उस गृहपतिकी भार्यासे भगिनिसे, गृ०के पुत्रसे, गृ०की पुत्रीसे, पुत्रवधूसे, धायमातासे, दास-दासी नौकर-नौकरानीसे पूछे—हे आयुष्मति ! भगिनि ! मुझे इन खाद्यपदार्थोंमें से अन्यतर भोजन दोगी ? इसप्रकार बोलते हुए साधुके प्रति यदि गृहस्थ चार प्रकारका आहार लाकर दे अथवा अशनादि चतुर्विधआहारकी स्वयमेव याचना करे या गृहस्थ स्वयं दे और वह प्रासुक यावत् ग्रहण करे ॥५४४॥

साधु व साध्वी अर्द्ध योजन प्रमाण संखडि-जीमनवारको जानकर आहार लाभके निमित्त जानेका संकल्प न करे ॥५४५॥

यदि पूर्व दिशामें प्रीतिभोज हो रहा है, तो साधु उसका अनादर करता हुआ पश्चिम दिशाको और पश्चिम दिशा······हुआ पूर्व दिशाको जाए। इसी

प्रकार दक्षिण दिशा······करता हुआ उत्तर दिशाको, और उत्तर दिशा······हुआ दक्षिण दिशाको जाए ॥५४६॥

तथा जहां पर संखडी हो, जैसे कि ग्राममें, नगर० खेट०, कुनगर०, एवं मडंब, पत्तन, खदान, द्रोणमुख, व्यापार-स्थान, आश्रम और सन्निवेश यावत् राजधानीमें होने वाली संखडीमें स्वादिष्ट भोजन लानेकी प्रतिज्ञासे जानेके लिए मनमें इच्छा न करे। केवली भगवान् कहते हैं—कि यह कर्मबन्धका मार्ग है ॥५४७॥

संखडीमें संखडीकी प्रतिज्ञा से जाता हुआ साधु यदि वहां लाकर दिए हुए को भोगता है (खाता) हैं, तो वह आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रित, खरीदा हुआ, उधार लिया हुआ, छीना हुआ, दूसरेकी विना आज्ञा लिया हुआ और सन्मुख लाया हुआ खाता है। तात्पर्य यह है कि यदि साधु वहां जाएगा तो संभव है कि उसे सदोष आहार लेना पड़े। कोई श्रद्धालु गृहस्थ साधुके (संखडिमें आनेकी संभावनासे) छोटे द्वारको बड़ा और बड़ेको छोटा करेगा, समशय्या को विषम और विषमको सम करेगा, तथा वायुयुक्त शय्याको वायुरहित और निर्वातको सवात करेगा। इसी भांति उपाश्रयके अन्दर और बाहर हरियालीका छेदन करेगा तथा उसे जड़से उखाड़कर आसनको व्यवस्थित बनाएगा। क्योंकि वह शय्या अकिंचन भिक्षुके लिए है। अतः वह संयत निर्ग्रन्थ इसप्रकारकी शय्याको एवं विवाहादिकके समयकी पहली जीमनवार अथवा मृतकके निमित्त पीछे की जाने वाली जीमनवारको संखडीकी प्रतिज्ञासे जानेके लिए मनमें संकल्प न करे ॥५४८॥ यह निश्चय ही साधु······कहता हूं ॥५४९॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय उद्देशक

संखडीमें गए हुए साधुको वहां अधिक सरस आहार करने एवं अधिक दूधादि पीनेके कारण वमन हो सकता है या उस आहारका सम्यक्तया-पाचन न होनेसे विशूचिका, ज्वर या शूलादि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए भगवान् ने संखडीमें जानेके कार्यको कर्म आनेका कारण कहा है ॥५५०॥

इसके अतिरिक्त संखडीमें गया हुआ साधु गृहपति एवं उसकी पत्नी, परिव्राजक-परिव्राजिकाओंके सहवाससे नशा करके निश्चय ही अपनी आत्माका भान भूल जाएगा। और उस स्थानसे बाहर आकर उपाश्रय की याचना करेगा, परन्तु अनुकूल स्थान न मिलनेपर वह गृहस्थ या परिव्राजकोंके साथ ही ठहर जाएगा। और स्वरूपको भूलकर विपरीत भाव को प्राप्त हो जाएगा। उसे देखकर रात्रि

या विकालमें वे उसके पास आकर कहेंगे कि हे आयुष्मन् श्रमण ! वगीचे या उपाश्रयके एकान्त स्थानमें चलकर ग्रामधर्म-मैथुन का आसेवन करें। इस प्रार्थना को सुनकर कोई अनभिज्ञ साधु उसे स्वीकार भी कर सकता है। अतः इस तरह आत्म-पतन होनेकी सम्भावना होनेकेकारण भगवानने संखडिमें जानेका निषेध किया है, और इसे कर्मवन्धका स्थान कहा है। इसमें प्रतिक्षण कर्म आते रहते हैं। इसलिए साधुको पूर्वसंखडी या पश्चात्संखडीमें जाने का मनमें भी संकल्प नहीं करना चाहिए ॥५५१॥

जो साधु या साध्वी किसी अन्यस्थान पर संखडीको सुनकर तथा मनमें निश्चयकर उत्सुक आत्मासे वहाँ जाता है, संखडीका निश्चयकर संखडिवाले ग्राम में या संखडिसे भिन्न, जिन घरोंमें संखडी नहीं है आधाकर्मादि दोषोंसे रहित भिक्षा प्राप्त होती है। उनमें इस भावनासे आहारको जाता है कि मुझे वहां भिक्षा करते देखकर संखडिवाला व्यक्ति मुझे आहार की विनती करेगा, ऐसा करने से मातृ-स्थान-कपट का स्पर्श होता है। अतः साधु इस प्रकारका कार्य न करे। वह भिक्षु संखडियुक्त ग्राममें प्रवेशकरके भी संखडीवाले घरमें आहारको न जाए, परन्तु अन्यघरोंसे सामुदानिक, निर्दोष, केवल साधुवृत्तिसे प्राप्त हुआ, पिण्डपात-आहार ग्रहण करके उपयोग में ले ॥५५२॥

यदि साधु व साध्वी यह निश्चयरूप से जानले कि इस ग्राम यावत् राजधानीमें संखडी है तो वह उस ग्राम यावत् राजधानीमें होने वाली संखडीमें संखडि की प्रतिज्ञासे जानेका विचार भी न करे। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि यह अशुभ कर्मके आनेका मार्ग है ॥५५३॥

ऐसी हीन संखडी में जाने से निम्नलिखित दोषों के उत्पन्न होने की संभावना रहती है। यथा—जहां थोड़े लोगों के लिए भोजन बनाया हो और परि-व्राजक तथा चरकादि भिखारी गण अधिक आ गए हों तो उसमें प्रवेश करते हुए पैरसे पैर आक्रमण (टकराना) होगा, हाथसे हाथ का संचालन-टकराव होगा, पात्रसे पात्रका संघर्षण होगा, एवं सिरसे सिर और शरीरसे शरीरमें संघटन-टकराव होगा, ऐसा होने पर डण्डे या मुट्ठीसे या पत्थर आदिसे एक दूसरे पर प्रहारका होना भी सम्भव है, इसके अतिरिक्त वे एक दूसरे पर सचित्त जल या सचित्त मिट्टी आदि फैंक सकते हैं, और वहां याचकों की वहुलता के कारण साधु को अनेषणीय आहारका भी उपयोग करना पड़ेगा तथा अन्यको दिये जाने वाले आहारको मध्य में ही ग्रहण करना होगा। इसलिए वह संयत निर्ग्रन्थ उक्त प्रकार की आकीर्ण और अवमहीन संखडिकी प्रतिज्ञासे जानेके लिए विचार न करे॥५५४॥

गृहस्थके घरमें गया हुआ साधु या साध्वी अशनादि चतुर्विध आहारको

जाने कि यह आहार एषणीय है या अनेषणीय ? यदि इस प्रकार की विचिकित्सा आशंका या लेश्या उत्पन्न हो कि यह आहार अशुद्ध है तो वह उस आहारके मिलनेपर भी ग्रहण न करे ॥५५५॥

जो साधु या साध्वी गृहपतिकुलमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखता है वह अपने सारे भंडोपकरणको साथ लेकर पिंडपातप्रतिज्ञासे गृहपतिकुलमें प्रवेश करे या निकले ॥५५६॥

……साध्वी बाहर मलोत्सर्गभूमि में, या स्वाध्यायभूमिमें जाना चाहें वह भी अपने सब धर्मोपकरण को साथ लेकर बाहर विहारभूमि या स्वाध्याय-भूमि में प्रवेश…॥५५७॥

एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विचरते समय साधु वा साध्वी अपने सब धर्मोप-करणोंको साथ लेकर एक गांवसे दूसरे गांवको विहार करे ॥५५८॥

बृहद्देशमें वर्षा होती हुई देखकर, अंधकाररूप धुंध पड़ती हुई देखकर, अथवा महावायुसे रज उड़ती हुई देखकर या बहुतसे त्रसप्राणियोंको उड़ते व गिरते हुए देखकर तथा इसप्रकार जानकर साधु वा साध्वी सब धर्मोपकरणको साथलेकर आहारकी प्रतिज्ञासे गृहपतिके कुलमें न तो प्रवेश करे और न वहां से निकले। इसी प्रकार विहारभूमि या विचार-भूमिमें भी प्रवेश या निष्क्रमण न करे तथा एक गांवसे दूसरे गांवको विहार भी न करे ॥५५९॥

साधु व साध्वी इन कुलोंको जाने, यथा चक्रवर्ती आदि क्षत्रियों के कुल, उनसे भिन्न अन्य राजाओंके कुल, एक देशवासी (कु) राजाओं के कुल, राज्य-प्रेष्य-दण्डपाशिक-प्रभृति के कुल, राजाके सम्बन्धियोंके कुल और इन कुलोंसे घरसे बाहर या भीतर जाते हुए, खड़े या बैठे हुए, निमंत्रण किए जाने अथवा न किए जानेपर वहांसे प्राप्त होने वाले चतुर्विध आहार को साधु ग्रहण न करे। ऐसा मैं कहता हूं ॥५६०॥

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

चतुर्थ उद्देशक

गृहस्थके घरमें भिक्षाके लिए प्रवेश करते हुए साधु व साध्वी आहार को इस प्रकार जाने कि जो आहार नूतन वधूके घरमें प्रवेश करनेके अवसर पर बनाया जाता है, तथा पितृगृहमें वधूके पुनः प्रवेश करने पर बनाया जाता है, या मृतक सम्बन्धी भोजनमें अथवा जो परिजनों या मित्रोंके निमित्त तैयार किया गया है, ऐसी संखड़ियोंसे भोजन लाते हुए भिक्षुओंको देखकर संयमशील मुनिको वहां भिक्षार्थ न जाना चाहिए। क्योंकि वहाँ जानेसे अनेक जीवोंकी

विराधना होनेकी संभावना रहती है यथा—मार्गमें बहुतसे प्राणी, बहुतसे बीज, बहुत-सी हरी, बहुतसे ओसकण, बहुत सा पानी, बहुतसे कीड़ोंके भवन, निगोद आदिके जीव तथा पांच वर्णके फूल (फूही), जलसे आर्द्र मृत्तिका मकड़ीका जाला आदि होनेसे उनकी विराधना होगी। एवं वहां पर बहुतसे शाक्यादि भिक्षु तथा ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी आदि आए हुए हैं, आ रहे हैं तथा आएंगे, वहाँ पर जनसमूह एकत्रित हो रहा है, अतः बुद्धिमान् साधुको वहाँ निष्क्रमण और प्रवेश न करना चाहिए, क्योंकि उसको वहां पर वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग चिन्तनकी प्रवृत्ति न हो सकेगी। अतः वह इस प्रकार जानकर उक्त प्रकारकी पूर्व—पश्चात् संखडीमें संखडीकी प्रतिज्ञासे गमन करनेके लिए मनमें संकल्प न करे ॥५६१॥

...... देखकर उस साधुको मार्गमें यदि प्राणी यावत् मकड़ीका जाला भी नहीं है। जहाँ पर बहुतसे शाक्यादि भिक्षुगण यावत् नहीं आएंगे—एवं अल्प आकीर्णता को देखकर बुद्धिमान् साधु वहां प्रवेश और निष्क्रमण कर सकता है, तथा साधुको वाचना, पृच्छना...धर्मानुयोग चिन्तनमें भी कोई विघ्न उपस्थित नहीं होगा, ऐसा जान लेनेपर पूर्व या पश्चात् संखडीमें साधु जा सकता है ॥५६२॥

साधु, साध्वी गृहपतिके घरमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखते हुए यदि इस प्रकार जानले कि गृहस्थ दूध देनें वाली गायोंका अभी दोहन कर रहे हैं तथा अशनादिक आहार पकाया जा रहा है—पक रहा है, अभी तक उसमेंसे किसी दूसरेको नहीं दिया गया, ऐसा जानकर गृहस्थके घरमें आहार ग्रहण करनेके लिए न तो उपाश्रयसे निकले और न उस घरमें प्रवेश करे। किन्तु वह भिक्षु इस बातको जानकर जहाँ पर कोई न आता जाता हो और न देखता हो, ऐसे एकान्त स्थानमें जाकर ठहर जाए। और जब वह इस प्रकार जानले कि गायों का दोहन हो गया है और अन्नादि चतुर्विध आहार बन गया है तथा उसमें से दूसरोंको दे दिया गया है, तब वह साधु उस घरमें आहारके लिए प्रवेश करे ॥५६३॥

कई एक भिक्षु जंघादिके बल रहित होनेसे अर्थात् विहारमें असमर्थ होने से एक क्षेत्रमें स्थिरवास रहते हैं। जब कभी उनके पास ग्रामानुग्राम विचरते हुए अतिथि रूपसे अन्य साधु आ जाते हैं, तब स्थिरवास रहने वाले भिक्षु उन्हें कहते हैं—पूज्य मुनिवरो! यह ग्राम बहुत छोटा है, उसमें भी कुछ घर बन्द पड़े हुए हैं। अतः आप भिक्षाके निमित्त किसी दूसरे ग्राममें पधारें ॥५६४॥

यदि उस ग्राममें स्थिरवास रहने वाले किसी एकमुनिके माता-पिता-आदि कुटुम्बीजन या श्वसुर कुलके लोग रहते हैं—गृहपति या गृहपत्निएँ, गृहपतिके पुत्र—पुत्रिएँ—पुत्रवधुएँ, धायमाताएँ दास और दासी तथा कर्मकर व कर्म-

करिएँ, तथा अन्य कई प्रकारके कुलोंमें जो कि पूर्व परिचय वाले, या पश्चात् परिचय वाले हैं, उन कुलोंमें इन आगन्तुक अतिथि साधुओंसे पहले ही मैं भिक्षा के लिये प्रवेश करूंगा और इन कुलोंसे मैं इष्ट वस्तु प्राप्त करूंगा, यथा-शाल्यादि पिंड, लवणरस युक्तआहार, दूध, दही, घृत, गुड़, तेल, शष्कुली जलेबी आदि जल मिश्रित गुड़, पूड़े और मिठाई विशेष शिखरणी आदि आहार को लाऊंगा और उसे खा पीकर, पात्रोंको साफ और संमार्जित कर लूंगा। उसके पश्चात् आगन्तुक भिक्षुओंके साथ गृहपति आदि कुलोंमें प्रवेश करूंगा और निकलूंगा, इस प्रकारका व्यवहार करनेसे छलकपटका सेवन होता है। अतः साधुको इस प्रकार नहीं करना चाहिए। उस भिक्षुको भिक्षाके समय उन भिक्षुओंके साथ ही उच्च नीच और मध्यम कुलोंसे साधुमर्यादासे प्राप्त होनेवाले निर्दोष आहार-पिंडको लेकर उन अतिथि मुनियोंके साथही उसे निर्दोष आहार करना चाहिए ॥५६५॥ यही संयमशील साधु-साध्वीका निर्दोष आचार है ॥५६६॥'

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

पंचम उद्देशक

वह साधु या साध्वी गृहपतिकुलमें प्रवेश करते हुए आहार आदिके विषय में इसप्रकार जाने कि अग्रपिण्डको[१] निकालते हुए देखकर, ...किसी अन्य स्थान पर रखते हुए..., ...कहीं ले जाते हुए..., ...बांटते..., ...खाते..., ...इधर उधर फेंकते हुए देखकर तथा पहले श्रमणादि भोजन कर गए हैं और अग्रपिण्डको लेकर चले गए हैं या याचक लोग अग्रपिण्डको प्राप्त करनेके लिए शीघ्र २ पग उठा रहे हैं। इन्हें देखकर यदि साधु भी उसे प्राप्त करनेके लिए शीघ्र २ कदम उठानेका विचार करता है तो वह माया स्थानका सेवन करता है। अतः उसको ऐसा नहीं करना चाहिए ॥५६७॥

साधु या साध्वीको गृहपति आदिके कुलमें जाते समय मार्गके मध्यमें खेत की क्यारिएँ, खाई, कोट, तोरण, अर्गला और अर्गलपाशक पड़ता हो तो अन्य मार्गके होने पर वह उस मार्गसे न जाए, भले ही वह मार्ग सीधा क्यों न हो। क्यों कि केवली भगवान् कहते हैं कि यह कर्मबन्धका मार्ग है ॥५६८॥

क्योंकि वह भिक्षु उस मार्गसे जाते हुए कांप जाएगा, या उसका पांव फिसल जाएगा या वह गिर जाएगा, ऐसा होनेसे उस भिक्षुका शरीर

---

१. भोजन तैयार होनेके बाद उसमेंसे किसीके लिए निकाले जाने वाला कुछ भाग।

विष्ठा-मूत्र - श्लेष्म - थूक - नाकके मलसे, वमन - पित्त - राध - शुक्र - रुधिर से सन जाय (उपलिप्त हो जाए)। तो ऐसा होने पर वह भिक्षु अपने शरीरको सचित्तमिट्टी-स्निग्धमिट्टी-सचित्त शिला-सचित्त शिलाखंड, घुणसहित काष्ठ-जीवयुक्त काष्ठसे एवं अण्ड अथवा प्राणीयुक्त या जालों आदिसे युक्त काष्ठ आदि से अपने शरीरको एक बार या अनेक बार मसले नहीं, एक···घिसे नहीं, पूंछे नहीं तथा उबटनकी भांति मले नहीं, तथा एक···वार धूपमें सुखाए नहीं, अपितु वह भिक्षु पहले ही सचित्त रज आदिसे रहित तृण, पत्र, काष्ठ, कंकड़ आदिकी याचना करे। याचना करके वह एकान्त स्थानमें जाए और वहां अग्नि आदिके संयोगसे जो भूमि प्रासुक हो गई हो अर्थात् अग्निदग्ध होकर जो भूमि अचित्त बन गई हो, उस जगहकी या अन्यत्र उसी प्रकारकी भूमिकी प्रतिलेखना करके यत्नापूर्वक अपने शरीरको मसले यावत् वार २ धूपमें सुखाकर शुद्ध करे ॥५६९॥

साधु या साध्वी जिस मार्गसे भिक्षाके लिए जा रहे हों यदि उस मार्गमें मदोन्मत्त वृषभ और भैंसा एवं मनुष्य, घोड़ा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, चीता, रीछ, तरच्छ-व्याघ्रविशेष, अष्टापद, गीदड़, बिल्ला, कुत्ता, महाशूकर, कोकंतिक (स्याल जैसा अरण्यजीव) चि० अरण्यवासी जीवविशेष और सांप आदि मार्गमें खड़े या बैठे हैं तो अन्य मार्गके होने पर साधु उस मार्गसे जाए, किन्तु सीधा अर्थात् उन जीवोंके सामनेसे न जाए ॥५७०॥

साधु साध्वी भिक्षार्थ गमन करने पर यह देखे कि मार्गमें यदि गढ़ा, खूंटा, काँटा, उतराईकी भूमि, कटी हुई भूमि, ऊँची नीची भूमि और कीचड़ वाला मार्ग है तो अन्य मार्ग···सीधा न जाए ॥५७१॥

साधु साध्वी गृहपतिके घरके द्वार भागको कण्टक शाखासे ढांका-बन्द किया हुआ देखकर उस गृहपतिसे आज्ञा मांगे विना, उसे अपनी आंखोंसे देखे विना और रजोहरणादिसे प्रमार्जित किए बिना न खोले न उसमें प्रवेश करे और न उसमेंसे निकले। किन्तु उस गृहस्थकी पहले ही आज्ञा लेकर, अपनी आंखोंसे देखकर और रजोहरणादिसे प्रमार्जित करके उसे खोले, उसमें प्रवेश करे और उससे निकले ॥५७२॥

साधु साध्वी भिक्षाके निमित्त गृहपतिके कुलमें प्रवेश करते हुए यदि यह जाने कि उसके जानेसे पहले ही गृहपति कुलमें शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, ग्राम-याचक और अतिथि आदि प्रवेश किए हुए हैं तो उनके सामने अथवा जिस द्वारसे वे निकलते हैं, उसके सम्मुख खड़ा न हो क्यों कि खड़ा रहेगा तो उसमें केवली भगवान्ने बहुतसे दोष कहे हैं ॥५७३॥

इसलिए कि उस मुनिको दरवाजे पर खड़ा देखकर गृहस्थ उसके लिए आहारादिक बनाकर उसे देनेका आरम्भ-समारम्भ करेंगे। इस कारण मुनिके

लिए ऐसी प्रतिज्ञा, ऐसा हेतु और ऐसा उपदेश है कि याचकोंके सामने अथवा …नहीं हो। किन्तु एकान्त स्थानमें—जहां न कोई आता जाता हो और न कोई देखता हो जाकर खड़ा हो जाय ॥५७४॥

वहां खड़े हुए उस साधुको देखकर वह गृहस्थ यदि अशनादिक चतुर्विध आहार लाकर दे और देता हुआ कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! यह अशनादिक चतुर्विध आहार मैंने एक स्थानमें ठहरे हुए आप सब सांभोगिक साधुओंके लिए दिया है—आप लोग यथारुचि इस आहारको एकत्र मिलकर परस्पर विभाग करलें, बांटलें, तब उस आहारको लेकर वह साधु यदि मौन वृत्तिसे विचार करे कि यह मुझे दिया है अतः मेरे लिए ही है तो उसे माया स्थानका स्पर्श होता है। अतः उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, अपितु उस आहारको लेकर स्थान पर जाकर प्रथम उन सांभोगिकोंको उस आहारको दिखाए और दिखाकर कहे कि आयुष्मन् श्रमणो ! यह अशनादि चतुर्विध आहार गृहस्थने हम सबके लिए दिया है। इस आहारको एकत्रित मिलकर परस्परमें विभाग करके बांट लें। ऐसा कहते हुए उस साधुको यदि कोई भिक्षु कहता है कि आयुष्मन् श्रमण ! तुम ही इस आहार का विभाग कर दो, सबको बांट दो। तब वहां पर विभाग करता हुआ वह साधु अपने लिए प्रचुर सुन्दर शाक वर्णादि गुणोंसे युक्त, रसयुक्त, मनोज्ञ, स्निग्ध और उनके लिए रूक्ष आहार न रक्खे, किन्तु वहाँ आहारविषयक मूर्छा, गृद्धि और आसक्ति आदिसे रहित होकर सबके लिए समान विभाग करे ॥५७५॥

यदि सम विभाग करते हुए उस साधुको कोई भिक्षु यह कहे कि आयुष्मन श्रमण ! तुम विभाग मत करो हम सब इकट्ठे ही आहार कर लेंगे और जल पी लेंगे। तब वह भिक्षु वहां पर भोजन करता हुआ अपने लिए प्रचुर यावत् रूक्ष आहारको ग्रहण न करे, किन्तु वह उस आहारविषयक मूर्छासे रहित होकर सब के समान ही आरोगे ॥५७६॥

साधु या साध्वी भिक्षाके निमित्त ग्रामादिमें जाते हुए गृहपतिके घरमें प्रवेश करने पर यदि यह जाने कि यहां पर शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, ग्रामयाचक और अतिथि लोग पहलेसे प्रवेश किए हुए हैं, तो वह उनको लांघ कर गृहपति कुलमें न तो प्रवेश करे और न गृहस्थसे आहारादि की याचना करे। परन्तु उनको देखकर एकान्त स्थानमें—जहां कोई आता जाता न हो और न देखता हो वहां पर जाकर ठहर जाए, जब वह यह जान ले कि गृहस्थने भिक्षा देकर या विना दिए ही उनको घरसे निकाल दिया है, तो उसके चले जाने पर वह साधु या साध्वी उसके घरमें प्रवेश करे और आहारादिकी याचना करे ॥५७७॥

यही……हूं ॥५७८॥

॥ पञ्चम उद्देशक समाप्त ॥

—०—

छठा उद्देशक

साधु या साध्वी मार्गमें जाते हुए यदि यह जान ले कि रसकी गवेषणा करने वाले वहुतसे प्राणी भोजनके लिये एकत्रित होकर मार्गमें खड़े हुए हैं जैसे कि— कुक्कुट जातिके जीव, शूकर जातिके जीव तथा अग्रपिंडके भोजनार्थ मार्गमें एकत्र होकर बैठे हुए कौवे आदि जीव रास्तेमें वैठे हैं, तो इनको देखकर साधु या साध्वी अन्य मार्गके होते हुए उस मार्गसे न जाए ॥५७९॥

आहारादिके लिए गृहस्थके घरमें प्रविष्ट साधु, साध्वी गृहस्थके घरके द्वार को पकड़कर खड़ा न हो, जहां वर्तनोंको मांज-धोकर पानी गिराया जाता हो, जहां पीनेका पानी वह रहा हो या वहाया जाता हो, जहाँ स्नानघर, पेशावघर या शौचालय हो, वहां एवं उसके सामने खड़ा न हो। गृहस्थके झरोखोंको, दुवारा बनाई गई दीवारोंको, दो दीवारोंकी सन्धिको और पानीके कमरेको अपनी भुजाएँ फैलाकर या अंगुलीका निर्देश करके या शरीरको ऊपर या नीचे करके न तो स्वयं देखे और न अन्यको दिखावे। और गृहस्थको अंगुलीसे निर्देश करके (जैसे कि यह अमुक खाद्य वस्तु मुझे दो) आहारकी याचना न करे। इसी तरह अंगुली चलाकर या अंगुलीसे भय दिखाकर या अंगुलीसे शरीरको खुज-लाते हुए या गृहस्थकी प्रशंसा करके आहारकी याचना न करे और कभी गृहस्थ के आहार न देने पर उसे कठोर वचन न कहे ॥५८०॥

गृहपतिकुलमें प्रवेश करने पर साधु या साध्वी यदि किसी व्यक्तिको भोजन करते हुए देखे जैसे कि गृहपति यावत् कर्मकरी को। तो अपने मनमें सोच-विचारकर कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा हे वहिन ! तुम इस भोजनमें से कुछ भोजन मुझे दोगे ? उस भिक्षुके इस प्रकार बोलनें पर यदि वह गृहस्थ अपने हाथको, पात्रको अथवा कड़छी या अन्य किसी वर्तन विशेषको निर्मल शीतल जलसे या थोड़े उष्ण जल (मिश्र जल) से एक वार या एकसे अधिक वार धोने लगे तो वह भिक्षु पहले ही उसे देखकर और विचारकर कहे कि आयुष्मन् गृहपते ! या वहिन ! तू इस प्रकार शीतल अथवा अल्प उष्ण जलसे अपने हाथ एवं बर्तनादिका प्रक्षालन मत कर। यदि मुझे भोजन देना चाहते हो तो ऐसे ही दो। उस भिक्षु के इस प्रकार कहनें पर भी यदि वह गृहस्थ आदि शीतल या थोड़े उष्ण जलसे हस्तादिका एक अथवा अनेक वार प्रक्षालन करे और तदनन्तर अशनादि चतुर्विध आहार लाकर दे तो इस प्रकारके गीले हाथ आदिसे लाए गए आहारको अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। यदि फिर इस प्रकार जानें कि गृहस्थनें साधुको भिक्षा देनेके लिए हस्तादिका प्रक्षालन नहीं किया है किन्तु वे पहले ही गीले हैं ऐसे हाथोंसे या पात्रसे (जो जलसे आर्द्र अथवा स्निग्ध हों) लाकर दिया गया भोजन भी अप्रासुक यावत् ग्रहण न करे। यदि फिर इस प्रकार-

जाने कि हाथ आदि जलसे गीले नहीं हैं और स्निग्ध......शेष उसी प्रकार। इसी प्रकार सचित्त रजसे, सचित्त जलसे स्निग्ध हस्तादि, सचित्त मिट्टी, खारी मिट्टी, हरताल, हिंगुल-शिंगरफ, मनसिल, अंजन, लवण, गेरू, पीली मिट्टी, खड़िया मिट्टी, तुवरिका, बिना छाने हुए तन्दुल चूर्ण, चूर्णके छानसे और पीलु पर्णिकाके के आर्द्र पत्रोंका चूर्ण इत्यादिसे युक्त हस्तादिसे दिए गए आहारको भी साधु ग्रहण न करे ॥५८१॥

परन्तु यदि उसके हाथ सचित्त जल, मिट्टी आदिसे युक्त नहीं हैं किन्तु जो पदार्थ देना है उसी पदार्थसे हस्तादिका स्पर्श हो रहा है तो ऐसे हाथों एवं बर्तन आदिसे दिया गया आहार पानी प्रासुक होनेसे साधु उसे ग्रहणकर सकता है ॥५८२॥

गृहस्थके घरमें आहारके लिए प्रविष्ट साधु-साध्वीको यह ज्ञात हो जाए कि ये चावलके दाने सचित्त रजसे युक्त हैं, अपक्व हैं या गृहस्थने साधुके लिए सचित्त शिला पर यावत् मकड़ीके जालोंसे युक्त शिला पर कूटा है, या कूट रहा है या कूटेगा। और इसी तरह यदि साधुके लिए चावलोंको भूसीसे पृथक् किया है, कर रहा है या करेगा, तो साधु इस प्रकारके चावलोंको अप्रासुक जान कर ग्रहण न करे ॥५८३॥

......कि खदान एवं समुद्रादिके जलसे उत्पन्न लवणको किसी गृहस्थने सचित्त यावत् जालोंसे युक्त शिला पर भेदन करके या पीसकर रखा है, या भे०........ रख रहा है, या भे०........ रक्खेगा तो साधुको ऐसे अप्रासुक नमकको ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥५८४॥

साधु, साध्वी भिक्षादिके निमित्त गृहस्थके घरमें प्रवेश करने पर यदि यह देखे कि अशनादिक चतुर्विध आहार अग्नि पर रक्खा हुआ है, तो उसे अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। क्योंकि केवली भगवान् कहते हैं कि यह कर्म आने का मार्ग है। क्योंकि गृहस्थ साधु के लिए यदि अग्नि पर रक्खे हुए भाजनमें से वस्तुको निकालता है, उबलते हुए दुग्धादिको जल आदिके छींटे देकर शान्त ठण्डा करता है, अथवा उसे हस्तादिसे हिलाता हुआ या बार-बार हिलाता हुआ, अग्नि परसे उतारता हुआ अथवा भाजनको टेढ़ा करता हुआ वह अग्निके जीवों की हिंसा करता है। अतः भिक्षुओंके लिए तीर्थंकर भगवान्ने पहले ही कह दिया है कि इसमें यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु है, यह कारण है और यह उपदेश है कि जो आहार अग्नि पर रक्खा हुआ है, उस आहारको अप्रासुक अनेषणीय जानकर साधु-साध्वी ग्रहण न करे ॥५८५॥ यही........॥५८६॥

॥ छठा उद्देशक समाप्त ॥

सप्तम उद्देशक

साधु साध्वी गृहस्थके घरमें प्रवेश करने पर यदि यह जाने कि अशनादि चतुर्विध आहार, गृहस्थके वहां भित्तिपर, स्तम्भ पर, मंचक पर, छतपर, प्रासाद पर, कोठी आदिकी छतपर तथा किसी अन्य ऊँचे स्थानपर रक्खा हुआ है तो इस प्रकारके ऊँचे स्थानसे उतारकर दिया गया अशनादि चतुर्विध आहार अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। केवली भगवान् कहते हैं कि यह कर्मबन्ध का कारण है जो कि गृहस्थ साधुको आहार देनेके लिए ऊँचे स्थानपर रक्खे हुए आहारको उतारनेके लिए चौकी, फलक--पट्टा, सीढ़ी या ऊखल आदिको लाकर, ऊंचा करके ऊपर चढ़ेगा। यदि ऊपर चढ़ता हुआ वह गृहस्थ फिसल जाए या गिर पड़े तो फिसलते या गिरते हुए उसका हाथ, पाँव, भुजा, छाती, उदर, सिर या अन्य कोई शरीरका अवयव टूट जाएगा और उसके गिरनेसे प्राणी, भूत, जीव और सत्व आदिका अवहनन होगा, उन जीवोंको त्रास तथा संक्लेश उत्पन्न होगा, संघर्ष, संघट्टा होगा, आतापना या किलामना--पीड़ा होगी। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर संक्रमण होगा। अतः इस प्रकारके मालाहृत--ऊँचे स्थानसे उतारे गए अशनादि चतुर्विध आहारके प्राप्त होने पर भी साधु उसे ग्रहण न करे ॥५८७॥

...जाने कि अशनादिक चतुर्विध आहार जिसे गृहस्थ मिट्टी अथवा वांस आदिकी कोठीसे, नीचेके प्रकोष्ठ विशेषसे भिक्षुके लिए नीचा होकर, कुब्बा होकर या तिरछा होकर निकालता है, तो वह आहार उपलब्ध होनेपर भी साधु स्वीकार न करे ॥५८८॥

......कि अशनादि चतुर्विध आहार मिट्टीसे लिपे हुए वर्तनमें स्थित है, इस प्रकारके अशनादि...को मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे। क्योंकि भगवान् ने इसे कर्म आनेका मार्ग कहा है। इसका कारण यह है कि गृहस्थ भिक्षुके लिए मिट्टीसे लिप्त (लिपे) अशनादिके भाजनको उद्भेदन करता हुआ पृथ्वीकायका समारम्भ करता है, तथा अप्-पानी, तेज--अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय का समारम्भ करता है, फिर शेष द्रव्यकी रक्षाके लिए उस वर्तनका पुनः लेपन करके पश्चात् कर्म करता है, इसलिए भिक्षुओंको तीर्थंकर आदिने पहले ही कह दिया है कि वे मिट्टीसे लिप्त वर्तनमें रक्खे हुए अशनादिको ग्रहण न करें ॥५८९॥

...कि अशनादि.. सचित्त मिट्टी पर रक्खा हुआ है तो इस प्रकारके आहारको अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे ॥५९०॥

......कि अशनादि...अप्काय पर रक्खा हुआ है.. ग्रहण न करे। इसी प्रकार अग्निकाय पर प्रतिष्ठित अशनादि...को भी अप्रासुक जानकर उसे ग्रहण

नहीं करना चाहिए। केवली भगवान् कहते हैं कि यदि गृहस्थ भिक्षुके निमित्त अग्निमें ईन्धन डालकर अथवा प्रज्वलित अग्निमेंसे ईन्धन निकालकर या अग्निसे भोजनको उतारकर, इस प्रकारसे आहार लाकर दे। तो भिक्षुओंको पूर्वोपदिष्ट प्रतिज्ञा है यावत् उसे ग्रहण न करे ॥५६१॥

……कि गृहस्थ साधुको देनेके लिए अत्युष्ण अशनादिक चतुर्विध आहार को शूर्प—छाजसे, पंखेसे, ताड़पत्र-खजूर आदि वृक्षके पत्रखंड—शाखा—शाखाखण्ड—मयूरपिच्छसे या उससे बने हुए पंखेसे, वस्त्रसे, वस्त्रखंडसे, हाथसे अथवा मुखसे फूंक मारकर या पंखे आदिकी हवासे ठंडा करके देने लगे; तब वह भिक्षु उस गृहस्थको पहले ही…कहे कि आयुष्मन्! गृहस्थ! अथवा आयुष्मति बहिन! तुम इस उष्ण आहारको इस प्रकार पंखे आदि से ठंडा मत करो। यदि तुम मुझे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो। साधुके इस प्रकार कहनेपर भी यदि वह गृहस्थ उसे पंखे आदिसे ठंडा करके दे तो साधु उस आहारको अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे ॥५६२॥

……कि अशनादि…… वनस्पतिकाय पर …… तो ऐसे वनस्पतिकाय पर प्रतिष्ठित अशनादिको साधु प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे। इसी प्रकार त्रस-कायके विषयमें भी जान लेना चाहिए ॥५६३॥

साधु, साध्वी गृहस्थके घरमें प्रवेश करनेपर पानीके भेदोंको जाने जैसे कि—चूर्णसे लिप्त सने वर्तनका धोवन, तिलका धोवन, चावलका अथवा इसी प्रकार अन्य कोई धोवन तत्कालका किया हो, जिसका कि स्वाद चलित नहीं हुआ हो, रस अतिक्रान्त नहीं हुआ हो, वर्ण आदिका परिणमन नहीं हुआ हो और शस्त्र-परिणत भी नहीं हुआ हो तो ऐसे पानीके मिलनेपर भी उसे अप्रासुक अनेषणीय जानकर साधु ग्रहण न करे ॥५६४॥

यदि पुनः वह इस प्रकार जाने कि यह धोवन बहुत देरका बनाया हुआ है और इसका स्वाद बदल गया है, रसका अतिक्रमण हो गया है, वर्ण आदि परिणत हो………, और शस्त्र भी परिणत …, तो ऐसे पानको प्रासुक जानकर साधु उसे ग्रहण करे ॥५६५॥

……… कि तिलोंका, तुषों०, यवों०, तथा उबले हुए चावलोंका जल, कांजी के वर्तनका धोवन एवं प्रासुक तथा उष्ण जल अथवा इसी प्रकारका अन्य जल, इनको पहले ही देखकर साधु गृहपतिसे कहे—आयुष्मन्! गृहस्थ अथवा भगिनि! क्या मुझे इन जलोंमें से किसी जलको दोगे? तब वह गृहस्थ साधुके इस प्रकार कहने पर यदि कहे कि आयुष्मन् श्रमण! तुम इस जलके पात्रमेंसे स्वयं उलीच कर और नितार कर पानी ले लो। गृहस्थके इस प्रकार कहने पर साधु स्वयं ले ले अथवा गृहस्थके देनेपर उसे प्रासुक जानकर ग्रहण करे ॥५६६॥

.... कि गृहस्थने प्रासुक जलको सचित्त पृथ्वी पर यावत् मकड़ी आदिके जालोंसे युक्त पदार्थ पर रक्खा है या उसने उसे अन्य सचित्त पदार्थसे युक्त वर्तनसे निकालकर रक्खा है या वह सचित्त जल टपकते हुए अथवा गीले हाथोंसे, या सचित्त पृथ्वी आदिसे युक्त वर्तनसे या प्रासुक जलके साथ सचित्त जल मिलाकर दे तो इस प्रकारके जलको अप्रासुक जानकर साधु उसे ग्रहण न करे ॥५९७॥ यही... ...॥५९८॥

॥ सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

अष्टम उद्देशक

गृहस्थके घर पानीकेनिमित्त प्रवेश करनेपर साधु साध्वी जलके विषयमें इन बातोंको जाने। जैसे कि आम्रफलका पानी, अम्बाड़े-फलविशेषका पानी, कपित्थ-कैंथ फल का पानी, द्राक्षा का पानी, अनार०, खजूर०, नारियल०, करीर०, बेर०, आमले० और इमलीका पानी तथा इसीप्रकार अन्य पानी, जो कि गुठली सहित, छाल सहित और बीज के साथ मिश्रित मिला है, उसे यदि गृहस्थ भिक्षुके निमित्त वांसकी छलनी से, वस्त्रसे या वालोंकी छलनीसे, एकवार अथवा अनेकबार छानकर और उसमें रहे हुए गुठली, छाल-वक्कल, वीजादिको चलनी द्वारा अलग करके उसे दे तो साधु इस प्रकारके जलको अप्रासुक जानकर मिलनेपर भी ग्रहण न करे ॥५९९॥

धर्मशालाओंमें, उद्यानशालाओंमें, गृहस्थोंके घरोंमें या परिव्राजकोंके मठों में ठहरा हुआ साधु-साध्वी अन्न एवं पानी की तथा सुगन्धित पदार्थों-कस्तूरी आदिकी गन्धको सूंघकर उस गन्धके आस्वादनकी इच्छासे उसमें मूच्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर कि वाह! क्या ही अच्छी सुगन्धि है, कहता हुआ उस गन्धकी सुवास न ले ॥६००॥

गृहपतिके घर में प्रविष्ट होने पर साधु साध्वी जलज कन्द, स्थलसे उत्पन्न; और सर्षपनालिकाकन्द तथा इसी प्रकारका अन्य कच्चा कन्द, जो शस्त्रसे परिणत नहीं हुआ, ऐसे कन्द आदि को अप्रासुक जानकर मिलनेपर भी ग्रहण न करे ॥६०१॥

...साध्वी पिप्पली, पिप्पली का चूर्ण, मिरच, मिरच का चूर्ण, अदरक, अदरक का चूर्ण, तथा इसी प्रकार का अन्य कोई पदार्थ या चूर्ण कच्चा और जो शस्त्र..... न करे ॥६०२॥

.........प्रलम्बजात फलसमुदायको जाने, यथा-आम फलका गुच्छा-फल सामान्य, अम्बाडग फल, ताड०, लता०, सुरभि० और शल्यकीका फल तथा इसी प्रकारका अन्य प्रलम्बजात कच्चा और......न करे ॥६०३॥

······प्रवाल जात पत्र समुदाय···, यथा—पीपल वृक्षके प्रवाल-पत्र जात न्यग्रोध० वट वृक्ष० पिप्परी० नन्दी० शल्यकी प्रवाल तथा इस प्रकारका अन्य प्रवाल जात कच्चा············॥६०४॥

······ कोमल फल को जाने, जैसे कि—आम्र वृक्षका कोमलफल, कपित्थ०, अनार०, और बिल्वका कोमलफल तथा इसी प्रकार का अन्य कोमलफल कच्चा ············॥६०५॥

·····मन्थुके संबंधमें जाने, यथा—उदुम्बर फलका मंथु-चूर्ण, न्यग्रोध०, पिप्परी०, पीपल का चूर्ण तथा इसीप्रकार का अन्य मन्थुजात जो कि कच्चा और थोड़ा पीसा हुआ, जिसका योनिबीज विध्वस्त नहीं हुआ है तो उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे ॥६०६॥

गृहपतिकुलमें प्रविष्ट हुआ साधु-साध्वी, अर्द्धपक्व शाक, सड़ी हुई खल, (गाध) सर्पि-घृत, पेय अथवा लेह्य, खादिम अथवा स्वादिम इन पुरानें पदार्थो को ग्रहण न करे, कारण कि—इनमें प्राणी-जीव उत्पन्न होते हैं, जन्मते हैं, तथा वृद्धि को प्राप्त होते हैं और इनमें प्राणियोंका व्युत्क्रमण, परिणमन तथा विध्वंस नहीं होता, इसलिए मिलनेपर भी उन पदार्थोको ग्रहण न करे ॥६०७॥

······साध्वी इसप्रकारसे जाने, यथा—इक्षुखण्ड—गंडेरी, अंककरेलु नामक वनस्पति, कसेरु, सिंघाड़ा और पूति-आलुक तथा अन्य इसीप्रकारकी वनस्पति विशेष जो शस्त्रपरिणत न हो, उसे मिलने पर भी अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे ॥६०८॥

·········जाने कि उत्पल-कमल, उ० की नाल, उसका कन्दमूल, उस कन्दके ऊपरकी लता, कमलकी केसर और पद्मकन्द तथा इसीप्रकारका अन्य कन्द जो कच्चा हो, जो शस्त्र ·········॥६०९॥

············साध्वी अग्रबीज, मूलबीज, स्कन्धबीज तथा पर्वबीज, एवं अग्र-जात, मूल०, स्कन्ध०, पर्व०, इनमें इतना विशेष है कि ये उक्त स्थानोंसे अन्यत्र उत्पन्न नहीं होते, तथा कन्दली का गूदा, कन्दली का स्तबक, नारियल का गूदा, खजूर०, ताड० तथा इसीप्रकारकी अन्य कच्ची और अशस्त्रपरिणत वनस्पति मिलनेपर अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे ॥६१०॥

············ इक्षु को, सछिद्र इक्षुको, तथा जिसका वर्ण वदल गया, छाल फट गई एवं शृगालादि के द्वारा खाया गया ऐसा फल, तथा बेंतका अग्रभाग और कन्दलीका मध्य भाग तथा इसी प्रकार············॥६११॥

··············आस्तिक (वृक्षविशेष) केफल, तिन्दुकफल, बिल्वफल और श्री-पर्णीफल, जो कि गर्त आदिमें रखकर धूएँ आदिसे पकाए गए हों, तथा इसीप्रकार के अन्यफल जो कि कच्चे और अशस्त्रपरिणत हों मिलने पर अप्रासुक जान कर उन्हें ग्रहण न करें ॥६१२-६१३॥

.........शाल्यादि के कण, कणमिश्रित छाणस, कणमिश्रित रोटी, चावल, चावलों का आटा, तिल, तिलकुट और तिलपपडी तथा इसीप्रकारका अन्य पदार्थ जो कि कच्चा और अशस्त्रपरिणत हो, मिलने पर अप्रासुक जानकर उसे ग्रहण न करे ।।६१४।। यही ....।।६१५।।

।। आठवां उद्देशक समाप्त ।।
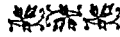
नवम उद्देशक

इस क्षेत्रमें पूर्वादि चारों दिशाओंमें कई गृहपति यावत् करने वाली दासी आदि श्रद्धावान् सद्गृहस्थ रहते हैं, और वह परस्पर मिलने पर इसप्रकार बातें करते हैं कि ये पूज्य श्रमण शीलनिष्ठ हैं, व्रतधारी हैं, गुणसंपन्न-संयमी-आश्रवोंका निरोध करने वाले—परम ब्रह्मचारी—मैथुन धर्मसे सर्वथा निवृत्त हैं । इनको आधाकर्मिक अशनादि चतुर्विध आहार लेना नहीं कल्पता है । अतः हमने जो अपने लिए आहार बनाया है, वह सब आहार इन श्रमणोंको दे देंगे, और हम अपने लिए और आहार बना लेंगे । उनके इसप्रकारके वार्तालापको सुनकर तथा विचार कर साधु इसप्रकारके आहारको अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे ।।६१६।।

शारीरिक अस्वस्थता एवं वार्द्धक्यके कारण एक ही स्थान पर रहने वाले या ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु या साध्वीके किसी गांव यावत् राजधानीमें माता पिता या श्वसुर आदि सम्बन्धिजन रहते हों या परिचित गृहपति, गृहपत्नि यावत् दास-दासी रहती हों तो इसप्रकारके कुलोंमें भिक्षाकालसे पूर्व आहार-पानीके लिए उनके घरमें आए-जाए नहीं । केवली भगवान् कहते हैं कि यह कर्म आनेका मार्ग है । क्यों कि आहारके समयसे पूर्व उसे अपने घरमें आए हुए देखकर वह उसके लिए आधाकर्म आदि दोषयुक्त आहार एकत्रित करेगा या पकाएगा । अतः भिक्षुओंको पूर्वोपदिष्ट तीर्थंकर आदिका उपदेश है कि इसप्रकारके कुलोंमें भिक्षाके समयसे पूर्व आहार-पानीके लिए आए जाए नहीं, किन्तु वह साधु स्वजनादिके कुलको जानकर और जहां पर न कोई आता-जाता हो और न देखता हो, ऐसे एकान्त स्थान पर चला जाय । और जब भिक्षाका समय हो तब ग्राममें प्रवेश करे और स्वजन आदिसे भिन्न कुलोंमें सामुदानिक रूपसे निर्दोष आहारका अन्वेषण करके उपभोग करे ।।६१७।।

यदि कभी वह गृहस्थ भिक्षाके समय प्रविष्ट हुए भिक्षुके लिए भी आधा-कर्मी आहार एकत्रित कर रहा हो या पका रहा हो और उसे देखकर भी साधु इस भावसे मौन रहता हो कि जब यह लेकर आएगा तब इसका प्रतिषेध कर दूंगा तो उसे मायाका स्पर्श होता है। अतः साधु ऐसा न करे, अपितु वह देखते ही कह दे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा भगिनि! मुझे आधाकर्मिक आहार-पानी खाना और पीना नहीं कल्पता है, अतः मेरे लिए इसको एकत्रित न कर और न पका। उस भिक्षुके इसप्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ आधाकर्म आहारको एकत्रित करता है या पकाता है और उसे लाकर देता है, तो इसप्रकारके आहार को अप्रासुक जानकर वह ग्रहण न करे ॥६१८॥

गृहपति कुलमें प्रवेश करने पर साधु या साध्वी इसप्रकार जाने कि गृहस्थ अपने यहां आए हुए किसी अतिथिके लिए अशन ४ बना रहा है। उस समय उक्त आहारको बनाते हुए देखकर वह अतिशीघ्रतासे वहां जाकर आहार की याचना न करे। यदि किसी रोगीके लिए आवश्यकता हो तो उसके लिए उनकी याचना कर सकता है ॥६१९॥

गृहस्थके घरमें जाने पर कोई साधु या साध्वी वहांसे भोजन लेकर, उसमें से अच्छा-अच्छा खाकर शेष रूक्ष आहारको बाहर फेंक दे तो उसे मायाका स्पर्श होता है। इसलिए उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, सुगन्धित या दुर्गन्धित जैसा भी आहार मिला है, साधु उसे समभाव पूर्वक खा ले, किन्तु उसमेंसे किंचि-न्मात्र भी फेंके नहीं ॥६२०॥

······साध्वी जलको ग्रहण करके उसमेंसे वर्ण गन्ध युक्त जलको पीकर कसैले पानीको फेंक···नहीं करना चाहिए, किन्तु वर्ण, गन्धयुक्त या व० रहित जैसा भी जल उपलब्ध हो उसे समभावपूर्वक पी ले, परन्तु उसमेंसे थोड़ासा भी न फेंके ॥६२१॥

साधु अथवा साध्वी गृहपतिकुलमें प्रवेश करने पर गृहस्थके घरसे बहुतसा अशनादिक आहार प्राप्त होने पर ग्रहण करके अपने स्थान पर आए। यदि वह आहार उससे खाया न गया हो तो वहांपर जो अन्य स्वधर्मी साधु रह रहे हों, जो सांभोगिक तथा समान आचार वाले हैं, और जो अपने उपाश्रयके समीप भी हैं, उनको विना पूछे, विना निमन्त्रित किए यदि उस शेष आहारको परठ—फेंक देता है तो उसे मातृस्थानका स्पर्श होता है इसलिए वह ऐसा न करे, किन्तु वह भिक्षु उस आहारको लेकर वहां जावे और जाकर सर्वप्रथम उस आहारको दिखाए और दिखाकर इसप्रकार कहे—कि हे भाग्यशाली श्रमणो! यह अशनादिक चतुर्विध आहार मेरे खानेसे बहुत अधिक है अतः आप इसे खा लें। उसके इस प्रकार कहने पर किसी भिक्षुने कहा—हे आयुष्मन् श्रमण ! यह आहार हम जितना

खा सकेंगे उतना खानेका प्रयत्न करेंगे। यदि हम पूरा आहार-पानी कर सके तो सब खा पी लेंगे ॥६२२॥

गृहस्थोंके घरमें भिक्षार्थं प्रविष्ट साधु या साध्वी भाट आदिके निमित्त बनाया गया जो अशनादिक चतुर्विध आहार घरसे देनेके लिए निकाला गया है, परन्तु गृहपतिने अभी तक उस आहारको उन्हें ले जानेके लिए नहीं कहा है, और उनके स्वाधीन नहीं किया है, ऐसी स्थितिमें यदि कोई व्यक्ति उस आहारकी साधुको विनती करे तो वह उसे अप्रासुक जानकर स्वीकार न करे। और यदि गृहपति आदिने उस भाटादिको वह भोजन सम्यक् प्रकारसे समर्पित कर दिया है और कह दिया है कि तुम जिसे चाहो दे सकते हो। ऐसी स्थितिमें वह साधुको विनति करे तो साधु उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले ॥६२३॥ यही···॥६२४॥

॥ नौवां उद्देशक समाप्त ॥

दशम उद्देशक

कोई भिक्षु गृहस्थके यहाँसे सम्मिलित आहारको लेकर अपने स्थान पर आता है और अपने सार्धमियोंको पूछे बिना जिस २ को जो रुचता है, वह उसके लिए वह दे देता है तो ऐसा करनेसे वह मायास्थानका सेवन करता है अतः वह ऐसा न करे किन्तु वह भिक्षु उस आहारको लेकर गुरुजनादिके पास जाए और इस प्रकार कहे कि "हे आयुष्मन् श्रमणो ! मेरे पूर्व परिचित (जिनके पास मैंने दीक्षा ली है), पश्चात् परिचित (जिसके पास मैंने ज्ञानाभ्यास किया है) जैसे कि आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणि, गणधर (संघाड़ेका मुखिया), गणावच्छेदक इत्यादिको आपकी आज्ञा हो तो पर्याप्त आहार दूं। उसके इस प्रकार कहने पर यदि गुरुजनादि कहें कि "हे आयुष्मन् श्रमण ! तू अपनी इच्छानुसार यथापर्याप्त दे !" जितना-जितना वे कहें उतना-उतना आहार उन्हें दे देवे, यदि वे कहें कि सभी पदार्थ दे दो तो सारा दे दे ॥६२५॥

यदि कोई मुनि भिक्षामें प्राप्त सरस, स्वादिष्ट आहारको आचार्य आदि न ले लेवें इस दृष्टिसे उसे रूखे-सूखे आहारसे छिपाकर रखता है, तो वह माया का सेवन करता है। अतः साधुको सरस एवं स्वादिष्ट आहारके लोभमें आकर ऐसा छल-कपट नहीं करना चाहिए। जैसा भी आहार प्राप्त हुआ हो उसे ज्यों का त्यों लाकर आचार्य आदिके सामने रख दे और झोली एवं पात्रको हाथमें ऊपर उठाकर एक-एक पदार्थको बता दे कि मुझे अमुक २ पदार्थ प्राप्त हुए हैं। इस तरह साधुको थोड़ा भी आहार छिपाकर नहीं रखना चाहिए ॥६२६॥

यदि कोई साधु गृहस्थके घर पर ही प्राप्त पदार्थोंमें से अच्छे २ पदार्थों को उदरस्थ करके बचे खुचे पदार्थ आचार्य आदिके पास लेकर आता है, तो वह भी मायाका सेवन करता है। अतः साधुको ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए ॥६२७॥

गृहस्थके घर पर आहार आदिके लिए गया हुआ साधु-साध्वी यदि जाने कि गन्नेकी गंडेरी, उसकी छिली गांठ, छिलका, छिला हुआ अग्रभाग— अथवा जड़, छिला हुआ पूरा गन्ना या उसका टुकड़ा, पकाई हुई मूंग आदिकी फली, चौलेकी फली जो कि किसी निमित्तसे अचित्त है, परन्तु उसमें खाद्य भाग स्वल्प है, और फेंकने योग्य भाग अधिक है, तो इस प्रकारका आहार मिलने पर भी अकल्पनीय जानकर ग्रहण न करे ॥६२८॥

…जाने कि इस पक्व फलमें बीज और कांटे बहुत हैं, इसे ग्रहण करने पर भोजन योग्य कम और फेंकने योग्य अधिक होगा उस प्रकारके बहुत बीज एवं काँटों वाले फलको प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे ॥६२९॥

यदि कोई गृहस्थ बहुत बीजवाले, बहुकंटक फलकी निमंत्रणा करे–आयुष्मन् श्रमण! क्या आप बहुबीजक, बहुकंटक फल लेना चाहते हैं? इस प्रकारके शब्दको सुनकर और विचार कर पहले ही मुनि उसे कहे कि "आयुष्मन् गृहस्थ! यदि तुम मुझे देना चाहते हो तो जितना इस फलका सारभाग है उतना मुझे दे दो, बीज और कांटे नहीं। क्योंकि मुझे बहुबीजक—बहुकंटक फल ग्रहण करना नहीं कल्पता है।" यदि गृहस्थ उस भिक्षुके इस प्रकार कहने पर भी अपने वर्तन में से उपरोक्त फल लाकर देना चाहे तो मुनि उसीके हाथ या वर्तनमें थमाकर कहे कि बसकर, न लूंगा। इतना रोकने पर भी वह बलात्–हठात् पात्रमें डाल ही दे तो फिर उसे कुछ न कहे। किन्तु उस आहारको ले एकान्तमें जाकर जीव-जन्तु आदिसे रहित बाग या उपाश्रयमें बैठ कर खाने योग्य भागको उपयोगमें ले ले तथा शेष गुठली एवं कांटोंको लेकर एकान्त अचित्त एवं प्रासुक स्थान पर प्रमार्जित करके परठ दे ॥६३०॥

यदि कोई गृहस्थ घर पर गोचर-चर्यार्थ आए हुए भिक्षुको अन्दर-घरमें अपने पात्र में बिड़ अथवा उद्भिज लवणको विभक्त कर उसमें से कुछ निकाल-कर साधुको देवे तो उस प्रकारके लवणादिको गृहस्थके पात्रमें अथवा हाथमें अकल्पनीय जानकर ग्रहण न करे। यदि कभी अकस्मात् उस अचित्त नमकको ग्रहण कर लिया है तो मालूम होने पर गृहस्थको समीपस्थ ही जानकर लवणादि को लेकर वहाँ जावे और वहाँ जाकर पहले दिखलाए और कहे कि—हे आयुष्मन्! अथवा भगिनि! तुमने यह लवण मुझे जानकर दिया है या बिना जाने दिया है? यदि वह गृहस्थ कहे कि मैंने जानकर नहीं दिया, किन्तु भूलसे दिया है। परन्तु, हे आयुष्मन्! अब मैं तुम्हें जानकर दे रहा हूं, अब तुम्हारी इच्छा

है—तुम स्वयं खाओ अथवा परस्परमें बांट लो। अस्तु गृहस्थ की ओरसे सम्यक् प्रकारसे आज्ञा पाकर अपने स्थान पर चला जावे, और वहाँ जाकर यत्नापूर्वक खाए तथा पीए। यदि स्वयं खाने या पीनेको असमर्थ हो तो जहाँ आस-पासमें एक मांडलेके संभोगी, समनोज्ञ और निर्दोष साधु रहते हों वहाँ जाकर उनको दे दे। यदि सार्धमिक पासमें न हों तो जो परठनेकी विधि बतलाई है उसीके अनुसार परठ दे ॥६३१॥ यही·········॥६३२॥

॥ दशवाँ उद्देशक समाप्त ॥

एकादश उद्देशक

एक क्षेत्र में किसी कारण से साधु रहते हैं, वहां पर ही ग्रामानुग्राम विचरते हुए अन्य साधु भी आगए हैं और वे भिक्षाशील मुनि मनोज्ञ भोजन को प्राप्त कर उन पूर्वस्थित भिक्षुओं को कहे कि अमुक भिक्षु रोगी है उसके लिए तुम यह मनोज्ञ आहार ले लो। यदि वह रोगी भिक्षु न खाए तो तुम खा लेना ! अस्तु किसी एक भिक्षु नें उनके पास से आहार लेकर मन में विचार किया कि यह मनोज्ञ आहार मैं ही खाऊँगा, इस प्रकार विचार कर उस मनोज्ञ आहार को अच्छी तरह छिपा कर, रोगी भिक्षु को अन्य आहार दिखला कर कहे कि यह आहार भिक्षुओं ने आपके लिये दिया है। किन्तु यह आहार आपके लिए पथ्य नहीं है, क्यों कि यह रूक्ष है, तिक्त है, कटुक है, कसैला है, खट्टा है, मधुर है, अतः रोग की वृद्धि करनें वाला है, आपको इससे कुछ भी लाभ नहीं होगा। जो भिक्षु इस प्रकार कपटचर्या करता है वह मातृस्थान का स्पर्श करता है, अतः भिक्षु को ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। किन्तु जैसा भी आहार हो उसे वैसा ही दिखलावे—अर्थात् तिक्त को तिक्त यावत् मीठे को मीठा बतलावे। तथा जिस प्रकार रोगी को शांति प्राप्त हो उसी प्रकार पथ्य आहार के द्वारा उसकी सेवा शुश्रूषा करे ॥६३३॥

यदि स्थिरवासी साधु ग्रामानुग्राम विचरने वाले अतिथि भिक्षुओं को कहे ···········न खाए तो यह आहार हमें वापिस लाकर दे देना, क्योंकि हमारे यहां भी रोगी साधु है। तब वह आहार लेनें वाला साधु उनसे कहे कि यदि मुझे आने में कोई विघ्न न हुआ तो मैं इस आहार को वापिस लाकर दे दूंगा, परन्तु इस प्रकार कह कर वह आहार रोगी को न देकर स्वयं खा जाता है तो उसका यह कार्य कर्म बन्धन का कारण है। इनको सम्यक् प्रकार से दूर करके रोगी साधु की सेवा करनी चाहिए ॥६३४॥

संयमशील साधु सात पिण्डैषणाओं तथा सात पानैषणाओं को जाने । उन सातोंमें से पहली "पिंडैषणा" यह है कि अचित्त वस्तुसे न हाथ लिप्त और न पात्र ही लिप्त है, उस प्रकार के अलिप्त हाथ और अलिप्त पात्र से अशनादि चतुर्विध आहारकी स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण करले, यह "प्रथम पिण्डैषणा" है ॥६३५॥

इसके अनन्तर "दूसरी पिण्डैषणा" यह है कि अचित्त वस्तुसे हाथ और भोजन लिप्त हैं तो पूर्ववत् प्रासुक जानकर उसे ग्रहण करले, यह "दूसरी पिण्डैषणा" है ॥६३६॥

तदन्तर "तीसरी पिंडैषणा" कहते हैं—इस संसार या क्षेत्रमें पूर्वादि चारों दिशाओं में बहुत से पुरुष हैं उनमें से कई एक श्रद्धालु भी हैं, यथा-गृहपति, गृहपत्नी यावत् उनके दास और दासी आदि रहते हैं । उनके वहां नाना-विध भाजनों में भोजन रक्खा हुआ होता है यथा–थाल में, पिठर-वटलोहीमें, सरक (छाज जैसा) में, टोकरी में और मणिजटित महार्घ पात्र में । फिर साधु यह जाने कि गृहस्थ का हाथ तो लिप्त नहीं है—भाजन लिप्त है, अथवा हाथ लिप्त है भाजन अलिप्त है, तब वह स्थविरकल्पी अथवा जिनकल्पी साधु पहले ही उसको देखकर कहे कि—हे आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा भगिनि ! तू मुझको इस अलिप्त हाथ से और लिप्त भाजन से हमारे पात्र या हाथ में वस्तु लाकर दे दे । तथाप्रकार के भोजन को स्वयं मांग ले अथवा विना मांगे ही गृहस्थ लाकर दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण करले । यह "तीसरी पिण्डैषणा" है ॥६३७॥

चौथी पिण्डैषणा—भिक्षु तुषरहित शाल्यादिको यावत् भुग्न शाल्यादिके चावलको जिसमें पश्चात् कर्म नहीं है, और न तुषादि गिराने पड़ते हैं, इस प्रकार का भोजन स्वयं माँगले यावत् ले ले, यह चौथी पिण्डैषणा है ॥६३८॥

पांचवीं पिण्डैषणा—गृहस्थने हस्तादिको धोकर अपने खाने के लिए, सकोरेमें, कांसीकी थालीमें, अथवा मिट्टीके किसी भाजनमें, भोजन रक्खा हुआ है—उसके हाथ जो सचित्त जलसे धोए थे सूख चुके हैं तथाप्रकारके अशनादि आहारको प्रासुक जानकर साधु स्वयं यावत् ग्रहण करे । यह पांचवीं पिण्डैषणा है ॥६३९॥

छठी पिण्डैषणा—गृहस्थने अपने लिए अथवा किसी दूसरेके लिए वर्तन में से भोजन निकाला है परन्तु दूसरेने अभी उसको ग्रहण नहीं किया है, तो उस प्रकारका भोजन गृहस्थके पात्र में हो या उसके हाथमें हो तो मिलने पर प्रासुक जानकर यावत् ग्रहण करे । यह छठी पिण्डैषणा है ॥६४०॥

सातवीं पिण्डैषणा—वह साधु या साध्वी, जिसे वहुतसे पशुपक्षी मनुष्य–श्रमण (बौद्ध भिक्षु) ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी लोग नहीं चाहते,

तथाप्रकारके उज्झित-धर्म वाले भोजनको स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ दे दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण करले, यह सातवीं पिण्डैषणा है। इस प्रकार ये सात पिण्डैषणाएँ कही हैं ॥६४१॥

तथा अपर 'सात पानैषणा' अर्थात् पानीकी एषणाएँ हैं। जैसे कि अलिप्त हाथ और अलिप्त भाजन आदि, शेष सब वर्णन पूर्वकी भांति समझना चाहिए। इतना विशेष है कि चौथी पानैषणामें नानात्वकी विशेषता है। वह साधु या साध्वी गृहपति कुलमें प्रवेश करने पर फिर इस प्रकार पानीके विषयमें जाने जैसे कि तिलादिका धोवन निश्चय ही जिसके ग्रहण करने पर पश्चात कर्म नहीं लगता है तो उसी प्रकार···ग्रहण कर ले। शेष पानैषणा पिण्डैषणाकी तरह जाननी चाहिए ॥६४२॥

इन सातों पिण्डैषणाओं तथा पानैषणाओंमें से किसी एक प्रतिमा—प्रतिज्ञा—अभिग्रहको ग्रहण करता हुआ साधु फिर इस प्रकार न कहे—ये सब अन्य साधु सम्यक् तथा प्रतिमाओंको ग्रहण करने वाले नहीं हैं, केवल एक मैं ही सम्यक् प्रकारसे प्रतिमा ग्रहण करने वाला हूं। उसे किस तरह बोलना चाहिए? इस विषयमें कहते हैं—ये सब साधु इन प्रतिमाओंको ग्रहण करके विचरते हैं। ये सब जिनाज्ञामें उद्यत हुए परस्पर समाधिपूर्वक विचरते हैं ॥६४३॥

इस तरह जो साधु साध्वी अहंभाव को नहीं रखता उसीमें साधुत्व है, और अहंकार नहीं रखना सम्यक् आचार है ॥६४४॥

॥ ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कंधका पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

—०—

द्वितीय अध्ययन—शय्यैषणा

प्रथम उद्देशक

वह साधु अथवा साध्वी उपाश्रयकी गवेषणा करना चाहे तब ग्राममें अथवा यावत् राजधानीमें प्रवेश करे ॥६४५॥

वह भिक्षु जो फिर उपाश्रयको जाने जो उपाश्रय अण्डोंसे यावत् मकड़ी आदिके जालोंसे युक्त है तो उसमें वह कायोत्सर्ग शय्या संस्तारक और स्वाध्याय न करे ॥६४६॥

वह साधु या साध्वी जिस उपाश्रयको अण्डों और मकड़ीके जाले आदिसे

रहित जाने उसे प्रतिलेखित और प्रमार्जित करके उसमें कायोत्सर्गादि करे ॥६४७॥

जो उपाश्रय एक साधर्मीके उद्देश्यसे प्राणी, भूत, जीव और सत्वादिका समारम्भ करके, मोल लेकर, उधार लेकर, किसी निर्वलसे छीनकर, यदि सर्व-साधारणका है तो किसी एककी भी विना आज्ञा लिए साधुको देता है तो इस प्रकारका उपाश्रय पुरुषान्तरकृत हो अथवा अपुरुषान्तरकृत, एवं सेवित हो या अनासेवित, उसमें साधु कायोत्सर्गादि कार्य न करे। इसी प्रकार जो वहुतसे साधर्मियोंके लिए वनाया गया हो तथा एक साधर्मिणी या वहुतसी साधर्मिणियों के लिए वनाया आदि गया है, उसमें भी स्थानादि कायोत्सर्गादि न करे ॥६४८॥

और जो उपाश्रय वहुतसे श्रमणों तथा भिखारियोंके लिए वनाया गया हो उसमें भी स्थान ······ न करे। जो उपाश्रय शाक्यादि भिक्षुओंके निमित्त षट्काय का समारम्भ करके वनाया गया है, जव तक वह अपुरुषान्तरकृत यावत् अना-सेवित है तव तक उसमें कायोत्सर्गादि न करे, और यदि वह पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन करके यतनापूर्वक वहां स्थानादि कार्य कर सकता है ॥६४९॥

जो उपाश्रय गृहस्थने साधुके लिए वनाया है, उसका काष्ठादिसे संस्कार किया है, वांस आदिसे वांधा है, तृणादिसे आच्छादित किया है, गोवरादिसे लीपा है, संवारा है, तथा ऊंची नीची भूमिको समतल वनाया है, सुकोमल वनाया है और दुर्गन्धादिको दूर करनेके लिए सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित किया है, तो इस प्रकारका उपाश्रय जब तक अपुरुषान्तरकृत या अनासेवित है, तव तक उसमें नहीं ठहरना चाहिए, और यदि वह पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित हो गया हो तो उसका प्रतिलेखन करके उसमें स्थानादि कार्य कर सकता है ॥६५०॥

वह साधु या साध्वी उपाश्रयके विषयमें यह जाने कि गृहस्थने साधुके लिए उपाश्रयके छोटे द्वारको वड़ा वनाया है, और वड़ेको छोटाकर दिया है, तथा भीतरसे कोई पदार्थ वाहर निकाल दिया है तो इस प्रकारका उपाश्रय जव तक ······ ॥६५१॥

इसी प्रकार यदि कोई गृहस्थ साधुके लिए उदकसे उत्पन्न होने वाले कन्द मूल, पत्र, पुष्प, फल, वीज और हरी सब्जीको एक स्थानसे स्थानान्तरमें संक्रमण करता है, या भीतरसे किसी पदार्थको वाहर निकालता है, तो इस प्रकार का उपाश्रय भी जव तक ······ ॥६५२॥

इसी भांति यदि गृहस्थ साधुके लिए पीठ (चौकी) फलक और ऊखल आदि पदार्थोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रखता है, या भीतरसे वाहर निकालता है, तो इस प्रकारका उपाश्रय भी जव तक ······ ॥६५३॥

वह साधु या साध्वी उपाश्रयको जाने, जैसे कि—जो उपाश्रय एक स्तम्भ पर है, मंचान पर है, माले पर है, प्रासाद पर—दूसरी मंजिल पर या महल पर बना हुआ है, तथा इसी प्रकारके किसी ऊँचे स्थान पर स्थित है तो किसी असाधारण कारणके बिना उक्त प्रकारके उपाश्रयमें स्थानादि न करे ॥६५४॥

यदि कभी विशेष कारणसे उसमें ठहरना पड़े तो वहाँ पर प्रासुक शीतल या उष्ण जलसे, हाथ, पैर, आँख, दांत और मुख आदिका एक या एकसे अधिक बार प्रक्षालन न करे। वहां पर मल आदिका उत्सर्जन न करे यथा—उच्चार (विष्ठा), प्रस्रवण (मूत्र), मुखका मल, नाक का मल, वमन, पित्त, पूय, और रुधिर तथा शरीरके अन्य किसी अवयवके मलका वहां त्याग न करे। क्योंकि केवली भगवान्ने इसे कर्म आनेका मार्ग कहा है। यदि वह मलादिका उत्सर्ग करता हुआ फिसल पड़े या गिर पड़े, तो उसके फिसलने या गिरने पर उसके हाथ पैर, मस्तक एवं शरीरके किसी भी भागमें चोट लग सकती है और उसके गिरनेसे स्थावर एवं त्रस प्राणियोंका भी विनाश हो सकता है। अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरादिका पहले ही यह उपदेश है कि इस प्रकारके उपाश्रयमें जो कि अन्तरिक्षमें अवस्थित है, साधु कायोत्सर्गादि न करे और न वहाँ ठहरे ॥६५५॥

वह साधु अथवा साध्वी उपाश्रयको जाने जैसे कि यह उपाश्रय स्त्री, बालक और पशु तथा उनके खाने योग्य पदार्थोंसे युक्त है तो इसप्रकारके गृहस्थादिसे युक्त उपाश्रयमें साधु साध्वी न ठहरे…। क्यों कि यह कर्म आनेका मार्ग है। भिक्षुको गृहस्थके कुटुम्बके साथ बसते हुए कदाचित् शरीरका स्तम्भन या सूजन हो जाए या विशूचिका, वमन, ज्वर या शूलादि रोग उत्पन्न हो जाए तो वह गृहस्थ करुणाभावसे प्रेरित होकर साधुके शरीरको तेलसे, घीसे, अथवा उबटनसे मालिश करेगा। और फिर उसे प्रासुक शीतल या उष्ण जलसे स्नान कराएगा या लोध्र चूर्ण तथा पद्मसे एक अथवा अनेक बार उसके शरीरको घर्षित करेगा, तथा शरीरकी स्निग्धताको उबटन आदिसे दूर करेगा। उस मैलको साफ करनेके लिए उसके शरीरको प्रासुक शीतल या उष्ण जलसे प्रक्षालन करेगा। उसके मस्तकको धोएगा या उसे जलसे सिंचित करेगा, अथवा अरणीके काष्ठको परस्पर रगड़कर अग्नि प्रज्वलित करेगा और उससे साधुके शरीरको गर्म करेगा। इस तरह गृहस्थके परिवारके साथ उसके घरमें ठहरनेसे अनेक दोष लगनेकी संभावना देखकर भगवान्ने ऐसे स्थान पर ठहरने का निषेध किया है ॥६५६॥

गृहस्थोंसे युक्त उपाश्रयमें निवास करना साधुके लिए कर्मबन्धका कारण कहा है। क्यों कि उसमें गृहपति, उसकी पत्नी, पुत्रियें, पुत्रवधू, दास-दासिएँ आदि रहती हैं और कभी वे एक-दूसरेको मारें, रोकें या उपद्रव करें तो उन्हें

रहित जाने उसे प्रतिलेखित और प्रमार्जित करके उसमें कायोत्सर्गादि करे ॥६४७॥

जो उपाश्रय एक साधर्मीके उद्देश्यसे प्राणी, भूत, जीव और सत्वादिका समारम्भ करके, मोल लेकर, उधार लेकर, किसी निर्वलसे छीनकर, यदि सर्व-साधारणका है तो किसी एककी भी विना आज्ञा लिए साधुको देता है तो इस प्रकारका उपाश्रय पुरुषान्तरकृत हो अथवा अपुरुषान्तरकृत, एवं सेवित हो या अनासेवित, उसमें साधु कायोत्सर्गादि कार्य न करे। इसी प्रकार जो वहुतसे साधर्मियोंके लिए बनाया गया हो तथा एक साधर्मिणी या वहुतसी साधर्मिणियों के लिए बनाया आदि गया है, उसमें भी स्थानादि कायोत्सर्गादि न करे ॥६४८॥

और जो उपाश्रय वहुतसे श्रमणों तथा भिखारियोंके लिए बनाया गया हो उसमें भी स्थान······न करे। जो उपाश्रय शाक्यादि भिक्षुओंके निमित्त षट्काय का समारम्भ करके बनाया गया है, जब तक वह अपुरुषान्तरकृत यावत् अना-सेवित है तब तक उसमें कायोत्सर्गादि न करे, और यदि वह पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन करके यतनापूर्वक वहां स्थानादि कार्य कर सकता है ॥६४९॥

जो उपाश्रय गृहस्थने साधुके लिए बनाया है, उसका काष्ठादिसे संस्कार किया है, बांस आदिसे बांधा है, तृणादिसे आच्छादित किया है, गोबरादिसे लीपा है, संवारा है, तथा ऊंची नीची भूमिको समतल बनाया है, सुकोमल बनाया है और दुर्गन्धादिको दूर करनेके लिए सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित किया है, तो इस प्रकारका उपाश्रय जब तक अपुरुषान्तरकृत या अनासेवित है, तब तक उसमें नहीं ठहरना चाहिए, और यदि वह पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित हो गया हो तो उसका प्रतिलेखन करके उसमें स्थानादि कार्य कर सकता है ॥६५०॥

वह साधु या साध्वी उपाश्रयके विषयमें यह जाने कि गृहस्थने साधुके लिए उपाश्रयके छोटे द्वारको बड़ा बनाया है, और बड़ेको छोटाकर दिया है, तथा भीतरसे कोई पदार्थ वाहर निकाल दिया है तो इस प्रकारका उपाश्रय जब तक······॥६५१॥

इसी प्रकार यदि कोई गृहस्थ साधुके लिए उदकसे उत्पन्न होने वाले कन्द मूल, पत्र, पुष्प, फल, वीज और हरी सब्जीको एक स्थानसे स्थानान्तरमें संक्रमण करता है, या भीतरसे किसी पदार्थको वाहर निकालता है, तो इस प्रकार का उपाश्रय भी जब तक······॥६५२॥

इसी भांति यदि गृहस्थ साधुके लिए पीठ (चौकी) फलक और ऊखल आदि पदार्थोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रखता है, या भीतरसे वाहर निकालता है, तो इस प्रकारका उपाश्रय भी जब तक······॥६५३॥

वह साधु या साध्वी उपाश्रयको जाने, जैसे कि—जो उपाश्रय एक स्तम्भ पर है, मंचान पर है, माले पर है, प्रासाद पर—दूसरी मंजिल पर या महल पर बना हुआ है, तथा इसी प्रकारके किसी ऊँचे स्थान पर स्थित है तो किसी असाधारण कारणके विना उक्त प्रकारके उपाश्रयमें स्थानादि न करे ॥६५४॥

यदि कभी विशेष कारणसे उसमें ठहरना पड़े तो वहाँ पर प्रासुक शीतल या उष्ण जलसे, हाथ, पैर, आँख, दांत और मुख आदिका एक या एकसे अधिक बार प्रक्षालन न करे। वहां पर मल आदिका उत्सर्जन न करे यथा—उच्चार (विष्ठा), प्रस्रवण (मूत्र), मुखका मल, नाक का मल, वमन, पित्त, पूय, और रुधिर तथा शरीरके अन्य किसी अवयवके मलका वहां त्याग न करे। क्योंकि केवली भगवान्ने इसे कर्म आनेका मार्ग कहा है। यदि वह मलादिका उत्सर्ग करता हुआ फिसल पड़े या गिर पड़े, तो उसके फिसलने या गिरने पर उसके हाथ पैर, मस्तक एवं शरीरके किसी भी भागमें चोट लग सकती है और उसके गिरनेसे स्थावर एवं त्रस प्राणियोंका भी विनाश हो सकता है। अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरादिका पहले ही यह उपदेश है कि इस प्रकारके उपाश्रयमें जो कि अन्तरिक्षमें अवस्थित है, साधु कायोत्सर्गादि न करे और न वहाँ ठहरे ॥६५५॥

वह साधु अथवा साध्वी उपाश्रयको जाने जैसे कि यह उपाश्रय स्त्री, बालक और पशु तथा उनके खाने योग्य पदार्थोंसे युक्त है तो इसप्रकारके गृहस्थादिसे युक्त उपाश्रयमें साधु साध्वी न ठहरे…। क्यों कि यह कर्म आनेका मार्ग है। भिक्षुको गृहस्थके कुटुम्बके साथ बसते हुए कदाचित् शरीरका स्तम्भन या सूजन हो जाए या विशूचिका, वमन, ज्वर या शूलादि रोग उत्पन्न हो जाए तो वह गृहस्थ करुणाभावसे प्रेरित होकर साधुके शरीरको तेलसे, घीसे, अथवा उबटनसे मालिश करेगा। और फिर उसे प्रासुक शीतल या उष्ण जलसे स्नान कराएगा या लोध्र चूर्ण तथा पद्मसे एक अथवा अनेक बार उसके शरीरको घर्षित करेगा, तथा शरीरकी स्निग्धताको उबटन आदिसे दूर करेगा। उस मैलको साफ करनेके लिए उसके शरीरको प्रासुक शीतल या उष्ण जलसे प्रक्षालन करेगा। उसके मस्तकको धोएगा या उसे जलसे सिंचित करेगा, अथवा अरणीके काष्ठको परस्पर रगड़कर अग्नि प्रज्वलित करेगा और उससे साधुके शरीरको गर्म करेगा। इस तरह गृहस्थके परिवारके साथ उसके घरमें ठहरनेसे अनेक दोष लगनेकी संभावना देखकर भगवान्ने ऐसे स्थान पर ठहरने का निषेध किया है ॥६५६॥

गृहस्थोंसे युक्त उपाश्रयमें निवास करना साधुके लिए कर्मबन्धका कारण कहा है। क्यों कि उसमें गृहपति, उसकी पत्नी, पुत्रियें, पुत्रवधू, दास-दासिएँ आदि रहती हैं और कभी वे एक-दूसरेको मारें, रोकें या उपद्रव करें तो उन्हें

ऐसा करते हुए देखकर मुनिके मनमें ऊँचे-नीचे भाव आ सकते हैं। वह सोच सकता है कि ये परस्पर लड़ें झगड़ें या लड़ाई झगड़ा न करें आदि। इसलिए तीर्थंकरोंने साधुको पहले ही यह उपदेश दिया है कि वह गृहस्थसे युक्त उपाश्रयमें न ठहरे ॥६५७॥

गृहस्थादिसे युक्त उपाश्रयमें ठहरना साधुके लिए कर्मबन्धका कारण है। क्यों कि वहां पर गृहस्थ लोग अपने प्रयोजनके लिए अग्निको उज्वलित एवं प्रज्वलित करते हैं, या प्रज्वलित आगको बुझाते हैं। अतः उनके साथ वसते हुए भिक्षुके मनमें कभी ऊँचे-नीचे परिणाम भी आसकते हैं। कभी वह यह भी सोच सकता है, कि यह गृहस्थ अग्निको उज्वलित और प्रज्वलित करें या ऐसा न करें, यह अग्निको बुझा दें या न बुझाएँ। इसलिए तीर्थंकरादिने भिक्षुको पहले ही यह उपदेश···॥६५८॥

गृहस्थादिसे युक्त उपाश्रयमें ठहरना····। जो भिक्षु गृहस्थके साथ वसता है, उसमें निम्नलिखित कारणोंसे राग-द्वेषके भावोंका उत्पन्न होना संभव है। यथा—गृहपतिके कुण्डल, या धागेमें पिरोया हुआ आभरण विशेष, मणि, मुक्ता, चांदी, सोना या स्वर्णके कड़े, वाजूवन्द-भुजाओंमें धारण करनेके आभूषण, तीन लड़ीका हार, फूलमाला, अठारह लड़ी का हार, नौलड़ीका हार, एकावलीहार, सोनेका हार, मोतियों और रत्नोंका हार, तथा वस्त्रालंकारादिसे अलंकृत और विभूषित युवती स्त्री और कुमारी कन्याको देखकर भिक्षुके मनमें ये संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं, कि ये पूर्वोक्त आभूषणादि मेरे घरमें भी थे, अथवा नहीं थे। एवं मेरी स्त्री या कन्या भी इसीप्रकारकी थी, अथवा नहीं थी। इन्हें देखकर वह ऐसे वचन वोलेगा या मनमें उनका अनुमोदन करेगा। इसलिए तीर्थंकरोंने पहले ही भिक्षुओंको यह उपदेश ·······॥६५९॥

भिक्षुको गृहस्थोंके साथ वसनेसे निम्नलिखित दोष लग सकते हैं। जब वह गृहस्थोंके साथ रहेगा तब उन गृहस्थोंकी गृहपत्नियें, उनकी पुत्रिएं, पुत्रवधुएं, धायमाताएं, दासिएं और अनुचरिएं आपसमें मिलकर वार्तालाप भी करने लगती हैं, कि—ये साधु मैथुन धर्मसे सदा उपरत रहते हैं, अर्थात् ये मैथुन क्रीड़ा नहीं करते। अतः इन्हें मैथुन सेवन करना नहीं कल्पता। परन्तु, जो कोई स्त्री इनके साथ मैथुन क्रीड़ा करती है, उसको बलवान, तेजस्वी, रूपवाला और कीर्तिमान, संग्राममें शूरवीर एवं दर्शनीय पुत्रकी प्राप्ति होती है। इसप्रकारके शब्दको सुनकर उनमेंसे कोई एक पुत्रकी इच्छा रखने वाली स्त्री उस भिक्षुको मैथुन सेवनके लिए तैयार कर लेवे। इस तरहकी संभावना हो सकती है, इसलिए तीर्थंकरोंने ऐसे स्थानमें ठहरनेका निषेध किया है॥६६०॥

यह निश्चय ही उस साधु या साध्वीका सम्पूर्ण भिक्षुत्व है॥६६१॥

॥ शय्या अध्ययनका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

कई एक गृहस्थ शुचिधर्म वाले होते हैं, और साधु स्नानादि नहीं करते। अतः उनके वस्त्रोंसे आने वाली दुर्गन्ध गृहस्थ के लिए प्रतिकूल होती है। इसलिए वह गृहस्थ जो कार्य पहले करना है, उसे पीछे करता है और जो कार्य पीछे करना है, उसे पहले करने लगता है, और भिक्षुके कारण भोजनादि क्रियाएं समय पर करे, या न करे। इसीप्रकार भिक्षु भी प्रत्युपेक्षणादि क्रियाएं समय पर नहीं कर सकेगा, अथवा सर्वथा ही नहीं करेगा। इसलिए तीर्थंकरादिने भिक्षुओं को पहले ही यह उपदेश ·······॥६६२॥

गृहस्थोंके साथ निवास करते हुए भिक्षुके लिए यह भी एक कर्मबन्धनका कारण हो सकता है, जैसे कि—गृहस्थ अपने लिए नानाप्रकारका भोजन तैयार करके फिर साधुके लिए चतुर्विध आहारको तैयार करने एवं उसके लिए सामग्री एकत्रित करनेमें लगेगा, उस आहारको देखकर साधु भी उसका आस्वादन करना चाहेगा, या उसमें आसक्त हो जाएगा। इसलिए तीर्थंकरादिने ·····॥६६३॥

इसीप्रकार गृहस्थोंके साथ ठहरनेसे भिक्षुको एक यह भी दोष लगेगा कि गृहस्थने अपने लिए नानाप्रकारका काष्ठ-ईंधन एकत्रित कर रक्खा है, फिर वह साधुके लिए नानाप्रकारके काष्ठोंका भेदन करेगा, मोल लेगा अथवा किसीसे उधार लेगा और काष्ठसे काष्ठको संघर्षित करके अग्निकायको उज्वलित और प्रज्वलित करेगा, और उस गृहस्थकी तरह साधु भी शीत निवारणार्थ अग्निका आताप लेगा, और उसमें आसक्त हो जायगा। इसलिए·········॥६६४॥

रात्रिमें अथवा विकालमें साधुने मल-मूत्रादिकी बाधा होने पर गृहस्थके घरका द्वार खोला और उसी समय कोई चोर या उसका साथी घरमें प्रविष्ट हो गया तो उस समय साधु मौन रहेगा। वह हल्ला-गुल्ला नहीं मचाएगा, कि यह चोर घरमें घुसता है, अथवा नहीं घुसता है, छिपता है अथवा नहीं छिपता है, नीचे कूदता है अथवा नहीं कूदता है, बोलता है अथवा नहीं बोलता है, उसने चुराया है, अथवा अन्यने चुराया है, उसका धन चुराया है, अथवा अन्यका धन चुराया है, यह चोर है, यह उसका उपचारक है, यह मारने वाला है, और इस चोरने यहां यह कार्य किया है। और साधुके कुछ नहीं कहने पर उसे उस तपस्वी साधु पर जो वास्तवमें चोर नहीं है, चोर होनेका सन्देह हो जाएगा इसलिए·······॥६६५॥

साधु अथवा साध्वी उपाश्रयके सम्बन्धमें यह जाने कि यदि तृण एवं पलालका समूह अण्डोंसे युक्त है, अथवा मकड़ीके जालोंसे युक्त है, तो इसप्रकार के उपाश्रयमें कायोत्सर्गादि न करे॥६६६॥

वह भिक्षु यदि यह जाने कि यह उपर्युक्त प्रकारका उपाश्रय अण्डोंसे

रहित यावत् मकड़ीके जालोंसे रहित है, तो इसप्रकारके उपाश्रयमें कायोत्सर्गादि क्रियाएं कर सकता है ॥६६७॥

धर्मशाला, उद्यान में बने हुए विश्रामगृह, गृहपति कुल एवं तापस आदिके मठोंमें जहां अन्य मतके साधु बार-बार आते जाते हों, वहां जैन मुनिको मास-कल्प नहीं करना चाहिए ॥६६८॥

धर्मशाला आदि स्थानोंमें जो मुनिराज शीतोष्णकालमें मासकल्प एवं वर्षाकालमें चतुर्मासिकल्पको बिताकर बिना कारण पुनः वहीं पर निवास करते हैं, तो वे कालका अतिक्रमण करते हैं ॥६६९॥

आयुष्मन् ! जो साधु साध्वी धर्मशाला आदि स्थानोंमें, शेषकालमें मास-कल्प आदि, और वर्षाकालमें चातुर्मासि कल्पको बिताकर अन्य स्थानोंमें द्विगुण या त्रिगुण काल को न बिताकर जल्दी ही फिर उन्हीं स्थानोंमें निवास करते हैं, तो उन्हें उपस्थान क्रिया लगती है ॥६७०॥

आयुष्मन् शिष्य ! इस संसारमें पूर्वादि दिशाओंमें कई व्यक्ति श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होते हैं। जैसे कि—गृहपति यावत् उनके दास-दासियां। उन्होंने साधुका आचार और व्यवहार तो सम्यक्तया नहीं सुना है, परन्तु यह सुन रखा है, कि उन्हें उपाश्रय आदिका दान देनेसे स्वर्गादिका फल मिलता है, और इस पर श्रद्धा विश्वास एवं अभिरुचि रखनेके कारण उन्होंने बहुतसे शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी आदिका उद्देश्य करके तथा अपने कुटुम्ब का उद्देश्य रखकर अपने-अपने गांवों या शहरोंमें उन गृहस्थोंने बड़े-बड़े मकान बनवाए हैं। जैसे कि लोहकार की शालाएँ, धर्मशालाएँ, देवकुल, सभाएं, प्रपाएं (प्याऊ), दुकानें, मालगोदाम, यानगृह, यानशालाएं, चूनेके कारखाने, कुशाके कारखाने, वर्ध्रके कारखाने, वल्कलके कारखाने, कोयलेके कारखाने, काष्ठके कारखाने, शमशान भूमिमें बने हुए मकान, शून्यगृह, पहाड़के ऊपर बने हुए मकान, पहाड़की गुफा, शान्तिगृह, पाषाणमण्डप, भूमिघर—तहखाने इत्यादि, और इन स्थानोंमें श्रमण-ब्राह्मणादि अनेक बार ठहर चुके हैं। यदि ऐसे स्थानोंमें जैन भिक्षु भी ठहरते हैं तो उसे अभिक्रान्त क्रिया कहते हैं, अर्थात् साधुको ऐसे मकानमें ठहरना कल्पता है ॥६७१॥

आयुष्मन् शिष्य ! इस संसारमें..............तहखाने इत्यादि। और उप-रोक्त स्थान गृहस्थोंने तथा शाक्यादि श्रमणोंने अपने उपभोगमें नहीं लिए हैं, अर्थात् बननेके बाद वे खाली ही पड़े रहे हैं। ऐसे स्थानोंमे यदि जैन साधु ठहरते हैं तो उन्हें अनभिक्रान्त क्रिया लगती है ॥६७२॥

संसारमें पूर्वादि दिशाओंमें बहुतसे ऐसे श्रद्धालु गृहस्थ यावत् दास दासी

आदि व्यक्ति हैं, जो साधुके आचार-विचारको जानते हैं, फलतः परस्पर बात-चीत करते हुए कहते हैं, कि—ये पूजनीय साधु मैथुन धर्मसे सर्वथा उपरत हैं एवं सावद्य क्रियाओंसे विरक्त हैं। अतः इन्हें आधाकर्मिक—आधाकर्म दोषसे दूषित उपाश्रयमें बसना नहीं कल्पता है। अस्तु हमने अपने लिए जो लोहकारशाला आदि मकान बनाए हैं, वे सब इन श्रमणोंको दे देते हैं। और हम अपने लिए दूसरे नए लोहकारशाला आदि मकान बना लेंगे। गृहस्थोंके उक्त निर्घोषको सुनकर तथा समझकर भी जो मुनि उस प्रकारके छोटे-बड़े लोहकारशाला आदि गृहस्थों द्वारा दिए गए स्थानोंमें उतरते हैं, छोटे-बड़े दिए हुए घरोंको वर्तते हैं तो आयुष्मन् ! शिष्य ! उन्हें वर्ज्यक्रिया का दोष लगता है ॥६७३॥

इस संसारमें पूर्वादि ····(देखो सूत्र नं० ६७१)। उन्होंने बहुतसे श्रमण, ब्राह्मण यावत् भिखारियोंको गिन-गिन कर तथा उनका लक्ष्य करके लोहकार-शाला आदि विशाल भवन बनाए हैं। जो मुनि उस प्रकारके छोटे-बड़े लोह० वर्तते हैं···· उन्हें **महावर्ज्य** क्रिया लगती है ॥६७४॥

इस संसारमें ·······(सूत्र ६७४) उन्हें सावद्यक्रिया भी लगती है ॥६७५॥

इस संसारमें पूर्वादि ·······(सू० ६७१) यावत् रुचि करनेसे किसी एक श्रमणको उद्देश्य करके वहां-वहां गृहस्थोंने भवन बनाए हुए हैं, जैसे कि:— लोहकारशाला, यावत् तलघर आदि। महान् पृथ्वीकायके समारम्भसे यावत् महान् त्रसकायके समारम्भसे, नाना प्रकारके महान् पापकर्मकृत्योंसे, जैसे कि:— साधुके लिए मकान पर छत आदि डाली हुई है, लीपी-पोती हुई है, संस्तारकके स्थानको सम बनाया है, दरवाजे बनाए हैं, और ठंडक करनेके लिए शीतल जल का छिड़काव किया है, तथा शीत निवारणार्थ अग्नि-प्रज्वलित की है। जो मुनि उस प्रकारके लोह० आदिमें आते हैं तथा साधुके लिए बने हुए छोटे-बड़े भेंट स्वरूप दिए गए उपाश्रयोंमें जो ठहरते हैं। वे द्विपक्ष अर्थात् द्रव्यसे साधु और भावसे गृहस्थरूप कर्मका सेवन करते हैं। आयुष्मन् ! शिष्य ! यह महासावद्य क्रिया होती है ॥६७६॥

इस संसारमें ······। अपने उपभोगके लिए जहां-तहां गृहस्थोंने ·······(सू० ६७६) अग्नि प्रज्वलित की है। जो मुनिराज ·······ठहरते हैं। वे एक पक्ष पूर्ण साधुताका पालन करते हैं और इसे **अल्पसावद्य** क्रिया कहते हैं ॥६७७॥ इस प्रकार भिक्षुका यह समग्र (साधुताका) भाव है ॥६७८॥

॥ शय्या अध्ययनका द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

रहित यावत् मकड़ीके जालोंसे रहित है, तो इसप्रकारके उपाश्रयमें कायोत्सर्गादि क्रियाएं कर सकता है ॥६६७॥

धर्मशाला, उद्यान में बने हुए विश्रामगृह, गृहपति कुल एवं तापस आदिके मठोंमें जहां अन्य मतके साधु बार-बार आते जाते हों, वहां जैन मुनिको मास-कल्प नहीं करना चाहिए ॥६६८॥

धर्मशाला आदि स्थानोंमें जो मुनिराज शीतोष्णकालमें मासकल्प एवं वर्षाकालमें चतुर्मासिकल्पको बिताकर बिना कारण पुनः वहीं पर निवास करते हैं, तो वे कालका अतिक्रमण करते हैं ॥६६९॥

आयुष्मन् ! जो साधु साध्वी धर्मशाला आदि स्थानोंमें, शेषकालमें मास-कल्प आदि, और वर्षाकालमें चातुर्मास कल्पको बिताकर अन्य स्थानोंमें द्विगुण या त्रिगुण काल को न बिताकर जल्दी ही फिर उन्हीं स्थानोंमें निवास करते हैं, तो उन्हें उपस्थान क्रिया लगती है ॥६७०॥

आयुष्मन् शिष्य ! इस संसारमें पूर्वादि दिशाओंमें कई व्यक्ति श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होते हैं। जैसे कि—गृहपति यावत् उनके दास-दासियां। उन्होंने साधुका आचार और व्यवहार तो सम्यक्तया नहीं सुना है, परन्तु यह सुन रखा है, कि उन्हें उपाश्रय आदिका दान देनेसे स्वर्गादिका फल मिलता है, और इस पर श्रद्धा विश्वास एवं अभिरुचि रखनेके कारण उन्होंने बहुतसे शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी आदिका उद्देश्य करके तथा अपने कुटुम्ब का उद्देश्य रखकर अपने-अपने गांवों या शहरोंमें उन गृहस्थोंने बड़े-बड़े मकान बनवाए हैं। जैसे कि लोहकार की शालाएँ, धर्मशालाएँ, देवकुल, सभाएं, प्रपाएं (प्याऊ), दुकानें, मालगोदाम, यानगृह, यानशालाएं, चूनेके कारखाने, कुशाके कारखाने, वर्ध्रके कारखाने, वल्कलके कारखाने, कोयलेके कारखाने, काष्ठके कारखाने, शमशान भूमिमें बने हुए मकान, शून्यगृह, पहाड़के ऊपर बने हुए मकान, पहाड़की गुफा, शान्तिगृह, पाषाणमण्डप, भूमिघर—तहखाने इत्यादि, और इन स्थानोंमें श्रमण-ब्राह्मणादि अनेक बार ठहर चुके हैं। यदि ऐसे स्थानोंमें जैन भिक्षु भी ठहरते हैं तो उसे अभिक्रान्त क्रिया कहते हैं, अर्थात् साधुको ऐसे मकानमें ठहरना कल्पता है ॥६७१॥

आयुष्मन् शिष्य ! इस संसारमें..............तहखाने इत्यादि। और उपरोक्त स्थान गृहस्थोंने तथा शाक्यादि श्रमणोंने अपने उपभोगमें नहीं लिए हैं, अर्थात् बननेके बाद वे खाली ही पड़े रहे हैं। ऐसे स्थानोंमें यदि जैन साधु ठहरते हैं तो उन्हें अनभिक्रान्त क्रिया लगती है ॥६७२॥

संसारमें पूर्वादि दिशाओंमें बहुतसे ऐसे श्रद्धालु गृहस्थ यावत् दास दासी

आदि व्यक्ति हैं, जो साधुके आचार-विचारको जानते हैं, फलतः परस्पर बात-चीत करते हुए कहते हैं, कि—ये पूजनीय साधु मैथुन धर्मसे सर्वथा उपरत हैं एवं सावद्य क्रियाओंसे विरक्त हैं। अतः इन्हें आधाकर्मिक—आधाकर्म दोषसे दूषित उपाश्रयमें बसना नहीं कल्पता है। अस्तु हमने अपने लिए जो लोहकारशाला आदि मकान बनाए हैं, वे सब इन श्रमणोंको दे देते हैं। और हम अपने लिए दूसरे नए लोहकारशाला आदि मकान बना लेंगे। गृहस्थोंके उक्त निर्घोषको सुनकर तथा समझकर भी जो मुनि उस प्रकारके छोटे-बड़े लोहकारशाला आदि गृहस्थों द्वारा दिए गए स्थानोंमें उतरते हैं, छोटे-बड़े दिए हुए घरोंको वर्तते हैं तो आयुष्मन्! शिष्य! उन्हें वर्ज्यक्रिया का दोष लगता है ॥६७३॥

इस संसारमें पूर्वादि ····(देखो सूत्र नं० ६७१)। उन्होंने बहुतसे श्रमण, ब्राह्मण यावत् भिखारियोंको गिन-गिन कर तथा उनका लक्ष्य करके लोहकार-शाला आदि विशाल भवन बनाए हैं। जो मुनि उस प्रकारके छोटे-बड़े लोह० वर्तते हैं···· ··उन्हें **महावर्ज्य** क्रिया लगती है ॥६७४॥

इस संसारमें········(सूत्र ६७४) उन्हें सावद्यक्रिया भी लगती है ॥६७५॥

इस संसारमें पूर्वादि·······(सू० ६७१) यावत् रुचि करनेसे किसी एक श्रमणको उद्देश्य करके वहां-वहां गृहस्थोंने भवन बनाए हुए हैं, जैसे कि:—लोहकारशाला, यावत् तलघर आदि। महान् पृथ्वीकायके समारम्भसे यावत् महान् त्रसकायके समारम्भसे, नाना प्रकारके महान् पापकर्मकृत्योंसे, जैसे कि:—साधुके लिए मकान पर छत आदि डाली हुई है, लीपी-पोती हुई है, संस्तारकके स्थानको सम बनाया है, दरवाजे बनाए हैं, और ठंडक करनेके लिए शीतल जल का छिड़काव किया है, तथा शीत निवारणार्थ अग्नि-प्रज्वलित की है। जो मुनि उस प्रकारके लोह० आदिमें आते हैं तथा साधुके लिए बने हुए छोटे-बड़े भेंट स्वरूप दिए गए उपाश्रयोंमें जो ठहरते हैं। वे द्विपक्ष अर्थात् द्रव्यसे साधु और भावसे गृहस्थरूप कर्मका सेवन करते हैं। आयुष्मन्! शिष्य! यह महासावद्य क्रिया होती है ॥६७६॥

इस संसारमें ······। अपने उपभोगके लिए जहां-तहां गृहस्थोंने·········(सू० ६७६) अग्नि प्रज्वलित की है। जो मुनिराज·········ठहरते हैं। वे एक पक्ष पूर्ण साधुताका पालन करते हैं और इसे **अल्पसावद्य** क्रिया कहते हैं ॥६७७॥ इस प्रकार भिक्षुका यह समग्र (साधुताका) भाव है ॥६७८॥

॥ शय्या अध्ययनका द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय उद्देशक

भिक्षाके लिए ग्राममें गए हुए साधुको यदि कोई भद्र गृहस्थ यह कहे कि भगवन् ! यहाँ आहार–पानी की सुलभता है, अतः आप यहां रहनेकी कृपा करें। इसके उत्तरमें साधु यह कहे कि यहां आहार पानी आदि तो सब कुछ सुलभ है, परन्तु निर्दोष उपाश्रयका मिलना दुर्लभ है। क्योंकि साधुके लिए कहीं उपाश्रयमें छत डाली हुई होती है, कहीं लीपा-पोती की हुई होती है, कहीं संस्तारकके लिए ऊंची-नीची भूमिको समतल किया गया होता है, और कहीं बंद करने के लिए दरवाजे आदि लगाए हुए होते हैं, इत्यादि दोषोंके कारण शुद्ध-निर्दोष उपाश्रयका मिलना कठिन है, और दूसरी बात यह भी है, कि शय्यातरका आहार साधुको लेना नहीं कल्पता है। अतः यदि साधु उसका आहार लेते हैं तो उन्हें दोष लगता है, और उनके आहार नहीं लेने से बहुतसे शय्यातर-गृहस्थ रुष्ट हो जाते हैं। यदि कभी उक्त दोषोंसे रहित उपाश्रय मिल भी जाए, फिर भी साधुकी आवश्यक क्रियाओंके योग्य उपाश्रयका मिलना कठिन है। क्योंकि साधु विहारचर्यावाले भी हैं, कायोत्सर्ग करने वाले भी हैं, एकान्त स्वाध्याय करने वाले भी हैं, तथा शय्या-संस्तारक और पिण्डपातकी शुद्ध गवेषणा करने वाले भी हैं। अस्तु, उक्त क्रियाओंके लिए योग्य उपाश्रय मिलना और भी कठिन है। इस प्रकार कितने ही सरल निष्कपट एवं मोक्ष पथ के गामी भिक्षु उपाश्रयके दोष बतला देते हैं ॥६७९॥

कुछ गृहस्थ मुनिके लिए ही मकान बनाते हैं, और फिर यथा अवसर आगन्तुक मुनिसे छलयुक्त वार्तालाप करते हैं। वे साधुसे कहते हैं कि 'यह मकान हमने अपने लिए बनाया है, आपस में बांट लिया है, परिभोग में ले लिया है, परन्तु अब नापसन्द होनेके कारण बहुत पहलेसे वैसे ही खाली छोड़ रक्खा है, अतः पूर्णतया निर्दोष होनेके कारण आप इस उपाश्रय में ठहर सकते हैं।' परन्तु विचक्षण मुनि इस प्रकारके छलमें न फँसे, तथा सदोष उपाश्रयमें ठहरनेसे सर्वथा इन्कार कर दे। गृहस्थों के पूछने पर जो मुनि इस प्रकार उपाश्रयके गुण–दोषों को सम्यक् प्रकारसे बतला देता है, उसके सम्बन्धमें शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! क्या वह सम्यक् कथन करता है ? सूत्रकार उत्तर देते हैं कि हां, वह सम्यक् कथन करता है ॥६८०॥

वह साधु अथवा साध्वी फिर उपाश्रयको जाने, जैसे कि—जो उपाश्रय छोटा है, अथवा छोटे द्वार वाला है, तथा नीचा है, और चरक आदि भिक्षुओंसे भरा हुआ है, इस प्रकारके उपाश्रयमें यदि साधुको ठहरना पड़े तो वह रात्रिमें और विकाल में, भीतरसे बाहर निकलता हुआ या बाहरसे भीतर प्रवेश करता

हुआ, प्रथम हाथसे देखकर पीछे पैर रक्खे । इस प्रकार साधु यत्नापूर्वक निकले या प्रवेश करे। क्योंकि केवली भगवान् कहते हैं, कि यह कर्म बन्धन का कारण है, क्योंकि वहाँ पर जो शाक्यादि श्रमणों तथा ब्राह्मणोंके छत्र, अमत्र (भाजन विशेष) मात्रक, दंड, यष्टी, योगासन, नलिकार (दण्ड विशेष), वस्त्र, यमनिका (मच्छरदानी), मृगचर्म, मृगचर्मकोष, चर्म छेदन—उपकरण विशेष—जो कि अच्छी तरहसे बंधे हुए और ढंगसे रक्खे हुए नहीं हैं, कुछ हिलते हैं और कुछ अधिक चंचल हैं, उनको आघात पहुंचनेका डर है, क्योंकि रात्रिमें और विकाल में अन्दरसे बाहर और बाहरसे अन्दर निकलता या प्रवेश करता हुआ, साधु यदि फिसल पड़े या गिर पड़े तो वे उनके उपकरण टूट जाएंगे, अथवा उस भिक्षु के फिसलने या गिर पड़ने से उसके हाथ-पैर आदिके टूटनेका भी भय है, इसलिए तीर्थंकरादि आप्त पुरुषोंने पहले ही साधुओंको यह उपदेश दिया है, कि इस प्रकारके उपाश्रयमें पहले हाथ से टटोलकर फिर पैर रखना चाहिए और यत्ना-पूर्वक बाहरसे भीतर एवं भीतरसे बाहर गमनागमन करना चाहिए ॥६८१॥

वह साधु धर्मशाला आदि में प्रवेश करके और विचार करके यह उपा-श्रय कैसा है, और इसका स्वामी कौन है, फिर उपाश्रयकी याचना करे जैसे कि—जो वहाँ पर अथवा उस उपाश्रयका स्वामी है अथवा जिनके अधिकारमें दिया हुआ है, उनसे आज्ञा मांगे और कहे, आयुष्मन् ! निश्चय ही आपकी इच्छा-नुसार जितना काल आप कहें, जितना भाग इस उपाश्रयका आप देना चाहें उतने ही भाग में हम रहेंगे। गृहस्थ—आयुष्मन् मुनिराज ! आप कितने समय तक रहेंगे ? मुनि—आयुष्मन् सदगृहस्थ ! किसी कारण विशेष के बिना हम ग्रीष्म और हेमन्त में एक मास और वर्षा ऋतु में चार मास पर्यन्त रह सकते हैं, बाकी जितने समयके लिए आप कहेंगे, उतने समय तक यहां ठहरकर फिर हम विहार कर जाएंगे। इसके अतिरिक्त जितने भी साधर्मी-साधु पठन-पाठनादिके लिए आवेंगे वे भी जितने समय ...... ठहर कर फिर विहार कर जावेंगे ॥६८२॥

साधु या साध्वी जिस गृहस्थके उपाश्रय स्थानमें ठहरे, उसका नाम और गोत्र पहले ही जान ले। तत्पश्चात् उसके घरमें निमंत्रित करने या न करने पर भी अर्थात् बुलाने या न बुलाने पर भी उसके घरका अशनादि चतुर्विध आहार ग्रहण न करे ॥६८३॥

जो उपाश्रय गृहस्थोंसे, अग्निसे, और जलसे युक्त हो, उसमें प्रज्ञावान् साधु या साध्वीको निष्क्रमण और प्रवेश नहीं करना चाहिए वह उपाश्रय यावत् धर्म चिंतनकेलिए उपयुक्त नहीं है। साधु उसप्रकारके उपाश्रयमें न ठहरे ॥६८४॥

जिस उपाश्रयमें जानेके लिए गृहपतिके कुलसे गृहस्थके घरसे होकर जाना

पड़ता हो, और जिसके अनेक द्वार हों ऐसे उपाश्रयमें साधु कायोत्सर्गादि न करे अर्थात् न ठहरे ॥६८५॥

साधु और साध्वी गृहस्थके उपाश्रयको जाने, जैसे कि जिस उपाश्रय–वसतीमें गृहपति और उसकी स्त्री यावत् दास-दासिएं परस्पर एक दूसरेको आक्रोशती–कोसती हैं, मारती और पीटती यावत् उपद्रव करती हैं। तथा परस्पर एक दूसरेके शरीरको तेलसे घीसे मर्दन करती हैं। और एक दूसरेके शरीर को पानीसे, कर्कसे, लोध्रसे, चूर्णसे और पद्मद्रव्यसे साफ करती हैं, मैल उतारती हैं, तथा उबटन करती हैं, और एक दूसरेके शरीरको शीतल जलसे, उष्ण जलसे, छींटे देती हैं, धोती हैं, जलसे सींचती हैं, और स्नान कराती हैं, प्रज्ञावान् साधुको इसप्रकारके उपाश्रयमें न ठहरना चाहिए और न कायोत्सर्गादि क्रियाएं करनी चाहिएं ॥६८६-६८९॥

जिस उपाश्रय-वस्तीमें गृहपति यावत् उसकी स्त्रिएं और दासिएं आदि नग्न अवस्थामें खड़ी हैं, और नग्न होकर मैथुन धर्मविषयक परस्पर वार्तालाप करती हैं, अथवा कोई रहस्यमय अकार्यके लिए गुप्त मंत्रणा–विचार करती हैं तो बुद्धिमान् साधुको इसप्रकारके ·······॥६९०॥

जो उपाश्रय स्त्री पुरुष आदिके चित्रोंसे सज्जित हो रहा है तो बुद्धिमान् साधुको इसप्रकारके ····· ॥६९१॥

जो साधु या साध्वी फलक आदि संस्तारककी गवेषणा करनी चाहे तो वह संस्तारकके सम्बन्धमें यह जाने कि जो संस्तारक अण्डोंसे यावत् मकड़ी आदिके जालोंसे युक्त है, ऐसे संस्तारकको मिलने पर भी ग्रहण न करे ॥६९२-६९३॥

इसीप्रकार जो संस्तारक अण्डों और जाले आदिसे तो रहित है, किन्तु भारी है, ऐसे संस्तारकको भी मिलने पर ग्रहण न करे ॥६९४॥

जो संस्तारक अण्डे आदिसे रहित एवं लघु भी है, किन्तु गृहस्थ उसे देकर फिर वापिस नहीं लेना चाहता है, ऐसे संस्तारकको भी········॥६९५॥

इसीतरह जो संस्तारक········लघु भी है, और गृहस्थने उसे वापिस लेना भी स्वीकार कर लिया है, परन्तु उसके बन्धन शिथिल हैं, ऐसे संस्तारकको भी ·······॥६९६॥

जो संस्तारक····· स्वीकार कर लिया है, और उसके बन्धन भी सुदृढ़ हैं, तो ऐसे संस्तारकको मिलने पर साधु ग्रहण कर ले ॥६९७॥

साधु या साध्वीको वसती और संस्तारक सम्बन्धी दोषोंको छोड़कर इन चार प्रतिज्ञाओंसे संस्तारककी गवेषणा करनी चाहिए। इन चार प्रतिज्ञाओंमें से **पहली प्रतिज्ञा** यह है—साधु तृण आदिका नाम ले लेकर याचना करे।

जैसे—इक्कड़ (तृण विशेष या उससे निर्मित) अथवा उसकी वक्कलसे निर्मित, बांससे उत्पन्न हुआ तृणविशेष, तृणसे निष्पन्न, पुष्पादिके गुन्थनमें काम आनेवाला तृण, कोमल तृण विशेष, दूव कुशादिसे निर्मित संस्तारक, जिसके कूर्चक (कूची) बनाए जाते हैं उसका बना हुआ, पिप्पल और शाली आदिकी पलाल (पुआल-पुराल) आदिको देखकर साधु कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा भगिनि! बहन! क्या तुम मुझे इन संस्तारकोंमेंसे किसी एक संस्तारकको दोगे? इस प्रकारके प्रासुक और निर्दोष संस्तारककी स्वयं याचना करे, अथवा गृहस्थ ही विना याचना किए दे तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। यह **प्रथम अभिग्रह** की विधि है ॥६९८॥

दूसरी प्रतिमा यह है कि साधु या साध्वी गृहपति आदिके परिवारमें रक्खे हुए संस्तारकको देखकर उसकी याचना करे—यथा—हे आयुष्मन्! गृहस्थ! अथवा बहन! क्या तुम मुझे इन संस्तारकोंमें से अमुक संस्तारक दोगे? तब यदि निर्दोष और प्रासुक संस्तारक मिले तो उसे लेकर वह संयम साधनामें संलग्न रहे यह **दूसरी प्रतिमा** है ॥६९९॥

तीसरी प्रतिमा यह है कि साधु जिस उपाश्रयमें रहना चाहता है, यदि उसी उपाश्रयमें संस्तारक विद्यमान हो तो गृहस्वामीकी आज्ञा लेकर संस्तारक को स्वीकार करके विचरे, यदि उपाश्रयमें संस्तारक विद्यमान नहीं है तो वह उत्कटुक आसन, पद्मासन आदि आसनोंके द्वारा रात्रि व्यतीत करे यह **तीसरी प्रतिमा** है ॥७००॥

चतुर्थी प्रतिमा में यह अभिग्रह होता है कि—उपाश्रयमें संस्तारक पहले से ही बिछा हुआ हो, या पत्थरकी शिला या काष्ठका तख्त बिछा हुआ हो तो वह उस पर शयन कर सकता है। यदि वहां कोई भी संस्तारक बिछा हुआ न मिले तो पूर्वकथित आसनोंके द्वारा रात्रि व्यतीत करे यह **चौथी प्रतिमा** है ॥७०१॥

इन चार प्रतिमाओंमें से किसी एक प्रतिमाको धारण करके विचरनेवाला साधु, अन्य प्रतिमाधारी साधुओंकी अवहेलना-निन्दा न करे। किन्तु सब साधु भगवान् की आज्ञामें विचरते हैं, ऐसा समझकर परस्पर समाधिपूर्वक विचरण करे ॥७०२॥

साधु या साध्वी यदि प्रातिहारिक संस्तारक, गृहस्थको वापिस दना चाहे तो वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ीके जाले आदिसे युक्त नहीं होना चाहिए। यदि यह इनसे युक्त है, तो वह उसे गृहस्थको वापिस न करे ॥७०३॥

अण्डे एवं मकड़ीके जाले आदिसे रहित जिस संस्तारकको साधु-साध्वी वापिस लौटाना चाहे, तो वह उसका प्रतिलेखन करके, रजोहरणसे प्रमार्जित करके, सूर्यकी धूपमें सुखा कर एवं यत्नापूर्वक झाड़कर फिर गृहस्थ को लौटावे ॥७०४॥

जो साधु-साध्वी जंघादि बलसे क्षीण होनेके कारण एक स्थानमें स्थित हो या उपाश्रय में मास कल्पादि से रहता हो या ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ उपाश्रयमें आकर ठहरे, तो उस बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि वह जिस स्थान में ठहरे, वहां पर पहले मल-मूत्र का त्याग करनेकी भूमिको अच्छी तरह देख ले। क्योंकि भगवान्ने बिना देखी भूमिको कर्म बन्धन का कारण कहा है। क्योंकि वैसी भूमिमें कोई भी साधु-साध्वी रात्रिमें अथवा विकालमें मल-मूत्रादिको परठता हुआ यदि कभी पैर फिसलनेसे गिर पड़े, तो उसके फिसलने-गिरनेसे उसके हाथ पैर या शरीरके किसी अवयवको आघात पहुंचेगा, या उसके गिरने से वहां स्थित अन्य किसी क्षुद्र जीव का विनाश हो जाएगा। यह सब कुछ संभव है, इसलिए तीर्थकरादि आप्त पुरुषों ने पहले ही भिक्षओं को यह आदेश दिया है कि साधुको उपाश्रयमें निवास करनेसे पहले वहां मल-मूत्र त्यागनेकी भूमिकी अवश्य ही प्रतिलेखना कर लेनी चाहिए ॥७०५॥

साधु या साध्वी यदि शय्या-संस्तारक भूमिकी प्रतिलेखना करनी चाहे तो आचार्य, उपाध्याय यावत् गणावच्छेदक, बाल, वृद्ध, नवदीक्षित, रोगी और मेहमानरूपसे आए साधुके द्वारा स्वीकारकी हुई भूमिको छोड़कर उपाश्रयके अन्दर, मध्यस्थान में या सम और विषम स्थानोंमें या वायुयुक्त और वायुरहित स्थानमें भूमिकी प्रतिलेखना और प्रमार्जना कर तदनन्तर अत्यन्त प्रासुक शय्या-संस्तारक को बिछाए ॥७०६ ॥

साधु या साध्वी प्रासुक शय्यासंस्तारक पर जब बैठकर शयन करना चाहे तब पहले सिर से लेकर पैरों तक शरीर को प्रमार्जित करके फिर यतना-पूर्वक उस पर शयन करे ॥७०७-७०८॥

साधु या साध्वी शयन करते हुए परस्पर एक दूसरे को अपने हाथसे दूसरे के हाथ की, पैरसे दूसरेके पैरकी और शरीरसे दूसरेके शरीरकी आशातना न करे। अर्थात् इनका एक दूसरे से स्पर्श न हो। किन्तु आशातना न करते हुए शयन करे ॥७०९॥

इसके अतिरिक्त साधु या साध्वी उच्छ्वास अथवा निश्वास लेता हुआ, खांसता हुआ, छींकता हुआ, उबासी लेता हुआ अथवा अपानवायु को छोड़ता हुआ पहले ही मुख या गुदाको हाथसे ढांपकर उच्छ्वास ले या अपान वायुका परित्याग करे ॥७१०॥

संयमशील साधु या साध्वीको किसी समय सम या विषम शय्या मिले, हवादार या कम हवा वाला स्थान प्राप्त हो, इसीप्रकार धूलियुक्त या धूलिरहित अथवा डांस मच्छरयुक्त या उसके विना की शय्या मिले, इसी भांति सर्वथा गिरी हुई, जीर्ण-शीर्ण अथवा सुदृढ़ शय्या मिले, या उपसर्गयुक्त या उपसर्गरहित शय्या मिले, इन सब प्रकारकी शय्याओंके प्राप्त होने पर वह उनमें समभावसे निवास करे। किन्तु मानसिक दुःख एवं खेदका विल्कुल अनुभव न करे ।।७११।।

यही भिक्षु का सम्पूर्ण भिक्षु-भाव है। जो कि सर्व प्रकारसे ज्ञान दर्शन और चरित्र से युक्त होकर तथा सदा समाहित होकर विचरनेका यत्न करे इस प्रकार मैं कहता हूं ।।७१२।।

।। तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

।। शय्यैषणा नामक द्वितीय अध्ययन समाप्त ।।
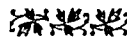
तृतीय ईर्याध्ययन

प्रथम उद्देशक

वर्षाकालमें वर्षा हो जानेसे मार्गमें बहुतसे प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं तथा बीज अंकुरित हो जाते हैं, पृथिवी घास आदिसे हरी हो जाती है। मार्गमें बहुतसे प्राणी, बहुतसे बीज तथा जाले आदिकी उत्पत्ति हो जाती है, एवं वर्षाके कारण मार्ग अवरुद्ध (रुक) हो जानेसे मार्ग और उन्मार्गका पता नहीं लगता। ऐसी परिस्थितिमें साधुको एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विहार नहीं करना चाहिए। किन्तु वर्षाकालके समय एक स्थान पर ही स्थित रहना चाहिए। तात्पर्य यह कि साधु वर्षाकाल पर्यन्त भ्रमण न करे, किन्तु एक ही स्थान पर ठहरे ।।७१३।।

वर्षा-वास करनेवाले साधु या साध्वीको, ग्राम, नगर यावत् राजधानीकी स्थितिको भली-भांति जानना चाहिए। जिस ग्राम, नगर यावत् राजधानीमें एकान्त स्वाध्याय करनेके लिए कोई विशाल भूमि न हो, नगरसे बाहर मल-मूत्रादिके त्यागनेकी भी कोई विशाल भूमि न हो, और पीठ-फलक-शय्या-संस्तारककी प्राप्ति भी सुलभ न हो, एवं प्रासुक और निर्दोष आहारका मिलना भी सुलभ न हो, और बहुतसे शाक्यादि भिक्षु यावत् भिखारी लोग आए हुए हों, जिससे ग्रामादिमें भीड़-भाड़ बहुत हो, और साधु-साध्वीको सुखपूर्वक स्थानसे निकलना और प्रवेश करना कठिन हो, तथा स्वाध्याय आदि भी न हो सकता हो तो ऐसे ग्रामादिमें साधु वर्षाकाल व्यतीत न करे ।।७१४।।

वर्षावास करने वाले······· विशाल भूमि हो ····तथा स्वाध्याय आदि भी हो सकता हो तो ऐसे ग्रामादिमें साधु या साध्वी वर्षाकाल व्यतीत करे ॥७१५॥

वर्षाकालके चार मास व्यतीत हो जाने पर साधुको अवश्य विहार कर देना चाहिए, यह मुनिका उत्सर्ग मार्ग है। यदि कार्तिक मासमें पुनः वर्षा हो जाए और उसके कारण मार्ग आवागमनके योग्य न रहे तथा वहां पर शाक्यादि भिक्षु न आए हों तो मुनिको चतुर्मासके पश्चात् वहां १५ दिन और रहना कल्पता है। यदि १५ दिनके पश्चात् मार्ग ठीक हो गया हो, अन्यमतके भिक्षु भी आने लगे हों तो मुनि ग्रामानुग्राम विहार कर सकता है। इस तरह वर्षाके कारण मुनि कार्तिक शुक्ला पूर्णिमाके पश्चात् मार्गशीर्षकृष्णा अमावस पर्यन्त ठहर सकता है ॥७१६-७१७॥

साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ अपने मुखके सामने चार हाथ प्रमाण भूमिको देखता हुआ चले और मार्गमें त्रस प्राणियोंको देखकर पैरके अग्रभागको उठाकर चले। यदि दोनों ओर जीव हों तो पैरोंको संकोचकर या तिर्यक् टेढ़ा पैर रखकर चले। यह विधि अन्य मार्गके अभावमें कही गई है।

यदि अन्य साफ़ मार्ग हो तो उस मार्गसे चलनेका प्रयत्न करे, किन्तु जीव-युक्त सरल (सीधे) मार्ग पर न चले। यदि मार्गमें प्राणी बीज, हरी, जल और मिट्टी आदि अचित न हुए हों तो साधुको अन्य मार्गके होनेपर उस मार्गसे न जाना चाहिए। यदि अन्य मार्ग न हों तो उस मार्गसे यत्नापूर्वक जाना चाहिए ॥७१८-७१९॥

साधु साध्वी ग्रामानुग्राम विचरता हुआ जिस मार्गमें नाना प्रकारके देश की सीमामें रहनेवाले चोरोंके, म्लेच्छोंके और अनार्योंके स्थान हों तथा जिनको कठिनतापूर्वक समझाया जा सकता है, या जिन्हें आर्य-धर्म बड़ी कठिनतासे प्राप्त हो सकता है, ऐसे अकाल (कुसमय) में जागने वाले, कुसमयमें खाने वाले मनुष्य रहते हों, तो अन्य आर्य क्षेत्रके होते हुए ऐसे क्षेत्रोंमें विहार करनेको कभी मनमें भी संकल्प न करे। क्योंकि केवली भगवान कहते हैं कि वहां जाना कर्म बन्धन का कारण हो सकता है। वे अनार्य लोग साधुको देखकर कहते हैं कि यह चोर है, यह गुप्तचर है, यह हमारे शत्रुके गांवसे आया होगा, इत्यादि बातें कहकर वे उस भिक्षुको कठोर वचन बोलेंगे, उपद्रव करेंगे, और उस साधुके वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंछन आदिका छेदन-भेदन या अपहरण करेंगे, या उन्हें तोड़-फोड़ कर दूर फेंक देंगे, क्योंकि ऐसे स्थानोंमें यह सब सम्भव हो सकता है। इसलिए भिक्षुओंको तीर्थंकरादिने पहले ही यह उपदेश दिया है, कि साधु इस प्रकारके प्रदेशोंमें विहार करनेका संकल्प भी न करे। तदनन्तर उक्त स्थानोंको छोड़ता हुआ संयमशील साधु ग्रामानुग्राम विहार करे ॥७२०॥

साधु या साध्वी विहार करते हुए जिस देशमें राजाका शासन नहीं है, अथवा अशांति युक्त गणराज्य है, अथवा केवल युवराज है जो कि राजा नहीं बना है, दो राजाओंका शासन चलता है, या दो राजकुमारोंमें परस्पर विरोध है, तो विहारके योग्य अन्य प्रदेशके होते हुए इस प्रकारके स्थानोंमें विहार करनेका संकल्प न करे। क्योंकि केवली······ग्रामानुग्राम विहार करे ॥७२१॥

साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मार्गमें उपस्थित होने वाली अटवीको जाने, जिस अटवीको एक दिनमें, दो दिनमें, तीन और चार अथवा पांच दिनमें उल्लंघन किया जा सके, अन्य मार्ग होने पर उस अटवीको लांघकर जानेका विचार न करे। केवली भगवान् कहते हैं, कि यह कर्मबन्धनका कारण है। क्योंकि मार्गमें वर्षा हो जानेपर, द्वीन्द्रियादि जीवोंके उत्पन्न हो जाने पर, नीलन-फूलन, काई एवं सचित्त जल और मिट्टीके कारण संयमकी विराधना का होना सम्भव है। इसलिए ऐसी अटवी जो कि अनेक दिनोंमें पारकी जा सके मुनि उसमें जानेका संकल्प न करे, किन्तु अन्य सरल मार्गसे अन्य गांवोंकी ओर बिहार करे ॥७२२॥

साधु साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ यदि मार्गमें नौका द्वारा तैरने योग्य जल हो तो नौकासे नदी पार करे। परन्तु इस बातका ध्यान रक्खे कि यदि गृहस्थ साधुके निमित्त मूल्य देता हो या नौका उधार लेकर या परस्पर परिवर्तन करके या नौकाको स्थलसे जलमें या जलसे स्थलमें लाता हो, या जल से परिपूर्ण नौकाको जलसे खाली करके या कीचड़में फंसी हुई को बाहर निकाल कर और उसे तैयार करके साधुको उसपर चढ़नेकी प्रार्थना करे, तो इस प्रकार की ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी या तिर्यक्गामिनी नौका, जो कि उत्कृष्ट एक योजन क्षेत्र प्रमाणमें चलनेवाली है या अर्द्ध योजन प्रमाणमें चलनेवाली है, ऐसी नौका पर थोड़े या बहुत समय तक गमन करनेके लिए साधु सवार न हो अर्थात् ऐसी नौका पर बैठकर नदीको पार न करे ॥७२३॥

किन्तु पहले से ही तिर्यग् चलनें वाली नौकाको जानकर, गृहस्थकी आज्ञा लेकर फिर एकान्तस्थानमें चला जाए और वहां जाकर भण्डोपकरणको प्रतिलेखना करके उसे एकत्रित करे, तदनन्तर सिरसे पैर तक सारे शरीरको प्रमार्जित करके आगारसहित भक्त-पान का परित्याग करता हुआ एक पांव जलमें और एक स्थलमें रख कर उस नौका पर यत्नापूर्वक चढ़े ॥७२४॥

साधु या साध्वी नौका पर चढ़ते हुए नौकाके आगे, पीछे और मध्यमें न बैठे। और नौकाके बाजूको पकड़कर या अंगुली द्वारा उद्देश्य (स्पर्श) करके तथा अंगुली ऊंची करके जलको न देखे ॥७२५॥

यदि नाविक साधुके प्रति कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण! तू इस नौकाको

खींच या अमुक वस्तु को नौकामें रखकर और रस्सी पकड़ कर नौका को अच्छी तरहसे वान्ध दे। या रज्जूके द्वारा जोरसे कस दे। इस प्रकारके नाविकके वचनों को साधु स्वीकार न करे किन्तु मौन वृत्तिको धारणकर अवस्थित रहे ॥७२६॥

यदि नाविक फिर कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! यदि तू ऐसा नहीं कर सकता तो मुझे रज्जू लाकर दे। हम स्वयं नौकाको दृढ़ वन्धनोंसे वान्ध लेंगे और उसे चलाएंगे, फिर भी साधु चुप रहे ॥७२७॥

यदि नाविक कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! तू इस नौका को चप्पूसे, पीठसे, वांससे, वल्ली और अवलुक (वांस विशेष) से आगे कर दे। नाविकके इस वचन को भी स्वीकार न करता हुआ साधु मौन रहे ॥७२८॥

………श्रमण ! तू नावमें भरे हुए जलको हाथसे, पांवसे, भांजनसे, पात्र से और उत्सिचनसे बाहर-निकाल दे। नाविक के इस वचन……… ॥७२९॥

……………तू नावाके इस छिद्रको हाथ से, पैरसे, भुजाओंसे, जंघासे, उदरसे, सिरसे, और शरीरसे, नौकासे जल निकालनेवाले उपकरणोंसे, वस्त्रसे, मिट्टीसे, कुश पत्र और कुविन्द (तृणविशेष) से रोक दे वन्द कर दे। साधु नाविक के उक्त कथनको भी अस्वीकार कर मौन धारण करके वैठा रहे ॥७३०॥

साधु या साध्वी नौकामें छिद्रके द्वारा जल भरता हुआ देखकर एवं नौका को भरती हुई देखकर नाविकके पास जाकर यों न कहे कि आयुष्मन् ! गृहपते ! तुम्हारी यह नौका छिद्र द्वारा जलसे भर रही है, और छिद्रसे जल आ रहा है। इस प्रकारके मन और वचनको उस ओर न लगाता हुआ विचरे। वह शरीर एवं उपकरणादि पर मूर्छा न करता हुआ, लेश्याको संयम में रक्खे तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें समाहित होकर आत्माको राग और द्वेपसे रहित करने का प्रयत्न करे। और नौका के द्वारा तैरने योग्य जलको पारकरने के बाद जिस प्रकार तीर्थकरों नें जल के विषयमें ईर्या-समितिका वर्णन किया है—उसी प्रकार उसका पालन करे ॥७३१॥

यही साधु का समग्र आचार है अर्थात् इसीमें उसका साधु भाव है। इस प्रकार मैं कहता हूं ॥७३२॥

॥ ईर्याऽध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय उद्देशक

यदि नाविक नाव पर सवार मुनिको यह कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण ! पहले तू मेरा छत्र यावत् चर्मछेदन करनेके शस्त्रको ग्रहण कर। इन विविध शस्त्रों को धारण कर ! और इस बालक को पानी पिला दे ! वह साधु उसके उक्त वचन को स्वीकार न करे, किन्तु मौन धारण करके वैठा रहे ॥७३३॥

यदि नाविक नौका पर बैठे हुए किसी अन्य गृहस्थ को इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! यह साधु जड़ वस्तुओंकी तरह नौका पर केवल भार-भूत ही है। यह न कुछ सुनता है, और न कोई काम ही करता है। अतः इसको भुजा से पकड़कर नौकासे बाहर जलमें फ़ेंक दो। इसप्रकारके शब्दोंको सुन कर और उन्हें हृदयमें धारण करके वह मुनि यदि वस्त्रधारी है तो शीघ्र ही वस्त्रों को फैलाकर, फिर उन्हें अपने सिर पर लपेट ले ॥७३४॥

और फिर इस प्रकार जाने, निश्चय ही ये अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले अज्ञानी लोग मुझे भुजाओंसे पकड़कर नौकासे बाहर जलमें फेंकना चाहते हैं। ऐसा विचारकर वह उनके द्वारा फेंके जानेके पूर्व ही उन गृहस्थों को सम्बोधित करके कहे कि आयुष्मन् ! गृहस्थो ! आप लोग मुझे भुजाओंसे पकड़कर जबर-दस्ती नौकासे बाहर जलमें मत फैंको मैं स्वयं ही इस नौका को छोड़कर जलमें प्रविष्ट हो जाऊंगा। साधुके यह कहनेपर भी यदि कोई अज्ञानी जीव शीघ्र ही बलपूर्वक साधु की भुजाओंको पकड़कर उसे नौकासे बाहर जलमें फेंक दे, तो जलमें गिरा हुआ साधु मनमें हर्ष-शोक न करे। वह मनमें किसी तरहका संकल्प-विकल्प भी न करे। और उनकी घात-प्रतिघात करने का तथा उनसे प्रतिशोध लेनेका विचार भी न करे। इस तरह वह मुनि राग-द्वेषसे रहित होकर समाधि पूर्वक जलमें प्रवेश कर जाए ॥७३५॥

साधु-साध्वी जलमें बहते समय अप्कायके जीवोंकी रक्षाके लिए अपने एक हाथसे दूसरे हाथका एवं एक पैरसे दूसरे पैरका और शरीरके अन्य अवयवोंका भी स्पर्श न करे। इस तरह वह परस्पर स्पर्श न करता हुआ जलमें बहता हुआ चला जाए ॥७३६॥

वह बहते समय डुबकी भी न मारे, एवं इस बातका भी विचार न करे कि यह जल मेरे कानोंमें, आंखोंमें, नाक और मुखमें प्रवेश न कर जाए। इसप्रकार साधु जलमें बहे ॥७३७॥

तदनन्तर जलमें बहता हुआ साधु यदि दुर्बलताका अनुभव करे तो शीघ्र ही थोड़ी या समस्त उपधिका त्याग कर दे, वह उस पर किसी प्रकारका ममत्व न रक्खे, यदि वह यह जाने कि मैं उपधियुक्त ही इस जलसे पार हो जाऊंगा तो किनारे पर आकर जब तक शरीरसे जल टपकता रहे, शरीर गीला रहे तब तक नदीके किनारे पर ही ठहरे ॥७३८॥

किन्तु जलसे भीगे हुए शरीरको एक बार या एकसे अधिक बार हाथसे स्पर्श न करे, मले नहीं और न उद्वर्तनकी भांति मैल उतारे, इसीप्रकार भीगे हुए शरीर और उपधिको धूपमें सुखानेका भी प्रयत्न न करे। जब वह यह जानले कि मेरा शरीर तथा उपधि पूरी तरह सूख गई है तब अपने हाथसे शरीरका स्पर्श

या मर्दन करे यावत् धूपमें आतापना दे। तदनन्तर संयमशील साधु ग्रामानुग्राम विचरे ॥७३९॥

साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गृहस्थोंके साथ वार्तालाप करता हुआ गमन न करे। किन्तु ईर्यासमितिका यथाविधि पालन करता हुआ ग्रामानुग्राम विहार करे ॥७४०॥

साधु-साध्वीको ग्रामानुग्राम विहार करतेहुए यदि मार्गमें जंघा-प्रमाण जल पड़ता हो तो उसे पार करनेके लिए साधु सिरसे लेकर पैर तक शरीरकी प्रतिलेखना करके एक पैर जलमें और एक पैर स्थलमें रखकर, जैसे भगवान्ने ईर्यासमितिका वर्णन किया है उसके अनुसार उस पानीके स्रोतको पार करना चाहिए ॥७४१॥

उस जलमें चलते समय मुनिको हाथों और पैरोंका परस्पर स्पर्श नहीं करना चाहिए। जैसे भगवान्ने........ ॥७४२॥

वह साधु-साध्वी जंघाप्रमाण जलमें ईर्यासमितिपूर्वक चलता हुआ शारीरिक शान्तिके लिए या दाह उपशान्त करनेके लिए गहरे और विस्तार वाले जलमें भी प्रवेश न करे और उसे यह अनुभव होने लगे कि मैं उपकरणादिके साथ जलसे पार नहीं हो सकता तो उपकरणादिको छोड़ दे, और यदि यह जाने कि मैं उपधिके साथ पार हो सकता हूं तब उपकरण सहित पार हो जाए। पर किनारे आकर जब तक शरीरसे जल.........जलके किनारे (दे० ७३८-७३९)..... ग्रामानुग्राम विचरे ॥७४३-७४४॥

साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विचरते हुए मिट्टी और कीचड़से भरे हुए पैरोंको हरितकायका छेदन कर, तथा हरे पत्तोंको एकत्रित कर उनसे मसलता हुआ मिट्टी न उतारे, और न हरितकायकी हिंसा करता हुआ उन्मार्गसे गमन करे। जैसे कि—ये मिट्टी और कीचड़से भरे हुए पैर हरी पर चलनेसे हरितकायके स्पर्शसे स्वतः ही मिट्टी रहित हो जाएंगे, ऐसा करने पर साधुको कपटका स्पर्श होता है। अतः साधुको इसप्रकार न करना चाहिए। किन्तु पहले ही हरीसे रहित मार्गको देखकर यतनापूर्वक गमन करना चाहिए ॥७४५॥

और यदि मार्गके मध्यमें खेतोंके क्यारे हों, खाई हो, कोट हो, तोरण हो, अर्गला और अर्गलापाश हो, गर्त हो तथा गुफाएं हों, (कपाट निरोधक कीली हो) तो अन्य मार्गके होते हुए इसप्रकारके विषम-मार्गसे गमन न करे। केवली भगवान् कहते हैं कि यह मार्ग दोषयुक्त होनेसे कर्म-बन्धनका कारण है। जैसे कि पैर आदिके फिसलने तथा गिर पड़नेसे शरीरके किसी अंग-प्रत्यंगको आघात पहुंचने के साथ २ जो वृक्ष, गुच्छ-गुल्म और लताएं एवं तृण आदि हरितकायको पकड़ कर चलना या उतरना और वहां पर जो पथिक आते हैं, उनसे हाथ मांगकर

अर्थात् हाथके सहारेकी याचना करके और उसे पकड़कर उतरना है, ये सब दोष युक्त हैं, इसलिए उक्त सदोष मार्गको छोड़कर अन्य निर्दोष मार्गसे एक ग्रामसे दूसरे ग्रामकी ओर प्रस्थान करे ।।७४६-७४७।।

तथा यदि मार्गमें यव और गोधूम आदि धान्य, शकट, रथ, स्वकीय राजा की या दूसरे राजाकी सेना चल रही हो, तब नानाप्रकारकी सेनाके समुदायको देखकर, यदि अन्य गन्तव्य मार्ग हो तो उसी मार्गसे जाए किन्तु कष्टोत्पादक इस सदोष मार्गसे जानेका प्रयत्न न करे ।।७४८।।

[उपरोक्त मार्गसे जानेमें कष्टोत्पत्तिकी सम्भावना है। जैसे कि जब साधु उस मार्गसे जाएगा तो सम्भव है] उसे देखकर कोई सैनिक किसी दूसरे सैनिकको कहे कि आयुष्मन् ! यह श्रमण हमारी सेनाका भेद लेने आया है। अतः इसे भुजाओंसे पकड़कर खेंचो अर्थात् आगे-पीछे करो, और तदनुसार वह सैनिक साधुको पकड़कर खींचे, परन्तु साधुको उस समय उस पर न प्रसन्न और न रुष्ट होना चाहिए, किन्तु उसे समभाव एवं समाधिपूर्वक एक ग्रामसे दूसरे ग्राम विहार करना चाहिए ।।७४९।।

साधु अथवा साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ उसके मार्गमें यदि कोई सामनेसे और पथिक आ जाए, और साधुसे पूछे कि आयुष्मन् श्रमण ! यह ग्राम यावत् राजधानी कैसी है ? यहां पर कितने घोड़े, हाथी और ग्रामयाचक हैं, तथा कितने मनुष्य निवास करते हैं ? क्या इस ग्राम यावत् राजधानीमें अन्न, पानी, मनुष्य एवं धान्य बहुत हैं या थोड़े हैं ? ऐसे प्रश्नोंको पूछने पर साधु जवाब न दे, और उसके विना पूछे भी ऐसी बातें न करे। परन्तु वह मौन भावसे विहार करता रहे और सदा संयम साधनामें संलग्न रहे ।।७५०।। यही साधुका ·········।।७५१।।

।। ईर्याध्ययनका द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

—०—

तृतीय उद्देशक

साधु अथवा साध्वीको ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्गमें यदि खेतके क्यारे यावत् गुफाएं, पर्वतके ऊपरके घर, भूमिगृह, वृक्षके नीचे या ऊपरका निवास स्थान, पर्वत-गुफा यावत् भवनगृह आवें तो इनको अपनी भुजा ऊपर उठाकर, अंगुलियोंको फैलाकर, शरीरको ऊंचा-नीचा करके न देखे किन्तु यत्ना-पूर्वक अपनी विहारयात्रा में प्रवृत्त रहे ।।७५२।।

·········यदि मार्ग में नदीके समीप निम्न-प्रदेश हो या खरबूज़े आदिका खेत हो या अटवीमें घोड़े आदि पशुओंके घासके लिए राजाज्ञासे छोड़ी हुई भूमि—

………श्रमण ! क्या आपने इस मार्गमें जलसे उत्पन्न होने वाले कन्दमूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, वीज, हरित, एवं जलके स्थान और अप्रज्वलित हुई अग्निको देखा है, तो वताओ कहां देखा है ? साधु इन प्रश्नों का……विहार करे ।।७५६।।

……श्रमण ! इस मार्ग में धान्य यावत् (नाना प्रकारके उतरे हुए) राजा के कटक (सेना) को वताओ कहां पर है ? साधु इन……करे ।।७६०।।

………श्रमण ! यहांसे ग्राम यावत् राजधानी कितनी दूर है ? तथा यहां से ग्राम नगर यावत् राजधानीका मार्ग कितना शेष रहा है ? साधु इन प्रश्नों का………विहार करे ।।७६१-७६२।।

संयमशील साधु-साध्वीको ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्गमें यदि मदोन्मत्त वृषभ-वैल या विषैले सांप या चीते आदि हिंसक जीवोंका साक्षात्कार हो तो उसे देखकर साधुको भयभीत नहीं होना चाहिए तथा उनसे डरकर उन्मार्ग में गमन नहीं करना चाहिये और मार्गसे उन्मार्गका संक्रमण भी नहीं करना चाहिए। गहन वन एवं विषम-स्थानमें भी साधु प्रवेश न करे, एवं न विस्तृत और गहरे जलमें ही प्रवेश करे और न वृक्ष पर ही चढ़े। इसी प्रकार वह सेना और अन्य साथियोंका आश्रय भी न ढूंढ़े, किन्तु राग-द्वेषसे रहित होकर यावत् समाधिपूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे ।।७६३।।

यदि साधु-साध्वीको विहार करते हुए मार्गमें अटवी आजाए तो साधु उसको जान ले, जैसे कि अटवीमें चोर होते हैं और वे साधुके उपकरण लेनेके लिए इकट्ठे होकर आते हैं, यदि अटवीमें चोर एकत्रित होकर आएँ तो साधु उनसे भयभीत न हो तथा उनसे डर कर उन्मार्गकी ओर न जाए किन्तु……… विहार करे ।।७६४।।

संयमशील साधु अथवा साध्वीको ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यदि मार्गमें वहुतसे चोर मिलें और वे कहें कि आयुष्मन् श्रमण ! यह वस्त्र, पात्र और कंवल आदि हमको दे दो या यहां पर रख दो । तो साधु वे वस्त्र, पात्रादि उनको न देवे, किन्तु भूमि पर रख दे, परन्तु उन्हें वापिस प्राप्त करने के लिए मुनि उनकी स्तुति करके, हाथ जोड़कर या दीन वचन कह कर उन वस्त्रादिकी याचना न करे अर्थात् उन्हें वापिस देनेको न कहे। तथा यदि मांगना हो तो उन्हें धर्मका मार्ग समझाकर मांगे अथवा मौन रहे। वे चोर अपना कर्त्तव्य जानकर साधुको मारें-पीटें, या उसका वध करनेका प्रयत्न करें, और उसके वस्त्रादिको छीन लें, फाड़ डालें या फैंक दें तो भी वह भिक्षु ग्राममें जाकर लोगों से न कहे और न राजासे ही कहे एवं किसी अन्य गृहस्थके पास जाकर भी यह

बीहड़ एवं खड्डा आदि हों, नदीसे वेष्टित भूमि हो, निर्जल प्रदेश और अटवी हो, अटवीमें विषम स्थान हो, वन हो और वनमें भी विषम-स्थान हो, इसी प्रकार पर्वत, पर्वत पर का विषम स्थान, कूप, तालाब, झीलें, नदिएं, बावड़ी और पुष्करिणी, दीर्घिका (लम्बी बावड़िएं), गहरे एवं कुटिल जलाशय, बिना खोदे हुए तालाब, सरोवर, सरोवर की पंक्तिएं और बहुतसे मिले हुए तालाब हों तो इनको भी अपनी भुजा ऊपर उठाकर या अंगुली पसार कर, शरीरको ऊंचा-नीचा करके न देखे, कारण कि, केवली भगवान इसे कर्मबन्धनका कारण बतलाते हैं, जैसा कि—उन स्थानोंमें मृग, पशु-पक्षी, सांप, सिंह, जलचर स्थलचर और खेचर जीव होते हैं, वे साधुको देखकर त्रास पावेंगे, वित्रास पावेंगे और किसी बाड़की शरण चाहेंगे तथा विचार करेंगे कि यह साधु हमें हटा रहा है, इसलिए भुजाओं को ऊंची करके साधु न देखे किन्तु यत्नापूर्वक आचार्य और उपाध्याय आदि के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ संयमका पालन करे ॥७५३॥

साधु-साध्वी आचार्य और उपाध्यायके साथ विहार करता हुआ उनके हाथसे हाथ यावत् स्पर्श न करे यावत् आशातना न करता हुआ ईर्यासमिति-पूर्वक उनके साथ विहार करे ॥७५४॥

उनके साथ विहार करते हुये मार्गमें यदि कोई व्यक्ति मिले और वह इस प्रकार कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! आप कौन हैं ? कहांसे आए हैं ? और कहां जाएंगे ? तो आचार्य या उपाध्याय जो भी साथ में हैं वे उसे सामान्य अथवा विशेष रूपसे उत्तर देवें। परन्तु साधुको उनके बीचमें नहीं बोलना चाहिए। किन्तु ईर्यासमितिका ध्यान रखता हुआ उनके साथ विहारचर्यामें प्रवृत्त रहे ॥७५५॥

········ रत्नाधिक (अपनेसे दीक्षामें बड़े साधु) के साथ विहार करता हुआ उसके हाथसे ········विहार करे ॥७५६॥

उनके साथ विहार करते हुये ········जाएंगे ? तो वहां पर जो सबसे बड़ा साधु हो वह उत्तर देवे। परन्तु ········उसके ········रत्नाधिकके साथ विहारमें प्रवृत्त रहे ॥७५७॥

संयमशील साधु-साध्वीको विहार करते हुए यदि मार्गके मध्यमें, सामनेसे कोई पथिक मिले और वह साधुसे कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! क्या आपने मार्गमें मनुष्यको, मृगको, महिषको, पशुको, पक्षीको, सर्पको और जलचरको जाते हुए देखा है ? यदि देखा हो तो बतलाओ वे किस ओर गए हैं ? साधु इन प्रश्नोंका कोई उत्तर न दे और मौनभाव से रहे, तथा उसके उक्त वचनको स्वीकार न करे, तथा जानता हुआ भी यह न कहे कि मैं जानता हूं। तदनन्तर यत्नापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे ॥७५८॥

………श्रमण ! क्या आपने इस मार्गमें जलसे उत्पन्न होने वाले कन्दमूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरित, एवं जलके स्थान और अप्रज्वलित हुई अग्निको देखा है, तो बताओ कहां देखा है ? साधु इन प्रश्नों का……विहार करे ॥७५६॥

……श्रमण ! इस मार्ग में धान्य यावत् (नाना प्रकारके उतरे हुए) राजा के कटक (सेना) को बताओ कहां पर है ? साधु इन……करे ॥७६०॥

………श्रमण ! यहांसे ग्राम यावत् राजधानी कितनी दूर है ? तथा यहां से ग्राम नगर यावत् राजधानीका मार्ग कितना शेष रहा है ? साधु इन प्रश्नों का……विहार करे ॥७६१-७६२॥

संयमशील साधु-साध्वीको ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्गमें यदि मदोन्मत्त वृषभ-बैल या विषैले सांप या चीते आदि हिंसक जीवोंका साक्षात्कार हो तो उसे देखकर साधुको भयभीत नहीं होना चाहिए तथा उनसे डरकर उन्मार्ग में गमन नहीं करना चाहिये और मार्गसे उन्मार्गका संक्रमण भी नहीं करना चाहिए। गहन वन एवं विषम-स्थानमें भी साधु प्रवेश न करे, एवं न विस्तृत और गहरे जलमें ही प्रवेश करे और न वृक्ष पर ही चढ़े। इसी प्रकार वह सेना और अन्य साथियोंका आश्रय भी न ढूंढ़े, किन्तु राग-द्वेषसे रहित होकर यावत् समाधिपूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे ॥७६३॥

यदि साधु-साध्वीको विहार करते हुए मार्गमें अटवी आजाए तो साधु उसको जान ले, जैसे कि अटवीमें चोर होते हैं और वे साधुके उपकरण लेनेके लिए इकट्ठे होकर आते हैं, यदि अटवीमें चोर एकत्रित होकर आएँ तो साधु उनसे भयभीत न हो तथा उनसे डर कर उन्मार्गकी ओर न जाए किन्तु……… विहार करे ॥७६४॥

संयमशील साधु अथवा साध्वीको ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यदि मार्गमें बहुतसे चोर मिलें और वे कहें कि आयुष्मन् श्रमण ! यह वस्त्र, पात्र और कंबल आदि हमको दे दो या यहां पर रख दो। तो साधु वे वस्त्र, पात्रादि उनको न देवे, किन्तु भूमि पर रख दे, परन्तु उन्हें वापिस प्राप्त करने के लिए मुनि उनकी स्तुति करके, हाथ जोड़कर या दीन वचन कह कर उन वस्त्रादिकी याचना न करे अर्थात् उन्हें वापिस देनेको न कहे। तथा यदि मांगना हो तो उन्हें धर्मका मार्ग समझाकर मांगे अथवा मौन रहे। वे चोर अपना कर्त्तव्य जानकर साधुको मारें-पीटें, या उसका वध करनेका प्रयत्न करें, और उसके वस्त्रादिको छीन लें, फाड़ डालें या फेंक दें तो भी वह भिक्षु ग्राममें जाकर लोगों से न कहे और न राजासे ही कहे एवं किसी अन्य गृहस्थके पास जाकर भी यह

न कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ ! इन चोरोंने मेरे उपकरणादि को छीननेके लिए मुझे मारा है और उपकरणादिको दूर फैंक दिया है। ऐसे विचारोंको साधु मनमें भी न लाए और न वचनसे उन्हें अभिव्यक्त करे। किन्तु··· विहार करे ।।७६५।।

यही उसका यथार्थ साधुत्व है। इस प्रकार मैं कहता हूं ।।७६६।।

।। तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

।। तृतीय ईर्याध्ययन समाप्त ।।

—०—

चतुर्थ अध्ययन भाषा

प्रथम उद्देशक

संयमशील साधु-साध्वी वचनके आचारको सुनकर और हृदयमें धारण करके वचन अनाचारको (जिनका पूर्वके मुनियोंने आचरण नहीं किया) जानने का प्रयत्न करे। जो मुनि क्रोध, मान, माया और लोभसे वचन बोलते हैं अर्थात् इनके वशीभूत होकर भाषण करते हैं, तथा जो किसीके दोषको जानते हुए अथवा न जानते हुए भी उसके मर्मको उद्घाटन करनेके लिए कठोर वचन बोलते हैं ऐसी भाषा सावद्य है, अतः विवेकशील साधु इसे छोड़ दे ।।७६७।।

वह निश्चयात्मक भाषा[१] भी न बोले जैसे कि—ऐसा अवश्य होगा अथवा नहीं होगा, भिक्षार्थ गया साधु आहार अवश्य लाएगा या नहीं लाएगा। वह आहार करके आएगा. या आहार किये बिना ही आएगा। वह अवश्य आया था या नहीं आया। वह आता है अथवा नहीं आता है। वह आएगा अथवा नहीं आएगा। वह यहां आया था या नहीं आया। वह यहाँ आता ········ नहीं आएगा ।।७६८।।

अतः विचारपूर्वक निश्चय करके भाषा समितिका ध्यान रखता हुआ संयत भाषामें बोले, जैसे कि—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन, स्त्रीलिंग—नपुंसकलिंग—वचन, अध्यात्मवचन, प्रशंसायुक्त०, निन्दायुक्त०, निन्दा और प्रशसायुक्त०, भूत—वर्तमान—भविष्यत् काल—सम्बन्धि वचन, प्रत्यक्ष०, परोक्ष० ।।७६९।।

यदि उसे एकवचन बोलना हो तो वह एकवचन बोले यावत् परोक्षवचन पर्यन्त जिस वचनको बोलना हो उसीको बोले। यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह वही है या और कोई है। जब तक निश्चय न हो तब तक

---

१. काल—क्षेत्रसंबंधी।

निश्चयात्मक वचन न बोले। अतः विचारपूर्वक भाषा समितिसे युक्त साधु भाषाके इन दोषोंको त्याग कर संभाषण करे ॥७७०॥

साधुको भाषाके चारों भेदोंको भी जानना चाहिए, जैसे कि—१ सत्य भाषा, २ मृषा–असत्य भाषा, ३ मिश्र भाषा और ४ असत्यामृषा—जो न सत्य है, न असत्य और न सत्यासत्य किन्तु असत्यामृषा या व्यवहार–भाषाके नामसे प्रसिद्ध है ॥७७१॥

जो कुछ मैं कहता हूं—भूतकाल में जो अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं और वर्तमान कालमें जो तीर्थंकर हैं, तथा भविष्यकाल में जो तीर्थकर होंगे, उन सवनें इसी प्रकारसे चार तरहकी भाषाका वर्णन किया है, करते हैं और करेंगे। तथा ये सब भाषाके पुद्गल अचित्त हैं, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं, तथा मिलने और विछुड़ने वाले एवं विविध प्रकारके परिणामोंको धारण करने वाले होते हैं। ऐसा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थकर देवोंने प्रतिपादन किया है ॥७७२॥

संयमशील साधु-साध्वीको भाषाके विषयमें यह जानना चाहिए कि भाषावर्गणाके एकत्रित हुए पुद्गल बोलनेसे पहले अभाषा और भाषण करते समय भाषा कहलाते हैं, और भाषण करनेके पश्चात् वह बोली हुई भाषा अभाषा हो जाती है ॥७७३॥

साधु-साध्वी··· कि जो सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा है, उनमें असत्य और मिश्र भाषाका व्यवहार साधु-साध्वीके लिए सर्वथा वर्जित है, केवल सत्य और व्यवहार भाषा ही उनके लिए आचरणीय है। उसमें भी यदि कभी सत्य भाषा भी सावद्य, सक्रिय, कर्कश, कटुक, निष्ठुर और कर्मों का आस्रवण करने वाली, तथा छेदन, भेदन, परिताप और उपद्रव करने वाली एवं जीवोंका घात करने वाली हो तो विचारशील साधु ऐसी सत्य भाषाका भी प्रयोग न करे ॥७७४॥

किन्तु संयमशील साधु-साध्वी उसी सत्य और व्यवहार भाषा–जो कि पापरहित (यावत् जीवोपघातक नहीं है) का ही विवेकपूर्वक व्यवहार करे। अर्थात् वह निर्दोष भाषा बोले। संयमशील साधु-साध्वी पुरुषको आमंत्रित करते हुए उसके न सुनने पर उसे हे होल ! हे गोल ! हे वृषल ! हे कुपक्ष ! हे घट-दास ! हे श्वान (कुत्ते) ! हे चोर ! हे गुप्तचर ! हे कपटी ! हे मृषावादी ! तुम ही क्या तुम्हारे माता-पिता भी इसी प्रकारके हैं। विवेकशील साधु इस तरह की सावद्य, सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले ॥७७५॥

किन्तु संयमशील साधु-साध्वी कभी किसी व्यक्ति को आमंत्रित कर रहा हो और वह न सुने तो उसे इस प्रकार संबोधित करे–हे अमुक व्यक्ति ! आयुष्मन् !

न कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ ! इन चोरोंने मेरे उपकरणादि को छीननेके लिए मुझे मारा है और उपकरणादिको दूर फेंक दिया है । ऐसे विचारोंको साधु मनमें भी न लाए और न वचनसे उन्हें अभिव्यक्त करे । किन्तु.....विहार करे ॥७६५॥

यही उसका यथार्थ साधुत्व है । इस प्रकार मैं कहता हूं ॥७६६॥

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ तृतीय ईर्याध्ययन समाप्त ॥

—०—

चतुर्थ अध्ययन भाषा

प्रथम उद्देशक

संयमशील साधु-साध्वी वचनके आचारको सुनकर और हृदयमें धारण करके वचन अनाचारको (जिनका पूर्वके मुनियोंने आचरण नहीं किया) जानने का प्रयत्न करे । जो मुनि क्रोध, मान, माया और लोभसे वचन बोलते हैं अर्थात् इनके वशीभूत होकर भाषण करते हैं, तथा जो किसीके दोषको जानते हुए अथवा न जानते हुए भी उसके मर्मको उद्घाटन करनेके लिए कठोर वचन बोलते हैं ऐसी भाषा सावद्य है, अतः विवेकशील साधु इसे छोड़ दे ॥७६७॥

वह निश्चयात्मक भाषा[1] भी न बोले जैसे कि—ऐसा अवश्य होगा अथवा नहीं होगा, भिक्षार्थ गया साधु आहार अवश्य लाएगा या नहीं लाएगा । वह आहार करके आएगा, या आहार किये बिना ही आएगा । वह अवश्य आया था या नहीं आया । वह आता है अथवा नहीं आता है । वह आएगा अथवा नहीं आएगा । वह यहां आया था या नहीं आया । वह यहाँ आता .... नहीं आएगा ॥७६८॥

अतः विचारपूर्वक निश्चय करके भाषा समितिका ध्यान रखता हुआ संयत भाषामें बोले, जैसे कि—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन, स्त्रीलिंग—, नपुंसकलिंग—वचन, अध्यात्मवचन, प्रशंसायुक्त०, निन्दायुक्त०, निन्दा और प्रशंसायुक्त०, भूत—वर्तमान—भविष्यत् काल—सम्बन्धि वचन, प्रत्यक्ष०, परोक्ष० ॥७६९॥

यदि उसे एकवचन बोलना हो तो वह एकवचन बोले यावत् परोक्षवचन पर्यन्त जिस वचनको बोलना हो उसीको बोले । यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह वही है या और कोई है । जब तक निश्चय न हो तब तक

---

१. काल—क्षेत्रसंबंधी ।

निश्चयात्मक वचन न बोले। अतः विचारपूर्वक भाषा समितिसे युक्त साधु भाषाके इन दोषोंको त्याग कर संभाषण करे ॥७७०॥

साधुको भाषाके चारों भेदोंको भी जानना चाहिए, जैसे कि—१ सत्य भाषा, २ मृषा–असत्य भाषा, ३ मिश्र भाषा और ४ असत्यामृषा—जो न सत्य है, न असत्य और न सत्यासत्य किन्तु असत्यामृषा या व्यवहार–भाषाके नामसे प्रसिद्ध है ॥७७१॥

जो कुछ मैं कहता हूं—भूतकाल में जो अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं और वर्तमान कालमें जो तीर्थंकर हैं, तथा भविष्यकाल में जो तीर्थंकर होंगे, उन सबने इसी प्रकारसे चार तरहकी भाषाका वर्णन किया है, करते हैं और करेंगे। तथा ये सब भाषाके पुद्गल अचित्त हैं, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं, तथा मिलने और बिछुड़ने वाले एवं विविध प्रकारके परिणामोंको धारण करने वाले होते हैं। ऐसा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर देवोंने प्रतिपादन किया है ॥७७२॥

संयमशील साधु-साध्वीको भाषाके विषयमें यह जानना चाहिए कि भाषावर्गणाके एकत्रित हुए पुद्गल बोलनेसे पहले अभाषा और भाषण करते समय भाषा कहलाते हैं, और भाषण करनेके पश्चात् वह बोली हुई भाषा अभाषा हो जाती है ॥७७३॥

साधु-साध्वी ···· कि जो सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा है, उनमें असत्य और मिश्र भाषाका व्यवहार साधु-साध्वीके लिए सर्वथा वर्जित है, केवल सत्य और व्यवहार भाषा ही उनके लिए आचरणीय है। उसमें भी यदि कभी सत्य भाषा भी सावद्य, सक्रिय, कर्कश, कटुक, निष्ठुर और कर्मों का आस्रवण करने वाली, तथा छेदन, भेदन, परिताप और उपद्रव करने वाली एवं जीवोंका घात करने वाली हो तो विचारशील साधु ऐसी सत्य भाषाका भी प्रयोग न करे ॥७७४॥

किन्तु संयमशील साधु-साध्वी उसी सत्य और व्यवहार भाषा–जो कि पापरहित (यावत् जीवोपघातक नहीं है) का ही विवेकपूर्वक व्यवहार करे। अर्थात् वह निर्दोष भाषा बोले। संयमशील साधु-साध्वी पुरुषको आमंत्रित करते हुए उसके न सुनने पर उसे हे होल ! हे गोल ! हे वृषल ! हे कुपक्ष ! हे घट-दास ! हे श्वान (कुत्ते) ! हे चोर ! हे गुप्तचर ! हे कपटी ! हे मृषावादी ! तुम ही क्या तुम्हारे माता-पिता भी इसी प्रकारके हैं। विवेकशील साधु इस तरह की सावद्य, सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले ॥७७५॥

किन्तु संयमशील साधु-साध्वी कभी किसी व्यक्ति को आमंत्रित कर रहा हो और वह न सुने तो उसे इस प्रकार संबोधित करे–हे अमुक व्यक्ति ! आयुष्मन् !

आयुष्मानों ! श्रावक ! उपासक ! धार्मिक ! धर्मप्रिय ! आदि इसप्रकारकी निरवद्य पापरहित भाषा बोले ॥७७६ ॥

इसी तरह संयमशील······ स्त्रीको बुलाते समय उसके न सुनने पर उसे होली ! गोली ! इत्यादि पूर्वोक्त सम्पूर्ण आलापक स्त्रीके सम्बन्धमें भी जान लेना चाहिए। उसे नीच संबोधनोंसे संबोधित न करे ॥७७७॥

किन्तु उसके न सुनने पर उसे आयुष्मति ! भगिनि ! (वहिन) भगवति ! श्राविके ! उपासिके ! धार्मिके ! और धर्मप्रिये ! इत्यादि पापरहित कोमल एवं मधुर शब्दोंसे संबोधित करे ॥७७८॥

संयमशील-साधु-साध्वी इस प्रकार न कहे कि आकाश देव है, गर्ज (बादल) देव है, विद्युत् देव है, देव बरस रहा है या निरन्तर बरस रहा है, एवं वर्षा बरसे न बरसे। धान्य उत्पन्न हों न हों। रात्रि व्यतिक्रान्त (शोभायुक्त) हो न हो। सूर्य उदय हो न हो। इस राजाकी विजय हो या इसकी विजय न हो। बुद्धिमान् इस प्रकारकी भाषा न बोले ॥७७९॥

वह साधु-साध्वी यदि कारण हो तो आकाशको आकाश कहे, देवताओं के गमनागमनकरनेसे इसका नाम गुह्यानुचरित भी है। यह पयोधर (मेघ) जल देने वाला है। संमूर्छिम जल बरसता है या यह मेघ बरसता है, इत्यादि भाषा बोले ॥७८०॥

निश्चय ही (यह) उस भिक्षु और साध्वीका सम्पूर्ण आचार है—जो ज्ञान दर्शन और चरित्ररूप अर्थोंसे युक्त और पांच समिति (तथा तीन गुप्ति) से युक्त है कि सदा निरवद्य भाषा बोलनेका यत्न करे। इस प्रकार मैं कहता हूं ॥७८१॥

॥ भाषाऽध्ययनका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय उद्देशक

संयमशील साधु-साध्वी यद्यपि कई एक रूपोंको देखता है तथापि उन्हें देखकर इस प्रकार न कहे। जैसे कि :—गण्डी (जिसको गण्ड रोग-कण्ठमाला या पादशून्य हो गया हो) को गण्डी ! ऐसे कहना, कुष्ठ रोग वाले को कुष्टी ! यावत् मधुमेह के रोगी को मधुमेही कहकर पुकारना, अथवा जिसका हाथ कट गया हो उसे हाथकटा कहना, इसी प्रकार पैर-नाक-कान-ओष्ठकटे को पैर ······ ओष्ठकटा कहना। जो जितने भी तथा प्रकारके हैं उनको इस प्रकार की भाषाओं से सम्बोधित करनेपर वे पुरुष कोधित हो जाते हैं अतः उनको फिर उस प्रकार की भाषाओंसे विचारकर सम्बोधित न करे ॥७८२॥

·········इस प्रकार कहे। जैसे कि ओजस्वीको ओजस्वी, तेजस्वी को ते······

जिसका वचन ग्रहण करने योग्य अथवा लब्धियुक्त हो उसे वर्चस्वी, रूपसंपन्न को रूपवान्, प्रतिरूप को प्रतिरूप, प्रासाद गुण युक्त को प्रासादीय, दर्शनीय को दर्शनीय कहकर सम्बोधित करे। जो जितने भी तथा······वे पुरुष क्रोधित नहीं होते अतः··· सम्बोधित करे। इस प्रकार की असावद्य यावत् निर्दोष भाषा बोले ॥७८३॥

········देखता है जैसे कि :—खेतों कि क्यारिएँ यावत् घर आदि। तथापि उनको देखकर इस प्रकार न कहे जैसे कि :—यह अच्छी बनी है, यह बहुत सुन्दर बनी है, साधु कृत है, यह कल्याणकारी है, यह करने योग्य है इत्यादि। इस प्रकार की भाषा जो कि सावद्य है यावत् न बोले। ॥७८४॥

····· उनको देखकर इस प्रकार कहे जैसे कि:—यह आरम्भकृत है, सावद्य कृत है, यह कार्य प्रयत्नसाध्य है, इसी प्रकार प्रासादीय को प्रासादीय······प्रतिरूप को प्रतिरूप बतलावे। इस प्रकार······बोले ॥७८५॥

संयमशील साधु-साध्वी तैयार हुए अशनादि चतुर्विध आहारको देखकर इस प्रकार न कहे कि यह आहारादि पदार्थ सुकृत, सुष्ठुकृत और साधुकृत है, तथा कल्याणकारी और अवश्य करणीय है। इस प्रकार की·······यावत् न बोले ॥७८६॥

······देखकर इस प्रकार कहे यह आरम्भ०······यह अत्यन्त यत्न से बनाया हुआ है, यह भद्र अर्थात् वर्ण गंध रसादि से युक्त है, सरस और मनोज्ञ है। साधु ऐसी निरवद्य एवं निष्पाप भाषा का प्रयोग करे ॥७८७॥

संयमशील साधु-साध्वी, मनुष्य, बैल, भैंस, मृग, पशु-पक्षी, सर्प और जलचर आदि जीवोंमें किसी भारी शरीरवाले जीव को देखकर ऐसा न कहे कि यह स्थूल है, यह मेदयुक्त है, वृत्ताकार है, वध या वहन करने योग्य और पकाने योग्य है इस प्रकार की न बोले ॥७८८॥

··· देखकर ऐसा कहे कि यह पुष्ट शरीर वाला है, उपचित काय है, दृढ़ संहनन वाला है, इसके शरीर में रुधिर और मांसका उपचय हो रहा है, और इसकी सभी इन्द्रिएँ परिपूर्ण हैं। इस प्रकार····बोले ॥७८९॥

संयमशील साधु-साध्वी गाय आदि पशुओंको देखकर इसप्रकार न कहे कि यह गाय दोहने योग्य है, अथवा इसके दुहनेका समय हो रहा है। तथा यह बैल दमन करने योग्य है, यह वृषभ छोटा है, यह वहनके योग्य है और यह हल आदि चलानेके योग्य है, इसप्रकारकी ··· न बोले ॥७९०॥

······ इसप्रकार कहे कि यह वृषभ जवान है, यह गाय प्रौढ़ है, दूध देने वाली है, यह बैल छोटा है, यह बड़ा है और यह शकट आदिको वहन करता है। इसप्रकार·······बोले ॥७९१॥

संयमशील साधु-साध्वी किसी बगीचे पर्वत या वन आदिमें विशाल वृक्षों को देखकर उनके सम्बन्धमें इसप्रकार न कहे कि यह वृक्ष मकान आदिमें लगाने योग्य है, यह तोरण अथवा गृह योग्य है, इसका फलक बन सकता है, यह अर्गला नाव-जल भरनेकी टोकणी-पीठ-काठका बर्तन विशेष-हल-कुलड़ी-यन्त्र-लाठी (अथवा कोल्हूकी लट्ठ)-चक्र-नाभि-सुनारके काष्ठोपकरण-आसन-शय्या (पलंग) यान (शकटादि)-उपाश्रयके योग्य है। इसप्रकार ''' '''न बोले ॥७६२॥

''''''''इसप्रकार कहे कि ये वृक्ष अच्छी जातिके हैं, दीर्घ और वृत्त तथा बड़े विस्तार वाले हैं। इनकी शाखाएं चारों ओर फैली हुई हैं, ये वृक्ष मनको प्रसन्न करने वाले अभिरूप और निन्तात सुन्दर हैं। इसप्रकार'' बोले ॥७६३॥

संयमशील साधु-साध्वी वनमें बहुत परिमाणमें उत्पन्न हुए फलोंको देखकर उनके सम्बन्धमें इसप्रकार न कहे कि ये फल पक गए हैं अतः खाने योग्य हैं या ये फल पलाल आदिमें रखकर पकानेके पश्चात् खाने योग्य हो सकते हैं। इनके तोड़नेका समय हो गया है। ये फल अभी बहुत कोमल हैं, क्योंकि इनमें अभी तक गुठली नहीं पड़ी है और ये फल खंड २ करके खाने योग्य हैं। इसप्रकार'''''''' न बोले ॥७६४॥

'''''''''इसप्रकार कहे कि ये वृक्ष फलोंके भारसे नम्र हो रहे हैं। ये वृक्ष बहुत फल दे रहे हैं। ये फल बहुत परिपक्व अथवा कोमल हैं। इसप्रकार'''''''' बोले ॥७६५॥

संयमशील साधु अथवा साध्वी बहुत परिमाणमें उत्पन्न हुई औषधियोंको देखकर उनके सम्बन्धमें इसप्रकार न कहे कि यह औषधि पक गई है। यह अभी कच्ची या हरी है। यह काटने योग्य या भूंजने या खाने योग्य है। इसप्रकार''''' न बोले ॥७६६॥

''''''इसप्रकार कहे कि यह अभी अंकुरित हुई है। यह औषधि अधिक उत्पन्न हुई है। यह स्थिर है और यह बीजोंसे भरी हुई है, यह सरस है। यह अभी गर्भमें ही है या उत्पन्न हो गई है। इसप्रकार''' बोले ॥७६७॥

संयमशील साधु-साध्वी किसी भी शब्दको सुनकर वह किसी भी सुशब्द को राग भावसे 'बड़ा अच्छा' एवं दुशब्दको द्वेष भावसे 'बहुत बुरा' अथवा विपरीत इसप्रकार न बोले। तथापि उन शब्दोंके सम्बन्धमें इसप्रकार बोले—सुन्दर शब्दको 'यह सुन्दर शब्द है' तथा दुःशब्द (असुन्दर) को असुन्दर ही कहे इसप्रकार''' बोले ॥७६८॥

इसीप्रकार रूपके विषयमें कृष्णको कृष्ण यावत् श्वेतको श्वेत, गंधोंमें सुगन्धको सुगन्ध और दुर्गन्धको दुर्गन्ध, रसोंमें तिक्तको तिक्त, यावत् मधुरको मधुर, स्पर्शके विषयमें कर्कशको कर्कश, यावत् मृदुको मृदु कहे ॥७६९॥

क्रोध, मान, माया और लोभका परित्याग करने वाला, एकान्त निरवद्य भाषा बोलने वाला, विचारपूर्वक बोलने वाला, धीरे २ बोलने वाला और विवेक-पूर्वक बोलने वाला संयत साधु या साध्वी भाषासमितिसे युक्त संयत भाषाका व्यवहार करे ॥८००॥

यही साधु-साध्वीका समग्र आचार है। इसप्रकार कहता हूं ॥८०१॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥ चतुर्थ भाषा अध्ययन समाप्त ॥

—०—

पंचम अध्ययन–वस्त्रैषणा

प्रथम उद्देशक

संयमशील साधु-साध्वी यदि वस्त्रकी गवेषणा करनेकी अभिलाषा रखते हों तो वे वस्त्रके सम्बन्धमें इसप्रकार जानें कि—ऊनका वस्त्र, सन तथा वल्कल का वस्त्र, ताड़ आदिके पत्तोंसे निष्पन्न वस्त्र और कपास एवं आककी तूलीसे बना हुआ वस्त्र एवं इसतरहके अन्य वस्त्रको भी मुनि ग्रहण कर सकता है ॥८०२॥

जो साधु तरुण बलवान, रोगरहित और दृढ़ शरीर वाला है वह एक ही वस्त्र धारण करे, दूसरा नहीं। परन्तु साध्वी चार वस्त्र—चादरें धारण करे। उसमें एक चादर दो हाथ प्रमाण चौड़ी, दो चादरें तीन हाथ प्रमाण और एक चार हाथ प्रमाण चौड़ी होनी चाहिए। इसप्रकारके वस्त्र न मिलने पर वह एक वस्त्रको दूसरेके साथ सी ले ॥८०३॥

साधु-साध्वीको वस्त्रकी याचना करनेके लिए आधे-योजनसे आगे जाने का विचार नहीं करना चाहिए ॥८०४॥

वह साधु-साध्वी वस्त्रके विषयमें इसप्रकार जानें—जिसके पास धन नहीं है उसकी प्रतिज्ञासे एक सार्धमिकका उद्देश्य रखकर प्राणियोंकी हिंसा करके जैसे पिंडैषणा अध्ययनमें आहारविषयक वर्णन किया गया है, ठीक उसीप्रकार इस स्थानमें वस्त्रविषयक वर्णन कहना चाहिए ॥८०५॥

इसीप्रकार बहुतसे साधर्मिक साधु, एक साधर्मिणी साध्वी तथा बहुतसी साध्विएं और बहुतसे शाक्यादि श्रमण और ब्राह्मणादि उसीप्रकार पुरुषान्तरकृत जैसे कि पिंडैषणा अध्ययनमें कहा गया है ॥८०६॥

संयमशील साधु-साध्वीको वस्त्रके विषयमें यह जानना चाहिए कि यदि

किसी गृहस्थने साधुके लिए वस्त्र खरीदा हो, धोया हो, रंगा१ हो, घिसकर साफ किया हो, शृङ्गारित किया हो, या धूप आदिसे सुगन्धित किया हो और वह पुरुपान्तरकृत नहीं हुआ है, तो साधु-साध्वी उसे ग्रहण न करें। यदि वह पुरुपान्तरकृत हो गया है तो साधु-साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं ॥८०७॥

संयमशील साधु-साध्वीको महाधनसे प्राप्त होने वाले नानाप्रकारके बहु-मूल्य वस्त्रोंके सम्बन्धमें जानना चाहिए, और मूपकादिके चर्मसे निष्पन्न, अत्यन्त सूक्ष्म, वर्ण और सौन्दर्यसे सुशोभित वस्त्र तथा देशविशेपोत्पन्न बकरी या बकरेके रोमोंसे बनाए गए वस्त्र एवं देशविशेपोत्पन्न इन्द्रनील वर्ण कपाससे निर्मित, समान कपाससे बने हुए और गौड़ देशकी विशिष्ट प्रकारकी कपाससे बने हुए वस्त्र, पट्टसूत्र-रेशमसे, मलयसूत्रसे और वल्कल तन्तुओंसे बनाए गए वस्त्र तथा अंकुश (देश विदेशमें उत्पन्न होने वाला महार्घ वस्त्र) चीन देशका बना हुआ रेशमी वस्त्र, देशराज-अमल-गजफल,फलक-कोयंबदेशके बने हुए प्रधान वस्त्र अथवा ऊर्ण कम्बल तथा अन्य बहुमूल्य वस्त्र, कम्बलविशेप और इसीप्रकारके बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त होने पर भी विचारशील साधु उन्हें ग्रहण न करे ॥८०८॥

संयमशील साधु-साध्वीको चर्म एवं रोमसे निष्पन्न वस्त्रोंके सम्बन्धमें भी परिज्ञान करना चाहिए। जैसे—सिन्धु देशके मत्स्यके चर्म और रोमोंसे बने हुए, सिंधुदेशके सूक्ष्म चर्म वाले पशुओंके चर्म एवं रोमोंसे बने हुए तथा उस चर्म पर स्थित सूक्ष्म रोमोंसे बने हुए, एवं कृष्ण, नील और श्वेत मृगके चर्म और रोमोंसे बने हुए तथा स्वर्णजलसे सुशोभित, स्वर्णके समान कान्ति और स्वर्णरसके स्तवकों से विभूपित, स्वर्णतारोंसे खचित और स्वर्ण चन्द्रिकाओंसे स्पर्शित बहुमूल्य वस्त्र अथवा व्याघ्र या वृकके चर्मसे बने हुए, सामान्य और विशेप प्रकारके आभरणों से सुशोभित अन्य प्रकार के चर्म एवं रोमोंसे निष्पन्न वस्त्रोंको मिलने पर भी संयमशील मुनि स्वीकार न करे ॥८०९॥

वस्त्रैषणाके इन पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण दोपोंको छोड़कर संयमशील साधु अथवा साध्वी इन चार प्रतिमाओं—अभिग्रह विशेपोंसे वस्त्रकी गवेषणा करे ॥८१०॥

उन चार प्रतिमाओंमें से यह पहली प्रतिमा है—वह साधु या साध्वी मन में निश्चित किये हुये वस्त्रकी याचना करे जैसे कि ऊनी यावत् अर्कतूल निर्मित

---

१. यह पाठ सभी तीर्थंकरोंके साधुओंको दृष्टिमें रखकर रक्खा गया है। क्योंकि भगवान् अजितनाथसे लेकर पार्श्वनाथ तकके साधु-साध्वी पांचों रंगोंके वस्त्र ग्रहण कर सकते थे। अथवा तुरन्त उड़ने वाले रंगीन सेंट अथवा इतर द्वारा सुगन्धित किया गया वस्त्र।

वस्त्र। उस प्रकारके वस्त्रकी स्वयं याचना करे या गृहस्थ देवे तो प्रासुक और एषणीय जानकर उसे ग्रहण करले। यह पहली प्रतिमा है॥८११॥

अब दूसरी प्रतिमाके विषयमें कहते हैं। वह साधु-साध्वी देखकर वस्त्रकी याचना करे। गृहपति यावत् दास-दासी आदि गृहस्थोंसे वह साधु पहले ही वस्त्र को देखे, देखकर इस तरह कहे—आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा भगिनि ! क्या तुम मुझे इन वस्त्रोंमें से किसी वस्त्रको दोगे ? उस प्रकारके ...... ग्रहण करले। यह दूसरी प्रतिमा है॥८१२॥

अब तीसरी प्रतिमा कहते हैं। वह साधु या साध्वी फिर वस्त्रके सम्बन्ध में जाने। जैसे कि—गृहस्थका पहना हुआ अथवा उत्तरासन। इस प्रकार...... ग्रहणकर ले। यह तीसरी प्रतिमा है॥८१३॥

अब चौथी प्रतिमाको कहते हैं। वह साधु-साध्वी, जो वस्त्र गृहस्थने उपयोगमें ले लिया है और फिर उसके काममें आने वाला नहीं, इस प्रकारके वस्त्र की याचना करे, और जिसको अन्य बहुतसे शाक्यादि भिक्षु यावत् भिखारी लोग नहीं चाहते, उस प्रकारके उज्झित धर्म वाले वस्त्रकी स्वयं......ग्रहण करले। यह चौथी प्रतिमा है॥८१४॥

इन चार प्रतिमाओंके विषयमें जैसे पिण्डैषणा-अध्ययनमें वर्णन किया गया है, वैसे समझना चाहिए॥८१५॥

कदाचित् इन पूर्वोक्त वस्त्रैषणाओंसे वस्त्रकी गवेषणा करने वाले साधुको कोई अन्य गृहस्थ कहे कि आयुष्मन् ! श्रमण ! तुम इस समय जाओ, किन्तु एक मास, दस दिन या पाँच दिनके बाद कल या अगले दिन तुम यहां आना, तब हम तुम्हें वस्त्र देंगे। इस प्रकारके शब्दको सुनकर, हृदयमें धारणकर, वह साधु पहले ही देखे (विचार करे) देखकर इस प्रकार कहे—आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा भगिनि ! मुझे यह प्रतिज्ञापूर्वक वचन सुनना नहीं कल्पता, यदि तुम देना चाहते हो तो इसी समय दे दो। उस साधुके इस प्रकार कहने पर भी यदि गृहस्थ कहे कि आयुष्मन् ! श्रमण ! अब तो तुम जाओ, थोड़े समयके अनन्तर आकर वस्त्र ले जाना। वह साधु ... मुझे यह संकेतपूर्वक वचन स्वीकार करना नहीं कल्पता। यदि ... गृहस्थ घरके किसी व्यक्तिको यदि कहे कि हे आयुष्मन् ! अथवा हे बहिन ! यह वस्त्र लाओ, साधुको देंगे। हम पीछे अपने लिए प्राणियोंका समारम्भ करके उद्देश्य करके यावत् वस्त्र बना लेंगे। इस प्रकारके शब्दको सुन कर विचारकर उस प्रकारके वस्त्रको अप्राशुक यावत् अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे॥८१६॥

कदाचित् गृहस्वामी यदि घरके किसी व्यक्तिको यह कहे—आयुष्मन् ! अथवा बहन ! यह वस्त्र लाओ, इसको सुगन्धित द्रव्योंसे आघर्षण प्रघर्षण करके

साधुको देंगे। इस प्रकारके शब्दको····भगिनि ! तुम इस वस्त्रको यावत् मत प्रघर्षित करो। यदि तुम देना चाहते हो तो इसी तरह से दे दो। उसके इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ यदि प्रघर्षित करके देवे तो उस प्रकारके वस्त्र को अप्राशुक··· ग्रहण न करे ॥८१७॥

····· वह वस्त्र लाओ, उसको निर्मल शीतल या उष्ण-जलसे उत्क्षालन करके प्रक्षालन करके साधुको······तुम इस वस्त्रको शीतोदकसे उष्णोदकसे उत्क्षालन-प्रक्षालन मत करो। यदि तुम देना······शेष उसी प्रकार यावत् ग्रहण न करे ॥८१८॥

······यह वस्त्र लाओ, इसे कन्द यावत् हरीसे विशुद्ध करके साधुको ····· तुम इस वस्त्रको इन कन्दादि यावत् हरियालीसे विशुद्ध मत करो। यदि······ यावत् ग्रहण न करे ॥८१९॥

कदाचित् गृहस्वामी वस्त्रको घरसे लाकर साधुको देवे तो वह साधु पहले ही विचारकर कहे—आयुष्मन् ! गृहस्थ ! या हे वहन ! तुम्हारे इस वस्त्रको मैं चारों ओरसे अच्छी तरहसे देखूंगा, क्योंकि केवली भगवान् कहते हैं कि विना प्रतिलेखना किए वस्त्रका लेना कर्मवन्धनका कारण है। कदाचित् वस्त्रके अंतमें कुछ बंधा हुआ हो यथा—कुंडल, धागा, चांदी, अथवा सोना, मणिरत्न यावत् रत्नोंकी माला आदि, कोई प्राणी बीज अथवा हरी आदि। अतः भिक्षुओंके लिए तीर्थंकरादिने पहले ही आज्ञा प्रदान की है, कि साधु वस्त्रको चारों ओरसे प्रतिलेखना करे, फिर ग्रहण करे ॥८२०॥

वह साधु या साध्वी वस्त्रके सम्बन्धमें जाने, जैसे कि—अण्डोंसे यावत् मकड़ीके जाले आदिसे युक्त। उस प्रकारके वस्त्रको अप्राशुक जानकर ग्रहण न करे ॥८२१॥

······जाने, यथा अण्डोंसे यावत् मकड़ीके जालोंसे रहित, अभीष्ट कार्य करनेमें असमर्थ, अस्थिर, जीर्ण, थोड़े कालके लिए दिया जाने वाला, धारण करनेके अयोग्य, अच्छा सुन्दर वस्त्र होते हुए भी दाता अथवा साधुको न रुचे तब उस वस्त्रको अप्राशुक जानकर ग्रहण न करे ॥८२२॥

···· जालोंसे रहित, अभीष्ट कार्य करनेमें समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने के योग्य तथा गृहस्थकी देनेकी रुचिको देखकर यदि साधुको रुचे तो उस प्रकार के वस्त्रको प्रासुक जानकर साधु ग्रहण कर ले ॥८२३॥

वह साधु-साध्वी ऐसा विचार करे कि मेरे पास नवीन वस्त्र नहीं है (पुरातन वस्त्रको) थोड़े वहुत सुगन्धित द्रव्यसे यावत् प्रघर्षित न करे।···· थोड़े वहुत निर्मल शीतल तथा उष्ण जलसे यावत् (विभूषाके लिए मलिन वस्त्र को) प्रक्षालन न करे ॥८२४॥

·····कहे कि मेरा वस्त्र दुर्गन्धयुक्त है, थोड़े वहुत सुगन्धित द्रव्यसे उसी प्रकार वहुतसे शीतल तथा उष्ण जलसे न धोवे। यह आलापक भी पूर्ववत् है ॥८२५॥

संयमशील साधु या साध्वी यदि वस्त्रको धूपमें सुखाना चाहे तो वह गीली जमीन पर यावत् अण्डों और जालोंसे युक्त जमीन पर न सुखावे ॥८२६॥

·····चाहे तो वह उस वस्त्रको स्तम्भ, खूंटी आदि पर, गृहके द्वारों पर, ऊखल, स्नानकी चौकी पर, और उस प्रकारके अन्य अन्तरिक्ष० भूमिसे ऊंचे स्थान पर जो ऊपर भलीभांति बान्धा हुआ नहीं है, दुष्ट प्रकारसे भूमि पर रोपण किय हुआ है, जो निश्चल न होकर वायुके द्वारा इधर उधर हो रहा है, आताप या परिताप न दे (न सुखावे) ॥८२७॥

·····चाहे तो वह उस वस्त्रको घरकी दीवारपर, नदीके तट पर, शिला पर, किसी पत्थर पर अथवा इस प्रकारके अन्य अन्तरिक्ष स्थान पर यावत् न सुखावे ॥८२८॥

·····चाहे तो वह उस वस्त्र को स्तम्भ पर, मंच पर, मंजिल पर, प्रासादा और हर्म्य अथवा इस ··· न सुखावे ॥८२९॥

वह भिक्षु उस वस्त्रको लेकर एकान्तमें चला जावे वहां जाकर जो भूमि अग्निसे दग्ध हो वहां या उसी प्रकारकी अन्य निर्दोष स्थंडिल भूमिका प्रतिलेखन करके, रजोहरणादिसे प्रमार्जित करके तत्पश्चात् यत्नापूर्वक वस्त्रको सुखाए ॥८३०॥

यही साधुका सम्पूर्ण आचार है ··· सदा यत्न करे। इस प्रकार कहता हूं ॥८३१॥

॥ वस्त्रैषणा अध्ययनका प्रथमोद्देशक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय उद्देशक

संयमशील साध-साध्वी भगवान् द्वारा दी गई आज्ञाके अनुरूप एषणीय और निर्दोष वस्त्रकी याचना करे, और मिलने पर उन्हें धारण करे। परन्तु (विभूषा के लिए) वह उन्हें न धोए न रंगे तथा धोए हुये और रंगे हुये वस्त्रों को पहने भी नहीं। किन्तु, अल्प और असार (साधारण) वस्त्रोंको धारण करके ग्राम आदिमें सुखपूर्वक विचरण करे। यह वस्त्रधारी मुनिका सम्पूर्ण आचार है ॥८३२॥

आहारादिके लिये जाने वाले संयमनिष्ठ साधु-साध्वी गृहस्थके घरमें जाते समय अपने सभी वस्त्र साथमें लेकर उपाश्रयसे निकलें और गृहस्थके घरमें प्रवेश करें। इसी प्रकार बस्तीसे बाहर, स्वाध्यायभूमि एवं जंगल आदि जाते समय तथा ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी वे सभी वस्त्र लेकर विचरें। इसी प्रकार थोड़ी अथवा अधिक वर्षा होती देखकर साधु वैसा ही आचरण करे जैसा पिंडैषणा अध्ययन में वर्णन किया गया है। केवल इतनी ही विशेषता है कि वह अपने सभी वस्त्र साथ लेकर जाए ॥८३३॥

कोई साधु मुहूर्त आदि कालका उद्देश्य रखकर किसी अन्य साधुसे प्राति-हारिक वस्त्रकी याचना करके एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, अथवा पांच दिन तक किसी ग्रामादिमें निवास कर वापिस आ जाये, और वह वस्त्र उपहत हो गया हो तो वह साधु जिसका वह वस्त्र था आप ग्रहण न करे, न परस्पर देवे, न उधार करे और न अदला-बदला करे तथा न अन्य किसीके पास जाकर यह कहे कि आयुष्मन्! श्रमण! तुम इस वस्त्र को ले लो, एवं वस्त्रके दृढ़ होने पर उसे छिन्न-भिन्न करके परठे भी नहीं, किन्तु उपहत वस्त्र उसी को दे दे, स्वयं न भोगे ॥८३४॥

कोई साधु इस प्रकारके शब्दको सुनकर, हृदयमें धारण करके—कि जो पूज्य तथा भयसे रक्षा करने वाले साधु होते हैं वे उस प्रकारके उपहत वस्त्रोंको जो कि कोई साधु मुहूर्त आदिकालका उद्देशकर यावत् एक दिनसे लेकर पांच दिन तक किसी ग्रामादिमें ठहर कर आते हैं, न स्वयं ग्रहण करते हैं, न परस्पर देते हैं उसी प्रकार यावत् न वे स्वयं भोगते हैं अर्थात् उसीको दे देते हैं बहुवचन में कहना चाहिये ॥८३५॥

वह भिक्षु जो सोचता है, कि मैं भी मुहूर्त आदि कालका उद्देश कर प्रति-हारक वस्त्रको मांगकर यावत् एक दिनसे लेकर पांच दिन पर्यन्त ठहर कर वापस आऊंगा जिससे यह वस्त्र मेरा ही हो जाएगा, तो उसे माया-छलका स्पर्श होता है। अतः इस प्रकारका विचार न करे ॥८३६॥

संयमशील साधु-साध्वी सुन्दर वर्ण वाले वस्त्रोंको विगत वर्ण न करे तथा विवर्णको वर्णयुक्त न करे। तथा मुझे अन्य सुन्दर वस्त्र मिल जाएगा, ऐसा विचार करके अपना पुराना वस्त्र किसी और को न दे, और न किसीसे उधारा वस्त्र लेवे एवं अपने वस्त्रकी परस्पर अदला-बदली भी न करे। तथा अन्य श्रमणके पास जाकर इस प्रकार भी न कहे कि आयुष्मन् श्रमण! क्या तुम मेरे वस्त्रको धारण करना या पहरना चाहते हो? इसके अतिरिक्त उस दृढ़ वस्त्रको फाड़ कर फैंके भी नहीं। तथा मार्गमें आते हुये चोरोंको देखकर उस वस्त्रकी रक्षाके

लिये चोरोंसे डरता हुआ उन्मार्गसे गमन न करे, किन्तु राग द्वेषसे रहित होकर साधु ग्रामानुग्राम विहार करे–विचरे ॥८३७॥

वह साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम गमन करते हुये मार्गके मध्यमें उसके सामने यदि अटवी आजाए तो वह फिर अटवीको जाने कि इस अटवीमें वहुतसे चोर वस्त्र छीननेके लिये एकत्र होकर आये हैं तो उनसे डर कर उन्मार्गसे गमन न करे, यावत् ग्रामानुग्राम विहार करे ॥८३८॥

...... यदि चोर एकत्र होकर वस्त्र छीननेके लिये आ जाएं और वे चोर इस प्रकार कहें—आयुष्मन् ! श्रमण ! यह वस्त्र हमारे हाथमें दे दे या हमारे आगे रख दे तब जैसे ईर्याध्ययनमें वर्णन किया है उसी प्रकार करे। विशेषता केवल इतनी है कि यहां पर वस्त्रका अधिकार समझना चाहिए ॥८३९॥

निश्चय ही यह साधु-साध्वीका सम्पूर्ण आचार है.....इस प्रकार कहता हूं ॥८४०॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ पांचवां वस्त्रैषणाऽध्ययन समाप्त ॥

—०—

षष्ठ अध्ययन—पात्रैषणा

प्रथम उद्देशक

संयमशील साधु-साध्वी जब कभी पात्रकी गवेषणा करनी चाहे तो सबसे पहले उन्हें यह जानना चाहिए कि तूंवेका पात्र, काष्ठका पात्र और मिट्टीका पात्र साधु ग्रहण कर सकता है। और उक्त प्रकारके पात्रको ग्रहण करनेवाला साधु यदि तरुण है, स्वस्थ है, स्थिर संहनन वाला है तो वह एक ही पात्र धारण करे, दूसरा नहीं ॥८४१॥

और वह अर्द्धयोजनके उपरान्त पात्र लेनेके लिये जानेका मनमें संकल्प न करे ॥८४२॥

यदि किसी गृहस्थने एक साधुके लिये प्राणियोंकी हिंसा करके पात्र वनाया हो तो साधु उसे ग्रहण न करे। इसी तरह अनेक साधु, एक साध्वी एवं अनेक साध्वियोंके सम्बन्धमें भी उसी तरह जानना चाहिये जैसे कि पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णन किया गया है ॥८४३॥

और शाक्यादि भिक्षुओंकेलिए वनाए गए पात्रके सम्वन्धमें भी......। शेष वर्णन वस्त्रैषणाके आलापकोंके समान समझना ॥८४४॥

वह साधु-साध्वी जो फिर नानाप्रकारके पात्रोंके सम्बन्धमें जाने। जो वहूमूल्य-कीमती हैं जैसे कि—लोहेके पात्र, कलीके पात्र, ताम्बेके पात्र, सीसेके पात्र, चान्दीके पात्र, सोनेके पात्र, पीतल०, लोह विशेप०, मणि, कांच और कांसीकेपात्र, शंख और शृंगके पात्र, दान्त०, वस्त्र०, पत्थर०, चर्मकेपात्र और इसी तरहके अन्य विविधमूल्यवाले पात्रोंको अप्रासुक जान कर यावत् ग्रहण न करे ।।८४५।।

.......जाने। विविध भान्तिके जिनके मूल्यवान वन्धन हैं। जैसे कि—लोहे के वन्धन यावत् चर्म के वन्धन वाले तथा उसी तरहके और भी कीमती वन्धनों से युक्त पात्रों को जानकर, अप्रासुक मानकर ग्रहण न करे। इन सव पात्र-सम्बन्धी दोपों को छोड़कर पात्र ग्रहण करना चाहिए ।।८४६।।

साधु यह जाने कि उसे चार अभिग्रह विशेषोंसे पात्रकी गवेषणा करनी है। उन चार प्रतिमाओं में से यह पहली प्रतिमा है। वह साधु-साध्वी नाम लेकर पात्रको याचना करे जैसे कि—तूम्बेका पात्र, काष्ठ० और मिट्टी का पात्र, उस प्रकारके पात्रको स्वयं याचना करे यावत् ग्रहण करे। यह पहली प्रतिमा है।।८४७।।

दूसरी प्रतिमा... वह साधु-साध्वी देखकर पात्रकी याचना करे जैसे कि गृहपति यावत् काम करने वाले दास-दासी आदि से। वह भिक्षु पहले ही विचार कर कहे—आयुष्मन्! गृहस्थ अथवा भगिनि! मुझे इन पात्रोंमेंसे किसी एकपात्र को दोगे जैसे कि तूम्बी का पात्र, लकड़ी और मिट्टी का पात्र। यावत् उस तरहके अन्य पात्रकी स्वयं याचना करे, यावत् ग्रहण करे। यह दूसरी प्रतिमा है ।।८४८।।

अव तीसरी प्रतिमा....वह साधु-साध्वी जो फिर पात्रको जाने—गृहस्थ का भोगा हुआ पात्र, गृहस्थ के ऐसे दो तीन पात्र जिनमें खाद्य पदार्थ पड़े हों या पड़ चुके हों। उस तरह के......ग्रहण करे। यह तीसरी प्रतिमा है ।।८४९।।

इसके अनन्तर चौथी प्रतिमा....। वह साधु-साध्वी उज्झितधर्म वाले पात्र की याचना करे। जिसे अन्य वहुत से शाक्यादि श्रमण यावत् नहीं चाहते। उस प्रकारके......ग्रहण करे ।।८५०।।

इन पूर्वोक्त चार प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमाको, शेप वर्णन जैसे पिण्डैपणा अध्ययनमें किया गया है उसी प्रकार जानना ।।८५१।।

साधुको इस पात्रैषणा के द्वारा गवेपणा करते हुए देखकर यदि कोई गृहस्थ इस प्रकार कहे आयुष्मन्! श्रमण! अव तुम जाओ, तुम एक मास..... शेष वर्णन जैसे वस्त्रैपणा का है उसी भांति जानना ।।८५२।।

यदि कोई गृहस्थ साधुको देखकर अपने कौटुम्विक जनों में से किसी पुरुष या स्त्रीको वुलाकर यह कहे—आयुष्मन्! अथवा भगिनि! वह पात्र लाओ

उस पर तेल या घी लगाकर साधु को देवें। शेप शीत उदक तथा कन्दमूल विपयक वर्णन वस्त्रैपणा अध्ययन के समान जानना ।।८५३।।

यदि कोई गृहस्थ साधुसे इस प्रकार कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! आप मुहूर्त पर्यन्त ठहरें। हम अभी अशनादि चतुर्विध आहार तैयार करके आपको जल और भोजनसे पात्र भर कर देंगे। क्योंकि साधु को खाली पात्र देना अच्छा नहीं रहता। तव साधु उनसे पहले ही इस प्रकार कहे कि आयुष्मन् ! गृहस्थ या वहिन ! मुझे आधाकर्मिक आहार-पानी ग्रहण करना नहीं कल्पता। अतः मेरे लिए आहारादि सामग्रीको एकत्र और उपसंस्कृत मत करो। यदि तुम मुझे पात्र देने की अभिलापा रखते हो तो उसे ऐसे ही दे दो। साधुके इसप्रकार कहने पर भी यदि गृहस्थ आहार आदि वनाकर उससे पात्र को भरकर दे तो साधु उसे अनुचित अप्रासुक जान कर स्वीकार न करे ।।८५४।।

यदि कोई गृहस्थ उस पात्र पर नई क्रिया किए विना ही लाकर दे तो साधु उसे कहे कि मैं तुम्हारे इस पात्र को चारों तरफ से भली-भांति प्रतिलेखना करके लूंगा, क्योंकि विना प्रतिलेखना किए ही पात्र ग्रहण करनेको केवली भगवान्ने कर्मवंधका कारण वताया है। हो सकता है कि उस पात्र में प्राणी, वीज और हरी आदि हों,……अतः भिक्षुओंकेलिए…पात्र……देखो(सू० ८२०)।।८५५-८५६।।

अण्डों सहित…सारे आलापक वस्त्रैपणा के समान जानने चाहिएँ। केवल इतनी ही विशेषता है कि यदि वह पात्र तेल, घृत से या ऐसे ही किसी अन्य पदार्थ से स्निग्ध किया हुआ हो तो साधु स्थंडिलभूमिमें जाकर वहाँ भूमि की प्रतिलेखना और प्रमार्जना करे। और तत्पश्चात् पात्र को धूलि आदिसे प्रमार्जित कर मसलकर रूक्ष वना ले ।।८५७।।

यही साधु का समग्र आचार है। जो साधु ज्ञान-दर्शन-चरित्र-युक्त समितियों से समित है वह इस आचार को पालन करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार कहता हूं ।।८५८।।

।। पात्रैपणाऽध्ययन का प्रथमोद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय उद्देशक

गृहस्थके घरमें आहार-पानीके लिये जानेसे पहले संयमनिष्ठ साधु-साध्वी अपने पात्रका प्रतिलेखन करे। यदि उसमें प्राणी आदि हों तो उन्हें वाहर निकाल कर एकान्तमें छोड़ दे और रज आदि को प्रमार्जित कर दे। उसके वाद

साधु आहार आदिके लिये उपाश्रयसे बाहर निकले और गृहस्थके घरमें प्रवेश करे ।।८५९।।

क्योंकि भगवानका कहना है कि विना प्रतिलेखना किए हुए पात्रको लेकर जानेसे उसमें रहे हुये क्षुद्र जीव जन्तु एवं बीज आदि की विराधना हो सकती है। अतः साधुको आहार पानीके लिए जानेसे पूर्व पात्रका सम्यक्तया प्रतिलेखन करके आहारको जाना चाहिये, यही भगवानकी आज्ञा है ।।८६०।।

गृहस्थके घरमें गये हुए साधु-साध्वीने जब पानीकी याचना की और गृहस्थ घरके भीतरसे सचित्त-जलको किसी अन्य भाजनमें डालकर साधुको देने लगा हो तो इस प्रकारके जलको अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे ।।८६१।।

कदाचित्—असावधानीसे वह जल ले लिया गया हो तो शीघ्र ही उस जलको वापिस कर दे। यदि गृहस्थ उसे वापिस न ले तो फिर वह उस जलयुक्त पात्रको लेकर स्निग्ध भूमिमें अथवा अन्य किसी योग्य स्थानमें जलको परठ दे और पात्रको एकान्त स्थानमें रख दे ।।८६२।।

किन्तु जब तक उस पात्रसे जलके विन्दु टपकते रहें या वह पात्र गीला रहे तब तक उसे न तो पोंछे और न धूपमें सुखावे ।।८६३।।

जब यह जान ले कि मेरा यह पात्र अब विगतजल और स्नेहसे रहित हो गया है तब उसे पोंछ सकता है, और धूपमें भी सुखा सकता है ।।८६४।।

संयमशील साधु-साध्वी जब आहार लेनेके लिये गृहस्थके घरमें जाए तो अपने पात्र साथ लेकर जाए। इसी तरह स्थंडिल भूमि और स्वाध्याय भूमिमें जाते समय भी पात्रको साथ लेकर जाए और ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी पात्रको साथमें ही रक्खे ।।८६५।।

न्यूनाधिक वर्षाके समयकी विधिका वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययनके दूसरे उद्देशकके अनुसार समझना चाहिए। इतना विशेष है कि यहां पर पात्रका अधिकार जानना ।।८६६।।

यही साधु-साध्वीका समग्र आचार है। प्रत्येक साधु-साध्वीको इसके परि-पालन करनेका सदा प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा मैं कहता हूं ।।८६७।।

।। द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

।। छठा पात्रैषणाऽध्ययन समाप्त ।।

—०—

सप्तम अध्ययन—अवग्रह-प्रतिज्ञा

प्रथम उद्देशक

दीक्षार्थी कहता है—कि मैं श्रमण-तपस्वी बनूंगा, घर से, परिग्रहसे, पुत्रादि सम्बन्धियोंसे और द्विपद-चतुष्पदादि पशुओंसे रहित होकर गोचरी (भिक्षा) लाकर संयमका पालन करने वाला साधक बनूंगा, परन्तु कभी भी पाप-कर्मका आचरण नहीं करूंगा ! हे भदन्त ! आज मैं सब प्रकारके अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूं ॥८६८॥

ग्राम, नगर यावत् राजधानीमें प्रविष्ट संयमशील साधु स्वयं बिना दिए हुए पदार्थोंको ग्रहण न करे, न दूसरोंसे ग्रहण कराए, और जो अदत्त ग्रहण करता है उसकी प्रशंसा भी न करे। एवं वह मुनि जिनके पास दीक्षित हुआ है, या रह रहा है उनके उवगरणाइं–उपकरणोंको उनकी बिना आज्ञा लिए तथा बिना प्रतिलेखना और प्रमार्जन किये ग्रहण न करे। किन्तु पहले उनसे आज्ञा लेकर और उसके बाद उनका प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके उन पदार्थोंको स्वीकार करे। अर्थात् बिना आज्ञासे वह कोई भी वस्तु ग्रहण न करे ॥८६९॥

संयमशील साधु-साध्वी धर्मशाला आदिमें जाकर और विचार कर उस स्थानकी आज्ञा मांगे। उस स्थानका जो स्वामी या अधिष्ठाता हो उससे आज्ञा मांगते हुये कहे–आयुष्मन् गृहस्थ ! जिस प्रकार तुम्हारी इच्छा हो अर्थात् जितने समयके लिये जितने क्षेत्रमें निवास करनेकी तुम आज्ञा दोगे उतने काल तक उतने ही क्षेत्रमें हम निवास करेंगे, अन्य जितने भी साधर्मिक साधु आएंगे वे भी उतने काल तक उतने क्षेत्रमें ठहरेंगे। उक्त कालके बाद वे विहार कर जाएंगे ॥८७०॥

इस प्रकार गृहस्थकी आज्ञाके अनुसार वहां निवासित साधुके पास यदि अन्य साधु—जो कि साधर्मी हैं, समग्र समाचारी वाले हैं और उग्र विहार करने वाले हैं, अतिथिके रूपमें आ जाएँ तो वह साधु अपने द्वारा लाये हुए आहारादि का उन्हें आमन्त्रण करे, परन्तु अन्य के लाये हुए आहारादि के लिये उन्हें निमंत्रित न करे ॥८७१॥

आज्ञा प्राप्त कर धर्मशाला आदिमें ठहरे हुए साधुके पास यदि उत्तम आचार वाले असंभोगी-साधर्मी-साधु अतिथि रूपमें आ जाएँ तो वह स्थानीय साधु अपने गवेषणा किये हुए पीढ़, फलक, शय्या-संस्तारक आदिके द्वारा अन्य सांभोगिक साधुओंको निमंत्रित करे, परन्तु ̈ द्वारा गवेषित पीढ़, फलकादि द्वारा निमंत्रित न करे ॥८७२॥

·········यदि कोई साधु गृहस्थके पाससे सूई, कैंची, कर्णशोधनिका और

नखछेदक आदि उपकरण अपने प्रयोजनके लिए मांगकर लाया हो तो वह उपकरणोंको अन्य भिक्षुओंको न दे। किन्तु अपना कार्य करके गृहस्थके पास जाए और लम्बा हाथ करके उन उपकरणोंको भूमि पर रखकर गृहस्थसे कहे कि यह तुम्हारा पदार्थ है, इसे संभाल लो, देख लो। परन्तु उन सूई आदि वस्तुओंको साधु अपने हाथसे गृहस्थके हाथ पर न रक्खे ॥८७३॥

संयमनिष्ठ साधु-साध्वीको सचित्त पृथ्वी या जीवजन्तु युक्त स्थानकी आज्ञा नहीं लेनी चाहिये ॥८७४॥

........जो उपाश्रय भूमिसे ऊँचा, स्तम्भ आदिके ऊपर एवं विषम हो ऐसे स्थानकी.....॥८७५॥

जो उपाश्रय कच्ची भीत पर स्थित हो और अस्थिर हो...॥८७६॥

जो उपाश्रय स्तम्भ आदि पर अवस्थित और इसी प्रकारके अन्य किसी विषम स्थानमें हो तो.........॥८७७॥

...जो उपाश्रय गृहस्थोंसे युक्त हो, अग्नि और जलसे युक्त हो, एवं स्त्री, बालक और पशुओंसे युक्त हो तथा उनके योग्य खान-पानकी सामग्रीसे भरा हुआ हो, प्रज्ञावान् साधुको ऐसे स्थानमें निकलना और प्रवेश करना यावत् धर्मानुयोग-चिन्तन करना नहीं कलपता ऐसा जानकर नहीं ठहरना चाहिए ॥८७८॥

जिस उपाश्रयमें गृहपति कुलके बीचसे जानेका मार्ग हो, या मार्गमें स्त्रियें बैठी रहती हों या वे नानाप्रकारकी शारीरिक चेष्टायें करती हों। प्रज्ञावान् .....॥८७९॥

जिस उपाश्रयमें गृहपति यावत् उनकी दासिएं परस्पर आक्रोश करती हों, उसी प्रकार मालिश-स्नानादि शीतल सचित्त अथवा उष्ण जल-नग्नादि भाव जैसे शय्या अध्ययनके आलापक कहे गए हैं उसी प्रकार यहां भी जानना। इतना विशेष है कि यहां पर अवग्रहका विषय है ॥८८०॥

.....जो उपाश्रय चित्रोंसे आकीर्ण हो रहा हो, उसकी भी आज्ञा नहीं लेनी चाहिए न उसमें ठहरना उचित है ॥८८१॥

यह साधु-साध्वीका समग्र आचार है। इसप्रकार मैं कहता हूं ॥८८२॥

॥ अवग्रह-प्रतिमाऽध्ययनका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

साधु धर्मशाला आदि स्थानोंमें जाकर और विचारकर अवग्रहकी याचना करे। उक्त स्थानोंके स्वामी, अधिष्ठातासे याचना करते हुए कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! हम यहां पर ठहरनेकी आज्ञा चाहते हैं, आप हमें जितने समय तक

और जितने क्षेत्रमें ठहरनेकी आज्ञा देंगे, उतने समय और उतने ही क्षेत्रमें ठहरेंगे। हमारे जितने भी साधर्मी साधु यहां आयेंगे तो वे भी इसी नियमका अनुसरण करेंगे। तुम्हारे द्वारा नियत की गई अवधिके बाद विहार कर जायेंगे ॥८८३॥

उक्त स्थानमें ठहरनेके लिये गृहस्थकी आज्ञा प्राप्त हो जाने पर साधु उस स्थानमें प्रवेश करते समय यह ध्यान रक्खे कि यदि उन स्थानोंमें शाक्यादि श्रमण तथा ब्राह्मणोंके छत्र यावत् चर्मछेदक आदि उपकरण पड़े हों तो वह उनको भीतरसे बाहर न निकाले और बाहरसे भीतर न रक्खे तथा किसी सुषुप्त श्रमण आदिको जागृत न करे और उनके साथ किंचिन्मात्र भी अप्रीतिजनक कार्य न करे, जिससे उनके मनको आघात पहुंचे ॥८८४॥

यदि कोई संयमनिष्ठ साधु-साध्वी आमके वनमें ठहरना चाहे तो वह उस वगीचेके स्वामी या अधिष्ठातासे····· विहार कर जाएंगे ॥८८५॥

उक्त स्थान····पर यदि साधुको आम खानेकी इच्छा हो तो यदि वह जाने कि वह अण्डादि यावत् जालोंसे युक्त है उस प्रकारके फलको अप्रासुक यावत् ग्रहण न करे ॥८८६॥

वह साधु अथवा साध्वी आम्रफलको जाने जो अण्डादि यावत् रहित हो, परन्तु यदि उसका तिरछा छेदन न हुआ हो, तथा उसके अनेक खंड भी न किये गए हों उस प्रकार··· ग्रहण न करे ॥८८७॥

·········हो, तिरछा छेदन और खंड २ किया हुआ हो तो अचित्त एवं प्रासुक होनेसे साधु उसे ग्रहण कर सकता है ॥८८८॥

यदि साधु—साध्वी आम्रका आधा भाग, उसकी फाड़ी, उसकी छाल, उसका रस एवं उसके किए गए सूक्ष्म खंड खाना या पीना चाहे तो यदि वे अंडादिसे युक्त हों तो उन्हें अप्रासुक यावत् ग्रहण न करे ॥८८९॥

साधु या साध्वी यदि जाने आम्रका··· खंड अंडादिसे रहित होने पर भी तिरछे कटे हुए नहीं हैं और खंड २ नहीं किए गए हैं तो साधु उन्हें भी अप्रासुक यावत् ग्रहण न करे ॥८९०॥

·······कटे हुए हैं और खंड २ किए गए हैं तो साधु उन्हें प्रासुक यावत् ग्रहण करे ॥८९१॥ यदि कोई सं० इक्षु वनमें·········॥८९२॥

यदि भिक्षु गन्ना खाना या पीना चाहे तो यदि वह जाने कि वह अंडादिसे युक्त यावत् ग्रहण न करे। इसी प्रकार तिरछा छेदन नहीं किया हुआ न लेना, किया हुआ अचित्त लेना ॥८९३॥

यदि साधु इक्षुके पर्वका मध्य भाग, इक्षुगंडिका, इक्षु-छाल, इक्षु रस और इक्षुके सूक्ष्म खंड आदिको खाना पीना चाहे तो यदि वह अंडादिसे युक्त··· ग्रहण न करे ॥८९४॥

वह साधु-साध्वी यदि जाने कि इक्षु ... अंडादिसे रहित होने पर भी तिरछा कटा हुआ नहीं है ... ग्रहण न करे ॥८९५॥

.... खंड २ किया हुआ नहीं ... न करे ॥८९६॥

... कटे हुये हैं ग्रहण करे ॥८९७॥

संयमशील साधु या साध्वी धर्मशाला आदिमें गृहस्थ और गृहस्थोंके पुत्र आदि सम्बन्धी स्थानके दोषोंको छोड़कर रहे ॥८९८॥

भिक्षु इन सात प्रतिमाओंसे अवग्रह ग्रहण करना जाने ॥८९९॥

पहली प्रतिमा यह है—वह साधु धर्मशाला आदि स्थानोंकी परिस्थितिको विचारकर अवग्रहकी याचना करे यावत् विचरूंगा ॥९००॥

दूसरी प्रतिमा यह है—जिस भिक्षुका इसप्रकारका अभिग्रह होता है—"मैं अन्य भिक्षुओंके प्रयोजनकेलिये अवग्रहकी याचना करूंगा और उसकेलिये याचना किये गये उपाश्रयमें ठहरूंगा" ॥९०१॥

कोई साधु इसप्रकारसे अभिग्रह करता है कि मैं अन्य भिक्षुओंके लिये तो अवग्रहकी याचना करूंगा, परन्तु उनके याचना किये गये स्थानोंमें नहीं ठहरूंगा। यह तीसरी प्रतिमाका स्वरूप है ॥९०२॥

.........याचना नहीं करूंगा परन्तु ... स्थानोंमें ठहरूंगा यह चौथी प्रतिमा है ॥९०३॥

.... मैं केवल अपने लिये ही अवग्रहकी याचना करूंगा, किन्तु अन्य दो, तीन, चार और पांच साधुओंके लिये याचना नहीं करूंगा। यह पांचवीं प्रतिमा है ॥९०४॥

.....जिस स्थानकी याचना करे उस स्थान पर यदि तृण विशेष-संस्तारक आदि मिल जाएं तो उन पर आसन करे अन्यथा उत्कटुक अथवा निषद्या आसन आदि के द्वारा रात्रि व्यतीत करे। यह छठी प्रतिमा है ॥९०५॥

साधु या साध्वी जिस स्थानकी आज्ञा ली हो, यदि उसी स्थान पर पृथ्वी-शिला, काष्ठशिला, तथा पलाल आदि बिछा हुआ हो तो वहां आसन करे अन्यथा ... व्यतीत करे। यह सातवीं प्रतिमा है ॥९०६॥

इन सात प्रतिमाओंमें से यदि कोई एक ...। शेष वर्णन पिंडैषणा अध्ययन-वत् जानना चाहिये ॥९०७॥

हे आयुष्मन् शिष्य ! मैंने भगवान्से इस प्रकार सुना है कि इस जिन प्रवचनमें पूज्य स्थविरोंने पांच प्रकारका अवग्रह प्रतिपादन किया है—१—देवेन्द्र अवग्रह, २—राज अवग्रह, ३—गृहपति अवग्रह, ४—सागारिक अवग्रह और ५—सार्धर्मिक अवग्रह ॥९०८॥ यह साधु-साध्वीका ...। ... कहता हूं ॥९०९॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ सप्तम अवग्रह-प्रतिमा अध्ययन समाप्त ॥ प्रथम चूला समाप्त ॥

सप्तसप्तिकाख्या द्वितीय चूला

अष्टम अध्ययन—स्थानसप्तिका

किसी गांव या शहरमें ठहरने का इच्छुक साधु-साध्वी पहले ग्रामादिमें जाकर उस स्थान को देखे, जो स्थान अण्डादि यावत् मकड़ी आदिके जालोंसे युक्त हो उसके मिलनेपर भी उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे। इसी प्रकार शेष वर्णन शय्या-अध्ययन के समान जानना यावत् उदकप्रसूत कन्दादि अर्थात् जिस स्थानमें ये वस्तुएं विद्यमान हों उसे भी ग्रहण न करे ॥६१०॥

ये पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण जो कर्मोपादानरूप दोषस्थान हैं इनको छोड़कर तदनन्तर साधु आगे कही जाने वाली चार प्रतिमाओंके अनुसार स्थानमें ठहरने की इच्छा करे ॥६११॥

प्रथम प्रतिमा—मैं अपने कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में रहूंगा, और अचित्त भीत आदि का सहारा लूंगा, तथा हस्त पादादि का संकोचन प्रसारण भी करूंगा एवं स्तोक मात्र पादादि से मर्यादित भूमि में भ्रमण भी करूंगा ॥६१२॥

दूसरी प्रतिमा—मैं ·········भ्रमण नहीं करूँगा ॥६१३॥

तीसरी प्रतिमा—मैं········ परन्तु हस्तपादादि का संकोचन प्रसारण एवं पादों से भ्रमण नहीं करूंगा ॥६१४॥

चौथी प्रतिमा—मैं ······ का सहारा नहीं लूंगा तथा हस्तपादादि नहीं करूंगा। परन्तु एक स्थानमें स्थित होकर कुछ काल के लिए शरीर—केश, दाढ़ी, मूंछ, रोम, नखके अर्थात् सर्वथा शारीरिक ममत्व भावको छोड़कर, कायोत्सर्ग द्वारा सम्यक् प्रकारसे काया का निरोध करके इस प्रकार स्थानमें रहूंगा ॥६१५॥

···इन पूर्वोक्त चार प्रतिमाओंमें से किसी एक प्रतिमाको ग्रहण करके विचरे। परन्तु प्रतिमा ग्रहण न करने वाले अन्य किसी मुनिकी निन्दा न करे और न उसके विषयमें कुछ कहे ॥६१६॥

निश्चय ही यह उस भिक्षुका सम्पूर्ण आचार है यावत् यत्न करे। इस प्रकार कहता हूं ॥६१७॥

॥ आठवां स्थान—सप्तकाध्ययन समाप्त ॥

॥ पहला स्थानसप्तक समाप्त ॥

नवम अध्ययन—निषीधिका

जो साधु-साध्वी प्रासुक अर्थात् निर्दोष स्वाध्याय भूमिमें जाना चाहे तव वह स्वाध्याय भूमिको देखे और यदि वह अण्डादि से युक्त हो तो इस प्रकारकी अप्रासुक, अनेपणीय स्वाध्याय भूमि (मिलने पर) को जानकर कहे कि मैं इसमें नहीं ठहरूंगा ।।९१८।।

······अण्डादि से युक्त न हो तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जानकर कहे कि मैं यहां पर ठहरूंगा । शेप वर्णन शय्या अध्ययन के अनुसार जानना चाहिए । यावत् उदकप्रसूत कन्दादि ।।९१९।।

उस स्वाध्याय भूमि में गए हुए दो, तीन, चार, पांच साधु परस्पर शरीर का आलिंगन न करें, न विशेष रूपसे शरीर०, न मुख चूमें, दान्तों या नखों से शरीरका छेदन भी न करें, और जिस चेष्टासे मोह उत्पन्न होता हो इस तरह की क्रियाएं भी न करें ।।९२०।।

निश्चय····· यत्न करे और वह यह मानें कि यह मेरे लिए कल्याणप्रद हैं । इस प्रकार कहता हूं ।।९२१।।

।। नौवां निषीधिकाऽध्ययन समाप्त ।।

।। दूसरा निषीधिका—सप्तक समाप्त ।।

दशम अध्ययन—उच्चार-प्रस्रवण

साधु-साध्वी मलमूत्रकी वाधा होनेपर यदि स्वकीय पात्र न हो तो अन्य सावर्मी साधु से पात्रकी याचना करे ।।९२२।।

वह साधु-साध्वी फिर जिस स्थंडिल भूमिको जाने अंडादि यावत् मकड़ी आदिके जालोंसे युक्त उस प्रकारके स्थंडिलमें मलमूत्रका त्याग न करे ।।९२३।।

·········जालोंसे रहित उस·········त्याग करे ।।९२४।।

यदि किसी गृहस्थने एक साधु या वहुतसे साधुओं का उद्देश्य रखकर स्थण्डिल वनाया हो अथवा एक साध्वी या वहुत सी साध्वियों का उद्देश्य रखकर स्थण्डिल वनाया हो अथवा वहुतसे श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, भिखारी एवं गरीवों को गिन २ कर उनकेलिए प्राणी, भूत, जीव और सत्वोंकी हिंसा करके स्थण्डिल भूमि को तैयार किया हो तो इस प्रकार का स्थण्डिल पुरुपान्तर कृत हो या अपुरुपान्तर कृत हो, किसी अन्यके द्वारा भोगा गया हो या न भोगा गया हो, उसमें साधु-साध्वी मल-मूत्रका परित्याग न करे ।।९२५।।

यदि किसी गृहस्थनें वहुतसे श्रमण········का उद्देश्य रखकर उनके लिए

प्राणी ···स्थण्डिल जब तक किसीके भोगनेमें न आया हो तब तक उसमें मल-मूत्र का परित्याग न करे ॥६२६॥

······यदि इस प्रकार जानले कि यह पुरुषान्तर कृत है यावत् अन्यके द्वारा भोगा हुआ है तो इस प्रकारके स्थण्डिलमें मल-मूत्रका त्यागकर सकता है ॥६२७॥

यदि साधु-साध्वी इस प्रकार जानले कि गृहस्थने साधुकी प्रतिज्ञासे स्थण्डिल बनाया या बनवाया है, उधार लिया है, उसपर छत डाली है, उसे सम किया और संवारा है, लीपा-पोता है तथा धूप से सुगन्धित किया है तो इस प्रकारके स्थण्डिलमें मल-मूत्रका त्याग न करे ॥६२८॥

·········प्रकार जाने कि गृहपति या उसके पुत्र कन्द मूल यावत् हरी आदि पदार्थोंको भीतरसे बाहर और बाहरसे भीतर ले जाते या रखते हैं, तो इस प्रकारके स्थण्डिलमें मल-मूत्रादि न परठे ॥६२९॥

······कि यह स्थण्डिल भूमि स्तम्भ पर है, पीठ-मंच-माले-अटारी-प्रासाद पर है अथवा इसी प्रकारके किसी अन्य विषम स्थान पर है तो इस प्रकार की स्थण्डिल भूमि पर मल-मूत्रका परित्याग न करे ॥६३०॥

·······सचित्त-गीली-सचित्त रजसे युक्त पृथ्वी पर, जहाँ पर सचित्त मिट्टी मसली गई हो ऐसी पृथ्वी पर, सचित्त शिला पर, सचित्त शिलाखण्ड पर, घुन युक्त काष्ठ पर, द्वीन्द्रियादि जीव युक्त काष्ठ पर, यावत् मकड़ीके जाले आदिसे युक्त भूमि पर मल-मूत्रादि न परठे ॥६३१॥

संयमशील साधु-साध्वी जिस स्थण्डिलके सम्बन्धमें यह जाने कि यहां पर गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रों नें कन्द मूल यावत् बीज आदि रक्खे हुए हैं, या रख रहे हैं या रक्खेंगे। अथवा उसप्रकारके अन्य किसी स्थंडिलमें मल-मूत्रादिका त्याग न करे ॥६३२॥

········किसी ने शाली, व्रीहि, मूंग, उड़द, कुलत्थ, यव और ज्वार आदि बोए हुए हैं, बो रहे हैं, अथवा बीजेंगे ···उस प्रकार··· त्याग न करे ॥६३३॥

वह साधु या साध्वी स्थंडिल के सम्बन्ध में जाने कि जिन स्थानों पर कचरों के ढेर हों, भूमि फटी हुई हो, भूमि पर रेखाएँ पड़ी हुई हों, कीचड़ हो, स्तम्भ और कीलकादि गाड़े हुए हों या इक्षु आदिके डंडे पड़े हों, बड़े एवं गहरे खड्डे हों, गुफाएं हों, किले की दीवार आदि हो, सम-विषम स्थान हों तो ऐसे स्थानों पर भी साधु मल-मूत्र का त्याग न करे ॥६३४॥

………पर चूल्हे हों, तथा भैंस, बैल, घोड़ा, कुक्कुट, बन्दर, हाथी, लावक (पक्षी), चिड़िया, तित्तर, कबूतर और कपिजल (पक्षी विशेष) आदिके रहने के स्थान हों या इनके लिए जहां पर कुछ किया जाता हो ऐसे…न करे ॥६३५॥

……कि फांसी देनेके स्थान, गीध पक्षी के सामने पड़कर मरने के स्थान, वृक्ष पर से गिर कर मरनेके स्थान, पर्वत से गिरकर मरनेके स्थान, विषभक्षण करनेके स्थान, अग्निमें जलकर मरनेके स्थान, तथा इस प्रकार अन्य स्थानों……॥६३६॥

……कि जहां पर बाग-उद्यान, वन, वनखंड, देवकुल, सभा, और पानी पिलाने के स्थान आदि हों तो ऐसे………॥६३७॥

… जानें, कोट की अटारी, राजमार्ग, द्वार, नगर का बड़ा द्वार इन स्थानों पर……॥६३८॥

………नगरमें जहां तीन मार्ग मिलते हों और बहुतसे मार्ग मिलते हों और जो स्थान चतुर्मुख हों ऐसे……॥६३९॥

………जहां काष्ठ जलाकर कोयले बनाए जाते हों, क्षार बनाई जाती हो, मृतक जलाए जाते हों एवं मृतक स्तूप हों ऐसे……॥६४०॥

………नदीके तट पर, कर्दम स्थानों पर, पानीके प्रवाहके स्थानोंमें तथा खेत और उद्यानको जल देने वाली नालियोंमें तथा ऐसे अन्य स्थानों…॥६४१॥

……मिट्टीकी नई खानोंमें, नई गोचरभूमिमें, सामान्य गौओंके चरनेके स्थानों और खानों में मल… ॥६४२॥

……डाल प्रधान शाकके खेतोंमें, पत्रप्रधान शाक के खेतों में, और मूली गाजर आदिके खेतोंमें, हस्तंकर (कपित्थ-वनस्पति विशेष) के क्षेत्र में तथा ऐसे …॥६४३॥

……बीचक नामक वनस्पतिके वनोंमें, सण के०, धातकी वृक्ष०, केतकी० आम्र०, अशोक०, नाग०, पुन्नाग०, चुल्लक०, और इसी प्रकारके अन्य पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरी वनस्पतिसे युक्त वनमें मल मूत्र को न त्यागे ॥६४४॥

संयमशील साधु-साध्वी स्वपात्र अथवा परपात्रको लेकर बगीचे या उपाश्रयके एकान्त स्थानमें जाए और जहां पर न कोई देखता हो और न कोई आता जाता हो तथा जहां पर द्वीन्द्रियादि जीव जन्तु एवं मकड़ी आदिके जाले भी न हों, ऐसी अचित्त भूमि पर बैठकर साधु उच्चार प्रस्रवणका परिष्ठापन करे, उसके पश्चात् वह उस पात्रको लेकर एकान्त स्थानमें जाए जहां पर न कोई आता जाता हो और न कोई देखता हो, जहां पर किसी जीवकी हिंसा न होती

हो यावत् जल आदि न हो, उद्यान-बाग की अचित्त भूमि में अथवा अग्निसे दग्ध हुए स्थंडिलमें, इसी प्रकार के अन्य अचित्त स्थंडिलमें–जहां पर किसी भी जीव की विराधना न होती हो, साधु मलमूत्रका परित्याग करे ।।६४५।।

यह साधु और······· यत्न करे। इस प्रकार कहता हूं ।।६४६।।

।। दसवां उच्चार-प्रस्रवणाध्ययन समाप्त ।।

।। तीसरा सप्तक समाप्त ।।

एकादश अध्ययन—शब्द सप्तक

संयमशील साधु-साध्वी मृदंगके शब्द, नन्दी० और झल्लरी (छैणे) के शब्द, तथा इसीप्रकारके अन्य वितत शब्दोंको सुननेके लिये किसी भी स्थान पर जानेका मनमें संकल्प न करे ।।६४७।।

वह साधु या साध्वी कई एक शब्दोंको सुनता है, जैसे कि :—वीणाके शब्द, विपंची०, बद्धीसक०, तूनक (वाद्य विशेष) और ढोलके शब्द, तुम्ब वीणा के शब्द, ढुंकणके शब्द, तथा इसी······ ।।६४८।।

······ताल शब्द, कंसताल शब्द, कांसी (वाद्य विशेष) के शब्द, कांख एवं हाथमें रखकर बजाए जाने वाले वाद्ययंत्रके शब्द, वंशमयी कदम्बिका (वा० वि०) के शब्द, तथा····विविध भांतिके शब्दों······ ।।६४९।।

······शंख शब्द, वेणु शब्द, वांसके शब्द, खरमुखी (वा० वि०) के शब्द, बांसकी नलीके शब्द, तथा····शुशिर····· ।।६५०।।

······खेतके क्यारोंमें, एवं खाई यावत् सरोवर, समुद्र और सरोवरकी पंक्तियोंमें होने वाले शब्द तथा····।।६५१।।

······नदीके पानीसे आवृत्त वन, (जल बहुल प्रदेश) वृक्षोंके सघन प्रदेश, वनस्पति समूह, वन-विषम वन, पर्वत और विषम पर्वतमें होनें वाले शब्द, तथा······ ।।६५२।।

·····ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, आश्रम, पत्तन और सन्निवेश आदि स्थानों में होने वाले शब्द तथा······ ।।६५३।।

···आराम, उद्यान, वन, वन-खंड, देवकुल, सभा और प्रपा (जल पिलाने का स्थान) आदि स्थानोंमें होने वाले शब्दोंको, तथा······ ।।६५४।।

·····अट्टारी, प्राकार, उसके ऊपरकी फिरनी, नगरके मध्यका आठ हाथ प्रमाण राजमार्ग, द्वार तथा नगरमें प्रवेश करनेका बड़ा द्वार आदि स्थानों ······ ।।६५५।।

·····नगरके त्रिपथ, चतुष्पथ, बहुपथ, और चतुर्मुख मार्ग इत्यादि स्थानों ······ ।।६५६।।

……भैंसशाला, वृषभशाला, घुड़साल, हस्तिशाला यावत् कपिंजल पक्षी के ठहरनेके स्थान आदि पर होने वाले शब्द, तथा……॥६५७॥

…… भैंसोंके युद्धक्षेत्रमें यावत् कपिंजल पक्षियों० में होने वाले शब्द तथा……॥६५८॥

……वर-वधूके मिलनेका स्थान (विवाह-वेदिका), घोड़ोंके यूथका स्थान, हाथीके यूथके स्थानमें होने वाले शब्द, तथा……॥६५९॥

……कथा करनेके स्थानों, माप करने या घुड़दौड़ आदिके स्थानों पर, महोत्सवके स्थानों, जहां पर बहुत परिमाणमें नृत्य, गीत, वादित्र, तंत्री, वीणा, तल (कांसीका वाद्य), ताल (वा० वि०), ढोल आदिके उत्पन्न होने वाले शब्दों को, तथा……॥६६०॥

……कलहके स्थान, अपने राज्यके विरोधी स्थान, पर राज्य०, दो राज्यों के परस्पर विरोधी स्थान, वैरके स्थान और जहां पर राजाके विरुद्ध वार्तालाप होता हो, इत्यादि स्थानोंमें होने वाले……॥६६१॥

……यदि किसी वस्त्राभूषणोंसे शृंगारित और परिवारसे घिरी हुई छोटी बालिकाको अश्वादि पर बिठा कर ले जाया जा रहा हो तो उसे देखकर तथा किसी एक अपराधी पुरुषको वधकेलिये वध्यभूमिमें ले जाते हुये देखकर साधु उन स्थानोंमें होने वाले शब्दों को, तथा……॥६६२॥

वह साधु-साध्वी नानाप्रकारके जो महा आस्रवके स्थान हैं इसप्रकार जाने —जहां पर बहुतसे शकट, बहुतसे रथ, बहुतसे म्लेच्छ, बहुतसे प्रान्तीय लोग एकत्रित हुए हों तो वहां पर उनके शब्दोंको……॥६६३॥

………जो महोत्सवोंके……—जिन स्थानोंमें स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक, और युवा आभरणोंसे विभूषित होकर गीत गाते हों, बाजे बजाते हों, नाचते और हंसते हों, आपसमें खेलते और रतिक्रीड़ा करते हों, तथा विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थोंको खाते हों, परस्पर बांटते हों, गिराते हों, तथा अपनी प्रसिद्धि करते हों, तो ऐसे महोत्सवोंके स्थानों पर होने वाले शब्दों को तथा……॥६६४॥

वह साधु-साध्वी स्वजातिके शब्दों और पर जातिके शब्दोंमें, श्रुत, अश्रुत, दृष्ट या अदृष्ट शब्दों और प्रिय शब्दोंमें आसक्त न बने। उनकी आकांक्षा न करे, और उनमें मूर्छित भी न हो, न उनमें राग-द्वेष करे ॥६६५॥

यही साधु और साध्वी……कहता हूं ॥६६६॥

॥ ग्याहरवां शब्द-सप्तकाध्ययन समाप्त ॥

॥ चौथा शब्द-सप्तक समाप्त ॥

द्वादश अध्ययन—रूपसप्तैकका

वह साधु-साध्वी कभी कई तरहके रूपोंको देखता है, जैसे कि—गूंथे हुए पुष्पोंसे निष्पन्न स्वस्तिकादि, वस्त्र से वेष्टित अथवा निष्पन्न पुत्तलिकादि, अनेक पदार्थोंसे निर्मित पुरुषाकृति, नाना प्रकारके एकत्रित वर्णोंसे निर्मित चोलकादि, काष्ठ-निर्मित पदार्थ, ताड़पत्रादिसे निष्पन्न पुस्तकादि वस्तु, भीत आदि पर चित्रित चित्र, मणि-निर्मित स्वस्तिकादि, दन्त-निष्पन्न चूड़िएँ आदि, पत्र छेदन क्रियासे उत्पन्न तथा अन्य विविध प्रकारके वेष्टनोंसे निष्पन्न हुए इसी तरह के अन्य विविध रूपों वाले पदार्थोंके रूपोंको आंखोंसे देखनेकी इच्छासे साधु उस ओर जानेका मनमें विचार न करे ।।६६७।।

इस प्रकार जैसे शब्द सम्बन्धी प्रतिज्ञा का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार वाध्ययन्त्रों को छोड़कर रूपप्रतिज्ञाके विषयमें भी जानना चाहिए। ···· कहता हूं।।६६८।।

।। बारहवाँ रूप-सप्तैककाध्ययन समाप्त ।।

।। पांचवाँ रूप-सप्तैकक समाप्त ।।

—०—

त्रयोदशम अध्ययन—परक्रिया

यदि कोई गृहस्थ मुनिके शरीरपर कर्मबन्धन रूप क्रिया करे तो मुनि उसको मनसे न चाहे और न वचनसे तथा काया से उसे न करावे ।।६६६।।

कदाचित् कोई गृहस्थ उस मुनिके चरणोंको वस्त्रादिसे थोड़ासा झाड़े अथवा अच्छी तरहसे पूंछकर साफ करे, संमर्दन करे, सर्व प्रकारसे मर्दन करे, स्पर्शित करे, अथवा रंगे, तेल अथवा घी से मसले या विशेष रूप से मर्दन करे, लोध्र, कर्क (नामक द्रव्य विशेष), चूर्ण, या वर्णसे उद्वर्तन उबटन करे अथवा शरीरको संसृष्ट करे, निर्मल शीतल अथवा उष्ण जल से छींटे दे या धोए, या इसी प्रकार विविध प्रकारके विलेपनोंसे आलेपन और विलेपन करे। धूप विशेष से धूपित और प्रधूपित करे। पैरोंसे खानु या कंटक आदिको निकाले और शल्य को शुद्ध करे तथा पैरोंसे पीप और रुधिरको निकालकर शुद्ध करे तो उस क्रिया को मनसे न चाहे······।।६७०।।

······शरीर को वस्त्रादि······लोध्रादिसे संमर्दन करे······प्रधूपित करे तो उस क्रिया को······।।६७१।।

·········शरीरमें उत्पन्न हुए व्रण (फोड़े)को वस्त्रादि·········प्रधूपित करे, किसी शस्त्रसे थोड़ासा छेदन करे या विशेष रूपसे छेदन करे। अथवा छेदन करके व्रणसे पीप······।।६७२।।

····· गंड, अर्श, पुलक और भगंदर आदि व्रणों को वस्त्रादि······।।६७३।।

·······साधुके शरीरसे स्वेद और मलयुक्त प्रस्वेदको दूर करे अथवा विशुद्ध करे·······॥६७४॥

····· आंख कान, दांत, और नखोंके मलको दूर करे·······॥६७५॥

····· शिरके लम्बे केशों, दीर्घ रोमों-भौंहों-कांखकेरोमों-गुह्य रोमोंको कतरे अथवा संवारे······॥६७६॥

······सिरमें पड़ी हुई लीखों और जुंओं को निकाले······॥६७७॥

·······गोदमें या पलंग पर बिठाकर या लिटाकर उसके चरणोंको वस्त्रादि ····। इस प्रकार पूर्वोक्त पाठ जो कि पैरोंके विषयमें कहा है वह सब यहाँ पर भी कहना चाहिए। ······लिटाकर हार (१८ लड़ीका), अर्द्धहार (६ लड़ीका), छाती पर पहनें जाने वाले आभूषणों, गलेमें डालनेके आभूषणों, एवं मुकुट, माला और सुवर्ण-सूत्रको बांधे या पहनाए········ ॥६७८॥

·········आराम और उद्यानमें ले जाकर अथवा प्रवेश कराकर उस मुनि के चरणों को·········॥६७६॥

इसी प्रकार परस्पर साधुओंकी क्रियाके विषयमें भी जान लेना चाहिए ॥६८०॥

यदि कोई सद्गृहस्थ शुद्ध अथवा अशुद्ध मंत्रबलसे साधुकी चिकित्सा करनी चाहे, अथवा किसी रोगी साधुकी सचित कन्द मूल, छाल और हरी वनस्पतिको खोद कर, निकालकर या निकलवाकर चिकित्सा करनी चाहे तो मुनि·········॥६८१॥

प्राणीभूत जीव और सत्व अपने किए हुए अशुभकर्मके अनुसार कटुक वेदना का अनुभव करते हैं। [इस प्रकार विचारकर समभावसे वेदना सहन करे]॥६८२॥

यही·········कहता हूं ॥६८३॥

॥ तेरहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

॥ छठा परक्रिया-सप्तैकक समाप्त ॥

—०—

चतुर्दश अध्ययन—अन्योन्यक्रिया

वह साधु-साध्वी परस्पर अपनी आत्माके विषयमें की हुई क्रिया जोकि कर्मबन्धनका कारण··· को मन से······करावे ॥६८४॥······परस्पर चरणों को ······॥६८५॥ शेष वर्णन तेरहवें अध्ययनके समान जानना चाहिए ॥६८६॥ यही············॥६८७॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ सातवां अन्योन्यक्रियासप्तक समाप्त ॥

॥ दूसरी चूला समाप्त ॥

तीसरी चूला

पन्द्रहवाँ अध्ययन—भावना

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान महावीरके पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हुए। जैसे कि—भगवान उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें देवलोक से च्यवकर गर्भमें उत्पन्न हुये, उ० फा० न० में ही गर्भसे गर्भान्तरमें संहरण किए गए। उ०फा०न० में ही भगवानने जन्म लिया।……ही भगवान मुंडित होकर सागारसे अनगार-साधु बने और उ०न० में ही भगवानने अनन्त, प्रधान, निर्व्याघात, आवरण रहित, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शनको प्राप्त किया, और स्वातिनक्षत्रमें भगवान् मोक्ष पधारे ॥६८८॥

श्रमण भगवान महावीर इस अवसर्पिणी कालके सुषम-सुषम नामक आरक, सुषम आरक, सुषम-दुषम आरक के व्यतीत होने पर और दुषम—सुषम आरक के बहु व्यतिक्रान्त होने पर, केवल ७५ वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहने पर, ग्रीष्म ऋतुके चौथे मास, आठवें पक्ष, आषाढ़ शुक्ला षष्ठीकी रात्रिको, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होने पर, महाविजय सिद्धार्थ, पुष्पोत्तर-वरपुण्डरीक, दिक्स्वस्तिक, वर्द्धमान नामके महाविमानसे बीस सागरोपम की आयु को पूरी करके, देवायु देवस्थिति और देव-भव को समाप्त करके, इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके दक्षिणार्द्ध भारतके दक्षिण-ब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेशमें कुडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालन्धरगोत्रीय देवानन्दा नामकी ब्राह्मणीकी कुक्षिमें सिंहकी तरह गर्भरूपमें अवतरित (उत्पन्न) हुए।

श्रमण भगवान महावीर तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधिज्ञान) से युक्त थे, वे यह जानते थे कि मैं स्वर्गसे च्यवकर मनुष्य लोकमें जाऊंगा, मैं वहांसे च्यवकर अब गर्भमें आया हूं। परन्तु वे च्यवन समयको नहीं जान सके। क्योंकि वह समय अत्यन्त सूक्ष्म होता है। देवानन्दा ब्राह्मणीके गर्भमें आनेके बाद श्रमण भगवान् महावीरके हित और अनुकंपा करनेवाले देवने 'यह जीत आचार है' यह कहकर वर्षाकाल के तीसरे मास, पांचवें पक्ष—अर्थात् आश्विन कृष्णा त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होने पर, ८२ रात्रिदिनके व्यतीत होने और ८३ वें दिनकी रातको दक्षिण ब्राह्मणकुण्डपुर संनिवेशसे उत्तर-क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश में ज्ञातवंशीय क्षत्रियोंमें प्रसिद्ध काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वासिष्ठ गोत्रीया पत्नी त्रिशला-महाराणीके अशुभ पुद्गलोंको दूर करके उनके स्थानमें शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेपण करके उसकी कुक्षिमें गर्भको रक्खा, और जो त्रिशला क्षत्रियाणीकी कुक्षिमें गर्भ था उसको दक्षिण ब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेश में…… देवानन्दा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें स्थापित किया ॥६८९॥

हे आयुष्मन् श्रमणो ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी गर्भावासमें तीन ज्ञान, मतिश्रुत अवधि-से युक्त थे। मैं इस स्थानसे संहरण किया जाऊंगा, तथा मेरा संहरण हो रहा है और मैं संहृत किया जा चुका हूं। यह सब जानते थे ॥९९०॥

उस काल और उस समयमें त्रिशला क्षत्राणीने अन्य किसी समय नव मास साढ़े सात अहोरात्रके व्यतीत होनें पर ग्रीष्मऋतुके प्रथम मासके द्वितीयपक्षमें अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमाका योग होने पर श्रमण भगवान महावीरको सुखपूर्वक जन्म दिया ॥९९१॥

जिस रात्रिमें त्रिशला-क्षत्रियाणीनें सुखपूर्वक श्रमण भगवान् महावीरको जन्म दिया, उस रात्रिमें भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों और देवियोंके स्वर्गसे आने और मेरुपर्वतपर जानें से एक महान् तथा प्रधान देवोद्योत और देवोंके एकत्र होनेंसे महान् कोलाहल करनेसे वह रात्रि देवोंके अट्टहास एवं उद्योतसे युक्त हो गई ॥९९२॥

जिस रात्रिमें त्रिशला क्षत्रियाणीनें श्रमण भगवान् महावीरको जन्म दिया, उसी रात्रिमें वहुतसे देव और देवियोंनें अमृत, सुगन्धित पदार्थ, चूर्ण, पुष्प, चांदी, स्वर्ण और रत्नोंकी वहुत भारी वर्षा की ॥९९३॥

जिस ········में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियोंनें श्रमण भगवान महावीरका शुचिकर्म और तीर्थंकराभिषेक किया ॥९९४॥

जिस रातको श्रमण भगवान महावीर त्रिशला क्षत्रियाणीकी कुक्षिमें आए, उसी समयसे उस ज्ञातवंशीय-क्षत्रियकुलमें हिरण्य—चांदी, स्वर्ण, धन, धान्य, माणिक, मोती, शंखशिला और प्रवालादि की अभिवृद्धि होनें लगी। श्रमणभगवान् महावीरके जन्मके ग्यारहवें दिन शुद्ध हो जानें पर उनके माता-पितानें विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थ वनवाए, और अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धि वर्गको निमंत्रित किया, और वहुतसे शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, भिखारी तथा भस्म आदिको शरीरमें लगाकर भिक्षा मांगनेवाले अन्य भिक्षुगणों को भोजन कराया, विगोपन, विशेपरूपसे आस्वादन कराया, याचकों में बांटा, शाक्यादिको देकर यावत् वांटकर अपनें मित्र, ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धिवर्ग को प्रेमपूर्वक भोजन कराया, तत्पश्चात् उनके सामने कुमारके नामकरणका प्रस्ताव रखते हुए सिद्धार्थने वताया कि यह वालक जिस दिनसे त्रिशला देवीकी कुक्षिमें गर्भरूपसे आया है तवसे हमारे कुलमें हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, माणिक, मोती, शंख-शिला और प्रवालादि पदार्थोंकी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। अतः इस कुमारका गुणसम्पन्न 'वर्द्धमान' नाम रखते हैं ॥९९५॥

जन्मके वाद भगवान् महावीरका पाँच धायमाताओंके द्वारा लालन-पालन होने लगा। जैसे कि:—दूध पिलाने वाली, स्नान कराने वाली, वस्त्रालंकार पहनाने वाली, क्रीड़ा कराने वाली और गोदमें खिलाने वाली धायमाता। एक गोदसे दूसरी गोदमें संहृत होते हुए मणिमंडित रमणीय आंगन प्रदेशमें (खेलते हुए) पर्वत गुफामें स्थित चम्पक वेलकी भांति विघ्नवाधाओंसे रहित होकर वे यथाक्रम वढ़ने लगे ॥९९६॥

उसके पश्चात् ज्ञान-विज्ञान संपन्न भगवान महावीर वाल भावको त्याग कर युवावस्थामें प्रविष्ट हुए और मनुष्य सम्बन्धी उदार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्धादिसे युक्त पांच प्रकारके कामभोगोंका उदासीन भावसे उपभोग करते हुए विचरने लगे ॥९९७॥

काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीरके इस प्रकारसे तीन नाम कहे गए हैं—माता-पिता का दिया हुआ 'वर्द्धमान', स्वाभाविक समभाव होनेसे श्रमण और अत्यन्त भयोत्पादक परीषहोंके समय अचल रहने एवं उन्हें समभावपूर्वक सहन करनेसे देवोंने उनका "श्रमण भगवान महावीर" ऐसा नाम रक्खा ॥९९८॥

श्रमण भगवान् महावीरके काश्यपगोत्रीय पिताके सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी ये तीन नाम थे ॥९९९॥

श्र० भ० महावीरकी वसिष्ठ गोत्रवाली माताके त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी ये तीन नाम थे ॥१०००॥

श्र० भ० म० के पितृव्य—चाचाका नाम सुपार्श्व था,"""काश्यपगोत्रीय ज्येष्ठ भ्राताका नाम नन्दीवर्द्धन था।""""ज्येष्ठ भगिनीका नाम सुदर्शना था। """"की भार्या जो कि कौडिन्य गोत्र वाली थी—का नाम यशोदा था। """की पुत्रीके अनोजा और प्रियदर्शना ये दो नाम कहे जाते हैं।"" ""की दौहित्री जिसका कौशिक गोत्र था—के शेषवती और यशोवती यह दो नाम थे ॥१००१॥

श्रमण भ० म० के माता-पिता भगवान पार्श्वनाथके साधुओंके श्रावक थे। उन्होंने वहुत वर्षो तक श्रावक धर्मका पालन करके, छ जीवनिकाय की रक्षाके निमित्त आलोचना करके, आत्मनिन्दा और आत्मगर्हा करके, पापोंसे पीछे हटकर, मूल और उत्तरगुणोंकी शुद्धिकेलिए प्रायश्चित ग्रहण करके, कुशाके आसन पर बैठ कर, भक्त-प्रत्याख्यान नामक अनशनको स्वीकार किया। और अन्तिम मरणान्तिक शारीरिक संलेखना द्वारा शरीरको सुखाकर अपनी आयु पूरी करके उस औदारिकशरीरको छोड़कर अच्युत नामक १२ वें देवलोकमें देवपर्यायमें उत्पन्न हुए। तदनन्तर वहाँ से देवसम्वन्धि-आयु, भव और स्थितिको क्षय करके वहाँ से

च्यवकर महाविदेहक्षेत्र में चरम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध-बुद्ध मुक्त एवं परिनिवृत होंगे, और सर्व प्रकारके दुःखोंका अन्त करेंगे ॥१००२॥

उस काल और उस समयमें श्रमण-भगवान-महावीर प्रसिद्ध, ज्ञातपुत्र, ज्ञात कुलमें चन्द्रमाके समान, विदेह-विशिष्ट शरीर वाले अर्थात् वज्रऋषभनाराच संहनन तथा समचतुरस्र संस्थानके धारक, त्रिशलादेवीके पुत्र, त्रिशला माताके अंगजात या जितकाम, घरमें सुकुमाल अवस्थामें रहने वाले, तीस वर्ष तक घरमें निवास करके माता-पिताके देवलोक हो जाने पर अपनी ली हुई प्रतिज्ञाके पूर्ण हो जानेसे हिरण्य, स्वर्ण, बल (सेना) और वाहन, धन-धान्य, रत्न आदि सारभूत लक्ष्मीको त्यागकर, धन को प्रकटकर, याचकोंको यथेष्ट दान देकर तथा अपने सम्बन्धियोंमें यथायोग्य विभाग करके, एक वर्ष पर्यन्त दान देकर, हेमन्तऋतुके प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्णा दशमीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होने पर भगवान्ने दीक्षा ग्रहणकरनेका अभिप्राय प्रकट किया ॥१००३॥

श्री भगवान् दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले सांवत्सरिक-वर्षीदान देना आरम्भ कर देते हैं, और वे प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक पहर दिन चढ़ने तक दान देते हैं ॥१००४॥

एक करोड़ आठ लाख मुद्राका दान सूर्योदयसे लेकर एक पहर पर्यन्त दिया जाता है ॥१००५॥

भगवान् ने एक वर्षमें ३८८ करोड़ ७० लाख स्वर्णमुद्राका दान दिया ॥१००६॥

कुण्डलके धारक वैश्रमणदेव और महाऋद्धि वाले लोकान्तिक देव १५ कर्म-भूमिमें होने वाले तीर्थंकर भगवान्को प्रतिबोधित करते हैं ॥१००७॥

ब्रह्मकल्प में कृष्णराजि के मध्यमें आठ प्रकारके लोकान्तिक विमान असंख्यात विस्तारवाले जानने चाहिएँ ॥१००८॥

यह सब देव जिनेश्वर भगवान् महावीरको बोध देने के लिए सविनय निवेदन करते हैं कि हे अर्हन् देव ! आप जगत्वासी जीवोंके हितकारी तीर्थ-धर्म रूप तीर्थ की स्थापना करो ॥१००९॥

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके दीक्षा लेनेके अभिप्रायको जानकर भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियें अपने अपने रूप, वेष और चिन्होंसे युक्त होकर तथा अपनी २ सर्वप्रकारकी ऋद्धि, द्युति और बलसमुदायसे युक्त होकर अपने २ विमानोंपर चढ़ते हैं और उनमें चढ़ कर बादर पुद्गलोंको छोड़कर सूक्ष्म पुद्गलोंको ग्रहण करके ऊँचे होकर उत्कृष्ट, शीघ्र, चपल, त्वरित और दिव्य प्रधान देवगतिसे नीचे उतरते हुए तिर्यक्

लोकमें स्थित असंख्यात द्वीप समुद्रोंको उल्लंघन करते हुए जहां पर जम्बूद्वीप— नामक द्वीप है, वहाँ पर आते हैं, आकर उत्तर-क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेशमें आकर उसके ईशानकोणमें जो स्थान है वहाँ पर वड़ी शीघ्रतासे उतरते हैं ॥१०१०॥

तत्पश्चात् शक्र देवोंका इन्द्र देवराज शनैः २ अपने विमानको स्थापित करता है, फिर धीरे २ विमान से नीचे उतरता है और एकान्तमें जाकर वैक्रिय समुद्धात करता है। उससे नानाप्रकारकी मणियों तथा कनक, रत्नादिसे चित्रित दीवार वाले, शुभ, मनोहर, कान्त रूप वाले एक वहुत वड़े देवछंदकका निर्माण करता है।.....उस देवछन्दकके मध्यभागमें नानाप्रकार......कान्त रूप वाले एक विस्तृत पादपीठ युक्त सिंहासनका निर्माण किया। उसके पश्चात् जहां पर श्रमण भगवान् महावीर थे वहां वह आया और आकर भगवान्को तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, और श्रमण भगवान् महावीरको लेकर देवछन्दकके पास आया और धीरे २ भगवान्को उस देवछन्दकमें स्थित सिंहासन पर वैठाया और उनका मुख पूर्व दिशाकी ओर रक्खा। शतपाक और सहस्रपाक तेलोंसे उनके शरीरकी मालिश की और सुगन्धित द्रव्यसे शरीरको उद्वर्तन-उवटन करके शुद्ध निर्मल जलसे भगवान्को स्नान कराया, उसके बाद एक लाखकी कीमतके विशिष्ट गोशीर्ष चन्दनादिका उनके शरीर पर अनुलेपन किया, उसके बाद भगवान्को नासिकाकी वायुसे हिलने वाले, तथा विशिष्ट नगरोंमें निर्मित, प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा प्रशंसित, अश्वकी लालाके समान श्वेत और मनोहर और कुशल कारीगरोंके द्वारा स्वर्णतारसे विभूषित, हंसके समान श्वेत, वस्त्र युगलको पहनाया। फिर हार, अर्द्धहार, वक्षस्थलमें सुन्दर वेष तथा एकावली हार, लटकती हुई मालाएं, कटिसूत्र, मुकुट और रत्नोंकी मालाएं पहनाईं। तदनन्तर ग्रन्थिम, वेष्टिम, पुरिम और संघातिम इन चार प्रकारकी फूलमालाओं से कल्पवृक्षकी भांति भगवान्को अलंकृत किया। तत्पश्चात् इन्द्रने पुनः वैक्रिय-समुद्घात किया और उससे चन्द्रप्रभा नामकी विराट् सहस्रवाहिनी शिविका (पालकी) का निर्माण किया। वह शिविका वृकविशेष-हिरण-वृषभ-अश्व-मगर-मच्छ-पक्षी-वन्दर-हाथी-रुरु (मृग विशेष)-अष्टपाद (जीव विशेष)-चमरी गाय-शार्दू ल और सिंह आदि जीवों तथा वनलताओं एवं अनेक विद्याधरोंके युगल यंत्र योग आदिसे चित्रित थी। सूर्य ज्योतिके समान तेज वाली, भली प्रकारसे निरू-पण किया है-जिसका, प्रदीप्त सहस्ररूपोंसे युक्त, जो थोड़ा और अत्यन्त देदीप्य-मान, चक्षुओं द्वारा जिसका तेज देखा नहीं जा सकता, इसप्रकारकी वह शिविका तथा मोती और उनके जालोंसे युक्त, सुवर्णमय पांखड़ी युक्त चारों ओर लटकती हुई मोतियोंकी माला जिसमें दीख रही हैं और हार, अर्द्धहार आदि भूषणोंसे विभूपित, अधिक देखने योग्य, तथा पद्मलता, अशोकलता, कुन्दलता, एवं नाना

प्रकारकी अन्य वनलताओंसे चित्रित थी। शुभ मनोहर कान्तरूप तथा पांच प्रकार के वर्णो वाली मणियों, घंटियों और ध्वजा पताकाओंसे उसका शिखर भाग सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार वह शिविका प्रासादीय, दर्शनीय और परम सुन्दर थी ॥१०११॥

जरा-मरणसे विप्रमुक्त जिनवरके लिये शिविका लाई गई, जो कि जल और स्थल पर पैदा होनें वाले श्रेष्ठ फूलों और वैक्रिय लब्धिसे निर्मित पुष्प-मालाओंसे अलंकृत थी ॥१॥

उस शिविकाके मध्यमें दिव्य तथा प्रधान रत्नोंसे अलंकृत यथायोग्य पाद-पीठिकादिसे युक्त, जिनेन्द्रदेवके लिए वहुमूल्य सिंहासनका निर्माण किया गया था ॥२॥

भगवान् महावीर एक लक्ष मूल्य वाले क्षौम-युगल (कर्पास-कपास) के वस्त्रको धारण किये हुए थे और श्रेष्ठ आभूषणोंकी मालाओं तथा मुकुटसे अलंकृत होनेके कारण उनका शरीर देदीप्यमान हो रहा था ॥३॥

उस समय प्रशस्त अध्यवसाय एवं लेश्याओंसे युक्त भगवान् षष्ठ भक्त-वेलेकी तपश्चर्या ग्रहण करके उस पालकीमें वैठे ॥४॥

जव भगवान् शिविकामें रक्खे हुए सिंहासन पर विराजमान हो गये तव शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र शिविकाके दोनों तरफ खड़े होकर मणियोंसे जटित डंडे वाली चामरोंको भगवान्के ऊपर ढुलाने लगे ॥५॥

सवसे पहले मनुष्योंने (जिनके कि रोम कूप हर्ष वश विकसित हो रहे थे) उल्लासके साथ भगवान्की शिविका उठाई। उसके पश्चात् देव, सुर, असुर, गरुड़ और नागेन्द्र आदि देवोंने उसे उठाया ॥६॥

शिविकाको पूर्व दिशासे सुर-वैमानिक देव उठाते हैं, दक्षिणसे असुरकुमार, पश्चिमसे गरुड़कुमार, और उत्तर दिशासे नागकुमार उठाते हैं ॥७॥

उस समय देवोंके आगमनसे आकाशमंडल वैसा ही सुशोभित हो रहा था जैसे खिले हुए पुष्पोंसे युक्त उद्यान या शरद् ऋतु में कमलोंसे भरा हुआ पद्म-सरोवर शोभित होता है ॥८॥

उस·········था, जैसे सरसों, कचनार अथवा कनेर तथा चम्पकवन फूलों से सुहावना प्रतीत होता है ॥९॥

उस समय प्रधान पटह, भेरी, झांझ, शंख आदि श्रेष्ठ वादिन्त्रोंसे गुंजाय-मान आकाश एवं भूभाग वड़ा ही मनोहर एवं रमणीय प्रतीत हो रहा था ॥१०॥

उस समय देव वहां पर तत, वितत, घन और शुषिर चार प्रकार और अनेक तरहके वाजे वजा रहे थे तथा विभिन्न प्रकारके नृत्य कर रहे थे, एवं नाटक दिखा रहे थे ॥११॥१०१२॥

उस काल और उस समयमें जब हेमन्त ऋतुका प्रथम मास प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष मासका कृष्णपक्ष था, उसकी दशमी तिथिके सुव्रत दिवस, विजय मुहूर्तमें, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग आने पर, पूर्वगामिनी छाया और द्वितीय प्रहरके बीतनेपर निर्जल-बिना पानीके दो उपवासोंके साथ एक मात्र देवदूष्य वस्त्रको लेकर भगवान् चंद्रप्रभा नामकी सहस्रवाहिनी शिविकामें बैठे। उस में बैठकर वे देव मनुष्य तथा असुरकुमारोंकी परिषद्के साथ उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेशके मध्य २ में से होते हुए जहां ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था वहां पर आए। वहां आकर देव थोड़ीसी-हाथ प्रमाण ऊंची भूमि पर भगवान्की शिविका को ठहरा देते हैं। तब भगवान् उसमेंसे शनैः २ नीचे उतरते हैं और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं। उसके पश्चात् भगवान् अपने आभरणालंकारों को उतारते हैं। तब वैश्रमण देव भक्तिपूर्वक भगवान्के चरणोंमें बैठकर उनके आभरण और अलंकारोंको हंसके समान श्वेत वस्त्रमें ग्रहण करता है। तत्पश्चात् भगवान्ने दाहिने हाथसे दक्षिणकी ओरके केशोंका और वाम करसे बाईं ओरके केशोंका पांच मुष्टिक लोच किया, तब देवराज शक्रेन्द्र श्रमण भगवान् महावीरके चरणोंमें पड़कर घुटनोंको नीचे टेककर वज्रमय थालमें उन केशोंको ग्रहण करता है, और हे भगवन्! आपकी आज्ञा है, ऐसा कहकर उन केशोंको क्षीरसमुद्रमें प्रवाहित कर देता है। इसके पश्चात् भगवान् सिद्धोंको नमस्कार करके सर्वप्रकार के सावद्यकर्मका परित्याग करते हुए सामायिक चारित्र ग्रहण करते हैं। उस समय देव और मनुष्य दोनों भींत पर लिखे हुए चित्रकी भांति अवस्थित हो गए, अर्थात् चित्रवत् निश्चेष्ट हो गए ॥१०१३॥

जिस समय भगवान् चारित्र ग्रहण करने लगे, उस समय शक्रेन्द्रकी आज्ञा से देवोंके श्रेष्ठ शब्द तथा मनुष्योंके शब्द और वादिन्त्रोंके शब्द बन्द कर दिए गए ॥१॥

चारित्र ग्रहण करके भगवान् रात-दिन सब प्राण, भूत, जीवोंके हितमें संलग्न हुए। जिनकी रोमराजी पुलकित हो रही है ऐसे सभी देवोंने यह सुना कि भगवान्ने संयम स्वीकार कर लिया है ॥२॥१०१४॥

तत्पश्चात् क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही श्रमण भगवान् महावीरको मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिसके द्वारा वे अढ़ाई द्वीप, दो समुद्रोंमें स्थित संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय० व्यक्त मन वाले जीवोंके मनोगत भावोंको स्पष्ट जानने लगे ॥१०१५॥

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरने प्रव्रजित होनेके पश्चात् अपने मित्र ज्ञाति और स्वजन सम्बन्धी वर्गको विसर्जित किया वि० इसप्रकारका अभिग्रह धारण किया-कि मैं आजसे लेकर बारह वर्ष तक अपने शरीर पर ममत्व नहीं

रक्खूंगा, और देव, मनुष्य तथा तिर्यच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सब उपसर्गोंको समभावपूर्वक सहन करूंगा, सदा क्षमाभाव रक्खूंगा, खेदरहित होकर सहूंगा ।।१०१६।।

शरीरसे ममत्व त्यागके अभिग्रहसे युक्त श्रमण भगवान् महावीरने जिस दिन दीक्षा ग्रहणकी, उसी दिन शामको एक मुहूर्त (४८ मिनट) दिन रहते कुमार-ग्राम पहुंचे ।।१०१७।।

तदनन्तर शरीर ···· महावीर अनुपम वसतीके सेवनसे, अनुपम विहारसे, एवं अनुपम संयम, प्रयत्न, संवर, तप, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभता, समिति, गुप्ति, सन्तोष, कायोत्सर्गादि स्थान और अनुपम क्रियानुष्ठानसे तथा सच्चरितके फल रूप निर्वाण और मुक्तिमार्ग ज्ञान-दर्शन-चारित्रके सेवनसे युक्त होकर आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं ।।१०१८।।

इसप्रकार विचरते हुए श्रमण भगवान् महावीरको देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग प्राप्त हुये वे उन सब उपसर्गोंको भली-भांति सहन करते और उपसर्गदाताओंको क्षमा करते तथा सहिष्णुता और स्थिर भावोंसे उन पर विजय प्राप्त करते थे ।।१०१९।।

श्रमण भगवान् महावीरको इसप्रकारके विहारसे विचरते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए। तेरहवें वर्षके मध्यमें ग्रीष्म ऋतुके दूसरे मास और चौथे पक्षमें अर्थात् वैशाख-शुक्ला-दशमीके दिन, सुव्रत नामक दिवसमें, विजय मुहूर्तमें, उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग आने पर, दिनके पिछले पहर, वियत-पाश्चात्य पौरुषीमें, जृम्भकग्राम नगरके बाहर, ऋजुबालिका नदीके उत्तर तट पर, श्यामाक गृहपतिके क्षेत्रमें, वैयावृत्य नामक उद्यानके ईशान कोणमें, शाल वृक्षके न अति दूर न अति समीप, ऊंचे गोडे और नीचा शिरकरके ध्यानरूप कोष्ठमें प्रविष्ट हुए तथा उत्कटुक और गोदोहिक आसनसे सूर्यकी आतापना लेते हुए, निर्जल छट्ठ भक्त तपयुक्त शुक्लध्यान ध्याते हुए भगवान्को निर्दोष, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, व्याघात रहित, आवरण रहित, अनन्त, अनुत्तर सर्वप्रधान केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए ।।१०२०।।

वे भगवान् अर्हत्, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, देव मनुष्य और असुर-कुमार तथा लोक के सभी भाव पर्यायोंको जानते हैं, जैसे कि—जीवोंकी आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उत्पाद तथा उनके द्वारा खाए पीए गए पदार्थों एवं उनके द्वारा सेवित प्रकट एवं गुप्त सभी क्रियाओंको तथा अन्तर रहस्योंको एवं मान-सिक चिन्तनको प्रत्यक्षरूपसे जानते देखते हैं। वे सम्पूर्ण लोकमें स्थित सर्वजीवों के सर्वभावोंको तथा समस्त परमाणु-पुद्गलोंको जानते देखते हुए विचरते हैं ।।१०२१।।

जिस दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको केवलज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न हुआ उसी दिन भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवोंके आने-जाने से आकाश आकीर्ण हो रहा था और वहां का सारा आकाश प्रदेश जगमगा रहा था ॥१०२२॥

तदनन्तर उत्पन्न-प्रधानज्ञान और दर्शनके धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने केवलज्ञान द्वारा अपनी आत्मा तथा लोकको भली भांति देखकर पहले देवोंको और तत्पश्चात् मनुष्योंको धर्मका उपदेश दिया ॥१०२३॥

तत्पश्चात् केवलज्ञान और दर्शनके धारक श्रमण भगवान् महावीरने गौतमादि श्रमणोंको भावना सहित पांच महाव्रतों और पृथिवी आदि षट् जीव-निकाय स्वरूपका सामान्य प्रकारसे तथा विशेष प्रकारसे अर्द्धमागधी भाषामें प्रतिपादन किया ॥१०२४॥

हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रतमें प्राणातिपातसे सर्वथा निवृत होता हूं। मैं सूक्ष्म, वादर, त्रस-स्थावर समस्त जीवों का न तो स्वयं प्राणातिपात-हनन करूंगा, न दूसरोंसे कराऊंगा, और न उनका हनन करने वालोंकी अनुमोदना करूंगा। हे भगवन् ! मैं यावज्जीव अर्थात् जीवनपर्यन्त के लिए तीन करण और तीन योगसे—मन से वचन से और काया से इस पापसे प्रतिक्रमण करता—पीछे हटता हूं, आत्मसाक्षीसे इस पापकी निन्दा करता हूं और गुरु-साक्षीसे गर्हा करता हूं। तथा अपनी आत्माको हिंसाके पापसे पृथक् करता हूं ॥१०२५॥

प्रथम महाव्रतकी पाँच भावनाएँ होती हैं ॥१०२६॥

उनमें से पहली भावना यह है–निर्ग्रन्थ-ईर्यासमितिसे युक्त होता है, न कि उससे रहित। भगवान् कहते हैं कि ईर्यासमितिका अभाव कर्म आने का द्वार है। क्योंकि इससे रहित निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव और सत्वकी हिंसा करता है, उन्हें एक स्थानसे स्थानान्तरमें रखता है, परिताप देता है, भूमिसे संश्लिष्ट करता है, और जीवनसे रहित करता है। इसलिए निर्ग्रन्थको ईर्या-समिति युक्त होकर संयमका आराधन करना चाहिए, यह प्रथम भावना है ॥१०२७॥

दूसरी भावना—जो मनको पापोंसे हटाता है, वह निर्ग्रन्थ है। साधु ऐसे मन (विचारों) को धारण न करे—पापकारी, सावद्यकारी, क्रियायुक्त, आस्रव करने वाला, छेदन तथा भेदन करने वाला, कलहकारी, द्वेषकारी, परि-तापकारी, प्राणोंका अतिपात करने वाला और जीवोंका उपघातक है। जो अपने मनको हिंसासे हटाता है, जिसका मन पापसे रहित है वह निर्ग्रन्थ है, यह दूसरी भावना है ॥१०२८॥

तीसरी भावनाका स्वरूप—जो साधक निर्दोष वाणी–वचनको रखता है,

रक्खूंगा, और देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सब उपसर्गोंको समभावपूर्वक सहन करूंगा, सदा क्षमाभाव रक्खूंगा, खेदरहित होकर सहूंगा ॥१०१६॥

शरीरसे ममत्व त्यागके अभिग्रहसे युक्त श्रमण भगवान् महावीरने जिस दिन दीक्षा ग्रहणकी, उसी दिन ग्रामको एक मुहूर्त (४८ मिनट) दिन रहते कुमार-ग्राम पहुंचे ॥१०१७॥

तदनन्तर शरीर .... महावीर अनुपम वसतीके सेवनसे, अनुपम विहारसे, एवं अनुपम संयम, प्रयत्न, संवर, तप, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभता, समिति, गुप्ति, सन्तोष, कायोत्सर्गादि स्थान और अनुपम क्रियानुष्ठानसे तथा सच्चरितके फल रूप निर्वाण और मुक्तिमार्ग ज्ञान-दर्शन-चारित्रके सेवनसे युक्त होकर आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं ॥१०१८॥

इसप्रकार विचरते हुए श्रमण भगवान् महावीरको देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग प्राप्त हुये वे उन सब उपसर्गोंको भली-भांति सहन करते और उपसर्गदाताओंको क्षमा करते तथा सहिष्णुता और स्थिर भावोंसे उन पर विजय प्राप्त करते थे ॥१०१९॥

श्रमण भगवान् महावीरको इसप्रकारके विहारसे विचरते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए। तेरहवें वर्षके मध्यमें ग्रीष्म ऋतुके दूसरे मास और चौथे पक्षमें अर्थात् वैशाख-शुक्ला-दशमीके दिन, सुव्रत नामक दिवसमें, विजय मुहूर्तमें, उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग आने पर, दिनके पिछले पहर, वियत-पाश्चात्य पौरुषीमें, जृम्भकग्राम नगरके बाहर, ऋजुवालिका नदीके उत्तर तट पर, श्यामाक गृहपतिके क्षेत्रमें, वैयावृत्य नामक उद्यानके ईशान कोणमें, शाल वृक्षके न अति दूर न अति समीप, ऊंचे गोडे और नीचा शिरकरके ध्यानरूप कोष्ठमें प्रविष्ट हुए तथा उत्कटुक और गोदोहिक आसनसे सूर्यकी आतापना लेते हुए, निर्जल छट्ठ भक्त तपयुक्त शुक्लध्यान ध्याते हुए भगवान्को निर्दोष, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, व्याघात रहित, आवरण रहित, अनन्त, अनुत्तर सर्वप्रधान केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए ॥१०२०॥

वे भगवान् अर्हत्, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, देव मनुष्य और असुर-कुमार तथा लोक के सभी भाव पर्यायोंको जानते हैं, जैसे कि—जीवोंकी आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उत्पाद तथा उनके द्वारा खाए पीए गए पदार्थों एवं उनके द्वारा सेवित प्रकट एवं गुप्त सभी क्रियाओंको तथा अन्तर रहस्योंको एवं मान-सिक चिन्तनको प्रत्यक्षरूपसे जानते देखते हैं। वे सम्पूर्ण लोकमें स्थित सर्वजीवों के सर्वभावोंको तथा समस्त परमाणु-पुद्गलोंको जानते देखते हुए विचरते हैं ॥१०२१॥

वह निर्ग्रन्थ है। जो वचन पापकारी······उपघातक-विनाशक हो, साधु उस वचनका उच्चारण न करे। जो वाणी के दोषोंको जानकर उन्हें छोड़ता है, और पापरहित निर्दोष वचनका उच्चारण करता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं। यह तीसरी भावना है ॥१०२६॥

चतुर्थ भावना—जो भण्डोपकरण समितिसे युक्त है, अर्थात्—पात्रादि उपकरणोंको यतनापूर्वक ग्रहण करता, उठाता और रखता है, वह निर्ग्रन्थ है। अतः साधु आदान-भाण्डमात्र-निक्षेपणासमितिसे रहित न हो, क्योंकि केवली भगवान् कहते हैं कि जो इससे रहित होता है वह निर्ग्रन्थ······रहित करता है। अतः जो साधु इस समितिसे युक्त है, वह निर्ग्रन्थ है। अतः······न हो। यह चौथी भावना है ॥१०३०॥

अथ पांचवीं भावना—जो विवेकपूर्वक देखकर आहार-पानी करता है, वह निर्ग्रन्थ है, न कि विना देखे आहार करने वाला। केवली भगवान् कहते हैं, कि जो विना देखे आहार पानी करता है, वह निर्ग्रन्थ प्राणी······रहित करता है। इसलिए देखकर आहार पानी करने वाला ही निर्ग्रन्थ होता है। यह पांचवीं भावना है ॥१०३१॥

साधक द्वारा स्वीकृत प्राणातिपात (हिंसा) के त्याग रूप प्रथम महाव्रत को इस प्रकार कायासे स्पर्शित करके उसका पालन किया जाता है, उसे तीर पर पहुंचाया जाता है, उसका कीर्तन किया जाता है, उसे अवस्थित रक्खा जाता है, और उसका आज्ञाके अनुरूप आराधन किया जाता है ॥१०३२॥

हे भगवन् प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरमण रूप है ॥१०३३॥

इस द्वितीय महाव्रतमें साधक यह प्रतिज्ञा करता है, कि हे भगवन्! मैं आज से मृषावाद और सदोष वचनका सर्वथा परित्याग करता हूं। अतः साधु क्रोधसे, लोभ से, भय से और हास्यसे न स्वयं झूठ बोलता है, न अन्य व्यक्तिको असत्य बोलनेकी प्रेरणा देता है, और न मृषा भाषण करने वालोंका अनुमोदन करता है। इस तरह साधक तीन करण तीन योगसे, मृषावादका त्याग करके यह प्रतिज्ञा करता है, कि हे भगवन्! मैं इस पापसे प्रतिक्रमण······को मृषावादसे सर्वथा पृथक् करता हूं ॥१०३४॥

इस द्वितीय महाव्रतकी पाँच······हैं ॥१०३५॥

उन पांच भावनाओंमें प्रथम भावना यह है—जो विचारपूर्वक भाषण करता है वह निर्ग्रन्थ है, बिना विचारे भाषण करने वाला निर्ग्रन्थ नहीं है। केवली भगवान् कहते हैं, कि बिना विचारे बोलने वाले निर्ग्रन्थको मिथ्याभाषण का दोष लगता है, अतः विचारपूर्वक बोलने वाला साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है—न कि विना विचारे बोलने वाला। यह प्रथम भावना है ॥१०३६॥

दूसरी भावना यह है कि जो साधक क्रोध के कटु फलको जानकर उसका परित्याग करता है, वह निर्ग्रन्थ है। साधु क्रोधी न हो। केवली भगवान् का कहना है, कि क्रोध एवं आवेशके वश व्यक्ति असत्य वचनका प्रयोग कर देता है। जो...... क्रोधी न हो। यह दूसरी भावना है ॥१०३७॥

अथ तीसरी भावना.......लोभके......लोभका परित्याग......। और साधु लोभशील न होवे। केवली ......कि लोभ-प्राप्त लोभी व्यक्ति भी झूठ बोल देता है। जो ......लोभशील न होवे। यह तीसरी भावना है ॥१०३८॥

चौथी भावना यह है कि भयका सर्वथा परित्याग करने वाला व्यक्ति निर्ग्रन्थ कहलाता है। साधु भयसे भीरु न बनें। केवली.........कि भयसे युक्त व्यक्ति अपने बचावके लिए झूठ बोल देता है, अतः साधकको सदा पूर्णतः भयसे रहित रहना चाहिए, यह चतुर्थ भावना है ॥१०३९॥

पांचवीं भावना—हास्यका त्याग करने वाला साधक निर्ग्रन्थ कहलाता है। और वह हसनशील न हो। हास्यवश भी व्यक्ति असत्य भाषण कर सकता है। इसलिए मुनिको हास्य, हंसी मज़ाकका सर्वथा परित्याग करना चाहिए, यह पांचवीं भावना है ॥१०४०॥

साधक द्वारा स्वीकृत मृषावाद (झूठ) के त्यागरूप द्वितीय महाव्रत को ......है। हे भगवन् ! द्वितीय महाव्रत मृषावाद विरमण रूप है ॥१०४१॥

हे भगवन् ! मैं तृतीय महाव्रतके विषयमें सर्वप्रकारसे अदत्तादानका प्रत्याख्यान करता हूं। वह अदत्तादान चाहे ग्राममें, नगरमें, अरण्य जंगलमें हो, स्वल्प हो, बहुत हो, स्थूल हो, एवं सचित अथवा अचित हो, उसे न तो स्वयं ग्रहण करूंगा, न दूसरोंसे ग्रहण कराऊंगा, और न ग्रहण करने वाले व्यक्तिका अनुमोदन करूंगा। जीवन पर्यन्त यावत् पृथक् करता हूं ॥१०४२॥

तीसरे महाव्रतकी ये पांच भावनाएँ हैं। उन पाँच भावनाओंमें से प्रथम भावना यह है—जो विचारकर मर्यादापूर्वक अवग्रहकी याचना करने वाला है वह निर्ग्रन्थ है, न कि विना विचार किए मितावग्रह की याचना करने वाला। केवली भगवान् कहते हैं कि विना विचार किए अवग्रहकी याचना करनेवाला निर्ग्रन्थ अदत्तको ग्रहण करता है। अतः जो विचार .... वाला। यह पहली भावना है ॥१०४३॥

अथ दूसरी भावना—गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर आहार पानी करने वाला निर्ग्रन्थ होता है, न कि विना आज्ञाके आहार-पानी करने वाला। केवली भगवान् कहते हैं, कि जो निर्ग्रन्थ गुरु आदिकी आज्ञा प्राप्त किए विना आहार-पानी

आदि करता है वह अदत्तादानका भागी होता है। इसलिए गुरु ...... वाला। यह दूसरी भावना है ॥१०४४॥

अथ तृतीय भावनाका स्वरूप—निर्ग्रन्थ-साधु क्षेत्र और कालके प्रमाण-पूर्वक अवग्रहकी याचना करने वाला होता है। केवली भगवान् कहते हैं कि जो साधु मर्यादापूर्वक अवग्रहकी याचना करने वाला नहीं होता, वह अदत्तादानको सेवन करने वाला होता है। अतः निर्ग्रन्थ ... है। *यह तीसरी भावना है ॥१०४५॥*

अथ चौथी भावना—निर्ग्रन्थ अवग्रहके लेने पर बार-बार आज्ञा लेनेके स्वभाव वाला हो। क्योंकि केवली भगवान् कहते हैं कि यदि वह ऐसा न होगा तो उसको अदत्तादानका दोष लगेगा। अतः निर्ग्रन्थ......वाला हो। यह चौथी भावना है ॥१०४६॥

पांचवीं भावना यह है कि जो साधक सार्धमिकोंसे भी विचारपूर्वक-मर्यादापूर्वक अवग्रहकी याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, न कि बिना विचारे आज्ञा लेने वाला। केवली भगवान् कहते हैं कि जो सार्धमियोंसे भी विचारपूर्वक आज्ञा नहीं लेता उसे अदत्तादानका दोष लगता है। अतः जो साधक ...... वाला। यह पांचवीं भावना है ॥१०४७॥

इस प्रकार तीसरे महाव्रतका सम्यक्तया यावत् आज्ञापूर्वक आराधन किया जाता है। *हे भगवन्! मैं तृतीय महाव्रतके विषयमें सर्वप्रकारसे अदत्तादान से निवृत्त होता हूं* ॥१०४८॥

अन्य चतुर्थ महाव्रतमें सर्वप्रकारके मैथुन-विषय सेवनका प्रत्याख्यान करता हूं। देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी मैथुनको न स्वयं सेवन करूंगा। अदत्ता-दान विषयक प्रकरणमें जैसा कहा है उसी प्रकार यहां भी जान लेना चाहिए यावत् पृथक् करता हूं ॥१०४९॥

उस चतुर्थ महाव्रतकी ये पांच भावनाएं हैं ॥१०५०॥

उन पांच भावनाओंमें से प्रथम भावना इस प्रकार है—निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियोंकी कामजनक कथा न कहे। केवली भगवान् कहते हैं कि बार-बार स्त्रियोंकी कथा कहनेवाला साधु शान्तिरूप चारित्र और ब्रह्मचर्यका भंग करने वाला होता है, तथा शान्तिरूप केवली प्ररूपित धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। अतः साधुको स्त्रियोंकी बार-बार कथा नहीं करनी चाहिए, यह प्रथम भावना है ॥१०५१॥

अथ अपर दूसरी भावना कहते हैं—निर्ग्रन्थ-साधु कामरागसे स्त्रियोंकी मनोहर तथा मनोरम इन्द्रियोंको सामान्य अथवा विशेषरूप से न देखे। केवली भगवान् कहते हैं कि स्त्रियोंकी मनोहर तथा ...... रूपसे देखने वाला साधु शांति......है। अतः साधुको स्त्रियोंकी मनोहर इन्द्रियोंको आसक्तिपूर्वक कदापि नहीं देखना चाहिए। यह दूसरी भावना है ॥१०५२॥

अथ तीसरी भावनाका स्वरूप—साधु स्त्रियोंके साथकी पूर्वरति और कामक्रीडाका स्मरण न करे। केवली भगवान् कहते हैं कि स्त्रियोंके······स्मरण करने वाला साधु·········है। अतः साधु स्त्रियों······। यह तीसरी भावना है ॥१०५३॥

अब चतुर्थ भावनाका स्वरूप वर्णन करते हैं—वह निर्ग्रन्थ प्रमाणसे अधिक आहार-पानी तथा प्रणीतरस-प्रकाम भोजन न करे। केवली भगवान् कहते हैं कि प्रमाण······भोजन करनेवाला साधु·········है। अतः निर्ग्रन्थ प्रमाण······न करे। यह चौथी भावना है ॥१०५४॥

पांचवीं भावना—साधु स्त्री, पशु और नपुंसक आदिसे युक्त शय्या और आसन आदिका सेवन न करे, केवली भगवान् कहते हैं कि ऐसा करने वाला साधु········है। अतः साधु स्त्री······न करे। यह पांचवीं भावना है ॥१०५५॥

इस तरह सम्यक्तया कायासे स्पर्श करनेसे चतुर्थ महाव्रतका पालन यावत् आराधन होता है। हे भगवन् ! चतुर्थ महाव्रतको मैं स्वीकार करता हूं ॥१०५६॥

हे भगवन् ! पांचवें महाव्रतके विषयमें सर्वप्रकार के परिग्रहका परित्याग करता हूं। मैं अल्प, बहुत, सूक्ष्म, स्थूल तथा सचित्त और अचित्त किसी भी प्रकारके परिग्रहको न स्वयं ग्रहण करूंगा, न दूसरोंसे ग्रहण कराऊंगा, और न ग्रहण करने वालोंका अनुमोदन करूंगा। यावत् पृथक् करता हूं ॥१०५७॥

उस पांचवें महाव्रतकी ये पाँच भावनाएँ हैं। उन पाँच भावनाओंमें से प्रथम भावना यह है—श्रोत्रसे यह जीव प्रिय तथा अप्रिय शब्दोंको सुनता है, परन्तु वह उनमें आसक्त न हो, राग भाव न करे, गृद्ध न हो, मूर्छित न हो, तथा अत्यन्त आसक्ति एवं राग द्वेष न करे, केवली भगवान् कहते हैं कि मनोज्ञा-मनोज्ञ शब्दोंमें आसक्त होता हुआ यावत् रागद्वेष करता हुआ साधु शान्ति भेद एवं शान्ति-विभंग करता है और केवली भाषित धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है ॥१०५८॥

श्रोत्र विषयमें आए हुए शब्द ऐसे नहीं जो सुने न जावें। किन्तु उनके सुनने पर जो राग-द्वेषकी उत्पत्ति होती है, भिक्षु उसका परित्याग कर दे ॥१०५९॥

अतः श्रोत्रसे······राग द्वेष न करे। यह प्रथम भावना है ॥१०६०॥

दूसरी भावना—चक्षुके द्वारा यह जीव प्रिय तथा अप्रिय रूपोंको देखता है, परन्तु वह······रागद्वेष न करे। केवली······मनोज्ञामनोज्ञ रूपोंमें आसक्त··· भ्रष्ट हो जाता है ॥१०६१॥

चक्षुके विषयमें आया हुआ रूप अदृष्ट नहीं रह सकता वह अवश्य दिखाई देगा, परन्तु उसको देखनेसे जो राग.........कर दे ॥१०६२॥

अतः चक्षु.........न करे ॥१०६३॥

अथ तीसरी भावना—नासिकाके द्वारा जीव प्रिय तथा अप्रिय गंधोंको सूंघता है, परन्तु वह.......रागद्वेष न करे। केवली.......मनोज्ञामनोज्ञ गंधोंमें आसक्त......हो जाता है ॥१०६४॥

ऐसा नहीं हो सकता कि नासिकाके सन्निधानमें आए हुए गंधके परमाणु पुद्गल सूंघे न जा सकें। परन्तु उनको सूंघनेसे जो राग..... कर दे ॥१०६५॥

अतः नासिका......न करे ॥१०६६॥

अथ चतुर्थ भावना—जीव जिह्वासे प्रिय तथा अप्रिय रसोंका आस्वाद लेता है। परन्तु वह......रागद्वेष न करे। केवली......मनोज्ञामनोज्ञ रसोंमें आसक्त ......हो जाता है ॥१०६७॥

जिह्वाको प्राप्त हुआ रस अनास्वादित नहीं रह सकता। परन्तु उसका आस्वादन करनेसे जो राग......कर दे ॥१०६८॥

अतः जिह्वासे......न करे ॥१०६९॥

अथ पाँचवीं भावना—यह जीव स्पर्शेन्द्रियके द्वारा प्रिय और अप्रिय स्पर्शोंका अनुभव करता है, परन्तु वह......रागद्वेष न करे। केवली......मनोज्ञा-मनोज्ञ स्पर्शोंमें आसक्त......हो जाता है ॥१०७०॥

स्पर्शेन्द्रियके सन्निधानमें आए हुए स्पर्शके पुद्गल विना अनुभव किए नहीं रह सकते। परन्तु उनको स्पर्श करनेसे जो राग.....कर दे ॥१०७१॥

अतः स्पर्शेन्द्रिय......न करे ॥१०७२॥

इस प्रकार पाँचवां महाव्रत सम्यक् प्रकारसे काया द्वारा स्पर्श किया हुआ यावत् आराधित होता है। हे भगवन्! यह पाँचवां महाव्रत है ॥१०७३॥

इन पांच महाव्रत और इनकी पच्चीस भावनाओंसे सम्पन्न हुआ साधु यथाश्रुत यथाकल्प और यथामार्ग अर्थात् श्रुत-कल्प और मार्गके अनुसार इन-का सम्यक्तया कायासे स्पर्शकर, पालनकर और तीर पहुंचाकर और भगवान् की आज्ञानुसार इनका आराधन करके आराधक बन जाता है, इस प्रकार कहता हूं ॥१०७४॥

॥ पन्द्रहवाँ भावनाध्ययन समाप्त ॥

॥ तृतीय चूला समाप्त ॥

चतुर्थ चूला

सोलहवाँ अध्ययन—विमुक्ति

सर्वश्रेष्ठ जिन प्रवचनमें यह कहा गया है, कि आत्मा मनुष्य आदि जिन योनियोंमें जन्म लेता है, वे स्थान अनित्य हैं। ऐसा सुनकर एवं उस पर हार्दिक चिन्तन करके समस्त भयोंसे निर्भय बना हुआ विद्वान् पारिवारिक स्नेह बन्धन का, समस्त सावद्य कर्म एवं परिग्रह का त्याग कर दे ॥१०७५॥

अनित्यादि भावनाओं से भावित,अनन्त जीवोंकी रक्षा करने वाले अनुपम संयमी और जिनागमानुसार शुद्ध आहार की गवेषणा करने वाले भिक्षुको देख कर कतिपय अनार्य व्यक्ति साधु पर असभ्य वचनों एवं पत्थर आदि का इस तरह प्रहार करते हैं, जैसे संग्राममें वीर योद्धा शत्रु के हाथी पर बाणोंकी वर्षा करते हैं ॥१०७६॥

असंस्कृत एवं असभ्य पुरुषों द्वारा आक्रोशादि शब्दोंसे या शीतादि स्पर्शोंसे पीड़ित या व्यथित किया हुआ ज्ञानयुक्त मुनि उन परीसहोपसर्गोंको शान्तिपूर्वक सहन करे। जिस प्रकार वायुके प्रबलवेग से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार संयमशील मुनि भी इन परीषहोंसे विचलित न हो, अर्थात् अपने संयम व्रत में दृढ़ रहे ॥१०७७॥

परीसहोपसर्गों को सहन करता हुआ, अथवा मध्यस्थ भाव का अवलम्बन करता हुआ, वह मुनि गीतार्थ मुनियोंके साथ रहे। सब प्राणियोंको दुःख अप्रिय लगता है, ऐसा जानकर त्रस और स्थावर जीवोंको दुःखी देखकर उन्हें किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ पृथिवीकी भांति सर्व प्रकारके परीषहोंपसर्गोंको सहन करने वाला महामुनि—लोकवर्ती पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाता होता है। अतः उसे सुश्रमण-श्रेष्ठ श्रमण कहा गया है ॥१०७८॥

क्षमा मार्दवादि दश प्रकार के श्रेष्ठ श्रमण धर्ममें प्रवृत्ति करनेवाला विनयवान् एवं ज्ञानसंपन्न मुनि-जो तृष्णा रहित होकर धर्म ध्यानमें संलग्न है, और चरित्रको परिपालन करनेमें सावधान है, उसके तप, प्रज्ञा और यश अग्नि शिखा के तेजकी भांति वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१०७९॥

षट्कायके रक्षक, अनन्त ज्ञानवाले जिनेन्द्र भगवान्ने एकेन्द्रियादि भाव दिशाओं में रहने वाले जीवोंके हित के लिए तथा उन्हें अनादि कालसे आबद्ध कर्म-बन्धनसे छुड़ाने वाले महाव्रत प्रकट किए हैं। जिस प्रकार तेज तीनों दिशाओं-ऊर्ध्व-अधो-तिर्यक् के अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश करता है, उसी प्रकार महाव्रतरूप तेजसे अन्धकाररूप कर्मसमूह नष्ट हो जाता है, और ज्ञानवान् आत्मा तीनों लोकोंमें प्रकाश करने वाला बन जाता है ॥१०८०॥

चक्षुके विषयमें आया हुआ रूप अदृष्ट नहीं रह सकता वह अवश्य दिखाई देगा, परन्तु उसको देखनेसे जो राग.........कर दे ॥१०६२॥

अतः चक्षु.........न करे ॥१०६३॥

अथ तीसरी भावना—नासिकाके द्वारा जीव प्रिय तथा अप्रिय गंधोंको सूंघता है, परन्तु वह........ रागद्वेष न करे। केवली......मनोज्ञामनोज्ञ गंधोंमें आसक्त......हो जाता है ॥१०६४॥

ऐसा नहीं हो सकता कि नासिकाके सन्निधानमें आए हुए गंधके परमाणु पुद्‌गल सूंघे न जा सकें। परन्तु उनको सूंघनेसे जो राग...... कर दे ॥१०६५॥

अतः नासिका......न करे ॥१०६६॥

अथ चतुर्थ भावना—जीव जिह्वासे प्रिय तथा अप्रिय रसोंका आस्वाद लेता है। परन्तु वह......रागद्वेष न करे। केवली......मनोज्ञामनोज्ञ रसोंमें आसक्त ......हो जाता है ॥१०६७॥

जिह्वाको प्राप्त हुआ रस अनास्वादित नहीं रह सकता। परन्तु उसका आस्वादन करनेसे जो राग......कर दे ॥१०६८॥

अतः जिह्वासे......न करे ॥१०६९॥

अथ पाँचवीं भावना—यह जीव स्पर्शेन्द्रियके द्वारा प्रिय और अप्रिय स्पर्शोंका अनुभव करता है, परन्तु वह......रागद्वेष न करे। केवली......मनोज्ञा-मनोज्ञ स्पर्शोंमें आसक्त......हो जाता है ॥१०७०॥

स्पर्शेन्द्रियके सन्निधानमें आए हुए स्पर्शके पुद्‌गल बिना अनुभव किए नहीं रह सकते। परन्तु उनको स्पर्श करनेसे जो राग......कर दे ॥१०७१॥

अतः स्पर्शेन्द्रिय......न करे ॥१०७२॥

इस प्रकार पाँचवां महाव्रत सम्यक् प्रकारसे काया द्वारा स्पर्श किया हुआ यावत् आराधित होता है। हे भगवन् ! यह पाँचवां महाव्रत है ॥१०७३॥

इन पांच महाव्रत और इनकी पच्चीस भावनाओंसे सम्पन्न हुआ साधु यथाश्रुत यथाकल्प और यथामार्ग अर्थात् श्रुत-कल्प और मार्गके अनुसार इन-का सम्यक्तया कायासे स्पर्शकर, पालनकर और तीर पहुंचाकर और भगवान् की आज्ञानुसार इनका आराधन करके आराधक बन जाता है, इस प्रकार कहता हूं ॥१०७४॥

॥ पन्द्रहवाँ भावनाध्ययन समाप्त ॥

॥ तृतीय चूला समाप्त ॥

चतुर्थ चूला

सोलहवाँ अध्ययन—विमुक्ति

सर्वश्रेष्ठ जिन प्रवचनमें यह कहा गया है, कि आत्मा मनुष्य आदि जिन योनियोंमें जन्म लेता है, वे स्थान अनित्य हैं। ऐसा सुनकर एवं उस पर हार्दिक चिन्तन करके समस्त भयोंसे निर्भय बना हुआ विद्वान् पारिवारिक स्नेह बन्धन का, समस्त सावद्य कर्म एवं परिग्रह का त्याग कर दे ॥१०७५॥

अनित्यादि भावनाओं से भावित, अनन्त जीवोंकी रक्षा करने वाले अनुपम संयमी और जिनागमानुसार शुद्ध आहार की गवेषणा करने वाले भिक्षुको देख कर कतिपय अनार्य व्यक्ति साधु पर असभ्य वचनों एवं पत्थर आदि का इस तरह प्रहार करते हैं, जैसे संग्राममें वीर योद्धा शत्रु के हाथी पर बाणोंकी वर्षा करते हैं ॥१०७६॥

असंस्कृत एवं असभ्य पुरुषों द्वारा आक्रोशादि शब्दोंसे या शीतादि स्पर्शोंसे पीड़ित या व्यथित किया हुआ ज्ञानयुक्त मुनि उन परीसहोपसर्गोंको शान्तिपूर्वक सहन करे। जिस प्रकार वायुके प्रबलवेग से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार संयमशील मुनि भी इन परीषहोंसे विचलित न हो, अर्थात् अपने संयम व्रत में दृढ़ रहे ॥१०७७॥

परीसहोपसर्गो को सहन करता हुआ, अथवा मध्यस्थ भाव का अवलम्बन करता हुआ, वह मुनि गीतार्थ मुनियोंके साथ रहे। सब प्राणियोंको दुःख अप्रिय लगता है, ऐसा जानकर त्रस और स्थावर जीवोंको दुःखी देखकर उन्हें किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ पृथिवीकी भांति सर्व प्रकारके परीषहोपसर्गोंको सहन करने वाला महामुनि—लोकवर्ती पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाता होता है। अतः उसे सुश्रमण-श्रेष्ठ श्रमण कहा गया है ॥१०७८॥

क्षमा मार्दवादि दश प्रकार के श्रेष्ठ श्रमण धर्ममें प्रवृत्ति करनेवाला विनयवान् एवं ज्ञानसंपन्न मुनि-जो तृष्णा रहित होकर धर्म ध्यानमें संलग्न है, और चरित्रको परिपालन करनेमें सावधान है, उसके तप, प्रज्ञा और यश अग्नि-शिखा के तेजकी भांति वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१०७९॥

षट्कायके रक्षक, अनन्त ज्ञानवाले जिनेन्द्र भगवान्ने एकेन्द्रियादि भाव दिशाओं में रहने वाले जीवोंके हित के लिए तथा उन्हें अनादि कालसे आबद्ध कर्म-बन्धनसे छुड़ाने वाले महाव्रत प्रकट किए हैं। जिस प्रकार तेज तीनों दिशाओं-ऊर्ध्व-अधो-तिर्यक् के अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश करता है, उसी प्रकार महाव्रतरूप तेजसे अन्धकाररूप कर्मसमूह नष्ट हो जाता है, और ज्ञानवान् आत्मा तीनों लोकोंमें प्रकाश करने वाला बन जाता है ॥१०८०॥

साधु कर्मपाशसे बंधे हुए गृहस्थों या अन्यतीर्थियोंके सम्पर्कसे रहित होकर तथा स्त्रियोंके संसर्ग का भी त्याग करके विचरे और वह पूजा सत्कार आदि की अभिलाषा न करे, और लोक तथा परलोकके सुखकी कामना भी न रक्खे। वह मनोज्ञ शब्दादिके विषयमें भी प्रतिबद्ध न होवे। इस तरह उनके कटु विपाकको जाननेके कारण वह मुनि, पंडित कहलाता है ॥१०८१॥

जिस तरह अग्नि चांदीके मैलको जलाकर उसे शुद्ध बना देती है, उसी प्रकार सब संसर्गोंसे रहित ज्ञानपूर्वक क्रिया करने वाला, धैर्यवान् एवं सहिष्णु साधक अपनी साधना से आत्मा पर लगे हुए कर्म मलको दूर करके आत्माको निरावरण बना लेता है ॥१०८२॥

जिस प्रकार सर्प अपनी जीर्ण त्वचा-कांचलीको त्यागकर उससे पृथक हो जाता है, उसी तरह महाव्रतोंसे युक्त, शास्त्रोक्त क्रियाओंका परिपालक, मैथुनसे सर्वथा निवृत्त एवं लोक-परलोकके सुखकी अभिलाषासे रहित मुनि नरकादि दुःख-रूप शय्या या कर्म बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है ॥१०८३॥

महासमुद्रकी भांति संसार रूपी समुद्रको पार करना दुष्कर है, हे शिष्य ! तू इस संसारके स्वरूपको ज्ञ परिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञासे उसका त्याग कर दे। इस प्रकार त्याग करने वाला पंडित मुनि कर्मोका अन्त करने वाला कहलाता है ॥१०८४॥

इससंसारमें आत्माने आस्रवका सेवन करके जिसप्रकार कर्म बांधे हैं, उसी तरह सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की आराधना करके उन आबद्ध कर्मो से मुक्ति भी हो सकती है। जो मुनि बन्ध-मोक्षके यथार्थ स्वरूप को जानता है, वह निश्चय ही कर्मों का अन्त करने वाला कहा गया है ॥१०८५॥

इस लोक तथा परलोक एवं दोनों लोकोंमें जिसका किंचिन्मात्र भी राग आदिका बन्धन नहीं है तथा जो लोक तथा परलोककी आशाओंसे रहित है, अप्रतिबद्ध है, वह साधु निश्चय ही गर्भ आदिके पर्यटनसे छूट जाता है, अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, इस प्रकार कहता हूं ॥१०८६॥

॥ सोलहवाँ विमुक्ति—अध्ययन समाप्त ॥

॥ चतुर्थ चूला समाप्त ॥

॥ सदाचार नामक द्वितीय श्रुतस्कंध सम्पूर्ण ॥

॥ आचाराङ्ग सूत्र समाप्त ॥

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

सूत्रकृताङ्ग--पहला श्रुतस्कन्ध

समयअध्ययन १—उद्देशक १

१—स्वसिद्धान्त

बूझे, खूब जानकर बन्धनको तोड़े। (महान्) वीरने किसे बन्धन बताया, किसे जानकर (बन्धन) टूटता है? ॥१॥

(जो पुरुष) सप्राण या निष्प्राण किसी छोटे (पदार्थ)को भी फँसाता है, या दूसरेको (वैसा करनेकी) अनुमति देता है वह (संसार-) दु:खसे नहीं छूटता ॥२॥

प्राणियोंको अपने आप मारता है, या दूसरेसे मरवाता है। या मारने वालेको अनुज्ञा देता है, वह अपने वैरको बढ़ाता है ॥३॥

आदमी जिस कुल में पैदा हुआ, या जिनके साथ रहता है, (उनमें) ममता करता वह अजान हुआ दूसरोंके मोहमें पड़कर बर्बाद होता है ॥४॥

धन और सहोदर (भाई-बहिन) ये सारे (आदमीको) नहीं बचा सकते, जीवनको भी ऐसा (थोड़ा) समझकर कर्म (के बन्धन) से अलग होता है ॥५॥

इन ग्रन्थ (वचनों) को छोड़कर कोई-कोई अजान श्रमण-ब्राह्मण (मतवादी) (अपने मतमें) अत्यन्त बंधे काम भोगोंमें फंसे हैं ॥६॥

२—लोकायत-भौतिकवाद—

कोई कहते हैं······ "यहाँ पांच महाभूत हैं—(१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु और पांचवां आकाश" ॥७॥

ये पांच महाभूत हैं, उनमेंसे एक चेतना पैदा होती है; फिर उन (महाभूतों) के विनाशसे देहधारी (आत्मा) का भी विनाश होता है ॥८॥

अद्वैत—

जैसे एक पृथिवी समुदाय एक (होते हुए भी) अनेक दीखता है, ऐसे ही विद्वान् सारे लोकको नाना देखता है ॥९॥

ऐसे कोई-कोई मन्द एक (आत्मा) बतलाते हैं। कोई स्वयं पाप करके भारी दु:ख भोगते हैं ॥१०॥

३—भौतिकवाद—

मूढ हों या पण्डित प्रत्येक में पूर्ण आत्मा है, मरने पर होते भी नहीं होते भी (परलोक में) जाने वाला कोई नित्य पदार्थ नहीं है ॥११॥

न पुण्य है, न पाप है, इस (जन्म) के बाद दूसरा लोक नहीं, शरीरके विनाशसे शरीरधारी (आत्मा) का भी विनाश हो जाता है ॥१२॥

४—आत्मा अकर्ता—

सब करते और कराते भी करनहार नहीं है, इस प्रकार आत्मा अकारक है, ऐसा वे ढीठ कहते हैं ॥१३॥

जो ऐसे (मतके) माननेवाले हैं, उनके लिए (पर-)लोक कैसे होगा ? वे हिंसा-रत मन्द (-बुद्धि) अन्धकारसे भारी अन्धकारमें जाते हैं ॥१४॥

५—नित्य आत्मा—

यहां कोई-कोई कहते हैं—(पृथिवी आदि) पांच महाभूत हैं, आत्मा छठा है; फिर कहते हैं कि आत्मा और लोक नित्य है ॥१५॥

दोनों (कभी) नहीं नष्ट होते, और न असत् (वस्तु) से कोई (वस्तु) उत्पन्न हो सकती है। सारे ही पदार्थ सर्वथा नियति रूपसे (चले) आये हैं ॥१६॥

६—बौद्ध मत—

कोई-कोई मूढ़ कहते हैं·······पांच स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) क्षणिक (तत्व) हैं। (आत्मा) उनसे भिन्न है या अभिन्न, सकारण है या अकारण, यह नहीं बतलाते ॥१७॥

दूसरे कहते हैं······पृथिवी, जल, तेज और वायु ये एकत्र चार धातुओंके रूप हैं ॥१८॥

७—अन्यमत—

घरमें या अरण्य या पर्वतमें वसते (हमारे) इस दर्शन पर आरूढ़ (पुरुष) सारे दुःखों से छूट जाता है ॥१९॥

उन (मतवादियों) ने न (द्रव्य या मानसिक भावों की) सन्धि जानी, न वे धर्मवेत्ता हैं। वे जो ऐसा मानते हैं, वे (संसार रूपी) बाढ़से पारंगत नहीं कहे गये ॥२०॥

वे न सन्धि जानते, न वे लोग धर्मवेत्ता हैं, वे संसार पारंगत नहीं कहे गये ॥२१॥ ०गर्भ (आवागमन) पारग नहीं कहे गये ॥२२॥ ०जन्म पारग नहीं कहे गये ॥२३॥ ०दुःख पारग नहीं कहे गये ॥२४॥ ०मार (मृत्यु) पारग नहीं कहे गये ॥२५॥ ०मृत्यु, व्याधि और जरासे व्याकुल संसारके चक्रवालमें वे पुनः पुनः नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं ॥२६॥

जिन श्रेष्ठ ज्ञातृपुत्र महावीरने यह कहा है कि वे अनन्त वार ऊंची-नीची योनियों (गर्भ) में जायेंगे। श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रिय शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं, जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा कहता हूं ॥२७॥

दूसरा उद्देशक

*१—नियतिवाद--

कोई-कोई कहते हैं कि जीव अलग-अलग उत्पन्न हैं, वे सुख-दुःख सहते हैं, अथवा मूल से लुप्त हो जाते हैं ॥१॥२८॥

वह दुःख न स्वयं किया हुआ है, फिर दूसरे का किया क्या होगा ? सुख हो या दुःख, इहलौकिक हो या पारलौकिक (सब की यहीं बात है) ॥२॥२९॥

न अपने न परके किए कर्मको जीव अलग-अलग भोगते हैं। ऐसा उनका नियत (भाग्य) कृत है। यहां यह किसी (नियतिवादी आजीवक) का मत है ॥३॥३०॥

(सुख दुःख) नियत है या अनियत इसे न जानते, निर्बुद्धि अपने को पण्डित समझने वाले मूढ़ वैसा इसे बतलाते हैं ॥४॥३१॥

ऐसे कोई-कोई बंधुये और भी ढिठाई करते हैं, ऐसे (अपने मत पर) आरूढ़ वे दुःखपारंगत नहीं हैं ॥५॥३२॥

२—अज्ञानवाद—

वेगसे दौड़ने वाले हिरण जैसे रक्षाविहीन होते हैं, वे अशंकनीय पर शंका करते हैं, शंकनीय पर शंका नहीं करते ॥६॥३३॥

रक्षाकारकों पर शंका करते०, फंदे वालों पर शंका नहीं करते। अज्ञानके भयसे उद्विग्न जहां-तहां भागते हैं ॥७॥३४॥

फिर (वह मृग) चाहे वन्धनको फांद जाये, वन्धनके नीचेसे निकल जाय, अथवा पैरके फंदेसे छूट जाये; पर वह मन्दबुद्धि उसे नहीं जानता ॥८॥३५॥

अहित ज्ञानवाला अपने ही अहित, प्रतिकूल स्थानमें पहुंचा, पैरके फंदेमें फंसा घातको प्राप्त होता है ॥९॥३६॥

ऐसे ही कोई-कोई मिथ्यादृष्टि अनार्य श्रमण (भिक्षु) अशंकनीयसे भय खाते हैं, शंकनीयसे भय नहीं खाते ॥१०॥३७॥

धर्मका जो निरूपण है, उससे तो मूढ़ भय खाते हैं, पर वे अपण्डित अव्यक्त हिंसासे भय नहीं खाते ॥११॥३८॥

सर्वात्मक (रूपी लोभ), उत्कर्ष (रूपी अभिमान), सारी माया, अप्रत्यय (अविश्वास रूपी) क्रोधको छोड़कर कर्मांशसे रहित होता है, इस बातको मृग सा मूढ़ छोड़ देता है ॥१२॥३९॥

---

* मंखली गोशालेके अनुयायी-आजीवक।

जो मिथ्यादृष्टि अनाड़ी इसे नहीं जानते, वे मृगकी भांति फंदेमें बंधे, अनन्तबार घातको प्राप्त होंगे ॥१३॥४०॥

कोई-कोई ब्राह्मण और श्रमण सारे, अपने ज्ञानको बखानते हैं, पर सारे लोकमें जो प्राणी हैं, उसे कुछ नहीं जानते ॥१४॥४१॥

म्लेच्छ जैसे म्लेच्छ-भिन्न आर्यके कथनका अनुकरण करे, वह हेतु (अर्थ) को नहीं जानता, केवल भाषितका अनुभाषण करता है ॥१५॥४२॥

इसी प्रकार अज्ञानी अपने-अपने ज्ञानको बोलते भी, ठीक अर्थको नहीं जानते, जैसे अज्ञानवाला म्लेच्छ ॥१६॥४३॥

अज्ञानियोंका विमर्ष (अपने पक्ष) अज्ञानका निश्चय नहीं कर सकता। अपने (पक्षको) भी जब परको नहीं समझा सकता तो दूसरेको (अन्य ज्ञान) कैसे सिखलायेगा ॥१७॥४४॥

वनमें जैसे मूढ़ (दिशाभ्रान्त) प्राणी (दूसरे) मूढ़का अनुगामी हो, तो दोनों अजान भारी शोकको प्राप्त होंगे ॥१८॥४५॥

अन्धा (दूसरे) अन्धेको पथ पर ले जाता दूर रास्ते जा रहा है, तो (वह) जन्तु उत्पथको प्राप्त होगा, या दूसरे पथका अनुगामी होगा ॥१९॥४६॥

ऐसे ही कोई मोक्षके इच्छुक (कहते हैं)···हम धर्मके आराधक हैं, पर वे अधर्ममें पहुंचेंगे, सबसे सीधे (मार्ग) पर नहीं जायेंगे ॥२०॥४७॥

ऐसे ही कोई अपने वितर्कोंसे दूसरेकी सेवा नहीं करते, अपने ही वितर्कोंसे "यह ठीक (मार्ग) है," वह दुर्मति समझते हैं ॥२१॥४८॥

धर्म-अधर्मके पण्डित ऐसे तर्कसे साधते उसी तरह दुःखको पूरी तरह नहीं तोड़ सकते, जैसे (फंसी) चिड़िया पिंजड़ेको ॥२२॥४९॥

अपने-अपनेको प्रशंसते दूसरेके वचनको निन्दते, जो वहां पण्डिताई झाड़ते हैं, वे संसारमें बिल्कुल बंधे हुए हैं ॥२३॥५०॥

३—क्रियावाद—

इसके बाद पूर्वोक्त क्रियावादी दर्शन है, (वह) संसारको बढ़ाने वाले कर्मके चिन्तनसे भ्रष्टोंका (दर्शन) है ॥२४॥५१॥

जानते हुये भी कायासे हिंसा नहीं करता, और न जानते हुये हिंसा करता है, तो वह कर्म (फल) लगा अनुभव करेगा, पर वह दोषयुक्त स्पष्ट नहीं होगा ॥२५॥५२॥

ये तीन आदान (कर्म बन्धनके कारण) हैं, जिनसे (आदमी) पाप करता है—

(१) स्वयं हिंसाके लिये आक्रमण कर, (२) दूसरोंको भेजकर, और (३) मनसे अनुमति देकर ॥२६॥५३॥

ये तीन उपादान हैं, जिनसे (आदमी) पाप करता है, इस प्रकार भाव (चित्त) की शुद्धिसे निर्वाणको प्राप्त करता है ॥२७॥५४॥

अ-संयमी पिता (आपत्में) पुत्रको मारकर जो खाये, तो कर्मसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही मेघावी भी (ऐसा अन्य दार्शनिकोंका मत है) ॥२८॥५५॥

जो मनसे (प्राणी पर) द्वेष करते हैं उनका चित्त शुद्ध नहीं है, उनकी निर्दोषता झूंठी है, वह संवर (ब्रह्म) चारी नहीं है ॥२९॥५६॥

इसप्रकारकी इन दृष्टियों (मतों) से सुख-सम्मानमें बंधे, "हमारा दर्शन शरण है" यह मानते लोग पापका सेवन करते हैं ॥३०॥५७॥

जैसे खूब टपकती नाव पर चढ़कर (कोई) जन्मान्ध पार जाना चाहे, तो वह बीचमें ही डूबेगा ॥३१॥५८॥

इसी तरह कोई-कोई मिथ्यादृष्टि, अनाड़ी, संसार पार जानेके इच्छुक श्रमण संसारमें ही चक्कर खाते रहते हैं। ऐसा मैं कहता हूं ॥३२॥५९॥

—०—

३—उद्देशक

१—कर्म भोग—

श्रद्धालु गृहस्थने अतिथि (श्रमण) के लिए इच्छित जो कुछ भी पूतिकृत (पकाकर तैयार किया) है, उसे हजार घरकी दूरी पर बँटने पर भी (जो) खाये, वह (साधु-गृहस्थ) दोनोंके पक्षका सेवन करता है ॥१॥६०॥

उसी (आधाकर्म*) को न जानते विषम (स्थिति) को न जानते (दूसरे मतवाले) पानीके बढ़ावमें विशाल मछलियोंकी भांति हैं ॥२॥६१॥

जलके प्रभावसे सूखे-गीलेमें पहुंच (मछलियां) आमिषार्थी चील्हों और कौओंसे पीड़ित होती हैं ॥३॥६२॥

वैसे ही वे वर्तमान सुख चाहने वाले (श्रमण), विशाल मछलियोंकी भांति अनन्त बार घातको प्राप्त होंगे ॥४॥६३॥

२—जगत्कर्ता—

यहां किसी-किसीने यह दूसरा अज्ञान बखाना है—देव द्वारा बनाया गया यह लोक है, दूसरे कहते हैं ब्रह्मा द्वारा रचा गया है ॥५॥६४॥

ईश्वर द्वारा उत्पादित है, दूसरे (कहते हैं) प्रकृति द्वारा जीव अजीव सहित सुख-दुःख-युक्त यह लोक० ॥६॥६५॥

महर्षिने कहा—स्वयम्भूने लोक बनाया, मार (यमराज) ने माया तैयार की, उसीसे लोक अनित्य है ॥७॥६६॥

---

*भिक्षुके लिये बनाया गया आहार ।

जो मिथ्यादृष्टि अनाड़ी इसे नहीं जानते, वे मृगकी भांति फंदेमें बंधे, अनन्तवार घातको प्राप्त होंगे ॥१३॥४०॥

कोई-कोई ब्राह्मण और श्रमण सारे, अपने ज्ञानको बखानते हैं, पर सारे लोकमें जो प्राणी हैं, उसे कुछ नहीं जानते ॥१४॥४१॥

म्लेच्छ जैसे म्लेच्छ-भिन्न आर्यके कथनका अनुकरण करे, वह हेतु (अर्थ) को नहीं जानता, केवल भाषितका अनुभाषण करता है ॥१५॥४२॥

इसी प्रकार अज्ञानी अपने-अपने ज्ञानको बोलते भी, ठीक अर्थको नहीं जानते, जैसे अज्ञानवाला म्लेच्छ ॥१६॥४३॥

अज्ञानियोंका विमर्ष (अपने पक्ष) अज्ञानका निश्चय नहीं कर सकता। अपने (पक्षको) भी जब परको नहीं समझा सकता तो दूसरेको (अन्य ज्ञान) कैसे सिखलायेगा ॥१७॥४४॥

वनमें जैसे मूढ़ (दिशाभ्रान्त) प्राणी (दूसरे) मूढ़का अनुगामी हो, तो दोनों अजान भारी शोकको प्राप्त होंगे ॥१८॥४५॥

अन्धा (दूसरे) अन्धेको पथ पर ले जाता दूर रास्ते जा रहा है, तो (वह) जन्तु उत्पथको प्राप्त होगा, या दूसरे पथका अनुगामी होगा ॥१९॥४६॥

ऐसे ही कोई मोक्षके इच्छुक (कहते हैं)...हम धर्मके आराधक हैं, पर वे अधर्ममें पहुंचेंगे, सबसे सीधे (मार्ग) पर नहीं जायेंगे ॥२०॥४७॥

ऐसे ही कोई अपने वितर्कोंसे दूसरेकी सेवा नहीं करते, अपने ही वितर्कोंसे "यह ठीक (मार्ग) है," वह दुर्मति समझते हैं ॥२१॥४८॥

धर्म-अधर्मके पण्डित ऐसे तर्कसे साधते उसी तरह दुःखको पूरी तरह नहीं तोड़ सकते, जैसे (फंसी) चिड़िया पिंजड़ेको ॥२२॥४९॥

अपने-अपनेको प्रशंसते दूसरेके वचनको निन्दते, जो वहां पण्डिताई झाड़ते हैं, वे संसारमें बिल्कुल बंधे हुए हैं ॥२३॥५०॥

३—क्रियावाद—

इसके बाद पूर्वोक्त क्रियावादी दर्शन है, (वह) संसारको बढ़ाने वाले कर्मके चिन्तनसे भ्रष्टोंका (दर्शन) है ॥२४॥५१॥

जानते हुये भी कायासे हिंसा नहीं करता, और न जानते हुये हिंसा करता है, तो वह कर्म (फल) लगा अनुभव करेगा, पर वह दोषयुक्त स्पष्ट नहीं होगा ॥२५॥५२॥

ये तीन आदान (कर्म बन्धनके कारण) हैं, जिनसे (आदमी) पाप करता है—

(१) स्वयं हिंसाके लिये आक्रमण कर, (२) दूसरोंको भेजकर, और (३) मनसे अनुमति देकर ॥२६॥५३॥

ये तीन उपादान हैं, जिनसे (आदमी) पाप करता है, इस प्रकार भाव (चित्त) की शुद्धिसे निर्वाणको प्राप्त करता है ॥२७॥५४॥

अ-संयमी पिता (आपत्में) पुत्रको मारकर जो खाये, तो कर्मसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही मेधावी भी (ऐसा अन्य दार्शनिकोंका मत है) ॥२८॥५५॥

जो मनसे (प्राणी पर) द्वेष करते हैं उनका चित्त शुद्ध नहीं है, उनकी निर्दोषता झूंठी है, वह संवर (ब्रह्म) चारी नहीं है ॥२९॥५६॥

इसप्रकारकी इन दृष्टियों (मतों) से सुख-सम्मानमें बंधे, "हमारा दर्शन शरण है" यह मानते लोग पापका सेवन करते हैं ॥३०॥५७॥

जैसे खूब टपकती नाव पर चढ़कर (कोई) जन्मान्ध पार जाना चाहे, तो वह बीचमें ही डूबेगा ॥३१॥५८॥

इसी तरह कोई-कोई मिथ्यादृष्टि, अनाड़ी, संसार पार जानेके इच्छुक श्रमण संसारमें ही चक्कर खाते रहते हैं। ऐसा मैं कहता हूं ॥३२॥५९॥

—०—

३—उद्देशक

१—कर्म भोग—

श्रद्धालु गृहस्थने अतिथि (श्रमण) के लिए इच्छित जो कुछ भी पूतिकृत (पकाकर तैयार किया) है, उसे हजार घरकी दूरी पर बँटने पर भी (जो) खाये, वह (साधु-गृहस्थ) दोनोंके पक्षका सेवन करता है ॥१॥६०॥

उसी (आधाकर्म*) को न जानते विषम (स्थिति) को न जानते (दूसरे मतवाले) पानीके बढ़ावमें विशाल मछलियोंकी भांति हैं ॥२॥६१॥

जलके प्रभावसे सूखे-गीलेमें पहुंच (मछलियां) आमिषार्थी चील्हों और कौओंसे पीड़ित होती हैं ॥३॥६२॥

वैसे ही वे वर्तमान सुख चाहने वाले (श्रमण), विशाल मछलियोंकी भांति अनन्त वार घातको प्राप्त होंगे ॥४॥६३॥

२—जगत्कर्ता—

यहां किसी-किसीने यह दूसरा अज्ञान वखाना है—देव द्वारा वनाया गया यह लोक है, दूसरे कहते हैं ब्रह्मा द्वारा रचा गया है ॥५॥६४॥

ईश्वर द्वारा उत्पादित है, दूसरे (कहते हैं) प्रकृति द्वारा जीव अजीव सहित सुख-दुःख-युक्त यह लोक० ॥६॥६५॥

महर्षिने कहा—स्वयम्भूने लोक बनाया, मार (यमराज) ने माया तैयार की, उसीसे लोक अनित्य है ॥७॥६६॥

---

*भिक्षुके लिये वनाया गया आहार।

कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण जगत्‌को अण्डेसे बना बतलाते हैं, उस (ब्रह्मा) ने तत्व बनाया-यह बिना जाने ही झूंठ बोलते हैं ॥८॥६७॥

अपनी मनगढ़न्तोंसे लोकको बना बतलाते हैं, वे तत्वको नहीं जानते। कभी भी (लोक-अत्यन्त) विनाशी नहीं है ॥९॥६८॥

दु:खको बुरी उत्पत्तिका कारण जानना चाहिए, उत्पत्तिको बिना जाने कैसे संवर (संयम) को जान पाएंगे ॥१०॥६९॥

कोई-कोई कहते हैं—आत्मा शुद्ध निष्पाप है। फिर क्रीड़ाके दोषसे वह दोष-युक्त होता है ॥११॥७०॥

यहां मुनि संवरयुक्त हो निष्पाप होता है, जैसे जल, जो (कभी) रज-सहित और (कभी) रजरहित होता है ॥१२॥७१॥

ऐसे इन (मतों) को जानकर मेधावी उनमें ब्रह्मचर्यवास न करे, वे सारे प्रवादी अपने-अपने (मत) का (झूठा) बखान करते हैं ॥१३॥७२॥

३—शैव आदि मत—

अपने-अपने (शीलके) अनुष्ठानसे ही सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। इसलिये यदि इंद्रिय वशी हो जाये तो सारी कामनायें पूरी हो जायें ॥१४॥७३॥

कोई-कोई कहते हैं—सिद्ध रोग रहित होते हैं। इसलिए सिद्धि का ही विचार करके अपने मत में आदमी गुंथे हुए हैं ॥॥१५॥७४॥

संवरहीन जन अनादिकाल तक पुनः पुनः चक्कर काटते रहेंगे, असुरोंके पापयुक्त (नरक) स्थान में कल्पकाल तक पैदा होंगे। यह कहता हूं ॥१६॥७५॥

४—उद्देशक

१ (पर मत)—

हे...ये (दूसरे मतवाले) पण्डित मानी मूढ़ (काम आदिसे) पराजित हैं, शरण नहीं हैं। (ये तो) पहले के (गृही) बन्धनको छोड़कर उसीको (फिरसे) उपदेशते हैं ॥१॥७६॥

इसे विद्वान् भिक्षु जानकर उनमें लिप्त न हो, अभिमान और लीनता छोड़ मध्यम प्रकारसे बर्ताव करे ॥२॥७७॥

कोई कहते हैं—यहां (मोक्षमें) परिग्रह-युक्त हिंसारत (जाते हैं), पर भिक्षु परिग्रह-रहित हिंसाविरतकी शरणमें जाये ॥३॥७८॥

(दूसरेके) बनाये में कौर पाना चाहे, विद्वान् दिये (आहार को) लेना चाहे, बे-चाह और मुक्त (चित्त) होकर भी (दूसरेका) अपमान न करे ॥४॥७९॥

२ लोकवाद—

कोई कहते हैं—लोक में (प्रचलित) वादको सुनना चाहिये, पर वह तो उलटी बुद्धिकी उपज है, और दूसरोंके कहेका अनुगामी (होना) है ॥५॥८०॥

लोक अनन्त, नित्य, शाश्वत, नहीं विनसेगा, लोक अन्तवान् नित्य है, यह धीर (पुरुष) देखता है ॥६॥८१॥

३ सदाचार उपदेश—

कोई कहते हैं—यहाँ अपरिणाम ज्ञानवाला (कोई) है। सर्वत्र परिणाम-वाला है. ऐसा धीर देखता है ॥७॥८२॥

जो कोई जंगम या स्थावर प्राणी रहते हैं, उनका पर्याय (रूपान्तर) अवश्य होता है, जिससे वे त्रस-स्थावर हैं ॥८॥८३॥

जगत् (के जीवों) का योग स्थूल है, वे उलटे (रूप) को प्राप्त होते हैं, कोई दुःख पसंद नहीं करता, इसलिये किसीकी हिंसा न करे ॥९॥८४॥

यही ज्ञानियों (के वचन) का सार है, कि किसीकी हिंसा न करे, अहिंसा और समता (वस) इतना जानना चाहिये ॥१०॥८५॥

साधुसामाचारी (ब्रह्मचर्य) में वसा, वे-चाह, (ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों के व्रत-) आदानकी ठीकसे रक्षा करे। चलने-वैठने-सोने, यहाँ तक कि खान-पान में भी संयम करे ॥११॥८६॥

उक्त तीनों स्थानों में मुनि निरन्तर संयमयुक्त रहे, अभिमान, कोप, माया और लोभ न रक्खे ॥१२॥८७॥

साधु सदा (पांचों) समितियोंसे युक्त, पांच संवरोंसे संवरित रहे। (वंधु-वान्धवके सम्वन्धोंमें) न वंधा भिक्षु मोक्ष तक के लिए प्रव्रजित होवे। ऐसा कहता हूं ॥१३॥८८॥

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

—०—

वेतालीय-अध्ययन २—उद्देशक १

१. कर्मभोग—

समझो, क्यों नहीं समझते, मरनेके वाद संबोधि (समझना) दुर्लभ है। वीती रातें नहीं लौटेंगी, फिर (संयम) जीवन सुलभ नहीं होगा॥१॥८९॥

देखो, वालक, वूढ़े और गर्भस्थ मनुष्य भी मर जाते हैं। जैसे वाज वत्तक को पकड़ता है, ऐसे ही आयु क्षय होने पर (जीवन) टूट जाता है ॥२॥९०॥

माता-पिता द्वारा कितने वर्वाद किये जाते हैं,मरने पर सुगति सुलभ नहीं। इन भयोंको देखकर, सुव्रत (जन) हिंसासे विरत हो जाये ॥३॥९१॥

जगत्में प्राणी अलग-अलग (अपने) कर्मोंसे वर्वाद होते हैं, अपने किये से पकड़े जाते हैं, उसे भोगे विना नहीं छूटते ॥४॥९२॥

देव, गन्धर्व, राक्षस, असुर, स्थलचर, रेंगने वाले जन्तु, राजा, नगरसेठ, ब्राह्मण, सभी स्थानसे च्युत होते हैं ॥५॥९३॥

कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण जगत्‌को अण्डेसे बना बतलाते हैं, उस (ब्रह्मा) ने तत्व बनाया-यह बिना जाने ही झूंठ बोलते हैं ॥८॥६७॥

अपनी मनगढ़न्तोंसे लोकको बना बतलाते हैं, वे तत्वको नहीं जानते। कभी भी (लोक-अत्यन्त) विनाशी नहीं है ॥९॥६८॥

दुःखको बुरी उत्पत्तिका कारण जानना चाहिए, उत्पत्तिको बिना जाने कैसे संवर (संयम) को जान पाएंगे ॥१०॥६९॥

कोई-कोई कहते हैं—आत्मा शुद्ध निष्पाप है। फिर क्रीड़ाके दोषसे वह दोष-युक्त होता है ॥११॥७०॥

यहां मुनि संवरयुक्त हो निष्पाप होता है, जैसे जल, जो (कभी) रज-सहित और (कभी) रजरहित होता है ॥१२॥७१॥

ऐसे इन (मतों) को जानकर मेधावी उनमें ब्रह्मचर्यवास न करे, वे सारे प्रवादी अपने-अपने (मत) का (झूठा) बखान करते हैं ॥१३॥७२॥

३—शैव आदि मत—

अपने-अपने (शीलके) अनुष्ठानसे ही सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। इसलिये यदि इंद्रिय वशी हो जाये तो सारी कामनायें पूरी हो जायें ॥१४॥७३॥

कोई-कोई कहते हैं—सिद्ध रोग रहित होते हैं। इसलिए सिद्धि का ही विचार करके अपने मत में आदमी गुंथे हुए हैं ॥॥१५॥७४॥

संवरहीन जन अनादिकाल तक पुनः पुनः चक्कर काटते रहेंगे, असुरोंके पापयुक्त (नरक) स्थान में कल्पकाल तक पैदा होंगे। यह कहता हूं ॥१६॥७५॥

४—उद्देशक

१ (पर मत)—

हे···ये (दूसरे मतवाले) पण्डित मानी मूढ़ (काम आदिसे) पराजित हैं, शरण नहीं हैं। (ये तो) पहले के (गृही) बन्धनको छोड़कर उसीको (फिरसे) उपदेशते हैं ॥१॥७६॥

इसे विद्वान् भिक्षु जानकर उनमें लिप्त न हो, अभिमान और लीनता छोड़ मध्यम प्रकारसे बर्ताव करे ॥२॥७७॥

कोई कहते हैं—यहां (मोक्षमें) परिग्रह-युक्त हिंसारत (जाते हैं), पर भिक्षु परिग्रह-रहित हिंसाविरतकी शरणमें जाये ॥३॥७८॥

(दूसरेके) बनाये में कौर पाना चाहे, विद्वान् दिये (आहार को) लेना चाहे, बे-चाह और मुक्त (चित्त) होकर भी (दूसरेका) अपमान न करे ॥४॥७९॥

२ लोकवाद—

कोई कहते हैं—लोक में (प्रचलित) वादको सुनना चाहिये, पर वह तो उलटी बुद्धिकी उपज है, और दूसरोंके कहेका अनुगामी (होना) है ॥५॥८०॥

लोक अनन्त, नित्य, शाश्वत, नहीं विनसेगा, लोक अन्तवान् नित्य है, यह धीर (पुरुष) देखता है ॥६॥८१॥

३ सदाचार उपदेश—

कोई कहते हैं—यहाँ अपरिणाम ज्ञानवाला (कोई) है। सर्वत्र परिणाम-वाला है. ऐसा धीर देखता है ॥७॥८२॥

जो कोई जंगम या स्थावर प्राणी रहते हैं, उनका पर्याय (रूपान्तर) अवश्य होता है, जिससे वे त्रस-स्थावर हैं ॥८॥८३॥

जगत् (के जीवों) का योग स्थूल है, वे उलटे (रूप) को प्राप्त होते हैं, कोई दुःख पसंद नहीं करता, इसलिये किसीकी हिंसा न करे ॥९॥८४॥

यही ज्ञानियों (के वचन) का सार है, कि किसीकी हिंसा न करे, अहिंसा और समता (बस) इतना जानना चाहिये ॥१०॥८५॥

साधुसामाचारी (ब्रह्मचर्य) में वसा, वे-चाह, (ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों के व्रत-) आदानकी ठीकसे रक्षा करे। चलने-बैठने-सोने, यहाँ तक कि खान-पान में भी संयम करे ॥११॥८६॥

उक्त तीनों स्थानों में मुनि निरन्तर संयमयुक्त रहे, अभिमान, कोप, माया और लोभ न रक्खे ॥१२॥८७॥

साधु सदा (पांचों) समितियोंसे युक्त, पांच संवरोंसे संवरित रहे। (वंधु-बान्धवके सम्बन्धोंमें) न बंधा भिक्षु मोक्ष तक के लिए प्रव्रजित होवे। ऐसा कहता हूं ॥१३॥८८॥

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

—०—

वेतालीय-अध्ययन २—उद्देशक १

१. कर्मभोग—

समझो, क्यों नहीं समझते, मरनेके बाद संबोधि (समझना) दुर्लभ है। बीती रातें नहीं लौटेंगी, फिर (संयम) जीवन सुलभ नहीं होगा॥१॥८९॥

देखो, बालक, बूढ़े और गर्भस्थ मनुष्य भी मर जाते हैं। जैसे बाज वत्तक को पकड़ता है, ऐसे ही आयु क्षय होने पर (जीवन) टूट जाता है ॥२॥९०॥

माता-पिता द्वारा कितने बर्बाद किये जाते हैं, मरने पर सुगति सुलभ नहीं। इन भयोंको देखकर, सुव्रत (जन) हिंसासे विरत हो जाये ॥३॥९१॥

जगत्में प्राणी अलग-अलग (अपने) कर्मोंसे बर्बाद होते हैं, अपने किये से पकड़े जाते हैं, उसे भोगे विना नहीं छूटते ॥४॥९२॥

देव, गन्धर्व, राक्षस, असुर, स्थलचर, रेंगने वाले जन्तु, राजा, नगरसेठ, ब्राह्मण, सभी स्थानसे च्युत होते हैं ॥५॥९३॥

कामभोगों और स्त्री संसर्गमें लोभी जन्तु, काल पाकर कर्मफल भोगते हैं। बन्धनसे टूटे ताल (फल) की भान्ति आयु-क्षय होने पर (जीवन) टूट जाता है ॥६॥९४॥

चाहे बहुश्रुत हो, या धार्मिक ब्राह्मण, भिक्षु हो। (सभी) मायामें फंसे वे कर्मों द्वारा खूब कुतरे जाते हैं ॥७॥९५॥

देखो, वैराग्यमें तत्पर, बिना पार हुए (जन) मोक्ष बखानते हैं, आर-पार को तू कैसे जानेगा, बीचमें कर्मों द्वारा कुतरा जायगा ॥८॥९६॥

चाहे नंगा दुबला-पतला विचरे, चाहे मास बीतने पर भोजन करे। जो यहां मायामें फंसा है, वह अनन्त बार गर्भमें आयेगा ॥९॥९७॥

हे पुरुष! पापकर्मसे विरत हो, मनुजोंका जीवन अन्तवाला है। बंधे, कामोंमें लिप्त, संवरहीन आदमी मोहको प्राप्त होते हैं ॥१०॥९८॥

१. संयमका जीवन—

यत्नशील, योगयुक्त हो तू विहार कर, सूक्ष्म जन्तुओंवाला दुस्तर पंथ है। (वह) वीर ने ठीकसे बतला दिया है, उसी अनुशासन पर चल ॥११॥९९॥

विरत, उत्थानयुक्त, क्रोध-माया आदिसे दूर वीर, सर्वथा प्राणियोंको नहीं मारते। (जो) पापसे विरत हैं, वे निर्वाण-प्राप्त हैं ॥१२॥१००॥

साधन रहित पुरुष ऐसा देखे—मैं ही इन अभावोंका शिकार नहीं हूं, लोकमें दूसरे प्राणी भी बर्बाद हो रहे हैं। आपत् पड़ने पर उद्वेग रहित हो उन्हें सहे ॥१३॥१०१॥

भीतके लेपको उखाड़ने की तरह अनशन आदिसे देह (विकार) को कृश करे, अहिंसा का ही पालन करे, मुनि ने यही धर्म बतलाया है ॥१४॥१०२॥

धूलसे भरी चिड़िया जैसे कम्पनकर अपनी धूलको हटा फेंकती है, ऐसे ही सारवान् उपवासादि तपयुक्त हो तपस्वी ब्राह्मण कर्मको क्षीण करता है ॥१५॥१०३॥

अपने लक्ष्यमें दृढ़ अन्-आगारिक तपस्वी श्रमणको (परिवारके) तरुण, वृद्ध प्रार्थना करते चाहे सूख भी जायें, पर उसे (घर) न लौटा पायें ॥१६॥१०४॥

चाहे करुण (दृश्य उपस्थित) करें, चाहे पुत्रके लिए रुदन करें, तो भी परमार्थ परायण-भिक्षुको घरमें नहीं रख सकेंगे ॥१७॥१०५॥

चाहे भोगका प्रलोभन दें, चाहे बांधकर घर ले जायें, यदि वह असंयत जीवनसे बचा है, तो उसे (घरमें) नहीं रख सकेंगे ॥१८॥१०६॥

ममता रखने वाले माता-पिता, सुत भार्या सीख देते हैं—तुम तो दूर-दर्शी हो, हम अशरणोंको पालो, परलोकको बिगाड़ रहे हो, अतः हमें पोसो ॥१९॥१०७॥

दूसरे (अपनों) में आसक्त संवर-हीन नर मोहमें फंस जाते हैं, बन्धुओं द्वारा विषम (चर्या) में फंसाये जाने पर फिर ढीठ बन जाते हैं ॥२०॥१०८॥

इसलिए तू पण्डित, परमार्थ देख। पापसे विरत, शान्त हो, वीर महा-पथको पाते हैं, जो अचल सिद्धिपथको ले जाता है ॥२१॥१०९॥

मन-वचन-कायासे संवर युक्त हो, वेतालीय (विदारक) मार्गपर आरूढ़ (भिक्षु) धन-परिवार-आरम्भको छोड़ सुसंवर युक्त हो विचरे। ऐसा कहता हूं ॥२२॥११०॥

—०—

२—उद्देशक

१. भिक्षुजीवन—

जैसे सर्प केंचुल छोड़ देता है, वैसे ही (आठ) रजोंको छोड़े। ऐसा सोच ब्राह्मण (मुनि) जाति-गोत्रका अभिमान नहीं करता, दूसरेकी निन्दा बुरी समझ उसे नहीं करता ॥१॥१११॥

जो दूसरे जनको अपमानित करता है, वह संसारमें बहुत भ्रमता है। परनिन्दा पापिनी है, यह जान मुनि मद नहीं करता ॥२॥११२॥

चाहे स्वामी-रहित (चक्रवर्ती) हो, अथवा सेवकका भी सेवक। जो मुनि-मार्ग पर स्थित है, वह न लजाये, सदा समताका आचरण करे ॥३॥११३॥

विशुद्ध श्रमण यावत् जीवन किसी संयममें (स्थित) प्रव्रज्या लेकर द्रव्य-भूत पण्डित कथासमाप्ति (मृत्यु) तक वैसा रहे ॥४॥११४॥

मुनि दूर (मोक्ष) को अतीत या भविष्यकी बातोंको देखे, कठोर (यात-नाओंको) भोगता, मारा जाता भी ब्राह्मण समय (संयमव्रत) पर चले ॥५॥११५॥

सम्पूर्णप्रज्ञ मुनि सदा आठ रज (चित्तमलों) को जीते, समता धर्मका उपदेश करे, संवरके सम्बन्धमें सदा वेरुख न रहे, ब्राह्मण (मुनि) को मानी नहीं होना चाहिये ॥६॥११६॥

बहुजन द्वारा प्रणम्य (धर्म) में संवरयुक्त सभी अर्थोंमें अनासक्त रहे। काश्यप (भगवान्) के धर्मको निर्मल सरोवरसा प्रकट करे ॥७॥११७॥

अलग-अलग बहुतसे प्राणी (दुनियामें) हैं, प्रत्येकको समतासे देख, जो मुनिपद पर स्थित है, वह पण्डित उनमें (लोगोंसे) हिंसाविरति कराये ॥८॥११८॥

धर्ममें पारंगत हिंसाके अन्त-अभावमें स्थित (पुरुष) मुनि कहलाता है।

ममतावाले (जन) शोक करते हैं, (जब) अपने (वस्तु) परिग्रहको नहीं प्राप्त करते ॥६॥११६॥

धन-कुल-परिवार इस लोकमें भी दुःखद हैं। परलोकमें भी दुःख-दुःखद हैं। वह ध्वंस स्वभाववाले हैं, ऐसा जान कौन घरमें रहेगा॥१०॥१२०॥

जो यह वन्दना-पूजना है, यह महा कीचड़ है। यह कठिनाईसे निकलने वाला कांटा है, अतः विद्वान्‌को सम्मानका त्याग करना चाहिए ॥११॥१२१॥

वचन पर संयम, मन पर संयम, तपमें पराक्रमी हो भिक्षु अकेला विचरे-ठहरे, अकेला शयन-आसन रखे तथा ध्यानयुक्त रहे ॥१२॥१२२॥

संयमी (भिक्षु) (अपने निवासवाले) शून्य घरका द्वार न बंद करे, न खोले, पूछने पर न बोले, घरमें झाड़ू न दे, न घास बिछाये ॥१३॥१२३॥

चलते-चलते जहाँ सूर्य अस्त हो, वहीं मुनि ऊबड़-खावड़ (भूमि) को बिना आकुल हुए स्वीकार करे, चाहे वहां कीट-मच्छर या (सांप-बिच्छू जैसे) सरीसृप अथवा भैरव (भूत) आदि हों तो भी ···॥१४॥१२४॥

तिर्यग्-पशु-पक्षी, मनुष्य और दिव्य तीन प्रकारके उपसर्गों (बाधाओं) को सिर माथे चढ़ाये। शून्यागारमें रहने वाला महामुनि रोमांच न करे॥१५॥१२५॥

न जीवनकी आकांक्षा करे, न पूजाका इच्छुक हो। उस शून्यागारविहारी भिक्षुको भैरव अभ्यस्त हो जाते हैं ॥१६॥१२६॥

सिद्धिके अत्यन्त समीप पहुंचे, तायी (त्राणकर्ता) एकान्त आसन सेवी मुनिका यह सामायिक (चर्या) कहा गया है, कि अपनेको भय न दिखलाये॥१७॥१२७॥

गरम जल, ताते भोजनको लेनेवाले, धर्ममें स्थित, लज्जालु मुनिको राजाओंका संसर्ग अच्छा नहीं, क्योंकि उससे तथागत (मुनि) की समाधि नहीं रहती ॥१८॥१२८॥

झगड़ा (अधिकरण) करनेवाले, अति कठोर बोलनेवाले भिक्षुका (परम) अर्थ नष्ट हो जाता है, अतः पण्डितोंको झगड़ा नहीं करना चाहिए ॥१९॥१२९॥

बिना औटे जलसे जुगुप्सा करनेवाले कामना रहित, बन्धनवाले कर्मोंसे दूर रहने वाले, भिक्षुकी यह सामायिक चर्या है, जो कि गृहीके पात्रमें भोजन नहीं खाता ॥२०॥१३०॥

(टूटा) जीवन नहीं जोड़ा जा सकता, तो भी मूढ़ जन फूलता है, मूढ़ पापोंमें लिप्त होता है, यही समझ मुनि मद नहीं करता ॥२१॥१३१॥

बहुत मायावाली, मोहसे ढंकी यह जनता स्वेच्छासे नरकमें पड़ती है।

निष्कपट ब्राह्मण (मुनि) संवरमें लीन रहता है। वचन, मन और कायसे शीत-उष्णको सहन करता है ॥२२॥१३२॥

न-हारा जुआड़ी जैसे चतुर जुआड़ीके साथ पासोंसे खेलता हुआ, चौथेको ही लेता है, एक्के-दूए-तीएको नहीं लेता ॥२३॥१३३॥

इस प्रकार लोकमें तायी (महावीर) नें जो अनुपम धर्म कहा, उसे ग्रहण करे, बाकीको हटाए; वह चौकेकी भांति ही उत्तम हितू है ॥२४॥१३४॥

यहाँ मैंनें सुना है—ग्रामधर्म (मैथुनादि) दुर्जित कहे गए हैं, पर महावीर के धर्मके अनुगामी पराक्रमी (भिक्षु)उससे विरत हैं ॥२५॥१३५॥

ज्ञातृपुत्र महान् महर्षि द्वारा कहे गये इस धर्म पर जो आचरण करते हैं, वह उट्ठित निरालस, व समुट्ठित हैं, एक दूसरेसे धर्मानुसार सारण(व्यवहार) करते हैं ॥२६॥१३६॥

पहलेके भोगे भोगोंकी ओर न देखे, उपाधि (आठ रजोंको) धुन डालनें की कामना करे। जो मन बिगाड़ने वाले विषय हैं, उनमें आसक्त नहीं हो, वे अपने अन्दरकी समाधिको जानते हैं ॥२७॥१३७॥

संयमी (भिक्षु) को कथक्कड़ नहीं होना चाहिए, न प्रश्न करनेवाला, न बात फैलाने वाला। श्रेष्ठ धर्मको जानकर कृतकरणीय होना चाहिए, ममता वाला नहीं ॥२८॥१३८॥

ब्राह्मण (मुनि) छिपी (माया), प्रशंसनीय (लोभ), उत्कोश (मान), और प्रकाश (क्रोध) नहीं करे। जो धुतांग को सुसेवित कर (धर्ममें) प्रणत हैं, उनमें वह सुविवेक निहित हो गया ॥२९॥१३९॥

रागविरत, हितयुक्त, सुसंवर-युत, धर्मार्थी, तपःपरायण, शान्त-इन्द्रिय होकर विहरे। अपना हित कठिनाई से प्राप्त होता है ॥३०॥१४०॥

जगत्के सर्वदर्शी ज्ञातृ-पुत्र मुनिने जो सामायिक कहा, निश्चय ही वह पहले नहीं सुना गया, न वैसा आचरण किया गया था ॥३१॥१४१॥

ऐसे इसे समझकर इस श्रेष्ठ धर्मको ले बहुतेरे हितयुक्त (जन), गुरुके आशयका अनुवर्तन करते हुए विरक्त हो कथित महाबाढ़को पार कर गये—यह कहता हूं ॥३२॥१४२॥

———

३—उद्देशक

(संयमका जीवन)

कर्ममें संयत भिक्षुको जो अनजाने दुःख भोगना पड़ता है, वह संयम-साधन से नष्ट हो जाता है, मरणमें शरीर के छोड़ने पर वह पण्डित परमधाम को चला जाता है ॥१॥१४३॥

जो विज्ञापनाओं (नारियों) से अ-संसक्त हैं, वे (भवसागरसे) तरे कहे गये हैं, उस नारिसंसर्ग से ऊपर (मोक्ष को) देखो, मुनियों ने कामभोगोंको रोग सा देखा ॥२॥१४४॥

व्यापारियों द्वारा लाये श्रेष्ठ रत्नादि को राजा लोग धारण करते हैं, वैसे ही रात्रि भोजनादिका त्याग परम महाव्रत कहा गया है, जिन्हें कि संयमी धारण करते हैं ॥३॥१४५॥

यहां जो सुखके पीछे चलने वाले, आसक्त, कामभोगोंमें लीन, कृपणों (दरिद्रों) के समान, ढीठ निर्लज्ज हैं, वे उक्त समाधिको नहीं जान सकते ॥४॥१४६॥

जैसे गाड़ीवान् द्वारा पीटा और प्रेरित, वह कम सामर्थ्य, दुर्बल बैल गाड़ी को अधिक नहीं खींच सकता, और थक जाता है ॥५॥१४७॥

वैसे ही काम (संबंधी) भोगकी इच्छा जान, आज या कल (नारी) संसर्गको छोड़ दे, कामी हो काम (भोगों) की कामना न करे, मिलने पर भी न मिली जैसी माने ॥६॥१४८॥

पीछे बुरी योनिमें न जाना हो, इसलिए······अलग कर अपने पर अनुशासन करे। असाधु (पुरुष) अधिक शोकमें पड़ता है, बहुत रोता-क्रन्दन करता है ॥७॥१४९॥

यहीं जीवनको देखो, सौ वर्ष जीने वाला (मानव) तरुण टूट जाता है। इस जीवनको भंगुर समझो। लोभी नर कामभोगमें अपनेको खो देते हैं॥८॥१५०॥

जो हिंसापरायण, तीन दण्डसे दण्डित, बिल्कुल रूक्ष जन हैं, वह पाप-लोकमें जायेंगे, चिरकाल तक आसुरी दिशा (नरक) में पड़ेंगे ॥९॥१५१॥

(टूटा) जीवन जोड़ा नहीं जा सकता, तो भी मूढ़ जन घमंड करता है— वर्तमानसे मुझे काम है, कौन परलोकको देखकर लौटा है ॥१०॥१५२॥

हे अंधे मानव ! दृष्टा (भगवान) के कहे पर श्रद्धा कर। हे थोड़ा देखने वाले, अपने किए मोहनीय कर्मसे देखने की शक्ति बन्द हो जाती है, इसे जान ॥११॥१५३॥

दुःखी (जन) पुनः पुनः मोहको प्राप्त होता है, (अतः अपनी) स्तुति-पूजा से

विरक्त हो। इस प्रकार धर्म सहित, संयत (पुरुष) सारे प्राणियोंको अपने जैसा जाने ॥१२॥१५४॥

नर चाहे घरमें वसे, पर क्रमशः प्राणियोंके विषयमें संयत हो, सबमें समता भाव, सुन्दर व्रतधारी हो तो वह देवोंकी सलोकताको प्राप्त होता है ॥१३॥१५५॥

भगवान (महावीर) के अनुशासन को सुनकर वहां सत्यमें पराक्रम करे, सबमें ईर्ष्या-रहित हो, शुद्ध मधूकड़ी-गोचरी लाये ॥१४॥१५६॥

सब जानकर धर्मार्थी प्रधान (ध्यान) में तत्पर हो संवरका अधिष्ठान करे। सदा (मनसा, वाचा, कर्मणा) गुप्त और योगयुक्त परम मोक्ष के लिए स्थित हो, अपने पराये (हित) के लिए प्रयत्न करे ॥१५॥१५७॥

धन, पशु और कुल-परिवार हैं, इनको मूढ़ शरण समझता है—"ये मेरे हैं, उनके भीतर मैं हूं" (पर वहाँ) कोई त्राण और शरण नहीं है ॥१६॥१५८॥

दुःख के आ पड़ने पर, अथवा जीवनान्त (प्रसंग) के आ पहुंचने पर, अकेले को ही आना-जाना होता है। अतः विद्वान् उन्हें शरण नहीं मानता ॥१७॥१५९॥

सारे प्राणी अपने कर्मसे निर्मित हैं, अप्रगट दुःखसे दुःखित हैं। जन्म-जरा-मरणसे उत्पीड़ित शठ भवसागरमें भटकते हैं ॥१८॥१६०॥

"यही क्षण हमारे पास है, बोधि (परमज्ञान) सुलभ नहीं है" यह कहा गया है। (ज्ञानादि) भावदृष्टि सहित ऐसा देखे, यही जिनने और शेष जिनों ने कहा है ॥१९॥१६१॥

भिक्षुओ! पहले भी जिन हुये, आगे भी होंगे। काश्यपके धर्मानुगामी सुव्रत इन गुणों को (मोक्ष का साधन) बतलाते हैं ॥२०॥१६२॥

(मन-वचन-काय) तीनों प्रकार से प्राणों को न मारे। आत्महितु, अकारण संवरयुक्त रहे। इस प्रकार आज तक अनन्त जीव सिद्ध हुए और भविष्य में दूसरे होंगे ॥२१॥१६३॥

ऐसा उन प्रथमके (अनन्त) जिनने कहा। अनुपम, सर्वोत्तम ज्ञानी, सर्वात्मदर्शी, अनुपम ज्ञान-दर्शन-धारी अर्हत् वैशालिक भगवान् ज्ञात-पुत्रने भी (वैसा) कहा। यह मैं कहता हूं ॥२२॥१६४॥

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ द्वितीय-अध्ययन समाप्त ॥

—०—

उपसर्ग-अध्ययन ३—उद्देशक १

ऋतु आदि बाधा—

जब तक दृढ़ हिम्मतवाले जूझते विजेताको नहीं देखता, तब तक कायर भी (उसी तरह) अपने को शूर समझता है, जैसे महारथी कृष्ण के पहले शिशुपाल ॥१॥१६५॥

संग्राम उपस्थित होने पर शूर रणक्षेत्रमें जाते हैं। (वहां) विजेता द्वारा छिन्न-भिन्न (अपने) बेटे को मां भी नहीं पहचान पाती ॥२॥१६६॥

इसी प्रकार भिक्षुचर्यामें न-चतुर नौसिखिया अनुभव-हीन भिक्षु रूखे श्रमणजीवन का न सेवन किये हुए, अपने को सूरमा समझता है ॥३॥१६७॥

जब जाड़े के महीनों में सारे अंग में सरदी लगती है, तो मन्द (व्यक्ति) उसी तरह हिम्मत हारते हैं, जैसे बिना राजका क्षत्रिय राजा ॥४॥१६८॥

गरमीकी लू लगने से परेशान और अतिप्यासे होने पर, वहां मन्द उसी तरह हिम्मत हारते हैं, जैसे थोड़े जलमें मछली ॥५॥१६९॥

दत्त (भिक्षा) की कामना दुःखरूप है, मांगना दुस्सह है, साधारण जन बातकी डींग मारते हैं। (ये) अभागे "कर्मके मारे हैं" ॥६॥१७०॥

गांवों और नगरों में इन शब्दों को सहन करने में असमर्थ, मंद वैसे ही हिम्मत हारते हैं, जैसे संग्राममें कायर ॥७॥१७१॥

यदि भूखे भिक्षुको (चण्ड) कुतिया काट खाती है, तो वहाँ मन्द वैसे ही हार मानते हैं, जैसे आग छू जाने पर प्राणी ॥८॥१७२॥

फिर कोई विरोधी निन्दा करते हैं—जो ये (भिक्षु) इस तरहकी जीविका करते हैं, ये कियेको भोग-रहे हैं ॥९॥१७३॥

कोई-कोई ताना मारते हैं—ये नंगे, कौर मांगने वाले, अधम, मुंडित, खाज से नष्ट शरीर वाले, पसीनेके मारे अशांत (जीव) हैं ॥१०॥१७४॥

इसप्रकार संदेहमें पड़े हुए स्वयं अजान कोई-कोई मोहके मारे मन्द (भिक्षु) अन्धकारसे (और भी घने) अन्धकारमें जाते हैं ॥११॥१७५॥

२—डंस-मच्छर आदि बाधा—

डांस-मच्छरोंके काटने, घासके बिस्तर, जगनेको न सहन कर सोचने लगते हैं "मैंने परलोक नहीं देखा," (न यही) कि मरनेके बाद क्या होता है ॥१२॥१७६॥

केश नोंचनेसे पीड़ित, ब्रह्मचर्यमें पराजित, मन्द वैसे ही हिम्मत हार जाते हैं, जैसे जालमें पड़ी मछलियां ॥१३॥१७७॥

अपनेको दण्ड देने वाले, उलटी चित्तवृत्ति वाले, राग-द्वेष युक्त, कोई-कोई दुष्ट (जन) भिक्षुको कष्ट देते हैं ॥१४॥१७८॥

वल्कि विदेशोंमें कोई-कोई मूढ़, सुव्रत भिक्षुको "चोर-चोर" कहकर बांधते हैं, कड़वी बातसे दुखाते हैं ।।१५।।१७९।।

डंडे-घूंसे-थप्पड़से पीटे जाने पर मूढ़ भिक्षु उसी तरह अपने घरको याद करता है, जैसे रूसकर (ससुरालसे) भागने वाली स्त्री ।।१६।।१८०।।

ये हैं सारे कठोर, दुस्सह कष्ट, जिनके वसमें पड़ पौरुषहीन (भिक्षु) वैसे ही घर लौट जाता है, जैसे वाणोंसे विंधा हाथी, ऐसा मैं कहता हूं ।।१७।।१८१।।

२—उद्देशक

१—स्वजन वाधा—

फिर जो ये सूक्ष्म दुस्तर सम्वन्ध भिक्षुओंके (अपनोंसे) हैं, उनसे कोई-कोई ब्रह्मचर्यका निर्वाह न कर गिर जाते हैं ।।१।।१८२।।

भाई-बन्धु (भिक्षुको) देख घेरकर रोते हैं—तात, हमने तुम्हें पोसा। तुम हमें पोसो। तात, हमें क्यों छोड़ते हो ।।२।।१८३।।

तात, ये स्थविर तुझे प्रिय हैं, और वहिन (तेरी) कुछ नहीं है। तात, भाई तेरे सगे हैं, क्यों हम सहोदरोंको छोड़ते हो ? ।।३।।१८४।।

माता-पिताको पोसो, क्यों कि (पर) लोक यही हैं। लौकिक कर्त्तव्य है—माता-पिताका पालन करना ।।४।।१८५।।

तात, तेरे उत्तम मधुरभाषी छोटे-छोटे पुत्र हैं, तात, तेरी भार्या नवतरुणी है, वह कहीं दूसरे आदमीके पास न चली जाये ।।५।।१८६।।

आओ तात, घर चलें, काम न करना, हम काम कर देंगे। दूसरी वार हम यहां देख लेंगे, अभी अपने घर चलें ।।६।।१८७।।

तात, चलो, फिर आ जाना, इतने से अ-श्रमण नहीं हो जाओगे। कामभोग का व्यापार न करते कौन तुम्हें रोक सकेगा ? ।।७।।१८८।।

तात, जो कुछ ऋण था, सो भी देकर बराबर कर दिया। व्यापारके लिये जो सोना चाहिये, वह भी हम तुम्हें देंगे ।।८।।१८९।।

इसप्रकार करुणाके साथ उपस्थित वह सिखाते हैं, स्वजनोंमें वंधा होनेसे वह (भिक्षु) घरको भागता है ।।९।।१९०।।

जैसे वनमें उत्पन्न वृक्ष मालुलतासे वांधा जाता है, इसी प्रकार इस भिक्षुको (वह) असमाधिसे वांधते हैं ।।१०।।१९१।।

नये पकड़े हाथीकी तरह स्वजनों द्वारा फंसाए गए उनके पीछे-पीछे दूसरे (जन) नई व्याई गायकी भांति चलते हैं ।।११।।१९२।।

मनुष्योंके ये संसर्ग पाताललोककी भांति दुःखसे तरने लायक हैं। वहां ६१ जनोंके समूहसे मूर्छित नपुंसक क्लेश पाते हैं ।।१२।।१९३।।

उस (परिवार सम्बन्ध) को समझकर भिक्षु "सारे संसर्ग बड़े आस्रव (चित्तमल) हैं" यह श्रेष्ठ धर्म सुनकर असंयत जीवनकी कांक्षा न करे ॥१३॥१९४॥

काश्यप (भगवान् महावीर) ने इन्हें खड्ड बतलाया है, जहांसे वुद्ध-आत्मज्ञ निकल जाते हैं, पर मूढ़ जहां गिर पड़ते हैं ॥१४॥१९५॥

२—राजा आदि वाधा—

राजा, राजमन्त्री, ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, साधुजीवी भिक्षुको भोगके लिए बुलाते हैं ॥१५॥१९६॥

हाथी-घोड़े-रथकी सवारियोंसे, उपवन यात्रासे, उत्तम भोगोंको भोगो, महर्षि हम तुम्हें पूजते हैं ॥१६॥१९७॥

वस्त्र-गन्ध-आभूषणको, स्त्रियोंको और पलंगको—इन भोगोंको भोगो, हम तुम्हें पूजते हैं ॥१७॥१९८॥

हे सुव्रत, भिक्षुरूपमें जो यम-नियम तुमने आचरण किए वह सब घरमें बसने वालेके लिए भी वैसे ही विद्यमान हैं ॥१८॥१९९॥

चिरकालसे संयम करते अव तुम्हें कैसे दोप हो सकता है। इसप्रकार कहते हुए भिक्षुको वैसेही निमन्त्रित करते हैं, जैसे चारा फेंककर सूअरको ॥१९॥२००॥

भिक्षुचर्याके लिए प्रेरित (उसे) निवाहनेमें असमर्थ, वे मंद वैसे ही हिम्मत हार जाते हैं, जैसे चढ़ाईमें दुर्वल व्यक्ति ॥२०॥२०१॥

रूखे व्रतमें असमर्थ, तपश्चर्यासे डरने वाले, मंद पुरुप वहाँ उसी तरह हिम्मत हार जाते हैं, जैसे चढ़ाईमें वूढ़ा वैल ॥२१॥२०२॥

स्त्रियोंमें लुब्ध, होश खोए, कामभोगोंमें फंसे इसप्रकार निमन्त्रणसे प्रेरित हो घर चले जाते हैं। ऐसा कहता हूं ॥२२॥२०३॥

—०—

३—उद्देशक

१—युद्ध बाधा—

जैसे युद्धके समय कायर पीछेकी ओर गहरे छिपे गड्ढेको देखता है, कि कौन जाने कहीं पराजय न हो ॥१॥२०४॥

कायर सोचता है—आपत्तिके समय पराजय होने पर भागकर यहां छिपेंगे ॥२॥२०५॥

ऐसे ही कोई-कोई श्रमण अपनेको निर्बल जान, भविष्यके भयको देख, इन (वाहरी विद्याओं) को (जीविकार्थ) सीख लेते हैं ॥३॥२०६॥

कौन जाने स्त्रीसे या कच्चे जलके व्यवहारसे हम व्रतभ्रष्ट हो जाएं। हमारे पास धन भी नहीं, अतः पूछने पर ज्योतिष आदि हम वतला-एंगे ॥४॥२०७॥

ऐसे ही संदेहमें पड़े हुए, मार्गसे अजान छिपे गड्ढोंको ढूंढने वाले (भिक्षु) सोचते हैं ॥५॥२०८॥

संग्रामकालमें सुरपुरके जाने वाले ज्ञातृ लोग, पीठकी ओर नहीं देखते, (सोचते हैं) मरनेसे (अधिक) क्या होगा ? ॥६॥२०९॥

इसप्रकार घरके बन्धनको छोड़, आरम्भ-हिंसादिको दूर फेंक, पराक्रम करता हुआ भिक्षु कैवल्यके लिए प्रव्रजित हो ॥७॥२१०॥

२—अन्य धर्मियोंकी बाधा—

ऐसे साधुजीवन वाले भिक्षुको कोई निन्दते हैं, तीर्थको जो निन्दते हैं वे समाधिसे बहुत दूर हैं ॥८॥२११॥

३—अन्यकी बाधा—

एक दूसरेमें आसक्त (गृहस्थोंकी तरह) बंधे (ये बौद्ध आदि मतके भिक्षु) रोगीके लिए पिण्डपात (भोजन) लाकर देते हैं ॥९॥२१२॥

आप (जैन साधु) रागयुक्त तथा एक दूसरेके वशमें हैं, सच्चे पथसे भटके हुए तथा भवसागरको पार नहीं किए हैं ॥१०॥२१३॥

मोक्षविशारद भिक्षु उन (अन्य धर्मियों) से बोले—"इसप्रकार बोलते हुए आप बुरे पक्षका ही सेवन करते हैं ॥११॥२१४॥

आप लोग धातु-पात्र में भोजन करते हैं, रोगीके लिये जो मंगाते हैं, उसके लिए बनाये भोजन को बीज और कच्चे जल को खाते हैं ॥१२॥२१५॥

आप लोग तीव्र (कर्म) अभितापसे लिप्त, सत्पथ छोड़े हुए, समाधिहीन हैं। घावको बहुत खुजलाना ठीक नहीं, (क्योंकि उससे) दोष होता है ॥१३॥२१६॥

मिथ्या प्रतिज्ञासे युक्त जानकर (जैन-श्रमण) उनको तत्वका अनुशासन करते हैं—आपका यह मार्ग ठीक नहीं है, (आप) बिना सोचे व्रत और कर्म करते हैं ॥१४॥२१७॥

गृहस्थका लाया हुआ भोजन खाना ठीक है, भिक्षुका लाया० नहीं, यह कहना बांसकी फुनगी की तरह क्षीण है ॥१५॥२१८॥

जो वह (दानादि) धर्मकी देशना है, वह सदोषोंको शोधने वाली है, इन दृष्टियोंसे पहले (यह) नहीं उपदेशी—की गई थी ॥१६॥२१९॥

सभी युक्तियोंसे न पार पाकर फिर वादका निराकरण कर वह और भी ढीठ बनते हैं ॥१७॥२२०॥

राग-द्वेषसे पराजित स्वरूप, झूँठेपनसे भरे वे (अन्य-तीर्थिक) तब (हिमालय पर्वतके) तंगणोंकी भांति गाली पर उतर आते हैं ॥१८॥२२१॥

भिक्षु स्वयं समाहित हो बहुगुण-उत्पादक कामों को करे। वैसा आचरण करे जिससे कि दूसरे विरोधी न हों ॥१९॥२२२॥

काश्यप (भगवान्) के बतलाये इस धर्मदायज को ग्रहण कर, भिक्षु (स्वयं) निरोग और शान्तचित्त हो रोगीकी सेवा करे ।।२०।।२२३।।

दर्शनवाला प्रशान्त (भिक्षु) प्रत्यक्ष श्रेष्ठ धर्मको जानकर बाधाओं पर काबू पाकर मोक्ष तकके लिये प्रव्रज्या ले ।।२१।।२२४।।

४—उद्देशक

अन्यतीर्थिक बाधा (पुनः)—

महापुरुषोंने पहले ही कहा है—"तप्त तपोधन (गंगा आदि के) जल से सिद्धि प्राप्त हुए" यह सोच मंद फँस जाता है ।।१।।२२५।।

भोजन त्यागकर विदेहके निमि राजाने और भोजन करके रामगुप्त ने, बाहुका नदीके (कच्चे)जलको पीकर वैसे ही नारायण ऋषिने सिद्धि प्राप्त की ।।२।।२२६।।

असित, देवल, द्वैपायन महाऋषि और पराशर जल तथा हरे बीजोंको खाकर मुक्त हुए ।।३।।२२७।।

ये पूर्वकथित महापुरुष (हमारे) यहां भी माने जाते हैं, बीज और जल को खाकर सिद्ध हुए, यह मैंने भी सुना है ।।४।।२२८।।

भारके कारण टूट गये गदहोंकी भांति इन (बातों)में मंद फंस जाते हैं और (आग लगने, आदिके) भयके समय पिछलग्गू की भांति पीछे हो लेते हैं ।।५।।२२९।।

कोई कहते हैं—"सुखसे सुख मिलता है" पर यहां (तीर्थकरका) आर्य मार्ग श्रेष्ठ और समाधियुक्त है ।।६।।२३०।।

ऐसे उपेक्षा न करो, थोड़ेके लिये बहुतको न गंवाओ, (उस सुखवाले मत) अ-मोक्ष को समझो, (नहीं तो सोना छोड़) लोहा ले जाने वाले (बनिये) की भांति पछताओगे ।।७।।२३१।।

(वे तो) प्राणिहिंसामें रत, झूठ बोलने में असंयमी, बिना दियेको लेने, मैथुन और परिग्रह में तत्पर हैं ।।८।।२३२।।

कोई स्त्रीवश प्राप्त, जिन शासनसे विमुख संसारी, अनाड़ी ज्ञान और चरित्रसे भ्रष्ट कहते हैं ।।९।।२३३।।

"जैसे फोड़े-फुन्सी को क्षणभर दबा देते हैं, वैसे ही याचना करती स्त्री को भी करे। यहाँ दोष कैसा ।।१०।।२३४।।

जैसे भेड़ थिर जल को पी लेती है, वैसे ही प्रार्थिनी स्त्री को (करे), यहाँ दोष कैसा ।।११।।२३५।।

जैसे पिंग नामक पक्षी स्थिर जल को पी लेते हैं, वैसे ही प्रार्थिनी स्त्री को, यहां दोष कैसा ॥१२॥२३६॥

मिथ्यादृष्टि वासनामें डूवे अनार्य (लोग) बच्चों की (हत्यारिनी) पूतना की तरह ऐसी (संभोगकी) वातें करते हैं ॥१३॥२३७॥

भविष्यका ख्याल न कर, वर्तमानके पीछे पड़े हुए वे तरुण आयुके नष्ट होने पर पीछे परिताप करेंगे ॥१४॥२३८॥

जिन्होंने समय पर पराक्रम किया और पीछे परिताप नहीं किया, वे धीर बंधन से मुक्त हैं, वह जीवनकी कांक्षा नहीं रखते ॥१५॥२३९॥

जैसे वैतरणी नदी को दुस्तर मानते हैं, वैसे ही लोकमें नारियां विवेकहीन के लिये दुस्तर हैं ॥१६॥२४०॥

जिन्होंने नारियोंके संयोग और पूजना (शृङ्गार) को सव का निराकरण करके पीछे छोड़ दिया, वे समाधियुक्त हैं ॥१७॥२४१॥

ये वाढ़को उसी तरह पार करेंगे, जैसे समुद्रको व्यापारी। जिस वाढ़में प्राणी दुःख पाते हुए अपने कर्मो द्वारा कटते हैं ॥१८॥२४२॥

इसे समझकर भिक्षु सुव्रत और समिति युक्त हो कर विचरे, झूठ बोलना छोड़ें, चोरी को त्यागे ॥१९॥२४३॥

ऊपर-नीचे और तिरछे जो कोई जंगम-स्थावर प्राणी हैं, सवमें हिंसाविरत रहे। इसे शान्ति-निर्वाण कहा गया है ॥२०॥२४४॥

काश्यप (भगवान्) द्वारा वतलाये हुए इस धर्मको ग्रहण कर, निरोग शान्त भिक्षु रोगी की परिचर्या करे ॥२१॥२४५॥

शान्त पुरुष प्रत्यक्ष पेशल इस धर्म को समझकर, वाधाओं पर नियन्त्रण कर मोक्षकाल तक के लिये प्रव्रज्या ले। ऐसा कहता हूं ॥२२॥२४६॥

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

स्त्रीपरिज्ञा अध्ययन ४—उद्देशक १

स्त्रीवाधा—

माता-पिताको अपने पहले संयोगको, छोड़कर चाहते हैं···"मैं मैथुनविरत हो ज्ञान दर्शन और चरित्र सहित एकान्तमें विचरूंगा" ॥१॥२४७॥

मन्द स्त्रियां सूक्ष्म-अप्रगट शव्दोंसे भिक्षु के पास आती हैं। वह उन उपायों को भी जानती हैं, जिनसे कोई भिक्षु (उनसे) मिलन करते हैं ॥२॥२४८॥

वार-वार पास में बैठती हैं, वार-वार सुन्दर कपड़ा पहनती हैं; नीचेके शरीरको भी, बांह उठा कांख को दिखलाती; पास आती हैं ॥३॥२४६॥

शयन-आसनके उपयोगके लिये कभी स्त्रियां बुलाती हैं। इन्हें ही भिक्षु नाना रूपके फंदे जाने ॥४॥२५०॥

न उन पर आँख लगाये, न साहस (मैथुन) स्वीकार करे, न उनके साथ विहरे, इस तरह आत्मा सुरक्षित रहता है ॥५॥२५१॥

बुलाकर विश्वास पैदा कर अपने साथ वासका निमन्त्रण देती हैं, इन्हें ही नाना रूपके फंदे जाने ॥६॥२५२॥

अनेक मन बांधनेवाली, करुण विनीत भावसे पास आकर, मीठी बात बोलती हैं, फिर दूसरी बातकी आज्ञा देती हैं ॥७॥२५३॥

जैसे अकेले रहने वाले निर्भय सिंहको मांस दे बांधते हैं, वैसे ही स्त्रियां भी संयमी अनागारिकको बाँध लेती हैं ॥८॥२५४॥

फिर वैसे ही उसे झुकाती हैं, जैसे बढ़ई क्रमशः चक्केकी पुट्ठी को। तब बँधे मृगकी भाँति हिलता-डुलता हुआ भी (पुरुष) नहीं छूटता ॥९॥२५५॥

तब विषमिश्रित पायसको खानेकी भांति वह पीछे सन्ताप करता है। इस प्रकार विवेकयुक्त मुक्तिके अधिकारी (भिक्षु) के लिये (स्त्री-) संवास ठीक नहीं ॥१०॥२५६॥

विष बुझे कांटेसी जान स्त्रीको वर्जित करे। स्त्रीके बसमें पड़ा कुलोंमें जा उपदेश दे, वह निर्ग्रन्थ (साधु) नहीं ॥११॥२५७॥

जो ऐसी मधूकरीलिप्त हैं, वह दुश्शील हैं, अतः तपस्वी (भिक्षु) स्त्रियों के साथ न विहरे ॥१२॥२५८॥

भिक्षु वेटी, बहू, दाई अथवा दासियोंके साथ, बड़ी या कुमारियों के साथ भी घनिष्ठ परिचय न करे ॥१३॥२५९॥

एक कालमें (दो को) देख, वह भिक्षु (स्वजनोंका) सुहृदयोंका अप्रिय होता है। वह कहते हैं—ये जीव कामासक्त हैं। "फिर तुम इसके पुरुष हो, इसे रक्खो-पोसो" ॥१४॥२६०॥

उदासीन श्रमणको भी देखकर कोई कोप करते हैं, अथवा भोजन रख छोड़नेके लिये स्त्रीके प्रति दोषाशंकी होते हैं ॥१५॥२६१॥

समाधियोगसे भ्रष्ट स्त्रियोंके साथ घनिष्ठता करते हैं, इसलिये आत्महित के ख्याल से श्रमण उनके साथ सहवास नहीं करते ॥१६॥२६२॥

वहुतेरे घर छोड़ (वने भिक्षु) मिश्रित बन जाते हैं। वह इसे ध्रुव मार्ग बतलाते हुए कहते हैं—कुशीलोंके वचन में ही बल होता है ॥१७॥२६३॥

जो सभामें शुद्ध बोलता है, पर रहस्यमें पाप करता है। (लोग वह) जैसा है वैसा जानते हैं—"यह मायावी शठ है" ॥१८॥२६४॥

स्वयं दुष्कृत्यको नहीं कहता, आदेश देने पर डींग हांकता है, "मैथुनकी कामना न करो" कहने पर बहुत खिन्न होता है ॥१९॥२६५॥

वह भी जो स्त्रियोंको पोस चुके हैं, स्त्रियों के द्वारा होने वाले खेद को जानते हैं, प्रज्ञायुक्त भी कोई-कोई नारीके वशमें पड़ जाते हैं ॥२०॥२६६॥

चाहे व्यभिचारीका हाथ पैर, अथवा चाम-मांस काटा जाता है, आगसे जलाया जाता है, काटकर नमक छिड़का जाता है ॥२१॥२६७॥

कान-नाक काटा जाता है, कंठछेदन सहना पड़ता है, इतने पर भी इस तरह सन्तप्त होने पर भी यह नहीं कहते "फिर नहीं करूंगा" ॥२२॥२६८॥

यह सुना भी है, (इसके लिए) स्त्रीवेद (कामशास्त्र) में भी प्रसिद्ध है, तो भी वह कह कर अथवा कार्यसे अपकार करती हैं ॥२३॥२६९॥

मनसे दूसरा सोचती हैं, वाणीसे दूसरे को, और कर्मसे दूसरे को, अतः भिक्षुओ, स्त्रियोंको बहुमायाविनी जान विश्वास न करो ॥२४॥२७०॥

विचित्र वस्त्र-भूषा पहनकर श्रमणसे बोलती है,—हे भय-रक्षक, मैं विरक्त हो विचरती हूं, मुझे तपस्या-धर्म बतलाओ ॥२५॥२७१॥

या श्राविका होनेकी प्रसिद्धिसे कहती है—"मैं श्रमणोंकी एक धर्मवाली हूं," विद्वान् उनके संवाससे आगके पास रक्खे लाखके घड़े की भांति विषादको प्राप्त होता है ॥२६॥२७२॥

लाखका घड़ा आगसे लिपट जलकर जलती आगमें ही नाश हो जाता है, ऐसे ही अनगार स्त्रियोंके संवास से नाशको प्राप्त होते हैं ॥२७॥२७३॥

पाप कर्म करते हैं, पूछने पर कहते हैं—"मैं पाप नहीं करता यह तो मेरी अंकशायिनी है" ॥२८॥२७४॥

मूढ़की यह दूसरी मन्दता है, जो कि कियेका इन्कार करता है, सम्मान का इच्छुक असंयमाकांक्षी दूना पाप करता है ॥२९॥२७५॥

दर्शनीय आत्मज्ञानी, अनगारको (वह) कहती हैं—तायिन्! "वस्त्र-पात्र या अन्न-पानको स्वीकार करो" ॥३०॥२७६॥

भिक्षु इसे चारा ही समझे, (उनके) घर जाने की इच्छा न करे। मोहपाश में बँधा मंद फिर मोहमें फँसता है। ऐसा कहता हूं ॥३१॥२७७॥

२—उद्देशक

स्त्रीसंसर्गका दुष्परिणाम—

कामभोग में कभी राग न करे, मोक्षकामी हो तो विरक्त हो जाये। कोई-कोई भिक्षु जैसे भोग भोगते हैं, सो भ्रष्ट श्रमणोंके भोगको सुनो ॥१॥२७८॥

तपोभ्रष्ट, होश खोये, कामासक्त भिक्षु को वसमें करनेके बाद स्त्रियाँ पैर उठा कर सिर पर मारती हैं ॥२॥२७९॥

केश रखनेवाली मुझ स्त्रीके साथ, भिक्षु, तू विहरना नहीं चाहता, तो मैं केशलुंचन करा लूंगी, (पर) मुझसे अलग न विचर ॥३॥२८०॥

जब वह पकड़में आ जाता है, तो वैसे (भिक्षु) को नौकर का काम देती हैं—"देख कद्दू काट, जा अच्छे फल ला" ॥४॥२८१॥

भाजी पकानेके लिए लकड़ी ला या रातको रोशनी होगी, मेरे पात्र रंगा, आ तब तक मेरी पीठ मल दे ॥५॥२८२॥

मेरे कपड़ोंको ठीक कर, अन्न-पान ले आ। सुगन्ध और कूंची ला, बाल काटने के लिए श्रमण ! हजामकी अनुमति दे ॥६॥२८३॥

मुझे अंजनदानी, आभूषण और (वीणाका) खुनखुना दे, और लोध, लोध का फूल, बांसुरी और गोली भी (ला) ॥७॥२८४॥

कूट, तगर, अगर, खसके साथ खूब पिसा सुगन्ध ला, मुख पर मलने के लिए तेल, कपड़े आदिके रखने के लिए बांसकी पिटारी भी० ॥८॥२८५॥

अधरके लिये नन्दीचूर्ण, छतरी-जूती भी ला। भाजी काटने के लिये चाकू और वस्त्र रंगने के लिये नीला० ॥९॥२८६॥

साग पकाने के लिये कड़ाही, आँवला, कलसा, तिलक लगाने की सलाई, गर्मी के लिये पंखी भी ला ॥१०॥२८७॥

कांखमोचनी, कंघी और केश कंकण ला, दर्पण दे और दतवन भी ला ॥११॥२८८॥

सुपारी, पान, सूई-धागा लाना न भूलना; मूत्र के लिये मूतनी, सूप, ओखली सज्जी गलाने का बर्तन भी० ॥१२॥२८९॥

आयुष्मान्, पूजादानी, लोटा ला, संडास भी खोद दे। बच्चे के लिये तीर धनुही और श्रमणके बेटे के लिये बैलका रथ भी चाहिये ॥१३॥२९०॥

परिया-नगाड़ी, कपड़े का गेंद, बच्चे को खेलने के लिये। वर्षा सिर पर आ गई, निवास और भोजन की भी व्यवस्था कर ॥१४॥२९१॥

नई सुतलीका मंचिया, चलने के लिये पादुका भी, पुत्र दोहल के लिये अमुक वस्तु ला। दासीकी भांति हुक्म देती है ॥१५॥२९२॥

पुत्र फल पैदा हो जाने पर "ले इसे या छोड़ दे।" पुत्र पोसने के लिये कोई-कोई ऊँट की तरह भार ढोने वाले बन जाते हैं ॥१६॥२९३॥

रातको भी उठने पर बच्चेको धाईकी भांति (गोद में) डाल देती हैं। लाजवाले होते हुए भी वे धोबीकी भांति कपड़ा धोने वाले बनते हैं ॥१७॥२९४॥

बहुतोंने ऐसा पहले किया है। विषयके लिये जो भ्रष्ट हुए वह क्रीतदास या नौकर की भांति पशु जैसे हो गये, अथवा कुछ भी नहीं रहे ॥१८॥२९५॥

स्त्रियोंके विषयमें यह कहा, उनके साथ संवास और प्रसंग न[illegible] उसी किसमके हैं, इसीलिये दोषकारक कहे गये हैं ॥१९॥२९६॥

यह खतरा अच्छा नहीं, ऐसा सोच अपनेको रोके । न स्त्री से, न पशुओं से, न अपने हाथसे भिक्षु काम-चेष्टा करे ॥२०॥२९७॥

शुद्धचित्त, मेधावी, ज्ञानी, सर्वदुःख-सह भिक्षु मन-वचन-कर्मसे, परमार्थकी भावनासे भी काम-क्रिया न करे ॥२१॥२९८॥

रजोमुक्त, मोहमुक्त उन वीर ने ऐसा कहा, इसलिये अन्त-विशुद्ध, सुमुक्त पुरुष मोक्ष तकके लिये प्रव्रज्या ले । ऐसा मैं कहता हूं ॥२२॥२९९॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

नरक-विवरण—अध्ययन ५—उद्देशक १

१—नरक भूमि—

(जंवू स्वामी) मैंने मुक्तिप्राप्त महर्षि से पूछा—"आगे जलने वाले नरक कैसे होते हैं ? हे मुनि, मुझ अजानको जाननहारे आप वतलायें, कैसे मूढ़ नरक को प्राप्त होते हैं ?" ॥१॥३००॥

मेरे ऐसा पूछने पर सुधर्मा वोले—तीव्रप्रज्ञा वाले महानुभाव काश्यप-गोत्रीय (महावीर) ने यह कहा—समझनेमें कठिन, पापी, अत्यन्त दीनजनोंका दुःखदायी (वासस्थान) मैं आगे वतलाऊंगा ॥२॥३०१॥

जो कोई जीवनकी इच्छा रखने वाले क्रूर यहां (संसार में) पापकर्म करते हैं, वे महाघोर अन्धकार-मय, तीव्रताप वाले नरकमें गिरते हैं ॥३॥३०२॥

जो अपने सुखके लिये स्थावर और जंगम प्राणियोंकी दारुण हिंसा करते हैं, जो रूखे, विना दियेको लेने वाले (चोर) होते हैं, जो सेवन-योग्य (किसी आचरण) का अभ्यास नहीं करते ॥४॥३०३॥

जो ढीठ वहुतसे प्राणियों को मारता है, अशान्त मूर्ख घात करता है । वह अन्धकार रूपी रातको प्राप्त होता है, और नीचे सिर हो दुर्गम नरक में जाता है ॥५॥३०४॥

परम अधर्मी (यमदूतों) के "मारो, छेदो, काटो, जलाओ इसे" वचनोंको सुनकर, वे नरकवासी (जन) भय के मारे वेहोश हो, चाहते हैं—"किस दिशामें भाग जायें" ॥६॥३०५॥

जलती अंगारराशि (आगवाली) जैसी भूमि पर चलते, वे वहां चिरकाल तक रहने वाले चिल्ला-चिल्लाकर वड़ी दीनता से रोते हैं ॥७॥३०६॥

शायद तूने सुनी हो भयंकर वैतरणी नदी तेज छुरे सी तीक्ष्ण धारवाली है । वाणसे खोभे जाते, शक्तिसे मारे जाते भयंकर वैतरणीको पार होते हैं ॥८॥३०७॥

क्रूर (यमदूत) होश खोये नाव पर आते (नारकीय जीवों) को कील चुभोते, दूसरे लंबे शूलों, त्रिशूलों से वेधकर नीचे गिरा देते हैं ॥६॥३०८॥

किन्हींके गलेमें पत्थर बांधकर अथाह जलमें डुबोते, तपी भुंभुर बालुका में लोट-पोट कराते हैं। दूसरे यमदूत वहां उन्हें पकाते हैं ॥१०॥३०६॥

आसूर्य नामक (एक नरक स्थान), बड़ा ही तपनें वाला, घोर अंधेरे से युक्त, पार होनेमें अत्यन्त दुष्कर है; (वहाँ) ऊपर, नीचे, तिरछे (सभी) दिशाओंमें एक सी आग जलती है ॥११॥३१०॥

वहां गुहामें आगमें ज्ञान और प्रज्ञा खोये (पुरुष) अत्यन्त लिप्त हो जलता है। वह तपता करुण स्थान, बलात् प्राप्त कराया सदा अति दुःखमय है ॥१२॥३११॥

क्रूरकर्मा (यमदूत) जहाँ (नरकमें) मूढ़को चार अग्नियोंमें मार कर वहां आगमें पड़ी जीती मछलियों की भांति जलाये जाते, पड़े रहते हैं ॥१३॥३१२॥

बहुत दहकता सन्तक्षण नामक नरक (स्थान) है, जहाँ क्रूरकर्मा (यमदूत) हाथमें फरसे लिए हाथों, पैरों को बांधकर नारकीयोंको पटरेकी भांति काटते हैं ॥१४॥३१३॥

(यमदूत) फिर लोहू और पाखाने से लथ-पथ शरीरवाले सिर फूटे नारकीयों को उलट-पुलट कर लोहेकी कढ़ाईमें छटपटाते जीवित मछलियों की भांति पकाते हैं ॥१५॥३१४॥

वे वहां जलकर भस्म नहीं होते, न तीक्ष्ण पीड़ासे मरते हैं। (अपने) यहां किये पापोंके कारण उस भोगको भोगते हुए दुःखी हो दुःख सहते हैं ॥१६॥३१५॥

वहां छटपटाते नारकीयों से भरे नरक में घनी धधकती आगमें जाते हैं। वहां सुख नहीं पाते, तापसे युक्त होते हुए भी जलाये जाते हैं ॥१७॥३१६॥

फिर नगर के हत्याकाण्ड की भांति शोर सुनाई देता है। वहां वचन दुःखसे भरे होते हैं। भयंकारी यमदूत (इन) भयंकर कर्मवालों को जबर्दस्ती फिर-फिर जलाते हैं ॥१८॥३१७॥

दुष्ट (यमदूत) प्राण (भूत-अंगों) से अलग कर देते हैं। मैं तुम्हें ठीक-ठीक बतलाता हूं। बाल (अज्ञान क्रूर) डंडोंसे मार-मार पहले किये सारे कर्मोंकी याद कराते हैं ॥१९॥३१८॥

वे मारे जाते पाखानेसे भरे खौलते नरकमें पड़े रहते हैं। वे वहां विष्टामें सने रहते, कर्मसे लाये कीड़ोंसे काटे जाते हैं ॥२०॥३१९॥

सदा सर्वथा नारकोंसे भरा बलात् प्राप्य वह न्यायका स्थान अति दुःख-दायक है। नरकपाल बेड़ी डाल देहको बेधकर उसके सीस को जलाते हैं ॥२१॥३२०॥

छुरेसे मूढ़की नाक काटते हैं, ओठों को भी दोनों कानों को भी काटते हैं, जीभको बित्ताभर बाहर निकाल, तीखे शूलोंसे जलाते हैं ॥२२॥३२१॥

वे मूढ तालके पत्ते की नाईं लोहू टपकाते रात-दिन वहां चिल्लाते हैं, नमक लिपटे अंगवाले जलते वे लोहू,पीव और मांस गिराते रहते हैं ॥२३॥३२२॥

शायद तुमने सुना हो, लोहू पीव वाली जो तेज गुणवाली परम नवीन आगसे युक्त है, जहां लबालब लोहू पीवसे भरी पोरिसा भरका कुंभीपाक नामक नरक (भाजन) है ॥२४॥३२३॥

उसमें डालकर मूढ को पकाते हैं, वे आर्तस्वरसे करुण रोना रोते हैं, प्यास से पीड़ित तपे रांगे तांबे पिलाये जाते और भी आर्तस्वर से चिल्लाते हैं ॥२५॥३२४॥

पहले (जन्मोंमें) सौ-हजार बार अपने ही को वंचित कर वहां (नरकमें) क्रूर-कर्मा पड़े रहते हैं, जैसा कर्म किया, वैसा उसका भार (पीड़ा-परिणाम) है ॥२६॥३२५॥

अनाड़ी पापकर्म कर इष्ट और कमनीय (धर्मों) से विहीन, वे (जन) कर्मके वश दुर्गन्धयुक्त कठोर स्पर्शवाले कुणिम (नामक) नरक वासमें पड़ते हैं। ऐसा मैं कहता हूं ॥२७॥३२६॥

२—उद्देशक

अब दूसरे भी निरन्तर दुःखरूप (नरक) को तुम्हें ठीक तौर से बतलाता हूं, (वहां)जैसे पाप करने वाले मूढ़ पहले किये पापोंको भोगते हैं ॥१॥३२७॥

यमदूत हाथ और पैर बांधकर छुरे और तलवारसे पेट फाड़ते हैं, मूर्खके घायल शरीरको पकड़कर स्थिरता-पूर्वक पीठके चामको उधेड़ते हैं ॥२॥३२८॥

वे मूलसे ही हाथको काटते हैं और मुँह फाड़कर (बड़े बड़े गोलोंसे) जलाते हैं, एकान्त में मूर्खको किये कामकी याद कराते तथा कोपकर पीठ पर कोड़े मारते हैं ॥३॥३२९॥

जलते आग सहित ऐसी भूमि पर चलते वे बाणसे चुभाए जाते तपते जुओं में जुते रुदन करते हैं ॥४॥३३०॥

लोहपथकी तपी फिसलने वाली भूमि पर मूढ़ जबर्दस्ती चलाए जाते हैं। उस भीषण भूमि पर चलाए जाते डंडोंसे दासोंकी भांति चलाए जाते हैं ॥५-॥३३१॥

वे जोरके साथ चलाए जाते गिरने वाली शिलाओंसे मारे सन्तापनी नामक नरकमें जाते हैं, यह चिरस्थितिक (नरक) है, जहां अधर्मकारी जलाए जाते हैं ॥६॥३३२॥

कन्दुक (गेंद नामक नरक) में० डालकर मूढ़को पकाते हैं, जलकर फिर ऊपर उड़ते हैं। वे उर्ध्वकाय (डोम-कौओं) द्वारा खाए जाते दूसरे नखपादि (सिंह-व्याघ्रों) द्वारा भखे जाते हैं ॥७॥३३३॥

ऊंचा निर्धूम स्थान नामक नरक है, जिसमें जा करुण स्वरसे चिल्लाते हैं, औंधे सिर करके काटकर, लोहेकी भांति हथियारोंसे टुकड़े-टुकड़े करते हैं ॥८॥३३४॥

चमड़ा उकेले वहां लटकते लोहेकी चोंच वाले पक्षियों द्वारा खाए जाते हैं, यह संजीवनी नामक चिरस्थायी नरक है, जहां पापी मन वाले लोग मारे जाते हैं ॥९॥३३५॥

हाथमें पड़े सावक (शिकार) की भांति तेज शूलोंसे मार गिराते हैं, वे दुःखसे पीड़ित केवल दुःख पा शूलसे विद्ध करुण स्वरमें चिल्लाते हैं ॥१०॥३३६॥

सदाजलता नामक प्राणियोंका महावासस्थान है, जहां विना काष्ठकी आग जलती है। जहां वहुत क्रूर कर्म करने वाले लोग वांधे हुए चीखते, चिर-काल तक वास करते हैं ॥११॥३३७॥

भारी चिता वना (उसमें) करुण-स्वरसे रोते उसे डाल देते हैं। वहां पापी वैसे (ही) गल जाता है, जैसे आगमें पड़ा घी ॥१२॥३३८॥

सदा भरा, जवर्दस्ती प्राप्त कराया वह न्यायका स्थान अतिदुःखद है। वहां हाथ पैरसे वांधकर दुश्मनोंकी तरह डंडोंसे पीटते हैं ॥१३॥३३९॥

दुःख देते मूढ़की पीठको तोड़ते हैं, लोहेके घनोंसे सीसको भी फोड़ देते हैं। छिन्न-भिन्न देह वे जलते आरोंसे कटे पटरेकी नाईं दूसरी यातनामें नियुक्त किये जाते हैं ॥१४॥३४०॥

क्रूर पापियोंको याद करवा, वाणसे खोभते हाथी लायक भारमें जोत देते हैं। एक दो तीनको भी सूली पर चढ़ा गुस्से हो उसके मर्मको वींधते हैं ॥१५-॥३४१॥

मूढ़ फ़िसलन वाली वड़ी कण्टकपूर्ण भूमि पर जवर्दस्ती चलाए जाते हैं। वंधे शरीर दुःखित-चित्त कर्मोंसे प्रेरित पापियोंको खण्ड-खण्ड कर वलि देते हैं ॥१६॥३४२॥

वड़े जलते आकाशमें वेतालिक नामक एक शिला-पर्वत है, वहां वहुत क्रूर कर्मों वाले वे हजारसे भी अधिक मुहूर्तों तक मारे जाते हैं ॥१७॥३४३॥

तपाए जाते पापी रात-दिन चिल्लाते रहते हैं। एकान्तकूट नामक महा-नरकमें कूटसे वुरी तरह पिटते हैं ॥१८॥३४४॥

पहलेके दुश्मनकी तरह रोप करते (यमदूत) पकड़कर मोगरे सहित मूसलसे कूटते हैं। वे छिन्न-भिन्न शरीर लोहूकी कै करते अधोमुख धरती पर गिरते हैं ॥१९॥३४५॥

वहां बहुत ढीठ और सदा कोप करने वाले अनाशित (भूखे) नामक गीदड़ पासमें जंजीरसे बंधे वहां बहुत क्रूरकर्मा (पापियों) को खाते हैं ॥२०॥३४६॥

छिपे लोहे सी तप्त फिसलू सदाजला नाम नदी है, जिस भयंकरको अकेले अरक्षित जाते पार होते हैं ॥२१॥३४७॥

चिरकाल तक वहां रहते मूढ़को ये भयंकर स्पर्श रूपी दण्ड निरन्तर मिलते हैं। मारे जाते समय उसका कोई रक्षक नहीं होता, (वह) अकेला स्वयं दुःख भोगता है ॥२२॥३४८॥

जिसने जैसा कर्म पहले किया, वही परलोकमें सामने आता है, सिर्फ़ दुःखमय संसारको अर्जित कर उस अनन्त दुःख वाले नरकको सहते हैं ॥२३॥३४९॥

इन नरकोंके बारेमें सुनकर, धीर पुरुष सारे लोकमें किसीको न मारे, एकान्त श्रद्धा-युक्त और परिग्रह-रहित हो तत्वोंको समझे, और लोकके वशमें न जाए ॥२४॥३५०॥

इस प्रकार पशुओं, मनुजों और असुरोंमें चारों गतियोंमें उनके अनन्त विपाकको, "वह सारा यही है," यह जानकर बराबर सदाचार पालन करते हुए मृत्युकी प्रतीक्षा करे। मैं यह कहता हूं ॥२५॥३५१॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ पंचम अध्ययन समाप्त ॥

वीरस्तुति—अध्ययन ६

वीर-महिमा

श्रमणों, और ब्राह्मणों, अनागारिकों तथा दूसरे मतावलम्बी परिव्राजकों ने (जंबूसे, जंबूने सुधर्मासे) पूछा—"वह कौन है अनुपम केवल हितकर धर्म जिस (भगवान्)ने अच्छी तरह देखकर बतलाया ? ॥१॥३५२॥

ज्ञातृपुत्र* महावीरका कैसा ज्ञान था, और कैसा दर्शन था, और शील-सदाचार कैसा था। हे भिक्षु ! उसे ठीक जानते हो तो सुने-समझे अनुसार कहो ॥२॥३५३॥

---

*वैशाली (बसाढ, जिला मुजफ्फरपुर) के जैथरिया भूमिहार 'ज्ञातृ' ही हैं। वही जो लिच्छवि अपराजित गणतन्त्री लिच्छवियोंकी शाखा थे। आज भी उस प्रान्तके लाखों जैथरिया काश्यपगोत्री हैं।

वह दुःखोंके ज्ञाता, पटु, आशुबुद्धि, अनन्त ज्ञान वाले, अनन्त दर्शन वाले थे। आंखोंके सामने स्थित उन यशस्वीके धर्म और धैर्यको जानते हो, उसे देखो ॥३॥३५४॥

ऊपर नीचे तथा कोनेकी दिशाओंमें जितने जंगम-स्थावर प्राणी हैं, नित्य और अनित्यका विचारकर प्राज्ञने दीपककी भांति सम्यक् धर्मको बतलाया ॥४॥३५५॥

वह थे सर्वदर्शी रागादिको पराजितकर ज्ञानी, लौकिक भोगसे विरत, धैर्यवान्, स्थिर-आत्मा, सारे जगतमें अनुपम विद्वान्, ग्रन्थियोंसे परे (निर्ग्रन्थ), निर्भय और गतियोंसे मुक्त ॥५॥३५६॥

वे सत्यप्रज्ञ, नियताचारी (नियममुक्त विचरने वाले), भवसागर पार, धीर, अनन्तदृष्टि, सूर्यसे अनुपम तपते, चमकने वाले, अग्निरूपी इन्द्रकी भांति अन्धकारको हटाने वाले थे ॥६॥३५७॥

अनन्त-जिनके इस धर्मके नेता मुनि काश्यप आशुप्रज्ञ थे, देवोंके इन्द्रकी भांति महादिव्य शक्तिमान्, प्रज्ञारूपी हजार नेत्रोंवाले (शक्र) स्वर्गमें भी विशिष्ट ॥७॥३५८॥

वे प्रज्ञाके अक्षयसागर, सागरकी भांति अनन्तपारग, चित्त (आस्रव) मलों से मुक्त, निर्दोष, इन्द्रकी भांति प्रकाशमान देवाधिदेव थे ॥८॥३५९॥

वे वीर्य (पराक्रम) में परिपूर्ण वीर्य वाले, पर्वतोंमें सर्वश्रेष्ठ सुदर्शनसे, देवलोकवासियोंको प्रमुदित करने वाले, अनेक गुणोंसे युक्त हो विराजते थे ॥९॥३६०॥

पण्डक (वन) और वैजयंत (प्रासाद) वाला, लाख योजनोंका तीन भागों वाला सुमेरु है। वह निन्नानवें हजार (योजन) ऊपर उठा हुआ और एक हजार० भूमिके नीचे (धँसा) है ॥१०॥३६१॥

सुमेरु आकाश को छूता भूमि पर स्थित है, जिसकी सूर्यगण परिक्रमा करते हैं। वह सुवर्णवर्ण और नन्दनवनवाला है, जहां महेन्द्र लोग आनन्द करते हैं ॥११॥३६२॥

वह पर्वत शब्दसे ही प्रकाशवान् कांचन के चमकाये वर्णवाला विराजता है। गिरियों में अनुपम, और पर्वतोंमें दुर्गम, वह पर्वत-श्रेष्ठ भूमिका जाज्वल्यमान भाग है ॥१२॥३६३॥

पर्वतराज महीके बीचमें स्थित, सूर्य समान स्वभाववाला दीखता है। वह नाना वर्णवाला मनोरमज्वालमाली इस प्रकार शोभासे प्रकाश करता है ॥१३॥३६४॥

कीर्तिपर्वत (महान्) सुदर्शनगिरिके समान, ऐसी उपमावाले जन्म, कीर्ति, दर्शन, और ज्ञान एवं सदाचार वाले श्रमण-ज्ञातपुत्र थे ॥१४॥३६५॥

जैसे लंबे पर्वतों में गिरिवर निषध, और गोल आकृतिवालों में रुचक श्रेष्ठ है, वैसी उपमा है जगत्के सत्यप्रज्ञ की। पण्डित जन मुनियोंके बीच उन्हें श्रेष्ठ कहते हैं ॥१५॥३६६॥

अनुपम धर्मका उपदेश दे, वह अनुपम (श्रेष्ठ) ध्यान करते, जो ध्यान अतिशुक्लसे भी शुक्ल (शुद्ध), निर्दोष शंख और चन्द्रमा की भांति नितान्त उज्जवल (शुक्ल)० ॥१६॥३६७॥

सारे कर्मोको शोध (निर्जरा) कर वह महर्षि अनुपम (श्रेष्ठ) आदिमान् पर अन्तरहित सिद्धिको प्राप्त, ज्ञान, शील और दर्शन (विशेषाववोध ज्ञानसे) अनन्तप्रज्ञ हैं ॥१७॥३६८॥

वृक्षोंमें जैसे (स्वर्गका) शाल्मलि प्रसिद्ध है, जिसमें सुपर्ण (देवता) आनन्द अनुभव करते हैं, वनोंमें नन्दनको श्रेष्ठ कहते हैं, वैसे ही ज्ञान और शील में सत्यप्रज्ञ (महावीर) थे ॥१८॥३६९॥

जैसे शब्दोंमें बिजलीको अनुपम कहते हैं, तारोंमें चन्द्रमाको महाप्रतापी० गन्धोंमें चन्दनको श्रेष्ठ०, वैसे ही मुनियों में (काम में) अलिप्त (महावीर) को श्रेष्ठ कहते हैं ॥१९॥३७०॥

जैसे सागरों में स्वयम्भू श्रेष्ठ है, नागों में धरणेन्द्र (शेष) श्रेष्ठ०, रसोंमें विजयी जैसे इक्षु-रससमुद्रका जल०, वैसे ही तप और प्रधान (ध्यान) में मुनि (महावीर) विजयी हैं ॥२०॥३७१॥

जैसे हाथियों में ऐरावत प्रसिद्ध है, मृगोंमें सिंह, जलों में गंगा, पक्षियोंमें वेणुदेव गरुड़०, वैसे ही निर्वाणवादियोंमें ज्ञातपुत्र प्रसिद्ध हैं ॥२१॥३७२॥

योद्धाओंमें जैसे प्रसिद्ध हैं विष्वक्सेन, फ़ूलोंमें जैसे कमल, क्षत्रियोंमें जैसे दन्तवक्त्र को कहते हैं, वैसे ही ऋषियोंमें वर्धमान को० ॥२२॥३७३॥

दानोंमें श्रेष्ठ है अभयदान, सत्योंमें (हिंसारूपी) दोषसे विरतिको, तथा तपोंमें ब्रह्मचर्यको श्रेष्ठ कहते हैं, वैसे ही लोक में उत्तम हैं श्रमण ज्ञातृपुत्र ॥२३॥३७४॥

(योनिरूपी) स्थितियोंमें विमानवासी लवसप्तम देव (अनुत्तर विमान-वासी) श्रेष्ठ हैं, सभाओंमें सुधर्मा सभा, सारे धर्मोमें निर्वाण श्रेष्ठ है, वैसे ही ज्ञातृपुत्र से बढ़कर ज्ञानी नहीं है ॥२४॥३७५॥

(वीर) पृथ्वी समान धीर हैं, दोष फेंकनेवाले, गेहत्यागी, वे आशुप्रज्ञ आसक्ति नहीं करते, समुद्र जैसे महाभवसागरको पार कर, वीर अभयंकर अनन्त दृष्टियुक्त हैं ॥२५॥३७६॥

क्रोध, अभिमान, तथा माया चौथे लोभ और अध्यात्मिक दोष, इनको वमन कर अर्हत् महर्षि न पाप करते हैं न कराते हैं ॥२६॥३७७॥

क्रिया और अक्रियाको, विनयवालोंके वादको, अज्ञानवादियोंके सिद्धान्त को भी जानते, इस प्रकार सारे वादोंको जानकर वह चिरकालके संयममें स्थित हुए ॥२७॥३७८॥

स्त्रियोंको और रातके भोजनको त्याग कर वह दुःख के नाशके लिए उपधान (प्रधान तप) युक्त हुए। इस लोक परलोक सारेको जानकर प्रभुने सारे पापोंको हटा दिया ॥२८॥३७९॥

अर्हत् (महावीर) भाषित धर्मको सुनकर, उस पर श्रद्धा करते जन आवागमन-रहित हो इन्द्र की भांति देवराज होते हैं, होंगे, यह मैं कहता हूं ॥२९॥३८०॥

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

कुशील परिभाषा—अध्ययन ७

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तृण, वृक्ष, वीज और जंगम प्राणी, तथा जो अण्डज और जरायुज प्राणी, जो स्वेदज और रस से उत्पन्न कहे जाते हैं ॥१॥३८१॥

ये काया मानी गई हैं। जानना चाहिए कि इनमें सुख की अभिलाषा होती है। इन कायाओं के साथ बुरा करके जो अपने लिए पाप-दण्ड (पाप कर्म) जुटाते हैं, वे इन कायों में उलटकर जनमते हैं ॥२॥३८२॥

आवागमन के पथ पर घूमते जंगम और स्थावरों में (जा) घात को प्राप्त होते हैं। वह वहुत क्रूर कर्म करने वाला जन्म-जन्म में जो करता है, उसी के साथ मूढ़ मरता है ॥३॥३८३॥

इस लोक में अथवा पर लोक में सैंकड़ों अथवा दूसरे कर्मों से संसार में आते, एक के वाद दूसरे में बंधते पापों को भोगते हैं ॥४॥३८४॥

जो माता-पिता को छोड़ श्रमणोंका व्रत ले अग्नि-समारम्भ करते हैं, जो अपने सुखके लिए प्राणियों की हिंसा करते हैं, वे दुनियां में कुशील (दुराचार) धर्म वाले कहे गये हैं ॥५॥३८५॥

जलाने पर "जलते" प्राणियोंको मारता है, वुझाने पर अग्नि रूपी काया का वध करता है, इसलिये धर्मको समझ कर वुद्धिमान (पंडित) अग्नि-परिचर्या न करे ॥६॥३८६॥

पृथ्वी भी जीव है, वायु भी जीव है, गिरने वाले प्राणी उनमें गिरते हैं, स्वेदज और काठ में रहने वाले प्राणी हैं। अग्नि-परिचर्या करता हुआ उनको जलाता है ॥७॥३८७॥

हरे तृण प्राणी हैं, वृक्ष आदि में अलग-अलग रहने वाले भी जीव हैं। भोजन करके अपने सुख के लिए ढिठाई करके जो काटता है, वह वहुत प्राणियों का हिंसक होता है ॥८॥३८८॥

अपने सुख के लिए जो वीजों को उनके जन्म और विकास को नष्ट करता करता है, वह लोक में अनार्यधर्मी अपने को दण्ड का भागी वनाने वाला असंयमी है ॥९॥३८९॥

तृण-वनस्पति काटने वाले, वोलने और न वोलने की हालत में गर्भ में मरते हैं, कोई २ पांच चोटी करने वाले "शिशु" ही मर जाते हैं। जवान, अधेड़ और वूढ़े भी आयु के समाप्त होने पर जीवन से हाथ धो वैठते हैं ॥१०॥३९०॥

हे प्राणियो, मानवपन को समझो। भय देख मूर्ख द्वारा उसे अलभ्य जानो। विल्कुल दुःखमय और ज्वर युक्त है, लोग अपने ही कर्मों से उलटे दुःख को पाते हैं ॥११॥३९१॥

यहां कोई मूढ़ नमकीन आहार के छोड़ने से मोक्ष वतलाते हैं, और कोई ठंडे जल के सेवन से, दूसरे हवनसे मोक्ष वतलाते हैं ॥१२॥३९२॥

सवेरे नहाने आदि से मोक्ष नहीं होता, न नमक के न खाने से ही। वे मद्य, माँस लसुनको खाकर कहीं (अनन्त) संसारमें वास करते हैं ॥१३॥३९३॥

सवेरे-शाम जल छूते (नहाते) हुए पानी द्वारा सिद्धि वतलाते हैं। यदि जलके स्पर्शसे सिद्धि होती, तो जलके वहुतसे प्राणी सिद्ध (मुक्त) हो जाते ॥१४॥३९४॥

जैसे मछली, कछुवे, रेंगने वाले, मांगुर, जल-ऊंट और जल-राक्षस। जो जलसे सिद्धि कहते हैं, उसे पण्डित जन अयुक्त कहते हैं ॥१५॥३९५॥

जो जल-कर्म-मलको हरण करे, यह शुभ (वात) केवल इच्छा भर है, मन्दवुद्धि दूसरे मतवाले अंधे नेताका अनुगमन करते हुए इस प्रकार (नहाकर) प्राणियोंका नाश करते हैं ॥१६॥३९६॥

पापकर्म करनेवालोंका यदि ठंडा जल पाप हर ले, तो जलके जन्तुओंको मारने वाले (मछुये) सिद्ध हो जायें। जलसे सिद्धि वतलाने वाले झूंठ वोलते हैं ॥१७॥३९७॥

सायं-प्रातः अग्नि परिचर्या-कर्ता हवन द्वारा सिद्धि वतलाते हैं, ऐसा हो

तो अग्निका आरम्भ करने वाले कुकर्मीको भी सिद्धि (मुक्ति) मिल जाये ॥१८॥३९८॥

विना विचारे यूं ही सिद्धि नहीं होती। न जानते वे (जन) नाशको प्राप्त होंगे। विद्या ग्रहण कर स्थावर-जंगम प्राणियोंमें भी सुखकी इच्छा होती है, इसे जानो ॥१९॥३९९॥

पाप-कर्मी अलग-अलग चिल्लाते हैं, नष्ट होते हैं, भय खाते हैं। यह जानकर विद्वान् उस पापसे विरत-आत्मसंयमी हो देखकर जंगम प्राणियोंको न सताये ॥२०॥४००॥

जो धर्मसे प्राप्त रक्खे आहारको छोड़कर स्वादिष्टको खाता है, नहाता है, जो कपड़ेको धोता-सजाता है; वह निर्ग्रन्थत्व साधुपनसे दूर कहा गया है ॥२१॥४०१॥

धीर पुरुष जलमें नहानेको कर्म-बन्धन जान, मोक्ष तक ठीक (गर्म) जल से जीवन बिताता, बीजों और कन्दोंको न खाता स्नानादि और स्त्री में विरत रहे ॥२२॥४०२॥

जो माता और पिताको, तथा पुत्र, पशु और धनको छोड़कर, स्वादु भोजन वाले कुलोंमें दौड़ता है, वह श्रमणभावसे बहुत दूर कहा गया है ॥२३॥४०३॥

जो स्वादवाले कुलोंमें दौड़ता है, पेट भरनेके लिये धर्मकथा कहता है, जो भोजनके लिये अपनी प्रशंसा करवाता है, वह आचार्योंका शतांश भी नहीं ॥२४॥४०४॥

घर छोड़, दूसरेके दिये भोजनके लिये दीन, पेटके लोभके लिये चापलूसी करने वाला होता है, वह चारेके लोभी महासूअरकी भाँति जल्दी नाशको प्राप्त होगा ॥२५॥४०५॥

इस लोकके अन्न-पानीको सेवन करता, मीठा बोलता है, वह पार्श्वस्थ और कुशील भावको प्राप्त हो पुआलकी भांति निस्सार है ॥२६॥४०६॥

अज्ञातपिण्डसे (जीवन) यापन करे, (अपनी) तपस्यासे पूजाकी कामना न करे, शब्दों और रूपोंमें आसक्त न हो, सभी भोगोंका लोभ छोड़े ॥२७।४०७॥

सभी संसर्गोंको त्यागकर धीर (पुरुष) सारे दुःखोंको सहता हुआ निर्दोष, निर्लोभ, अनियतचारी भिक्षु भयरहित और निर्मल आत्मा हो विचरे ॥२८।४०८॥

मुनि व्रतभारवहनके लिए खाये, भिक्षु पापसे अलग रहना चाहे, दुःखसे पीड़ित होने पर धैर्य धरे, युद्धभूमिमें योद्धाकी तरह कामादि शत्रुओंका दमन करे ॥२९॥४०९॥

काठके तख्तेकी भांति काटा मारा जाता हुआ भी मृत्युका समागम चाहता है, कर्मको हटा, धुरी टूटी गाड़ीकी नाईं वह आवागमनमें नहीं जाता, यह कहता हूं ॥३०॥४१०॥

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

—०—

वीर्य (उद्योग) अध्ययन—८

यह स्वाख्यात वीर्य दो प्रकारका कहा गया है। वीर (जिन) की क्या वीरता है, कैसे वह कही जाती है ? ॥१॥४११॥

हे सुव्रतो, कोई कर्मको वीर्य कहते हैं, कोई अकर्मको भी, इन दोनों रूपोंमें मनुष्य उन्हें देखते हैं ॥२॥४१२॥

(तीर्थकरोंने) प्रमादको कर्म कहा है, अप्रमादको दूसरा अ-कर्म। उनके होनेको कहनेसे भी पण्डित और मूर्खका वीर्य कहा जाता है ॥३॥४१३॥

कोई प्राणियोंके मारनेके लिए शास्त्र (वेद) पढ़ाते हैं, कोई प्राणिहिंसा प्रतिपादक (वेद) मंत्रोंको पढ़ते हैं ॥४॥४१४॥

ये मायावी माया रच (ने पर) कामभोगका सेवन करते हैं, अपने सुखका अनुगमन करते हनन, छेदन और कर्तन करने वाले होते हैं ॥५॥४१५॥

मन और वचनसे, अन्तमें कायासे भी इस लोक या परलोक दोनों प्रकार से असंयमी होते हैं ॥६॥४१६॥

वैरी वैर करता है, फिर वैरोंके साथ रक्तपात होता है। पापकी ओर ले जाने वाली हिंसा अंतमें दुःखमें फंसाती है ॥७॥४१७॥

स्वयं पाप करनेवाले परलोकमें बंधते हैं, वे मूढ़ रागद्वेषमें पड़े बहुतसा पाप कमाते हैं ॥८॥४१८॥

यह कर्म सहित वीर्य मूढ़ोंका बतलाया गया, अब पण्डितोंका कर्म-रहित वीर्य मुझसे सुनो ॥९॥४१९॥

(मोक्षगामी पुरुष) बंधनसे मुक्त, चारों ओरसे बंधन-टूटा, पापकर्मको हटा, अन्तमें (भवसागर रूपी) शल्यको काट देता है ॥१०॥४२०॥

सुकथित नेताको पा पण्डित प्रयत्न करता है, वैसे ही मूढ़ फिर-और-फिर दुःख-निवास और अशुभताको पाता है ॥११॥४२१॥

स्थानारूढ़ (अपने) विविध पदोंको छोड़ जायेंगे, इसमें संशय नहीं, भाई-बंदों और मित्रोंके साथ वास नित्य नहीं है ॥१२॥४२२॥

ऐसा सोचकर बुद्धिमान् अपने लोभको छोड़ दे, सभी दूसरे धर्मोंसे निर्मल इस आर्य-धर्मको स्वीकार करे ॥१३॥४२३॥

धर्मके सारको अच्छी बुद्धिसे जान या सुनकर, अनागारिक (गृहत्यागी) बनकर पापका प्रत्याख्यान कर धर्ममें स्थित होता है ॥१४॥४२४॥

जिस किसी तरह पण्डित अपने आयुके क्षयको जाने, (फिर) तो उसके बीच ही में जल्दी संलेखना रूपी शिक्षाका सेवन करे ॥१५॥४२५॥

जैसे कछुआ अपनी देहमें अंगोंको संकुचित कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान् पापोंके प्रति अपने भीतर संकुचित कर दे ॥१६॥४२६॥

हाथों-पैरोंको, मन और पांचों इन्द्रियोंको भी संकुचित कर ले, बुरे परिणामोंको और भाषाके दोषोंको भी० ॥१७॥४२७॥

उसे अच्छी तरह जान अभिमान और माया थोड़ी भी न करे। सुख-सम्मानसे रहित, उपशान्त, और चिन्तारहित हो विहरे ॥१८॥४२८॥

प्राणोंको न मारे, बिना दिये को न लेवे, माया न करे, झूठ न बोले, संयमीका यह धर्म है ॥१९॥४२९॥

वचन और मनसे भी (दु:ख देनेकी) कामना न करे, सब ओर से संयमन और दमनको ग्रहण कर (अच्छी तरह) संयत रहे ॥२०॥४३०॥

आत्मसंयत और जितेन्द्रिय (मुनिजन) किये गये, किये जाते या भविष्यके पापकी अनुमति नहीं देते ॥२१॥४३१॥

जो वीर महाभाग बुद्ध (तत्वज्ञ) नहीं, सम्यक्-दर्शन वाले नहीं, उनका पराक्रम अशुद्ध रहा, वह सर्वथा कर्मोंके विपाकवाला है ॥२२॥४३२॥

जो वीर महाभाग बुद्ध-ज्ञानी सम्यक्दर्शन वाले हैं, और उनका किया हुआ पराक्रम शुद्ध है, सर्वथा विपाक-रहित है ॥२३॥४३३॥

जो महाकुलसे निकल पड़े, उनका भी तप शुद्ध नहीं। अपनी प्रशंसा नहीं जतलानी चाहिये, जिसमें कि दूसरे भी ऐसा न जानें ॥२४॥४३४॥

सुव्रत (पुरुष) थोड़ा भोजन करे, थोड़ा बोले, सदा क्षमायुक्त, सन्तुष्ट, दान्त, लोभरहित रहनेकी कोशिश करे ॥२५॥४३५॥

ध्यानयोगको पूरे तौर से ग्रहण कर, कायाको चारों ओर से संयत कर तितिक्षाको परम वस्तु जान (आदमी) मोक्ष तकके लिए परिव्राजक (संयम-साधक) बने। ऐसा कहता हूं ॥२६॥४३६॥

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥

धर्म अध्ययन ९

अन्तेवासी-जंबूने पूछा—मतिमान् ब्राह्मण (महावीर) ने कौनसे धर्म बतलाये हैं? सुधर्माचार्य बोले—जिनोंके सरल धर्म को जैसा है वैसे मुझसे सुनो! ॥१॥४३७॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल और वोक्सा*(पुक्कस),वहेलिये, वेश्यायें, शूद्र और दूसरे हिंसारत (पुरुष) हैं ॥२॥४३८॥

(जो) भोगोंके परिग्रहणमें फंसे…(उनका) परस्पर वैर बढ़ता है। काम (भोग) हिंसा आदि आरम्भोंसे मिश्रित हैं, अतः वे दुःख-विमोचक नहीं हैं ॥३॥४३९॥

धन के चाहने वाले कुटुम्ब-परिवार के लोग चिता पर जलाकर धन को हरते हैं। कर्म करने वाला (मृत अपने) कर्मों द्वारा काटा जाता है ॥४॥४४०॥

अपने कर्मों द्वारा नष्ट होते (हे पुरुष!) तुझे माता, पिता, वधू, पत्नी, भाई, और औरस पुत्र कोई नहीं बचा सकते ॥५॥४४१॥

इस भेद को समझकर भिक्षु निर्मम, निरहंकार हो, परम-अर्थ (मुक्ति) की ओर ले जाने वाले जिन द्वारा कथित (धर्म)का आचरण करे ॥६॥४४२॥

धन, पुत्र, कुटुम्ब-कबीले तथा परिग्रह छोड़, और आन्तरिक शोकको भी छोड़कर अपेक्षा-रहित हो साधु हो जाये ॥७॥४४३॥

पृथिवी, पानी, अग्नि, वायु, तृण, वृक्ष, और बीज सहित दूसरे (पदार्थ) अण्डज, पोतज, जरायुज, रस और स्वेद से उत्पन्न एवं उद्भिज्ज ॥८॥४४४॥

ये छ काय हैं। सो विद्वान् मन, वचन और काया से इनकी हिंसा न करे, न परिग्रह ही धारण करे ॥९॥४४५॥

झूठ बोलना, मैथुन, परिग्रह और चोरी, ये लोकमें (हिंसार्थ) हथियार उठाने जैसे हैं, इन्हें विद्वान् त्यागे ॥१०॥४४६॥

माया, लोभ, क्रोध तथा मानको त्याग दे, ये लोकमें बंधन (कारण) हैं, इसे विद्वान् त्यागे ॥११॥४४७॥

धोना, रंगना, बस्तिकर्म, विरेचन, वमनकर्म, और आँखों में अंजन (ये) विघ्न हैं, इसे विद्वान त्यागे ॥१२॥४४८॥

गंध, माला, स्नान (का व्यवहार) तथा दांत धोना, परिग्रह और स्त्रीभोग विघ्न हैं, इसे विद्वान् त्यागे ॥१३॥४४९॥

(साधु के) निमित्तसे बने या खरीदे या उधार लिये गये (भोजन) एवं आधाकर्मयुक्त, तथा-जो अपेक्षणीय नहीं, इसे विद्वान त्यागे ॥१४॥४५०॥

---

* देहरादूनमें सबसे पिछड़ी जाति बोक्सा है।

वलकर, (रसायन) और नेत्र अंजन, लोभ और हिंसा-कर्म, प्रक्षालन, और उवटन लगाना, इसे विद्वान् त्यागे ॥१५॥४५१॥

संलाप और (अपने) किये व्रतकी प्रशंसा, एवं (ज्योतिषके) प्रश्नोंका भाखना, मकानवाले का पिण्ड, इसे विद्वान् त्यागे ॥१६॥४५२॥

जूआ न सीखे, अधार्मिक वचन न बोले, हाथसे वीर्यपात, और झगड़ा, इसे विद्वान् त्यागे ॥१७॥४५३॥

जूता और छाता, नालीवाला जूआ, वातव्यजन (चमर) और परस्पर परिक्रिया; इसे विद्वान् त्यागे ॥१८॥४५४॥

मुनि हरे (सूखे) घासमें पेशाव-पाखाना न करे, (बीज आदि हटा) निर्जीव जलसे भी कभी स्नान न करे ॥१९॥४५५॥

कभी दूसरे (गृहस्थ) के वर्तन में अन्न-पान न खाये। अचेल (होने पर) भी दूसरे के वस्त्र को विद्वान् त्यागे ॥२०॥४५६॥

मँचिया-पीढ़ी, पलंग, एवं घरके भीतर वैठना, कुशलप्रश्न पूछना या पहले (संवंध) को स्मरण करना; इसे विद्वान् त्यागे ॥२१॥४५७॥

यश-कीर्ति, और प्रशंसा तथा जो लोकमें वन्दना-पूजना है, एवं लोकमें जो सारे भोग हैं; इसे विद्वान् त्यागे ॥२२॥४५८॥

जिससे भिक्षुका संयम टूटे, वैसे अन्न-पान को दूसरे (भिक्षुओं) को देना, इसे विद्वान् त्यागे ॥२३॥४५९॥

निर्ग्रन्थ महावीर महामुनिने ऐसा कहा, अनन्त-ज्ञान और अनन्त-दर्शनवाले उन्होंने धर्मका उपदेश दिया ॥२४॥४६०॥

भाषण करते न भाषण करतासा रहे, दूसरे के मनको दुःखाने वाली वात न करे, छलको वर्जित करे, सोचे विना न वोले ॥२५॥४६१॥

वहां यह (झूठ मिली) तीसरे तरहकी भाषा है, जिसे वोलकर आदमी पछताता है। जो (लोक व्यवहारमें) छिपाके रक्खा जाता है, उसे न कहना, यह निर्ग्रन्थ महावीर की आज्ञा है ॥२६॥४६२॥

रेकारी (निष्ठुर-मारने जैसी), दोस्त (कह वात करना), गोत्रके नाम लेके चापलूसीसे वात न करे। 'तू-तू' कह कठोर वचनका प्रयोग भी न करे ॥२७॥४६३॥

भिक्षु सदा कुशीलता से रहित रहे, न उनके संगको सेवे, उनके साथ सुख रूप वाले उपसर्ग रहते हैं, इसे विद्वान् समझे ॥२८॥४६४॥

(अलंघ्य) वाधा विना दूसरेके घरमें न वैठे। गाँवके वच्चों की क्रीड़ाको देख मुनि मर्यादा-रहित हो न हँसे ॥२९॥४६५॥

उदार (भोगों) में उत्कण्ठा न करे, यत्नशील हो (साधु) नियमका पालन

करे, (भिक्षुओंकी) चर्यामें आलस न करे, दुःख पड़ने पर उसे सहे ॥३०॥४६६॥

मारे जाने पर कोप न करे, दुर्वचन कहे जाने पर उत्तेजित न होवे, सुमन हो बाधाको सहे, और कोलाहल न करे ॥३१॥४६७॥

मिले भोगोंकी चाह न करे, ऐसा होना विवेक कहा जाता है। बुद्धों (ज्ञानियों) के पास सदा आर्य (अच्छे) कर्मोंको सीखे ॥३२॥४६८॥

सुप्रज्ञ, सुतपस्वी-गुरुकी सुश्रूषा करते हुए पास रहे। वीर, आप्त ज्ञान के इच्छुक, धीर और जितेन्द्रिय ऐसा ही करते हैं ॥३३॥४६९॥

घरवासमें ज्ञानके प्रकाशको न देख पुरुषोंमें आश्रयणीय नर, वीरको पाकर वन्धनसे मुक्त हो जीने के इच्छुक नहीं होते ॥३४॥४७०॥

शब्द और स्पर्श (के भोगों) में लोभरहित हो, बुरे कर्मोंमें लिप्त न हो, जाने कि जो (यहाँ) निषिद्ध किया गया है, सो सारा हेय कर्म जिन-धर्म के विरुद्ध है ॥३५॥४७१॥

जो अभिमान और माया है, उसे पण्डित छोड़, साथ ही सारे गौरव भूत (भोगों)को भी छोड़ मुनि निर्वाण की कामना करे। यह मैं कहता हूं॥३६॥४७२॥

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥

—o—

समाधि—अध्ययन १०

मतिमान् (भगवान् महावीर) ने अनुचिन्तन करके समाधिके सरल धर्म वतलाए, उन्हें सुनो। निष्काम भिक्षु समाधि प्राप्त कर प्राणियोंको हानि न पहुंचाए ॥१॥४७३॥

ऊपर, नीचे और टेढ़ी दिशाओंमें जो स्थावर और जंगम प्राणी हैं, उनके प्रति हाथ और पैरसे संयम कर, दूसरोंके न दिए को न ले ॥२॥४७४॥

जिनका धर्म स्वाख्यात है, उसमें सन्देह मुक्त सन्तुष्ट हो प्रजाओंके साथ अपने समान व्यवहार करे। इस जीवनकी इच्छा करते हुए आमदनी न करे। सुतपस्वी भिक्षु संचयमें न लगे ॥३॥४७५॥

(स्त्री) जनोंमें सब इन्द्रियोंसे संयत हो, मुनि सर्वथा स्वतन्त्र होकर विचरे। प्राणियोंको, अलग-अलग जन्तुओंको दुःखसे सताए जाते देख दया करे ॥४॥४७६॥

इनको हानि पहुंचाते हुए मूढ़ पाप कर्म वाली योनियोंमें घूमता है, (स्वयं) हिंसा करते हुए पाप कर्म करता है, दूसरोंको० लगाकर भी (पाप) कर्म करता है ॥५॥४७७॥

दीन (भिक्षु) वृत्ति हो तो भी पाप करता है, यह जान जिन्होंने एकान्त समाधिका उपदेश दिया, बुद्ध (जानकार) समाधि और विवेक (एकान्त) रत, आत्मस्थ हो प्राणिहिंसासे विरत हो ॥६॥४७८॥

सारे जगत्को समतासे देखते हुए किसी का भी प्रिय-अप्रिय न करे। दूसरे प्रव्रज्या में उत्थित हो फिर दीन और विषण्ण हो पूजा तथा प्रशंसाके इच्छुक हो जाते हैं ॥७॥४७९॥

आधाकर्म (भिक्षुके निमित्त बने आहार) का इच्छुक होकर, नियम करते बुरेका चाहक होता, मूर्ख स्त्रियोंमें अलग आसक्त होकर,और(उस के लिए) परिग्रह करता है ॥८॥४८०॥

वैरमें(बंधा पाप)-संचय करता है, यहांसे च्युत हो दुःखकर (स्थानों)में जाता है। इसलिए मेधावी (पुरुष) धर्मको समझकर, चारों ओरसे मुक्त हो, मुनिधर्मका आचरण करे ॥९॥४८१॥

जीवनकी कामना, आमदनी न करे, अनासक्त हो साधु बने, सोचकर बोलते हुए, लोभको हटाए, हिंसायुक्त बात न करे ॥१०॥४८२॥

आधाकर्मकी कामना न करे, कामना करने वालेका संसर्ग न करे। कामना न करते हुए उदार भोगको छोड़, शोक छोड़, अपेक्षा-रहित होकर विचरे ॥११॥४८३॥

एकत्व-भावनामें रहनेकी कामना करे, एकत्वसे मुक्ति पाना सत्य माने। यह मोक्ष सत्य और प्रधान है,(उसे)सत्यरत अक्रोधी तपस्वी पाता है ॥१२॥४८४॥

जो स्त्रियोंमें मैथुन-विरत होता हुआ परिग्रहको नहीं करता, नाना विषयोंमें (प्राण-) रक्षी होता है, वह भिक्षु निःसंशय समाधिप्राप्त है ॥१३॥४८५॥

अरति-रतिको हटाकर भिक्षु तृणादिकी चोट तथा शीतकी चोटको, गर्मी और डसनेको सहे। दुर्गन्ध और सुगन्धको वर्दाश्त करे ॥१४॥४८६॥

वाणीसे संयत, समाधि प्राप्त हो, अच्छी लेश्याओंको ले साधु बने। घर न छाये न छवाये, लोगोंके मेल-जोलको छोड़ दे ॥१५॥४८७॥

जो कोई दुनियामें अक्रिय-आत्म वाले (सांख्य), दूसरोंके पूछनेपर मोक्षका उपदेश करते हैं; वे दुष्कर्ममें आसक्त, लोकमें लुब्ध, विमोक्षके कारण उस धर्मको नहीं जानते ॥१६॥४८८॥

यहां आदमियोंकी भिन्न रुचि होती है। क्रिया, अक्रिया, अलग-अलग वाद को मानते हुए, जन्मे बालककी देहतकको काटकर, असंयमी वैर बढ़ाता है ॥१७॥४८९॥

आयुके विनाशको न जानता हुआ, ममतामें पड़ा, मन्द और सहसा काम करने वाला अपने को अजरामर मान मूर्ख विषयोंमें लिप्त हो रात-दिन संतप्त होता है ॥१८॥४९०॥

धनको, सारे पशुओंको छोड़ो, जो प्रिय वान्धव और मित्र हैं, (उन्हें भी) रोते हैं, मूर्छित होते हैं, सो दूसरे (लोग) इसके धनको हरते हैं ॥१९॥४९१॥

छोटे जानवर जैसे सिंहके पास चरते हुए,डरके मारे दूर-दूर रहते हैं; इसी तरह मेधावी धर्मको जानकर दूरसे ही पापको छोड़ दे ॥२०॥४६२॥

मतिमान् नर जानते० पापसे अपनेको हटाए, यह जान कर कि,दुःख हिंसा से पैदा होते हैं और भारी भय वैरसे गुंथे हैं ॥२१॥४६३॥

आप्तोंका अनुगामी मुनि झूठ न वोले। यह झूठका त्याग परम समाधि है। झूठका प्रयोग स्वयं न करे, न कराए, दूसरेके करनेका अनुमोदन न करे ॥२२ ॥४६४॥

शुद्ध रहे, मिले आहारको न दूषित करे; उसमें लिप्त और आसक्त न हो, धैर्यशील और मुक्त हो प्रशंसाकी कामना न कर प्रव्रजित होवे ॥२३॥४६५॥

कांक्षारहित हो घरसे निकल आसक्तिहीन हो कायाको छोड़े। न जीवन चाहे न मरण, भवके फंदेसे मुक्त हो भिक्षु विचरे। ऐसा मैं······॥२४॥४६६॥

॥ दसवां अध्ययन समाप्त ॥

मार्ग—अध्ययन ११

मतिमान् ब्राह्मण (ज्ञात पुत्र) ने कौनसा मार्ग वतलाया है, जिस सीधे मार्गको पाकर दुस्तर (संसार) सागरको तरते हैं ॥१॥४६७॥

उस सर्वदुःखमोचक, शुद्ध, अनुपम मार्गको हे भिक्षु, तुम जैसे जानते हो, महामुनि वैसा वतलाओ ॥२॥४६८॥

यदि हमें देव या मनुष्य कोई पूछे, तो उनको "कैसा मार्ग है" यह हम कहेंगे ॥३॥४६९॥

यदि तुमसे कोई देव या मनुष्य पूछे, उन्हें यह कहना, मार्गके सारको मुझसे सुनो ॥४॥५००॥

काश्यप (ज्ञातृ पुत्र) के क्रमशः वतलाए महाकठिन मार्ग को सुनो जिसपर चलकर इससे पहले वहुतेरे, समुद्रको व्यापारीकी भांति तर गए ॥५- ॥५०१॥

तर गए, कितने तर रहे हैं, और आगे तरेंगे; उसे भगवान्से सुनकर मैं कहता हूं, मेरी उस वातको प्राणी सुनें ॥६॥५०२॥

पृथिवी जीव अलग प्राणी हैं, वैसे ही जल और अग्नि भी जीव हैं, वायुस्थ जीव अलग प्राणी हैं, वैसे ही तृण, वृक्ष और वीज भी० ॥७॥५०३॥

और दूसरे त्रस प्राणी हैं, इस प्रकार छः प्राणी-काय कहे गए। इतना भर जीव-काय है, इससे परे नहीं हैं ॥८॥५०४॥

सारी युक्तियोंसे वुद्धिमान् इसे लखकर कोई दुःख नहीं पसंद करता यह सोच किसीकी हिंसा न करे ॥९॥५०५॥

महा ज्ञानियों के कथन का सार है, जो कि किसीकी हिंसा न करे, अहिंसा के समय (सिद्धान्त) को भी इतना ही जाने ॥१०॥५०६॥

ऊपर, नीचे और तिरछी दिशाओंमें जो भी जंगम और स्थावर (प्राणी) हैं, सर्वत्र विरति करे; वही शान्ति (विरति) निर्वाण कही गई है ॥११॥५०७॥

समर्थ हो दोषोंको हटाकर, मनसा, वाचा और अन्तमें कायासे भी किसीका विरोध न करे ॥१२॥५०८॥

एषणाके दोषोंको हटा, धीर और संयमी हो, प्राज्ञ विहरे। एषणा-समिति से युक्त न चाहनेके आहारोंको नित्य वरजै ॥१३॥५०९॥

प्राणियोंको दुःख देकर अपने लिए जो भोजन बनाया गया हो; सुसंयमी (पुरुष) वैसे अन्नपानको ग्रहण न करे ॥१४॥५१०॥

पूतिकर्म आहारको न सेवे, यह संयमियोंका धर्म है। किसी चीजकी आकांक्षा करना, सर्वथा विहित नहीं है ॥१५॥५११॥

आत्म-संयमी जितेन्द्रिय (मुनि) मारने वालेका अनुमोदन न करे। गांवों और नगरोंमें श्रद्धालुओंका निवास होता है (उनके ख्यालसे भी) ॥१६॥५१२॥

ऐसी वाणीको सुनकर पुण्य होता है यह न कहे। "पुण्य नहीं" ऐसा कहने में भी महाभय है ॥१७॥५१३॥

दानके लिए जो जंगम-स्थावर मारे जाते हैं, उनकी रक्षाके लिए भी इससे (पुण्य) करना होता है, यह भी नहीं कहे ॥१८॥५१४॥

वैसा अन्न-पान जिन (प्राणियों) के लिए विहित है, उनके लाभमें बाधा होगी, इसलिए "नहीं" कहना ठीक नहीं है ॥१९॥५१५॥

जो दानकी प्रशंसा करते हैं, प्राणियोंका वध चाहते हैं, जो उस वधका निषेध करते हैं, वे किसीकी वृत्तिका छेद करते हैं ॥२०॥५१६॥

"है या नहीं" दोनों प्रकारसे वे नहीं बोलते, कर्मके आगमनको छोड़कर, वे निर्वाणको प्राप्त होते हैं ॥२१॥५१७॥

जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा श्रेष्ठ है, वैसे ही निर्वाण (के संबंध)में जिन जानें। इसलिए सदा संयत और दमित होकर, मुनि निर्वाणकी साधना करे ॥२२-॥५१८॥

किए जाते अपने कर्मों द्वारा बहे जाते प्राणियोंके लिए, तीर्थंकर जो कहते हैं, वही सुन्दर शरण-स्थान है, इसे प्रतिष्ठा कहा जाता है ॥२३॥५१९॥

आत्म-रक्षित, सदा दमनयुत, (कर्मप्रकृति) धारा तोड़े और जो चित्तमलों से रहित (पुरुष) है; वही शुद्ध परिपूर्ण अनुपम धर्मको बतलाता है ॥२४॥५२०॥

उस धर्मको न जानते हुए, अबुद्ध होते हुए अपनेको बुद्ध माननेवाले, "हम बुद्ध हैं" यह मानते हैं, वे समाधिसे बहुत दूर हैं ॥२५॥५२१॥

वे बीज, कच्चा जल, तथा उनके उद्देश्यसे जो भोजन बना होता है, उसे खाकर खेद न करते समाधि-रहित हो ध्यान लगाते हैं ॥२६॥५२२॥

जैसे चील, कौए, कुरर, मद्गुक, बगले, मछलीकी चाह रखते ध्याते हैं; वैसे ही उनका यह ध्यान मलिन और अधम है ॥२७॥५२३॥

ऐसे ही कोई-कोई श्रमण मिथ्यादृष्टि, अनार्य श्रमण विषयकी कामनासे ध्याते हैं, उनका यह ध्यान मलिन और अधम है ॥२८॥५२४॥

यहां कोई-कोई दुर्मति शुद्ध-मार्गका विरोध करते हैं वे मार्गभ्रष्ट हैं, वें दुःख और नाशको पाएंगे ॥२९॥५२५॥

जैसे जन्मका अन्धा चढ़नेमें बुरी, चूने वाली नाव पर चढ़कर पार जाना चाहता है; वह बीचमें ही डूब जाता है ॥३०॥५२६॥

ऐसे ही मिथ्यात्वी-अनार्य-श्रमण आस्रवको पूरा सेवन करके महाभयको प्राप्त होंगे ॥३१॥५२७॥

काश्यप (भगवान) द्वारा जतलाए हुए इस धर्मको ग्रहणकर महाघोर धाराको तरे, अपनी रक्षाके लिए प्रव्रजित होवे ॥३२॥५२८॥

(मैथुन आदि) ग्राम्य धर्मोंसे विरत हो, जगत में जो कोई प्राणी हैं उन्हें अपने समान मानते हुए दृढ़तापूर्वक प्रव्रजित होवे ॥३३॥५२९॥

अभिमान और मायाको छोड़कर पण्डित (जन) इन सबका निराकरण कर, मुनि निर्वाण को साधे ॥३४॥५३०॥

अच्छे धर्मका सन्धान करे, बुरे धर्म (पाप) का निराकरण करे; प्रधान में भिक्षु तत्पर हो, क्रोध और मानको छोड़ दें ॥३५॥५३१॥

अतीतमें जो बुद्ध थे, और जो भविष्यमें होंगे; उनकी प्रतिष्ठा शान्तिमें है, जैसे प्राणियों की पृथ्वी पर* ॥३६॥५३२॥

व्रत पर आरूढ़ मुनिके सामने नाना प्रकारकी बाधायें आन उपस्थित हों, तो उनके सामने न झुके; जैसे वायुके सामनें पर्वत नहीं झुकता ॥३७॥५३३॥

लोकैषणाओंको हटा, धीर संयमी हो प्राज्ञ पुरुष विहरे, शान्त हो कालके आनेकी कामना करे ॥ यह है केवली (तीर्थंकरों) का मत । सो (जंबू !) कहता हूं ॥३८॥५३४॥

॥ ग्यारहवां अध्ययन समाप्त ॥

---

* ये च बुद्धा अतीता च ये च बुद्धा अनागता ।

समवसरण अध्ययन १२

ये चार समवसरण (मेला) हैं, जिन्हें दूसरे मतवाले दूसरी तरह बतलाते हैं—क्रिया, अ-क्रिया, तीसरा विनय और अज्ञानको चौथा कहते हैं ॥१॥५३५॥

वे अज्ञानी होते हुये अपनेको चतुर समझते हैं, सन्देह-न-रहित झूठ बोलते हैं, अ-पण्डित हो, अ-पण्डितोंसे कहते, बिना चिन्तन किये ये मिथ्या बोलते हैं ॥२॥५३६॥

सचको न-सच समझते, अ-साधु (बुरे) को साधु बतलाते, जो यहां बहुत से विनयवादी जन हैं, पूछने पर विनयको ही मोक्षमें ले जाने वाला बतलाते हैं ॥३॥५३७॥

बिना जाने वे विनयवादी ऐसा कहते हैं—"हमें बात ऐसी ही दीखती है", कर्मको सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाले अक्रियावादी भविष्यमें क्रियाके अभाव को बतलाते हैं ॥४॥५३८॥

वे (भौतिकवादी) वाणी द्वारा गोल-मोल बात करते हुए जवाब न देकर चुप साध जाते हैं, इस दूसरे वचनको विरोधसहित और अपने को विपक्षरहित बतलाते हुये कर्मको (वाक्) छल कहते हैं ॥५॥५३९॥

बिना जानें ही वे (अक्रियावादी) नाना प्रकारके वादोंको बतलाते हैं। जिस (वाद) को लेकर बहुत से लोग संसारमें भूले रहते हैं ॥६॥५४०॥

(शून्यवादी कहते हैं—) सूर्य न उगता न अस्त होता है, चन्द्रमा न बढ़ता न घटता है, न जल सरकता, न वायु बहता है। सारा लोक झूठा और सत्ताहीन है ॥७॥५४१॥

जैसे नेत्रहीन अन्धा प्रकाशके साथ भी रूपोंको नहीं देखता; ऐसे ही प्रज्ञा-हीन अक्रियावादी क्रियाके होते हुये भी (उसे) नहीं देख पाते ॥८॥५४२॥

संवत्सरको, स्वप्न लक्षणको, शकुनादि निमित्तको, देह, (पुच्छलतारा आदि) उत्पातोंको, ऐसे अंगोंवाले शास्त्रोंको पढ़कर बहुतेरे दुनियामें "हम भविष्य को जानते हैं" यह दावा करते हैं ॥९॥५४३॥

कुछ निमित्त सच्चे होते हैं (पर) किन्हीं का ज्ञान उलटा होता है। वे विद्या के त्याग की बात करते हैं ॥१०॥५४४॥

वे (बौद्ध और ब्राह्मण) लोगों के पास आकर ऐसा कहते हैं, "दुःख अपना किया है, दूसरे का किया नहीं," पर तीर्थंकर कहते हैं, ज्ञान और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति को ॥११॥५४५॥

वे (तीर्थंकर) लोकके नेता और नायक, प्रजाओंके हितार्थ मार्गका उप-देश करते हैं। वैसे-वैसे लोकको शासित बतलाते, जिसमें हे मानव! तू अत्यन्त लिप्त है ॥१२॥५४६॥

जो राक्षस या यमलोकवाले हैं, अथवा जो देव तथा गन्धर्व समुदाय के हैं; आकाशगामी अथवा पृथ्वी पर आश्रित हैं, वे फिर-फिर आवागमन में पड़ते हैं ॥१३॥५४७॥

जिसको अपार सलिल की बाढ़ कहा, उसे दुर्मोक्ष गहन-संसार जानो। जहां विषयरूपी अंगनाओंसे खिन्न हो ये (जंगम-स्थावरमें) दोनों प्रकारसे भरमते हैं ॥१४॥५४८॥

मूढ़ कर्मसे कर्मको नहीं मिटा सकते, धीर (पुरुष) अकर्म से कर्मको मिटाते हैं, लोभमय (वस्तुओं) से पार हो, सन्तोषी बुद्धिमान् (जन) पाप नहीं करते ॥१५॥५४६॥

जो लोकके अतीत, वर्तमान और भविष्यको ठीक तौर से जानते हैं; वे दूसरोंके नेता, स्वयं दूसरों द्वारा न ले जाये जाने वाले, बुद्ध हैं; वे (संसारके) अन्त करने वाले होते हैं ॥१६॥५५०॥

वे (तीर्थंकर) जुगुप्सा करते भूतोंके दुःखके भयसे पाप स्वयं नहीं करते, न कराते हैं, धीर सदा संयत हो नम्र होते हैं। दूसरे मतवाले तो विज्ञप्ति मात्रसे धीर अपनेको कहते हैं ॥१७॥५५१॥

जवान भी प्राणवाले हैं, बूढ़े भी; उन्हें सारे लोकमें अपने समान देखते हैं; इस लोकको महान् जानकर अप्रमादियोंमें ही प्रव्रजित होना चाहिए ॥१८॥५५२॥

जो अपनेसे और पर से भी धर्मको जानकर अपने लिये भी और परके लिये भी हित करनेमें समर्थ होता है; जो सोचकर धर्मका आविष्कार करता है, उसे ज्योतिस्वरूपके पास रहना चाहिए ॥१९॥५५३॥

जो आत्माको जानता है, लोकों और आवागमनको जानता है, जो शाश्वतको, अ-शाश्वतको जानता है, एवं जो जन्म-मरण तथा जनोंको (नरकादि) गतिको भी जानता है ॥२०॥५५४॥

अधो लोक में प्राणियोंके पीड़ा पानेको, आस्रव (चित्तमल) और संवर को जानता है; जो दुःख और निर्जरा को जानता है, वही क्रियावादको बतला सकता है ॥२१॥५५५॥

शब्दों और रूपों में आसक्त न होते हुए गन्धों और रसोंमें द्वेष न करते० न जीनेमें न मरणमें आकांक्षा करते हुए, स्वीकृत संयम से रक्षित हो घेरेसे मुक्त होता है। यह कहता हूं ॥२२॥५५६॥

॥ बारहवां अध्ययन समाप्त ॥

यथार्थ कथना अध्ययन १३

मैं पुरुषके (हितकर) रत्नत्रयके भेदोंको याथातथ्य (ठीक) से बतलाऊंगा, सन्तोंका आचरण धर्म है, और असन्तोंका कुशील। शान्ति (मोक्ष) और अशान्ति (बंध)को भी प्रकट करूंगा ॥१॥५५७॥

दिन रात सम्यक् जागरूक तथागतों (तीर्थंकरों) से धर्मको प्राप्त कर उक्त समाधिको न सेवन करते हुए, अपने शास्ता (तीर्थंकर)की ही निन्हव लोग निन्दा करते रहते हैं ॥२॥५५८॥

जो अपनी इच्छाके अनुसार व्याख्या करते हैं, वे शुद्ध शासनका उलटा अर्थ करते हैं, बहुतसे गुणोंके वे भाजन नहीं, वे तो तीर्थंकर के ज्ञान पर सन्देह अर्थ झूठ बोलते हैं ॥३॥५५९॥

जो पूछने पर (गुरुका नाम) छिपाते हैं, वे लेने लायक मोक्ष अर्थसे अपनेको वंचित करते हैं। वे असाधु होते हुए अपने को साधु मानने वाले माया (कपट) से युक्त हो अनन्तकालिक घात (नरक) को प्राप्त होंगे ॥४॥५६०॥

जो क्रोधी होता है, दूसरेकी निन्दा करता है, मिटे कलहको फिरसे उखाड़ता है, वह पापकर्मा अंधेकी भाँति दण्ड जैसे मार्ग पर जाता अनिश्चयमें पड़ा दुःखित होता है ॥५॥५६१॥

जो झगड़ालु, अनुचितभाषी है, वह झगड़ेमें विना पड़े चैन नहीं पाता, पर जो अववाद (उपदेश) के अनुसार चलने वाला, लज्जालु, एकान्त-श्रद्धालु और माया रहित है—॥६॥५६२॥

जो गुरु द्वारा बहुत उपदेशित, शुद्ध जातिसे युक्त, सुन्दर सरल आचारसे युक्त होता है, वही चतुर, सूक्ष्म ज्ञान वाला (पुरुष) समता प्राप्त और झगड़ेसे परे होता है ॥७॥५६३॥

जो कि अपनेको ज्ञानी समझकर विना परीक्षा किये वाद करता है, "मैं तपसे युक्त हूं" यह मानता हुआ दूसरे जनको सिर्फ मूरतसा देखता है ॥८॥५६४॥

वह एकान्त रूपसे संसारमें भ्रमता है, वह (तीर्थंकरके) मार्गमें मुनिके पद पर नहीं, जो सम्मानके लिये मदान्वित होता है, संयमयुक्त होते हुए भी वह परमार्थको नहीं जानता ॥९॥५६५॥

जो ब्राह्मण, या क्षत्रिय, अथवा उग्रपुत्र, या लिच्छवी*वंशज है, और (जो) प्रव्रजित हो पर का दिया खाते हुए अभिमान में पड़कर गोत्रका अभिमान नहीं करता वही सच्चा मुनि है ॥१०॥५६६॥

उसकी रक्षा जाति और कुल नहीं कर सकते, जिसने ज्ञान और आचरण

---

*वैशाली गणराज्यके लिच्छवी जिनके ज्ञातृवंशमें काश्यप-गोत्रीय वर्धमान महावीर पैदा हुए।

को नहीं पाला, घरसे निकलकर गृहस्थके कर्मका सेवन करता हुआ, वह मोक्षार्थ संसारका पारग नहीं होता ॥११॥५६७॥

अकिंचन (जीवनवाला) जो भिक्षु गौरव एवं कीर्ति यश की ओर जाता है, इस आजीव को न समझकर वह बार-बार जन्म-मरणमें पड़ता है ॥१२॥५६८॥

जो भिक्षु भाषाका जानकार, सुन्दर बोलने वाला, प्रतिभावान् एवं चतुर होता है, गंभीर प्रज्ञ सद्भावना सहित आत्मवाला हो, दूसरे जनोंको प्रज्ञासे तिरस्कृत करता है, वह साधु नहीं है ॥१३॥५६९॥

जो प्रज्ञावान् भिक्षु अभिमानी है, वह समाधिप्राप्त नहीं होता, अथवा लाभ और मदसे अवलिप्त हो दूसरे जनोंको बाल-बुद्धि कह कोसता है ॥१४॥५७०॥

भिक्षुको चाहिये कि प्रज्ञा, तप, गोत्र, (जाति) तथा आजीविकाके मदको हटाये, वही पण्डित तथा उत्तम पुरुष है ॥१५॥५७१॥

धीर इन मदोंको हटाये, जिनको सुधर्मी नहीं सेवते, वे सारे गोत्रोंसे परे, महर्षि उत्तम (मोक्ष) गतिको प्राप्त होते हैं ॥१६॥॥५७२॥

उत्तम लेश्या (ध्यान) वाला तथा धर्मका साक्षात्कार किये भिक्षु ग्राम-नगरमें प्रवेश कर कामना और अकामनाको जानते हुए लोभ-रहित हो अन्न-पान ग्रहण करे ॥१७॥५७३॥

संयममें अरति और असंयममें रतिको हटाकर, भिक्षु चाहे बहुजन-सहित हो या अकेला विचरने वाला, मुनिधर्म द्वारा एकान्त संयम को बतलावे। प्राणी तो अकेला ही आवागमन करता है ॥१८॥५७४॥

स्वयं जानकर या सुनकर, प्रजाके हितके लिये धर्मको भाषे, जो निन्दित, तथा बाल-कामनाके प्रयोग हैं, उन्हें सुधीर-धर्मयुक्त नहीं सेवन करते ॥१९॥५७५॥

अपनी तर्क बुद्धि द्वारा किन्हींके भावों को न जान, अश्रद्धालु थोड़ेसे भी क्रोध को प्राप्त हो सकता है, और आयुके कालक्षेप (मृत्यु) या हानिको पा सकता है, इसलिये अभिप्राय जानकर ही दूसरोंको (बातोंका) उपदेश दे ॥२०॥५७६॥

धीर (दूसरोंके) कर्म, रुचि को जाने; फिर उसके स्वभाव दोषको हटाये। भयंकर रूप-शोभाओंसे लोग नष्ट होते हैं, यह समझ कर विद्वान् स्थावर-जंगम के हितकी बात उपदेशे ॥२१॥५७७॥

न पूजा चाहे न प्रशंसा, किसीका भी प्रिय-अप्रिय न करे। सारे अनर्थों को छोड़कर, व्याकुलता और मदसे रहित होवे ॥२२॥५७८॥

यथातथ्य (यथार्थ) को ठीकसे देखते हुए, सभी प्राणियोंमें हिंसाके भावको छोड़, (मुनि) न जीनेकी न मरनेकी कामना करते हुए माया से मुक्त हो प्रव्रज्या ले। यह कहता हूं ॥२३॥५७९॥

॥ तेरहवां अध्ययन समाप्त ॥

ग्रन्थ-परिग्रह—अध्ययन १४

(परिग्रह रूपी) गांठको छोड़, तत्पर हो ब्रह्मचर्य वास करे, अववाद (उपदेश)कारी हो विनयका अभ्यास करे। जो छेक (चतुर) है, वह प्रमाद नहीं करता ॥१॥५८०॥

जैसे चिड़ियाका बच्चा बिना पंख जमे अपने घोंसले से उड़नेकी कामना कर उसे पूरा नहीं कर सकता; उसी तरह वे पंख, चलने में असमर्थ (शावक) को चील्ह आदि हर ले जाते हैं ॥२॥५८१॥

इसी प्रकार अपुष्ट धर्मवाले बाहर घूमने वाले को हाथोंमें करने योग्य समझ, (दूसरे) अनेक पाप धर्म वाले बिना पांखके पक्षीके शावककी भांति हर ले जाते हैं ॥३॥५८२॥

मनुष्य "बिना ब्रह्मचर्यमें वसे वह अन्त करनेकी चीज नहीं है" यह समझकर वहां वास और समाधिकी इच्छा करे। मोक्षानुरूपी आचरण-सेवन करते हुए आशुबुद्धि पुरुष (गच्छसे) बाहर न निकले ॥४॥५८३॥

जो स्थान और शयन-आसनसे एवं पराक्रमसे सुन्दर साधुओंसे युक्त होता है, वह समिति-गुप्तिके संयममें ज्ञान सहित हो व्याख्या करते हुए दूसरोंको भी (धर्म) बतला सकता है ॥५॥५८४॥

भयंकर शब्दोंको सुनकर उनके विषयमें मनमें मैल न आने दे (कर) विचरे, भिक्षु जैसे भी हो (गुरुसे पूछ) सन्देहहीन होवे, न निद्रा न प्रमादका सेवन करे ॥६॥५८५॥

तरुण या वृद्ध, अधिक या समवयस्क द्वारा उपदिष्ट होते हुए भी (भिक्षु) अच्छी तरह स्थिरता नहीं प्राप्त करता, और पार ले जाता हुआ भी पार नहीं जा सकता ॥७॥५८६॥

साधु कुपित न होवे, चाहे दूसरे मतवाले, सिद्धोंकी अवहेलनाके बारेमें टोकें, तरुण या वृद्ध ताना दें, मुंहफट पनभरनी दासी गृहस्थों के भी अनुरूप न होनेकी बात करके ताना मारे ॥८॥५८७॥

तो न उन पर कुपित हो, न दुःखी हो, न वचनसे कुछ भी कटु बोले, "ऐसा ही आगेसे करूंगा" यह प्रतिज्ञा करे। "उससे मेरा भला है," इसलिये प्रमाद न करे ॥९॥५८८॥

वनमें जैसे मूढ़, विभ्रान्तको अमूढ़ प्रजाओंके हितार्थ मार्ग-निर्देश करते हैं, इससे मेरे लिये ही अच्छा है, मुझे वृद्ध अनुशासन करें ॥१०॥५८९॥

तो उस मूढ़को अ-मूढ़की विशेष-युक्त पूजा करनी चाहिये। वीर (भगवान्) ने यह उपमा कही है, अर्थको समझकर (साधु) ठीक से उस पर चले ॥११॥५९०॥

जैसे नेता रातके अंधकारमें न सूझनेसे मार्गको नहीं जानता, वह सूर्यके उगने पर, प्रकाशित होने पर मार्ग को जानता है ॥१२॥५९१॥

ऐसे ही धर्ममें अपरिपक्व शिष्य न बूझते हुये धर्मको नहीं जानता। पर वह जिन-प्रवचनमें पण्डित हो पीछे सूर्योदयमें आँखकी नाई देखता है ॥१३॥५९२॥

नीचे, ऊपर और तिरछी दिशाओंमें जो स्थावर-त्रस प्राणी हैं, द्वेषसे जरा भी कंपित न हो उन पर सदा संयत रह विहार करे ॥१४॥५९३॥

प्रजाओंके सम्बन्धमें सब बातें यथावसर परमार्थको जानने वाले आचार्य से विनयपूर्वक पूछे, उसे सुनकर समझ कर "यह केवली सम्बन्धी ज्ञानसमाधि है" जान हृदयमें स्थापित करे ॥१५॥५९४॥

उस पर (मन-वचन-कायासे) अच्छी तरह स्थित हो, तायी (भगवान्) ने इनमें शान्ति और दुःख-निरोधके होनेकी बात कही है। वही त्रिलोकदर्शी बतलाते हैं, अतः इस प्रमादका संग फिर कभी नहीं करना है ॥१६॥५९५॥

वह भिक्षु अपेक्षित परमार्थको सुनकर प्रतिभावान् और विशारद होता है, परम लाभका इच्छुक व्यवदान (ज्ञान) और मुनि पदको पाकर शुद्ध-एषणीय (आहार) से मोक्षको पाता है ॥१७॥५९६॥

जानकर धर्मका व्याकरण (उपदेश) करते हैं, वे बुद्ध (संसारके) अन्त-कर होते हैं। वे (अपने और दूसरे) दोनोंकी मोचनासे (संसार) पारंगत, पूछे प्रश्नका उत्तर देते हैं ॥१८॥५९७॥

न अर्थको छिपायें, न अयुक्त व्याख्या करे, न अभिमान या (अपनी) ख्यातिकी चर्चा करे। प्राज्ञको परिहास भी न करना चाहिये, न आशीर्वादका व्याकरण (उपदेश) ॥१९॥५९८॥

प्राणियोंके अहितके भयसे जुगुप्सा करते हुए आशीर्वाद न दे, न मंत्रवाक्यसे संयमको निष्फल करे। मनुष्य प्रजाओं में कोई चीज न चाहे, न अ-साधुओंके धर्मका उपदेश करे ॥२०॥५९९॥

पापधर्मियोंका परिहास भी न करे, और तथ्य-युक्त भी परुष वचन न बोले। अव्याकुल और संवरयुक्त भिक्षु न क्षुद्र बने न डींग मारे ॥२१॥६००॥

जिन वचनमें संदेह-रहित हो (भिक्षु) सजग रहे और विभज्यवाद-अनेकान्तवाद का व्याकरण (व्याख्यान) करे। समताके साथ सुप्रज्ञ (मुनि), धर्मोत्थान-सहित सत्य तथा असत्य दोनों प्रकारकी भाषाओंके बीच व्यवहार-भाषामें समानभावसे उपदेश करे ॥२२॥६०१॥

दोनों भाषाओंका अनुगमन करते व्यर्थको जानें। वैसे-वैसे साधु अ-कर्कश

बोले। चुभने वाली भाषा, दुःखने वाली भाषा न बोले। जल्दी समाप्त होने वाली बातको न बढ़ाये ॥२३॥६०२॥

अच्छी तरह सुन अर्थको ठीकसे जानकर पूरी समझाने वाली भाषा बोले। भिक्षु जिज्ञासासे शुद्ध वचनका प्रयोग करे, तथा पापका विवेक करते हुए निरवद्य बोले ॥२४॥६०३॥

तीर्थकरने जैसा कहा, वैसा भली भांति सीखे, यत्नविवेक करे, मर्यादाके बाहर न बोले। वह दृष्टियुक्त (हो) दृष्टिको बिगाड़कर न कहे, तब वह समाधिको बतला सकता है ॥२५॥६०४॥

अर्थको न बिगाड़, न छिपाके बात करे, और तायी सूत्र और अर्थको व्यवहार विरुद्ध न कहे, शास्ता (उपदेष्टा) की भक्तिके साथ वादको सोचकर, श्रुतको ठीकसे प्रतिपादन करे ॥२६॥६०५॥

वह जो शुद्ध सूत्र बोलने वाला और उपधान (उचित-तप) युक्त रहे, जो जहां-तहां धर्मको प्राप्त करता वाक्य-ग्राही, कुशल और व्यक्त है, वह उस भाव-समाधिको बतला सकता है। यह कहता हूं ॥२७॥६०६॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

—०—

आदान-परमार्थ—अध्ययन १५

जो अतीत, वर्तमान और आने वाला है, (उन) सबको दर्शनके आवरणको हटाने वाले नायक, तायी (भगवान्) जानते हैं ॥१॥६०७॥

भगवान् विलक्षण पदार्थके जानने वाले संदेहके नाशक हैं, ऐसे विलक्षण (पदार्थ) के बताने वाले जहां-तहां नहीं होते ॥२॥६०८॥

वहां-वहां भगवान्ने सुव्याख्यान किया, वह (व्याख्यान) सचमुच ही सुआख्यात है। सदा सत्यसे युक्त हो प्राणियोंमें मैत्री करनी चाहिए ॥३॥६०९॥

धर्म (ब्रह्मचर्य) में वास करने वाले साधुका धर्म है कि भूतों (प्राणियों) की हानि न करे। वह जगत्को समझकर, (उसके प्रति) जीवट वाली भावना करे ॥४॥६१०॥

भावना (रूपी) योगसे शुद्ध कृत आत्मा वाला, जलमें नाव जैसा बतलाया गया है; तीर पर पहुंची नावकी तरह वह सारे दुःखोंसे मुक्त हो जाता है ॥५॥६११॥

बुद्धिमान् लोकमें पापको जान (बन्धन-) मुक्त होता है, नए कर्मको न करनेसे (वह) पाप कर्मोंको तोड़ता है ॥६॥६१२॥

न करनेसे नया कर्म पास नहीं आता। जानकर इसके कारण वह महावीर न जनमता न मरता (आवागमन रहित) है ॥७॥६१३॥

जिसका पहलेका किया (कर्म) नहीं है, वह महावीर नहीं जनमता-मरता। जैसे वायु आगको, वैसे ही वह लोकमें प्रिय लगने वाली स्त्रियोंसे पार हो जाता है ॥८॥६१४॥

जो स्त्रियोंका सेवन नहीं करते, वे आदिमें ही मोक्ष पाए जन हैं। वे जन बंधनसे मुक्त हो जीवनका लोभ नहीं करते ॥९॥६१५॥

जीवनको पीछे छोड़ कर्मोंका अन्त पा लेते हैं, वे (शुभ अध्यवसाय वाले) कर्मों द्वारा (मोक्षका) साक्षात्कार किए हैं, जो मार्गका उपदेश करते हैं ॥१०॥६१६॥

प्राणियोंको (उनके) अधिकारके अनुसार अलग अनुशासन (उपदेश) किया जाता है, क्योंकि (संयम धनसे सम्पन्न, देवादिसे पूजित) आशय रहित, संयमी, दान्त, दृढ़, तथा मैथुनसे विरत रहता है ॥११॥६१७॥

(विषय रूपी) धारको तोड़ और निर्दोष (शिकारीके फेंके चारेमें) लिप्त नहीं होता, सदा निर्दोष और दान्त रहते हुए अनुपम (भाव-) सन्धिको पाता है ॥१२॥६१८॥

किसीके अनुपम मुनिधर्मके पालनमें तत्वज्ञका विरोध नहीं होता, वह नेत्रों वाला मन, वचन, काय द्वारा किसीसे भी विरुद्ध नहीं ॥१३॥६१९॥

जो इच्छाओंका नाशक है, वह मनुष्योंकी आंख सा है, अपने अन्त (धार) से छोर काटता है, चक्का भी अन्त (छोर) से ही लुढ़कता बढ़ता है ॥१४॥६२०॥

धीर पुरुष अन्तका सेवन करते हैं, इसलिए (संसारके) अन्त करने वाले होते हैं। आदमी इस मानुषलोकमें धर्मका आराधन करते हुए (आवागमनका) अन्त करते हैं ॥१५॥६२१॥

उत्तर प्रधान-जिन प्रवचनमें मैंने यह सुना, कि अर्थ समाप्त किए पुरुष या देवता अगले भवमें सिद्धि प्राप्त करते हैं। अनन्त (तीर्थकरोंकी परम्परा) से यह भी सुना, कि अमनुष्यों (देवताओं) में वैसी बात (निर्वाण) नहीं होती ॥१६॥६२२॥

समग्र गणधरोंने (आर्हत कथनानुसार) कहा है, कि केवल मनुष्य दुःखों का अन्त कर सकता है, फिर दूसरोंने कहा, कि यह मानव शरीर दुर्लभ है ॥१७॥६२३॥

यहां (मनुष्यत्व) से च्युत होने पर संबोधि (परम ज्ञान) मिलनी दुर्लभ है। वैसे आचार्य भी दुर्लभ हैं, जो धर्मके अर्थ का व्याकरण (व्याख्यान) करते हैं ॥१८॥६२४॥

बोले। चुभने वाली भाषा, दुःखने वाली भाषा न बोले। जल्दी समाप्त होने वाली बातको न बढ़ाये ॥२३॥६०२॥

अच्छी तरह सुन अर्थको ठीकसे जानकर पूरी समझाने वाली भाषा बोले। भिक्षु जिज्ञासासे शुद्ध वचनका प्रयोग करे, तथा पापका विवेक करते हुए निरवद्य बोले ॥२४॥६०३॥

तीर्थकरने जैसा कहा, वैसा भली भांति सीखे, यत्नविवेक करे, मर्यादाके बाहर न बोले। वह दृष्टियुक्त (हो) दृष्टिको बिगाड़कर न कहे, तब वह समाधि को बतला सकता है ॥२५॥६०४॥

अर्थको न बिगाड़, न छिपाके बात करे, और तायी सूत्र और अर्थको व्यवहार विरुद्ध न कहे, शास्ता (उपदेष्टा) की भक्तिके साथ वादको सोचकर, श्रुतको ठीकसे प्रतिपादन करे ॥२६॥६०५॥

वह जो शुद्ध सूत्र बोलने वाला और उपधान (उचित-तप) युक्त रहे, जो जहां-तहां धर्मको प्राप्त करता वाक्य-ग्राही, कुशल और व्यक्त है, वह उस भाव-समाधिको बतला सकता है। यह कहता हूं ॥२७॥६०६॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

आदान-परमार्थ—अध्ययन १५

जो अतीत, वर्तमान और आने वाला है, (उन) सबको दर्शनके आवरणको हटाने वाले नायक, तायी (भगवान्) जानते हैं ॥१॥६०७॥

भगवान् विलक्षण पदार्थके जानने वाले संदेहके नाशक हैं, ऐसे विलक्षण (पदार्थ) के बताने वाले जहां-तहां नहीं होते ॥२॥६०८॥

वहां-वहां भगवान्ने सुव्याख्यान किया, वह (व्याख्यान) सचमुच ही सुआख्यात है। सदा सत्यसे युक्त हो प्राणियोंमें मैत्री करनी चाहिए ॥३॥६०९॥

धर्म (ब्रह्मचर्य) में वास करने वाले साधुका धर्म है कि भूतों (प्राणियों) की हानि न करे। वह जगत्को समझकर, (उसके प्रति) जीवट वाली भावना करे ॥४॥६१०॥

भावना (रूपी) योगसे शुद्ध कृत आत्मा वाला, जलमें नाव जैसा बतलाया गया है; तीर पर पहुंची नावकी तरह वह सारे दुःखोंसे मुक्त हो जाता है ॥५॥६११॥

बुद्धिमान् लोकमें पापको जान (बन्धन-) मुक्त होता है, नए कर्मको न करनेसे (वह) पाप कर्मोको तोड़ता है ॥६॥६१२॥

न करनेसे नया कर्म पास नहीं आता। जानकर इसके कारण वह महावीर न जनमता न मरता (आवागमन रहित) है ॥७॥६१३॥

जिसका पहलेका किया (कर्म) नहीं है, वह महावीर नहीं जनमता-मरता। जैसे वायु आगको, वैसे ही वह लोकमें प्रिय लगने वाली स्त्रियोंसे पार हो जाता है ॥८॥६१४॥

जो स्त्रियोंका सेवन नहीं करते, वे आदिमें ही मोक्ष पाए जन हैं। वे जन बंधनसे मुक्त हो जीवनका लोभ नहीं करते ॥९॥६१५॥

जीवनको पीछे छोड़ कर्मोंका अन्त पा लेते हैं, वे (शुभ अध्यवसाय वाले) कर्मों द्वारा (मोक्षका) साक्षात्कार किए हैं, जो मार्गका उपदेश करते हैं ॥१०॥६१६॥

प्राणियोंको (उनके) अधिकारके अनुसार अलग अनुशासन (उपदेश) किया जाता है, क्योंकि (संयम धनसे सम्पन्न, देवादिसे पूजित) आशय रहित, संयमी, दान्त, दृढ़, तथा मैथुनसे विरत रहता है ॥११॥६१७॥

(विषय रूपी) धारको तोड़ और निर्दोष (शिकारीके फेंके चारेमें) लिप्त नहीं होता, सदा निर्दोष और दान्त रहते हुए अनुपम (भाव-) सन्धिको पाता है ॥१२॥६१८॥

किसीके अनुपम मुनिधर्मके पालनमें तत्वज्ञका विरोध नहीं होता, वह नेत्रों वाला मन, वचन, काय द्वारा किसीसे भी विरुद्ध नहीं ॥१३॥६१९॥

जो इच्छाओंका नाशक है, वह मनुष्योंकी आंख सा है, अपने अन्त (धार) से छोर काटता है, चक्का भी अन्त (छोर) से ही लुढ़कता बढ़ता है ॥१४॥६२०॥

धीर पुरुष अन्तका सेवन करते हैं, इसलिए (संसारके) अन्त करने वाले होते हैं। आदमी इस मानुषलोकमें धर्मका आराधन करते हुए (आवागमनका) अन्त करते हैं ॥१५॥६२१॥

उत्तर प्रधान-जिन प्रवचनमें मैंने यह सुना, कि अर्थ समाप्त किए पुरुष या देवता अगले भवमें सिद्धि प्राप्त करते हैं। अनन्त (तीर्थकरोंकी परम्परा) से यह भी सुना, कि अमनुष्यों (देवताओं) में वैसी बात (निर्वाण) नहीं होती ॥१६॥६२२॥

समग्र गणधरोंने (आर्हत कथनानुसार) कहा है, कि केवल मनुष्य दुःखों का अन्त कर सकता है, फिर दूसरोंने कहा, कि यह मानव शरीर दुर्लभ है ॥१७॥६२३॥

यहां (मनुष्यत्व) से च्युत होने पर संबोधि (परम ज्ञान) मिलनी दुर्लभ है। वैसे आचार्य भी दुर्लभ हैं, जो धर्मके अर्थ का व्याकरण (व्याख्यान) करते हैं ॥१८॥६२४॥

जो (आचार्य) परिपूर्ण, अनुपम, शुद्ध, धर्मको बतलाते हैं, जो अनुपम स्थान प्राप्त हैं, उनके फिर जन्म लेनेकी बात कहाँ ? ॥१९॥६२५॥

कहीं और कभी ही मेधावी तथागत (तीर्थंकर-अर्हत्) पैदा होते हैं, वे (निदान-कामना हीन) तथागत (सम्यग्दृष्टि) लोकके अनुपम चक्षु हैं ॥२०॥६२६॥

वह अनुपम स्थान है, जिसे (भगवान्) काश्यप (महावीर) ने जाना। जिसका आचरण कर कितने ही पण्डित निर्वाण प्राप्त हो (जीवनके) अन्त को पाते हैं ॥२१॥६२७॥

पण्डित वीर्य से कर्मोंके नाशके लिये प्रवृत्त होता है। वह पहलेके कर्मों को ध्वस्त करता हुआ नयेको नहीं करता ॥२२॥६२८॥

परम्परासे किये गये पापको महावीर नहीं करता। वासना के कारण सामने आये (आठ प्रकारके) कर्मो को छोड़ मोक्ष का साक्षात्कार करता है ॥२३॥६२९॥

सारे साधुओंका जो मत है, वह मत (भव रूपी) शल्य काटने वाला है, उसे साधकर पुरुष पारंगत (जिन) होते या देवता बनते हैं ॥२४॥६३०॥

पहले भी धीर (वीर) हुये, आगे भी वैसे सुव्रत पैदा होंगे, जो स्वयं पारंगत (भव-उत्तीर्ण) हों वे दूसरों के लिये दुर्गम मार्गका प्रादुर्भाव करते हैं। यह कहता हूं ॥२५॥६३१॥

॥ पन्द्रहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

—०—

गाथासार-ग्रहण—अध्ययन १६

तब भगवान् ने कहा—जो ऐसे दान्त, मोक्षयोग्य और कायाव्युत्सृष्ट (ममता त्याग किये हुये) हैं; उसे ब्राह्मण कह सकते हैं, श्रमण, भिक्षु या निर्ग्रन्थ भी कह सकते हैं।

शिष्यने प्रश्न किया—भंते ! कैसे उस दान्त, मोक्षयोग्य, काया-व्युत्सृष्टको ब्राह्मण, श्रमण, भिक्षु या निर्ग्रन्थ कहना चाहिये ? इसे महामुनि हमें बतलायें ?

जैसे सारे पाप कर्मोंसे विरत, राग द्वेष से, कलह और निन्दासे, चुगली और परदोष कथनसे, रति-विरतिसे, माया और झूँठसे, मिथ्या-धारणा रूपी शल्यसे विरत होता है, समतायुक्त, ज्ञानादि सहित, सदा संयमयुक्त रहता, क्रोध और मान नहीं करता, उसे ब्राह्मण कहना चाहिए ॥१॥६३२॥

यहाँ भी जो श्रमण अलिप्त, निष्काम लोभविमुक्त, हिंसा, झूँठ, वाहरी भीतरी मैथुन और परिग्रह, क्रोध, मान, माया लोभ, रागादिको नहीं करता। इस प्रकार जिस-जिसके निदानसे आत्मा में प्रद्वेष और कर्मबन्ध होता है, उन निदानोंसे पहले ही निवृत्त, प्राणिहिंसासे विरत, दान्त और कायासे व्युत्सृष्टकाय-अनासक्त है, उसे श्रमण कहना चाहिए ॥२॥६३३॥

यहां भी वह भिक्षु, जो अन्-उद्धत, विनीत, नम्र, दान्त, मोक्षार्ह, व्युत्सृष्टकाय हैं, नानाविध कष्टों और बाधाओंको दबाकर, आत्माके भीतर शुद्ध योगको ग्रहण करता है; तत्पर, दृढात्म, भली प्रकार देख-भाल कर परदत्त अन्न का भोजन करने वाला हैं; उसे भिक्षु कहना चाहिये ॥३॥६३४॥

यहां निर्ग्रन्थ को होना चाहिये; अकेला, एकवेदी, बुद्ध-तत्वज्ञ, भवधारा-संछिन्न, सुसंयत सुसमित सुन्दर सामायिकवाला, आत्मज्ञान प्राप्त, विद्वान्, द्रव्य और भाव दोनों ही से भवस्रोतको तोड़े। पूजा-सत्कार-लाभ-का इच्छुक नहीं; धर्मज्ञ, मोक्षमार्ग पर आरूढ़, प्राणियोंमें समताका आचरण करने वाला, दान्त, मोक्षार्ह, व्युत्सृष्टकाय है, उसे निर्ग्रन्थ कहना चाहिये ॥४॥६३५॥

सो ऐसा ही जानो, कि मैं भय का त्राता हूं। ऐसा कहता हूं ॥

॥ सोलहवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ पहला श्रुतस्कंध समाप्त ॥

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

अध्ययन १—पुण्डरीक

(सुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामीसे कहते हैं :—) आवुसो ! उन भगवान् (काश्यप) ने ऐसे कहा—यह है पुण्डरीक नामक अध्ययन। उसका यह अर्थ है:— जैसे पुष्करिणी हो, बहुत जल वाली, बहुत पंक वाली, बहुत कमलों वाली, यथार्थ-नामा, पुण्डरीक (श्वेत कमलों) वाली, प्रासादिका (स्वच्छ), दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर। उस पुष्करिणीके स्थान-स्थानमें जहां-तहां बहुतसे परम श्रेष्ठ पुण्डरीक आदि हों। जो क्रमशः ऊंचे, रुचिर, सुन्दर-वर्ण युक्त, सुगन्ध-युक्त, रस-युक्त, स्पर्श-युक्त, प्रासादिक, अभिरूप, प्रतिरूप हों। उस पुष्करिणीके अत्यन्त मध्यदेश में एक महान् परम श्रेष्ठ पुण्डरीक ऊंचा, रुचिर, सुन्दर वर्ण युक्त*......प्रतिरूप हो। उस सारी पुष्करिणी में वहां स्थान-स्थान में जहां-तहाँ बहुतसे पद्मवर पुण्डरीक......प्रतिरूप हों। उस सारी पुष्करिणीके अत्यन्त मध्यदेशमें एक महान् पद्मवरपुण्डरीक ऊंचा रुचिर......प्रतिरूप हो ॥१॥६३६॥

तब कोई पुरुष पूर्व दिशा से आकर उस पुष्करिणी तीर के पथ पर खड़ा हो देखे......एक बड़े पद्मवर पुण्डरीकको ऊंचा, रुचिर..... प्रतिरूप। तब वह पुरुष ऐसे कहे......मैं परिश्रमी, कुशल, पण्डित-व्यक्त-मेधावी, बालभाव-रहित, मार्ग में स्थित, मार्गका ज्ञाता, मार्गकी गति और पराक्रमका ज्ञाता पुरुष हूं। मैं इस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा," यह सोच, वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसता है। जैसे-जैसे भीतर घुसता है, वैसे-वैसे बड़ा जल, बड़ी पंक मिलती है। तीरसे दूर (जा) और पद्मवर पुण्डरीकको (भी) न पा, न इधर का न उधर का, पुष्करिणी के भीतर पंकमें फँस जाता है। यह है पहला पुरुष ॥२॥६३७॥

अब दूसरा पुरुष। तब एक पुरुष दक्षिण दिशासे आकर उस पुष्करिणी के किनारे खड़ा हो देखे उस एक पद्मवर पुण्डरीकको ऊंचा, रुचिर,*...... प्रतिरूप। और वहीं एक पुरुषको देखा, बुरी हालतमें पद्मवर पुण्डरीकको न पा, न इधर का न उधर का पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँसा......।

तब यह पुरुष उस पुरुषके बारेमें कहे "अहो, यह पुरुष अ-परिश्रमी, अ-कुशल, न पराक्रमका ज्ञाता है। जो कि यह पुरुष ऐसे फँस गया। मैं हूं परि-

---

*बिंदीवाली जगहोंमें पहलेका पाठ दुहराओ।

श्रमी० पराक्रमज्ञ पुरुष। मैं इस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा।" यह सोच वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसे। जैसे-जैसे भीतर घुसे, वैसे-वैसे बड़ा जल बड़ी पंक मिलती है। तीरसे दूर जा, और पद्मवर पुण्डरीक को न पा, न इधर का न उधर का, पुष्करिणी के भीतर पंकमें फँस जाता है। यह है दूसरा पुरुष ॥३॥६३८॥

अब तीसरा पुरुष पश्चिम दिशा से आकर उस पुष्करिणीके किनारे खड़ा हो उस एक पद्मवर पुण्डरीकको देखता है। वहां दो पुरुषोंको देखता है······पुष्करिणी के भीतर पंकमें फँसे········।

तब वह पुरुष उन दोनोंके बारे में कहता है—अहो, ये दोनों पुरुष अ-परिश्रमी× ० न पराक्रमके ज्ञाता हैं। मैं उस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा। यह सोच वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसता है+······पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँस जाता है। यह है तीसरा पुरुष ॥४॥६३९॥

अब चौथा पुरुष। तब चौथा पुरुष उत्तर दिशासे आकर, उस पुष्करिणी के किनारे खड़ा हो, उस एक पद्मवर पुण्डरीक को० देखता है। वहां तीन पुरुषोंको देखता है पुष्करिणीके भीतर पंकमें फसे०।

तब वह पुरुष उन तीनों पुरुषोंके बारेमें कहता है—अहो, ये तीनों पुरुष अ-परिश्रमी, न पराक्रमके ज्ञाता हैं। मैं उस पद्मवर पुंडरीकको निकालूंगा। यह सोच, वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसता है, पुष्करिणीके पंकमें फंस जाता है। यह है चौथा पुरुष ॥५॥६४०॥

तब परिश्रमी, गति पराक्रमका ज्ञाता, रूक्ष (राग-द्वेष रहित) भिक्षु उस पुष्करिणीके तीर पर खड़ा हो देखता है, उस एक पद्मवर पुण्डरीकको······। तब वह भिक्षु उन चारोंको देखता है, पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँसे········। ऐसे कहता है—अहो, ये चार पुरुष अ-परिश्रमी*······न पराक्रमके ज्ञाता हैं। मैं उस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा। यह सोच वह भिक्षु उस पुष्करिणीमें नहीं घुसता। उस पुष्करिणीके तीर पर खड़ा हो आवाज देता है—"हे पद्मवर पुण्डरीक, निकलो, निकलो"। तब वह पद्मवर पुण्डरीक निकल आता है ॥६॥६४१॥

हे आवुसो श्रमणो, उदाहरण कह दिया। अब इसका अर्थ जानना है। श्रमण भगवान् महावीरको निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थियां "भन्ते!" कहकर वन्दना नमस्कार करते हैं। वन्दना और नमस्कार करके यह कहते······उदाहरण सुना है आयुष्मन् श्रमण! पर इसका अर्थ नहीं जानते।

×दुहराओ ६३६।
+दुहराओ ६३६।

श्रमण भगवान् महावीरने उन बहुतसे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंको आमन्त्रित कर यह कहा—हंत, तो आवुसो श्रमणो; हेतु-सहित निमित्त सहित अर्थको मैं कहता हूं, समझाता हूं, कीर्तन करता हूं, जतलाता हूं, पुनः-पुनः दिखलाता हूं, उसे बोलता हूं ॥७॥६४२॥

आयुष्मन् श्रमणो, मैंने लोकको, कल्पनासे पुष्करिणी कहा। कर्मको आ० श्रमणो, कल्पनासे जल कहा। कामभोगोंको आ० श्रमणो, मैंने पंक कहा। जनों और जनपदोंको आ० श्रमणो, मैंने कल्पनासे बहुतसे पद्मवर पुण्डरीक कहे। राजाको मैंने आ० श्रमणो, एक महापद्मवर पुण्डरीक कहा। अन्य तीर्थिकों (परमतवादियों) को आ० श्रमणो, चार पुरुष कहे। धर्मको मैंने आ० श्रमणो, भिक्षु कहा। धर्मरूपी तीर्थ और धर्मकथाको मैंने आ० श्रमणो, कल्पना से आवाज देना कहा। निर्वाणको मैंने आ० श्रमणो, कमलका बाहर निकलना कहा। इस प्रकार मैंने आ० श्रमणो, कल्पनासे इसे कहा ॥८॥६४३॥

भौतिकवाद—

यहां लोकमें पूर्वमें, पश्चिममें, उत्तरमें, दक्षिणमें कितने ही मनुष्य आनुपूर्वीसे (क्रमशः) उत्पन्न होते हैं। जैसे कि कोई आर्य हैं, कोई अनार्य, कोई ऊंचे गोत्रके कोई नीचे गोत्रके। कोई कद्दावर और कोई नाटे। कोई सुवर्ण (गोरे), कोई दुर्वर्ण (काले), कोई सुरूप कोई कुरूप। उन मनुष्योंमें कोई राजा होता है, जिसके पास महाहिमालय गिरि, मलय, मंदर और महेन्द्रका सार (घन) होता है। वह अत्यन्त विशुद्ध राज-कुल-वंशमें उत्पन्न होता है। उसके अंगमें राजाके लक्षण निरन्तर विराजित होते हैं। वह बहुजनों (जनता) में बहुमानित और पूजित होता है। वह सब गुणोंसे युक्त, अभिषेक-प्राप्त क्षत्रिय, माता और पिता दोनों ओर से सुजात, मर्यादाकारी, कल्याणकारी, कल्याणधारी होता है। वह मनुष्येन्द्र जनपद-देशका पिता, जनपदका पुरोहित (प्रधान) केतुधारी होता है। वह नरप्रवर, पुरुषप्रवर, पुरुषसिंह, पुरुष-सर्पराज, पुरुषवर-पुण्डरीक, पुरुष-गंध-(मत्त)गज, आढ्य, दीप्त, विख्यात होता है। वह चारों ओर फैले विपुल भवन-शयनासन, यानों और वाहनोंसे आकीर्ण होता है। उसके पास बहुतसा धन और सोना-चांदी होता है, (वह) आय-व्यय से युक्त होता है। उसके द्वारा प्रचुर खान-पान-दान दिया जाता है। उसके यहां बहुतसे दास-दासियां-गाय-बैल-भैंस-बकरियां होती हैं। भरे हुए कोष, कोठार, हथियारखाने होते हैं। वह स्वयं बलवान् होता है, उसके दुश्मन दुर्बल। उसका राज्य अवहतकंटक-निहतकंटक-मर्दितकंटक-उद्धृतकंटक-अकंटक होता है। वह स्वयं अवहतशत्रु-निहतशत्रु-मर्दित-शत्रु-उद्धृतशत्रु-निर्जितशत्रु-पराजितशत्रु होता है। उसका राज्य दुर्भिक्ष-विरहित, महामारीके भयसे प्रमुक्त होता है। उसके राज्यकी प्रशंसा वैसी ही है, जैसी

औपपातिक सूत्रमें बतलाई गई है। आन्तरिक और बाह्य गड़बड़ियोंमें शांत राज्य-साधित करता हुआ वह विहार करता है।

उस राजाकी परिषद् होती है। उसकी सेवामें होते हैं—उग्र (भट), उग्रपुत्र, भोग (राजपाल) और भोगपुत्र, इक्ष्वाकु-क्षत्रिय, कौरव्य और कौरव्य-पुत्र, भट्ट और भट्ट-पुत्र, ब्राह्मण और ब्राह्मण-ज्ञातृपुत्र, कुरुदेशी क्षत्रिय पुत्र, लिच्छवी और लिच्छवी-पुत्र, प्रशासनकर्ता और प्रशासनकर्ताके पुत्र, सेनापति और सेनापति-पुत्र। उन (राजाओं) में कोई-कोई श्रद्धालु होता है। स्वेच्छापूर्वक उसके पास श्रमण-ब्राह्मण जानेका विचार करते हैं। (वे) धर्मका प्रज्ञापन करते हैं, "हम इस धर्मके मानने वाले हैं। हम इस धर्मको सिखलाएंगे।" वे जाकर कहते हैं—"हे भयत्राता राजन्! मैंने यह सुआख्यात धर्म प्रज्ञापित किया है उसे जानो—पैरके तलवेसे ऊपर केशाग्र-मस्तकके नीचे तिरछे चमड़े तक आत्मा कहा जाने वाला सारा जीव है। उस आत्माके जीवित रहने पर शरीर जीता है, वह मर जाए तो नहीं जीता। शरीर विनष्ट हो जानेसे विनष्ट हो जाता है। इसके अन्त होने तक जीवन रहता है। फिर दूसरे लोग मरे हुए को जलानेके लिए ले जाते हैं। आगमें जला देने पर हड्डियां कबूतरके रंगकी हो जाती हैं। अरथी (चारपाई) को पांचवीं बना अरथी-वाहक चारों पुरुष गांवमें लौटते हैं। इस प्रकार न-रहता न-विद्यमान जीव जिनके लिए है, वह नहीं रहता न-विद्यमान ही रहता है, उनका यह वाद (धर्म सिद्धान्त) सुआख्यात होता है।

जिन के मतमें जीव दूसरा है, शरीर दूसरा। वह हमें इस प्रकार पूछते हैं—आवुसो, यह आत्मा दीर्घ है या ह्रस्व, गोल है या लंबा, तिकोना है या चौकोना, छकोना है या अठकोना। काला है या नीला, लाल है या सफेद। सुगंधित है या बदबूदार। तिक्त है या कड़वा, कसैला है या खट्टा, या मीठा। कर्कश है या कोमल। भारी है या हलका। ठंडा है या गर्म। चिकना है या रूखा। इस प्रकार जिनके मतमें असत अविद्यमान् आत्मा है, उनका वाद सु-आख्यात होता है।

जिनके मतमें शरीर भिन्न है जीव भिन्न। वह ऐसा नहीं दिखा पाते। उदाहरणके तौर पर, जैसे—कोई पुरुष म्यानसे तलवारको निकालकर दिखलाये—"आवुसो, यह तलवार है यह म्यान। पर ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो आत्माको निकालकर दिखलाये...," "आवुसो, यह मूंज है और यह है इषु। इसी तरह कोई यह दिखलाने वाला पुरुष नहीं है :—"आवुसो, यह आत्मा है, यह शरीर।" जैसे कि, कोई पुरुष मांससे हड्डी को निकालकर दिखलाये :—"आवुसो यह मांस है यह अस्थि।" इसी तरह कोई दिखलाने वाला पुरुष नहीं है, "आवुसो, यह ात्मा है, यह शरीर है।"

जैसे कि कोई पुरुष हथेलीसे आंवला निकालकर दिखलाये : —"आवुसो, यह है हथेली और यह आंवला।" इस तरह दिखलाने वाला कोई पुरुष नहीं है :— "आवुसो, यह आत्मा है, यह शरीर।"

जैसे कि, कोई पुरुष दहीसे मक्खनको निकालकर दिखला दे :—"आवुसो, यह दही है और यह नवनीत।" ०।

जैसे, कोई पुरुष तिलों से तेल निकाल कर दिखलाये :—"आवुसो, यह तेल है, यह खली।" इसी तरह ०।

जैसे कि, पुरुष ईखसे रसको निकालकर दिखला दे—"आवुसो, यह रस है और यह खोई।" इसी तरह ०।

जैसे कि, कोई-कोई पुरुष अरणिसे आग निकालकर दिखलादे:—"आवुसो, यह है अरणि और यह है अग्नि।" इसी तरह ० इनके मतमें आत्मा असत्, अविद्यमान है, वह उनका स्वाख्यात धर्म है।

जीव अन्य है, शरीर अन्य है सो मिथ्या है। चाहे घातक उस शरीरको मारे, काटे, जलाये, पकाये, आलोप-विलोप करे, लूटे बलात्कार करे, तो कुछ नहीं। इतना (शरीर) भर ही जीव है। मरनेके बाद परलोक नहीं है। वह यह शिक्षा नहीं देते—क्रिया (कर्म) है, अ-कर्म है, सुकृत (पुण्य) है, दुष्कृत (पाप) है, कल्याण कर्म है, पाप कर्म है, अच्छा है, बुरा है, सिद्धि (मुक्ति) है, असिद्धि (संसार भ्रमण) है, नरक है, अनरक है। इस प्रकार वे (भौतिकवादी) नाना प्रकार के कर्मों को करके अपने भोगके लिए नाना प्रकार का अनुष्ठान करते हैं।

इस प्रकार कोई-कोई ढीठ प्रव्रजित होने के लिये घरसे निकलकर "यह मेरा धर्म है," प्रज्ञापित करते हैं ०। उस पर श्रद्धा करते० उनके पास जाते हैं उनसे कहते हैं :—"बहुत अच्छा स्वाख्यात है, हे श्रमण, हे ब्राह्मण, मैं आवुस, मन से तुम्हारी पूजा करता हूं। खाने-पीने से, स्वादनीय से, वस्त्रसे, परिग्रहसे, कंबलसे, पादपोंछने से" वहां कोई (उपासक) पूजामें तत्पर होते०, कोई पूजामें लगते हैं। उन्होंने पहले प्रतिज्ञा ली हुई होती है :—"हम श्रमण होंगे," बिना घरके, अकिंचन, पुत्र-रहित, पशु-रहित, परदत्तभोजी, भिक्षु (होंगे)। हम पाप कर्म नहीं करेंगे। प्रतिज्ञा पर आरूढ़ होकर भी स्वयं (उनसे) विरत नहीं होते। स्वयं निषिद्धको लेते हैं, दूसरों को भी दिलवाते हैं, दूसरोंको लेनेकी अनुज्ञा देते हैं। इसी प्रकार वे स्त्री के कामभोग में लिप्त हो, लुब्ध, गुंथे, आसक्त, लोभित, राग-द्वेष के वशंगत (हो) न वे अपने को मुक्त करते न दूसरे को, वे दूसरे प्राणियों-भूतों-जीवों-स्वत्वों को मुक्त नहीं कराते। पहलेके संसर्गको छोड़, वे आर्यमार्ग-अप्राप्त हैं इस प्रकार वे न इस लोकके हैं न परलोकके हैं, कामभोगोंमें फँसे हैं। यह जीव-शरीरको एक मानने वाले पुरुषकी बात बतलाई गई ॥६॥६४४॥

पंच भौतिकवाद—

तब दूसरा जो पंचमहाभौतिकवादी (करके) प्रसिद्ध है। (वह कहता है-) यहां पूर्व दिशामें एक तरहके आदमी होते ० क्रमशः लोकमें उत्पन्न होते हैं। जैसे कि ० *एक महान् राजा ० उसमें कोई-कोई श्रद्धावान् होता है।… सो ऐसा जानो…यहां पांच महाभूत हैं। उनसे न क्रिया (पुण्यकर्म) बनती, न अक्रिया। अन्ततः तृणमात्र भी नहीं बनता। उन भूतोंके समूहको अलग-नामोंसे जानें। जैसे कि पृथिवी एक महाभूत है, जल दूसरा महाभूत, तेज तीसरा महाभूत, वायु चौथा महाभूत, आकाश पाँचवां महाभूत।

ये पांचों महाभूत न निर्मित न निर्मापित हैं, अकृत, न-कृत्रिम, न अकृत्रिम हैं। अनादिक, नाशहीन, अवंध्य नहीं, पुरोहित हीन*०। इस प्रकार वे अनार्य ० न इस लोकके हैं न परलोक के। काम भोगके वश में फंसे हैं। यह पंच महाभौतिकवादी दूसरे पुरुष कहे जाते हैं॥१०।६४५॥

ईश्वरवाद—

अब तीसरा पुरुष है, जो ईश्वर-कारणिक कहा जाता है। (वह कहता है) —यहां पूर्वमें एक तरहके मनुष्य* उत्पन्न होते हैं।०।—मैंने यह धर्म सु-आख्यात और सुप्रज्ञापित किया है—जगत्में सारे धर्म (वस्तुयें) ऐसे हैं, जिनकी आदिमें पुरुष (ईश्वर) था, बाद में पुरुष था। वह पुरुष द्वारा निर्मित पुरुषसे उत्पन्न, पुरुषसे द्योतित, पुरुषसे युक्त, पुरुषको ही आधार बनाके रहती हैं। जैसे कि, फोड़ा शरीरमें पैदा हुआ हो, शरीरमें बढ़ा, शरीरसे युक्त, शरीरको ही आधार बनाके रहता है।

जैसे कि अरति (अरुचि) शरीरमें पैदा हुई हो, ० शरीरको आधार बना कर रहती है। इसी प्रकार धर्म (वस्तुयें) भी पुरुष द्वारा निर्मित ० पुरुषको आधार बनाके रहते हैं।

जैसे कि, वल्मीक (दीमकका दड्बा) पृथिवीमें पैदा हुआ० पृथिवीको ही आधार बनाके रहता है। ऐसे ही धर्म भी पुरुष० को आधार बनाके रहता है।

जैसे कि, वृक्ष पृथिवीको ०। जैसे कि,…पुष्करिणी ०। जैसे कि जलका बुलबुला जल को०।

जो भी निर्ग्रन्थ श्रमणोंका कहा गया उत्तम और स्पष्ट-कृत बारह अंगों वाला गणिपिटक है, जैसे—१ आचार, २ सूत्रकृत, ३ स्थान, ४ समवाय, ५ भगवती, ६ ज्ञाताधर्म, ७ उपासकदशा, ८ अन्तकृद्दशा, ९ अनुत्तरोपपातिक, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाक और १२ दृष्टिवाद। "यह सब मिथ्या है। यह

*देखो ६४४।

तथ्य नहीं, यह यथातथ्य नहीं, हम जो ईश्वारवाद बतलाते हैं, वह सत्य है, वह तथ्य है," वह ऐसा ज्ञान स्थापित करते, उपस्थित करते हैं। इस प्रकार वे उस प्रकारके दुःखको नहीं काटते जैसे पक्षी पिंजड़ेको नहीं काट सकता। वे (निर्ग्रन्थ) हमें यह बतलाते हैं, कि क्रिया ० (६४४ देखो) ऐसे ही वे नाना प्रकारके कर्मोंको करके अपने भोग के लिए नाना प्रकार के अनुष्ठान करते हैं। इसी प्रकार वे अनार्य (स्वयं) भ्रममें पड़े ऐसी श्रद्धा करते ० वे न इस लोकके०, न परलोक के, कामभोग में फँसे हैं। यह तीसरा पुरुष ईश्वर-कारणिक कहा जाता है ॥११॥६४६॥

नियतिवाद—

तब एक और चौथा पुरुष, जो कि नियतिवादी कहा जाता है। वह कहता है— यह पूर्वमें ० सेनापति पुत्र। मैंने यह धर्म ० प्रज्ञापित किया है—यहां दो पुरुष हैं :– एक क्रिया (वाद) को प्रतिपादन करता है, दूसरा अक्रियाको। जो क्रिया प्रतिपादन करता है, और जो प्रतिपादन नहीं करता, दोनों पुरुष बराबर, एक अर्थ वाले तथा एक ही कारणको मानने वाले हैं। मूढ़ (पुरुष) ऐसा समझता है—मैं कारणको प्राप्त हूं, दुःखित होता, शोकाकुल होता हूं, निंदता हूं, दुर्बल होता, पीड़ा अनुभव करता या परितप्त होता हूं। मैंने (स्वयं) ऐसा किया। दूसरा जो दुःखित होता ० परितप्त होता है, (सो) दूसरेने ऐसा किया (इसके कारण) इस तरह वह मूढ़ स्वकारण या परकारणको ऐसा मानता हुआ, कारण पर आरूढ़ है। मेधावी (पुरुष) ऐसा समझता०, ऐसे कारण पर आरूढ़ है—मैं दुःखित हूं ० परितप्त होता हूं। ०। इस प्रकार वह मेधावी अपने कारण या परकारण को कारणरूढ़ समझता है। "सो मैं (नियतिवादी) कहता हूं—" पूर्वमें जो जंगम-स्थावर प्राणी हैं, वे इस तरह (नियति देवके कारण शरीररूपी) संघातको प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार बाल्य आदि विपर्यासको प्राप्त होते हैं। वे इस विवेक, विधान, संगतिको उत्प्रेक्षा (कल्पना) से प्राप्त होते हैं। वे वैसा नहीं समझते, जैसे कि, क्रिया आदि ० नरक।

इस प्रकार वे नानाप्रकारके कर्मोंको करके०। इसी प्रकार वे अनार्य० कामभोगमें फंसे हैं। यह चौथा पुरुष नियतिवादिक कहा जाता है। इस तरह ये चार पुरुष भिन्न-भिन्न प्रज्ञा, भिन्न-भिन्न छन्दशील० दृष्टि० रुचि० आरम्भ ० निश्चय०, से युक्त (कुल-परिवारके) पूर्व संभोगको छोड़े (भिक्षु) होने पर आर्यमार्गको नही पा सके हैं। वे न इधरके न उधरके बीचमें कामभोगोंमें फंसे हैं ॥१२॥६४७॥

विभज्यवाद (जैनदृष्टि)—

सो मैं (सुधर्मा) कहता हूं।—पूर्वमें एक तरहके मनुष्य० उत्पन्न होते हैं,

जैसे कि अनार्य, कोई उच्च गोत्र, कोई नीच गोत्र० वह जन जनपद लिए होते हैं, थोड़े या घने। वैसे प्रकारके कुलोंमें आकर श्रेय लेकर कोई भिक्षुके लिए उपस्थित होते हैं। कोई-कोई अपने पास मौजूद ज्ञातियोंको उपकरणोंको छोड़कर, भिक्षु-चर्या स्वीकार करते हैं, कोई न मौजूद ज्ञातियों-उपकरणोंको छोड़कर० भिक्षा-चर्या स्वीकार करते हैं। उन्हें पहलेसे ही ऐसा ज्ञात होता है कि यहां (दुनियामें) पुरुष झूंठ ही दूसरी-दूसरी वस्तुओंको अपनी समझता है, जैसे खेत मेरा है, घर मेरा०, सोना मेरा०, हिरण्य०, सुवर्ण०, धन०, धान्य०, कांसा०, धुसा०, विपुल कनक-रत्न-मणि-मुक्ता-शंख-शिला-मूंगा-लाल रत्न, पैतृक संपत्ति मेरी०, शब्द मेरे०, रूप०, रस०, गन्ध०, स्पर्श०, ये कामभोग मेरे हैं, मैं भी इनका हूं।

वह मेधावी पहले यह स्वयं जाने,—"मुझे कोई दु:ख-रोग-आतंक उत्पन्न हो, (वह) जो अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाप हो। तो मैं दूसरोंसे कहूं—हे भयत्राता (अन्नदाता), ये दु:ख हैं, सुख नहीं हैं। काम भोग (मेरे लिए) दु:ख जैसे हैं। रोग और आतंक जैसे (मेरे) इन कामभोगोंको (आप) बांट लें। ये अनिष्ट० दु:ख हैं, सुख नहीं हैं। इसलिए मैं दु:ख पा रहा हूं, परितप्त हो रहा हूं। इनमें किसी दु:ख अमनापसे छुड़ावें। पर ऐसे कभी छुट-कारा हुआ है?

यहां काम-भोग न त्राणके लिए हैं न शरणके लिए। पुरुष किसी समय काम भोगों को छोड़ देता है, अथवा किसी समय काम भोग पुरुषको छोड़ देते हैं। बुद्धिमान्‌को जानना चाहिए—"कामभोग दूसरे हैं, और मैं दूसरा हूं। तो, जी, क्यों हम परभूत कामभोगमें होश खो देते हैं।" ऐसा सोच "हम भोगोंको छोड़ेंगे।" वह मेधावी जाने कि, यह कामभोग बाहरी हैं। उनसे मेरे लिए यही बेहतर है, जैसे कि, मेरी माता०, पिता०, भ्राता०, भगिनी०, भार्या०, पुत्र०, पुत्रियां०, नौकर०, नाती०, बहू०, सुहृत्०, प्रिय०, सखा०, स्वजन०, सगे०, मेरे सम्बन्धी ०। ये मेरे जातिके हैं, मैं इनका हूं। ऐसे वह मेधावी पहले ही समझे, स्वयं जाने।

यहां मुझे कोई रोग० आतंक० उत्पन्न हो, तो मैं कहूं—"हे भयत्राता, ज्ञाति भाइयो, यह मेरा एक दु:ख, रोग-आतंक है। इस अनिष्ट असुखको आप बांट लें०।०परितप्त हो रहा हूं (इनमें से) किसी दु:ख० से छुड़ा दें।" ऐसा छुड़ाने वाला कभी नहीं (मिलता) देखा गया। मेरे भयत्राता, ज्ञातिवालोंमें से किसीको दु:ख० उत्पन्न हो (मैं सोचूं-) ओह इन० के दु:खको बांट लूं। वे दु:खी न हों०, किसी दु:ख० से इन्हें छुड़ा दूं ०। पर ऐसा कभी नहीं देखा गया।

दूसरेका दुःख दूसरा नहीं बांटता, दूसरेका किया दूसरा नहीं भोगता। आदमी अलग-अलग जनमता है, अलग मरता है। अलग च्युत होता है, अलग उत्पन्न होता है। अलग ही कर्मरजों (मलों) को, समझको, मननको प्राप्त होता (करता) है, ऐसे ही अकेला विद्वान्, वेदनावान् भी होता है। ज्ञातियोंका संयोग यहां न त्राणके लिए, न शरणके लिए होता है। पुरुष पहले ही अकेले ज्ञातियोंके संबंधको त्यागता है, या ज्ञातियोंके संयोग पहले पुरुषको छोड़ देते हैं। ज्ञाति-संयोग अलग है, और मैं अलग हूं। जी, क्यों, अपने से भिन्न ज्ञाति संयोगमें होश खोता है।" ऐसा जानकर हम ज्ञातिसंयोगको छोड़ेंगे।

वह मेधावी समझे—यह ज्ञातिसंयोग आदि तो बाहरी हैं, (उससे तो) अधिक नजीकी यही हैं, जैसे कि मेरे हाथ०, पैर०, बाहु०, उदर०, उरु०, शिर०, शील०, आयु०, बल०, वर्ण (रंग)०, त्वचा०, छाया०, श्रोत्र०, चक्षु०, घ्राण०, स्पर्श०। इस प्रकार (पुरुष) ममता करता है, आयुसे जीर्ण होता है। जैसे आयु० स्पर्शसे, संधि सुसंधि (जोड़ों) से ढीली संधिवाला हो जाता है। शरीरमें झुर्रियों की तरंगें उठ आती हैं। काले केश सफेद हो जाते हैं। आहारसे तगड़ा यह स्थूल शरीर क्रमशः छोड़ना पड़ता है।

यह समझकर भिक्षुचर्या स्वीकार किये भिक्षुको लोक दो प्रकारका जानना चाहिए—जीव और अजीव, जंगम और स्थावर ॥१३॥६४८॥

७—भिक्षुचर्या—

यहां दुनियामें गृहस्थ भी हिंसा और परिग्रह युक्त होते हैं, श्रमण-ब्राह्मण भी हिंसा और परिग्रह सहित होते हैं। जो ये जंगम और स्थावर प्राणी हैं, उन्हें वे स्वयं मारते हैं, दूसरोंसे मरवाते हैं, मारनेकी अनुज्ञा देते हैं। यहां गृहस्थ आरंभ-परिग्रह युक्त होते हैं, कोई श्रमण-ब्राह्मण भी आरंभ-परिग्रह सहित होते हैं। वे जो चेतन अचेतन काम-भोगोंको स्वयं ग्रहण करते हैं, दूसरेसे ग्रहण करवाते हैं, दूसरेको ग्रहण करनेकी अनुज्ञा भी देते हैं।

यहां गृहस्थ आरंभ-परिग्रह सहित हैं, और श्रमण-ब्राह्मण भी०।

मैं (जिन) आरंभ और परिग्रहसे रहित हूं। जो गृहस्थ०, कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण आरंभ-परिग्रह सहित हैं, उनके ही निश्रय (अवलंब) के द्वारा मैं ब्रह्मचर्य वास करता हूं। सो क्यों? जैसे प्रव्रज्यासे पूर्व सारंभ-सपरिग्रह थे, वैसे ही पीछे भी। जैसे पीछे भिक्षुदशामें० वैसेही पहले भी। सचमुच ये दोनों दोषोंसे न विरत, न तत्पर थे, पीछे भी वे वैसे ही हैं।

जो गृहस्थ० या कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण सारंभ और सपरिग्रह हैं। दोनों ही पाप करते हैं। यह जानकर सारंभ सपरिग्रह रूपी दोनों ही अन्तोंको हटाए। इस प्रकार भिक्षु जानता है। सो मैं कहता हूं–"पूर्व दिशामें०" (६४४दुहराओ)।

इस प्रकार वह कर्मोंका जानकार कर्मोंसे मुक्त होता है, इस प्रकार वह कर्मोंका क्षयकारक होता है। यह भगवान् (महावीर) ने कहा ॥१४॥६४६॥

वहां भगवान् (महावीर काश्यप) ने छ जीव निकायों (समूहों) को कर्म-बंधका हेतु बताया, जैसे पृथिवी निकाय, जल निकाय०, त्रस निकाय। जैसे मुझे दुःख लगता है, यदि कोई डंडेसे, मुक्केसे, डलेसे, ठीकरेसे, खोपड़ीसे, मारे, कूटे, या धमकाए, डराए, परितापे, थकाए, या उद्विग्न करे। यहां तक कि रोम उखाड़ने मात्रसे भी हिंसाकारक दुःख भय होता है। यह मैं संवेदन करता हूं। ऐसा जानो, कि सारे जीव, सारे भूत, सारे स्वत्व, डंडेसे०, कूटे जानेसे०, ०दुःख-भय संवेदित करते हैं। ऐसा जानकर कोई भी प्राण०नहीं मारने चाहिएं। नहीं बलात्कृत किए जाने चाहिएं, न पकड़े०, न ही परिताप किए जाने०, न उद्वे-जित किए जाने चाहिएं।

सो मैं कहता हूं—"जो अर्हत् भगवान् अतीतमें हुए, वर्तमानमें हैं और भविष्यमें होंगे, वे सभी ऐसा कहते, भाषते, प्रज्ञापित करते, निरूपण करते.... कि किसी प्राण० को नहीं मारना चाहिये०। नहीं उद्वेजित करना चाहिए।

यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। लोकको जानकर खेदज्ञ (तीर्थकरों) ने (इसे) प्रतिपादित किया। इस प्रकार वह भिक्षु प्राण० मारनेसे विरत......... परिग्रहसे विरत होवे। न दतवनसे दांतोंको पखारे, न अंजन, न वमन०, न धूपनसे०, न अपेय पीये। यह भिक्षु अक्रिय० यहां से मर कर देवता ०। ० अथवा "दुख रहित सिद्ध होऊंगा।" तप आदिसे कभी कामभोग प्राप्त होते हैं, कभी नहीं भी। भिक्षु शब्दोंमें अलिप्त०, क्रोधसे विरत बड़े आदानसे विरत हो उपशान्त होता है। जो ये स्थावर-त्रस प्राणी हैं उन्हें न स्वयं मारता हैं, न दूसरोंसे मर-वाता है, न मारनेके लिए अनुज्ञा देता है ०। जो ये सचेतन या अचेतन काम-भोग हैं, उन्हें न स्वयं प्रतिग्रह करता, न दूसरोंसे प्रतिग्रह करवाता, न दूसरे प्रतिग्रह करने वालेको अनुज्ञा देता है। इस प्रकार इस महान् आदानसे उपशान्त० होता है।

वह भिक्षु जो यह पारलौकिक कर्म किया जाता है, उसे न स्वयं करता ०।

इस प्रकार बड़े आदान (संग्रह) से ० प्रतिविरत होता है। वह भिक्षु जाने कि, यह भोजन मेरे सहधर्मियोंके उद्देश्यसे प्राणों० को मारकर०, उनके उद्देश्यसे खरीदा गया ० है। यदि वह दिया जावे, तो उसे न खाये, न दूसरेको खिलाये, न खाने वाले के लिए अनुज्ञा करे ॥

इस प्रकार वह बड़े आदानसे० प्रतिविरत होता है।

वह भिक्षु जाने कि, जिनके लिए ये तैयार किए गए हैं, वे भिक्षु नहीं, वल्कि ये हैं, जैसे कि अपने लिए, पुत्र आदिके लिए, संचित किया है, इन आदमियोंके भोजनके लिए है। वहाँ भिक्षु दूसरोंके बनाये, दूसरोंके लिए तैयार किये गये उपज-उत्पाद-एषणा (तीनों) दोषोंसे शुद्ध, हथियारोंसे नहीं बना, या हथियारोंसे (कोई जीव) न निर्जीव, न हिंसित किया ०। भिक्षुचर्याकी वृत्तिका, वेष मात्रका, मधूकरी मात्रका मिला भोजन ग्रहण करे। प्रमाणके अनुसार, पहिये के घुरेके तेल आंजनके समान, या व्रण पर लेप भरके समान, संयमयुक्त देह यात्रा मात्रकी वृत्तिके लिये, बिलमें घुसते सांपके समान भोजन करे। अन्नके समय अन्न, पानके समय पान, वस्तुके समय वस्तु, लेटनेके समय लयन (स्थान), शयनके समय शयन-शय्या ग्रहण करे ॥

वह भिक्षु मात्राका ज्ञान रखते हुए ग्रहण करे। वह भिक्षु किसी दिशा या अनुदिशा में पहुंचकर धर्मकी व्याख्या करे, विभाजित करे, कीर्तित करे। मनके साथ उपस्थित या विना उपस्थित श्रोताओंको निवेदित करे—शांति, विरति, संयम, उपशम, निर्वाण, शौच, ऋजुता, मृदुता, लघुता, सभी प्राणियों० सत्वोंकी हिंसा न करानें वाले धर्मका सोचकर उपदेश दे।

वह भिक्षु धर्मका कीर्तन करे। न अन्न के लिए उपदेश करे। न पान०, न वस्तु०, न लयन०, न शयन०, न दूसरे नाना प्रकारके काम-भोगों के लिए धर्म का उपदेश करे। प्रसन्न चित्त हो धर्म-उपदेश करे, कर्मोंकी निर्जराको छोड़ दूसरे उद्देश्यसे धर्म न उपदेशे।

उस भिक्षुके पास धर्म सुनकर, निशमन कर, उत्थानसे संयुक्त हो वीर इस धर्ममें समुत्थित (निरालस) होते हैं। वे इस प्रकार सर्वथा उपशान्त, सर्वथा उपगत, सर्व आत्मासे परिनिर्वाण प्राप्त हैं, यह मैं कहता हूं।

इस प्रकार वह भिक्षु धर्मार्थी-धर्मविद् संयम प्राप्त वैसा है, जैसा कि यहां कहा गया। अथवा वह प्राप्त हो गया है, पद्मवर पुण्डरीकको, अथवा नहीं प्राप्त पद्मवर पुण्डरीकको। इस प्रकार वह भिक्षु कर्म छोड़, संग छोड़े, गृहवास छोड़े, उपशान्त है, समतायुक्त है, सदा सहित है। उसे ऐसा कहना चाहिये—जैसे कि, श्रमण है, ब्राह्मण है, क्षान्त, दान्त, गुप्त, मुक्त है। ऋषि, मुनि, कृती, विद्वान् है। भिक्षु, रूक्ष (रूखा भोजी), तीरार्थी, चरण (मूल गुण), करण (उत्तर गुण), पार का जानकार है। ऐसा मैं कहता हूं ॥१५॥६५०॥

॥ पहला अध्ययन समाप्त ॥

क्रिया-स्थान अध्ययन २

आवुसो, मैंने सुना, उन भगवान्‌ने यह कहा—यहाँ क्रिया (कर्म)-स्थान नामक अध्ययन कहा गया है। उसका अर्थ यह है कि, यहां सामान्यतः दो स्थान (बातें) कहे जाते हैं—अधर्म और धर्म, उपशान्त और अनुपशान्त। सो जो यहां पहले स्थान—अधर्म पक्षका विभंग (विवरण) है, उसका यह अर्थ बतलाया गया है। यहां पूर्वदिशामें कोई ऐसे मनुष्य होते हैं, जैसे आर्य और अनार्य० (दुहराओ ६४४), कोई सुरूप कोई दुरूप।

देखकर दण्ड-समादान (दण्ड) करना······ उनका इस प्रकारका संकल्प होता है :—नारकीयोंमें, पशुओंमें, मनुष्योंमें और देवताओंमें जितने उस प्रकार के विद्वान् प्राणी कष्ट अनुभव करते हैं, उनके भी ये तेरह क्रियास्थान होते हैं, यह कहा गया, जैसे कि:—(१) अर्थके लिये क्रिया (दण्ड), (२) विना अर्थके क्रिया, (३) हिंसा-क्रिया, (४) अकस्मात् क्रिया, (५) उलटी दृष्टि (दर्शन) के कारण क्रिया, (६) झूठ-सम्बन्धी क्रिया, (७) चोरी (अदत्तादान) सम्बन्धी क्रिया, (८) मान संबंधी बुरे विचार, (९) अध्यात्म दोष (बुरे विचार) संबंधी; (१०) मित्रद्वेष सम्बंधी, (११) माया सम्बन्धी, (१२) लोभ संबन्धी और (१३) ईर्यापथ (साधारण शरीर गति) सम्बन्धी ॥१॥६५१॥

(१) पहले दण्ड-समादान अर्थके दण्डकी क्रिया की बावत यहां कहा जाता है, जैसे कि, कोई पुरुष अपने लिए, या ज्ञातिके लिए, या घरके लिये, या परिवारके लिये, या मित्रके लिये, नागके लिये या भूतके लिए, या यक्षके लिए, उस (क्रियारूपी) दण्डको जंगम-स्थावर प्राणियों पर स्वयं छोड़ता है, या दूसरेसे छुड़वाता है, या दूसरे छोड़ने वालेका अनुमोदन करता है। इस प्रकार उसका वह उसके सम्बन्ध वाला, काय दण्ड सदोष कहा जाता है। प्रथम दण्डसमादान-अर्थके लिये, दण्डसंवंधी यह कहा गया ॥२॥६५२॥

(२) अब दूसरा क्रिया-स्थान व्यर्थ ही किये कर्म संबंधी कहा जाता है। जैसे कि—जो ये त्रस-स्थावर प्राणी हैं। उन्हें कोई पुरुष न अर्चाके लिए, न मृगछालाके लिये, न मांसके लिए, न रक्तके लिए, न कलेजेके लिए, न पित्तके लिए, न चर्वीके लिए, न पिच्छ (पंखके) लिए, न पूंछके लिये, न बालके लिए, न सींगके लिए, न दांतके लिए, न दाढ़के लिये, न नखके लिये, न नसोंके लिए, न हड्डीके लिये, न हड्डीमज्जाके लिए, न इसलिये कि मुझे मारा, मुझे मार रहा है, या मुझे मारेगा, न पुत्रको पोसनेके लिए, न पशुको पोसनेके लिए, न घरके परिवर्धनके लिए, न श्रमण०[१]ब्राह्मणके वर्तनेके लिए, न यह कि उसके शरीर की

१. शाक्यादि।

कुछ रक्षाके लिए होगा। तब भी वह छेदन-भेदन करने वाला,लोप-विलोप करने वाला, उपद्रवकारी हो, संयम छोड़ वैरका भागी होता है। यह व्यर्थका क्रिया-रूपी दण्ड है।

जैसे, कोई पुरुष ऐसा करे, कि, ये जंगम० प्राणी हैं, जैसे कि अंकरी (इक्क) आदि, या जन्तु आदि, या परक आदि, या मोथा (मुस्तक) आदि, या तृण आदि या कुश आदि, या कुच्छक आदि, या पर्वक आदि, या पुआल आदि, उनके वैर का भागी होता है, बिना अर्थके ही उन्हें न पुत्रके पोसने के लिए० संयम छोड़-कर उनके वैर का भागी होता है।

जैसे कि, कोई हीन पुरुष कछारमें,या दहमें, या जलमें, या वृक्षमें, या लतामें, या अंधेरे में, या गहनदुर्ग (स्थान)में, वनमें, या दुर्गमें, पर्वतमें, या पर्वत-दुर्गमें घासको रख-रखकर स्वयं आग जलाये, या दूसरेसे जलवाये, या आग जलाते हुए दूसरे आदमीका अनुमोदन करे। यह व्यर्थ क्रियारूपी दण्ड है। इस प्रकार उसका वह तत्संबंधी कायरूपी दण्ड संदोष कहा जाता है, व्यर्थका द्वितीय दण्ड-समादान कहा गया ॥३॥६५३॥

(३) अब हिंसा कर्म सम्बन्धी तीसरा दण्ड-समादान कहा जाता है।

जैसे कि, कोई पुरुष इसलिये हिंसा करता है, कि, इसने मुझे या मेरोंको, या अन्योंको या अन्यदीयों को मारा, मार रहा है, या मारेगा; यह सोचकर उस हिंसाकर्मरूपी दण्डको जंगम या स्थावर प्राणी पर स्वयं ही छोड़ता है, या दूसरेसे छुड़वाता है, या दूसरे छोड़ते (पुरुष) का अनुमोदन करता है। यह हिंसादण्ड है। हिंसादण्ड संबंधी तीसरा दण्ड समादान बतलाया गया ॥४॥६५४॥

(४) अब चौथा दण्ड-समादान (क्रिया करना), अकस्मात् किये गये कर्म दण्ड संबंधी कहा जाता है।

जैसे कि, कोई पुरुष कछारमें (दुहराओ ४५३ ग) वन-दुर्गमें मृगवृत्ति (शिकारी), मृग मारने के संकल्प वाला, मृग मारने का निश्चय किये मृग मारने के लिये जाने वाला, "ये मृग हैं", यह मनमें विचार कर किसी एक मृग के वधके लिये वाण उठाकर छोड़े। वहां मृग मारूंगा, यह सोच तित्तिरका, या वत्तकका, या चटक का, या लवा का, या कबूतर का, या कपि का, या कपिंजल का मारने वाला होता है। वहाँ वह दूसरे को मारनेका विचार कर दूसरेको अकस्मात् मार देता है।

जैसे कि कोई धान पर, व्रीहि पर, कोदव पर या कांगुन पर, परक या राल पर, दूसरे तृणके वधके लिये शस्त्र को छोड़े, वह सवाँके तृण को, कुमुदको धानों में जमे हानिकारक तृणोंको काटूंगा, यह सोच शालि, धान, कोदव या काँगुन, परक या रालको काट दे। इस प्रकार दूसरेके ख्यालसे दूसरेको मार दे। यह

अकस्मात् दण्ड है। इस प्रकार उसका तत्संबंधी कर्म सदोप है। अकस्मात् दण्ड संबंधी चौथा दण्ड-समादान कहा गया ॥५॥६५५॥

(५) अब पांचवां दण्ड-समादान उल्टी दृष्टि-संबंधी कहा जाता है :—जैसे कोई पुरुष माताके साथ, या पिता के साथ, भाइयों के साथ, या बहनोंके साथ, या भार्याओंके साथ, पुत्रोंके साथ, या पुत्रियों के साथ, बहुओं के साथ निवास करते हुए, (किसी) मित्र को अ-मित्र समझकर मार दे। यह उलटी दृष्टि संबंधी दण्ड (कर्म) है।

जैसे, ग्राम-घातके समय, या नगर घातके समय, या खेडे, कर्वट-मडमर्ट के वधके समय, या निगम, या द्रोणमुखके वधके समय, या पत्तनके वधके समय, या आश्रम०, या निगम०, या राजधानीके वधके समय, कोई पुरुप अ-चोरको चोर समझकर० मार दे। यह दृष्टि विपर्यास दण्ड (कर्म) है। इस प्रकार तत् संबंधी (कर्म) सदोष कहा जाता है। दृष्टि विपर्यास संबंधी पंचम दण्ड समा-दान कहा गया ॥६॥६५६॥

अब झूंठ संबंधी क्रिया-स्थान कहा जाता है। जैसे कोई अपने लिये, ज्ञाति (जाति) के लिये, घरके लिये, परिवारके लिये, स्वयं झूँठ बोलता है, या दूसरे से झूँठ बुलवाता है, या अन्य झूँठ बोलते-का अनुमोदन करता है, इस प्रकार यह उसका सदोष (कर्म) कहा जाता है। झूँठ बोलनेके संबंधमें छठा क्रिया-स्थान कहा गया ॥७॥६५७॥

(७) अब अन्य चोरी संबंधी सातवां दण्ड-समादान कहा जाता है। जैसे कोई पुरुष अपने लिये० स्वयं ही चोरी (अदत्तादान) करे, दूसरे से चोरी करवाये, या चोरी करते अन्यका अनुमोदन करे। इस प्रकार ०। चोरी संबंधी सातवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥८॥६५८॥

(८) अब अध्यात्म संबंधी आठवां क्रिया-स्थान कहा जाता है। जैसे कष्ट देने वाले किसीके न होते हुए भी कोई पुरुष स्वयं ही हीन, दीन, दुःखी, दुष्ट, दुर्मन, मनके संकल्पोंको मारे, चिन्ता रूपी शोकसागरमें डूबा हुआ, हथेली पर मुख रक्खे; आर्तध्यानसे युक्त हो, जमीन पर नजर गड़ाये झंखता है। उसका असंदिग्ध आध्यात्मिक चार स्थान ऐसे जान पड़ते हैं। जैसे कि क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। इस प्रकार ० अध्यात्म संबंधी आठवाँ क्रिया-स्थान कहा गया ॥९॥६५९॥

(९) अब अभिमान संबंधी नौवाँ क्रिया-स्थान कहा जाता है। जैसे कि, कोई पुरुष जाति मदसे, कुल-मदसे या बल-मद से, रूप-मदसे या तप-मदसे, या विद्या-मदसे, या लाभ-मदसे, या ऐश्वर्य-मदसे, या प्रज्ञा-मदसे, अथवा इनमेंसे किसी भी मदसे, दूसरेको नीचा देखता है, निन्दता, जुगुप्सता, गर्हित करता, परिभव करता, अपमान करता है : "यह छोटा है, मैं हूं विशिष्ट जाति-कुल-बल

आदिसे समृद्ध।" इस प्रकार अपनेको बड़ा करता है। वह देह छोड़ने पर वेबस हो कर्मको साथी बना प्रयाण करता है। कैसे जाता है? एक गर्भ से दूसरे गर्भमें, एक जन्मसे दूसरे जन्म०,एक मरणसे दूसरे मरण में,एक नरकसे दूसरे नरकमें। वह चण्ड, चपल मान ० जाता है। इस प्रकार ० मान संबंधी नौवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥१०॥६६०॥

(१०) मित्र-दोष संबंधी दसवां क्रिया-स्थान० जैसे कि कोई पुरुष माताओं०के साथ निवास करते हुए, उनमें से किसीके हलके अपराध पर भारी दण्ड देता है। (कैसे दण्ड?) जैसे कि सरदीमें ठंडे जलमें छोड़े, गर्मी के दिनोंमें गर्म जलसे शरीरको जलाये, शरीर पर छिड़के, आगसे कायाको दागे, जोते से, बेंतसे, चमड़े से, कोड़े से, अलतासे, किसी प्रकार के दवर (रस्सी)से करवट का फाड़ने वाला होता है। दण्डसे, हड्डीसे, मुक्केसे, डलेसे, या खोपड़ी से शरीर को कूटता है। ऐसे पुरुषके घर पर रहते हुए परिवारवाले दुर्मन होते हैं, परदेश जाने पर खुश होते हैं। ऐसा पुरुष डण्डा बगलवाला, डंडेसे भारी बना, डण्डेको सामने रखने वाला, इस लोकमें भी सबका अहित, परलोकमें भी अहित, जला-भुना, क्रोधी, पीठका मांस (चुगली) खाने वाला होता है, इस प्रकार ० मित्र-दोष संबंधी दसवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥११॥६६१॥

(११) माया संबंधी ग्यारहवां क्रिया-स्थान कहा जाता है। जो ये गूढ़ा-चारी, अंधेरेमें दुराचार करनेवाले, उल्लूके पंख जैसे हलके होने पर भी अपनेको पर्वत जैसा भारी मानते हैं। वे आर्य जातिके होते हुए भी अनार्य (कटु) भाषायें बोलते हैं। दूसरे होते अपनेको दूसरा समझते हैं। दूसरा पूछने पर दूसरा उत्तर देते हैं, अन्य कहनेके स्थान पर दूसरा कहते हैं।

जैसे कि, किसी पुरुषको शल्य (भीतर) शरीर में लगा हुआ है। उस शल्य को न वह स्वयं निकाले, न दूसरे से निकलवाये, न उसे नष्ट करवाये, यों ही छिपाता, पीड़ित होता, भीतरसे यातना सहे। इसी प्रकार मायावी माया करके न आलोचना करता, न पछताता, मायावी न इस लोकमें विश्वास-पात्र होता है,न परलोकमें। वह दूसरेको निन्दता, गर्हता, अपनी प्रशंसा कराता, धर्मसे वाहर चला जाता है। उसमें फिर लौटता नहीं। करके भी वह अपने कर्म (दण्ड) को छिपाता है। मायी पुरुष शुभ वृत्तिओंसे विमुख होता है। इस प्रकार ०।

माया संबंधी ग्यारहवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥१२॥६६२॥

(१२) अब अन्य लोभ-सम्बन्धी बारहवां क्रिया-स्थान कहा जाता है। जो ये अरण्यवासी, आवसथ(पांथशाला)वासी, ग्राम-वासी, रहस्य-क्रियारत लोग, न बहुत संयमी, न बहुत विरक्त हैं। वे सारे प्राणियों, भूतों, जीवोंमें (हिंसा) विरत नहीं। वे सब झूँठ मिलाकर ऐसी बात बोलते हैं—मैं मारने वाला नहीं,

दूसरे मारने वाले हैं। मैं आज्ञा करणीय सेवक नहीं, दूसरे आज्ञा करणीय हैं। मैं परितापनीय नहीं, दूसरे परितापनीय हैं। मैं परिग्रह (दास) बनने योग्य नहीं, दूसरे परिग्रहीतव्य हैं। मैं उपद्रवका पात्र नहीं, दूसरे०। इसी प्रकार वे स्त्री-भोगों में लिप्त, लोभित, गुंथे, गर्हित, आसक्त हैं। चार, पांच, छ, दस वर्ष, कम या अधिक भोगोंको भोगकर काल और मास आने पर मर के, किसी एक आसुरिक पापयुक्त स्थानमें पैदा होने वाले हैं। वहां से च्युत हो मूर्खताके लिये, अंधेपनके लिए, गूंगे होने के लिये इस लोकमें पुनः पुनः लौटते हैं। इस प्रकार ०। लोभ-संबंधी बारहवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥१३॥६६३॥

(१३) अब ईर्या-पथ सम्बन्धी तेरहवां क्रिया-स्थान कहा जाता है। अनागार (साधु) आत्माकी रक्षाके लिये संयमी होता है। वह ईर्यासे समित (समतायुक्त) होता है, भाषा-समित, एषणा-समित, आदानमें, भण्डवस्तुमें, मात्राके निक्षेपणकी समितियोंमें-समित होता है। पाखाना, पेशाब-थूक-नासामल के फेंकनेमें समित होता है। मनसे गुप्त (रक्षित-संयत), वचनसे गुप्त, कायासे गुप्त, इन्द्रियोंसे रक्षित, ब्रह्मचर्यरक्षित होता है। आयोग (स्मृति-सम्प्रजन्य) से युक्त होता है, चलता०, आयोग युक्त बैठता०, करवट बदलता०, भोजन करता०, भाषण करता०, वस्त्र०, कंबल, पादपोंछन लेता, रखता०, यहां तक कि पलक भी यतना-उपयोगके साथ ही गिराता है। ईर्या-पथ संबंधी क्रिया नाना मात्राओं की और सूक्ष्म है। वह अनुष्ठान द्वारा की जाती है। वह प्रथम समयमें बंधन और स्पर्श वाली होती है, दूसरे समयमें अनुभव की जाती है, तीसरे समयमें निर्जरित होती है। ईर्यापथव्रती बंध, स्पर्श निर्जरताको अनुभव कर अन्तिम काल में अकर्मताको प्राप्त होता है। इस प्रकार ईर्यापथ सम्बन्धी सदोष क्रिया होती है। यह तेरहवां क्रिया-स्थान ईर्या-पथ संबंधी कहा गया।

सो मैं कहता हूं, कि जो अतीत, वर्तमान और आने वाले भगवान् हैं, उन सभी ने इन तेरह क्रिया-स्थानोंको कहा, कहते और आगे भी कहेंगे। ऐसे ही तेरहवें क्रिया-स्थानका सेवन किया, करते और करेंगे ॥१४॥६६४॥

२—अधर्मपक्ष

इसके बाद पुरुषविजय (नामक) विभंगको बतलाऊंगा। यहां नाना रूप की प्रज्ञावाले, नाना छन्दवाले, नाना दृष्टि वाले, नाना रुचिवाले, नाना आरंभ-वाले, नाना अध्यवसायोंसे युक्त, नाना प्रकारके पाप (बुरे) श्रुत (शास्त्र) वाले, पुरुषोंको ऐसा होता है।

जैसे कि, निम्न विद्यायें—भूकम्प वाणी करनेकी विद्या, उत्पात, स्वप्न, आकाश, शरीर-अंगकी विद्या, स्वरलक्षण, स्त्री-लक्षण, पुरुष-लक्षण, अश्व-

लक्षण, गज-लक्षण, गाय लक्षण, भेड़-लक्षण, मुर्ग-लक्षण; तीतर-लक्षण, वत्तक-लक्षण, लवा०, चक्रवाक०, छत्र०, चमर०, चर्म०, दण्ड०,असि०, मणि०,कौड़ी०, सुभगा करनेवाली (विद्या), दुर्भगाकरी, गर्भ-करी, मोहन-करी, अथर्व-वेदी, पाकशासनी (इन्द्रजालिक), द्रव्यहोम, क्षत्रिय-विद्या, चन्द्र-चरित, सूर्यगति, शुक्र-गति, बृहस्पति-गति, उल्कापात, दिशा-दाह, मृगचक्र, कौओंकी पंचायत, धूलि-वृष्टि, केश-वृष्टि, मांस-वृष्टि, रुधिर-वृष्टि, वेताली, अर्धवेताली, आस्वादिनी, तालोद्घाटिनी, चाण्डाली, शाम्बरी (साबरी), द्रविड़ देश वाली, कलिंगवाली, गौरी, गांधारदेशी, नीचे गिरानेकी, ऊपर उठानेकी, जड़ बनाने वाली (जृम्भिणी), स्तम्भनी,श्लेषणी, रोगकारणी, निरोगकारणी, भूत दूर करने वाली, (प्रक्रामणी) अन्तर्ध्यान कराने वाली, बड़ी बनाने वाली, (आयामिनी,) इत्यादि विद्याओं (जादू-टोनों) का अन्न के लिये प्रयोग करते हैं, पान के०, वस्त्र०, लयन०, शयन०, और भी नाना प्रकारके काम-भोगोंके लिये प्रयोग करते हैं, उलटी विद्याओंका सेवन करते हैं।

वे अनार्य भ्रममें पड़े कालके समय काल करके किसी एक आसुरी, किल्विष वाले स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले होते हैं। वहाँ से छूटकर भी फिर अंधे, गूंगे होने के लिये, तममें अंधा बननेके लिये इस लोकमें लौटते हैं। ॥१५॥६६५॥

जो उनमें से कोई अपने लिये, ज्ञातिके लिये, शयनके लिये, आगारके लिये, परिवारके लिये, जाति वालों या सहवासीके निमित्त निम्न पाप करते हैं—पीछा करने वाले (अनुगामिक) चोर, सेवा कर ठगने वाले (उपचारक), बटमार, अथवा सेंध लगाने वाले, अथवा गिरहकट होते हैं। अथवा भेड़-वधिक, शूकर०, जालशिकारी, चिड़ीमार, या मछुआ, गो-घातक, ग्वाला, कुत्ता-पालक, कुत्तेसे शिकार करने वाला होता है।

कोई अनुगामी (ठग) का भेस ले, अनुगमन किये जाने वाले को मार कर, छिन्न-भिन्न कर, लोप-विलोप कर या भागकर आहार प्राप्त करता है। इस प्रकार वह भारी पाप कर्मोके साथ अपनेको प्रसिद्ध करता है। वह ऐसा आदमी (उपचारक) सेवकका रूप ले उसी उपचार (सेवा) किये जाते पुरुषको मारकर, टूक-टूक कर० आहार जमा करता है। इस प्रकार०। सो वह बटमार०, वह सेंध लगाने वाला०, गिरहकट०, भेड़ कसाई बन भेड़को या दूसरे जंगम प्राणीको मार०, अपनेको नामवर ख्यापित करता है०। सूअर-कसाई०, जाल-शिकारी०, चिड़ीमार०, मछुआ०, गोघातक०। ग्वाला बनकर उसी गो के बछड़ेको चुनकर मार-मार कर० प्रसिद्ध होता है। कुत्तापालक हो उसी कुत्ते या अन्य किसी जंगम प्राणीको मार कर०। ०कुत्तोंके साथ शिकारी का भाव ले

उसीसे मनुष्य या किसी जंगम प्राणीको मारकर आहार जमा करता है, ऐसे बहुतसे पाप कर्मोंसे अपनेको प्रसिद्ध करता है० ॥१६॥६६६॥

सो कोई पुरुष परिषद्से उठकर "मैं इसको मारूंगा" यह कह तीतरको, या बतखको, या लवेको, कबूतरको, कपिंजल या किसी अन्य जंगम प्राणीको मारने वाला प्रसिद्ध होता है। किसी बुरी चीजके देनेसे विरोधी बन, अथवा सड़ी चीज देनेसे, या सुरा स्थालकसे कुपित हो, उक्त गृहपति या गृहपतिके पुत्रोंकी खेतीको स्वयं जलाता है, या दूसरेके द्वारा०, या जलाते हुए अन्य पुरुषका अनुमोदन करता है। इस प्रकार भारी पापकर्मसे अपने को प्रसिद्ध करता है।

सो कोई किसी बुरी चीजके देने०, गृहपतिके ऊंटों, गाय-बैलों, घोड़ों, गदहोंके अंग आदिको स्वयं ही काटता है, अन्य किसी से कटवाता है, या काटते हुए दूसरे (पुरुष) का अनुमोदन करता है। इस प्रकार०।

० कोई गृहपरि० को, ऊंटसार को, गोसार को, घोड़सारको, गदहसारको, कांटेकी ढींखर (शाखाओंसे) रूंधकर स्वयं आगसे जलाता है०।

० गृहपतिके० कुण्डलको, या मणिको मोती को स्वयं चुराता है०। ० श्रमणोंके ब्राह्मणोंके छत्रको, दण्डको, भाण्डको, पात्रको, लाठीको, बिछौनेको, कपड़ेको, चादरको, चर्मासनको, छुरेको, या म्यानको, स्वयं चुराता है०।

सो कोई बिना सोचे ही गृहपति० की फसलको स्वयं जलाता है०। ०ऊंटों गायों, घोड़ों, गदहोंके अंगोंको स्वयं ही काटता है०। ० ऊंटसार, ० गदहसारको कांटे की शाखाओंसे रूंधकर आगसे जलाता है०। ० कुण्डलको, मोतीको स्वयं चुराता है०। ० श्रमणों, ब्राह्मणोंके छाते० चर्मखण्डको स्वयं चुराता है०। कोई श्रमण या ब्राह्मणको देखकर नाना प्रकारके पाप कर्मोंसे अपनेको प्रसिद्ध करता है, अथवा (उपहासार्थ) अच्छटा (चुटकी) बजाने वाला होता है, कठोर बोलता है। समय आने पर भी अन्न पान नहीं देता।

वे (लोग) श्रमणोंके बारेमें कहते हैं—"जो नीच, भार ढोने वाले (कुली), आलसी, वृषल (म्लेच्छ जातिक), कृपण, दीन हैं, वे श्रमण होते हैं, प्रव्रज्या लेते हैं। वे इस धिक्कार वाले जीवनको वहन करते हैं। वे परलोकके लिये कुछ भी नहीं करते। वे दुःख सहते, शोक करते, झुरते, पछताते, पीड़ित होते, पिटते, परिताप सहते हैं। वे दुःख-झूरन-पीड़न-पिट्टन-परितापन-वध-बंधनरूपी क्लेशोंसे निरन्तर लिप्त होते हैं। वे भारी आरम्भ (हिंसा) से, भारी समारम्भसे, भारी आरम्भ-समारम्भसे, नाना प्रकारके पाप कर्म रूपी कृत्योंसे बड़े मानुषिक भोगोंको भोगने वाले होते हैं। (कौन से भोग?) जैसे कि, भोजनके समय भोजन, पानके समय पान, वस्त्र०, लयन०, शयन०। वे सायं प्रातः स्नान किये, शिरसे न्हाये, कण्ठमें माला धारे, मणि-सुवर्ण पहने, फूलोंके मौर को धारे, कर्धनी, माला दाम

लक्षण, गज-लक्षण, गाय लक्षण, भेड़-लक्षण, मुर्ग-लक्षण, तीतर-लक्षण, वत्तक-लक्षण, लवा०, चक्रवाक०, छत्र०, चमर०, चर्म०, दण्ड०,असि०, मणि०,कौड़ी०, सुभगा करनेवाली (विद्या), दुर्भगाकरी, गर्भ-करी, मोहन-करी, अथर्व-वेदी, पाकशासनी (इन्द्रजालिक), द्रव्यहोम, क्षत्रिय-विद्या, चन्द्र-चरित, सूर्यगति, शुक्र-गति, बृहस्पति-गति, उल्कापात, दिशा-दाह, मृगचक्र, कौओंकी पंचायत, धूलि-वृष्टि, केश-वृष्टि, मांस-वृष्टि, रुधिर-वृष्टि, वेताली, अर्धवेताली, आस्वादिनी, तालोद्घाटिनी, चाण्डाली, शाम्वरी (सावरी), द्रविड़ देश वाली, कलिंग-वाली, गौरी, गांधारदेशी, नीचे गिरानेकी, ऊपर उठानेकी, जड़ बनाने वाली (जृम्भिणी), स्तम्भनी,श्लेषणी, रोगकारणी, निरोगकारणी, भूत दूर करने वाली, (प्रक्रामणी) अन्तर्ध्यान कराने वाली, बड़ी बनाने वाली, (आयामिनी,) इत्यादि विद्याओं (जादू-टोनों) का अन्न के लिये प्रयोग करते हैं, पान के०, वस्त्र०, लयन०, शयन०, और भी नाना प्रकारके काम-भोगोंके लिये प्रयोग करते हैं, उलटी विद्याओंका सेवन करते हैं।

वे अनार्य भ्रममें पड़े कालके समय काल करके किसी एक आसुरी, किल्विष वाले स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले होते हैं। वहाँ से छूटकर भी फिर अंधे, गूंगे होने के लिये, तममें अंधा बननेके लिये इस लोकमें लौटते हैं। ॥१५॥६६५॥

जो उनमें से कोई अपने लिये, ज्ञातिके लिये, शयनके लिये, आगारके लिये, परिवारके लिये, जाति वालों या सहवासीके निमित्त निम्न पाप करते हैं—पीछा करने वाले (अनुगामिक) चोर, सेवा कर ठगने वाले (उपचारक), बटमार, अथवा सेंध लगाने वाले, अथवा गिरहकट होते हैं। अथवा भेड़-वधिक, शूकर०, ज़ालशिकारी, चिड़ीमार, या मछुआ, गो-घातक, ग्वाला, कुत्ता-पालक, कुत्तेसे शिकार करने वाला होता है।

कोई अनुगामी (ठग) का भेस ले, अनुगमन किये जाने वाले को मार कर, छिन्न-भिन्न कर, लोप-विलोप कर या भागकर आहार प्राप्त करता है। इस प्रकार वह भारी पाप कर्मोंके साथ अपनेको प्रसिद्ध करता है। वह ऐसा आदमी (उपचारक) सेवकका रूप ले उसी उपचार (सेवा) किये जाते पुरुषको मारकर, टूक-टूक कर० आहार जमा करता है। इस प्रकार०। सो वह बटमार०, वह सेंध लगाने वाला०, गिरहकट०, भेड़ कसाई बन भेड़को या दूसरे जंगम प्राणीको मार०, अपनेको नामवर ख्यापित करता है०। सूअर-कसाई०, जाल-शिकारी०, चिड़ीमार०, मछुआ०, गोघातक०। ग्वाला बनकर उसी गो के बछड़ेको चुनकर मार-मार कर० प्रसिद्ध होता है। कुत्तापालक हो उसी कुत्ते या अन्य किसी जंगम प्राणीको मार कर०। ०कुत्तोंके साथ शिकारी का भाव ले

उसीसे मनुष्य या किसी जंगम प्राणीको मारकर आहार जमा करता है, ऐसे बहुतसे पाप कर्मोंसे अपनेको प्रसिद्ध करता है० ॥१६॥६६६॥

सो कोई पुरुष परिषद्‌से उठकर "मैं इसको मारूंगा" यह कह तीतरको, या बतखको, या लवेको, कबूतरको, कपिंजल या किसी अन्य जंगम प्राणीको मारने वाला प्रसिद्ध होता है। किसी बुरी चीजके देनेसे विरोधी बन, अथवा सड़ी चीज देनेसे, या सुरा स्थालकसे कुपित हो, उक्त गृहपति या गृहपतिके पुत्रोंकी खेतीको स्वयं जलाता है, या दूसरेके द्वारा०, या जलाते हुए अन्य पुरुषका अनुमोदन करता है। इस प्रकार भारी पापकर्मसे अपने को प्रसिद्ध करता है।

सो कोई किसी बुरी चीजके देने०, गृहपतिके ऊंटों, गाय-बैलों, घोड़ों, गदहोंके अंग आदिको स्वयं ही काटता है, अन्य किसी से कटवाता है, या काटते हुए दूसरे (पुरुष) का अनुमोदन करता है। इस प्रकार०।

० कोई गृहपति० को, ऊंटसार को, गोसार को, घोड़सारको, गदहसारको, कांटेकी ढींखर (शाखाओंसे) रूंधकर स्वयं आगसे जलाता है०।

० गृहपतिके० कुण्डलको, या मणिको मोती को स्वयं चुराता है०। ० श्रमणोंके ब्राह्मणोंके छत्रको, दण्डको, भाण्डको, पात्रको, लाठीको, बिछौनेको, कपड़ेको, चादरको, चर्मासनको, छुरेको, या म्यानको, स्वयं चुराता है०।

सो कोई बिना सोचे ही गृहपति० की फसलको स्वयं जलाता है०। ०ऊंटों गायों, घोड़ों, गदहोंके अंगोंको स्वयं ही काटता है०। ० ऊंटसार, ० गदहसारको कांटे की शाखाओंसे रूंधकर आगसे जलाता है०। ० कुण्डलको, मोतीको स्वयं चुराता है०। ० श्रमणों, ब्राह्मणोंके छाते० चर्मखण्डको स्वयं चुराता है०। कोई श्रमण या ब्राह्मणको देखकर नाना प्रकारके पाप कर्मोंसे अपनेको प्रसिद्ध करता है, अथवा (उपहासार्थ) अच्छटा (चुटकी) बजाने वाला होता है, कठोर बोलता है। समय आने पर भी अन्न पान नहीं देता।

वे (लोग) श्रमणोंके बारेमें कहते हैं—"जो नीच, भार ढोने वाले (कुली), आलसी, वृषल (म्लेच्छ जातिक), कृपण, दीन हैं, वे श्रमण होते हैं, प्रव्रज्या लेते हैं। वे इस धिक्कार वाले जीवनको वहन करते हैं। वे परलोकके लिये कुछ भी नहीं करते। वे दुःख सहते, शोक करते, झुरते, पछताते, पीड़ित होते, पिटते, परिताप सहते हैं। वे दुःख-झूरन-पीड़न-पिट्टन-परितापन-वध-बंधनरूपी क्लेशोंसे निरन्तर लिप्त होते हैं। वे भारी आरम्भ (हिंसा) से, भारी समारम्भसे, भारी आरम्भ-समारम्भसे, नाना प्रकारके पाप कर्म रूपी कृत्योंसे बड़े मानुषिक भोगोंको भोगने वाले होते हैं। (कौन से भोग?) जैसे कि, भोजनके समय भोजन, पानके समय पान, वस्त्र०, लयन०, शयन०। वे सायं प्रातः स्नान किये, शिरसे न्हाये, कण्ठमें माला धारे, मणि-सुवर्ण पहने, फूलोंके मौर को धारे, करधनी, माला दाम

भिन्न बनाओ। नमक छिड़का बनाओ। वध्य हुआ बनाओ। इसे सिंहपुच्छितक-बैलपुच्छितक बनाओ। जंगली आगमें जला बनाओ। इसे कौवेका खाया जाने वाला बनाओ। इसे भात-पानी न दो। इसे जीवन भरका वध-बंधन कर दो। इसे बुरी मार से मार दो।

जो उसकी भीतरी (घरु) जमात होती है, जैसे कि माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्र, पुत्री, बहू। उनके छोटेसे अपराध पर स्वयं भारी दण्ड देता है। विकट ठंडे जलमें फेंक देता है। जो दण्ड शत्रुओंके लिए कहे गये हैं,वे देता है। वे परलोकमें दुखित होते, शोक करते, झंखते हैं, कष्ट पाते, पीड़ित होते, परितप्त होते हैं। वह दुःखने० झंखने परितापन, वध-बंधन परिक्लेशसे अविरत होते हैं।

इसी प्रकार वे स्त्रीभोगमें मूर्छित, लोभित, गुंथे, आसक्त, चार-पांच-छ-दश वर्षों तक कम या वेशी काल तक भोगोंको भोगकर, बहुत सारे वैर समूह संचित कर, बहुतसे पाप कर्मोका संचय कर पापके भारसे वैसे उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे कि, लोहे का गोला या पत्थरका गोला पानीमें फेंकने पर पानी पार कर धरतीके तल पर जाकर टिकता है। ऐसे ही ऐसा पुरुष बहुतसे पर्यायोंतक दुःखों वाला, कष्ट वाला, वैरों वाला, अविश्वासों वाला, दम्भों वाला, नियतों वाला, अपयशों वाला, त्रस-जंगम प्राणियोंका घातक, काल पा मर कर पृथिवीतल को छोड़ नरकतलमें जा के टिकता है ॥२०॥६७०॥

६. नरक आदि गति

वे नरक भीतरसे गोल बाहरसे चौकोने, नीचे खुरपेके आकारमें अवस्थित हैं। वे नित्य ही घोर अंधकार वाले, ग्रह-चन्द्र-सूर्य-तारों-तारापथोंसे रहित हैं। चरबी-वसा-खून-पीब-समूहसे लिप्त लेपनके तलवाले हैं। वे अशुचि,बिसाने वाले, परम दुर्गन्धवाले, काले, अग्निवाणसे, कर्कश स्पर्शयुक्त, असह्य, बुरे हैं। नरक अशुभ हैं। नरकों में नारकीय (पुरुष) नहीं सो सकते, न भाग सकते। वह शुचि, रति, धैर्य, या मतिको नहीं पा सकते। वे (नारकीय) वहां जलती, भारी, विपुल, कड़वी,कर्कश,दुःखमय, दुर्गम, तीव्र, दुस्सह पीड़ाको भोगते हैं ॥२१॥६७१॥

जैसे कोई पेड़ पर्वतके ऊपरी भाग पर उत्पन्न हो। उसकी जड़ कटी, ऊपरकी ओर भारी हो, निम्न या विषम, दुर्गम होनेके कारण वहां से वह गिर जाये। ऐसे ही वैसा पुरुष एक गर्भसे दूसरे गर्भ में जाता है, एक जन्मसे दूसरे जन्म में, ० मरणमें, ० नरकमें, ० दुःखमें जाता है। दक्षिणकी ओर जाने वाला वह नारकीय पुरुष काले पक्ष वाला हो समझनेमें दुष्कर भी होता है।

यह स्थान अनार्य, अ-केवल ० न-सर्वदुःखनाशक मार्ग, बिल्कुल मिथ्या और बुरा है। प्रथम अधर्मपक्ष स्थानका विभंग ऐसे कहा गया ॥२२॥६७२॥

७ आर्य धर्मपक्ष स्थान

अब अन्य द्वितीय धर्मपक्षस्थान का विभंग ऐसे कहा जाता है।

यहाँ पूर्वमें० कोई कोई मनुष्य होते हैं, जो—आरम्भहीन, परिग्रहहीन, धार्मिक, सुज्ञ, धर्मिष्ठ होते हैं। ० वे धर्मसे ही जीवन वृत्ति करते विचरते हैं। वे सुशील, व्रतयुक्त, आनन्दप्रवण, सुसाधु होते हैं। वे सब तरहसे जीवनभर हिंसा-विरत होते हैं ०।

जैसे आगारहीन (अर्हत्) भगवान् ईर्याकी समिति (संयम), वाणीकी समिति, एषणा०, आदान०, आवश्यक सामग्रीके ग्रहणमें वस्तुओंकी मात्रा और निक्षेपकी समितिसे युक्त होते हैं। वे पेशाव-पाखाने-थूक-(नासिकामल)के डालने में समित, वचनमें समित, कायामें० मनसे संयत, वचनसे संयत, कायासे गुप्त (संयत), गुप्त-इन्द्रिय, गुप्त-ब्रह्मचर्य होते हैं। वे क्रोध, मान, माया, लोभसे हीन होते हैं। शान्त और निर्वाणप्राप्त होते हैं। आस्रव (चित्तमल) और मनकी गांठोंसे हीन होते हैं। शोक दूर किए निर्लेप वैसे होते हैं, जैसे पानीसे खाली कांसे की कटोरी, विना मलका शंख। वे जीवकी भांति अव्याहतगति, आकाशकी भांति निरवलंव, वायुकी भांति अबद्ध, शरद्कालके जलकी भांति शुद्धहृदय, कमलपत्र की भांति निर्लेप होते हैं। वे कछुवेकी नाईं गुप्त-इन्द्रिय, पक्षीकी नाईं मुक्त, गेंडेकी सींगकी नाई अकेले, कुंजरकी नाईं निर्भय, सांडकी नाई दृढ़, सिंहकी नाईं दुर्धर्ष, मंदर (पर्वत) की नाईं अकम्प्य, सागरकी नाईं गम्भीर, चन्द्रमाकी नाईं सौम्य प्रकृति, सूर्यकी नाई दीप्त तेज वाले, स्वभावसे सोने जैसे निर्मल, वसुन्धरा की नाईं सब सहने वाले होते हैं। अच्छे होमे अग्नि जैसे तेजसे दीप्त रहते हैं।

उन भगवानोंको कोई प्रतिवन्ध (रुकावट) नहीं। वे प्रतिवन्ध चार प्रकार के कहे गए हैं। जैसे अंडज (पक्षी), पोतक (पशु बच्चे), अवग्रह (शयनाशन आदि) और प्रग्रह (विहार आदि)। जिस-जिस दिशामें जाते हैं, उस-उस दिशा में प्रतिवन्ध रहित, शुचिभूत, हल्के रूपमें, गांठ हीन, संयम और तपसे भावना करते विहरते हैं।

उन भगवानोंकी ऐसी जीवनयात्रा होती है। जैसे एक दिनके बाद भोजन करने वाले, दो०, तीन०, चार०, पांच०, छ०, सात०, आठवें०, दसवें०, बारहवें०, चौदहवें०, अर्धमासिक०, द्विमासिक०, त्रैमासिक०, चातुर्मासिक०, पंचमासिक०, छमासिक भोजन ग्रहण करने वाले। फिर कोई भिक्षाको हांडीसे निकाले अन्नको लेते, कोई रक्खेको,० निकाले रक्खे दोनोंकों, प्रान्तमें लेनेवाले, अन्तमें लेने वाले, रूखाहारी, अनेक घर-आहारी, न भरे हाथ मिलके आहारी, उससे उत्पन्न स्पर्शके आहारी, देखेके आहारी, न देखेके०, पूछके०, विना पूछे०, (दे० अनुत्त-

रोपपातिक अंग ६) तुच्छ भिक्षा०, अभिक्षा०, अज्ञात०, समीपस्थ०, संख्यासे दत्त०, परिमितग्रास० होते हैं। वे होते हैं शुद्धाहार, अन्ताहार, प्रान्ताहार, अरसग्राहार०, विरस०,रूक्ष०,तुच्छ०। वे अंतजीवी, प्रांतजीवी, होते हैं। कोई आयंबिल० कोई दोपहर बाद खाने वाले, और कोई निर्विकृतिक-मीठे, चिकने आहारके त्यागी होते हैं। वे मद्य-मांस कतई नहीं खाते। न बहुत स्वाद लेते। वे कायोत्सर्गस्थ, प्रतिमा-स्थानसे युक्त, उकुडू आसन वाले, पालथी वाले, वीरासन वाले, दण्डवत् आसनसे, टेढ़े काठसे आसनवाले ··वह विना ढँके शरीर वाले, गति हीन चित्तवाले होते हैं। वे न खुजलाते न थूकते। ० (औपपातिक सूत्रमें आए प्रसंगानुसार यहां भी पाठ०)। केश-दाढ़ी-रोम नखको सजाते नहीं। सारे गात्रके संवारनेसे मुक्त होते हैं।

वे इस विहार से विहरते बहुत वर्षों तक श्रमण सम्बन्धी दीक्षाका पालन करते हैं। वाधा उत्पन्न होने या न होने पर भी बहुतसे दैनिक आहार छोड़ देते हैं। अन्न छोड़कर बहुतसे भोजनोंका अनशनसे विच्छेद करते हैं। अनशनसे विच्छेद करके उस पदार्थको प्राप्त करते हैं, जिसके लिए जिन-कल्पभाव, स्थविरकल्पभाव होना, मुण्ड होना, स्नानत्याग, दातन छोड़ना, छाता छोड़ना, जूता छोड़ना, भूमिशय्या, तख्तेकी या काठकी शय्या, केश लुंचन, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षार्थ पर-घर प्रवेश, मिलते-न-मिलते मान-अपमान, अवहेलना, निन्दना, खिसना, गर्हणा, तर्जना, ताड़ना, नाना प्रकारके ग्रामके कुवचनके कांटे, अप्रिय लगने वाले, बाईस प्रकारके परिषह-उपसर्ग-कष्ट-बाधायें सहे जाते हैं।

उस अर्थकी आराधना पूरा कर, अन्तिम सांससे अनन्त, अनुपम, आघातहीन, निरावरण, पूर्ण, सम्पूर्ण (परिपूर्ण), केवल वर ज्ञान दर्शनको उत्पादित करते हैं। उसके बाद सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होते, परिनिर्वाण प्राप्त कर सारे दुःखोंका अन्त करते हैं।

कोई एक जन्म में भयत्राता जिन हो जाते हैं। दूसरे पूर्वकर्मके बचे रहनेसे समय पा मरकर किसी एक देवलोकमें देवता बन पैदा होते हैं। वे देवता जैसे···महा-महाऋद्धिक, महा-द्युतिक, महापराक्रमी, महायशस्वी, महाबल, महानुभाव, महासुख। वे वहां महर्द्धिक० होते हैं। वे होते हैं ··हार-विराजित वक्षवाले, कंकण केयूर सहित भुजा वाले, अंगद-कुण्डलसे भ्राजते कपोल-कर्णवाले, विचित्र-हस्त भूषण वाले, विचित्र माला मोर और मुकुट वाले, सुन्दर गंध उत्तम वस्त्र पहनने वाले, अच्छे श्रेष्ठ माला-लेपन धारी, चमकते शरीर वाले, लंबी लटकती वनमालाधारी। वे दिव्य रूपसे, दिव्य वर्णसे, दिव्य गन्धसे, दिव्य स्पर्शसे, दिव्य संघातसे, दिव्य आकारसे, दिव्य ऋद्धिसे, दिव्य द्युतिसे, दिव्य प्रभासे, दिव्य अर्चासे, दिव्य तेजसे, दिव्य लेश्याओं (सत्स्वभावों) से, युक्त हो दशों दिशाओंको

उद्योतित, प्रभासित, करते हुए विचरते हैं। वे गतिमें कल्याण (सुन्दर), स्थितिमें कल्याण, भविष्यमें भद्र होंगे। यह स्थान आर्य० सर्व दुःख नाशका मार्ग, पूर्णतया सम्यग् सुसाधु है। द्वितीय धर्मपक्ष स्थानका विभंग ऐसे कहा गया ॥२३॥६७३॥

८—पाप-पुण्य-मिश्रित

अव तीसरे मिश्रक स्थानका विभंग कहा जाता है। यहां पूर्वमें० कोई मनुष्य होते हैं० साधु। वे स्थूल प्राणिहिंसासे विरत होते हैं०। और जो दूसरे उस तरह के सदोष न बोधिक कर्म-समारभ पर प्राणको परिताप किए जाते हैं, उनमें से भी किसी किसीसे विरत नहीं होते हैं। जैसे कि जो श्रमणोंके उपासक होते हैं, वे जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-क्रिया-अधिकरण-बंध-मोक्ष को जानते हैं। वे विना किसीकी सहायतासे भी किसी देव-असुर-नाग-सुपर्ण-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-गरुड़-गन्धर्व-महाउरग-आदि देवगणों द्वारा, निर्ग्रन्थ धर्म वचनसे स्खलित नहीं किए जा सकते। इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन (जैन-आगम) में शंका-रहित, कांक्षा-रहित, विचिकित्सा-रहित हैं, वह यथार्थको प्राप्त किए, ग्रहण किए हैं। निश्चितार्थ अवगत-अर्थ हैं, अस्थि-मज्जा जैसे धर्मप्रेममें भी अनुरक्त हैं। वह मानते हैं—आ०, यह जो निर्ग्रन्थ प्रवचन है, यह परमार्थ है, बाकी वेकार है। वे स्फटिकसे शुद्ध मन वाले, खुले द्वार वाले, विना सम्मतिके किसीके अन्तःपुर (गृह) में प्रवेश करने वाले नहीं होते। महीनेकी चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमामें परिपूर्ण उपोसथ (प्रौषध-उपवास) को अच्छी तरह पालन करते हैं। निर्ग्रन्थ श्रमणोंको अनुकूल-वांछनीय-अन्न-पान-खाद्य-स्वाद्य-वस्त्र- परिग्रह- कंवल-पैरपोंछना-औषध-भेषज्य-पीढ़ा-तख्ता-शय्या-विस्तरेको प्राप्त कराते हैं। वहुतसे शीलव्रत-गुणव्रत, त्याग-प्रत्याख्यान-पौषध-उपवास द्वारा ग्रहणकी रीतिके अनुसार तपकर्मोंसे आत्मा को शुद्ध करते विहरते हैं।

वे इस प्रकारके विहारसे विहरते बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक दीक्षाओंको सेवन करते हैं। वहुतसे भोजनोंका प्रत्याख्यान-त्यागकर अनशनसे खाद्य-विच्छेद करते हैं। बहुतसे भोजनोंको अनशनसे विच्छिन्न कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधि प्राप्त हो काल पा, मर कर किसी एक देवलोकमें देवता होकर पैदा होते हैं। जैसे महर्द्धिकोंमें ०। यह मिश्रक-स्थानका विभंग ऐसे कहा गया ॥२४॥६७४॥

९—अरति-विरति

अरतिको लेकर वाल (मूढ़) कहा जाता है, विरतिको लेकर पण्डित कहा जाता है। विरति-अरति लेकर वाल-पण्डित कहा जाता है। सो जो वहाँ अविरति

है वह स्थान (वस्तु) आरम्भ (हिंसा) का स्थान है, अनार्य० सब दुःखके मार्ग का नाश न करने वाला बे-ठीक और अ-साधु (बुरा) है। जो वह सब प्रकारसे विरति प्राप्त है, यह स्थान है, न आरम्भका स्थान, आर्य० सब दुःख नाशक मार्ग, बिल्कुल ठीक और भला।

वहां जो ये सब तरह विरति-अविरति हैं, यह स्थान आरम्भ और न आरम्भका स्थान है। यह स्थान आर्य० सब दुःखनाशका मार्ग, बिल्कुल ठीक और अच्छा है ॥२५॥६७५॥

१० दूसरे मत

ऐसे अनुगमन करते इन दोनों स्थानों में सभी मार्ग आते हैं, जैसे धर्ममें या अधर्ममें, उपशान्तमें या न-उपशान्तमें। वहां जो प्रथम अधर्ममें-स्थानका विभंग ऐसे कहा गया; वहां तीनसौ तिरसठ प्रवादुक (मत-प्रवर्तक) होते हैं, यह कहा गया है, जैसे कि क्रिया-वादियोंका, अक्रियावादियोंका, अज्ञान-वादियोंका, विनय-वादियोंका। वे भी मोक्षकी बात करते हैं। वे भी श्रावकोंको उपदेश देते हैं। वे भी वक्ता बन भाषण करते हैं ॥२६॥६७६॥

११ प्रवादुक

ये प्रावादुक धर्मोंके आदि कर्ता हैं। वे नाना प्रज्ञावाले, नाना छंद वाले, नाना शील०, नाना दृष्टि०, नाना रुचि०, नाना आरम्भ०, नाना अध्यवसायसे युक्त हैं। वे एक बड़ी मंडली बांधकर सभी एक जगह बैठते हैं ॥२७॥६७७॥

तब एक पुरुष आगवाले अंगारों की भरी हुई अंगीठीको लोहेकी संडासीसे पकड़ कर उन सारे प्रावादुकोंके धर्मोंके आदिकारों को नाना-प्रज्ञा०, से यह कहे —हे प्रवादुको०, नाना अध्यवसाययुक्तो, इस आग वाली० को एक-एक मुहूर्त संडासीके बिना पकड़ें तो। न सण्डासीको पकड़ें न अग्निस्तम्भ करें, न साधर्मिक वैयावृत्य करें। सीधे मोक्षपरायण हो, बिना मायाके हाथ पसारें।

यह कहकर वह पुरुष उस अंगारोंसे० भरी पात्रीको० संडासीसे पकड़कर उनके हाथोंमें गिरा दे। तब वे प्रावादुक० हाथ समेटते हैं। तब वह पुरुष० कहता है—हे प्रावादुको०, क्यों तुम हाथ को समेट रहे हो?—हमारा हाथ जल जायगा। —जलने से क्या होगा? दुःख मानकर हाथ समेटते हो। यह तो तुला है, यह प्राण है, यह समवसरण है। प्रत्येक की तुला० प्राण० समवसरण (समुच्चय) ०।

वहां जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं ० निरूपण करते हैं :—सारे प्राणी,० सारे सत्व मारने चाहियें। आज्ञापित० परिगृहीत, परितापित, क्लेशित, उपद्रवित, करने चाहियें। वे आगेके छेदन, आगेके भेदन, ० आगेके जाति मरण-योनि-जन्म-

सार-पुनर्जन्म-गर्भवास-संसार प्रपंच में कष्ट भागी होंगे। वे बहुतसे दण्डों, बहुत से मुण्डनों० पानीमें डूबने, माता वधोंके, मातृमरणोंके, पिता०, भ्राता०, भगिनी०, ०बहूके मरणोंके भागी होंगे। दारिद्र्यके दुर्भागोंके, अप्रियोंके सहवासोंके, प्रिय वियोगोंके, बहुतसे सन्ताप और दौर्मनस्यको भोगेंगे। वे अनन्त संसार रूपी वनमें बे-अन्त घूमेंगे। वे सिद्धि और बोध न पायेंगे। न दुःखोंका नाश ही कर सकेंगे।

यह सबके लिये तुल्य (न्याय) है। प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी निश्चित है कि, दूसरोंको तकलीफ देने वाले चोर-व्यभिचारी आँखों के आगे दण्ड भोगते हैं। आगमका सार भी ऐसा ही है। सबके लिये न्याय बराबर है।

पर जो सन्त-महात्मा यह कहते देखे जाते हैं—सब प्राण-भूत-जीव और सत्वको कभी न मारे, न मरवावे, ना मारने की अनुज्ञा करे। जबरदस्ती उन्हें गुलाम न बनावे, न दुःख दे, न उन पर जुल्म करे न कोई उपद्रव करे। वे लोग आगे अंगच्छेद आदिका दुःख न पायेंगे। जन्म-जरा-मरण वाली योनियोंमें उत्पन्न न होंगे। गर्भवास और संसार के अनेक भांतिके दुःखोंके पात्र न होंगे। वे बहुतसे दण्ड-मुण्डनों और दुःख दौर्मनस्यसे छूटेंगे ॥२८॥६७८॥

इन उपरोक्त बारह क्रिया-स्थानों में वर्तमान, न सिद्ध हुये, न मुक्त हुये, न परिनिर्वाण प्राप्त हुये, न सब दुःखोंका अन्त किये न करते हैं, न करेंगे। इस तेरहवें क्रिया-स्थानमें वर्तमानमें जीव सिद्ध हुये, बुद्ध हुये० सब दुःखोंका अन्त किये, करते हैं और करेंगे।

इस प्रकार वह भिक्षु आत्मगुप्त, आत्म-योग, आत्म पराक्रम, आत्म-अनुकम्प, आत्म-निस्सारक, अपने को ही पापकर्मों से रोके। यह मैं कहता हूं ॥२९॥६७९॥

॥ दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

—०—

आहार शुद्धि अध्ययन ३

आवुस, मैंने सुना, उन भगवान् (महावीर) ने ऐसा कहा। आहार-शुद्धि (०परिज्ञान) अध्ययन है, जिसका यह अर्थ है:—यहां कोई पूर्वमें ०। सर्वतः सर्वत्र लोकमें चार बीज-समूह (०काय) ऐसे कहे जाते हैं, जैसे कि, (१) अग्रबीज (आम आदि पेड़ उपरिभागमें अपने बीज रखने वाले), (२) मूलबीज (अदरक), (३) पर्व बीज़ (गन्ना आदि), (४) स्कन्ध बीज (कलम) से होने वाले। उनसे यथायोग्य अवकाश मिलने पर बहुतसे प्राणी पृथिवी योनि के, पृथ्वी से उत्पन्न, पृथिवीसे उगे कर्मके बस, कर्मके कारण वहां उगे, नाना प्रकार की योनिवाली पृथ्वी पर पेड़ के तौर पर (पैदा) होते हैं, वे जीव नाना योनिवाली पृथिवियोंका रस पीते हैं। वे जीव वनस्पति, पृथिवी शरीर, जल-शरीर, अग्नि-शरीर, वायु-शरीर, वनस्पति-शरीरका आहार करते हैं, नाना-प्रकारके जंगम-

स्थावर प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं। वह ध्वस्त शरीर पूर्व खाया, छाल निकाला, स्वरूपसे विकृत किया (गया) होता है। और भी उन पृथ्वीयोनिक वृक्षोंके शरीर नानारंग-नानागन्ध-नानारस-नानास्पर्श-नाना आकृतिवाले, नाना प्रकारके शरीर-अंशसे विकसित होते हैं। वे (वनस्पति जैसे) जीव, कर्मके आधीन (ऐसे) होते हैं, यह कहा गया ॥१॥६८०॥

पहले कहा गया। यहाँ कोई-कोई सत्व वृक्षयोनिक० पेड़के तौर पर पैदा होते हैं। वे० त्रस-स्थावर प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं ०। नाना विधि शरीर-अंशको विकारी करते हैं। वे जीव कर्मके आधीन होते हैं। यह कहा गया ॥२॥६८१॥

अब और एक वाक्य पहले कहा गया :—यहां कोई-कोई सत्व० पेड़के तौर पर पैदा होते है। ० प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं। यह ध्वस्त शरीर० विपरिणित हो रूप-सात् कर लिये जाते हैं। उन पृथिवी योनिके पेड़ोंके शरीर नाना रंगके०होते हैं। वे जीव कर्मके आधीन होते हैं। यह कहा गया ॥३॥६८२॥

एक और पहले कहा गया :—यहां कोई सत्व० पेड़ोंमें मूलके रूपमें,कन्द०, स्कन्ध०, छाल०, सार०, अंकुर०, पत्र०, पुष्प०, फल०, बीज के रूपमें परिणत होते हैं। वे जीव० रस पीते हैं०, प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं। वह ध्वस्त शरीर० रूपमें विलीन कर लिये जाते हैं। ० उन वृक्षयोनिकोंके मूल० बीजोंके शरीर नाना रंग ० शरीरांश विकारित होते हैं। वे जीव कर्मके आधीन पैदा होतें हैं। यह कहा गया ॥४॥६८३॥

० और भी पहले कहा गया। कोई-कोई सत्व (प्राणी) वृक्ष योनिक० रस पीते हैं। शरीरको० रूपमें विलीन करते हैं। उन वृक्षयोनिक वृक्षोंपर अध्यारूढ़* (अनुशायी) के तौर पर होते हैं। वे जीव० रस पीते हैं। रूपमें विलीन०। उन वृक्षोंपर अध्यारूढ़ वृक्षयोनिक अध्यारूढ़क शरीर नाना रंग० के होते हैं। यह कहा गया ॥५॥६८४॥

० पहले कहा गया। यहां कोई प्राणी अध्यारूढ़ (बंदा) योनिक अध्यारूढ़ से पैदा ० कर्मके कारण वहां पहुंच वृक्षयोनिक अध्यारूढ़ों पर अध्यारूढ़के तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव० रूपमें विलीन०। उन अध्यारूढ़ योनिक अध्यारूढ़ोंके शरीर नाना शरीर वर्ण० के होते हैं। यह कहा गया ॥६॥६८५॥

० पहले कहे गये :—कोई प्राणी अध्यारुह योनिक, अध्यारुहसे उत्पन्न० कर्मके कारण वहां अध्यारुहयोनिकोंमें कर्मके कारण उगे। अध्यारुहके तौर पर पैदा हुए० रस पीते हैं। ० शरीरको० रूपमें विलीन ०। अध्यारुहोंके शरीर नाना वर्णके होते हैं। ० ॥७॥६८६॥

---

*वृक्षोंपर दूसरी जातिके उगने वाले पौधे बंदा, *Orchid* आदि।

यहां कोई प्राणी अध्यारुह योनिक अध्यारुहसे उत्पन्न ० कर्मके कारण वहां उगे० मूलके तौर पर बीजके तौर पर पैदा होते हैं। वे ० रस पीते हैं। ० उनके ० बीजोंके शरीर नाना वर्ण ० होते हैं। कहे गए ॥८॥६८७॥

० । ० पृथ्वीयोनिक ० नानाविध योनियों वाली पृथिवियोंका रस ० । वे जीव उन नानाविध योनियों वाली पृथिवियोंपर तृणके तौर पर पैदा होते हैं। वे ० पृथिवियोंके रसको पीते हैं। वे जीव कर्मके वश पैदा होते हैं ० ॥९॥६८८॥

इस प्रकार तृणयोनिक तृणोंमें तृणके तौर पर पैदा होते, तृणशरीरका भी आहार करते हैं०। इस प्रकार तृणयोनिक तृणोंमें मूलके तौर पर, ० बीजके तौर पर पैदा होते हैं०। वे जीव०। ऐसे ही औषधियोंमें भी चार ही कथनीय हैं। हरितोंमें भी चार कथनीय हैं ॥१०॥६८९॥

०। यहां कोई प्राणी, पृथिवीयोनिक, पृथिवीसम्भव० कर्मके कारण वहां उत्पन्न नानाविध योनिवाली पृथिवियोंमें आय (वनस्पति नाम) के तौर पर वाय०, काव०, कूहण०, कंटुक०, उपनिहीक०, निवेहणिक०, सच्छत्र०, गुच्छी०, वासाणि०, कूर०, पैदा होते हैं। वे रस पीते हैं। वे जीव भी पृथिवीशरीरका आहार करते हैं। और भी उन पृथिवीयोनिक आय० कूरोंके शरीर नाना वर्ण०। एक ही यहां कथनीय है, बाकी तीन नहीं। और भी पहले कहा गया :—

० कोई प्राणी उदक (जल) योनिक, उदकसम्भव० कर्मके कारण वहां उत्पन्न नानाविध योनिवाले उदकोंमें वृक्षोंका रस पीते हैं। वे जीव पृथिवीशरीर का आहार करते हैं। ० ० उन ० वृक्षोंसे शरीर नाना वर्ण ०। जैसे पृथिवी-योनिकोंके चार भेद, वैसे ही अध्यारुहोंके भी, तृणों-औषधी-हरितोंके भी चार भेद कहे गए हैं।

०। कोई प्राणी उदकयोनिक ० उदकोंमें उदकके तौर पर अवक ०, पनक ०, सेवार ०, कलंबुक ०, हड ०, कसेरु ०, कच्छभाणि ०, उत्पल ०, पद्म०, कुमुद ०, नलिन ०, सुभग ०, सुगंधिक०, पुण्डरीक०, महापुण्डरीक ०, शतपत्र०, सहस्रपत्र ०*, ऐसे ही कल्हार-कोदनके तौर पर, अरविंद ०, तामरस ०, भिस-भिसमुणाल ०, पुष्कर ०, पुष्कराक्ष, के तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव पृथिवीका शरीर आहार करते ०। उनके ० नाना वर्णके ० यहां एक ही आलाप कथनीय है ॥११॥६९०॥

०। कोई प्राणी पृथिवीयोनिक वृक्षोंमें वृक्षयोनिक वृक्षोंमें, वृक्षयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें, वृक्षयोनिक अध्यारुहोंमें, अध्यारुहयोनिक अध्यारुहोंमें, अध्या-रुहयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें, पृथिवीयोनिक तृणोंमें, तृणोंमें, तृणयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें। ऐसे ही औषधियोंमें भी तीन भेद, पृथिवीयोनिक ०, ० कूरोंमें,

*कमलकी जातियां।

उदकयोनिक वृक्षोंमें, वृक्षयोनिक वृक्षोंमें, वृक्षयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें, ऐसे ही अध्यारुहोंमें तीन भेद, तृणोंमें भी तीन भेद। हरितोंमें भी तीन, उदकयोनिकमें भी, अवकोंमें भी ०, पुष्करोंमें, जंगम प्राणीके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव उन पृथिवीयोनिक, उदकयोनिक, वृक्षयोनिक, अध्यारुहयोनिक, तृण ०, औषधि ०, हरित ०, अध्यारुहवृक्षों, तृण, औषधि, हरित, मूल ० बीजों, ० पुष्कराक्षों के रसको पीते हैं। वे जीव पृथिवी शरीरका आहार करते हैं, और भी उन वृक्ष-योनिक ०, बीजयोनिक ०, पुष्कराक्षयोनिक जंगम प्राणियोंके नाना वर्ण ० ॥१२॥६६१॥

० पहले कहा गया :—

नानाविध मनुष्यों आर्यों, म्लेच्छों, जैसे कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तर-द्वीपवासियों, उनके यहां बीजके अनुसार, अवकाशके अनुसार, स्त्री और पुरुषका कर्मसे बनी योनिमें मैथुन-सम्बन्धी संयोगसे उत्पन्न होता है। वे होने वाले जीव दोनोंके स्नेहका आहार करते हैं। वहां जीव पुरुष, स्त्री या नपुंसकके तौर पर पैदा होता है। वे जीव माताके रज, पिताके वीर्य, दोनोंके मिश्रित कलुष-किल्विष (मल) का आहार करते हैं। उसके बाद वह माता नाना प्रकारके सरस आहार खाती है। उसके उससे एक अंशसे (गर्भस्थ) जीव ओज ग्रहण करते हैं। क्रमशः बढ़कर, परिपाकको प्राप्त हो उस शरीरसे निकलते हैं। कोई स्त्रीभावको पैदा करते०, कोई पुरुषभावको, कोई नपुंसकभावको। वे बाल जीव माताके क्षीर का आहार करते हैं। क्रमशः बढ़ भात, दाल और फिर जंगम-स्थावर प्राणियोंको खाते हैं। पृथिवीशरीरको ० रूपमें परिणत करते हैं। और भी उन ० आर्यों, म्लेच्छोंके शरीर नाना वर्णके होते हैं ० ॥१३॥६६२॥

०। नानाविध जलचरोंका .... जैसे, मछलियों, सोंसो ०, ... उनके बीजके अनुसार, अवकाशके अनुसार, पुरुषका कर्मकृत०। ० ओजका आहार करते हैं। क्रमशः बढ़ ० कायासे निकल कोई अंडेके, कोई पोतके रूपमें जनमते हैं। उस अण्डेके फूटने पर कोई स्त्री पैदा करते०, कोई पुरुष और कोई नपुंसक। वे जीव शिशुत्वमें जलके रसको पीते हैं। क्रमशः बढ़ वनस्पतियोंको, जंगम-स्थावर प्राणियोंको खाते हैं। ० और भी नानाविध जलचर, पंचेन्द्रिय, तिर्यग्-योनिक ०। मछली सोंसोंके शरीर नानावर्ण ० ॥१४॥६६३॥

०। नानाविध चौपाए, स्थलचर, पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक.... जैसे— एक खुर वाले, दो खुर वाले, कोई गँडेसे पैर वाले, नख युक्त पैर वाले, उनमें बीजके अनुसार पेटमें अवकाशके अनुसार स्त्री और पुरुषके कर्मसे किए मैथुन सम्बन्धसे संयोग होता है। जन्मने वाले (प्राणी) दोनों रसको लेते हैं। वहां जीव स्त्री या पुरुषके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव माताके रज और पिताके वीर्यको लेते हैं,

जैसे मनुष्योंमें कोई पुरुप जन्मते हैं, कोई स्त्री, कोई नपुंसक। वे जीव शिशु हो माताके क्षीर का आहार करते ०। ० वे पृथिवी शरीर आहार करते ०। और भी उन नानाविध चौपाए ० नख सहित पैंर वालोंके नानाविध शरीर ०। ॥१५॥६६४॥

नानाविध छातीसे सरकने वाले उरपुर स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक ...... जैसे कि, सांप, अजगर, आशालिक, महोरग, उनके वीजानुसार ० स्त्री और पुरुप ० मैथुन ० कोई अण्डे जनते, कोई पोत (शिशु)। अण्डेके टूटने पर कोई स्त्री ० वे जीव छोटे रहते वायुकायको खाते, क्रमशः वढ़ वनस्पति, जंगम-स्थावरको ०। ० उन नानाविध ० महोरगोंके शरीर नानावर्ण, नाना गन्ध ० ॥१६॥६६५॥

नाना भुजपुर सरकते थलचर, पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, जैसे गोह, नेवले, सिहण, सरट, सल्लक, सरघ, घरकोइली, विसम्भर, चूहे, मंगुस, पदललित, विल्ला, जोध और चौपाए—इनके बीजके अनुसार ०, स्त्री-पुरुष ०, मैथुन ०। उन नानाविध ० गोहोंके ० शरीर नानावर्ण ० ॥१७॥६६६॥

० नानाविध आकाशचारी, पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, जैसे......... रोमपक्षी, चर्मपक्षी, समुद्गपक्षी, विततपक्षी,......, उनके वीजके अनुसार०। ये जीव छोटे रहते माताके शरीरके रसको खाते हैं। ०। ० उनके ० शरीर नानावर्ण। ०। ० ॥१८॥६६७॥

०। यहां कोई प्राणी नानाविध योनिवाले, नानाविध सम्भव, नानाविध पैदा हुये हैं। वे उस योनि वाले, उस योनिसे उद्भूत, उससे जनमे, कर्मवश, कर्म के कारण, वहां पैदा हुये। नानाविध जंगमस्थावर पुद्गलोंके शरीरोंमें, सजीव या अजीव शरीरमें गुंथे से रहते हैं। वे जीव उन नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियों के रसको पीते हैं। ० उनके० शरीर नानावर्ण ०। इस प्रकार कुरूप जन्मने वाले के तौर से चर्मके कीटोंके रूप में० ॥१९॥६६८॥

०। ० कोई प्राणी नानाविध योनि वाले ० कर्मके कारण० उत्पन्न ०। नानाविध जंगम-स्थावर प्राणियोंके सजीव निर्जीव शरीरोंमें पैदा होते०, वह शरीर वायु रचित, वायु-संगृहीत तथा वायु-परिणाम या उपरि वायुमें ऊपर जाने वाला, निचली वायुमें नीचे जाने वाला, तिरछी वायुमें तिर्छे जाने वाला होता है। जैसे कि, ओस, वर्फ, कुहरा, ओला, हरतनुक, शुद्धजल..., वे जीव उन नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियोंके रसको खाते हैं। वे जीव पृथिवी शरीरको खाते हैं ०। उनके शरीर नानावर्ण ०।

०। कोई प्राणी उदकयोनिक ० कर्मके कारण, उत्पन्न जंगमस्थावर योनिक उदकोंमें उदकके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव उन ० उदकोंके रसको पीते हैं। उनके नाना शरीर नानावर्ण ०।

कोई प्राणी उदकयोनिक ० कर्मके कारण, उदक योनियोंमें उदक (जल) के तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव उन उदकयोनिकोंके उदकोंके रसको पीते हैं। वे जीव पृथिवीशरीर को खाते हैं०। ० शरीर नानावर्ण। ०। कोई प्राणी ० उदक-योनिक उदकोंमें जंगम प्राणीके रूपमें पैदा होते०। ० उदकोंका रस पीते०। वे जीव पृथिवी शरीरको खाते हैं ०। उन उदकयोनिक जंगम प्राणियोंके शरीर नाना-वर्ण ० ॥२०॥६९९॥

०। कोई प्राणी नानाविध ० योनिक ० के कारण वहां उत्पन्न, नानाविध जंगम-स्थावर प्राणियोंके सजीव या निर्जीव शरीरमें अग्निकायके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव उन नानाविध जंगम स्थावर प्राणियोंके रसको पीते०, पृथिवीकाय शरीरको खाते हैं। ० उनके नानावर्ण ०। (बाकी तीन भेद उदक जैसे यहां भी ०)। ०। ०। कर्मके कारण यहां पैदा हुये ० नानाविध जंगम-स्थावरोंके शरीरमें सजीव, निर्जीव शरीर में वायु शरीर वाले ही पैदा होते०। ० (अग्निकी तरह चार भेद कहने चाहिये) ॥२१॥७००॥

०। कोई प्राणी ० कर्मके कारण वहां पैदा होते, नानाविध जंगम-स्थावर प्राणियोंके सजीव, निर्जीव शरीरमें, पृथिवीके तौर पर कंकड़ी या वालुकाके तौर पर पैदा होते०।

(यह गाथायें) पृथिवीं, और कंकड़ी, वालू, पत्थर, शिला, और लवण। लोहा, रांगा, तांवा, सीसा, रूपा, सोना और हीरा ॥१॥

हरताल, हिंगुलु, मैनसिल, शशक, सुरमा, मूंगा। अवरक पत्र और अवरक चूर्ण, वादरकाय और मणिविधान ॥२॥

गोमेदक, रजत, अंक, स्फटिक, और लोहित नामक रत्न। पन्ना, मसार-गल्ल, भुजमोचक, और इन्द्रनील (नीलम) ॥३॥

चन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगंधिक, जानने चाहिये। चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, हीरा, जलकान्त और सूर्यकान्त (भी) ॥४॥

इनके वारेमें ये गाथायें कहनी चाहियें। ० सूर्यकान्त होते०। वे जीव उन नाना जंगम-स्थावर प्राणियोंके रसको पीते हैं। वे पृथिवी शरीरको खाते हैं। ० उन जंगम-स्थावर योनिक पृथिवियों ० सूर्यकान्तके शरीर नानावर्ण ०। (बाकी तीन भेद उदकों जैसे यहां भी) ॥२२॥७०१॥

०। सारे प्राणी, सारे भूत, सारे जीव, सारे सत्व नानाविध योनिवाले, नानाविध उत्पन्न, शरीरयोनिक, शरीरसम्भव, शरीरोत्पन्न, कर्मवश, कर्मके कारण, कर्मगति वाले, कर्मस्थितिक, कर्मके द्वारा ही (आवागमनके) चक्करमें

सो इसे जानो । जानकर आहारसे रक्षित, सहित, समता-सहित हो सदा प्रयत्न करते रहो, यह कहता हूं ॥२४॥७०३॥

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

प्रत्याख्यान—अध्ययन ४

आवुसो, मैंने सुना, उन भगवानने यों कहा ।

यहां प्रत्याख्यान नामक अध्ययन है, जिसका अर्थ बतलाया है...जीव-आत्मा, अप्रत्याख्यानी (न दुष्कर्मत्यागी) भी होता है, आत्मा दुष्कर्मकुशल भी होता है, आत्मा झूंठमें अवस्थित भी होता है, आत्मा पूर्ण मूढ़मिथ्यात्वी भी होता है, पूर्ण-सुप्त (अज्ञानी) भी होता है, आत्मा विचारहीन-मानसिक-वचन वाला भी होता है, विचारहीन कायिक वचन वाला भी होता है, आत्मा बिना रोक-बिना त्यागके पाप कर्मोका करने वाला होता है, (पापमें) सक्रिय, असंयत, पूर्ण पाप-कर्मा, पूर्णतया बाल, एकान्त सुप्त हो, वह बाल बिना विचारे मन-वचन-काय वाला हो स्वप्न देखनेकी क्षमता भी न रखते पापकर्म करता है ॥१॥७०४॥

इस पर शिष्य प्रज्ञ (आचार्य) को कहता है......पापी मनके न रहते, पापी वाणीके न रहते, पापी कायके न रहते, न मारते न मनन करते, विचार-रहित मन-वचन-काय वाले, स्वप्नको भी न देख सकने वालेसे पापकर्म नहीं किया जा सकता ।

...किस कारण ऐसा ?

शिष्य...कहता है...पापी मनके विना मन-सम्बन्धी पापकर्म किया जाये, पापी वचनके विना वचन सम्बन्धी पापकर्म किया जाये, पापिनी कायाके बिना काय-सम्बन्धी पापकर्म किया जाये यह नहीं हो सकता ।

आचार्य —मनसे युक्त, विचार-सहित मन-वचन-काया सम्बन्धी वचन-वालेका स्वप्न देखने वाले के द्वारा, ऐसे गुण स्वभावको पापकर्म किया जा सकता है ।

फिर शिष्य कहता है कि वहां जो ऐसा कहते हैं...पापी मनके न होनेपर० स्वप्न भी न देखने वालेसे पाप कर्म क्रिया जाता है । जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या बोलते हैं ॥२॥७०५॥

वहां आचार्यने प्रेरकसे पूछा कि,...वह ठीक है, जो कि मैंने पहले कहा

—पापी मनके न रहते ० स्वप्न भी न देखते पापकर्म किया जाता है। ""सो किस कारण ?

आचार्यने कहा ""भगवानने छ जीवनिकाय (जीवसमूह) हेतु बतलाये हैं, जैसे कि, पृथिवीकाय से लगाकर त्रस (जंगम)कायिक तक। इन छ जीवनिकायों द्वारा आत्मा अ-प्रतिहत पाप कर्मको प्रत्याख्यान किये बिना सदा अतिशठ, व्यापाद (हिंसा) युक्त चित्तक्रिया वाला होता है, जैसे कि हिंसा, ०,परिग्रह, क्रोध ०,मिथ्यात्वदर्शन (रूपी)शल्यमें लगा० ॥३॥७०६॥

आचार्यने कहा—

""भगवानने बधिक (वधक)का दृष्टान्त दिया, जैसे कि, कोई बधिक सोचता है :—गृहपति या गृहपति-पुत्र, राजा या राजपुरुषको, मौका पा घरमें घुसकर मार दूंगा। ऐसा वह बधिक उस गृहपति ०को मारूंगा, यह सोचता हुआ दिन या रात, सोता या जागता, शत्रुसा बना मिथ्यामें अवस्थित सदा शठ, व्यापादयुक्त चित्तवाला क्या होता है ?

ऐसा कहे जाने पर समझकर शिष्यने कहा—हां (यह) बधिक है०। आचार्यने कहा :—जैसे वह बधिक उस गृहपति० दिन-रात सदा शठ, व्यापादचित्त, क्रिया वाला है, जैसे कि, हिंसामें०, मिथ्यादृष्टि शल्यमें०। इस प्रकार भगवानने कहा। असंयमी, अविरत, अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मवाला, पापसे सक्रिय, असंवरयुक्त, पक्का क्रियावान् पक्का मूढ़ विचारहीन मन-वचन-कायवाला स्वप्न भी नहीं देखता पर उसके द्वारा पाप कर्म किया जाता है। जैसे वह अधिक सदा शठ, व्यापादचित्तयुक्त क्रियावाला होता है, वैसे ही मूढ़ सारे प्राणियों ० सारे सत्वोंमें से प्रत्येक को चित्तमें ले रात-दिन; सोता जागता ० व्यापादचित्त क्रियावाला होता है ॥४॥७०७॥

यह ठीक नहीं है, बहुतसे प्राणी हैं, जिन्हें शरीरके आकारसे उस आदमीने नहीं देखा, न सुना, न माना, न जाना। उनमें प्रत्येकको चित्तमें ले दिन-रात, सोता या जागता शत्रु हो ० नित्य शठ, व्यापाद-चित्तयुक्त क्रियावाला हो, जैसे कि हिंसामें० मिथ्यादृष्टि (रूपी) शल्यमें।

(आचार्य कहते हैं) वहाँ भगवान्ने दो दृष्टान्त बतलाये हैं :—संज्ञी (होश रखने वाले) का दृष्टान्त, अ-संज्ञीका दृष्टान्त। संज्ञी दृष्टान्त क्या है ? जो ये संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त (जीव) हैं। इनके छ जीव-निकाय समूह को ले,जैसे पृथिवीकाय ० जंगमकायको लेकर, कोई पृथिवीकाय द्वारा काम करता, कराता भी है। उसको ऐसा होता है। इस प्रकार मैं पृथिवीकाय द्वारा काम करता हूं, कराता भी हूं। उसको ऐसा नहीं होता। अमुक-अमुक द्वारा वह इस पृथिवीकाय से काम करता है, कराता भी है। वह उस पृथिवीकाय द्वारा अ-संयमी, अ-विरत,

अप्रतिहत-अप्रत्याख्यान पापकर्मवाला भी होता है, ऐसे ० जंगम कायोंमें भी कहना होगा। सो कोई छ जीवनिकायों द्वारा काम करता भी०कराताभी०उसको ऐसा नहीं होता :—अमुक-अमुकके द्वारा वह उन छ जीवनिकायोंसे अ-संयत, अविरत, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यान, पापकर्मवाला, जैसे कि हिंसामें ० मिथ्यादर्शन-शल्यमें ॥५॥७०८॥

यह भगवानने कहा—असंयत, अविरत०स्वप्न भी न देखता पाप करता है। सो संज्ञी दृष्टान्त है।

असंज्ञी दृष्टान्त कौन सा है ? जो ये अ-संज्ञी (न होश रखने वाले) प्राणी हैं, जैसे कि—पृथिवीकायिक ० छठे (वनस्पतिकायके बाद असंज्ञी) त्रस काय वाले (जंगम) प्राणी हैं, जिनके पास न तर्क (शक्ति) है, न संज्ञा (होश) है, न संज्ञा-प्रज्ञा-वाणी है। न ही वे स्वयं कर सकते, न अन्यसे करा सकते, न करते का अनुमोदन कर सकते हैं। वे मूढ़ सारे प्राणों० सारे सत्वोंके दिन-रात, सोते-जागते शत्रु से हो मिथ्यामें अवस्थित० मिथ्यादर्शन रूपी शल्य में० हैं।

इस प्रकार० नहीं मन, नहीं वाणी, प्राणियों० सत्वोंको दुखनेके तौर पर, शोक करनें ०, झींकने० तेपने० पिट्टन० परितापनके तौरपर वे दुखना ० परितापन, वध-बंधन, परिक्लेशोंसे अविरत होते हैं। इस प्रकार वे अ-संज्ञी सत्व भी रात-दिन हिंसामें रत कहे जाते हैं ० रात-दिन परिग्रहमें० मिथ्यादर्शन शल्यमें रत कहे जाते हैं।

ऐसे ही सत्यवादी-सर्वयोनिक सत्व अ-संज्ञी होते हैं। अ-संज्ञी हो (दूसरे जन्ममें) संज्ञी होते हैं। संज्ञी या अ-संज्ञी होकर, वहां वे बिना विवेक किये, बिना हटाये, बिना उच्छिन्न किये, बिना अनुपात किये, असंज्ञी से संज्ञी योनि में संक्रमण करते हैं, संज्ञी से असंज्ञीकाय में०, अ-संज्ञिसे अ-संज्ञिककायमें ०। जो ये संज्ञी हैं, या असंज्ञी हैं, वे सारे मिथ्या आचरणवाले हैं। नित्य शठ-व्यापादक्रिया वाले, जैसे कि, हिंसामें ० मिथ्यादृष्टिशल्य में० ।

इस प्रकार भगवान् ने कहा—असंयत, अ-विरत० पूर्ण मूढ़। ० सो मूढ० स्वप्न भी नहीं देखता, फिर भी पाप कर्म करता है ॥६॥७०९॥

(शिष्य ने पूछा) वह क्या करते, क्या कराते, कैसे संयत, विरत, पापकर्म त्यागी होता है ?

(आचार्य ने कहा)—यहाँ भगवानने छ जीव-निकाय० योनि (हेतु) बतलाये हैं, जैसे कि, पृथिवीकाय० जंगम कायिक। जैसे कि ० मेरे लिए अरुचिकर होता है, (यदि) डण्डेसे, हड्डीसे, मुक्केसे, डले से, खोपड़ीसे पीड़ित करते ०, भगाते०, रोम उखाड़ने भर की भी हिंसासे किये दुःख-भयको मैं संवेदित

(महसूस) करता हूं। इसी तरह जानो, कि सारे प्राणी···खोपड़ीसे कोंचे जाते, हने जाते, ताडित होते, ० तर्जित होते, हिंसाके दुःखको संवेदन करते हैं। ऐसा जानकर सारे प्राणियोंको न हनन करना चाहिये ०। यह धर्म ध्रुव-नित्य-शाश्वत है। लोकका आधार समझकर खेदज्ञ (तीर्थकरों) ने इसे बतलाया।

इस प्रकार वह भिक्षु हिंसासे विरत ० मिथ्यादृष्टिसे विरत हो। वह भिक्षु न दतवनसे दांत धोये, न अंजन, न वमन, न धूपन करे। वह भिक्षु अक्रिय, न हिंसक, न क्रोधी, ० न लोभी, उपशांत (पापसे निवृत्त) निर्वाण प्राप्त करे।

यह भगवान्ने कहा—संयत, विरत, प्रतिहत, पापकर्मका त्यागी, अक्रिय-संवर (संयम) युक्त पूर्ण पण्डित (भिक्षु) है। यह मैं कहता हूं ॥७॥७१०॥

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

—०—

अन्-आगार (साधु)—अध्ययन ५

आशुप्रज्ञ (पुरुष) इस वचन और ब्रह्मचर्यको लेकर, कभी इस धर्ममें अनाचार न करे ॥१॥७११॥

इस जगत् को अनादि और अनन्त समझ, एकान्त नित्य या अनित्यकी दृष्टि (उसके बारेमें) न धारण करे ॥२॥७१२॥

इन दोनों (चरम) स्थानोंसे (लोक) व्यवहार नहीं चल सकता। इन दोनों (चरम) स्थानोंका आचरण नहीं करना, इसे जाने ॥३॥७१३॥

शास्ता (तीर्थकर) उच्छिन्न हो जायेंगे, सारे प्राणी (एक दूसरेसे) असदृश हैं, या सदा बन्धनमें पड़े (ग्रन्थिक) रहेंगे, यह एकान्तिक नहीं कहना चाहिए ॥४॥७१४॥

इन दोनों (चरम) स्थानोंसे (एकान्त धारणा हो तो) व्यवहार नहीं चल सकता, इन दोनों ० ॥५॥७१५॥

जो कोई छोटे प्राणी अथवा महाकाय प्राणी हैं, उनकी हिंसासे असमान वैर होता है, यह न कहे ॥६॥७१६॥

इन दोनों ० ॥७॥७१७॥ आधाकर्म (निमित्त करके बना) भोजन जो करते हैं, (वे) अपने कर्म (पाप) से लिप्त होते या उपलिप्त नहीं होते, दोनों नहीं कहना; यह जाने ॥८॥७१८॥

इन दोनों ० ॥९॥७१९॥ यह भी न कहे कि जो यह स्थूल आहार, तथा कर्मगत (शरीर) है, सर्वत्र वीर्य (शक्ति) है या नहीं ॥१०॥७२०॥

इन दोनों ० ॥११॥७२१॥ लोक या अलोक नहीं है; यह ख्याल न लाए, लोक और अलोक (दोनों) हैं, यही ख्याल रक्खे ॥१२॥७२२॥

जीव और अजीव नहीं हैं, यह ख्याल नहीं रक्खे, जीव और अजीव हैं, ऐसा ख्याल रक्खे ॥१३॥७२३॥

धर्म और अधर्म नहीं॰ ॥१४॥७२४॥ बंध और मोक्ष नहीं है, यह ख्याल न रक्खे। ० ॥१५॥७२५॥ पुण्य या पाप नहीं है, ० ॥१६॥७२६॥

आस्रव (चित्तमल-कर्म आनेका मार्ग) या संवर (संयम) नहीं है, ० ॥१७॥७२७॥

वेदना (महसूस करना) और निर्जरा (कर्म नाश) नहीं है, ०॥१८॥७२८॥

क्रिया या अक्रिया नहीं हैं,० ॥१९॥७२९॥ क्रोध या मान नहीं है,०॥२०॥७३०॥ माया (छल) या लोभ नहीं है, ० ॥२१॥७३१॥ प्रेम या द्वेष नहीं है, ० ॥२२॥७३२॥ चारों गतियों वाला संसार नहीं है, ० ॥२३॥७३३॥

देव और देवी नहीं हैं, यह ख्याल न रक्खे, देव और देवी हैं, यह ख्याल रक्खे ॥२४॥७३४॥

सिद्धि या असिद्धि नहीं है, ० ॥२५॥७३५॥ सिद्धि (मोक्ष) जीवका अपना स्थान नहीं है० सिद्धि जीवका निज स्थान है० ॥२६॥७३६॥

साधु या असाधु नहीं हैं, ० ॥२७॥७३७॥ कल्याण (पुण्य) या पाप नहीं है ० ॥२८॥७३८॥ (सर्वथा) कल्याण, या पापसे (लोक) व्यवहार नहीं चल सकता। जो वैर है, मूढ़ पण्डित श्रमण उसे नहीं जानते ॥२९॥७३९॥

अशेष जगत् अक्षय (नित्य) है, या सब दुःख है, प्राणी (निरपराध) वधयोग्य है या अवध्य, ऐसा वचन न निकाले ॥३०॥७४०॥

समता युक्त आचार वाले, साधु जीवन वाले भिक्षु देखे जाते हैं, (अतः) ये मिथ्या जीविका वाले हैं, ऐसी दृष्टि न रक्खे ॥३१॥७४१॥

दानकी प्राप्ति होती है या नहीं, इसे धीमान् न व्याकृत (कथित) करे, और शान्ति मार्गको वढ़ाए ॥३२॥७४२॥

जिनोक्त स्थानोंको संयममें स्थापित करके मोक्ष होने तक प्रयत्नमें लाए। यह मैं कहता हूं ॥३३॥७४३॥

॥ पांचवाँ अध्ययन समाप्त ॥

आर्द्रक–मुनिका आचार–पालन—अध्ययन ६

गोशालकने आर्द्रकके मनमें भ्रम पैदा करनेके लिए कहा :— हे आर्द्रक ! भगवान्‌के पहले किए गए आचरणको सुनो। श्रमण महावीर पहले अकेले विचरण करते थे, फिर वह भिक्षुओंका उपनयन (उपसम्पदा) कर अब अलग-अलग स-विस्तर धर्म का व्याख्यान करते हैं ॥१॥७४४॥

उन अस्थिरचित्त महावीर ने यह आजीविका स्थापित की है, जो कि गणके साथ सभामें जा भिक्षुओंके बीच बहुजनोंके लिए भाषण करते हैं, उनका यह आचरण पहलेसे मेल नहीं खाता ॥२॥७४५॥

"पहलेका एकान्त अथवा आजका संघयुक्त जीवन दोनों परस्पर मेल नहीं खाते।" इस पर आर्द्रकने कहा—पहले, और अब, तथा आगे भी वह एकान्तका इस प्रकार सेवन करते हैं ॥३॥७४६॥

लोकको समझकर, जंगम-स्थावरोंके कल्याण करने वाले श्रमण-ब्राह्मण महावीर हजारोंके बीच भाषण करते हुए भी, वैसे तथ्यतावाले एकान्तका ही साधन करते हैं ॥४॥७४७॥

क्षमायुक्त, दान्त, जितेन्द्रिय महावीर को धर्म कथन करने में दोष नहीं, भाषाके दोषको निवारण करने वाले भगवान् का भाषण सेवन करना गुण है ॥५॥७४८॥

भिक्षुओंके पांच महाव्रतों, और उपासकोंके पाँच अणुव्रतों का तथा आस्रवों (चित्तमलों) पांच संवरों का, यहां पूर्ण श्रमणभावमें थोड़ी भी शंका करने पर विरक्ति का उपदेश करते हैं, यह मैं कहता हूं ॥६॥७४९॥

आजीवक-मत प्रणेता गोशाल ने कहा—ठंडे जलको, अपने निमित्त बने भोजनको, और स्त्रियों को भी सेवन करे, इससे एकान्त विचरण करने वाले तपस्वी, हमारे धर्ममें पाप-लिप्त नहीं होते ॥७॥७५०॥

आर्द्रकने कहा :—ठंडे जलको० स्त्रियोंको० इन्हें जान कर सेवन करते हुए आदमी घरबारी और अ-श्रमण हो जायेंगे, क्योंकि वे भी उसी प्रकार सेवन करते हैं ॥८॥७५१॥

बीजोदक (कच्चे बीज, कच्चे पानी) और स्त्रियों को सेवन करते हुए यदि श्रमण होवें, तो घर बारी भी श्रमण हो जाएंगे, क्योंकि वे भी उसी प्रकार सेवन करते हैं ॥९॥७५२॥

जो बीज-उदक-भोजी भिक्षु जीविकाके लिये भिक्षा-विधि ग्रहण करते हैं, वे कुल-परिवारके सम्बन्धको छोड़ने पर काया पोसने वाले हैं, (आवागमन के) अन्त करने वाले नहीं हैं ॥१०॥७५३॥

गोशालने कहा—यह वचन निकाल कर (आर्द्रक!) तुम सारे धर्मानुयायियोंकी निन्दा करते हो। धर्मानुयायी अपने-अपने सिद्धान्तको अलग-अलग बतलाते, प्रगट करते हैं ॥११॥७५४॥

आर्द्रक ने कहा :—वे परस्पर निन्दा करते हैं, "हम श्रमण-ब्राह्मण हैं" कहते हैं। स्वमतके अनुष्ठानसे पुण्य होता है, दूसरे के में नहीं होता। हम उनकी दृष्टिको निन्दा करते हैं, और कुछ नहीं निन्दते ॥१२॥७५५॥

हम किसीके भेष की निन्दा नहीं करते, अपने सिद्धोंके मार्गको प्रकट करते है, इस सरल अनुपम मार्गको सत्पुरुष आर्योंने बतलाया ।।१३।।७५६।।

ऊपर-नीची-तिरछी (सारी) दिशाओंमें जो भी स्थावर और जंगम प्राणी हैं, प्राणियों-की हिंसासे घृणा करने वाले संयमी लोकमें किसी की निन्दा नहीं करते ।।१४।।७५७।।

गोशालने कहा :—श्रमण महावीर भीरु हैं, अतः सरायों और आराम-गृहों (विहारों) में निवास नहीं करते, क्योंकि वह सोचते हैं—वहाँ बहुतेरे मनुष्य कम-बेशी बोलने-चालने वाले और दक्ष होते हैं ।।१५।।७५८।।

वहां कितने ही शिक्षक, बुद्धिमान्, सूत्रों और उनके अर्थोंमें विशेषज्ञ होते हैं। (वे) दूसरे भिक्षु कुछ पूछ न बैठें, इस भयसे महावीर वहां नहीं जाते ।।१६।।७५९।।

वे भगवान् कामनाके लिये कार्य नहीं करते। न बालकों जैसा कार्य करते हैं। राजा की आज्ञासे या भय से भी नहीं, (प्रश्नका) उत्तर देते, वह आर्यो के स्वेच्छा युक्त कार्यसे (भाषते) ० ।।१७।।७६०।।

जा कर या न जा कर वहां समता के साथ आशुप्रज्ञ [महावीर उपदेश] करते हैं। अनार्य [लोग] आर्य-दर्शन से दूर होते हैं, इसलिये उनके पास वह नहीं जाते ।।१८।।७६१।।

गोशालने कहा—जैसे लाभ चाहने वाला बनिया पण्य ले आमदनीके कारण मेल करता है, वही बात श्रमण ज्ञातृ-पुत्र की है, यही मेरा मत और वितर्क है ।।१९।।७६२।।

आर्द्रकने कहा—नया कर्म न करे, पुराने को हटावे। वह तायी (रक्षक) ऐसा कहते हैं। कुमतिको छोड़कर (आदमी) मोक्ष पाता है। इतने से ब्रह्मव्रत कहा गया। उस (मोक्ष) के उदयकी कामना श्रमण महावीर रखते हैं। यह मैं कहता हूं ।।२०।।७६३।।

परिग्रह (लाभ संचय) की ममता में पड़े बनिये प्राणि-समूहकी हिंसा करते हैं, वह मुनाफे के लिये कुल-परिवार को न छोड़ संसर्ग करते हैं ।।२१।।७६४।।

वित्तके लोभी, मैथुनमें अति-आसक्त, खाद्य के लिये बनिये सर्वत्र व्यापार के लिये जाते हैं। हम तो काम में अनासक्त हैं और अनार्य प्रेममें फँसे हुए हैं ।।२२।।७६५।।

वे हिंसा और परिग्रह न छोड़, उनमें फँसे अपनेको दण्ड देने वाले हैं। उनका जो वह लाभ कहा जाता है, वह चारों गतियों और दुःख का देने वाला है ।।२३।।७६६।।

वह लाभ न पूर्ण है न सदा का है, विद्वान् उसे दुर्गुण लाभ बतलाते हैं,

उसका ऐसा लाभ है, तायी, ज्ञानी उस (लाभ) को साधते हैं, जो सादि (पर) अनन्त है ॥२४॥७६७॥

अहिंसक, सर्वप्रजानुकम्पक, धर्ममें स्थित, कर्मके विवेकके हेतु उन भगवान् को आत्म-दण्डी बनिये से उपमा देना गोशाला! तेरे ही ज्ञानके अनुकूल है ॥२५॥७६८॥

खलीके टुकड़े को भी शूली पर वेध कर "यह पुरुष है" ऐसा सोच पकाये, अथवा लौकी को भी बालक मान यदि पकाये तो हमारे मतमें वह प्राणिवध के पाप से लिप्त होता है ॥२६॥७६९॥

और यदि कोई म्लेच्छ खलीके भ्रममें बींधकर आदमी को, अथवा बच्चेको लौकी जान पकाये, तो हमारे मतमें वह प्राणिवध से लिप्त नहीं होता—॥२७॥७७०॥

पुरुष या बच्चेको बींधकर कोई आगमें सूले पर पकाये, खलीकी पिण्डी यदि समझता हो, तो बुद्धों के पारणके योग्य वह वस्तु है, यह शाक्य भिक्षु कहते हैं ॥२८॥७७१॥

दो हजार स्नातक भिक्षुओंको जो नित्य भोजन कराते हैं, वह भारी पुण्य राशि जमाकर महासत्व-आरुप्य देवता होते हैं ॥२९॥७७२॥

प्राणियोंको जबरदस्ती मार कर पाप करना यतियोंके योग्य नहीं है, जो उसके बारेमें बोलते या सुनते हैं, उन दोनोंके अज्ञान के लिये वह बुरा है यह धर्मज्ञ जिन कहते हैं ॥३०॥७७३॥

ऊपर-नीचे-तिरछे दसों दिशाओं में जंगम स्थावर प्राणियों के चिन्हों को देख कर प्राणियोंकी हिंसाके भय से बात या कार्य विवेकपूर्वक करे, तो उसे कोई दोष नहीं ॥३१॥७७४॥

खलीमें पुरुषका ख्याल नहीं हो सकता, अनाड़ी ही ऐसा कहता है, खलीकी पिण्डी में कहां यह सम्भव है, यह बात असत्य है ॥३२॥७७५॥

जिस वाणीको बोलनेसे पाप लगे, वैसी वाणी न बोले, गोशाल, यह तुम्हारा कथन गुणोचित नहीं है, कोई दीक्षित (भिक्षु) ऐसा नहीं [बो]लता ॥३३॥७७६॥

(बौद्ध-भिक्षुओ,) तुमने (अलंकारकी भाषाकी अपेक्षा) परम-अर्थको पा [लि]या? (तुमने) पूर्व समुद्र (बंगसागर) और पश्चिम समुद्र (अरब सागर) हाथ [में] [र]खा जैसा छूकर देख लिया? ॥३४॥७७७॥

[आ]र्द्रक जीवोंके दुःखको अच्छी तरह सोच और खाद्यान्नकी विधि की शुद्धि को [जा]न कपट भेषसे जीने वाला होकर छलकी बात न कहे, संयतों का यही [ध]र्म है ॥३५॥७७८॥

जो दो हजार स्नातक-भिक्षुओंको नित्य भोजन कराये, वह अ-संयत खून रंगे हाथों वाला, इस लोकमें निन्दा पाता है ॥३६॥७७६॥

मोटे भेड़ेको मार जो लोग व्यक्ति के उद्देश्यसे भात वना, उसे नमक और तेलसे छोंक-वघार कर मिर्चके साथ मांस पकाते हैं—॥३७॥७८०॥

फिर वहुतसे मांसको खाते, हम पापसे लिप्त नहीं होते, इस तरह अनार्य-धर्मी, रसलोलुप, वाल-अनार्य कहते हैं ॥३८॥७८१॥

जो वैसे भोजन को खाते हैं, वे अज्ञानी पापका सेवन करते हैं। कुशल पुरुष ऐसे को खाने का मन भी नहीं करते, मांस खानेकी वात असत्य है ॥३६॥७८२॥

सारे प्राणियों पर दया करनेके लिये सावद्य-वध्य दोषको वर्जित करते, पापकी शंका से ज्ञातृ-पुत्रीय किसी के उद्देश्यसे वने भोजनको निषिद्ध करते हैं ॥४०॥७८३॥

प्राणियोंकी हिंसासे जुगुप्सित हो सारे प्राणियोंमें दण्ड हिंसाका ख्याल हटाये। सदोष आहार का न भोगना संयतका धर्म है ॥४१॥७८४॥

इस समाधियुत निर्ग्रन्थ धर्ममें समाधि या इसमें सुस्थित, इच्छा-रहित हो जो विचरे, वह शील-गुण-सहित बुद्ध, (तत्वज्ञ) मुनि (तथा) अत्यन्त यशका भागी होता है ॥४२॥७८५॥

जो नित्य दो हजार स्नातक-ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं, वे भारी पुण्य राशि पैदा कर देव होते हैं, यह वेदवाद है ॥४३॥७८६॥

कुलमें आने वाले दो हजार स्नातकों-विप्रोंको जो नित्य भोजन कराये, (पर दुराचारी हो) वह मांस लोलुप नरकके पक्षियोंसे भरे··· वहुत जलता तथा नरकसेवी होता है ॥४४॥७८७॥

दयायुक्त धर्मसे घृणा करता है, वधप्रतिपादक धर्मकी प्रशंसा करता, और दुश्शीलको भोजन कराता है, ऐसा राजा निशा रूपी नरक में जाता है। (वह सुरोंमें कहाँसे जायगा ?) ॥४५॥७८८॥

एकदण्डियोंने आर्द्रक से कहा :—हम दोनों धर्ममें स्थित (तत्पर) हैं, अव सुस्थित हैं, और आगामी कालमें भी। हमारे यहां भी आचारशील ज्ञानी प्रशंसनीय है, परलोकमें एक दूसरेसे कोई विशेष नहीं है ॥४६॥७८६॥

अव्यक्तरूप, महान्, सनातन, अक्षय और अव्यय पुरुषको ताराओंमें चन्द्रमाकी भाँति सर्वरूपमें सारे प्राणियोंमें चारों ओर हम मानते हैं ॥४७॥७६०॥

आर्द्रक ने कहा—अव्यय मानने पर जीव न मरते न आवागमन करते···,

न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, कीट, पक्षी, सरिसृप, तथा जो देवलोक परस्पर भिन्न हैं, वह भी नहीं हो सकते ॥४८॥७९१॥

इस लोकको जाने विना ही धर्मको न जानते जो एकदण्डी केवल ज्ञानसे मुक्ति बतलाते हैं, अपार घोर संसारमें वे स्वयं नष्ट हो औरों को भी नष्ट करते हैं ॥४९॥७९२॥

जो यहां पूर्ण केवलज्ञानसे समाधियुक्त हो लोकको खूब जानते हैं, जो सारे धर्मको कहते हैं, वे स्वयं पारंगत दूसरों को भी तारते हैं ॥५०॥७९३॥

जो यहां निन्दनीय (कर्म) स्थानमें बसते हैं, जो लोकमें नीच आचरण युक्त हैं, मैंने अपने मतके अनुसार कहा, अब आवुस, दूसरोंके मत उलटे हैं ॥५१॥७९४॥

हस्तितापस कहते हैं :— हम वर्षमें बाणसे एक-एक ही महागज मारते हैं, बाकी जीवोंके ऊपर दया करनेके लिये वर्ष भरकी वृत्ति एक गजसे करते हैं ॥५२॥७९५॥

वर्षमें एक-एक प्राणको मारकर भी दोषसे निवृत्त नहीं हो सकते। फिर तो शेष जीवोंके वधमें लगे गृहस्थोंको भी थोड़े पाप वाला क्यों न मानें ॥५३॥७९६॥

वर्षमें एक-एक प्राणी मारता श्रमण-व्रतमें स्थित जो पुरुष माना गया, वह अनार्य है, वैसे पुरुष केवली (मुक्त) नहीं होते ॥५४॥७९७॥

बुद्ध-स्पष्टतत्वदर्शी की आज्ञासे इस समाधिको कहा, इसमें तीन प्रकारसे सुस्थित तायी (अर्हत्) हैं। महाभवसागरको समुद्रकी तरह तरनेको धर्म कहा, ऐसा कहता हूं ॥५५॥७९८॥

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

नालंदीय—अध्ययन ७

उस काल, उस समयमें, ऋद्धि सौंदर्य समृद्ध ० परिपूर्ण, राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगरसे बाहर उत्तर-पूर्व (दिशा) में अनेक सौ भवनोंसे युक्त नालंदा नामक बाहिरिका (शाखापुरी) नगरी थी।

उस बाहिरिका नालंदामें आढ्य, दीप्तवित्त, फैले विपुल भवन, शयनासन, वाहनसे युक्त, बहुत धन, बहुत सोने-चाँदीवाला, (धनके) आयोग, प्रयोगसे युक्त, बहुत भोजन-पानका देने वाला, बहुत दासी-दास-बैल-भैंस-गायोंका रखने वाला, बहुत जनोंसे अपराजित लेप नामक गृहपति रहता था ॥१॥७९...

वह लेप गृहपति (वैश्य) जैन श्रमणोंका उपासक भी था, जीव-अजीवादि नव तत्वोंका जानकार हो विचरता था। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन (सूत्रों) में शंका-सन्देह-विचिकित्सा से रहित परमार्थ प्राप्त गृहीतार्थ था। उसकी हड्डी और मज्जा तक धर्म के प्रेमके अनुरागसे रंगे थे। वह कहता—आवुस, यह निर्ग्रन्थ प्रवचन है, यही परमार्थ है, बाकी निरर्थक, वह खुले किवाड़ वाला, मुक्त द्वार, रनिवासोंमें भी उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं था। चतुर्दशी, अष्टमी (दो) और पूनम को पोषध व्रत अच्छी तरह पालन करता, निर्ग्रन्थ श्रमणोंको अपेक्षित खान-पान, खाद्य-स्वाद्य से लाभान्वित करता, वहुतसे शील-व्रत-गुण-दुराचारसे विरति (विरमण) प्राप्त प्रत्याख्यान त्याग करता, पोषध और उपवासोंसे आत्माको शुद्ध करता विहरता था ॥२॥८००॥

उस लेप गृहपतिकी बाहिरिका नालंदाके उत्तर-पूर्व दिशामें शेपद्रव्य नामक अनेक सौ खंभों वाली प्रासादिक ० अनुरूप उदकशाला (प्याऊ) थी। उस शेप-द्रव्य उदकशालाके उत्तर-पूर्वदिशा में हस्तियाम (हथियांव) नामक वनखंड था। वनखंडका रंग काला था ॥३॥८०१॥

उस गृहप्रदेशमें भगवान् गौतम विहरते थे। भगवान् आरामके नीचे थे। तब भगवान् पार्श्वके अनुयायी निर्ग्रन्थ, गोत्रसे मेदार्य उदक पेढालपुत्र, जहाँ भगवान् गौतम (इन्द्रभूति) थे, वहाँ गये; जा के भगवान् गौतमसे ऐसे वोले—आवुस गौतम, मुझे कोई बात पूछनी है, उसे आवुस गौतम! (अपने)सुने और देखे के अनुसार स-वाद व्याकरण करें(बतलायें)। भगवान् गौतम ने उदक पेढालपुत्रसे यों कहा—आवुस, यदि सुनकर निशामन कर जानेंगे, तो हम कहेंगे ॥४॥८०२॥

उदक पेढालपुत्र ने भगवान गौतम से कहा—

आवुस गौतम, कुमारपुत्रीय नामक श्रमण हैं, जो तुम्हारे प्रवचनको प्रवचन कहते हैं। उप-सम्पन्न गृहपति श्रमण-उपासकको यों प्रत्याख्यान कराते हैं—राजाको छोड़, गृहपतिके चोर पकड़ने और छोड़नेके दृष्टान्तके अनुसार जंगम प्राणियोंमें ऐसा दण्ड देकर प्रत्याख्यान करना दुष्प्रत्याख्यान है। ऐसा प्रत्याख्यान कराते हुए अपनी प्रतिज्ञाका अतिक्रमण करते हैं। किस कारण ? संसारी-स्थावर प्राणी भी (जन्मान्तरमें) त्रस हो जाते हैं, त्रस प्राणी भी स्थावर हो जनमते हैं। स्थावरकायसे छूटकर त्रसकायमें पैदा होते हैं, त्रसकायसे छूटकर स्थावर-कायमें पैदा होते हैं। उन स्थावरकायोंमे उत्पन्नोंका वध होना सम्भव है ॥५॥८०३॥

ऐसा प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है,ऐसा प्रत्याख्यान कराना सुप्रत्याख्यान कराना होता है। वे ऐसे प्रत्याख्यान कराते हुए अपनी प्रतिज्ञाका अतिक्रमण नहीं करते।

राजाज्ञा* छोड़ अन्यत्र गृहपतिका चोर पकड़ने छोड़नेसे त्रस-भूत प्राणियों पर दण्ड चला, ऐसा यदि भाषाके प्रयोग होने पर, जो वे क्रोधसे लोभसे या दूसरे (प्रकार) से प्रत्याख्यान कराते हैं, उनका यह झूठ बोलना होता है। यह उपदेश भी न्याय्य नहीं है क्या? क्या आवुस गौतम, तुम्हें भी यह पसन्द है?॥६॥८०४॥

भगवान् गौतमने वादके सहित (बहस करते) उदक पेढालपुत्रसे यों कहा-'आवुस श्रमण' हमें ऐसा पसंद नहीं है, जो कि वे श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं० ऐसा निरूपण करते हैं। वे श्रमण-ब्राह्मण ठीक भाषा नहीं बोलते, वे अनुतापिनी भाषा बोलते हैं, वे अभ्याख्यान (निन्दा) करते हैं। वे श्रमणों और श्रमणोपासकों का अभ्याख्यान करते हैं। और जो लोग अन्य जीवों—प्राणों—भूतों—सत्वोंके विषयमें संयम करते हैं, उनका भी अभ्याख्यान करते हैं। किस कारण? सारे प्राणी संसरण (आवागमन) करने वाले हैं। जंगम प्राणी भी स्थावरत्वको प्राप्त होते हैं, जंगमकायासे छूट स्थावरकायामें उत्पन्न होते हैं, स्थावरकायासे छूट त्रस (जंगम)कायामें पैदा होते०। जंगम कायामें उत्पन्न पुरुष वध्य (हननके योग्य) नहीं होते ॥७॥८०५॥

उदक पेढाल-पुत्रने वाद (बहस) करते हुए भगवान् गौतमसे यह कहा—आवुस गौतम, कौन हैं वे जिन्हें आप लोग जंगम प्राणी त्रस या दूसरा कहते हैं? वादके साथ भगवान् गौतमने उदक पेढाल-पुत्रसे यों कहा—आवुस उदक, जिन्हें तुम जंगम-भूत-प्राणी जंगम कहते हो, उन्हें ही हम जंगम प्राणी कहते हैं। और जिन्हें हम जंगम प्राणी कहते हैं, उन्हें ही तुम जंगमभूत प्राणी कहते हो। यह दोनों बातें तुल्य—एकार्थ हैं। क्यों आवुस, ऐसी अवस्थामें तुम्हें जंगम भूत प्राणी जंगम यह कहना अच्छा लगता है और 'जंगम प्राणी जंगम' यह कहना बुरा लगता है। एककी तुम निन्दा करते हो और दूसरेका अभिनन्दन करते हो। उसलिए यह आपका किया भेद न्यायसंगत नहीं है।

भगवान्ने फिर कहा—कोई कोई आदमी हैं, जो साधुके पास आकर पहले जैसा कहते हैं— "हम मुण्डित होकर घरसे बेघरताको नहीं पा सकते, सो हम क्रमशः साधुओंके गोत्र-पदको न-प्राप्त करेंगे। वे ऐसा सोचते, ऐसा

---

*राजाने आज्ञा दी थी, नगरके सभी लोग क्वार पूनोंके महोत्सवके लिए नगरसे बाहर जायें, जो नहीं जायेंगे, उन्हें मृत्युदण्ड दिया जाएगा। किसी गृहपतिके पांच पुत्र बाहर जाना भूल गए। राजाने अपराधी (चोर) समझ पांचों को प्राणदण्ड दिया। गृहपतिने पुत्रोंकी प्राणभिक्षा मांगी। पांचोंके न मानने पर, चारकी, फिर तीनकी, फिर दोकी, अन्तमें एककी प्राणभिक्षा मंजूर हुई। इसमें एकको बचानेसे चारके राजाज्ञानुसार मारे जानेके दोषमें उक्त गृहपति नहीं लिप्त होता।

विचार करते हैं। राजा आदिकी आज्ञाके बिना गृहपतिका चोरके ग्रहण और त्याग द्वारा जो जंगम प्राणियोंमें दण्डको परिवर्जित करना है, वह भी उनके लिए कुशल ही है ॥८॥८०६॥

त्रस त्रस कहे जाते हैं, और वे उसके कर्म-फल भोगके कारण जंगम नाम धारण करते हैं। उसकी जंगम आयु क्षीण होती है, जंगम कायाकी स्थिति भी (क्षीण होती है)। तब उस आयुको वे छोड़ देते हैं। उस आयुको छोड़कर वे स्थावरमें जनमते हैं। स्थावर भी वे कहे जाते हैं, क्योंकि स्थावरके फल-भार वाले कर्मके द्वारा स्थावर हैं। इसलिए यह नाम इनको मिलता है। स्थावर आयु भी क्षीण होती है, स्थावरकायकी स्थिति भी, तव वे उस आयु (शरीर) को छोड़ते हैं। उस आयुको छोड़कर फिर वे पारलौकिक्रता (जंगमता) को प्राप्त होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते हैं, वे त्रस जंगम भी कहे जाते हैं, वे महाकाय, वे चिरायु होते हैं ॥९॥८०७॥

बहस करते हुए उदक पेढाल-पुत्रने भगवान् गौतमसे यों कहा—आवुस गौतम, ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जिसमें न मारकर श्रमणोपासक (जैन) अपने एक प्राणी के न मारनेकी विरतिमें सफल हो। किस हेतु ? सारे प्राणी आवागमन करने वाले हैं। स्थावर प्राणी भी जंगमत्वको प्राप्त होते हैं। स्थावरकायासे छूटकर सारे स्थावरकायामें उत्पन्न होते हैं। स्थावरकायोंमें उत्पन्न वह घातलायक(वध्य) होते हैं।

बहस कर···भगवान् गौतमने उदक पेढाल-पुत्रसे यों कहा—आवुस उदक, हमारे कथनमें ऐसा प्रश्न नहीं उठता, लेकिन तुम्हारे कथनमें वह उठ सकता है। वह बात यह है—जहां श्रमणोपासक सभी प्राणों–सभी भूतों—सभी जीवों– सभी सत्वोंमें त्यक्तदण्ड (अहिंसक) होता है। सो किस हेतु ? प्राणी आवागमन वाले हैं, अतः स्थावर प्राणी भी जंगम (त्रस) कायामें जनमते हैं और जंगम प्राणी भी स्थावरोंमें पैदा होते हैं। जो जंगमकायोंको छोड़कर स्थावरकायोंमें उपजते हैं और जो स्थावरकायोंको छोड़कर जंगमकायोंमें उत्पन्न हो जाते हैं। वह जंगमकायमें उत्पन्न (श्रावकोंके लिए) घात-योग्य (वध्य) नहीं होते। वे प्राणी भी कहे जाते हैं, जंगम (त्रस) भी कहे जाते हैं। वे महाकाय और चिरायु होते हैं। वे वहुतसे प्राणी हैं, जिनमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान (हिंसाविरति) सफल होता है। वैसे प्राणी कम ही होते हैं, जिनमें श्रमणोपासकोंका प्रत्याख्यान नहीं हो पाता। ऐसे (श्रावक) महान् जंगमकाय के घातसे शान्त और विरत होता है। उसके वारेमें तुम या दूसरे लोग जो कहते हैं, कि ऐसा एक भी पर्याय नहीं, जिसमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान हो सके, एक प्राण भी निहित-दण्ड हो सके, यह कहना गलत है ॥१०॥८०८॥

भगवान् गौतम कहते हैं—निर्ग्रन्थ (जैन साधु) को पूछना चाहिए—आवुस निर्ग्रन्थ, यहां (दुनियामें) कोई-कोई मनुष्य होते हैं, वह ऐसा पहले मान लेते हैं—यह मुण्डित होकर घरसे वेघर हो प्रव्रजित (संन्यासी) होता है, 'मृत्यु पर्यन्त इनको दण्ड देना मैंने छोड़ दिया है,' और जो यह गृहस्थमें हैं उनको० मृत्यु पर्यन्त दण्ड देना मैंने नहीं छोड़ा। क्या कोई श्रमण ५, ६, १० अथवा कम या वेशी (काल तक) देशोंमें विहार कर गृहस्थ वन जाते हैं। हां, (गृहस्थ) वन जाते हैं। भगवान् गौतम पूछते हैं—क्या उन गृहस्थोंके मारने वालेका वह हिंसा-प्रत्याख्यान भंग होता है? निर्ग्रन्थ कहते हैं—ऐसे श्रमणोपासकने भी जंगम प्राणीमें जो दण्ड त्यागा, स्थावर प्राणीका दण्ड मैंने नहीं त्यागा है। अतः स्थावरकाय वाले प्राणीको भी मारनेसे उसका प्रत्याख्यान भंग नहीं होता। हे निर्ग्रन्थो, उसे ऐसा जानो, ऐसा जानना चाहिए।

भगवान् गौतम ने कहा—निर्ग्रन्थोंसे मुझे पूछना है—आवुस निर्ग्रन्थो, यहां (लोकमें) गृहपति या गृहपति-पुत्र वैसे (उत्तम) कुलोंमें आ क्या धर्म सुननेके लिए साधुओंके पास जा सकते हैं? हां, पास जा सकते हैं। भगवान् गौतम ने कहा—वैसे उस प्रकारके पुरुषसे क्या धर्म कहना चाहिए? हां, कहना चाहिए।

क्या वे उस प्रकार धर्म सुनकर, समझ कर यह कह सकते हैं—कि यह निर्ग्रन्थोंका प्रवचन सत्य, अनुपम, केवल, परिपूर्ण, संशुद्ध, न्यायोचित, शल्य-काटनहार, सिद्धिमार्ग, निर्याण (निर्गम) मार्ग, निर्वाण मार्ग, यथार्थ, असन्दिग्ध, सर्वदुःख प्रहीण-मार्ग है? इस (मार्ग) में स्थित जीव सिद्ध होते, बुद्ध होते, मुक्त होते, परिनिर्वाण प्राप्त होते; सब दुखोंका अन्त करते हैं। उस (मार्ग) की आज्ञाके अनुसार उसी तरह चलेंगे, वैसे खड़े होंगे, वैसे बैठेंगे, वैसे करवट लेंगे, वैसे भोजन करेंगे, वैसे ही बोलेंगे, वैसे ही उत्थान करेंगे। वैसे उठकर सारे जीवों—भूतों—प्राणियों—सत्वोंके साथ संयम धारण करेंगे, क्या यह बोल सकते हैं? हाँ, ० सकते हैं? (निर्ग्रन्थोंने कहा), क्या वे उस प्रकार कहें तो वह उचित है? हां, उचित है। क्या वैसे लोग मूंडने योग्य हैं? हां, योग्य हैं। क्या वैसे लोग (प्रव्रज्यामें) उपस्थित करने योग्य हैं? हां, उपस्थित करने योग्य हैं। उन्होंने सारे प्राणियोंमें० सारे सत्वोंमें दण्ड (हिंसा) त्यागा है? हाँ त्यागा है। वे उस प्रकारके विहारसे विहर ० चार, पांच, छ या दस, अथवा कम-वेशी देशों में विहार करके घर में जा (गृहस्थ वन) सकते हैं?

हां जा सकते हैं। उन्होंने सारे प्राणियों ० सारे सत्वोंमें दण्ड छोड़ दिया? (निर्ग्रन्थोंने कहा—) यह वात नहीं है। वह वही जीव है, जिसने घर छोड़कर आसन्न सारे प्राणियोंमें० सारे सत्वोंमें दण्ड त्यागा। पीछे संयमहीन हो आसन्नकालमें

संयत होता अब असंयत है। असंयतका सारे प्राणियोंमें० सारे सत्वोंमें दण्ड-निक्षेप (अहिंसा) नहीं होता। सो हे निर्ग्रन्थो, उसे ऐसा जानो, उसे ऐसा जानना चाहिए।

भगवान् गौतम ने कहा—निर्ग्रन्थों (जैन साधुओं) से मुझे पूछना है :—आवुसो निर्ग्रन्थो, यहां परिव्राजक या परिव्राजिकायें किसी अन्यतीर्थिक-स्थानसे धर्म सुननेके लिए आ सकते हैं?—आ सकते हैं।—क्या वैसे लोगोंको धर्म कहना चाहिए? —हां, कहना चाहिये।—वे वैसे (लोग) क्या प्रव्रज्यामें उपस्थापित किये जा सकते हैं? —हां, किये जा सकते हैं।—क्या वे वैसे लोग साथ के उपभोगमें मिलाये जा सकते हैं?—हां, मिलाये जा सकते हैं।—वे इस प्रकार के विहारसे विहरते वैसे ० घरमें जा बस सकते हैं?—हां बस सकते हैं। और वे वैसे प्रकारके (लोगोंके) साथ उपभोगियोंमें मिलाये जा सकते हैं?

श्रमणोंने कहा—यह उचित नहीं है। वे सब जो थे, जो पीछे उपभोगोंमें सम्मिलित नहीं किये जा सकते। वे जो जीव आसन्न हैं, वे उपभोगोंके योग्य हैं। वे जो जीव हैं, जो कि अब उपभोगिकता के योग्य नहीं। पीछे जो श्रमण, आसन्न (श्रमण) हैं, अब अ-श्रमण हैं। अश्रमणके साथ निर्ग्रन्थ श्रमण उपभोग (एक मण्डल पर खाने पीनेका मिला जुला व्यवहार) नहीं कर सकते। सो ऐसा जानो, सो ऐसा जानना चाहिये ॥११॥८०९॥

भगवान् गौतम ने कहा—कोई-कोई ऐसे श्रमण-उपासक होते हैं, जो ऐसा मान बैठते हैं :—हम मुंडित हो, घरसे बेघर-प्रव्रज्या नहीं ले सकते। हम चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा के दिनोंमें पूरे पोषध (उपवास) का अच्छी तरह पालन करते हुए विहरेंगे। स्थूल-मोटी हिंसा का प्रत्याख्यान करेंगे। उसी प्रकार स्थूल मिथ्याभाषणका, स्थूल चोरी का, स्थूल मैथुनका, स्थूल परिग्रहका त्याग करेंगे। इच्छाको सीमित करेंगे, दो करण (करने-कराने)-तीन योग (मन, वचन, काय)से प्रत्याख्यान करेंगे। कोई मेरे लिये कुछ मत करे या कराये। हम ऐसा ही प्रत्याख्यान करेंगे। वे बिना खाये, बिना पिये, बिना नहाये, कुरसी-पीढ़ेसे उतर कर वे वैसे काल करें, तो (उनके बारेमें) क्या कहना चाहिये?

—अच्छी तरह काल किया, यही कहना होगा।

वे प्राणी भी कहे जाते, जंगम (त्रस) भी कहे जाते०। वे महाकाय हैं वे चिरायु हैं। बहुतेरे प्राणी हैं, जिनमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान (हिंसात्याग) ठीक होता है। वे थोड़ेसे प्राणी होते हैं, जिनमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान नहीं होता। वह महाकाय से प्रत्याख्यान ठीक है, उसे आप आधारहीन बतलाते हैं, यह भेद करना भी (आपका) न्याय्य नहीं है।

भगवान् गौतम ने और कहा :—कोई-कोई श्रमणोपासक होते हैं, जो इस

प्रकार कह देते हैं—हम मुण्डित हो घर से बेघर—प्रव्रजित नहीं हो सकते, न हम चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णमासीको उपोसथ पालन करते विहर सकते हैं। हम तो अन्तिम मरणकालमें संलेखना—अन्नपानका परित्याग कर० जीवनकी इच्छा न करते हुए विहरेंगे। (तत्र) हम तीनों प्रकारसे सारी प्राणि-हिंसाका प्रत्याख्यान करेंगे, सारे परिग्रहका प्रत्याख्यान करेंगे। मेरे लिये कुछ मत करो, न कराओ ० कुरसी-पीढ़ेसे उतर कर जिन्होंने काल किया, उनके बारेमें क्या कहना चाहिये ? —ठीकसे काल किया कहना चाहिये।

वे प्राणी भी कहे जाते ० यह भेद करना भी न्याय्य नहीं है। भगवान् गौतम ने और कहा—कोई-कोई मनुष्य होते हैं, जैसे कि महा-इच्छावाले, बड़े तूल करने वाले, महा परिग्रहवाले, अधार्मिक ० प्रसन्न करनेमें अतिकठिन० सारे-सारे परिग्रहोंसे जीवनभर अविरत। उन प्राणियोंमें श्रमणोपासक व्रत लेने से मृत्यु तक त्यक्त-दण्ड (अ-हिंसक) होता है। वे (जन) वहाँसे आयु छोड़ते हैं, वहाँ से अपने किये कर्मको लेकर दुर्गति में जाते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, वे त्रस भी कहे जाते हैं। वे महाकाय हैं, चिरायु हैं। वे बहुतेरे व्रत लेने से ऐसे हैं, अहिंसक हैं, जिनके बारे में तुम वैसा कहते हो, यह भी भेद निराधार कहना न्याय्य नहीं है।

भगवान् गौतम ने और कहा—कोई-कोई मनुष्य होते हैं, जैसे कि—आरम्भ-(हिंसा) हीन, परिग्रहहीन, धार्मिक, धर्मपूर्वक अनुज्ञा देने वाले० ,सारे परिग्रहोंसे आजीवन रहित-विरत, जिनके विषयमें श्रमणोपासकने व्रत लेने से मृत्यु पर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। वे वहां से आयु छोड़ते हैं। वहांसे पुनः अपने किये कर्म को ले सुगतिगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, जंगम भी कहे जाते० (निराधार कहना) न्याय्य नहीं।

भगवान् गौतम ने और कहा—कोई-कोई आदमी होते हैं, जैसे कि अल्पेच्छ, अल्प-आरम्भ, अल्प-परिग्रह, धार्मिक, धर्मपूर्वक अनुज्ञा देने वाले ० किसी एक परिग्रह (हिंसा) से विरत होते ०। जिन प्राणियों में श्रमणोपासक ने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्त दण्ड त्यागा है। वे वहां से आयु छोड़ते हैं, वहां से पुनः अपने किये को ले स्वर्गगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, त्रस भी कहे जाते० न्याय्य नहीं है।

भगवान् गौतम ने कहा—कोई-कोई मनुष्य होते हैं, जैसे कि अरण्यवासी, अतिथिशाला-वासी, ग्रामनिमंत्रित, कुछ रहस्य जानकार। जिनके बारेमें श्रमणोपासक व्रत लेनेसे मृत्यु-पर्यन्त दण्ड त्यागी होता है। वे (जीव) पहले ही काल कर जाते हैं, करके परलोकगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, त्रस (जंगम) भी कहे जाते, महाकाय भी, चिरायु भी होते ०। उनमें वे बहुतेरे

होते हैं, जिनके विषयमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक होता ०। ० न्याय्य नहीं है।

भगवान् (गौतम) ने और कहा—कोई कोई प्राणी समान आयु वाले होते हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्यु पर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। वे स्वयं ही काल करते हैं। काल करके परलोकगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, त्रस भी कहे जाते हैं, वे महाकाय, एक समान आयु वाले होते हैं। उनमें वे बहुतेरे हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक है। ० कहना न्याय्य नहीं है।

भगवान् गौतम ने कहा—कोई कोई श्रमणोपासक होते हैं, वे ऐसा कहते हैं :—हम मुण्डित हो ० प्रव्रजित नहीं हो सकते। न ही हम चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमामें परिपूर्ण पौषध (उपवास) का पालन कर सकते। न ही हम अन्तिम कालमें ० विहार कर सकते। हम सामायिक (समयके प्रमाणके अनुसार समभाव की साहजिक प्रवृत्ति) और देश अवकाशित (कोस-योजनको सीमा रखते) को ले इस प्रकार उस सीमासे अधिक प्रतिदिन प्रातः पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन ऐसे सारे प्राणों ० सारे सत्वोंमें दण्ड त्यागे, सारे प्राण-भूत-जीव और सत्व समूहमें हम क्षेमकर हो जाएं। वहाँ व्रत लेनेसे परे जो त्रस (जंगम) प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्यु-पर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। फिर आयु छोड़ते हैं, छोड़कर जो बाहर त्रस प्राणी हैं, उनमें जनमते हैं। जिनके बारेमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक होता है, वे प्राणी भी ० न्याय्य नहीं है ॥१२॥८१०॥

वहां पासमें जो त्रस प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकनें व्रत लेनें से मृत्यु-पर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। वे वहांसे आयु छोड़ते हैं, छोड़कर वहांसे पासमें जो स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने अर्थयुक्त दण्ड नहीं त्यागा, व्यर्थ (अनर्थ) दण्ड देना त्यागा है, उनमें जनमते हैं। उनके बारेमें श्रमण-उपासकने अर्थयुक्त दण्ड त्याग नहीं किया होता, अर्थहीन दण्ड त्यागा होता है। वे प्राणी भी कहे जाते, वे चिरायु भी होते ० यह भी भेद करना न्याय्य नहीं है।

वहां जो पासमें स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने अर्थयुक्त दण्ड नहीं त्यागा होता, व्यर्थ दंड त्यागा होता है। वे तब आयु छोड़ते हैं, छोड़कर वहां पासमें जो त्रस प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने व्रत लेनेसे मृत्यु-पर्यन्त दण्ड त्यागा होता है, उनमें जन्मते हैं, उनके बारेमें श्रमण-उपासककी विरति ठीक होती है। वे प्राणी भी ० यह भी भेद करना सो न्याय्य नहीं है।

वहां जो पासमें वे स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने अर्थयुक्त

दण्ड नही त्यागा होता, व्यर्थका त्यागा होता है। वे तब आयु छोड़ते, छोड़कर वे वहां पासमें जो स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने अर्थयुक्त दण्ड नही त्यागा होता, व्यर्थदंड त्यागा होता है,उनमें जनमते हैं। उनके बारेमें श्रमणोपासकने अर्थयुक्तदंड न त्यागा, व्यर्थका त्यागा होता है, वे प्राणी भी कहे जाते, वे ० यह भी भेद न्याय्य नहीं है।

वहां जो वे पासमें स्थावर प्राणी हैं,जिनके बारेमें श्रमणोपासकने अर्थयुक्त दंड नहीं त्यागा होता, व्यर्थका त्यागा होता है। वह वहांसे आयु छोड़ता, छोड़ कर वहांसे परे जो त्रस-स्थावर प्राणी हैं, जिनमें श्रमण-उपासकने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्त दंड त्यागा होता है, उनमें जनमता है। उनमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक होता है। वे प्राणी भी ० यह भी न्याय्य नहीं है।

वहां जो परेमें त्रस-स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्त दंड त्यागा होता है,वे वहांसे आयु छोड़ते हैं,छोड़कर वहां पासमें जो त्रस प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्त दंड त्यागा होता है, उनमें जनमते हैं। जिनके बारेमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक होता है। वे प्राणी भी कहे जाते ० यह भी भेद न्याय्य नहीं ०।

वहां वे जो परे त्रस-स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्त दंड त्यागा होता है। वे वहांसे आयु छोड़ते हैं,छोड़कर वहां पास में जो स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने अर्थयुक्त दंड नहीं त्यागा होता, व्यर्थका त्यागा होता है, उनमें जनमते हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने अर्थयुक्त न त्यागा, व्यर्थका त्यागा ० वे प्राणी भी ० यह भी भेद ०।

वहां वे जो परे त्रस-स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्तदंड त्यागा होता है। वे वहांसे आयु छोड़ते हैं,छोड़कर वे वहां परे में ही जो त्रस-स्थावर प्राणी होते हैं, जिनके विषयमें श्रमणोपासकने व्रत लेनेसे मृत्युपर्यन्त दंड त्यागा होता है, उनमें जनमते हैं। जिनमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक होता ०। वे प्राणी भी ० यह भी भेद ०।

भगवान् गौतम ने और कहा—न यह हुआ, न यह है, न यह (कभी) होगा, कि त्रस (जंगम) प्राणी उच्छिन्न होंगे, स्थावर रहेंगे, त्रस-स्थावर प्राणियों के उच्छिन्न न होने पर जो तुम या दूसरे जो ऐसा कहते हैं, नहीं है, वह कोई (श्रावकके सुप्रत्याख्यान०) बात ० न्याय्य नहीं ०॥१३॥८११॥

फिर भगवान् गौतम ने और कहा—आवुस उदक, जो (आदमी) निन्दता है, मैत्री मानते हुए भी ज्ञानको लेकर, दर्शनको लेकर, आचरणको लेकर पापकर्म न करनेकी बात कहते हुए भी वह परलोकका विघात करता है। जो कोई

श्रमण या ब्राह्मणकी निन्दा नहीं करता, मैत्री मानते हुए निन्दा नहीं करता, ज्ञान को लेकर, दर्शनको लेकर, आचारको लेकर, पापकर्मोंके न करनेकी बात कह वह परलोककी विशुद्धिके लिए कहने वाला है।

ऐसा कहने पर वह उदक पेढालपुत्र भगवान् गौतमका अनादर करते हुए जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें जानेकी सोचने लगा।

भगवान् गौतम ने और भी कहा—आवुस उदक, जो कोई वैसे श्रमण-ब्राह्मणके पाससे एक भी आर्य धार्मिक सूक्ति सुनकर, जानकर और अपनी सूक्ष्मता से प्रत्यवेक्षण कर यह अनुपम योग-क्षेम पद मुझे मिला सोचता है, उस पुरुष का आदर करता, मानता, वन्दना करता, सत्कार करता, सम्मान करता ० कल्याण मंगल और देव सा पूजा करता है...... ।

तव उदक पेढाल-पुत्रने भगवान् गौतमसे यों कहा—भन्ते ! इन पदोंका पहले ज्ञान न होने से, श्रवण न होने से, श्रोत्र न होने से, समझ न होने से, दृष्ट न होने से, श्रुत न होने से, स्मृत न होने से, विज्ञात न होने से, विगाहन न होने से, अवगाहन न होने से, संशय-विच्छेद न होने से, निर्वाहित न होने से, निसर्गजात न होने से, उपधारित न होने से, इस वात पर मैंने श्रद्धा नहीं की, विश्वास नहीं किया, पसन्द नहीं किया। भंते, इन वातोंके इस समय ज्ञात होने से, सुननेसे, वोध से ० उपधारणसे इस वात पर श्रद्धा करता हूं, पसन्द करता हूं, वैसे ही जैसे कि आप कहते हैं।

तव भगवान् गौतमने उदक पेढाल-पुत्रसे यों कहा—श्रद्धा करो आर्य, पतियाओ आर्य, पसन्द करो आर्य, यह ऐसा ही है, जैसा कि हम कहते हैं।

तव उस उदक पेढाल-पुत्रने भगवान् गौतमसे यों कहा—भंते ! आपके पास चार याम वाले पार्श्व के धर्मसे महावीरके प्रतिक्रमण सहित पांच महाव्रतवाले धर्मको लेकर विहरना चाहता हूं।

तव भगवान् गौतम उदक पेढाल-पुत्रको लेकर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां गए। तव उदक पेढाल-पुत्रने श्रमण भगवान् महावीरके पास जाकर तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा कर वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर यों कहा—भन्ते ! मैं चातुर्याम धर्मके स्थानमें प्रतिक्रमण सहित पंचमहाव्रतिक धर्ममें उपसम्पदा पा विहरना चाहता हूं।

तव श्रमण भगवान् महावीरने उदकसे यों कहा—देवानुप्रिय, जैसे चाहो, सुखपूर्वक विहरो, प्रतिवन्ध (रोक) मत करो।

तब उस उदक पेढाल-पुत्रने श्रमण भगवान् महावीरके पास चातुर्याम धर्म से प्रतिक्रमण सहित पंचमहाव्रतिक धर्ममें उपसम्पदा पा विहार किया। यह कहता हूं ।।१४।।८१२।।

।। सातवाँ नालंदीय अध्ययन समाप्त ।।

।। दूसरा श्रुतस्कंध समाप्त ।।

।। सूत्रकृतांग समाप्त ।।
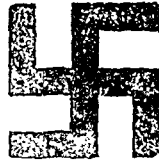
नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

स्थानांग

प्रथम स्थान

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीसे कहते हैं—आयुष्मन् शिष्य! उन भगवान् महावीरने इस प्रकार—जैसा आगे कहा जायगा जो कहा, वह मैंने सुना है। वही मैं कहता हूं।

संग्रह नय की अपेक्षा से आत्मा एक है ॥१॥ अप्रशस्त-योगोंका प्रवृत्तिरूप व्यापार (हिंसा) एक होने से दंड एक है ॥२॥ योगों (मन, वचन, काया) की प्रवृत्तिरूप क्रिया एक है ॥३॥ धर्मास्तिकाय आदि द्रव्योंका आधारभूत लोकाकाश एक है ॥४॥ धर्मा०·······अभावरूप अलोकाकाश एक है ॥५॥ पदार्थोंकी गतिमें सहायकरूप स्वभावसे धर्मास्तिकाय एक है ॥६॥ पदार्थोंकी स्थिति·······से अधर्मास्तिकाय एक है ॥७॥ कर्मबद्ध-आत्माओंकी सामान्य विवक्षासे बन्ध एक है ॥८॥ कर्ममुक्त आत्माओं····से मोक्ष एक है ॥९॥ शुभयोग प्रवृत्तिके एक होनेसे पुण्य एक है ॥१०॥ अशुभ-योगरूप·········से पाप एक है ॥११॥ जीवरूप नौकामें इन्द्रियरूप छिद्रोंसे कर्म-रूप जलका संचय आस्रव है। वह सामान्य विवक्षासे एक है ॥१२॥·········से आते हुए कर्मरूप जल को रोकना संवर है। वह······॥१३॥ अशुभ-कर्मोदय-जन्य मानसिक कायिक पीड़ा-वेदना है। वह·······॥१४॥ कर्मक्षयरूप निर्जरा सामान्यतया एक है ॥१५॥ प्रत्येक शरीरमें रहा हुआ जीव एक है ॥१६॥ बाहरके पुद्गलोंको लिए विना जीवोंकी विकुर्वणा एक है ॥१७॥ मनोयोग एक है ॥१८॥ वचनयोग एक है ॥१९॥ शरीर का व्यापाररूप काययोग एक है॥२०॥

उत्पाद—उत्पत्ति एक है ॥२१॥ विगति—विनाश एक है ॥२२॥ विगतार्चा—मरे हुई जीवका शरीर एक है ॥२३॥ गति एक है ॥२४॥ आगति एक है ॥२५॥ च्यवन—वैमानिक और ज्योतिष्कोंका मरण एक है ॥२६॥ उपपात—देव और नारकोंका जन्म एक है ॥२७॥ तर्क एक है ॥२८॥ संज्ञा एक है ॥२९॥ मति एक है ॥३०॥ विज्ञता—विद्वत्ता एक है ॥३१॥ पीड़ा एक है ॥३२॥ छेदन एक है ॥३३॥ भेदन एक है ॥३४॥ चरम शरीरी जीवोंका मरण एक है ॥३५॥

निर्मल चरित्रवान् यथाभूत और पात्र के समान पात्र (स्नातक) एक है ।।३६।। एकावतारी जीवोंको एक भवग्रहणसे होने वाला एकभूत (समान) दुःख एक है ।।३७-३८।। अधर्म-प्रतिज्ञा एक है, कारण कि उस प्रतिज्ञासे आत्मा-क्लेश पाता है ।।३९।। धर्मप्रतिज्ञा एक है, क्योंकि उस प्रतिज्ञासे आत्मा-पर्यवजात—ज्ञानादि पर्यववाला होता है ।।४०।। देव-असुर और मनुष्योंको उस २ समयमें मन एक है। ......वचन एक है। ......कायव्यापार एक है।... उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम एक है ।।४१।। ज्ञान एक है ।।४२।। दर्शन एक है ।।४३।। चारित्र एक है ।।४४।। समय एक है ।।४५।। प्रदेश एक है ।।४६।। परमाणु एक है ।।४७।। सिद्धालय एक है ।।४८।। सिद्ध एक है ।।४९।। सकलकर्मोंके नाशसे निष्पन्न परि-निर्वाण एक है ।।५०।। सर्वथा शारीरिक और मानसिक दुःखरहित परिनिवृत अवस्था एक है ।।५१।। शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, शुभ शब्द, अशुभ शब्द, सुरूप, कुरूप, दीर्घ संस्थान, लघुसंस्थान, वृत्त०, त्रिकोण०, चतुरस्र (चौरस)०, विस्तीर्ण०, वलय संस्थान, कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण, श्वेत वर्ण, सुगंध, दुर्गन्ध, तीखा-रस, कड़वा०, कापाय (कसैला)०, खट्टा०, मधुर रस, कर्कश यावत् रूक्ष ये प्रत्येक एक २ हैं ।।५२-६४।।

प्राणातिपात एक है यावत् परिग्रह एक है। क्रोध एक है यावत् लोभ एक है। राग एक है, द्वेष एक है, यावत् परपरिवाद एक है। अरतिरति एक है, मायामृषा एक है, मिथ्यादर्शनशल्य एक है ।।६५।। प्राणातिपातकी विरति यावत् परिग्रहकी विरति, क्रोधका त्याग यावत् मिथ्यादर्शनशल्यका त्याग एक है ।।६६।। एक अवसर्पिणी, एक सुषमसुषमा यावत् एक दुषमदुषमा है। एक उत्सर्पिणी, एक दुषमदुषमा यावत् सुषमसुषमा एक है ।।६७।।

नैरयिकोंकी वर्गणा एक है, असुरकुमारों......, इसी प्रकार चौवीस दंडक पर्यंत यावत् वैमानिकदेवोंकी वर्गणा एक है ।।६८।। भव्यसिद्धिकोंकी वर्गणा एक है, अभव्यसिद्धिकों०, भव्यसिद्धिकनैरयिकों०, अभव्यसिद्धिकनै०, इसी प्रकार यावत् भव्यसिद्धिक वैमानिकोंकी वर्गणा एक है, अभव्यसिद्धिक वै०...।।६९।। सम्यग्दृष्टिजीवोंकी वर्गणा एक है, मिथ्यादृष्टि०, मिश्रदृष्टि०, सम्यग्-दृष्टि नैरयिकों की०, मि० नै०, मिश्र० नै०, इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों की०। मिथ्यादृष्टि पृथ्वीकायिकोंकी वर्गणा एक है, इसी प्रकार यावत् वन-स्पतिकायिकोंकी वर्गणा एक है। सम्यग्दृष्टि बेइन्द्रियोंकी वर्गणा एक है, मि० बे०, इसी प्रकार तेइन्द्रिय चौरिंद्रियोंकी भी एक वर्गणा जानना। शेष (पंचेन्द्रियके) पांच दंडक नारकोंके समान जानना, यावत् मिश्रदृष्टि वैमानिकों की एक वर्गणा है ।।७०।।

कृष्णपाक्षिक जीवोंकी वर्गणा एक है, शुक्लपाक्षिक जीवोंकी वर्गणा एक है।

कृष्णपाक्षिक नैरयिकोंकी……। शुक्लपाक्षिक नै०… । इसी प्रकार चौवीस दंडक कहने चाहिएँ ॥७१॥

कृष्णलेश्याकी वर्गणा एक है, नीललेश्या……, इसी प्रकार यावत् शुक्ललेश्या की वर्गणा एक है। कृष्णलेश्या वाले नैरयिकोंकी वर्गणा एक है, यावत् कापोत-लेश्यावाले नैरयिकोंकी वर्गणा एक है। इस प्रकार जिसके जितनी लेश्याएँ हैं, उन्हें कहते हैं—भवनपति, वाणव्यंतर, पृथ्वीकायिक, अपकायिक और वनस्पतिकायिकोंके पहली चार लेश्याएँ हैं। तेजस्कायिक, वायुकायिक, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिंद्रियोंके पहली तीन लेश्याएँ हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और मनुष्यों के छः लेश्याएँ हैं। ज्योतिष्कों के एक तेजोलेश्या है। वैमानिकों के ऊपर की तीन लेश्याएँ हैं। कृष्णलेश्या वाले भव्यसिद्धिकों की वर्गणा एक है। कृष्ण-लेश्या वाले अभव्यसिद्धिकों की वर्गणा एक है । इसी प्रकार छहों लेश्याओंमें दो-दो पद कहने चाहिएं । कृष्णलेश्या वाले भव्यसिद्धिक नैरयिकों को वर्गणा एक है। कृष्णलेश्या वाले अभव्यसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा-एक है। इसी प्रकार (जिस दंडक में) जिसके जितनी लेश्याएँ हों, उसके उतनी लेश्याएँ कहें। कृष्णलेश्या वाले सम्यग्दृष्टियों की वर्गणा एक है। कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टियों……। कृष्ण० मिश्रदृष्टियों … । इसी प्रकार छहों लेश्याओं में यावत् वैमानिक तक जिनके जितनी दृष्टियां हों, उतनी वर्गणा कहनी चाहिए। कृष्णलेश्या वाले कृष्णपाक्षिकों की वर्गणा एक है। कृष्णलेश्या वाले शुक्लपाक्षिकों ……। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक जिसके जितनी लेश्याएँ हैं उतनी पक्ष विशिष्ट एक २ वर्गणा कहें। ये आठ बोल ओघ इत्यादि चौवीसों दंडक द्वारा जानना ॥७२॥

तीर्थसिद्धोंकी वर्गणा एक है, इसी तरह यावत् एकसिद्धों की वर्गणा एक है। अनेकसिद्धों…… । प्रथमसमयसिद्धों…… । इसी प्रकार यावत् अनन्तसमय-सिद्धोंकी वर्गणा एक है ॥७३॥

परमाणु पुद्गलों की वर्गणा एक है इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशिक-स्कंधोंकी वर्गणा एक है। एकप्रदेशावगाढ (एक प्रदेशको अवगाहित कर रहे हुए) पुद्गलोंकी वर्गणा एक है। इसी प्रकार यावत् असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलोंकी वर्गणा एक है। एक समय की स्थितिवाले पुद्गलोंकी वर्गणा एक है। यावत् असंख्यात समय की……। एकगुण काले वर्ण वाले पुद्गलोंकी वर्गणा एक है यावत् असंख्यातगुण काले वर्ण वाले……। अनन्तगुण काले……। इसी प्रकार वर्णो, गंधों, रसों और स्पर्शोंकी वर्गणा कहें। यावत् अनंतगुण रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गलोंकी वर्गणा एक है। जघन्य प्रदेशिक स्कंधोंकी वर्गणा एक है। उत्कृष्ट प्रदेशिक स्कंधोंकी वर्गणा एक है। अजघन्य उत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशिक स्कंधों

की वर्गणा एक है। इस तरह जघन्य अवगाहना वाले स्कंधों की, उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कंधोंकी और मध्यम अवगाहना वाले स्कंधोंकी वर्गणा एक है। जघन्य स्थिति वाले, उत्कृष्ट स्थिति वाले और मध्यम स्थिति वाले स्कंधोंकी वर्गणा एक है। जघन्य गुण काले वर्ण वाले, उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले, और मध्यम गुण काले वर्ण वाले स्कंधोंकी वर्गणा एक है। इसी प्रकार यावत् वर्ण, गंध, रस और स्पर्शो की वर्गणा एक-एक कहें। यावत् मध्यमगुण रूखे स्पर्श वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है ॥७४॥

सर्व द्वीप और समुद्रोंके मध्यमें जंबूद्वीप नाम का द्वीप एक है यावत् सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन, तीन गाउ (कोस), दो सौ अट्ठाइस धनुष्य और साढ़े तेरह अंगुल कुछ अधिक परिधि वाला है ॥७५॥

श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी इस अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकरों में अंतिम तीर्थंकर अकेले सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सर्वदुःखसे रहित हुए ॥७६॥

अनुत्तर विमानके देवोंके शरीरकी ऊँचाई एक हाथकी कही है ॥७७॥

आद्रा नक्षत्र का तारा एक कहा है, चित्रा नक्षत्र ···, स्वाति नक्षत्र ··· ॥७८॥

एक प्रदेश को अवगाहित कर रहे हुए पुद्गल अनंत कहे हैं। इसी प्रकार एकसमयकी स्थिति वाले और एकगुण काले वर्ण वाले पुद्गल अनंत कहे हैं, यावत् एकगुण रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनंत कहे हैं ॥७९॥

॥ प्रथम स्थानक समाप्त ॥

द्वितीय स्थानक—प्रथम उद्देशक

जो इस लोकमें जीवादि वस्तुएं हैं, वे सब दो प्रकारकी हैं। जैसे कि—जीव और अजीव। त्रस और स्थावर, सयोनिक-संसारी, और अयोनिक-सिद्ध, आयुष्य-सहित और आयुष्यरहित, इन्द्रियसहित और अनिन्द्रिय (इन्द्रियरहित), वेद-सहित और वेदरहित, रूपी (आकारसहित) और अरूपी (निराकार), पुद्गल-सहित और पुद्गलरहित, संसारमें रहे हुए और न रहे हुए, शाश्वत और अशा-श्वत, इस प्रकार दो दो प्रकारके जीव हैं। आकाश और नोआकाश (अर्थात् धर्मास्तिकायादि पांच) दो हैं। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, बन्ध और मोक्ष, पुण्य और पाप, आस्रव और संवर, वेदना और निर्जरा दो हैं ॥८०॥

दो क्रियाएं कही हैं, जैसे कि–जीव क्रिया और अजीव क्रिया। जीव-क्रिया दो प्रकारकी कही गई है, वह इस प्रकार–सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया। अजीव क्रिया दोप्रकारकी कही है, तद्यथा–इर्यापथिकी और सांपरायिकी ॥८१॥

दो क्रियाएं कही हैं, वह इस प्रकार—कायिकी और अधिकरणकी। कायिकी क्रिया दो प्रकारकी कही है, जैसे कि अनुपरत (विराम न पाई हुई) कायक्रिया और दुष्प्रयुक्त कायक्रिया। अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारकी कही है, तद्यथा—संयोजनाधिकरणकी (शस्त्रादिकी योजना-तैयारी करना) और निर्वत्तनाधिकरणकी (तैयार करके रक्खे हुए) ॥८२॥

दो क्रियाएं ·····—प्राद्वेषिकी (विशेष द्वेष रूप) क्रिया और पारितापनिकी (संताप देना) क्रिया। प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकारकी·····—जीव प्राद्वेषिकी और अजीव प्राद्वेषिकी। पारितापनिकी क्रिया दो प्रकारकी···—स्वहस्त-पारितापनिकी क्रिया और परहस्तपारितापनिकी क्रिया ॥८३॥

दो क्रियाएं···—प्राणातिपात क्रिया और अप्रत्याख्यान क्रिया। प्राणातिपात क्रिया दो प्रकारकी···—स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया और परहस्तप्राणातिपात क्रिया। अप्रत्याख्यान क्रिया दो प्रकारकी···—जीव अप्रत्याख्यान क्रिया, और अजीव अप्रत्याख्यान क्रिया ॥८४॥

दो क्रियाएं···—आरंभिकी और पारिग्रहिकी। आरंभिकी क्रिया दो प्रकार की···—जीव आरंभिकी और अजीव आरंभिकी। इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया भी दो प्रकार···—जीव पारिग्रहिकी और अजीव पारिग्रहिकी ॥८५॥

दो क्रियाएं···—माया प्रत्ययिकी और मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी। माया प्रत्ययिकी दो प्रकारकी···—आत्मभाववंकनता (ठगना) और परभाववंकनता। मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी दो प्रकारकी···—ऊनातिरिक्त० (कम अथवा अधिक कहना) और तद्व्यतिरिक्त (विपरीत-आत्मादि नहीं ऐसा कथन) मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी ॥८६॥

दो क्रियाएं···—दृष्टिकी और पृष्टिकी। दृष्टिकी दो प्रकारकी···—जीव दृष्टिकी और अजीव दृष्टिकी। इसी प्रकार पृष्टिकी (स्पर्श करना) भी ॥८७॥

दो क्रियाएं···—प्रातीत्यिकी (बाह्यके आश्रयसे होने वाली) और सामंतोपनिपातिकी (बहुतसे मनुष्योंकी प्रशंसा आदिसे होने वाली)। प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकारकी···—जीवप्रातीत्यिकी और अजीवप्रातीत्यिकी। इसी प्रकार सामंतोपनिपातिकी भी ॥८८॥

दो क्रियाएं···—स्वहस्तिकी और नैसृष्टिकी (फेंकनेसे होने वाली)। स्वहस्तिकी दो प्रकारकी···—जीव स्वहस्तिकी और अजीव ० इसी प्रकार नैसृष्टिकी भी ॥८९॥

दो क्रियाएं···—आज्ञापनिकी (आज्ञा करनेसे होने वाली) और वैदारिणी

(चीरनेसे होने वाली) क्रिया। इन दोनों क्रियाओंके दो २ भेद नैसृष्टिकी क्रिया के समान जानना ॥६०॥

दो क्रियाएं···—अनाभोग प्रत्ययिकी और अनवकांक्षा प्रत्ययिकी (बेदरकारीसे होने वाली)। अनाभोग प्रत्ययिकी क्रिया दो प्रकारकी···—अनुपयुक्त (उपयोगशून्यतासे) आदानता (ग्रहण करना) और अनुपयुक्त प्रमार्जनता। अनवकांक्षाप्रत्ययिकी दो प्रकारकी·····—आत्म (स्व)शरीर अनवकाँक्षाप्रत्ययिकी और परशरीर अनवकांक्षाप्रत्ययिकी ।।६१।।

दो क्रियाएं···—प्रेमप्रत्ययिकी और द्वेपप्रत्ययिकी। प्रेमप्रत्ययिकी क्रिया दो प्रकारकी···—माया प्रत्ययिकी और लोभ प्रत्ययिकी। द्वेप ० दो प्रकारकी ···—क्रोधप्रत्ययिकी और मान प्रत्ययिकी ॥६२॥

दो प्रकारकी गर्हा कही है, वह इस प्रकार—कितनेक मनके द्वारा ही गर्हा करते हैं और कितनेक वचन द्वारा गर्हा करते हैं। अथवा गर्हा दो प्रकार की कही है—कितनेक चिरकाल तक गर्हा करते हैं और कितनेक अल्पकाल पर्यन्त गर्हा करते हैं ॥६३॥

दो प्रकारका प्रत्याख्यान कहा है, जैसे कि—एक मनसे भी प्रत्याख्यान करता है, एक वचन द्वारा भी प्रत्याख्यान करता है। अथवा पच्चक्खाण दो प्रकारका कहा है, तद्यथा—एक दीर्घकाल पर्यन्त भी पच्चक्खाण करता है, एक अल्पकाल पर्यन्त भी पच्चक्खाण करता है ।।६४।।

दो स्थानकों (गुणों) से युक्त अनगार अनादिकालविशिष्ट, अन्तरहित दीर्घकाल नरकादि चार गति रूप संसाराटवीको पार करता है, वह इस प्रकार —विद्या (ज्ञान) द्वारा और चरित्र द्वारा ही ।।६५।।

दो स्थानोंको ज्ञपरिज्ञा द्वारा जाने विना और प्रत्याख्यानपरिज्ञाके द्वार त्याग किए विना आत्मा केवली प्ररूपित धर्मको नहीं सुन सकता, जैसे कि— आरंभ और परिग्रह। दो स्थानोंको······बिना आत्मा शुद्ध बोधि (सम्यक्त्व) प्राप्त नहीं कर सकता···परिग्रह। दो स्थानों···बिना आत्मा द्रव्यभावसे मुण्डित होकर घरवार छोड़कर दीक्षा अंगीकार नहीं कर सकता,···परिग्रह। इसी प्रकार शुद्ध ब्रह्मचर्यवासमें रहे नहीं, शुद्ध संयमके द्वारा आत्माका संयम करे नहीं (आत्माको काबूमें रक्खे नहीं), शुद्ध संवर द्वारा आश्रव द्वारोंका संवर न करे, परिपूर्ण मतिज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता, इसी प्रकार श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः-पर्यवज्ञान और केवलज्ञान उत्पन्न ·········।।६६।।

दो स्थानोंके स्वरूपको भली भांति समझकर (उपलक्षणसे छोड़कर) आत्मा केवली भाषित धर्मको सुन सकता है, वह इस प्रकार—आरंभ और परिग्रह को, इसी प्रकार यावत् केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है ॥६७॥

दो स्थानोंके द्वारा आत्मा.........—सुनकर और जानकर। इसी प्रकार यावत् केवलज्ञान .... ॥९८॥

दो समा-कालविशेष कहे हैं, जैसे कि—अवसर्पिणी-उतरता काल और उत्सर्पिणी-चढ़ता काल ॥९९॥

दो प्रकार के उन्माद कहे हैं, वे इस प्रकार—यक्षावेश (देवके आवेश रूप) और मोहनीय कर्मके उदयद्वारा होने वाला उन्माद। उनमें जो यक्षावेश है वह सुखपूर्वक भोगा और छोड़ा जा सकता है, परन्तु जो उन्माद मोहनीय कर्मके उदयसे होता है, वह दुखपूर्वक भोगा और दूर किया जा सकता है ॥१००॥

दो दंड (प्राणातिपातादि) कहे हैं, जैसे कि—अर्थदण्ड और अनर्थदंड। नैरयिकों के दो दंड कहे हैं, तद्यथा—अर्थ दंड और अनर्थ दंड। इसी प्रकार २४ दंडक में यावत् वैमानिकों के दो दंडक कहे हैं ॥१०१॥

दो प्रकारका दर्शन कहा है वह इस प्रकार—सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन। सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा है, जैसे कि—निसर्ग (सहज) सम्यग्दर्शन और अभिगम (उपदेश से होने वाला) सम्यग्दर्शन। निसर्ग सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है, तद्यथा—प्रतिपाति और अप्रतिपाति। अभिगम सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है, वह इस प्रकार—प्रतिपाति और अप्रतिपाति। मिथ्यादर्शन दो प्रकारका है, जैसे कि—अभिग्रहिक (मिथ्यामत आग्रह) मिथ्यादर्शन और अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन। अभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकारका है, तद्यथा—सपर्यवसित (अंतसहित) और अपर्यवसित (अंतरहित) इसी प्रकार अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन भी दो प्रकारका जानना ॥१०२॥

दो प्रकार का ज्ञान कहा है, वह इस प्रकार-प्रत्यक्ष ज्ञान और परोक्षज्ञान। प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारका कहा है, जैसे कि—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान। केवलज्ञान दो प्रकारका कहा है, तद्यथा—भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान। भवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार सयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अयोगि०। सयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकारका कहा है, जैसे कि—प्रथमसमयसयोगि० और अप्रथमसमय०। अथवा चरमसमय० और अचरम०। इसी प्रकार अयोगिभवस्थकेवलज्ञानके भी दो भेद जानने। सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकारका कहा है, तद्यथा—अनंतर (अन्तर रहित) सिद्धकेवलज्ञान और परंपरसिद्धकेवलज्ञान। परंपर सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है, वह यह—एक परंपरसिद्धकेवलज्ञान और अनेक०। नोकेवलज्ञान दो प्रकारका कहा है, वह इस प्रकार—अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान। अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा है, वह यह—भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक। भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान दो को होता है, जैसे

कि—देवोंको और नैरयिकों को। क्षायोपशमिक अवधिज्ञान दो को होता है, तद्यथा—मनुष्योंको और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों को। मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार—ऋजुमति और विपुलमति। परोक्षज्ञान दो प्रकार का कहा है, जैसे कि—आभिनिवोधिक (मति) ज्ञान और श्रुतज्ञान। आभिनिवोधिक ज्ञान दो प्रकार का कहा है, वह यह—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित। श्रुतनिश्रित मतिज्ञान दो प्रकारका कहा है, तद्यथा—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। अश्रुतनिश्रित मतिज्ञानके भी इसी प्रकार दो भेद जानने। श्रुतज्ञान दो प्रकारका कहा है, वह इस प्रकार—अंगप्रविष्ट और अंगवाह्य। अंगवाह्यश्रुत दो प्रकार का कहा है, जैसे कि—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त। आवश्यकव्यतिरिक्त-श्रुत दो प्रकारका है, तद्यथा-कालिक और उत्कालिक ॥१०३॥

दो प्रकारका धर्म कहा है, वह इस प्रकार-श्रुतधर्म और चरित्रधर्म। श्रुतधर्म दो प्रकार का कहा है, जैसे कि—सूत्रश्रुतधर्म और अर्थश्रुतधर्म। चरित्र-धर्म दो प्रकारका कहा है,तद्यथा—अगार(गृहस्थ)चरित्रधर्म और अनगार(साधु) चरित्रधर्म। दो प्रकारका संयम कहा है,...—सरागसंयम और वीतरागसंयम। सरागसंयम दो प्रकार का कहा है, वह ऐसे—सूक्ष्मसंपरायसरागसंयम और वादरसं०। सूक्ष्मसंपरायसरागसंयम दो प्रकार का कहा है, जैसे कि—प्रथम-समयसूक्ष्म० और अप्रथम०। अथवा चरमसमय० और अचरम०। अथवा सूक्ष्म-संपरायसरागसंयम दो प्रकार का कहा है, तद्यथा—संक्लेशपरिणामवाला० और विशुद्धपरिणामवाला०। वादरसंपरायसरागसंयम दो प्रकारका कहा है, वह इस प्रकार—प्रथमसमयवादर० और अप्रथम०। अथवा चरमसमय० और अचरम०। अथवा वादर संपरायसरागसंयम दो प्रकारका कहा है, जैसे कि—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। वीतरागसंयम दो प्रकारका कहा है, तद्यथा—उपशांतकपायवीतरागसंयम और क्षीणकपाय०। उपशांतकपायवीतरागसंयम दो प्रकारका कहा है, वह इस प्रकार—प्रथमसमय० और अप्रथम०। अथवा चरम-समय० और अचरम०। क्षीणकपायवीतरागसंयम दो प्रकारका कहा है,जैसे कि—छद्मस्थक्षीणकषाय और वुद्धवोधित०। स्वयंवुद्ध० वीतरागसंयम और केवली०। छद्मस्थ० दो प्रकारका कहा है,तद्यथा—स्वयंवुद्ध० और वुद्धवोधित०। स्वयंवुद्ध०दो प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार—प्रथमसमय० और अप्रथमसमय०। अथवा चरम० और अचरम०। वुद्धवोधित० दो प्रकारका कहा है, जैसे कि—प्रथमसमय० और अप्रथम० अथवा चरमसमय०और अचरम०। केवलीक्षीणकपायवीतरागसंयम दो प्रकारका कहा है, तद्यथा—सयोगी० और अयोगी०। सयोगी० के दो भेद हैं—प्रथम० और अप्रथमसमय० अथवा चरम० और अचरम०। अयोगी० के दो भेद हैं—प्रथम० और अप्रथम० अथवा चरम० और अचरमसमयअयोगीकेवलीक्षीण-कपायवीतरागसंयम ॥१०४॥

पृथ्वीकायिक दो प्रकारके कहे हैं, वह इस प्रकार—सूक्ष्म और वादर। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक के दो भेद कहे हैं, वे ये—सूक्ष्म और वादर। पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे हैं, जैसे कि—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक जानना। पृथ्वीकायिक……—परिणत (अचित्त) और अपरिणत (सचित्त)। इसी प्रकार यावत् वन० तक जानना। दो प्रकारके द्रव्य कहे हैं, वे ये—परिणत (अपेक्षित अन्य परिणामको प्राप्त) और अपरिणत। पृथ्वीकायिक……—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक। इसी प्रकार यावत् वन०……। पृथ्वीकायिक……—अनंतरावगाढ और परंपरावगाढ। इसी प्रकार यावत् द्रव्य तक जानना ॥१०५॥

दो प्रकारका काल कहा है, वह इस प्रकार—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल ॥१०६॥ आकाश दो प्रकार का कहा है, जैसे कि—लोकाकाश और अलोकाकाश ॥१०७॥

नैरयिकों के दो शरीर कहे हैं, तद्यथा—अभ्यंतर शरीर और बाह्य शरीर। अभ्यंतर—कार्मण और बाह्य—वैक्रिय शरीर। इसी प्रकार देवोंके भी दो शरीर जानने। पृथ्वीकायिकोंके दो शरीर कहे हैं, वे ये—अभ्यंतर और बाह्य। अभ्यंतर अर्थात् कार्मण शरीर और बाह्य अर्थात् औदारिक शरीर। यावत् वनस्पतिकायिकोंके दो शरीर जानना। बेइंद्रियोंके दो शरीर कहे हैं, जैसे कि—अ०और बाह्य। अभ्यंतर–कार्मण शरीर,बाह्य–अस्थि (हड्डी),मांस और रुधिर-द्वारा जुड़ा हुआ, औदारिक शरीर; इसी प्रकार यावत् चतुरिंद्रियोंके दो शरीर जानना। पंचेंद्रियतिर्यंचयोनिकों के दो शरीर कहे हैं, तद्यथा—अभ्यंतर और बाह्य। अभ्यंतर—कार्मण और बाह्य—अस्थि, मांस, शोणित, स्नायु (नाड़ी), शिरा (नसों) से जुड़ा हुआ औदारिक शरीर। मनुष्योंके भी इसी प्रकार दो शरीर जानने। विग्रह (वक्र) गतिको प्राप्त हुए नैरयिकोंके दो शरीर कहे हैं, वे ये—तैजस और कार्मण। इसी प्रकार अंतररहित (सर्व दंडकोंमें) यावत् वैमानिकोंके दो शरीर जानना। नैरयिकोंकी शरीरोत्पत्ति (प्रारम्भ) दो कारणों से होती है, जैसे कि—राग और द्वेष से। यावत् वैमानिकों तक इसी प्रकार जानना। नैरयिकोंकी शरीर निर्वर्तना-परिपूर्णता दो कारणोंसे होती है, वह इस प्रकार—राग द्वारा निर्वर्तना और द्वेष द्वारा निर्वर्तना यावत् वै०……॥१०८॥

दो काय (राशि) कही हैं, वे ये—त्रसकाय और स्थावरकाय। त्रसकाय के दो भेद हैं, जैसे कि—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक। इसी प्रकार स्थावर-कायके भी दो भेद जानना ॥१०९॥

दो दिशाओंमें निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियोंको दीक्षा देना कल्पता है–पूर्व दिशा में और उत्तर दिशा में। इसी प्रकार लोच करने के लिए, शिक्षा देने (सिखाने) के

लिए, उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) के लिये, साथ भोजन करानेके लिए, साथ रहनेके लिए, स्वाध्याय के उद्देश के लिए, स्वा० समुद्देश०, स्वा० की अनुज्ञा के लिए, आलोचना करने के लिए, प्रतिक्रमण०, अतिचार की निंदा करनेके लिए, गर्हा करने के लिए, छेद प्रायश्चित देनेके लिए, विशुद्धि करने के लिए, फिर न करने की प्रतिज्ञा करनेके लिए, यथायोग्य प्रायश्चित्त (तपकर्म) स्वीकार करने के लिए पूर्व और उत्तर दिशाका प्रयोग करना चाहिए। दो दिशाओंके सन्मुख रहकर अपश्चिम मारणांतिक संलेखनाकी आराधना करने वाले, भक्त (आहार) पान का प्रत्याख्यान करने वाले तथा पादपोपगत साधु-साध्वियोंको विचरना कल्पता है—पूर्व और उत्तर ॥११०॥

॥ दूसरे स्थानका पहला उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय स्थानक द्वितीय उद्देशक

जो देव ऊर्ध्वलोकमें उत्पन्न हुए हैं, वे दो प्रकारके हैं—कल्पोपपन्नक—सौधर्मादि देवलोकमें उत्पन्न हुए और विमानोपपन्नक—ग्रैवेयकादिमें उत्पन्न हुए। चारोपपन्नक-ज्योतिष्क, उनके भी दो भेद हैं—चार स्थितिक-स्थिर ज्योतिष्क, वे अढ़ाई द्वीपसे बाहर हैं, गतिरतिक-गति समापन्नक जो अढ़ाई द्वीपमें रहे हुए हैं। उन देवों के द्वारा निरंतर जो पापकर्म किया जाता है—बांधा जाता है, उस पापके फलको देवभवमें रहते हुए ही कितनेक देवता भोगते हैं; और कितनेक पापके फलको भवांतर में वेदते हैं। नैरयिकों के द्वारा निरंतर······· को वहाँ रहते हुए ही कितनेक नारकी भोगते हैं, और कितनेक ··· वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रियतिर्यंच तक जानना। मनुष्योंके द्वारा सदा निरंतर जो पापकर्म बांधा जाता है, उस पापके फलको यहाँ रहते हुए ही कितनेक मनुष्य भोगते हैं, और कितनेक भवांतर में भी पाप कर्मके फलको भोगते हैं। मनुष्यको छोड़कर शेष एक अभिलाप (समान पाठ) वाले हैं ॥१११॥

नैरयिक दो गतिमें जाने वाले और दो गतियोंसे आने वाले कहे गए हैं, वह इस प्रकार—नैरयिक१ नैरयिकोंमें उत्पन्न होता हुआ मनुष्योंमें से अथवा पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकोंमें से उत्पन्न हो। और नैरयिक-नैरयिकत्वको छोड़कर मनुष्य अथवा पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक में जाय। इसी प्रकार असुरकुमार भी जानें। विशेष कहते हैं—वही असुरकुमार, असुरकुमारत्वका त्याग करता हुआ

---

१. नरकायु के उदयवाला। इसी प्रकार ऋजुसूत्रनयानुसार प्रत्येक में समझना।

मनुष्य अथवा तिर्यचयोनिक में जाय। इसी प्रकार सर्व देव जानने। पृथ्वीकायिक दो गतिमें जाने वाले और दो गतियोंसे आने वाले कहे हैं, जैसे कि— पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकोंमें उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकायिकोंमें से अथवा नोपृथ्वीकायिक (तद्भिन्न) में से उत्पन्न हो। और वही पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकपनेको छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिक अथवा नोपृथ्वीकायिकमें जाय। इसी प्रकार यावत् मनुष्य जानने ॥११२॥

दो प्रकारके नैरयिक कहे हैं, वह इस प्रकार—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, यावत् वैमानिक पर्यंत दो २ भेद जानें। दो प्रकार के नै०.........— अनन्तरोपपन्नक और परंपरोपपन्नक, यावत् वैमानिक.........। दो प्र०के नै०......... गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक, यावत् वै०.........। दो प्र० के नै०......... प्रथमसमयोपपन्नक और अप्रथमसमयोपपन्नक, या० वै०.........। (विग्रह गति वाले) दो प्र० के नै०.........—आहारक और अनाहारक, इसी प्रकार या० वै०......... ....। दो प्र० के नै०.........—उच्छ्वासक और नोउच्छ्वासक (उच्छ्वास-पर्याप्ति से अपर्याप्ता), या० वै०......... । दो प्र० के नै०.........—सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) और अनिंद्रिय (इन्द्रिय पर्याप्तिसे अपर्याप्तक), या० वै०.........। दो प्र० के नै०.........—पर्याप्तक और अपर्याप्तक, या० वै०.........। दो प्र० के नै०.........—संज्ञी और असंज्ञी, इसी प्रकार (एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियको छोड़कर) सर्व पंचेंद्रिय यावत् व्यंतर[1] (वैमानिक) तक दंडकोंमें दो २ भेद जानने।

दो प्र० के नै०...—भाषक और अभाषक, इसी प्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर सभी दंडकोंमें दो २ भेद जानने। दो प्र० के नै०...—सम्यग्दृष्टिक और मिथ्यादृष्टिक, इसी प्रकार एकेन्द्रिय.........। दो प्र० के नै०...—परित्तसंसारिक और अनन्तसंसारिक, यावत् वैमानिक तक दो २ भेद जानना। दो प्र० के नै०...— संख्यातकाल समयकी स्थिति वाले और असंख्यातकाल समयकी स्थिति वाले, इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय छोड़ कर पंचेन्द्रिय यावत् व्यंतर पर्यन्त दो २ भेद जानने। दो प्र० के नै०...—सुलभबोधिक और दुर्लभबोधिक यावत् वैमानिक पर्यन्त दो २ भेद जानने। दो प्र० के नै०...—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक, यावत् वै०.........। दो प्र० के नै०...—चरम-अन्तिम (नरकके भवकी अपेक्षासे) भव वाला और अचरम, यावत् वै०......... ॥११३॥

दो कारणोंसे आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है, वह इस प्रकार-समुद्घात करनेके स्वभाव द्वारा आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है, समुद्घात न

१. व्यंतर पर्यंत दंडकमें संज्ञी और असंज्ञी दोनों जाते हैं, उसकी अपेक्षा से असंज्ञीपना होता है। परन्तु ज्योतिष्क और वैमानिकमें नहीं। यहाँ वैमानिक में मनःपर्याप्ति द्वारा जब तक अपर्याप्त होता है तब तक असंज्ञी गिना है।

लिए, उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) के लिये, साथ भोजन करानेके लिए, साथ रहनेके लिए, स्वाध्याय के उद्देश के लिए, स्वा० समुद्देश०, स्वा० की अनुज्ञा के लिए, आलोचना करने के लिए, प्रतिक्रमण०, अतिचार की निंदा करनेके लिए, गर्हा करने के लिए, छेद प्रायश्चित देनेके लिए, विशुद्धि करने के लिए, फिर न करने की प्रतिज्ञा करनेके लिए, यथायोग्य प्रायश्चित्त (तपकर्म) स्वीकार करने के लिए पूर्व और उत्तर दिशाका प्रयोग करना चाहिए। दो दिशाओंके सन्मुख रहकर अपश्चिम मारणांतिक संलेखनाकी आराधना करने वाले, भक्त (आहार) पान का प्रत्याख्यान करने वाले तथा पादपोपगत साधु-साध्वियोंको विचरना कल्पता है—पूर्व और उत्तर ॥११०॥

॥ दूसरे स्थानका पहला उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय स्थानक द्वितीय उद्देशक

जो देव ऊर्ध्वलोकमें उत्पन्न हुए हैं, वे दो प्रकारके हैं—कल्पोपपन्नक—सौधर्मादि देवलोकमें उत्पन्न हुए और विमानोपपन्नक—ग्रैवेयकादिमें उत्पन्न हुए। चारोपपन्नक-ज्योतिष्क, उनके भी दो भेद हैं—चार स्थितिक-स्थिर ज्योतिष्क, वे अढ़ाई द्वीपसे बाहर हैं, गतिरतिक-गति समापन्नक जो अढ़ाई द्वीपमें रहे हुए हैं। उन देवों के द्वारा निरंतर जो पापकर्म किया जाता है—बांधा जाता है, उस पापके फलको देवभवमें रहते हुए ही कितनेक देवता भोगते हैं, और कितनेक पापके फलको भवांतर में वेदते हैं। नैरयिकों के द्वारा निरंतर.......को वहाँ रहते हुए ही कितनेक नारकी भोगते हैं, और कितनेक ... वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रियतिर्यंच तक जानना। मनुष्योंके द्वारा सदा निरंतर जो पापकर्म बांधा जाता है, उस पापके फलको यहाँ रहते हुए ही कितनेक मनुष्य भोगते हैं, और कितनेक भवांतर में भी पाप कर्मके फलको भोगते हैं। मनुष्यको छोड़कर शेप एक अभिलाप (समान पाठ) वाले हैं ॥१११॥

नैरयिक दो गतिमें जाने वाले और दो गतियोंसे आने वाले कहे गए हैं, वह इस प्रकार—नैरयिक[१] नैरयिकोंमें उत्पन्न होता हुआ मनुष्योंमें से अथवा पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकोंमें से उत्पन्न हो। और नैरयिक-नैरयिकत्वको छोड़कर मनुष्य अथवा पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक में जाय। इसी प्रकार असुरकुमार भी जानें। विशेष कहते हैं—वही असुरकुमार, असुरकुमारत्वका त्याग करता हुआ

---

१. नरकायु के उदयवाला। इसी प्रकार ऋजुसूत्रनयानुसार प्रत्येक दण्डक में समझना।

मनुष्य अथवा तिर्यंचयोनिक में जाय। इसी प्रकार सर्व देव जानने। पृथ्वीकायिक दो गतिमें जाने वाले और दो गतियोंसे आने वाले कहे हैं, जैसे कि—पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकोंमें उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकायिकोंमें से अथवा नोपृथ्वीकायिक (तद्भिन्न) में से उत्पन्न हो। और वही पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकपनेको छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिक अथवा नोपृथ्वीकायिकमें जाय। इसी प्रकार यावत् मनुष्य जानने ॥११२॥

दो प्रकारके नैरयिक कहे हैं, वह इस प्रकार—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, यावत् वैमानिक पर्यंत दो २ भेद जानें। दो प्रकार के नै०·········—अनन्तरोपपन्नक और परंपरोपपन्नक, यावत् वैमानिक·········। दो प्र०के नै०·········गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक, यावत् वै०·········। दो प्र० के नै०·········प्रथमसमयोपपन्नक और अप्रथमसमयोपपन्नक, या० वै०·········। (विग्रह गति वाले) दो प्र० के नै०·········—आहारक और अनाहारक, इसी प्रकार या० वै०··············। दो प्र० के नै०·········—उच्छ्वासक और नोउच्छ्वासक (उच्छ्वास-पर्याप्ति से अपर्याप्ता), या० वै०·····। दो प्र० के नै०·········—सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) और अनिंद्रिय (इन्द्रिय पर्याप्तिसे अपर्याप्तक), या० वै०·········। दो प्र० के नै०·········—पर्याप्तक और अपर्याप्तक, या० वै०·········। दो प्र० के नै०·········—संज्ञी और असंज्ञी, इसी प्रकार (एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियको छोड़कर) सर्व पंचेंद्रिय यावत् व्यंतर[1] (वैमानिक) तक दंडकोंमें दो २ भेद जानने।

दो प्र० के नै०···—भाषक और अभाषक, इसी प्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर सभी दंडकोंमें दो २ भेद जानने। दो प्र० के नै०···—सम्यग्दृष्टिक और मिथ्यादृष्टिक, इसी प्रकार एकेन्द्रिय·········। दो प्र० के नै०···—परित्तसंसारिक और अनन्तसंसारिक, यावत् वैमानिक तक दो २ भेद जानना। दो प्र० के नै०···—संख्यातकाल समयकी स्थिति वाले और असंख्यातकाल समयकी स्थिति वाले, इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय छोड़ कर पंचेन्द्रिय यावत् व्यंतर पर्यन्त दो २ भेद जानने। दो प्र० के नै०···—सुलभबोधिक और दुर्लभबोधिक यावत् वैमानिक पर्यन्त दो २ भेद जानने। दो प्र० के नै०···—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक, यावत् वै०·········। दो प्र० के नै०···—चरम-अन्तिम (नरकके भवकी अपेक्षासे) भव वाला और अचरम, यावत् नै०········· ॥११३॥

दो कारणोंसे आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है, वह इस प्रकार-समुद्घात करनेके स्वभाव द्वारा आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है, समुद्घात न

१. व्यंतर पर्यंत दंडकमें संज्ञी और असंज्ञी दोनों जाते हैं, उसकी अपेक्षा से असंज्ञीपना होता है। परन्तु ज्योतिष्क और वैमानिकमें नहीं। यहाँ वैमानिक में मनःपर्याप्ति द्वारा जब तक अपर्याप्त होता है तब तक असंज्ञी गिना है।

करनेके स्वभाव द्वारा आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है। इसी प्रकार तिर्यग्-लोकको, ऊर्ध्वलोकको, और परिपूर्ण चौदह राजूलोकको जानता-देखता हैं। दो कारणोंसे आत्मा··· देखता है, जैसे कि—किए हुए वैक्रिय शरीर रूप स्वभाव द्वारा आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है। न किए हुए वैक्रिय·········है। यथावधिज्ञानीकृत वैक्रिय शरीर और अकृत वैक्रिय शरीर रूप स्वभाव द्वारा आत्मा अधोलोकको जानता-देखता है। इसी प्रकार तिर्यग्०·········है ॥११४॥

दो स्थानोंके द्वारा आत्मा शब्दोंको सुनता है, वह इस प्रकार—देशसे आत्मा शब्दोंको सुनता है और सर्वसे आत्मा शब्दोंको सुनता है। इसी प्रकार देशसे और सर्वसे रूपोंको देखता है, गंधोंको सूंघता है, रसोंका आस्वादन करता है, और स्पर्शोंका अनुभव करता है। दो स्थानोंसे आत्मा दीप्त (प्रकाशित) होता है, वह इस प्रकार—देशसे, सर्वसे। इसी प्रकार आत्मा देशसे और सर्वसे विशेष दीप्त होता है, विकुर्वणा करता है, परिचारणा (मैथुन) सेवन करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, परिणमित करता है, अनुभव करता है, और निर्जरा करता है। दो स्थानोंके द्वारा देव शब्दोंको सुनता है, वह इस प्रकार—देशसे और सर्व-से। यावत् निर्जरा करता है ॥११५॥

मरुत (लोकान्तिक देव विशेष) देव दो प्रकारके कहे हैं, जैसे कि—एक (कार्मण) शरीर वाले और दो (कार्मण और वैक्रिय) शरीर वाले। इसी प्रकार किन्नर, किंपुरुप, गंधर्व, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार दो २ प्रकारके हैं। देव दो प्रकारके कहे हैं, वह इस प्रकार—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले ॥११६॥

॥ दूसरे स्थानका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय स्थानक—तृतीय उद्देशक

शब्द दो प्रकारके हैं, जैसे कि—भाषाशब्द-तालु और जिह्वादिके सम्बन्धसे बोला जाने वाला और नोभाषाशब्द। भाषाशब्द दो प्रकारका है, यथा—अक्षरसंबद्ध और नोअक्षरसंबद्ध। नोभाषाशब्द दो प्रकारका कहा गया है, वह इस प्रकार—आतोद्य-ताड़न करनेसे होने वाले शब्द और नोआतोद्य-ताड़न-रहित शब्द। आतोद्य शब्द दो प्रकारका है, जैसे कि—तत (वीणा) वगैरहका और वितत—चमड़ेसे मढ़े हुए और तंत्रीरहितका। तत भी दो प्रकारका है, यथा—घन और सुपिर-पोला। इसी प्रकार वितत भी दो प्रकारका है। नोआतोद्य शब्द दो प्रकारका है, जैसे कि—भूषण शब्द—झांझ वगैरह आभूषणका शब्द और नो-भूषण शब्द-भूषणसे भिन्न वस्तुका। नोभूषण शब्द दो प्रकारका है, जैसे—ताल-

जन्य शब्द-हाथकी तालीसे होने वाला और लत्ति (कांसीका) शब्द। दो कारणों से शब्दोंकी उत्पत्ति होती है, जैसे कि—इकट्ठे होते हुए अथवा ताड़ना प्राप्त पुद्गलोंसे शब्दोंकी उत्पत्ति हो और भेदन प्राप्त—चीरे जाते हुए पुद्गलोंसे शब्दों की उत्पत्ति हो ॥११७॥

दो कारणोंसे पुद्गल एकत्र होते हैं-बन्धते हैं, वह इस प्रकार—अपने आप विस्रसा-स्वभाव द्वारा पुद्गल बंधते हैं, अथवा पर-दूसरे (प्रयोग) द्वारा पुद्गल बंधते हैं। इसी प्रकार दो कारणोंसे पुद्गल अलग होते हैं, सड़ते हैं, गिरते हैं, नष्ट होते हैं ॥११८॥

पुद्गल दो प्रकारके कहे गए हैं, यथा भिन्न (अलग हुए) और अभिन्न। पुद्गल……अपने आप भेदनको प्राप्त हों, ऐसे स्वभाव वाले और अभेद्य स्वभाव वाले। पुद्गल …—परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल (स्कन्ध)। पु०…—सूक्ष्म पुद्गल चार स्पर्श वाले और बादर पुद्गल आठ स्पर्श वाले। पु०…—अच्छी तरह मजबूत बंधे हुए और मात्र स्पर्श किए हुए। पु०……—पर्यायातीत—पूर्व पर्याय छोड़े हुए और अपर्यायातीत। पु०……—जीवोंके द्वारा परिग्रह-रूपमें स्वीकृत(अत्ता) और अस्वीकृत।……इष्ट और अनिष्ट। इसी प्रकार कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनको प्रिय लगने वाले और उनसे विपरीत अकान्त वगैरह जानें। दो प्रकारके शब्द कहे गए हैं—जीवके द्वारा ग्रहण किए गए और अगृहीत। इसी प्रकार इष्ट कान्त वगैरह शब्द यावत् मनाम पर्यन्त प्रतिपक्ष अनिष्ट आदि सहित जानें। दो प्रकारके रूप कहे गए हैं, यथा—जीव द्वारा गृहीत और अगृहीत। इसी प्रकार मनाम तक दो २ भेद जानें। इसी प्रकार गंध, रस और स्पर्शके दो २ भेद जानें। इसी प्रकार एक २ में छ आलापक कहने ॥११९॥

आचार दो प्रकारका है, जैसे कि—ज्ञानाचार और नोज्ञानाचार। नो-ज्ञानाचार दो…—दर्शनाचार और नोदर्शनाचार। नोदर्शनाचार…—चरित्राचार और नोचरित्राचार। नोचरित्राचार…—तपाचार और वीर्याचार ॥१२०॥

दो प्रतिमाएं (प्रतिज्ञाएं) कही गई हैं, जैसे कि—समाधिप्रतिमा और उपधानप्रतिमा (तप विशेष)। दो प्रतिमाएं…—विवेकप्रतिमा और कायोत्सर्गप्रतिमा। दो प्रतिमाएं…—भद्रा० और सुभद्रा०। दो प्र०……—महाभद्रा० और सर्वतोभद्रा०। दो प्र०……— लघुमोक० और वड़ी मोक०। दो प्र०…—यवमध्यचंद्रप्रतिमा और वज्रमध्यचंद्रप्रतिमा ॥१२१॥

दो प्रकारकी सामायिक कही है, यथा—गृहस्थकी सामायिक—देशविरति-रूप और साधुकी सामायिक—सर्वविरतिरूप ॥१२२॥

दो प्रकारके जीवोंका उपपात कहा गया है, जैसे कि—देवोंका और नारकियोंका। दो प्र० ······की उद्वर्त्तना कही है, यथा—नैरयिकोंकी और भवनवासियोंकी। दो प्र० ··का च्यवन कहा है, जैसे कि—ज्योतिष्कोंका और वैमानिकोंका। दो ···की गर्भमें व्युत्क्रान्ति (उत्पत्ति) कही गई है, यथा—मनुष्योंकी और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंकी। दो प्रकारके गर्भस्थोंकी वृद्धि कही है, जैसे कि—मनुष्योंकी और पंचेन्द्रियतिर्यचकोंकी। इसी प्रकार निर्वृद्धि-शरीरकी हानि, विकुर्वणा, गतिपर्याय, समुद्घात, कालकृत (गर्भकी) अवस्था, जन्म एवं मरण जानना। दो के चमड़ी वाले संधिके बंधन कहे हैं, जैसे कि—मनुष्यों और पंचेन्द्रियतिर्यचोंके। दो शुक्र (वीर्य) और शोणित (रुधिर) द्वारा उत्पन्न होने वाले कहे गए हैं, यथा—मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यंच। दो प्रकारकी (जीवकी) स्थिति कही है, वह इस प्रकार-कायस्थिति और भवस्थिति। दो की कायस्थिति कही गई है, यथा—मनुष्योंकी और पंचेन्द्रियतिर्यचोंकी। दो की भवस्थिति··—देवोंकी और नारकोंकी। दो प्रकारका आयुष्य कहा है, यथा—कालप्रधान आयुष्य और भावप्रधान०। दो का अद्धायु कालप्रधान आयुष्य कहा है, जैसे कि—मनुष्योंका और पंचेन्द्रियतिर्यचोंका। दो का भवप्रधान···—देवोंका और नारकोंका। दो प्रकारका कर्म कहा है, यथा—प्रदेशकर्म और अनुभवकर्म। दो यथायु निरुपक्रमी कहे हैं, जैसे कि—देव और नारकी। दो का आयुष्य संवर्त्तक-उपक्रम वाला कहा है०—मनुष्योंका और पंचेन्द्रियतिर्यंचोंका ॥१२३॥

जम्बूद्वीप नामके द्वीपके मध्यमें मेरुपर्वतकी उत्तर और दक्षिण दिशामें दो वर्ष (क्षेत्र) कहे गए हैं, यथा—अत्यन्त समतुल्य और अविशेष समान; नानात्वसे रहित हैं और एक दूसरेका उल्लंघन नहीं करते (उसका कारण बताते हैं।)। लम्बाई, चौड़ाई, आकार और परिधिमें समान हैं, यथा—भरत और ऐरवत। इसी प्रकार इस अभिलापसे हेमवत और हैरण्यवत दोनों बराबर हैं। हरिवर्ष और रम्यकवर्ष भी समान हैं ॥१२४॥

जंबू०····—मेरुपर्वतकी पूर्व और पश्चिम दिशामें दो क्षेत्र·········—पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह। ॥१२५॥

जंबू०····· की उत्तर और दक्षिण-दिशामें दो कुरुक्षेत्र·········—देवकुरु और उत्तरकुरु। उन दोनों क्षेत्रोंमें अतिशय महान् दो वृक्ष (कहे हैं, वे ये) अत्यंत समतुल्य ·······—कूटशाल्मली और जंबूसुदर्शना। उन वृक्षों पर महर्द्धिक यावत् महासौख्य वाले और एक पल्योपमकी स्थिति वाले दो देव रहते हैं। उन दोनों देवोंके नाम इस प्रकार हैं—गरुड़-सुपर्णकुमार जातिका वेणुदेव, और जंबूद्वीपका अधिपति अनादृत देव ॥१२६॥

जंबू०·········की उत्तर और दक्षिण दिशामें दो वर्षधर पर्वत (कहे गए

हैं, वे ये-) वहु०.........—चुल्ल (लघु) हिमवान् और शिखरी, इसी प्रकार महाहिमवान् और रुक्मी, इसी प्रकार निषध और नीलवान् ॥१२७॥

जंवू०........ हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्रमें दो वृत्त वैताढ्यपर्वत कहे हैं—वहु०—शब्दापाती और विकटापाती। उन दोनों पर महर्द्धिक......दो देव....—स्वाति और प्रभास ॥१२८॥

जंवूद्वीप०.........हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष क्षेत्रमें दो वृत्त वै०.......—गन्धापाती और माल्यवन्तपर्याय। उन दोनों पर......दो देव....—अरुण और पद्म ॥१२९॥

जंवूद्वीपके मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशामें देवकुरु क्षेत्रके पूर्व और पश्चिमके पार्श्वमें अश्वके स्कन्धके समान कुछ कम अर्द्धचन्द्राकार दो वक्षस्कार पर्वत कहे हैं—वहु०.........गन्धमादन और माल्यवन्त। जम्बू० मेरु० की उत्तर और दक्षिण दिशामें दो दीर्घ (लम्वे) वै०.......—भरत क्षेत्रमें दीर्घवैताढ्य और ऐरवत क्षेत्रके दीर्घ०। भरत क्षेत्रके दीर्घ वै० में दो गुफाएं कही गई हैं, वे वहु०....—तमिस्रा गुफा, और खण्डप्रपात गुफा। वहां दो देव....—कृतमालक और नृत्यमालक। ऐरवत क्षेत्रके दीर्घ वै० में दो गुफाएं कही गई....—कृतमालक और नृत्य०। ॥१३०॥

जंवू० मेरु० की दक्षिण दिशामें चुल्लहिमवान् नामक वर्षधर पर्वतमें दो कूट (शिखर) कहे गए हैं, वहु०.........चुल्लहिमवान्कूट और वैश्रमणकूट। जंवू०......दक्षिण........महाहिमवान्........—महाहिमवान्कूट और वैडूर्यकूट। इसी प्रकार निषधनामके वर्षधर पर्वतमें दो कूट कहे हैं.........—निषधकूट और रुचकप्रभकूट। जंवू०......उत्तर० दिशामें —नीलवान नामक पर्वतमें.......—नीलवानकूट और उपदर्शनकूट। इसी प्रकार रुक्मि वर्षधरपर्वतमें दो कूट .....—रुक्मि और मणिकाञ्चनकूट। इसी प्रकार शिखरी.........—शिखरीकूट और तिगिच्छकूट ॥१३१॥

जंवू० मेरु० की उत्तर और दक्षिण दिशामें चुल्लहिमवान और शिखरी वर्षधर पर्वतों पर दो महाद्रह कहे हैं, वहु०....—पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह। उन दोनों द्रहोंमें दो देवियां महर्द्धिक यावत् पल्योपमकी स्थिति (आयुष्य) वाली रहती हैं। उन देवियोंके नाम—श्रीदेवी और लक्ष्मीदेवी। इसी प्रकार महाहिमवान और रुक्मि वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे हैं......—महापद्मद्रह और महापुण्डरीकद्रह, और उनमें उनकी ह्री और वुद्धि नामकी अधिष्ठात्री देवियां रहती हैं। इसी प्रकार निपध और नीलवन्त पर्वत पर तिगिंछि और केसरी नामके दो द्रह हैं, और धृति और कीर्ति नामकी देवियां हैं ॥१३२॥

जंबू० मेरु० की दक्षिण दिशामें महाहिमवन्त वर्षधर पर्वतके महापद्मद्रहसे दो नदियां निकलती हैं, उनके नाम—रोहिता और हरिकान्ता। इसी प्रकार निषध पर्वतके तिगिंछिद्रहसे दो महानदियां निकलती हैं,उनके नाम हरित--और शीतोदा। जंबू० मेरु० उत्तर० नीलवान वर्षधर पर्वतके केसरीद्रहसे दो महानदियां निकलती हैं, उनके नाम—शीता और नारीकान्ता। इसी प्रकार रुक्मि वर्षधर पर्वतके महापुण्डरीकद्रहसे दो…………—नरकान्ता और रूप्यकूला। जंबू० मेरु० की दक्षिण दिशामें, भरत क्षेत्रमें, दो प्रपातद्रह कहे हैं… …बहु०—गंगाप्रपातद्रह और सिन्धुप्रपातद्रह। इसी प्रकार हेमवत क्षेत्रमें दो प्रपातद्रह कहे हैं०—रोहितप्रपातद्रह और रोहितांशाप्रपातद्रह। जंबू०…—हरिवर्ष क्षेत्रमें दो प्रपातद्रह(कुंड)कहे हैं……—हरित प्रपातद्रह और हरिकान्ता प्रपातद्रह। जंबू०……उत्तर और दक्षिण दिशामें महाविदेह क्षेत्रमें दो प्रपात०—शीता प्र० और शीतोदा प्र०। जंबू० उत्तर दिशामें रम्यकवर्ष क्षेत्रमें दो प्र०……—नरकान्ता प्र० और नारीकान्ता प्र०। इसी प्रकार हैरण्यवत क्षेत्रमें दो प्र०…—सुवर्णकूला प्र० और रूप्यकूला०। जंबू० … उत्तर … ऐरवत क्षेत्रमें दो प्र०…—रक्ता प्र० और रक्तवती प्र०। जंबू० …… दक्षिण भरत क्षेत्रमें दो महानदी कही हैं, वे बहु० यावत् रक्ता और रक्तवती नामकी हैं॥१३३॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीमें सुषमदूषम नामक (चौथे) आरेका काल दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण था। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणीमें सुषमदुषम नामक (तीसरे) आरेका समय दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणीमें सुषम०……प्रमाण होगा। जंबूद्वीप नामक द्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणी के सुषम नामक (पांचवें) आरे में मनुष्य दो गाउ की ऊँचाई वाले और दो पल्योपमके आयुष्य को पालने वाले थे। इसी प्रकार इस अवसर्पिणी में सुषम नामक०…थे। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणीमें सुषम० … होंगे॥१३४॥

जंबूद्वीप नामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रमें एक युग के एक समयमें दो अरिहंत-वंश उत्पन्न हुए हैं, हो रहे हैं और उत्पन्न होंगे। इस प्रकार दो चक्रवर्ती-वंश, दो दशार—वासुदेव के वंश उत्पन्न हुए, होते हैं और होंगे। जंबूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में दो अरिहंत उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव यावत् उत्पन्न होंगे॥१३५॥

जंबूद्वीपके दो कुरुक्षेत्रोंमें मनुष्य सदा सुषमसुषम (पहले) आरेकी उत्तम ऋद्धि प्राप्त कर भोगते हुए विचरते हैं, वे क्षेत्र-देवकुरु और उत्तरकुरु। जंबू० दो वर्षों में … सुषम (दूसरे) आरे……वे वर्ष क्षेत्र—हैमवंत और हैरण्यवत। जंबू० दो ……दुषमसुषम (चौथे) आरे…वे ये—पूर्वविदेह और अपरविदेह। जंबू०……

छ: प्रकारके काल संबंधी आयुष्यादि ऋद्धि······वे ये—भरत और ऐरवत क्षेत्र ॥१३६॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपमें दो चन्द्रमा प्रकाश करते थे, करते हैं और करेंगे। दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। दो कृत्तिका, दो रोहिणी, दो मृगशिर, दो आर्द्रा, इसी प्रकार दूसरे नक्षत्र भी जानने। क्र०···आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी अनुक्रमसे जानें। इसी प्रकार गाथानुसार प्रत्येक नक्षत्र दो दो जानें यावत् भरणी पर्यंत। [अब २८ नक्षत्रों के अधिपति देवोंके नाम कहते हैं—] अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इंद्र, निर्ऋती, आप, विश्व, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अज, विवृद्धि, पूषा, अश्विनी, और यम। ये प्रत्येक देव दो-दो जानने। [अब ८८ ग्रहोंके नाम कहते हैं—] अंगारक (मंगल), व्यालक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, आहुणिक, प्राहुणिक, कण, कनक, कणकनक, कनकवितानक, कनकसंतानक, सोम, सहित, अश्वासन, कार्योपक, कर्बट, अयस्कर, दुंदुभक, शंख, शंखवर्ण, शंखवर्णाभ, कंस, कंसवर्ण, कंस-वर्णाभ, रूपी, रौप्याभास, नील, नीलाभास, भस्म, भस्मराशि, तिल, तिलपुष्प वर्ण, दक, दकपंचवर्ण, काक, काकंध, इन्द्राग्नि, धूमकेतु, हरि, पिंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, राहु, अगस्ति, माणवक, कास, स्पर्श, धुर, प्रमुख, विकट, विसंधि, नियल्ल, पइल्ल, झटितालक, अरुण, अग्गिल्ल, काल, महाकाल, स्वस्तिक, सौव-स्तिक, वर्द्धमान, पुष्पमानक, अंकुश, प्रलम्ब, नित्यालोक, नित्योद्योत, स्वयंप्रभ, अवभास, श्रेयंकर, क्षेमंकर, आभंकर, प्रभंकर, अपराजित, अरज, अशोक, विगत-शोक, विमल, वितत, वित्रस्त, विशाल, साल, सुव्रत, अनिवृत्त, एकजटी, द्विजटी, करकरिक, राजार्गल, पुष्पकेतु और भावकेतु। ये सब ग्रह दो-दो जानने ॥१३७॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपकी वेदिका दो गाउ ऊँची कही गई है। लवणसमुद्र, चक्रवालविष्कंभ (गोलकी चौड़ाई) से दो लाख योजनका है। लवण समुद्रकी वेदिका दो गाउ····· ॥१३८॥

धातकीखंड नामक द्वीपके पूर्वार्धमें मेरुपर्वतकी उत्तर और दक्षिण दिशा में दो क्षेत्र कहे हैं, वे बहु० यावत् भरत और ऐरवत क्षेत्र। जैसे जंबूद्वीपके भरत और ऐरवतका वर्णन किया है वैसे ही यहां भी इसी प्रकार जानना। यावत् दोनों क्षेत्रमें मनुष्य छ प्रकारके कालके (छ आरोंके) अनुभावको अनुभव करते हुए विचरते हैं। विशेष यह कि—कटशाल्मली और धातकी वृक्ष हैं। दो गरुड

जंबू० मेरु० की दक्षिण दिशामें महाहिमवन्त वर्षधर पर्वतके महापद्मद्रहसे दो नदियां निकलती हैं, उनके नाम–रोहिता और हरिकान्ता। इसी प्रकार निषध पर्वतके तिगिछिद्रहसे दो महानदियां निकलती हैं,उनके नाम हरित–और शीतोदा। जंबू० मेरु० उत्तर० नीलवान वर्षधर पर्वतके केसरीद्रहसे दो महानदियां निकलती हैं, उनके नाम–शीता और नारीकान्ता। इसी प्रकार रुक्मि वर्षधर पर्वतके महापुण्डरीकद्रहसे दो..........—नरकान्ता और रूप्यकूला। जंबू० मेरु० की दक्षिण दिशामें, भरत क्षेत्रमें, दो प्रपातद्रह कहे हैं ... वह०—गंगाप्रपातद्रह और सिन्धुप्रपातद्रह। इसी प्रकार हेमवत क्षेत्रमें दो प्रपातद्रह कहे हैं०–रोहितप्रपातद्रह और रोहितांशाप्रपातद्रह। जंबू०...—हरिवर्ष क्षेत्रमें दो प्रपातद्रह (कुंड) कहे हैं......—हरित प्रपातद्रह और हरिकान्ता प्रपातद्रह। जंबू०.....उत्तर और दक्षिण दिशामें महाविदेह क्षेत्रमें दो प्रपात०—शीता प्र० और शीतोदा प्र०। जंबू० उत्तर दिशामें रम्यकवर्ष क्षेत्रमें दो प्र०......—नरकान्ता प्र० और नारीकान्ता प्र०। इसी प्रकार हैरण्यवत क्षेत्रमें दो प्र०...—सुवर्णकूला प्र० और रूप्यकूला०। जंबू० ... उत्तर ... ऐरवत क्षेत्रमें दो प्र०...—रक्ता प्र० और रक्तवती प्र०। जंबू०...... दक्षिण ... भरत क्षेत्रमें दो महानदी कही हैं, वे वह० यावत् रक्ता और रक्तवती नामकी हैं ॥१३३॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीमें सुषमदूषम नामक (चौथे) आरेका काल दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण था। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणीमें सुषमदुषम नामक (तीसरे) आरेका समय दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणीमें सुषम०......प्रमाण होगा। जंबूद्वीप नामक द्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणी के सुषम नामक (पांचवें) आरे में मनुष्य दो गाउ की ऊँचाई वाले और दो पल्योपमके आयुष्य को पालने वाले थे। इसी प्रकार इस अवसर्पिणी में सुषम नामक०...थे। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणीमें सुषम० ... होंगे॥१३४॥

जंबूद्वीप नामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रमें एक युग के एक समयमें दो अरिहंत-वंश उत्पन्न हुए हैं, हो रहे हैं और उत्पन्न होंगे। इस प्रकार दो चक्रवर्ती-वंश, दो दशार–वासुदेव के वंश उत्पन्न हुए, होते हैं और होंगे। जंबूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में दो अरिहंत उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव यावत् उत्पन्न होंगे ॥१३५॥

जंबूद्वीपके दो कुरुक्षेत्रोंमें मनुष्य सदा सुषमसुषम (पहले) आरेकी उत्तम ऋद्धि प्राप्त कर भोगते हुए विचरते हैं, वे क्षेत्र-देवकुरु और उत्तरकुरु। जंबू० दो वर्षों में ... सुषम (दूसरे) आरे..... वे वर्ष क्षेत्र—हैमवंत और हैरण्यवत। जंबू० ......दुषमसुषम (चौथे) आरे ... वे ये—पूर्वविदेह और अपरविदेह। जंबू०.....

छ: प्रकारके काल संबंधी आयुष्यादि ऋद्धि······वे ये—भरत और ऐरवत क्षेत्र ॥१३६॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपमें दो चन्द्रमा प्रकाश करते थे, करते हैं और करेंगे। दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। दो कृत्तिका, दो रोहिणी, दो मृगशिर, दो आर्द्रा, इसी प्रकार दूसरे नक्षत्र भी जानने। कृ०···आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य,अश्लेषा मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी अनुक्रमसे जानें। इसी प्रकार गाथानुसार प्रत्येक नक्षत्र दो दो जानें यावत् भरणी पर्यंत। [अब २८ नक्षत्रों के अधिपति देवोंके नाम कहते हैं—] अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इंद्र, निर्ऋती, आप, विश्व, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अज,विवृद्धि, पूषा, अश्विनी, और यम। ये प्रत्येक देव दो-दो जानने। [अब ८८ ग्रहोंके नाम कहते हैं—] अंगारक (मंगल), व्यालक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, आहुणिक, प्राहुणिक, कण, कनक, कणकनक, कनकवितानक, कनकसंतानक, सोम, सहित, अश्वासन, कार्योपक, कर्वट, अयस्कर, दुंदुभक, शंख, शंखवर्ण, शंखवर्णाभ, कंस, कंसवर्ण, कंस-वर्णाभ, रूपी, रौप्याभास, नील, नीलाभास, भस्म, भस्मराशि, तिल, तिलपुष्प वर्ण, दक, दकपंचवर्ण, काक, काकंध, इन्द्राग्नि, धूमकेतु, हरि, पिंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, राहु, अगस्ति, माणवक, कास, स्पर्श, धुर, प्रमुख, विकट, विसंधि, नियल्ल, पइल्ल, झटितालक, अरुण, अग्गिल्ल, काल, महाकाल, स्वस्तिक, सौव-स्तिक, वर्द्धमान, पुष्पमानक, अंकुश, प्रलम्ब, नित्यालोक, नित्योद्योत, स्वयंप्रभ, अवभास, श्रेयंकर, क्षेमंकर, आभंकर, प्रभंकर, अपराजित, अरज, अशोक, विगत-शोक, विमल, वितत, वित्रस्त, विशाल, साल, सुव्रत, अनिवृत्त, एकजटी, द्विजटी, करकरिक, राजार्गल, पुष्पकेतु और भावकेतु। ये सब ग्रह दो-दो जानने ॥१३७॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपकी वेदिका दो गाउ ऊँची कही गई है। लवणसमुद्र, चक्रवालविष्कंभ (गोलकी चौड़ाई) से दो लाख योजनका है। लवण समुद्रकी वेदिका दो गाउ····· ॥१३८॥

धातकीखंड नामक द्वीपके पूर्वार्धमें मेरुपर्वतकी उत्तर और दक्षिण दिशा में दो क्षेत्र कहे हैं, वे बहु० यावत् भरत और ऐरवत क्षेत्र। जैसे जंबूद्वीपके भरत और ऐरवतका वर्णन किया है वैसे ही यहां भी इसी प्रकार जानना। यावत् दोनों क्षेत्रमें मनुष्य छ प्रकारके कालके (छ आरोंके) अनुभावको अनुभव करते हुए विचरते हैं। विशेष यह कि—कटशाल्मली और धातकी वृक्ष हैं। दो गरुड

(सुपर्णकुमारजातीय) देव हैं, उनके नाम वेणु और सुदर्शन हैं। धातकीखंड० पश्चिमार्धमें मेरु० ...... भरत और ऐरावत .... विचरते हैं। विशेष यह कि—कूट-शाल्मली और महाधातकी नामक वृक्ष हैं। सु० वेणुदेव और प्रियदर्शन नामक देव हैं।

धातकीखंड नामक द्वीपमें भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु, देवकुरुके महावृक्ष, तद्वासी देव, उत्तरकुरु, उनके महावृक्ष, महावृक्षवासी देव, ये प्रत्येक दो २ जानने। चुल्लहिमवंत, महाहिमवंत, निषध, नीलवान, रुक्मी, शिखरी, शब्दापाती, श० (वृत्त वैताढय) के रहने वाले स्वातीदेव, विकटापाती, तद्वासी प्रभासदेव, गंधापाती, तद्वासी अरुणदेव, मालवंतपर्याय, तद्वासी पद्मदेव, मालवंत (गजदंत पर्वत), चित्रकूट (वक्षस्कार पर्वत), पद्मकूट, नलिनकूट, एकशैल, त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अंजन पर्वत, मातंजन, सौमनस, (गजदंत,) विद्युत्प्रभ, अंकावती, पद्मावती, आशिःविषा, सुखावह, चंद्रपर्वत, सूर्यपर्वत, नाग०, देव०, गंधमादन और इषुकारपर्वत ये प्रत्येक दो २ जानने। चुल्लहिमवंतकूट, वैश्रमण०, महाहिमवंत०, वैडूर्य०, निषध०, रुचक०, नीलवंत०, उपदर्शन०, रुक्मी०, मणिकंचन०, शिखरी०, तिगिच्छी०, पद्मद्रह, तद्वासिनी श्री देवियां, महापद्मद्रह, तद्वासिनी ह्री देवियां, इसी प्रकार यावत् पुंडरीकद्रह, तद्वासिनी लक्ष्मीदेवियाँ, गंगाप्रपातद्रह यावत् रक्तवती प्रपातद्रह। ये प्रत्येक दो दो हैं। दो रोहिता यावत् दो रुप्यकूला हैं। ग्राहवती, द्रहवती, पंकवती, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला, क्षीरोदा, सिंहश्रोता, अंतर्वाहिनी, ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गंभीरमालिनी, ये प्रत्येक दो दो नदियाँ हैं। कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छावती, आवर्त, मंगलावर्त, पुष्कल, पुष्कलावती, वत्स, सुवत्स, महावत्स, वत्सावती, रम्य, रम्यक, रमणीय, मंगलावती, पक्ष्म (पद्म), सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मावती, शंख, नलिन, कुमुद, सलिलावती (नलिनावती), वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावती, वल्गु, सुवल्गु, गंधिल और गंधिलावती, ये विजय प्रत्येक दो २ हैं। क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्ट, रिष्टपुरी, खड्गी, मंजूषा, औषधि, पुंडरीकिणी, सुसीमा, कुंडला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंकावती, पक्ष्मवती, शुभा, रत्नसंचया, अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अपरा, अशोका, विगतशोका, विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवंध्या और अयोध्या, ये ३२ विजयोंकी क्रमशः दो २ राजधानियां हैं। दो २ भद्रशालवन, नंदनवन, सोमनसवन और पांडुकवन हैं। दो २ पांडुकंवलशिला, अतिपांडु०, रक्तकंवलशिला, अतिरक्त० हैं। दो मेरुपर्वत हैं, उसकी दो चूलिकाएँ हैं। धातकीखंड नामक द्वीपकी वेदिका दो गाउ ऊँची कही गई है। कालोदधि समुद्रकी वेदिका दो गाउ०। पुष्करवर-द्वीपार्धके पूर्वार्धमें मेरुपर्वतकी उत्तर और दक्षिण

दिशामें दो क्षेत्र कहे गए हैं। वे बहु० यावत् भरत और ऐरवत, उसी प्रकार यावत् दो कुरुक्षेत्र कहे हैं–वे देवकुरु और उत्तरकुरु नामक हैं। उन दोनों कुरुक्षेत्रों में अतिशय शोभावाले दो महान् वृक्ष कहे हैं, उनके नाम-कूटशाल्मली और पद्मवृक्ष। उन वृक्षों के अधिष्ठाता दो देव सुपर्णकुमारजातीय वेणुदेव और पद्म नामक हैं। यावत् छ आरों के अनुभावको...... (भरत और ऐरवतमें) विचरते हैं। पुष्कर० पश्चिमार्धमें मेरु०......पूर्ववत्, विशेष—वृक्ष कूटशाल्मली और महापद्म, देव सु० वेणुदेव और पुंडरीक नामक हैं। पुष्करवरद्वीपार्ध द्वीपमें दो भरत,दो ऐरावत यावत् दो मेरु और दो मेरुपर्वतकी चूलिकाएँ हैं। पुष्करवरद्वीप की वेदिका दो गाउकी ऊँची कही गई है। इसी प्रकार सब द्वीप और समुद्रोंकी वेदिकाएँ दो गाउ ऊंची० हैं ॥१३९॥

दो असुरकुमार देवोंके इन्द्र कहे हैं, उनके नाम—चमरेन्द्र और बलीन्द्र। दो नागकुमार०...—धरणेंद्र और भूतेन्द्र। दो सुपर्णकुमार०...—वेणुदेवेंद्र और वेणुदारींद्र। दो विद्युतकु०...—हरीन्द्र और हरिस्सहेन्द्र। दो अग्नि०...—अग्निशिख और अग्निमाणव। दो द्वीप कु०...—पूर्ण और वशिष्ठ। दो उदधि-कु०...—जलकान्त और जलप्रभ। दो दिक्कुमार०...—अमितगति और अमित-वाहन। दो वायुकु०...—वेलंब और प्रभंजन। दो स्तनित (मेघ) कुमार०...—घोष और महाघोष। दो पिशाचोंके इन्द्र कहे हैं,उनके नाम काल और महाकाल। दो भूतों०...—सुरूप और प्रतिरूप। दो यक्षों०...—पूर्णभद्र और माणिभद्र। दो राक्षसों०...—भीम और महाभीम। दो किन्नरों०...—किन्नर और किंपुरुष। दो किंपुरुषों०...—सत्पुरुष और महापुरुष। दो महोरगों के इन्द्र...अतिकाय और महाकाय। दो गंधर्वो०...—गीतरति और गीतयशा। दो अणपन्नी देवों के ...—सन्निहित और सामानिक। दो पणपन्नी०...—धाता और विधाता। दो ऋषिवादी०...—ऋषि और ऋषिपालित। दो भूतवादी०...—ईश्वर और महेश्वर। दो कंदी०...—सुवत्स और विशाल। दो महाकंदी०...—हास्य और हास्यरती। दो कुंभड़ (कोहंड) देवों०...—श्वेत और महाश्वेत। दो पतंग०...—पतंग और पतंगपति। दो ज्योतिष्क०...—चंद्र और सूर्य। सौधर्म और ईशान देवलोक में दो इन्द्र कहे हैं, वे ये-शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र। इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र। ब्रह्मलोक और लांतक०...—ब्रह्मेन्द्र और लाँतकेन्द्र। महाशुक्र और सहस्रार०...—महाशक्रेंद्र और सहस्रारेंद्र। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक में०...—प्राणतेन्द्र और अच्युतेन्द्र ॥१४०॥

महाशुक्र और सहस्रार देवलोक में विमान दो वर्ण वाले कहे हैं, वे ये—पीले और शुक्ल (सफेद), (नव) ग्रैवेयकके देव ऊंचाई में दो हाथ की अव-गाहना वाले कहे हैं ॥१४१॥

॥ दूसरे स्थानका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय स्थानक—चतुर्थ उद्देशक

समय और आवलिका (काल) जीव और अजीव (पने) कहे जाते हैं। आन-प्राण–उच्छ्वासनिःश्वासकाल और स्तोककाल जीव·····। क्षण और लव (काल)···। इसी प्रकार मुहूर्त्त और अहोरात्र, पक्ष और मास, ऋतु और अयन, संवत्सर (वर्ष) और युग, सौ वर्ष और हजार वर्ष, लाख वर्ष और करोड़ वर्ष, पूर्वांग और पूर्व, त्रुटितांग और त्रुटित, अडडांग और अडड, अपपांग और अपपात, हूहूतांग और हूहूत, उत्पलांग और उत्पल जीव······। पद्मांग और पद्म, नलिनांग और नलिन, अक्षनिकुरांग और अक्षनिकुर, अयुतांग और अयुत, नियुतांग और नियुत, प्रयुतांग और प्रयुत, चूलिकांग और चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, ये प्रत्येक जीव ॥१४२॥

ग्राम और नगर, निगम और राजधानी, खेड़ और कर्वट, मडम्ब और द्रोणमुख, पट्टण और आकर, आश्रम और संवाह, सन्निवेश और घोष, आराम और उद्यान, वन और वनखंड, वापी (वावड़ी) और पुष्करिणी, सरोवर और सरपंक्ति, कूप (कुंआ) और तालाव, द्रह और नदी, पृथ्वी (रत्नप्रभादि) और घनोदधि, वातस्कंध (घनवात वगैरह) और अवकाशांतर, वलय—पृथ्वी का वेष्टन रूप घनोदधि आदि और विग्रह—लोकनाड़ी का वक्र, द्वीप और समुद्र ये सब जीव और अजीवस्वरूप हैं। वेल-समुद्र के जलकी वृद्धि और वेदिका (वाढ़ के कंगूरे), द्वार और तोरण, नैरयिक और नरकावास, इसी प्रकार २४ दंडक में वैमानिक और उनके वास (विमान) पर्यन्त जो हैं वे सब जीव और अजीवस्वरूप हैं। कल्प-देवलोक, कल्पविमानवास–उन देवलोकोंके अंश, वर्ष, (क्षेत्र) और वर्षधर पर्वत, कूट—शिखर और कूटागार, विजय और राजधानियाँ, ये सब जीव और अजीवस्वरूप कहे जाते हैं ॥१४३॥

वृक्षादिककी छाया और सूर्यका आतप, ज्योत्स्ना–कान्ति और अंधकार, अवमान—क्षेत्रादिका प्रमाण हस्तादि और उन्मान—कर्षादि (तोला इत्यादि), अतियानगृह–नगर आदिके प्रवेशमें जो घर हों वे और उद्यानगृह—वगीचे में बने हुए घर, अवलिंव और सणिप्रपात (रूढि शब्द), जीव·········॥१४४॥

दो राशियां कही गई हैं, वे इस प्रकार—जीवराशि और अजीवराशि। दो प्रकारका बंध कहा है, वह इस प्रकार—प्रेम (राग) बंध और द्वेषबंध। जीवोंको दो कारणोंसे पापकर्मका बंध होता है, जैसे कि—राग से, द्वेष से। जीवों को दो स्थानों द्वारा पापकर्मकी उदीरणा होती है, यथा—अभ्युपगमिकी—स्वयं शिरोलोचादि द्वारा स्वीकृत वेदना और औपक्रमिकी—वुखार, अतिसारादि द्वारा उदीर्ण वेदना। इसी प्रकार दो प्रकारसे वेदे अर्थात् उदयमें आए हुए कर्मको

भोगे, दो प्रकारसे निर्जरे—क्षय करे, वह इस प्रकार—अभ्युपगमिकी वेदना द्वारा निर्जरे और औपक्रमिकी वेदना द्वारा निर्जरे। दो स्थानोंसे आत्मा शरीरको स्पर्श करके निकलता है, वह इस प्रकार—देशसे भी आत्मा शरीर को·······(इलिकागतिसे उत्पत्तिस्थान को जाता हुआ) और सर्व से भी आत्मा······(कंदुकगति से उ० ······)। इसी प्रकार देशसे अथवा सर्वसे शरीर को फरका (कंपा) कर, फोड़ कर, संकोच कर, शरीरको जीवप्रदेशोंसे जुदा करके निकलता है। दो प्रकारसे आत्मा केवली प्ररूपित धर्म सुननेमें समर्थ हो, यथा—ज्ञानावरण और दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे और उपशमसे (क्षयोपशमसे), इसी प्रकार यावत् मनःपर्यवज्ञानको उत्पन्न करे०—क्षयसे और उपशमसे ॥१४५॥

दो प्रकारका अद्धोपमिक (उपमावाला काल) कहा है०—पल्योपम और सागरोपम। वह पल्योपम क्या है? उसे कहते हैं—पल्योपम—जो एक योजन (चार कोस)का लंबा चौड़ा और गहरा कुआं (पल्य) हो, उसे एक दिनसे लगाकर सात दिन तक के उगे हुए कोटि (असंख्य) बालाग्रोंसे ठूंस २ कर भरना, उन बालाग्रोंमें से सौ २ वर्षमें एक २ वालाग्रको निकालनेसे जितने समयमें वह पल्य खाली हो उतने कालको एक पल्योपम जानें। इस एक पल्योपमको दस कोड़ाकोड़ीसे गुणा करने से एक सागरोपम होता है ॥१४६॥

दो प्रकारका क्रोध कहा है०—आत्मप्रतिष्ठित और पर-प्रतिष्ठित। इसी प्रकार नैरयिकसे लेकर यावत् वैमानिक पर्यंत २४ दंडकमें दो प्रकारका क्रोध है। इसी प्रकार मान वगैरह यावत् मिथ्यादर्शनशल्य भी है ॥१४७॥

दो प्रकारके संसारसमापन्नक जीव कहे हैं०—सेन्द्रिय (इन्द्रियसहित) और अनिंद्रिय (इंद्रियरहित), इस प्रकार सिद्धादि सूत्रके क्रमसे इस गाथा के अनुसार यावत् शरीरसहित और शरीर-रहित। सिद्ध, सेंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, ज्ञान, उपयोग, आहारक, भाषक, चरम, सशरीरी ये १३ द्वार कहने ॥१४८॥

दो मरण श्रमण भगवान् महावीरने श्रमण निर्ग्रंथोंके लिए सदा वर्णन नहीं किए, कीर्तित नहीं किये, सदा स्पष्टवाणीसे कहे नहीं, सदा उनका वखान नहीं किया और न उनकी आज्ञा ही दी, यथा—वलयमरण—संयमसे पतित और परीषह न सहनेके कारण जो मरण हो, वशार्त्तमरण—इंद्रियोंके वश होने से मरे। इसी प्रकार नियाणा करके मरे वह निदानमरण, जिस भवमें है उस भवके योग्य आयुष्य बांधकर मरना—तद्भवमरण। गिरिपतन-पर्वतसे गिरकर मरना, तरुपतन—पेड़से गिरकर मरना, जल प्रवेश—पानीमें डूबकर मरना, ज्वलन प्रवेश—आगमें जलकर मरना, विषभक्षण—ज़हर खाकर मरना, शस्त्रोत्पाटन—

शस्त्रसे मरना। दो मरण······कारणसे मना नहीं किए१—वैहानस मरण,गृद्धस्पृष्ट मरण ॥१४६॥

दो मरण······सदा वर्णन किए हैं यावत् आज्ञा दी है ०—पादपोपगमन—छिन्नवृक्षवत् चेष्टारहित रहना, भक्तप्रत्याख्यान—भोजनका त्याग। पादपोपगमन दो प्रकार का है०—निर्हारिम और अनिर्हारिम, नियमसे शारीरिक प्रतिक्रियारहित। भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का है०—नि० और अ०, नियमसे शा० प्र० सहित ॥१५०॥

यह लोक क्या है ? जीव और अजीवरूप है। लोक में अनंत क्या हैं ? जीव और अजीव। लोकमें शाश्वत क्या है ? जीव और अजीव ॥१५१॥

बोधि दो प्रकार की है०—ज्ञान-बोधि और दर्शनबोधि। दो प्रकार के बुद्ध-तत्वज्ञ कहे हैं०—ज्ञानबुद्ध और दर्शनबुद्ध। इसी प्रकार मोह और मूढ़के विषय में समझें ॥१५२॥

ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकारका है० —देश—ज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरणीय वगैरह)और सर्वज्ञाना० (केवल०)। दर्शनज्ञानावरणीय भी इसी प्रकार देश से और सर्वसे जानना। वेदनीय कर्म दो प्रकारका कहा गया है०—सातावेदनीय और असातावेदनीय। मोहनीय कर्म दो०—दर्शनमोहनीय और चरित्र०। आयुष्य कर्म दो०—अद्धायु और भवायु। नामकर्म दो०—शुभनाम और अशुभनाम। गोत्रकर्म दो०—उच्चगोत्र और नीच०। अंतरायकर्म दो०—वर्तमानमें प्राप्त वस्तुका नाश करे और भविष्यमें होने वाले वस्तु-लाभको रोके ॥१५३॥

दो प्रकारकी मूर्च्छा कही है०—प्रेमप्रत्यया (रागके निमित्तवाली) और द्वेषप्रत्यया। प्रेम० मूर्च्छा दो प्रकारकी कही है०—माया और लोभ-रूप। द्वेष०······—क्रोध और मानरूप ॥१५४॥

दो प्रकारकी आराधना कही है ०—धार्मिक आराधना और केवली आराधना। धार्मिक० दो प्रकार की कही है०—श्रुतधर्मकी आराधना और चारित्र०। केवली आराधना दो······—अन्तक्रिया आराधना और कल्पविमानोपपत्तिकाऽऽराधना ॥१५५॥

दो तीर्थंकर वर्ण से नील (श्याम) कमल समान कहे हैं०—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि। दो तीर्थंकर वर्ण से प्रियंगु वृक्ष जैसे नीले कहे हैं०—मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ। दो तीर्थंकर वर्णसे निर्मल पद्मकमल जैसे लाल कहे हैं०—पद्मप्रभ और वासुपूज्य। दो तीर्थंकर वर्णसे निर्मल चन्द्र जैसे श्वेत कहे हैं०—चंद्रप्रभ और और पुष्पदंत ॥१५६॥

---

१. शीलरक्षार्थ झंपापात करना एवं प्रतिज्ञाधारी होने पर सिंहादि हिंसक प्राणियोंका भक्ष्य बन जाना।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके दो तारे कहे हैं। उत्तराभाद्र०। इसी प्रकार पूर्वा-फाल्गुनी और उत्तराफा० के भी दो २ तारे कहे हैं ॥१५७॥

४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्रके मध्यमें दो समुद्र कहे हैं०—लवण और कालोदधि। दो चक्रवर्त्ती कामभोगोंका त्याग न करके आयु पूर्ण करके मृत्यु पाकर नीचे सातवीं नरकमें अप्रतिष्ठान नामक नरकावासमें नारकीपने उत्पन्न हुए हैं०—सुभूम और ब्रह्मदत्त ॥१५८॥

असुरेन्द्र—चमरेंद्र और बलींद्र को छोड़कर शेष भवनपति देवोंकी कुछ कम दो पल्योपमकी स्थिति कही है। सौधर्म देवलोकमें देवोंकी उत्कृष्ट से दो सागरोपमकी स्थिति कही है। ईशान०…… कुछ अधिक दो सा०……। सनत्कुमार दे०…जघन्य दो सा०……। माहेन्द्र देव०……जघन्य कुछ अधिक दो०……॥१५९॥

दो देवलोकोमें कल्पस्त्रियां (देवाँगनाएँ) कही हैं०—सौधर्म और ईशान में। दो देवलोकों में देव तेजोलेश्या वाले कहे हैं०—सौ० और ई०। दो देवलोकों में देव कायपरिचारक कहे हैं०—सौ० और ई०। दो दे०…स्पर्शपरिचारक…—सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक में। दो…रूपपरिचारक……—ब्रह्मलोक और लांतकदे०। दो……शब्दपरिचारक…—महाशुक्र और सहस्रार……। दो इन्द्र मनपरिचारक कहे हैं०—प्राणतेंद्र और अच्युतेन्द्र ॥१६०॥

जीवोंने दो स्थानोंमें सामान्य से उपार्जित पुद्गलोंको पापकर्मरूपमें ग्रहण किया, करते हैं,करेंगे०—त्रसकायमें उपार्जित और स्थावरकायमें उपार्जित। इसी प्रकार उपचय किया, करते हैं, करेंगे। बंध……। उदीरणा की, करते……। उस कर्मको भोगा, भोगते हैं, भोगेंगे। निर्जरा की, करते…॥१६१॥

दो प्रदेशवाले स्कन्ध अनन्त हैं। द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल अनंत यावत् द्विगुणरूक्ष पुद्गल अनंत कहे हैं ॥१६२॥

॥ दूसरे स्थानका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

॥ द्वितीय स्थानक समाप्त ॥

तृतीय स्थानक—प्रथम उद्देशक

तीन प्रकारके इन्द्र कहे हैं, वह इस प्रकार—नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र और द्रव्येन्द्र। तीन…इन्द्र…—ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र और चारित्रेन्द्र। तीन…इन्द्र…—ज्योतिष्क और वैमानिकके इन्द्र वे देवेंद्र, असुरेन्द्र-भवनपति और व्यंतरके, मनुष्येन्द्र—चक्रवर्ती आदि ॥१६३॥

तीन प्रकारकी विकुर्वणा कही है, यथा—वाहरके पुद्‌गलों को वैक्रिय समुद्‌घात द्वारा ग्रहण करके एक विकुर्वणा की जाती है। वाहर……ग्रहण न करके एक……। वाहर………ग्रहण करके अथवा न करके भी एक……। तीन प्रकार की विकुर्वणा……—अभ्यन्तर पुद्‌गलों को……। अभ्यन्तर……ग्रहण न करके ……। अभ्यन्तर …. ग्रहण करके अथवा न करके भी……। तीन प्रकारकी विकुर्वणा ……—वाह्य और अभ्यन्तर पु०………३॥१६४॥

नारकी तीन प्रकारके कहे हैं—कतिसंचित (एक संख्यात उत्पन्न हुए), अकतिसंचित (एक असख्यात०), अवक्तव्यकसंचित (समय २ एक २ उत्पन्न होने वाले)। इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त जानना ॥१६५॥

तीन प्रकारकी परिचारणा कही है, यथा—कोई देव (अल्पऋद्धिक) दूसरे देवोंकी देवियोंको आलिंगन करके भोगता है। अपनी देवियों को……। अपने द्वारा अपनी विकुर्वणा करके परिचारणा करता है। कोई देव ……करके नहीं भोगता है। अपनी देवियों …… । अपने द्वारा……। कोई २ देव……नहीं……। अपनी देवियों…नहीं…। अपने द्वारा……॥१६६॥

तीन प्रकारका मैथुन कहा है०—देवसंबंधी, मनुष्यसंबंधी और तिर्यन्च-संबंधी। तीन मैथुनसे प्राप्त होते हैं०—देव, मनुष्य और तिर्यचयोनिक। तीन मैथुन सेवन करते हैं०—स्त्री, पुरुष और नपुंसक ॥१६७॥

तीन प्रकारका योग कहा है०—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। इसी प्रकार तीन योग विकलेन्द्रियको छोड़कर नैरयिक यावत् वैमानिक तक जानना। तीन प्रकार का प्रयोग मनका प्रयोग, वचन०, काया०। जैसे योगके विषयमें विकलेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक तक कहा वैसे ही प्रयोगके वारेमें जानना। तीन प्रकार का करण कहा है०—मन करण, वचन करण, काया करण। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय छोड़ यावत् वैमानिक तक। तीन करण कहे हैं०—आरंभकरण—पृथ्वीकायिकादि का आरंभ करना, संरंभकरण—मनसे संक्लेश करना, समारंभकरण—संताप देना। निरंतर यावत् वैमानिक तक ॥१६८॥

तीन कारणोंसे जीव अल्पायुष्य कर्म वांधता है०—प्राणियों की हिंसा करके, असत्य वोलकर, तथारूप—दान देने योग्य ऐसे श्रमण अथवा माहणको अप्रासुक अनेषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम प्रतिलाभित (दे) करके। इन तीन कारणों……। तीन कारणोंसे जीव दीर्घायुष्य……—प्राणियोंकी हिंसा न करे, झूठ न वोले, तथारूप……को प्रासुक और एषणीय अशन ४ देवे। इन तीन……॥१६९॥

तीन कारणोंसे जीव अशुभ दीर्घायुष्य……—प्राणियोंकी हिंसा करके, असत्य०, तथारूप …. माहण की हीलना, निंदा, अथवा अपमान करके, खराव

और अप्रीतिकारक अशनादि चार प्रकारके आहार को देकर। इन तीन……। तीन कारणोंसे जीव शुभ दीर्घायुष्य……—प्राणियोंकी हिंसा न करे, सत्य०, तथारूप……माहणकी स्तुति, नमस्कार, सन्मान करके, कल्याण-मंगल-देव-ज्ञानरूप श्रमण की पर्युपासना (सेवा) करके सुंदर और आनन्दजनक अशन…… देकर। इन तीन………॥१७०॥

तीन गुप्तियां कही हैं०—मनगुप्ति, वचनगुप्ति, और कायगुप्ति। संयत मनुष्यों (साधुओं) में तीन गुप्तियाँ……। तीन अगुप्तियां……—मन अगुप्ति, वचन०, काय०। ये तीन अगुप्तियाँ नारकी यावत् स्तनितकुमारोंमें, पंचेन्द्रियतिर्यच-योनिकोंमें, असंयत मनुष्यों में, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंमें होती हैं। तीन दंड कहे हैं०—मनदंड, वचनदंड और कायदंड। नैरयिकोंके तीन दंड……। विकलेन्द्रिय (एकेन्द्रिय से चौरिंद्रिय) को छोड़कर यावत् वैमानिकोंके तीन दंड होते हैं॥१७१॥

तीन प्रकारकी गर्हा-जुगुप्सा कही है०—कोई मनसे गर्हा करता है, कोई वचन……, कोई काया……। पाप कर्म न करके। अथवा गर्हा तीन प्रकारकी कही……—कोई दीर्घकालपर्यंत गर्हा करता है, कोई थोड़े समय तक गर्हा०, कोई काया को रोकता है, कैसे? पाप कर्म न करके। तीन प्रकार का पच्चक्खाण कहा है०—कोई मनसे पच्चक्खाण करता है, कोई वचन……, कोई कायासे…… ……। जैसे गर्हा कही वैसे पच्चक्खाणके विषयमें भी दो आलापक कहने॥१७२॥

तीन प्रकारके वृक्ष कहे हैं०—पत्रसहित वृक्ष, पुष्प० और फल०। इसी प्रकार तीन प्रकारके पुरुष कहे हैं०—पत्रसहित वृक्षवत् उपकारी—सूत्रदाता, पुष्प०………—अर्थदाता, फल०………—तदुभयदाता। तीन प्रकारके पुरुष कहे हैं०—नामपुरुष, द्रव्यपुरुष, भावपुरुष। तीन…… —ज्ञान (युक्त) पुरुष, दर्शन०, चरित्र०। तीन……—वेद पुरुष—पुरुषवेद वाले, चिन्ह पुरुष—पुरुष चिन्ह वाले, अभिलाप पुरुष—पुल्लिंग शब्द॥१७३॥

तीन·· पुरुष···—उत्तम पुरुष, मध्यम० और जघन्य०। उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे हैं०—धर्मपुरुष, भोग० और कर्मपुरुष। धर्मपुरुष-अरिहंत, भोग-पुरुष—चक्रवर्ती, कर्मपुरुष—वासुदेव। मध्यम पु०…… —दास कुलोत्पन्न, भृतक-वेतन लेकर काम करने वाले, भाग लेने वाले॥१७४॥

तीन प्रकारके मत्स्य कहे हैं०—अंडज, पोतज और संमूर्च्छिम। अंडज-मत्स्य तीन प्रकारके कहे हैं०—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। पोतज…… नपुंसक॥१७५॥

तीन प्रकारके पक्षी०—अंडज……। अंडज पक्षी तीन प्र०……… —स्त्री, पु० और नपुं०। पोतज पक्षी०……नपुं०। इस प्रकार इस अभिलापसे उरपरिसर्प भी कहने, भुजपरिसर्प भी जानने॥१७६॥

तीन प्रकारकी स्त्रियाँ कही हैं०—तिर्यचयोनिक स्त्रियाँ, मानुषियाँ और देवियाँ। तिर्यच० स्त्रियाँ तीन प्रकारकी कही हैं० —जलचरी, थलचरी और खेचरी। मानुषियाँ तीन प्रकार की······—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अंतरद्वीपमें उत्पन्न हुई ॥१७७॥

तीन प्रकारके पुरुष कहे हैं०—तिर्यचयोनिक पुरुष, मनुष्य पुरुष और देव पुरुष। तिर्यंच० पुरुष तीन प्रकारके कहे हैं० —जलचर, स्थलचर और खेचर। मनुष्य पु०····· —कर्मभूमिज, अकर्म०, अंतरद्वीपोत्पन्न ॥१७८॥

तीन प्रकारके नपुंसक कहे हैं० —नैरयिक नपुंसक, तिर्यचयोनिक० और मनुष्य न०। ति० न० तीन प्रकारके कहे हैं० —जलचर, स्थलचर और खेचर ॥१७९॥

मनुष्य न०······—कर्मभूमिज, अकर्म०, अंतरद्वी०। तीन प्रकारके तिर्यंच-योनिक कहे० —स्त्री, पुरुष और नपुंसक ॥१८०॥

नैरयिकोंके तीन लेश्याएँ कही हैं० —कृष्णलेश्या, नील० और कापोत०। असुरकुमारोंके तीन लेश्याएं संक्लिष्ट कही०—कृष्ण, नी०, और का०। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारोंके तीन लेश्याएँ संक्लिष्ट कही हैं। इसी प्रकार पृथिवीकायिकोंमें, अप० और वनस्पति० तीन सं० लेश्याएँ कही हैं। तेउ०, वायु०, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, और चउरिंद्रियोंमें नैरयिकोंके समान तीन लेश्याएँ कही हैं। पंचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिकोंमें तीन लेश्याएँ संक्लिष्ट (अशुभ) कही हैं०—कृष्ण, नी० और का०। पंचेंद्रिय ति०···असंक्लिष्ट (अच्छी)··· —तेजोलेश्या, पद्म० और शुक्ल०। इसी प्रकार मनुष्योंमें भी तीन संक्लिष्ट और तीन असंक्लिष्ट जानना। व्यंतरोंमें असुरकुमारोंके समान तीन (संक्लिष्ट) लेश्याएँ जाननी। वैमानिकोंमें तीन लेश्याएँ कही हैं० —तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल० ॥१८१॥

तीन कारणोंसे तारा मात्र चलित हो०—विकुर्वणा करता हुआ, परिचारणा करता हुआ, अथवा एक स्थानसे दूसरे स्थान जाते हुए। तीन कारणोंसे देव विद्युत्कार (विजली) करे० —विकु०, परि०, तथारूप श्रमण माहण को ऋद्धि, कांति, यशबल (शारीरिक), वीर्य (आत्मिक शक्ति), पुरुषकार और पराक्रम दिखाता हुआ। तीन कारणोंसे देव स्तनित (मेघ) का शब्द (गर्जना) करे० —वि० पूर्ववत् ॥१८२॥

तीन कारणोंसे लोकमें अंधकार हो०—अरिहंतोंके निर्वाण प्राप्त होने पर, अरिहंत-प्ररूपित धर्म विच्छेद होने पर, पूर्वगत श्रुत नाश होने पर। तीन कारणोंसे लोकमें उद्योत हो० —अरिहंतोंके उत्पन्न होने पर, अरिहंतोंके दीक्षा लेनें पर, अरिहंतोंके केवल-ज्ञान उत्पत्ति महोत्सव में। तीन कारणोंसे देवोंके भवनादिकमें अंधकार हो०—अ

तीन कारणोंसे देवोंके भवनादिमें उद्योत हो०—अरिहंतोंके उत्पन्न०···,दीक्षा·······, केवल०···। तीन कारणोंसे देवोंका सन्निपात (भूमि पर आना) हो०—····उ०, ·····दीक्षा,···केवल०···। इसी प्रकार देवसमुदायका एकत्र होना,देवोंका आनंदपूर्वक कलकल शब्द। तीन कारणोंसे देवेन्द्र मनुष्य लोकमें शीघ्र आते हैं०—···उत्पन्न····, ·····दीक्षा···, ···केवल०····। इसी प्रकार सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल, अग्रमहिषियां, तीन परिषद्के देव, अनीका(सेना)धिपति, आत्मरक्षकदेव मनुष्य लोकमें शीघ्र आते हैं। तीन कारणोंसे देव सिंहासनसे खड़े हों०—पूर्ववत्। इसी प्रकार आसन चलायमान हों, सिंहनाद करें, वस्त्रकी वृष्टि करें। तीन कारणोंसे देवोंके वृक्ष चलायमान हों० —पूर्ववत्। तीन कारणोंसे लोकान्तिक देव मनुष्य लोकमें शीघ्र आवें० -पूर्ववत् ॥१८३॥

हे आयुष्मन्! श्रमणो! तीनका दुष्प्रतिकार—कठिनाई से बदला दिया जा सके ऐसा उपकार है, वह इस प्रकार—माता-पिताका, भरण-पोषण करने वाले स्वामीका, और धर्मदाता धर्माचार्यका। प्रतिदिन कोई कुलीन मनुष्य (पुत्र) माता-पिता का शतपाक अथवा सहस्रपाक तेल द्वारा मर्दन करके, सुगंधित द्रव्यके चूर्ण द्वारा उद्वर्त्तन करके, गंधोदक आदि तीन प्रकारके पानी द्वारा स्नान करवा कर, सर्व अलंकारों द्वारा सुशोभित करके, मनोहर वर्तनमें भली-भांति पकाए हुए निर्दोष १८ प्रकारके व्यंजनसे युक्त भोजनको खिलाकर, जीवनपर्यंत कंधे पर बिठाकर ले जाय, तो भी वह माता-पिताका बदला नहीं चुका सकता। परन्तु यदि वह उन माता-पिताके प्रति केवली-प्ररूपित धर्म कहकर, समझाकर, प्ररूपणा करके धर्ममें स्थिर करने वाला हो तो हे आयुष्मान् श्रमणो! वह माता पिताका सुप्रतिकार करने वाला उपकारका बदला चुकाने वाला होता है। कोई महान् धनाढ्य पुरुष (सेठ) किसी दरिद्र को धनादि देकर अच्छी स्थितिमें लावे। तब वह दरिद्र धनाढ्य होने पर पूर्व और पश्चात् (हमेशा) वह भोग्य सामग्रीसे युक्त रहे। तत्पश्चात् वह धनाढ्य सेठ किसी समय दरिद्र होने पर पहले दरिद्रके पास जाय तब वह दरिद्री उस सेठको अपना सर्वस्व देता हुआ भी उसके उपकार का बदला नहीं चुका सकता, परन्तु यदि वह निर्धन व्यक्ति उस सेठके प्रति केवली प्ररूपित······ ····सेठ का········। कोई पुरुष तद्रूप श्रमण अथवा माहणसे एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनकर, धारण करके, यथासमय मृत्युको प्राप्त होकर किसी देवलोकमें देव होने पर वह देव उस धर्माचार्यको दुर्भिक्षवाले देशसे सुभिक्ष वाले देशमें ले जाय, अथवा अटवी से बसतिमें ले जाय, अथवा दीर्घकाल से बीमारको रोग मुक्त करे, फिर भी वह उस धर्माचार्य का बदला नहीं चुका सकता। परन्तु यदि वह धर्माचार्यके केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होनेपर पुनः उनके प्रति केवली प्ररूपित······धर्माचार्य का······॥१८४॥

तीन स्थानों (गुणों) से सम्पन्न अनगार अनादि अनंत, दीर्घ मार्ग वाले, नरकादि चार गति वाले संसाररूपी अरण्यको पार करे ०—अनिदानता से, सम्यग्दृष्टिसम्पन्नतासे और श्रुतोपधान वहन करने से ॥१८५॥

तीन प्रकार की अवसर्पिणी कही है ०—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। इसी प्रकार छहों आरे कहने यावत् दूपमदुपमा। तीन प्रकार की उत्सर्पिणी कही है ०—उत्कृष्ट ···· । इसी प्रकार छहों ····· सुपमसुपमा ॥१८६॥

तीन कारणों से अछिन्न पुद्गल चलित हो ०—आहार करते हुए, वैक्रिय करते हुए, एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखते हुए ॥१८७॥

तीन प्रकार की उपधि कही है ०—कर्मउपधि, शरीर ०, वाह्यभांड-मात्र०। ये तीन उपधि असुरकुमारोंके होती हैं, ऐसा कहना, इसी प्रकार एकेन्द्रिय और नैरयिक को छोड़ कर यावत् वैमानिकपर्यन्त जानना। अथवा तीन ·· उपधि ·····—सचित, अचित्त और मिश्र। इस प्रकार नैरयिकों के तीन उपधि यावत् वैमानिक·······। तीन प्रकार का परिग्रह कहा है ०—कर्म-परिग्रह, शरीर०, वाह्य०। इसी प्रकार असुरकुमारोंके, एकेन्द्रिय और नैरयिक को छोड़ कर यावत् वैमानिक······। अथवा तीन ···· परिग्रह ·········—सचित, अचित्त और मिश्र। ये तीनों नैरयिकसे यावत् वैमानिकपर्यन्त जानना ॥१८८॥

तीन प्रकारका प्रणिधान (एकाग्रता) कहा है ०—मन-प्रणिधान, वचन-प्रणिधान, कायप्रणिधान। ये तीनों पंचेन्द्रियों यावत् वैमानिकों में जानना। तीन······सुप्रणिधान ·······—मन०, व०, काय०। संयत मनुष्यों के तीन प्रकार का सुप्रणिधान होता है, पूर्ववत्। तीन प्रकार का दुष्प्रणिधान (दुष्टप्रवृत्ति-रूप)········—मनदु०, वचन०, कायदु०। इसी प्रकार पंचेन्द्रियों यावत् वै०······ ॥१८९॥

तीन प्रकार की योनि कही है०—शीतयोनि, उष्ण० और शीतोष्ण (मिश्र)०। ये तीन योनि तेजस्कायिक को छोड़कर शेप एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंके, संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंके और संमूर्च्छिम मनुष्यों के होती हैं। तीन······योनि···—सचित्तयोनि, अचित्त० और मिश्रित०। ये एकेन्द्रियोंके०, संमूर्च्छिम पंचे ०······। तीन······योनि ·······—संवृत्ता, विवृत्ता, संवृत्तविवृत्ता। तीन······—कूर्मोन्नता, शंखावर्त्ता और वंशीपत्रा। कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुषों की माताओंके होती है। उसमें तीन प्रकारके उत्तम पुरुष गर्भमें उत्पन्न होते हैं०—अरिहंत, चक्रवर्ती और वलदेव—वासुदेव। शंखावर्त्ता योनि चक्रवर्ती के स्त्रीरत्नके होती है। उसमें वहुतसे जीव और पुद्गल उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं, च्यवते हैं और उत्पन्न होते हैं; परन्तु निष्पन्न नहीं होते अर्थात् जन्मते नहीं।

वंशीपत्रा योनि सामान्य मनुष्योंकी माताओंके होती है। उसमें वहुत से सामान्य-मनुष्य गर्भमें उत्पन्न होते हैं ॥१९०॥

तीन प्रकार के वादर-वनस्पतिकायिक कहे हैं०—संख्यात जीव वाले, असंख्यात जीव वाले और अनंत जीव वाले ॥१९१॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपके भरतक्षेत्र में तीन तीर्थ कहे हैं०—मागध, वरदाम और प्रभास। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्रमें भी तीन तीर्थ हैं। जंबूद्वीपनामक द्वीपके महाविदेहक्षेत्रमें एक २ चक्रवर्ती-विजय में तीन २ तीर्थ कहे हैं०—मागध……। इसी प्रकार धातकीखंड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध तथा पुष्करवरद्वीपार्द्ध के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्धमें तीन २ तीर्थ जानना ॥१९२॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपके भरत और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीमें सुषमा आरेका कालप्रमाण तीन कोडाकोडी सागरोपम था। इसी प्रकार अव-सर्पिणीमें जानना। विशेष (वर्तमान अवसर्पिणीके दूसरे आरे का कहा है) आगामी उत्सर्पिणीमें इसी प्रकार कालमान होगा। इसी प्रकार धातकी० पूर्वार्द्ध और प० तथा पुष्कर०……पू० और पश्चिमार्द्धमें काल प्रमाण कहना ॥१९३॥

जंबूद्वीप नामक द्वीपके भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणीमें सुषमसुषमा नामक आरेके मनुष्य तीन गाउकी ऊंचाई वाले और उत्कृष्ट तीन पल्योपम आयुष्य वाले थे। इसी प्रकार वर्तमान अवसर्पिणीमें जानना। आगामी उत्सर्पिणी में इसी प्रकार होंगे। जंबू० के देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रके मनुष्य तीन……आ० वाले होते हैं। इसी प्रकार यावत् पुष्करवरद्वीपार्द्धके पश्चिमार्द्ध में भी जानना ॥१९४॥

जंबू० के भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीमें तीन वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और होंगे०—अरिहंतवंश, चक्रवर्ती०, दशार०। इसी प्रकार यावत् पुष्कर ०……। जंबू०……उत्सर्पिणी में तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं……—अरिहंत, चक्रवर्ती, वलदेव-वासुदेव। इसी प्रकार यावत् पुष्कर०……। तीन यथायुष्य भोगते हैं०—अरिहंत, च० और व० वासु०। तीन मध्यम आयुष्य भोगते……॥१९५॥

वादर तेजस्कायिकोंकी उत्कृष्ट तीन अहोरात्रिप्रमाण स्थिति कही है। वादर वायुकायिकोंकी उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष प्रमाण स्थिति कही है ॥१९६॥

हे भगवन्! शालि, व्रीहि, गेहूं, जव, जवजव (जौ की एक जाति) इन सभी धान्यों की जो कोठे में, वर्तन विशेषमें, मंच पर, माले पर, गोवर वगैरह से लीपकर, चारों ओर से लीपकर, रेखादिसे लांछन (चिन्ह) करके मुद्रित और ढंके हुए रक्खे हों, कितने समय तक योनि (जिसमें अंकुरकी उत्पत्ति हो सके)

रहती है। हे गौतम ! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट तीन वर्ष। उसके पश्चात् योनि वर्णादिसे हीन हो जाती है, विनाशोन्मुख होकर विनाशको प्राप्त होती है। उसके बाद बीज अबीज हो जाता है। तत्पश्चात् योनि का व्यवच्छेद (अभाव) कहा है ॥१९७॥

दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वीमें, नैरयिकोंकी उत्कृष्ट तीन सागरोपमप्रमाण स्थिति कही है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वीमें नैरयिकोंकी जघन्य तीन ....। पाँचवीं धूमप्रभा पृथ्वीमें तीन लाख नरकावास कहे हैं। तीन पृथ्वियोंमें नारकी उष्ण वेदना का अनुभव करते हुए विचरते हैं०—पहली में, दूसरी में, तीसरी में ॥१९८॥

लोकमें तीन वस्तुएँ लाख योजन प्रमाणसे समान हैं, उसी प्रकार दक्षिणादि पार्श्व और दिशा-विदिशासे भी समान हैं०—अप्रतिष्ठान नामक नरकावास, जंबूद्वीप नामक द्वीप और सर्वार्थसिद्ध महाविमान। लोकमें तीन वस्तुएँ ४५ लाख योजन प्रमाण से ......—सीमंतक नामक नरकावास, समय (मनुष्य)-क्षेत्र और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी ॥१९९॥

तीन समुद्र स्वभावसे उदकरससे युक्त कहे हैं०—कालोद, पुष्करोद और स्वयंभूरमण। तीन समुद्र बहुतसे मच्छ और कच्छपों (कछुओं) से युक्त कहे हैं०—का०......॥२००॥

लोक में शील-व्रत-गुण-मर्यादारहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासरहित तीन प्रकारके व्यक्ति मर कर सातवीं नरकमें अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में नैरयिक रूपमें उत्पन्न होते हैं०—राजा—चक्रवर्ती और वासुदेव, मांडलिक—सामान्य राजा और महारंभी कौटुम्बिक। लोकमें सदाचारी, सुव्रती, गुणी, मर्यादा-प्रत्याख्यान और पौषधोपवाससहित तीन ...... मर कर सर्वार्थसिद्ध महाविमानमें देवरूप उत्पन्न होते हैं०—काम-भोग त्यागी राजा, सेनापति और पाठक ॥२०१॥

ब्रह्मलोक और लांतकदेवलोक में विमान तीन वर्णवाले कहे हैं०—काले, नीले और लाल। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक में देवोंके भवधारणीय शरीर उत्कृष्ट तीन हाथ ऊँचाई वाले कहे हैं ॥२०२॥

तीन प्रज्ञप्तियाँ योग्य समय में ही (प्रथम और अन्तिम पहर में) पढ़ी जाती हैं०—चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और द्वीपसागर-प्रज्ञप्ति ॥२०३॥

॥ तीसरे स्थान का पहला उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय स्थानक—द्वितीय उद्देशक

तीन प्रकारका लोक कहा है, वह इस प्रकार—नामलोक, स्थापनालोक और द्रव्यलोक। तीन···लोक···—ज्ञानलोक, दर्शन० और चारित्र०। तीन··· लोक···—ऊर्ध्वलोक, अधो० और तिर्यग्० ॥२०४॥

चमर, असुरेन्द्र-असुरकुमाराधिपतिकी तीन परिषद कही हैं ०—समिता, चंडा और जाया। अभ्यन्तरपरिषद् समिता—कारण पड़ने पर बुलाने से ही आवे, मध्यम परिषद् चंडा–बुलाए और विना बुलाए आवे, बाहर की परिषद् जाया—बुलाए बिना भी आवे। चमर···० धिपति के सामानिक देवोंकी तीन ···—समिता···चमरेन्द्रके समान। इसी प्रकार त्रायस्त्रिंशकोंकी भी जानना। लोकपालोंकी तीन परिषद्–अभ्यन्तर तुंबा, मध्यम त्रुटिता और बाहरकी पर्वा। इसी प्रकार अग्रमहिषियोंकी भी जानना। बलीन्द्रकी भी इसी प्रकार यावत् अग्रमहिषियोंकी जानना। धरणेन्द्रकी, सामानिक और त्रायस्त्रिंशककी अभ्यंतर परिषद् समिता, मध्यम परिषद् चंडा और बाह्य-परिषद् जाया कही है। लोकपाल और अग्रमहिषियोंकी अ० परिषद् ईशा, म० परिषद् त्रुटिता और बाह्य परिषद् दृढ़रथा। जैसे धरणेन्द्रकी उसी प्रकार शेष भवनवासियोंकी तीन परिषद् जानना। काल नामक पिशाचेन्द्र पिशाचराजकी तीन परिषद्···—अभ्यंतर प० ईशा, मध्यम त्रुटिता और बाह्य दृढ़रथा। इसी प्रकार सामानिक और अग्रमहिषियोंकी भी तीन परिषद् जाननी। इसी प्रकार यावत् गीतरति और गीतयशा (गांधर्वेन्द्र) की तीन परिषद् जानना। चन्द्रनामक ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराजकी तीन प०···—तुंबा, त्रुटिता और पर्वा। इसी प्रकार सामानिक और अग्रमहिषियोंकी तीन परिषद् जानना। इसी प्रकार सूर्यकी भी। शक्र-नामक देवेन्द्र,देवराजकी तीन प०···—समिता, चंडा और जाया। जैसे चमरकी कही हैं, उसी प्रकार यावत् अग्रमहिषी तक। इसी प्रकार यावत् अच्युतेन्द्र लोकपाल पर्यन्तकी भी तीन परिषद् जानना ॥२०५॥

तीन याम (प्रहर) कहे हैं ० —पहला प्रहर, मध्यम प्रहर और पिछला प्रहर। तीन प्रहरोंमें आत्मा० प्ररूपित धर्म सुने। पहले···पिछले पहर में। इसी प्रकार यावत् केवलज्ञानको उत्पन्न करे·········। तीन वय-अवस्था कही हैं ०—प्रथम वय (बाल्यावस्था), मध्यम वय (यौवनावस्था) और पश्चिम वय (वृद्धावस्था)। तीन अवस्थाओंमें आत्मा के०·········यावत् के० ज्ञान······॥२०६॥

तीन प्रकारकी बोधि कही है ०—ज्ञान बोधि, दर्शन० और चारित्र०। तीन प्रकारके बुद्ध कहे हैं०—ज्ञानबुद्ध, दर्शन०, चारित्र०। इसी प्रकार मोह, मूढ़ जानना ॥२०७॥

तीन प्रकारकी प्रव्रज्या (दीक्षा) कही है ०—इहलोकप्रतिबद्ध–(इस लोक

के सुखकी इच्छा से वद्ध), परलोक०, उभयलोक० । तीन ···प्रव्रज्या ···अग्रतः-प्रतिवद्ध (भविष्य में होने वाले शिष्यादिकी आशासे), मार्गतः—(पीछे से स्वजनादिकों से प्रेम नष्ट होने पर)०, उभय० । तीन······—पीड़ा उत्पन्न करके, दूसरी जगह ले जाकर और बोध देकर । तीन···दीक्षा···—सद्गुरुओंकी सेवा से प्राप्त—अवपातप्रव्रज्या, आख्यात०—गुरुके उपदेश द्वारा ग्रहण की गई, संगार०—संकेत द्वारा ली गई ॥२०८॥

तीन निर्ग्रन्थ नोसंज्ञाउपयुक्त-आहारादिकी चिन्तारहित कहे हैं ०—पुलाक—संयमको साररहित करने वाला, निर्ग्रन्थ—उपशांतमोह और क्षीण-मोहगुणस्थानगत, स्नातक—घाती कर्ममल धोनेसे शुद्ध हुआ । तीन निर्ग्रन्थ संज्ञा उपयुक्त और नो०···—वकुश-चारित्रको मलिन करने वाला, प्रतिसेवना-कुशील—मूल और उत्तर गुणमें दोष लगाने वाला, कषायकुशील—संज्वलन-कषायोदय से दोष लगाए, परन्तु मूलोत्तरगुणमें दोष न लगाए ॥२०९॥

तीन शैक्ष्य (शिष्य) भूमियां (वड़ी दीक्षा देनेका काल प्रमाण) कही हैं ०—उत्कृष्टा, मध्यमा और जघन्या । छ मास वाली उत्कृष्ट भूमि, चार मास वाली मध्यम भूमि और सात अहोरात्र वाली जघन्य भूमि ॥२१०॥

तीन स्थविर भूमियां (पदवियां) कही हैं ०—जाति-जन्मस्थविर, श्रुत-स्थविर, पर्यायस्थविर । साठ वर्षकी आयु होने पर जातिस्थविर, ठाणांग और समवायांग (आचारांग सूयगडांग सहित) का ज्ञाता श्रमण निर्ग्रन्थ श्रुतस्थविर और वीस वर्षकी दीक्षा वालेको पर्याय-स्थविर जानना ॥२११॥

तीन प्रकारके पुरुष कहे हैं०—सुमन—हर्षयुक्त, दुर्मन—द्वेषयुक्त, नोसुमन-दुर्मन—मध्यस्थ । तीन······—कोई विहारक्षेत्रमें जाकर हर्षित होता है, कोई शोकाकुल और कोई हर्षशोकरहित (मध्यस्थभावसे) रहता है । तीन···· जाते हुए···· है । कोई मैं और जगह जाऊँगा यह सोचकर हर्षित होता······। तीन······न जाकर······। तीन ······और जगह नहीं जा रहा यह······। तीन······नहीं जाऊंगा······। इसी प्रकार आकर, आते हुए, आऊँगा यह सोचकर······। इसी प्रकार इस अभिलाप से जानना—जाकर और न जाकर, आकर न आकर, खड़ा रह कर, खड़ा न रहकर, वैठकर, न वैठकर, नष्ट करके, नष्ट न करके, छेदन करके, छेदन न करके, कह (पढ़) कर, न कह कर, वोल कर, न वोल कर, देकर, न देकर, भोजन करके, न करके, प्राप्त करके, प्राप्त न करके, पीकर, न पीकर, सो कर, न सो कर, युद्ध करके, युद्ध न करके, जीतकर, न जीतकर, अतिशय जीत कर, अतिशय न जीत कर, शब्द सुनकर, न सुनकर, रूप देखकर, न देखकर, गंध सूंघकर, न सूंघकर, रस का आस्वादन करके, न करके, स्पर्श का स्पर्श करके,

न करके, इस प्रकार २१ पदोंमें विधि और प्रतिषेधसे तीन कालरूप छ भांगोंसे गुणा करने से १२६ और एक पहलेका सब मिलकर १२७ स्थान होते हैं। ये स्थान शीलरहित पुरुषके लिए गर्हित और शीलवान्‌के लिए प्रशस्त होते हैं। इसी प्रकार एक २ शब्दादि विषयमें तीन २ आलापक कहने चाहिएँ। शब्द सुन कर कोई सुमन कोई दुर्मन, और कोई मध्यस्थभावसे रहता है। इसी प्रकार सुनते हुए, सुनूंगा पूर्ववत् जानना। इसी प्रकार न सुनकर ......न सुनते हुए, नहीं सुनूंगा......पूर्ववत्। इसी प्रकार रूप, गंध, रस और स्पर्शके विषयमें प्रत्येकके विषयमें छ २ आलापक कहने चाहिएँ। सब १२७ आलापक होते हैं ॥२१२॥

तीन स्थान शील-व्रत-गुण-मर्यादा-प्रत्याख्यान पौषधोपवासरहित के लिए गर्हित (निंदित) होते हैं०—यह लोक गर्हित होता है, उपपात (किल्विषी अथवा नरकमें उत्पन्न होनेके कारण) गर्हित होता है, आयाति (चवकर कुमानुष्य अथवा पशुत्व रूप) ग०...। तीन स्थान सुशील, सुव्रती, गुणवान, मर्यादाशील, प्रत्याख्यान-पौषधोपवासयुक्त के लिए प्रशस्त होते हैं। यह लोक, उपपात (उत्तम-देवादिमें उत्पत्ति), आयाति (चव कर उत्तम मानुषत्व की प्राप्ति) ॥२१३॥

तीन प्रकारके संसारी जीव कहे हैं०—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। तीन प्रकारके सर्व-जीव कहे हैं०—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। अथवा तीन...सर्व......—पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तकनोअपर्याप्तक (सिद्ध)। इसी प्रकार परित्त--प्रत्येकशरीरी, अपरित्त-साधारण शरीरी और नोपरित्तनोअपरित्त (सिद्ध); सूक्ष्म, बादर, और नोसूक्ष्मनोबादर; संज्ञी, असंज्ञी, नोसंज्ञीनोअसंज्ञी; भव्य, अभव्य और नोभव्यनोअभव्य; इस प्रकार तीन २ प्रकारके सर्वजीव कहे हैं ॥२१४॥

तीन प्रकारकी लोकस्थिति कही है०—आकाशके आधारसे वायु, वायुके आधारसे घनोदधि और घनोदधिके आधारसे (तमस्तमप्रभा आदि) पृथ्वी स्थित है। तीन दिशाएँ कही हैं०—ऊर्ध्व दिशा, अधोदिशा और तिर्यग् दिशा। तीन दिशाओंमें जीवोंकी गति (परभवगमन) होती है। इसी प्रकार आगति, उत्पत्ति, आहार, वृद्धि, निर्वृद्धि (शरीरकी हानि), गतिपर्याय (चलना), समुद्घात, काल संयोग—वर्तना अथवा मरण, दर्शनाभिगम—अवधि आदि द्वारा सामान्य बोध, ज्ञानाभिगम-ज्ञान द्वारा (विशेष) बोध, जीवाभिगम-जीवोंके स्वरूपका बोध। तीन दिशाओंमें जीवों और अजीवोंके स्वरूपका बोध कहा है०—ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग्। इस प्रकार गति आदि १३ सूत्र पंचेंद्रिय-तिर्यचों और मनुष्योंके होते हैं, दूसरे दंडक में नहीं ॥२१५॥

तीन प्रकारके त्रस कहे हैं०—तेजस्कायिक, वायुकायिक और स्थूल त्रस-

प्राणी। तीन प्रकारके स्थावर···—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पति-कायिक ॥२१६॥

तीन अछेद्य कहे हैं०—समय, प्रदेश और परमाणु। इसी प्रकार—अभेद्य, अदाह्य, अग्राह्य, अनर्द्ध-जिसके दो विभाग न किए जा सकें, अमध्य—प्रदेश-रहित। तीन विभागरहित कहे हैं०—समय ३ ॥२१७॥

हे आर्यो! श्रमण भगवान महावीरने गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थोंको आमंत्रित करके पूछा। आयुष्मंत श्रमणो! प्राणी किससे डरते हैं? गौतमादि श्रमण निर्ग्रथ श्रमण भगवान् महावीरके पास आए वंदना नमस्कार किया और बोले—हे देवानुप्रिय! हम निश्चयसे इस अर्थको न जानते हैं न ही देखते हैं। यदि आपको कष्ट न हो तो हम आपसे जानना चाहते हैं। हे आर्यो! श्रमण भगवान् महावीर ने··· करके कहा—हे···प्राणी दुःख से डरते हैं। हे भगवन्! दुःख किसने किया? जीव ने प्रमादसे किया। हे भगवन् वह दुःख कैसे छूटे? अप्रमादसे ॥२१८॥

हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार सामान्य रूपसे कहते हैं, विशेषरूपसे ऐसा भाषण करते हैं, ऐसी प्रज्ञापना, प्ररूपणा करते हैं—किस प्रकार श्रमण निर्ग्रंथोंके मतमें कर्म दुःखके लिए होता है (यहाँ ४ भांगे हैं)। उसमें जो किया हुआ कर्म दुःखके लिए होता है उसे नहीं पूछते १,···जो किया···लिए नहीं होता ···२,···जो न किया······नहीं होता···३, उसमें जो नहीं किया हुआ कर्म दुःख के लिए होता है, उसे पूछते हैं। इस प्रकार उनका कथन है। अकृत्य—भविष्यमें अकरणीय कर्म, अस्पृश्य, वर्तमानमें न बांधता हुआ, भूलकालमें न किया हुआ उसे नहीं करके···प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व वेदना भोगते हैं, यह उनका कहना है। भगवान् बोले—उनका कथन मिथ्या है। मैं इस प्रकार कहता हूं, भाषण-प्रज्ञापना—प्ररूपणा करता हूं। भविष्यकालमें दुःखका हेतु होनेसे कृत्य कर्म, स्पर्शित—बंधकी अवस्था योग्य कर्म दुःख है। वर्तमानमें किया जाता हुआ अतीत में किया हुआ कर्म दुःख है, उसे करके प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व, वेदना का अनुभव करते हैं, ऐसा कहना चाहिए ॥२१९॥

॥ तीसरे स्थानका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तृतीय स्थानक—तृतीय उद्देशक

तीन कारणोंसे मायी (कपटी) माया (गुप्त अकार्य) करके आलोचना नहीं करता, प्रतिक्रमण—निंदा-गर्हणा नहीं करता, उस विचारको नहीं छोड़ता, आत्मशुद्धि नहीं करता, 'फिर नहीं करूंगा' ऐसा स्वीकार नहीं करता, यथा-

योग्य प्रायश्चित तपकर्मको ग्रहण नहीं करता, वह इस प्रकार—मैंने यह पाप किया उसकी निंदा कैसे करूं, अथवा मैं अव पाप कर रहा हूं, या भविष्य में करूंगा, अतः प्रायश्चित कैसे लूं ॥२२०॥

तीन······—यदि आलोचना करूंगा तो मेरी अपकीर्ति होगी, मेरा अवर्णवाद होगा अथवा मेरा (दूसरे साधुओंके द्वारा) अविनय होगा। तीन··· ···—मेरी कीर्त्ति की हानि होगी, यश की······, पूजा-सत्कारकी हानि होगी। तीन कारणोंसे मायावी माया करके आलोचना यावत् प्रायश्चित तपको स्वीकार करता है०—मायीका यह लोक गर्हित,-निंदित होता है, उपपात·········, आयाति········। तीन······करता है ०—मायारहित का यह लोक प्रशस्त होता है, उपपात······, आमाति·········। तीन······—ज्ञानके लाभ के लिए, दर्शन (सम्यक्त्व)·····, चारित्र·········॥२२१॥

तीन प्रकारके पुरुष कहे हैं ०—सूत्रधर, अर्थधर, तदुभयधारक ॥२२२॥

साधु-साध्वियोंको तीन प्रकारके वस्त्र धारण करने, पहनने कल्पते हैं०—ऊन का वस्त्र, सन का वस्त्र, कपास·········। साधु······प्रकारके पात्र रखने, वर्तने कल्पते हैं०—तूंवे का पात्र, लकड़ी·······, मिट्टी······। तीन कारणों से वस्त्र धारण करे०—लज्जाके लिए, शासन की निंदा न हो इस लिए और शीत इत्यादि परीषह हटाने के लिए ॥२२३॥

तीन आत्मरक्षक कहे हैं०—धार्मिक प्रेरणा द्वारा दूसरेको अकार्यसे निवृत्त करनेके लिए उपदेश करने वाला आत्मरक्षक होता है। अकार्यको रोकने में असमर्थ होनेसे मौन रहने वाला आत्म०······। अकार्य·······होनेसे स्वयं वहाँ से उठकर एकान्त स्थानमें जाने वाला आत्म०·······॥२२४॥

तृपित साधुको तीन प्रकार की पानी की दात लेनी कल्पे०—उत्कृष्ट दात (वहुत पानी), उससे हीन मध्यम दात और जिससे एक वार प्यास बुझे वह जघन्य दात ॥२२५॥

तीन कारणोंसे साधु सांभोगिक (इकट्ठा आहार पानी करने वाले) को विसंभोगिक करता हुआ आज्ञाका उल्लंघन नहीं करता०—स्वयं उसके अकार्य को देखकर, विश्वस्तकी वातको विचार कर निर्णय करके, तीसरी वार झूंठ वोलने वाले को प्रायश्चित दे। चौथी वार विसंभोगिक करे ॥२२६॥

तीन प्रकार की अनुज्ञा (सामान्य रूपसे पदवी देना) कही है०—आचार्य-पनें, उपाध्याय०, गणाचार्य०। तीन······समनुज्ञा (विशेष·······)······—आचार्य······। इसी प्रकार उपसंपदा (ज्ञानादिगुण के लिए दूसरे आचार्य की सेवा करना), विजहणा—प्रमादादि दोषके कारण आचार्यादिका त्याग ॥२२७॥

तीन प्रकार का वचन कहा है०—तद्वचन घड़ेको घड़ा कहना, तदन्य वचन और डित्थादि निरर्थक वचन नोवचन। तीन······अवचन कहा है०—नोतद्वचन—घड़े को घड़ा न कहकर वस्त्र कहना, नोतदन्यवचन–घड़े को घड़ा कहना, अवचन–मौन रखना। तीन प्रकारका मन कहा है०—तन्मन—जो देवदत्तादिका अथवा जो घटादि वस्तुमें मन हो वह, तदन्यमन, नो अमन–मनोमात्र। तीन प्रकारका अमन कहा है०—देव०······मन न हो वह, नो तदन्यमन, अमन-मन से निवृत्ति ॥२२८॥

तीन कारणोंसे अल्पवृष्टि होती है०—उस देश अथवा उसके प्रदेश में बहुत से उदकयोनि वाले जीव और पुद्गल उदक (पानी) रूपमें उत्पन्न नहीं होते, चवते नहीं, अथवा चवते उपजते नहीं। देव-वैमानिक और ज्योतिष्क, नागकुमार (भवनपति देव) यक्ष और भूत (व्यंतर) भली भांति आराधना न किए जाने पर उस देशादि में उत्पन्न हुए (मेघरूप में) परिणत तथा बरसनेके लिये तैयार मेघोंका अन्य देशमें संहरण कर देते हैं। उत्पन्न हुए, परिणत हुए और बरसने के लिये तैयार मेघसमूहको वायु नष्ट कर देती है। इन तीन कारणोंसे अल्पवृष्टि होती है। तीन कारणोंसे महावृष्टि होती है०—उस······उत्पन्न होते हैं, चवते हैं, चवते और उपजते हैं। देव······आराधना किए जाने पर अन्य देशादिमें······मेघोंका उस देशमें संहरण कर······। उत्पन्न·········वायु नष्ट नहीं करती। इन तीन कारणोंसे महावृष्टि होती है ॥२२९॥

तीन कारणोंसे देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आनेकी इच्छा करे, परन्तु वह आ नहीं सकता०—देवलोक······देव देव-संबंधी कामभोगोंमें मूर्च्छित, गृद्ध ग्रथित स्नेहपाशबद्ध और अत्यंत आसक्त होने के कारण मनुष्य संबंधी काम भोगोंका आदर नहीं करता, वस्तुरूप नहीं जानता, 'निरर्थक हैं' ऐसा मानता है। यह प्रयोजन है, ऐसा निश्चय नहीं करता; 'ये मुझे मिलें' ऐसा निदान नहीं करता। और उन कामभोगोंमें रहने का विचार भी नहीं करता। देवलोक·········आसक्त ऐसा जो देव होता है उसका मनुष्य संबंधी प्रेम नाश हो जाता है और स्वर्गीय प्रेमका प्रवेश होता है।·········उसके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न होता है—यहां से अभी न जाऊं, अपना कार्य (नाटक) पूर्ण करके एक मुहूर्त पीछे जाऊँगा। तब तक······अल्पायुष्य वाले मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इन तीन कारणोंसे देवलोक······सकता। तीन······करे और वह आ सकता है०—देवलोक······मूर्च्छित नहीं होता······आसक्त नहीं होता, उसके मन में ऐसा विचार······—कि मनुष्यभव में मेरे आचार्य हैं अथवा उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणी, गणधर अथवा गणावच्छेदक हैं जिन (महापुरुषों) के प्रभावसे मुझे स्वर्गीय देवऋद्धि, दिव्यकांति, दिव्यानुभाव—वैक्रिय शक्ति

आदि प्राप्त हुई…भोग रहा हूं, इसलिये मैं जाऊँ उन भगवन्तोंको वंदना नमस्कार करूं यावत् पर्युपासना-सेवा करूँ। तीन………—कि मनुष्य भवमें अमुक व्यक्ति ज्ञानी है, तपस्वी है अथवा अतिशय दुष्कर दुष्कर कार्य (क्रिया) करने वाला है, इसलिए……उसको वं०………। तीन……—कि मनुष्य भव में मेरे माता पिता यावत् पुत्रवधू हैं, इसलिए मैं जाऊँ उनके समीप प्रकट होऊँ वे मेरी इस प्रकार की दिव्य-ऋद्धि-कान्ति-अनुभाव—प्राप्तिको देखें। इन तीन……… आ सकता है ॥२३०॥

तीन स्थानोंकी देव इच्छा करे०—मनुष्यभव, आर्य क्षेत्र में जन्म और उत्तम कुलोत्पत्ति ॥२३१॥

तीन कारणोंसे देव पश्चात्ताप करता है ०—अहो ! इति खेदे, मैंने बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम होते हुए, निरुपद्रव—सुकाल होते हुए, निरोग होते हुए भी विद्यमान आचार्य, उपाध्यायसे प्रचुर सूत्राभ्यास नहीं किया।…मैंने इस लोकमें बंधकर, परलोकसे पराङ्मुख होकर विषय तृष्णावश प्रचुर काल तक संयमका पालन नहीं किया।……मैंने ऋद्धि, रस और सात-सुखके अहंकारसे भोगकी आशंसामें गृद्ध होकर निर्मल चारित्रका पालन नहीं किया। इन तीन…… पश्चात्ताप……॥२३२॥

तीन कारणोंसे देव 'मेरा च्यवन होगा' ऐसा जानता है ०—निस्तेज विमान और आभरण देखकर, मुरझाए हुए कल्पवृक्षको देखकर, अपनी शारीरिक कान्ति को क्षीण होती हुई देखकर। इन तीन……है। तीन कारणोंसे देव उद्वेगको प्राप्त होता है ०—अहो ! मुझे दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य कांति, दिव्य देवशक्ति उत्पन्न, प्राप्त और भोग्य ऋद्धि छोड़नी पड़ेगी। माता का रज और पिताका वीर्य एकत्रित इन दोनोंका सर्वप्रथम आहार करना पड़ेगा। जठर द्रव्य कर्दम वाली, अशुचिमय, उद्वेगकारक भयंकर ऐसी गर्भरूप वसति-स्थान में रहना पड़ेगा। इन तीन……॥२३३॥

तीन संस्थान (आकार) वाले विमान कहे हैं ०—वृत्त, त्रिकोण और चौरस। उनमें जो वृत्त विमान हैं, वे पुष्करकर्णिका (कमलके मध्य भाग) के आकार वाले हैं। सर्वदिशा एवं विदिशाओं में प्राकार द्वारा घिरे हुए एक द्वार वाले कहे हैं। जो त्रिकोण विमान हैं वे सिंघाड़ेके आकार वाले हैं, दो ओरसे गढ़ से घिरे हुए तीन द्वार वाले कहे हैं। जो चतुरस्र विमान हैं, वे अखाड़ेके आकार वाले हैं। चारों ओरसे वेदिकासे घिरे हुए चार द्वार वाले कहे हैं। तीन आधारों पर विमान स्थित हैं ०—घनोदधिके आधार पर, घनवायु०, आकाश०। तीन

प्रकारके विमान कहे हैं ०—शाश्वत, वैक्रिय–भोगादिक के लिए बनाए हुए, पारियानिक–प्रयोजनके लिए बनाए हुए 'पालक' इत्यादि ॥२३४॥

तीन प्रकारके नैरयिक कहे हैं०—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्र-दृष्टि। इस प्रकार विकलेन्द्रियको छोड़कर यावत् वैमानिक पर्यंत (१६दंडक में) तीन दृष्टि होती हैं। तीन दुर्गतियाँ कही हैं ०—नैरयिक-दुर्गति, तिर्यचयोनिक-दुर्गति और मनुष्य-दुर्गति। तीन सुगतियाँ कही हैं०—सिद्ध सुगति, देव० और मनुष्य०। तीन दुर्गत (दुःखयुक्त) कहे हैं०—नैरयिक दुर्गत, तिर्यंच० और मनुष्य०। तीन सुगत (सुखी) कहे हैं०—सिद्ध सुगत, देव० और मनुष्य० ॥२३५॥

चतुर्थभक्तिक साधु को तीन प्रकार का जल लेना कल्पता है०—उत्स्वेदिम, संसेकिम और चावलका धोवन। छट्ठ भक्त करने वाले साधुको तीन···०—तिल का धोवन, तुषका धोवन और जौ का धोवन। अष्टम भक्त करने वाले साधु······—ओसामण, कांजी का पानी और उष्ण जल ॥२३६॥

तीन प्रकार का उपहृत कहा है ०—फलिक उपहृत-अनेक प्रकार के व्यंजन अथवा भक्ष्य द्वारा बनाया गया (लेपकृत), शुद्धोपहृत-लेपरहित आहार करने वाले के पास लाया हुआ और संसृष्टोपहृत–भोजन करने की इच्छासे हाथ में लिया हुआ। तीन प्रकारका अवग्रहीत (आहार) कहा है ०—जो देने वाला हाथ से दे वह आहार, जो रसोई के वर्तन में से निकाल कर खानेके वर्तन में डाले वह आहार और शेष बचा हुआ आहार जो थाली वगैरह में डालते हैं ॥२३७॥

तीन प्रकार की अवमोदरता (ऊणोदरी) कही है ०—उपकरण ऊनोदरी—उपकरण में कमी करना, भक्तपान ऊनोदरी, भावऊनोदरी—कषाय में कमी करना। उपकरणऊनोदरी तीन प्रकार की कही है ०—एक वस्त्र रखना, एक पात्र रखना, संयमी की उपधि अर्थात् सदोरक मुखवस्त्रिका तथा रजोहरण रखना ॥२३८॥

तीन स्थान साधु-साध्वियोंके अहितके लिए, असुख०, अयुक्त, अमोक्ष, अशुभानुबंधके लिए होते हैं०—दीनतापूर्वक बोलना, शय्यादिका दोष बताकर शोर मचाना, आर्त्त तथा रौद्र ध्यान करना। तीन स्थान साधु-साध्वियोंके हितके लिए, सुख०, युक्त मोक्ष एवं शुभ अनुबन्ध (परम्परा) के लिए होते हैं ०—दुःख में अदीनता, दोष मुक्त उपधिमें शांति, अशुभ ध्यान न करना ॥२३९॥

तीन प्रकार का शल्य कहा है ०—मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य ॥२४०॥

तीन कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या वाला होता है०

—आतापना लेनेसे, क्रोधनिग्रह क्षमा करनेसे, छट्ठअट्ठमादि तपश्चर्या द्वारा ॥२४१॥

त्रैमासिकी भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करने वाले साधुको तीन दात भोजनकी तीन पानीकी लेनी कल्पे। एक रात्रिक (बारहवीं) भिक्षुप्रतिमा का भली भांति पालन न करने वाले साधु के लिए तीन स्थान अहित······—उन्माद को प्राप्त हो, दीर्घकालीन रोग और आतंक को प्राप्त हो तथा केवली प्ररूपित धर्मसे भ्रष्ट हो। एक रात्रिक······भली भांति पालन करने वाले साधुके लिए तीन स्थान हित······—अवधिज्ञान प्राप्त हो, मनःपर्यायज्ञान प्राप्त हो और केवलज्ञान प्राप्त हो ॥२४२॥

जंबूद्वीप नामक द्वीप में तीन कर्मभूमियां कही हैं०—भरत, ऐरवत और महाविदेह। इसी प्रकार घातकीखंड द्वीपके पूर्वार्ध में यावत् पुष्करवरद्वीपार्द्ध के पश्चिमार्द्ध में तीन कर्मभूमियां कही हैं ॥२४३॥

तीन प्रकारका दर्शन कहा है ०—सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यग्-मिथ्या(मिश्र)दर्शन। तीन प्रकारकी रुचि (तत्वश्रद्धारूप) कही है ०—सम्यग्रुचि, मिथ्या० और मिश्र०। तीन प्रकार का प्रयोग (योग का व्यापार) कहा है०—सम्यग्प्रयोग, मिथ्या० और स० मि० ॥२४४॥

तीन प्रकारका व्यवसाय कहा है०—धर्मसंबंधी व्यवसाय, अधर्म···, धर्माधर्म···। अथवा तीन···व्यवसाय (निर्णयरूप)·· ···—प्रत्यक्ष-अवधि इत्यादि, प्रात्ययिक—इन्द्रियादि निमित्त से होने वाला और आनुगामिक। अथवा तीन ···व्यवसाय,···—इहलोकसंबंधी, परलोकसंबंधी और उभयसंबंधी। इहलौकिक० व्यवसाय तीन प्रकार का कहा है० —लौकिक व्यवसाय, वैदिक०, सामयिक—सांख्यादि संबंधी०। लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का है०—अर्थ—संबंधी, धर्मसंबंधी और कामसंबंधी। वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का है०—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद संबंधी। सामयिक व्यवसाय तीन···—ज्ञान, दर्शन और चरित्र संबंधी ॥२४५॥

तीन प्रकारके अर्थ—द्रव्यके उपाय कहे हैं०—साम-प्रिय वचन इत्यादि, दंड, भेद—एक-दूसरेमें भेद डालना ॥२४६॥

तीन प्रकारके पुद्गल कहे हैं०—प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत, विस्रसा-परिणत ॥२४७॥

तीनके आधार पर नरकावास हैं०—पृथ्वी प्रतिष्ठित, आकाश० और आत्म०। नैगम, संग्रह और व्यवहारनय के मत से पृथ्वी प्रतिष्ठित हैं। ऋजुसूत्र नयके मतसे आकाशप्रतिष्ठित हैं और शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत इन तीन नयोंके मतसे आत्मप्रतिष्ठित हैं ॥२४८॥

तीन प्रकारका मिथ्यात्व कहा है०—अक्रिया (दुष्क्रिया), अविनय, अज्ञान। अक्रिया तीन प्रकारकी कही है ०—प्रयोगक्रिया, समुदानक्रिया और अज्ञानक्रिया। प्रयोग क्रिया तीन प्रकार की कही है०—मन—प्रयोगक्रिया (मनका व्यापाररूप), वचनप्रयोगक्रिया, कायप्रयोगक्रिया। समुदानक्रिया (सम्यक् प्रकारसे कर्मका ग्रहण) तीन···—अनंतरसमुदान—(प्रथम समयकी) क्रिया, परंपरसमुदान (दूसरे आदि समयकी) क्रिया, तदुभयसमुदानक्रिया (प्रथम-अप्रथम समय की)। अज्ञानक्रिया तीन प्रकारकी कही है० —मतिअज्ञान क्रिया, श्रुतअज्ञान० और विभंगज्ञान०। अविनय तीन प्रकारका कहा है०—देशत्यागी—स्वामीको गाली वगैरह देने वाला, निरालंबनता—गच्छ अथवा कुटुम्ब आदिके आलंबनकी निरपेक्षा, नानाप्रकारके प्रेमद्वेषरूप अविनय। तीन प्रकारका अज्ञान कहा है ० —देश अज्ञान—जो विवक्षित द्रव्यके देश को न जाने वह, सर्व अज्ञान और भावअज्ञान—विवक्षित द्रव्यको पर्याय से न जाने वह ॥२४९॥

तीन प्रकारका धर्म कहा है ० —श्रुतधर्म, चरित्र धर्म और अस्तिकाय-धर्म। तीन प्रकारका उपक्रम (उपायपूर्वक आरंभ) कहा है ० —धार्मिक उपक्रम, अधार्मिक उपक्रम और धार्मिकाधार्मिक उपक्रम। अथवा तीन प्रकारका उपक्रम कहा है ०—आत्मोपक्रम-शीलरक्षादिके लिए मरना, परोपक्रम—दूसरे का अथवा दूसरे के लिए, तदुभयोपक्रम—अपने तथा दूसरे के लिए। वैयावृत्त्य तीन प्रकार का है ० —आत्मवैयावृत्त्य, परवैयावृत्त्य, तदुभयवैयावृत्य। इसी प्रकार अनुग्रह, अनुशिष्टि-हितशिक्षा, उपालंभ, इन सबके एक-एक के तीन २ आलापक उपक्रमके समान जानने चाहिएँ ॥२५०॥

तीन प्रकारकी कथा कही है ० —अर्थकथा, कामकथा और धर्मकथा। तीन प्रकारका विनिश्चय (स्वरूपज्ञान) कहा है ० —अर्थविनिश्चय, काम०, धर्म० ॥२५१॥

हे भगवन्! तथारूप श्रमण माहनकी सेवाका क्या फल है? शास्त्रश्रवण, हे·· उस श्रवणका क्या फल है? ज्ञान,······ज्ञानका······? विज्ञान, इस प्रकार इस अभिलापसे यह गाथा जाननी चाहिए। श्रवणका फल ज्ञान है। ज्ञानका विज्ञान, विज्ञानका पच्चक्खाण, पच्चक्खाण (त्याग) का संयम, संयमका अनास्रव (संवर), अनास्रव का तप, तपका व्यवदान (कर्मशोधन), व्यवदान का अक्रिया और अक्रिया का फल निर्वाण है। यावत् हे भगवन्! उस निर्वाण का क्या फल है? हे श्रमणायुष्मन्! सिद्धिगतिगमन पर्यंत फल है ॥२५२॥

॥ तीसरे स्थान का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तृतीय स्थानक—चतुर्थ उद्देशक

भिक्षुप्रतिमा ग्रहण करने वाले भिक्षुको तीन प्रकारके उपाश्रय (प्रति-लेखन के लिए) कल्पते हैं ० —आगमन गृह-धर्मशाला इत्यादि, विवृत्त—खुला घर, वृक्ष (मूल) गृह । इसी प्रकार इनकी आज्ञा लेना और ग्रहण करना कल्पता है । ……तीन……संस्तारक कल्पते हैं० —पृथ्वीशिला, काष्ठ० और यथा-संस्तृत-तृणादिक संस्तारक । इसी प्रकार……कल्पता है ।।२५३।।

तीन प्रकारका काल कहा है ०—अतीत, प्रत्युपन्न—वर्तमान और अनागत —भविष्य । तीन प्रकारका समय कहा है ०—अतीत ३। इसी प्रकार-आवलिका, आनप्राण, उच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र यावत् वर्षशतसहस्र (लाख), पूर्वांग, पूर्व यावत् अवसर्पिणी तीन प्रकारकी कही है । तीन प्रकार का पुद्गल-परावर्त्त कहा है ०—अतीत ३ ।।२५४।।

तीन प्रकारका वचन कहा है ० —एकवचन, द्विवचन और बहुवचन । अथवा तीन……वचन……—स्त्रीवचन, पुंवचन और नपुंसकवचन । अथवा तीन……वचन…… —अतीत वचन, वर्तमान० और भविष्य० ।।२५५।।

तीन प्रकारकी प्रज्ञापना कही है० —ज्ञान प्रज्ञापना, दर्शन० और चरित्र० । तीन प्रकारका सम्यक् (यथार्थ मोक्षसाधक) कहा है ० -ज्ञान सम्यक्, दर्शन० और चारित्र० ।।२५६।।

तीन प्रकारका उपघात (अकल्पनीय पिंड शय्या इत्यादि के दोषोंसे युक्त) कहा है ०—उद्गम उपघात, उत्पादना उपघात और एषणा उपघात । इसी प्रकार विशुद्धि (आहारादिकी) भी ।।२५७।।

तीन प्रकार की आराधना कही है०—ज्ञान आराधना, दर्शन०, चरित्र० । ज्ञानाराधना तीन प्रकार की कही है०—उत्कृष्टा, मध्यमा और जघन्या । इसी प्रकार दर्शनाराधना तथा चारित्राराधना भी तीन २ भेद वाली जानें । तीन प्रकारका संक्लेश (पतन) कहा है०—ज्ञानसंक्लेश, दर्शन० और चारित्र०। इसी प्रकार असंक्लेश (विशुद्धि), अतिक्रमण, व्यतिक्रमण, अतिचार और अना-चार भी तीन २ प्रकार के जाननें । तीन सम्बन्धी अतिक्रमण की आलोचना, प्रतिक्रमण करे, आत्मसाक्षीसे निन्दा करे, गुरु साक्षीसे गर्हा करे यावत् योग्य-तप आदि स्वीकारे०—ज्ञानातिक्रमकी ३ । इसी प्रकार व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचारके विषयमें जानें ।।२५८।।

तीन प्रकारका प्रायश्चित्त कहा है०—आलोचनायोग्य, प्रतिक्रमणयोग्य और तदुभययोग्य ।।२५९।।

जंबूद्वीप नामक द्वीपमें मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशा में तीन अकर्मभूमियां कही हैं ०—हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु । जंबू०……मेरु ० की उत्तर दिशा

में……—उत्तरकुरु, रम्यक्वर्ष और एरण्यवत। जंबू०……दक्षिण दिशा में तीन वर्षक्षेत्र कहे हैं०—भरत, हैमवत और हरिवर्ष। जंबू०……उत्तर……—रम्यक्वर्ष, हैरण्यवत और ऐरवत। जंबू०……दक्षिण दिशा में तीन वर्षधर-पर्वत कहे हैं०—चुल्लहिमवंत, महाहिमवंत और निषध पर्वत। जंबू०……उत्तर……—नीलवन्त, रूपी और शिखरी पर्वत। जंबू० दक्षिण दिशा में तीन महाद्रह कहे हैं ०—पद्मद्रह, महापद्म० और तिगिंछ०। उन द्रहोंमें महर्द्धिक यावत् एक पल्योपमकी स्थितिवाली तीन देवियां रहती हैं। उनके नाम—श्री, ह्री और धृति। इसी प्रकार मेरुकी उत्तर दिशामें भी तीन द्रह हैं। उनके नाम कहते हैं ०—केशरीद्रह, महापौंडरिक० और पौंडरिक०। देवियोंके नाम—कीर्त्ति, बुद्धि और लक्ष्मी। जंबू० दक्षिण दिशामें चुल्लहिमवंत नामक वर्षधर पर्वतसे पद्मद्रह नामक महाद्रह से तीन महानदियां वहती हैं ०—गंगा, सिंधु और रोहितांशा। जंबू० उत्तर० शिखरी नामक वर्षधर पर्वतसें पौंडरिक-द्रह नामक……—सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तवती। जंबूद्वीपमें मेरुपर्वतकी पूर्वदिशामें और शीता नामक महानदी की उत्तर दिशा में तीन अंतर नदियां कही हैं ०—ग्राहवती, द्रहवती और पंकवती। जंबू०……दक्षिण दिशामें तीन……—तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्तजला। जंबूद्वीपमें मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें और शीतोदा नामक महानदीकी दक्षिण दिशामें तीन अंतरनदियां……—क्षीरोदा, शीतश्रोता और अन्तर्वाहिनी। जंबू……उत्तर……—उर्मिमालिनी, फेन० और गम्भीर०। इसी प्रकार धातकीखंड द्वीपके पूर्वार्द्धमें भी अकर्मभूमिसे लगाकर यावत् अन्तर नदी पर्यंत सारा वर्णन कहना, यावत् पुष्करवरद्वीपार्द्धके पश्चिमार्धमें उसी प्रकार सब कहना ॥२६०॥

तीन कारणोंसे पृथ्वीका देश (एक भाग) चलित हो०—इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे, ऊपरसे महान् पुद्गल विस्रसा परिणाम से गिरें तव उन महान् पुद्गलों के गिरते हुए पृथ्वी का देश चलित हो। महोरग—व्यंतर विशेष महर्द्धिक यावत् महाऐश्वर्यवान् देवके इस रत्नप्रभा पृथ्वीके ऊपर-नीचे जाने आने से पृथ्वी……। नागकुमार और सुपर्णकुमारोंका परस्पर संग्राम होने पर पृथ्वी…। तीन कारणोंसे केवलकल्पा (परिपूर्ण) पृथ्वी चलित हो०—इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे घनवायु क्षुभित हो, उसके क्षुभित होने पर घनोदधि कंपित होकर परिपूर्ण पृथ्वीको चलित करे। अथवा कोई महर्द्धिक यावत् महान ऐश्वर्यवान् देव तथारूप श्रमण अथवा माहन को अपनी ऋद्धि, कांति, यश, वल, वीर्य और पुरुषकार (पराक्रम) दिखाता हुआ पृथ्वी को चलित करे। तथा देवों (वैमानिकों) और असुरों (भवनपतियों) का संग्राम होने पर परिपूर्ण पृथ्वी

चलायमान हो। इन तीन कारणोंसे पृथ्वी चलायमान हो ॥२६१॥

तीन प्रकार के किल्विषिक (नीच जातिके) देव कहे हैं ०—तीन पल्योपम की स्थिति वाले, तीन सागरोपम……, तेरह सागरो ०……। हे भगवन् ! तीन पल्योपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं? ज्योतिष्कोंके ऊपर और सौधर्म तथा ईशान देवलोकके नीचे तीन पल्योपमकी स्थिति वाले देव रहते हैं। हे भगवन् ! तीन सागरोपम……। सौधर्म और ईशान देवलोकके ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के नीचे……। हे भगवन् ! तेरह सागरोपम ……? ब्रह्मदेवलोकके ऊपर और लांतक देवलोकके नीचे……॥२६२॥

शक्र देवेन्द्र देवराजकी बाह्यपरिषद्के देवोंकी तीन पल्योपमकी स्थिति कही है।……अभ्यन्तर परिषद्की देवियोंकी तीन प०……। ईशानेन्द्र देवराज की बाह्यपरिषद्की देवियों की तीन प०……॥२६३॥

तीन प्रकारका प्रायश्चित्त कहा है ०—ज्ञानप्रायश्चित, दर्शन०, चारित्र०। तीन प्रकारके अनुद्घातिम (गुरु प्रायश्चित प्राप्त) साधु कहे हैं ०—हस्तकर्म करता हुआ, मैथुनका सेवन करता हुआ और रात्रिभोजन करता हुआ। तीन पारांचिक (प्रायश्चित के योग्य) कहे हैं ०—दुष्ट पारांचिक (विषय-कषाय से दुष्ट), प्रमत्त पारांचिक (पांचवीं स्त्यानर्द्धि निद्रा के उदयवाला), परस्पर चुंबन इत्यादि करने वाला। तीन अनवस्थाप्य (नववें प्रायश्चितके योग्य) कहे हैं ०—सार्धमिकों की शिष्यादि की चोरी करने वाला, अन्यधार्मिकोंकी चोरी करने वाला, हस्तताल—यष्टि, मुष्टि, लकुटादि द्वारा अपने पर अथवा दूसरें पर प्रहार करने वाला। तीन को प्रव्रज्या देना न कल्पे ०—पंडक—नपुंसक को, वातिक (वायुरोगी) को, क्लीब—असमर्थ को। इसी प्रकार मूंडना (लोच करना), सामाचारी सिखाना, महाव्रतोंमें स्थापन, साथ आहार-पानी करना, अपने पास रखना नहीं कल्पता ॥२६४॥

तीन अवाचनीय (सूत्र पढ़ाने के अयोग्य) कहे हैं ०—अविनीत, विगय-प्रतिबद्ध-घृतादि रस में लुब्ध और अव्यवसितप्राभृत-उत्कृष्ट क्रोध वाला। तीन को वाचना देना कल्पता है ०—विनीत, अविगयप्रतिबद्ध, उपशांत ॥२६५॥

तीन दुःसंज्ञाप्य (कठिनाई से समझने वाले) कहे गए हैं ०—दुष्ट, मूढ़ और व्युद्ग्राहित—कुगुरु द्वारा मिथ्यामत में दृढ़ किया हुआ। तीन सुसंज्ञाप्य (आसानी से समझने वाले)……—अदुष्ट, अमूढ़ और अव्युद्ग्राहित ॥२६६॥

तीन पर्वत चक्रवाल गढ़की तरह कहे गए हैं ०—मानुषोत्तर, कुंडलवर और रुचकवर पर्वत। तीन महतिमहालय (बड़े) कहे हैं ०—जंबूद्वीपका मेरु सब मेरुपर्वतों में, स्वयंभूरमण सब समुद्रोंमें, ब्रह्मदेवलोक सब देवलोकोंमें बड़ा है ॥२६७॥

तीन प्रकार की कल्प (आचार) स्थिति कही है ०—सामायिक कल्प-स्थिति, छेदोपस्थापनीय० और निर्विशमान (परिहारविशुद्धि तप)०। अथवा तीन प्रकार की कल्प०······—निर्विष्ट (अनुपरिहारिक) कल्पस्थिति, जिन-कल्प० और स्थविर० ॥२६८॥

नैरयिकों के तीन शरीर कहे हैं ०—वैक्रिय, तैजस और कार्मण। असुर-कुमारोंके तीन शरीर कहे हैं ०—वैक्रिय ३, इस प्रकार सब देवोंके तीन शरीर होते हैं। पृथ्वीकायिकों के तीन शरीर कहे हैं०—औदारिक,तैजस और कार्मण। इसी प्रकार वायुकायिक को छोड़कर शेष यावत् चौरिंद्रय पर्यंत जानना ॥२६९॥

गुरु की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक (प्रतिकूल) कहे हैं—आचार्य (की निन्दा करने वाला) प्रत्यनीक, उपाध्याय० और स्थविर०। गति की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे हैं०—इहलोक प्रत्यनीक, परलोक० और उभयलोक०। समूह की अपेक्षा तीन प्र०······—कुल प्रत्यनीक, गण० और संघ०। अनुकंपा-सहायता की अपेक्षा तीन प्र०······—तपस्वी प्रत्यनीक, ग्लान-असमर्थ० और शैक्ष (नवदीक्षित का)०। भावकी अपेक्षा तीन प्र०······—ज्ञान प्रत्यनीक, दर्शन०और चारित्र०। सूत्रकी अपेक्षा तीन प्र०······—सूत्र प्रत्यनीक, अर्थ० और तदुभय० ॥२७०॥

तीन पिताके अंग कहे हैं०—अस्थि, हड्डी का मध्यरस और केश—(दाढ़ी—मूँछ) रोम—नख। तीन अंग माता के कहे हैं०—मांस, रक्त और मेद (चरबी) फेफड़ा वगैरह ॥२७१॥

तीन मनोरथों द्वारा श्रमण निर्ग्रंथ महानिर्जरा और महापर्यवसान (समाधिमरण) वाला होता है०—कब मैं थोड़ा बहुत श्रुताध्ययन करूंगा, कब मैं एकल-विहारी-प्रतिमाको अंगीकार करके विचरूंगा और कब मैं अपश्चिममारणान्तिक संलेखना करके आहार पानीका त्याग करके पादपोपगमन (संथारा) करके मृत्यु की इच्छा न करता हुआ विचरूंगा। इस प्रकार मन, वचन और कायासे विचारणा करता हुआ निर्ग्रंथ महानिर्जरा ······॥२७२॥

तीन मनोरथों द्वारा श्रमणोपासक (श्रावक) महानिर्जरा·········—कब मैं थोड़े बहुत परिग्रहको छोड़ूंगा, कब मैं द्रव्य भावसे मुण्डित होकर घरको छोड़ कर अनगार बनूंगा, कब मैं अंतिम मारणान्तिक······ । इस प्रकार मन ······ श्रमणोपासक महानिर्जरा······ ॥२७३॥

तीन प्रकारसे पुद्गलों (परमाणु इत्यादि) का प्रतिघात (गतिकी स्खलना) कही है०—एक परमाणुके दूसरे परमाणु पुद्गलसे टकराने पर गतिकी स्खलना हो, रूक्षत्वके कारण परमाणुपुद्गल स्खलित हो, लोकान्तमें परमाणु पुद्गल अटक जाता है, कारण वहां धर्मास्तिकायका अभाव है ॥२७४॥

तीन प्रकारका चक्षु (द्रव्यसे नेत्र भावसे ज्ञान) कहा है०—एक चक्षु (वाले), द्विचक्षु और त्रिचक्षु। छद्मस्थ मनुष्य विशिष्ट ज्ञान चक्षुरहित होनेसे एक चक्षु वाले, देव दो चक्षु वाले (चक्षुरिन्द्रिय और अवधिज्ञान सहित होनेसे), और उत्पन्न-ज्ञान दर्शनधारी तथारूप श्रमण-माहणको त्रिचक्षु कहना चाहिए [१] ।।२७५।।

तीन प्रकारका अभिसमागम (वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जानना) कहा है०—ऊंचा, नीचा और तिरछा अभिसमागम। जब तथारूप श्रमण-माहणको अतिशेष परमावधि रूप ज्ञान और दर्शन उत्पन्न होता है तब वह साधु पहले ऊर्ध्व-लोकको जानता है, तत्पश्चात् तिर्यक्‌लोकको जानता है, उसके बाद अधोलोकको जानता है। हे आयुष्मन् श्रमण! अधोलोकका ज्ञान दुष्कर कहा गया है ।।२७६।।

तीन प्रकारकी ऋद्धि कही है०—देवर्द्धि, राजर्द्धि, गणर्द्धि (आचार्यादिकी)। देवर्द्धि तीन प्रकारकी कही है०—विमानकी ऋद्धि, विकुर्वणा० और परिचारणा०। अथवा देवर्द्धि·······—सचित्त, अचित्त और मिश्र। राजर्द्धि तीन·······—राजाकी अतियानऋद्धि (नगर प्रवेशके समय तोरणादि सज्जा), राजाकी निर्याण-ऋद्धि (बाहर जाते समय हाथी, घोड़े वगैरह साथ जाना), राजाकी सेना, वाहन, भंडार और कोठार रूप। अथवा राजर्द्धि तीन·······—सचित्त, अचित्त और मिश्र। गणर्द्धि तीन·······—ज्ञान ऋद्धि, दर्शन०, चारित्र०। अथवा गणर्द्धि तीन·······—सचित्त, अचित्त और मिश्र ।।२७७।।

तीन प्रकारका गौरव (अभिमान) कहा है०—ऋद्धिगौरव, रसगौरव और सात (सुख) गौरव। तीन प्रकारका करण (क्रियानुष्ठान) कहा है०—धार्मिक-करण (साधुका), अधार्मिककरण (अविरति मिथ्यादृष्टिका) और धार्मिका-धार्मिक करण (देश विरतिका) ।।२७८।।

श्री सुधर्मा स्वामी श्री जंबू स्वामीसे कहते हैं कि भगवान महावीरने तीन प्रकारका धर्म अनुष्ठान कहा है०—सुअधीत-काल-विनयादि आराधना द्वारा पढ़ा हुआ, सुध्यान–अच्छी तरह सूत्रार्थका मनन करना, सुतपसित–वांछारहित भली भांति तप अनुष्ठान किया हुआ। जब भली भांति अध्ययन किया जाता है तभी श्रुतके अर्थका भली भांति मनन (चिंतन) होता है। जब श्रुत······मनन होता है तब अच्छी तरह तपसित होता है। वह सुअधीत, सुध्यात और सुतपसित–यह तीन प्रकारका धर्म भगवानने भली भांति निरूपित किया है ।।२७९।।

तीन प्रकारकी व्यावृत्ति (हिंसादिककी निवृत्ति) कही है०—जाणू–हिंसादिके फलको दुःखदायक जानकर उससे निवृत्त होना, हिंसादि···बगैर जाने····,

१. वह इस प्रकार—द्रव्यनेत्र, परमश्रुत और अवधिज्ञानरूप नेत्र।

हिंसादिकका अशुभ फल होगा कि नहीं ऐसे संशयसे उससे निवृत्त होना। इसी प्रकार अध्युपपादन (आसक्ति), पर्यापदन (भोगना) ॥२८०॥

तीन प्रकारका अंत (रहस्य) कहा है०—लौकिक शास्त्रका रहस्य, वेदका रहस्य और समय-जिनेश्वर आदिके सिद्धान्तोंका रहस्य ॥२८१॥

तीन प्रकारके जिन (रागादिके जीतने वाले) कहे हैं०—अवधिज्ञान (प्रधान) जिन, मनःपर्यवज्ञान जिन और केवलज्ञान जिन। तीन प्रकारके केवली कहे हैं०—अवधिज्ञान केवली (के समान विशिष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान वाले), मनःपर्याय० और केवल०। तीन प्रकारके अर्हन्त (देवादिकोंके पूज्य) कहे हैं०—अवधि०, मनःपर्यव० और केवल० ॥२८२॥

तीन लेश्याएं दुर्गन्ध वाली हैं०—कृष्ण, नील और कापोत। तीन लेश्याएं सुगन्ध······—तेजोलेश्या, पद्म० और शुक्ल०। इसी प्रकार पहली तीन लेश्याएं दुर्गतिमें ले जाने वाली हैं। पिछली तीन लेश्याएं सुगतिमें ले जाने वाली हैं। पहली ३ लेश्याएं संक्लिष्ट-अशुभ अध्यवसायकी हेतुभूत हैं। पिछली ३······शुभ अध्यवसाय······। इसी प्रकार अमनोज्ञ, मनोज्ञ, अविशुद्ध, विशुद्ध, अप्रशस्त, प्रशस्त, शीत और रूक्ष स्पर्श वाली, उष्ण और स्निग्ध स्पर्श वाली, क्रमशः जानें ॥२८३॥

तीन प्रकारका मरण कहा है०—बाल (अज्ञानीका) मरण, पंडित (ज्ञानी साधुका) मरण और बालपण्डित मरण (देश विरतिका)। बाल मरण तीन प्रकारका कहा है०—स्थितलेश्य (जिसमें कृष्णादि लेश्या अविशुद्ध रूपसे अवस्थित हो) मरण, संक्लिष्ट मरण (जिसमें संक्लिश्यमान महाकलुष भावसे लेश्या आती है), पर्यवजातलेश्य मरण (जिसमें लेश्याके पर्यायोंकी विशुद्धि होती है)। पण्डित मरण तीन प्रकारका कहा है०—स्थितलेश्य (अर्थात् शुक्ललेश्यामें मरकर शुक्ललेश्या वाले देवमें उत्पन्न हो), असंक्लिष्टलेश्यमरण (जिसमें संक्लिष्ट लेश्या न हो), पर्यवजातलेश्य मरण (वर्द्धमान लेश्या द्वारा मरकर उत्पन्न हो)। बालपण्डित मरण तीन प्रकारका कहा है०—स्थितलेश्य—जिस विशुद्ध लेश्यामें मरे उसी लेश्या वाले देवमें उत्पन्न हो, असंक्लिष्टलेश्यमरण और अपर्यवजात मरण ॥२८४॥

जिसने निश्चय नहीं किया उसके लिए ये तीन स्थान अहितके लिए, दुःख०, अयथार्थता०, अमोक्ष० और अशुभ कर्मानुबन्धके लिए होते हैं०—जो साधु द्रव्य-भावसे मुण्डित होकर घर वार छोड़ कर दीक्षित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका, कांक्षा, वितिगिच्छा करने वाला, भेदसमापन्न—"यह ऐसा है कि नहीं" इस प्रकार द्विधाभाव वाला, कलुषसमापन्न निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा नहीं करता, विश्वास०, रुचि०। परिषह उसका पराभव करते हैं, परन्तु वह परिषहोंको

समभावसे सहन नहीं करता। जो···पांच महाव्रतोंमें शंका···कलुपसमापन्न पांच महाव्रतों पर श्रद्धा···करता। जो···छ जीवनिकायमें शंका···छ जीवनिकाय पर श्रद्धा···नहीं करता। जिसने निश्चय किया है, उसके लिए ये तीन स्थान हित के लिए, सुख०, यथार्थता०, मोक्ष० और शुभ कर्मानुवन्धके लिए होते हैं०-जो··· निर्ग्रन्थ प्रवचनमें शंकारहित, कांक्षा०, विति० रहित यावत् कलुषभावरहित निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता है, प्रतीति०, रुचि०। परीषह उसका पराभव नहीं कर सकते। वह परीषहोंको (समभावसे सहन करता) जीतता है। जो··· पांच महाव्रतोंमें शंकारहित···पांच महाव्रतों पर···जीतता है। जो छ जीवनिकाय में शंकारहित···छ जीवनिकाय पर···जीतता है ॥२८५॥

एकेक पृथ्वी-रत्नप्रभादिक चारों ओर से तीन वलयों (कड़ेके आकारकी तरह) के द्वारा घिरी हुई है०—घनोदधि (कठोर हिमशिलाके समान जलसमूह) वलयसे, घनवात (कठोर वायुसमूह) वलयसे, तनुवात (पतली वायु) वलयसे ॥२८६॥

नैरयिक उत्कृष्ट तीन समयके विग्रह (वक्र गमन) से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर यावत् वैमानिक पर्यन्त जानें ॥२८७॥

क्षीणमोहनीय अरिहंतों की तीन कर्म प्रकृतियाँ एक साथ क्षय होती हैं० —ज्ञानावरर्णीय, दर्शनावरणीय और अंतराय ॥२८८॥

अभिजित् नक्षत्रके तीन तारे हैं, इसी प्रकार श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर, पुष्य और ज्येष्ठा इन छहों नक्षत्रोंके तीन २ तारे हैं ॥२८९॥

धर्मनाथ अरिहंतके मोक्ष से ३/४ पौन पल्योपम न्यून तीन सागरोपम काल बीतने पर शांतिनाथ अरिहंत मोक्ष गये१। श्रमण भगवान महावीर की तीसरे पुरुष तक (जंबू स्वामी पर्यंत) युगांतकृतभूमि (मोक्षमार्ग) चली। श्री मल्लिनाथ भगवान् तीन सौ पुरुषोंके साथ मुंडित होकर दीक्षित हुए। इसी प्रकार पार्श्वनाथ भगवान्ने तीन सौ पुरुषोंके साथ दीक्षा ली। श्रमण भगवान् महावीर की तीन सौ चौदहपूर्वियोंकी उत्कृष्ट संपदा थी, जो कि जिन न होते हुए जिनके समान, सर्वाक्षरसन्निपात (संयोग) के जानने वाले और जिनकी तरह यथार्थ कहने वाले थे। तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती थे० —शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ ॥२९०॥

ग्रैवेयक विमानोंके तीन प्रस्तट (पाथड़े) कहे हैं०—हेट्ठिमग्रैवेयकविमान-प्रस्तट, मध्यम० और उपरिम०। हेट्ठिमग्रैवेयकवि० तीन प्रकार का कहा है०

---

१. यहां समुत्पन्न शब्दका रूढ़ अर्थ 'जन्मे' नहीं घटता। क्योंकि वैसा करने पर आंतरा नहीं मिलता। विशेप जिज्ञासुओं को प्रवचनसारोद्धार आदि देखना चाहिए।

—हेट्ठिमहेट्ठिम०, हेट्ठिममध्यम० और हेट्ठिमउपरिम ०। मध्यम० तीन प्रकार ··· —मध्यमहेट्ठिम०- मध्यममध्यम०, मध्यमउपरिम० । उपरिम० तीन······ —उपरिमहेट्ठिम०, उपरिममध्य० और उपरिमउपरिम० ॥२६१॥

जीवोंने तीन स्थानोंसे उपार्जित किए हुए पुद्गल पापकर्म रूपमें इकट्ठे किए, करते हैं और करेंगे० —स्त्रीवेद द्वारा संचित, पुरुषवेद०, नपुंसकवेद० । इसी प्रकार चयन (कर्मपुद्गलोंका ग्रहण मात्र), उपचयन (कर्मके अवाधाकालको छोड़कर भोगने के लिए निषेक-कर्मदलिककी रचना करनी), बंधन (निकाचन करना), उदीरण (उदयमें न आए हुए कर्मोंको जीवकी शक्ति विशेष द्वारा खींच कर उदयमें लाना), वेदन (भोगना), निर्जरण (जीवके प्रदेशों से कर्म-पुद्गल दूर करना) । ये चयनादि छ पद भूत, वर्तमान और भविष्यकालकी अपेक्षा जानें ॥२६२॥

त्रिप्रदेशिक स्कंध अनंत कहे हैं, इसी प्रकार यावत् त्रिगुणरूक्ष पुद्गल अनंत कहे हैं ॥२६३॥

॥ तीसरे स्थानका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

॥ तृतीय स्थानक समाप्त ॥

—o—

चतुर्थ स्थानक—प्रथम उद्देशक

अन्तक्रियाएँ चार कही गई हैं, इनमें प्रथम अन्तक्रिया यह है—लघुकर्मा पुरुष मुंडित होकर, घर वार छोड़कर, दीक्षित होकर, संयमवहुल (प्रचुर), संवरबहुल, समाधिवहुल, (द्रव्यसे शरीर-विभूषा भावसे कामादि रहित)=रूक्ष, भवोदधि-तीरार्थी (तीरस्थायी), प्रशस्त मन, वचन और काया वाला, दुःखजनककर्म का क्षय करने वाला तपस्वी होता है। यद्यपि पूर्वोक्त गुण समृद्ध अनगारके बाह्य और आभ्यन्तर तप् वीर प्रभुके तपके समान अत्यन्त घोर नहीं होते। अति-घोरोपसर्गजन्य पीड़ा भी उसे नहीं होती। ऐसा पुरुष चिरकालिक प्रव्रज्यारूप करण द्वारा सिद्ध होता है, बुद्ध (केवली)०, मुक्त होता है। परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, सब दुःखोंका अन्त करता है। जैसे भरत चक्रवर्ती। यह प्रथमान्त क्रिया है। द्वितीय अन्तक्रिया इस प्रकार है—महाकर्मोंसे महाकर्मा कोई जीव मुंडित ······तपस्वी घोर तपका अनुष्ठान करता है। उसमें उसे देवादिकृत उपसर्गजन्य तथारूप दुःसह वेदना भी होती है। ऐसा वह पुरुष निरुद्ध-अल्पपर्याय से सिद्ध होता है, यावत् अन्त करता है। जैसे गजसुकुमाल मुनि। यह दूसरी अन्तक्रिया है। तीसरी अन्तक्रिया—महाकर्मा जीव मुंडित······दूसरी अन्तक्रियाके समान,

विशेषता यह है दीर्घपर्यायसे सिद्ध ·····अंत करता है। जैसे सनत्कुमार चक्रवर्ती। यह तीसरी अन्तक्रिया है। चौथी अन्तक्रिया—लघुकर्मा जीव यावत् पीड़ा भी उसे नहीं होती। ऐसा पुरुष अल्प पर्यायसे सिद्ध होता है, यावत् अन्त करता है, जैसे माता मरुदेवी। यह चौथी अन्तक्रिया है ॥२९४॥

चार प्रकारके वृक्ष कहे गए हैं—एक वह जो द्रव्य से भी उन्नत होता है, जात्यादि से भी उन्नत होता है। दूसरा वह जो द्रव्य से ही उन्नत होता है, परन्तु जात्यादिसे प्रणत-हीन होता है। तीसरा वह जो प्रणत होता है, परन्तु जात्यादि से उंन्नत होता है। चौथा वह जो द्रव्य से प्रणत होता है और जात्यादिसे भी हीन होता है। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं······। चार प्रकारके वृक्ष कहे गए हैं—एक प्रकार वह है जो जाति आदि से पहले उन्नत होता है और आगे चलकर भी वही उत्तम रसरूप परिणामको प्राप्त होता है। एक··· चलकर कारणवश उन्नत अवस्थाका त्यागकर देता है। एक···पहले जात्यादिसे हीन होता है,बादमें आगे चलकर उत्तम परिणामको प्राप्त होता है। चतुर्थ प्रकार में प्रणत होकर जो प्रणत ही रहते हैं, ऐसे वृक्ष आते हैं। वैसे ही पुरुष भी चार प्रकारके कहे गए हैं। उन्नत उन्नतपरिणत ४ भांगे। चार वृक्ष कहे गए हैं—उन्नत उन्नतरूप, उन्नत प्रणतरूप, प्रणत उन्नतरूप और प्रणत प्रणतरूप। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं······। ·····जैसे—उन्नत उन्नत मन वाला, उन्नत प्रणत मन वाला, प्रणत उन्नत मन वाला और प्रणत प्रणत मन वाला। इसी प्रकार संकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, शीलाचार, व्यवहार, पराक्रम तक पुरुषजात पद को योजित करके ही सप्त चतुर्भंगी सूत्रोंका पठन करना चाहिए। क्योंकि वृक्षोंमें मन आदि घटित नहीं होते ॥२९५॥

चार प्रकारके वृक्ष कहे गए हैं—ऋजु (सरल) ऋजु, ऋजु वक्र ४ भांगे। इसी प्रकार चार तरहके पुरुष कहे गए हैं—ऋजु ऋजु ४। इसी तरह जिस प्रकार उन्नत-प्रणत कहा उसी प्रकार ऋजु-वक्र भी कहना चाहिए यावत् पराक्रम तक ॥२९६॥

प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को ये चार प्रकारकी भाषाएं बोलनी कल्पती हैं, जैसे कि–याचना सम्बन्धी, पृच्छा सम्बन्धी, अनुज्ञापन (आज्ञा लेना) संबन्धी, पूछी गई बात का उत्तर देना—पृष्टव्याकरणी। चार प्रकारकी भाषा कही गई है०—सत्य-भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा, व्यवहार भाषा ॥२९७॥

वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—शुद्ध शुद्ध, शुद्ध अशुद्ध, अशुद्ध शुद्ध और अशुद्ध अशुद्ध। इसी प्रकार चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं ०—शुद्ध शुद्ध ४ भांगे। इसी प्रकारसे शुद्ध अशुद्ध पदोंके साथ परिणत और रूप शब्दको जोड़ कर वस्त्रों में चतुर्विधता कहनी चाहिए। इसी दृष्टान्तके अनुसार पुरुष के भी चार प्रकार जानने चाहिएँ ॥२९८॥

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं ०—शुद्ध शुद्धमन ४ भाँगे। इसी प्रकार संकल्प यावत् पराक्रम तक जानना ॥२९९॥

पुत्र चार प्रकारके कहे गए हैं, जैसे—अभिजात (अतियात—पिता से भी बढ़कर संपत्ति गुण वाला), अनुयात (पिताके समान विभूति वाला), अपजात (पिता से हीन), कुलांगार (कुल में कलंक लगाने वाला) ॥३००॥

चार पुरुषजात कहे गए हैं, जैसे—सत्य सत्य, सत्य असत्य, असत्य सत्य, असत्य असत्य। इसी प्रकार परिणत यावत् पराक्रम तक जानना ॥३०१॥

वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं०—शुचि (पवित्र) शुचि, शुचि अशुचि, अशुचि शुचि और अशुचि अशुचि। इसी प्रकारसे पुरुष भी चार कहे गए हैं, जैसे—शुचि २…४ भांगे। जैसे शुद्ध वस्त्रसे कहा गया है उसी प्रकार शुचि से भी कह लेना चाहिए, यावत् पराक्रम तक ॥३०२॥

चार कोरक (कलिका) कहे गये हैं ०—आम्रफल कोरक, तालफल कोरक, वल्ली कोरक, मेण्ढविषाणाफल कोरक। इसी प्रकार चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं—आम्रफलकलिका समान ४ ॥३०३॥

घुण चार प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—त्वक्खाद (बाहरी छाल खाने वाला), छल्ली (भीतरी) खाद, काष्ठखाद और सारखाद। इसी तरहसे चार भिक्षाक (भिक्षु) कहे गए हैं०—त्वक्खाद समान यावत् सारखाद समान। त्वक्खाद समान भिक्षाक का सारखाद समान तप कहा गया है। सारखाद… …त्वक्खाद समान तप……। छल्लीखाद……काष्ठखाद समान तप……और काष्ठखाद……छल्लीखाद समान तप कहा गया है ॥३०४॥

तृणवनस्पतिकायिक चार प्रकारके कहे गए हैं०—अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कन्धबीज ॥३०५॥

चार कारणोंसे अधुनोपपन्नक—तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक नरकसे मनुष्यलोक में आना चाहता है। पर वहाँ से आ नहीं सकता। नरकमें तत्काल उत्पन्न नैरयिक जब उस लोकमें उत्पन्न वेदनाको भोगता है तब वह मनुष्यलोकमें आनेकी इच्छा करता है, परन्तु आ नहीं पाता १। नरक… परमाधार्मिक द्वारा बार २ आक्रम्यमाण होने पर—मारे जाने पर मनुष्यलोक में…२। नरक…नैरयिक नरक में ही वेदन करने योग्य जो कर्म है, उसे वहां ही जब तक भोग नहीं लेता, क्षीण व निर्जरित नहीं करता, तब तक वह मनुष्यलोक में नहीं आ सकता ३। जब तक निरयायुष्क पूर्ण नहीं होता तब तक वह मनुष्यलोकमें आनेकी चाहना करता हुआ भी नहीं आ सकता ४। इन चार कारणोंसे अधुनोपपन्नक……॥३०६॥

साध्वियों को चार चादरें धारण करनी कल्पती हैं०—एक चादर दो

हाथ विस्तार वाली, दो तीन हाथ विस्तार वाली और एक चार हाथ विस्तार वाली ॥३०७॥

ध्यान चार कहे गए हैं, जैसे कि—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान । इनमें आर्तध्यान चार प्रकारका कहा गया है०—अमनोज्ञ वस्तुओंका सम्प्रयोग-सम्बन्ध होनें पर जो उससे वियोग के लिए बार २ चिन्तन होता है १। मनोज्ञ वस्तुओंके वियोग न होनेका बार-बार चिन्तन करना २ । आतङ्क से युक्त होने पर उससे वियोग होनेका बार-बार चिन्तन करना ३ । प्राप्त हुए कामभोगोंके अविनाशके लिए तथा नहीं प्राप्त हुए पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए बार-बार चिन्तन करना ४। आर्तध्यानके चार लक्षण कहे गए हैं०—क्रन्दनता (दीर्घ शब्दसे विलाप), शोचनता (शोक करना), तेपनता (आंसू बहाना), परिदेवनता (रोते २ संभाषण करना) । रौद्रध्यान चार प्रकारका कहा गया है०—हिंसा× (सम्बन्धी)नुबन्धी, मृषानुबन्धी, स्तेनानुबन्धी और संरक्षणानुबंधी ।

इस रौद्रध्यानके चार लक्षण हैं—अवसन्नदोष (किसी एक पापकी प्रचुरता), बहुलदोष (समस्त पापों में प्रवृत्ति), अज्ञान (सेवन) दोष, आमरणान्त दोष (मरणपर्यन्त हिंसादिमें प्रवृत्ति) । धर्मध्यानके चार प्रकार कहे गए हैं०—आज्ञाविचय (सर्वज्ञ प्रवचन रूप आज्ञा का विचार करना),१अपायविचय, २विपाकविचय, ३संस्थानविचय । इस धर्मध्यान के चार लक्षण कहे गए हैं—आज्ञारुचि ४, निसर्गरुचि५, सूत्ररुचि, अवगाढरुचि६ । धर्मध्यानके चार अवलम्बन कहे गए हैं, जैसे—वाचना, परिपृच्छना, परिवर्तना७, अनुप्रेक्षा । धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ कही गई हैं०—एकानुप्रेक्षा८, अनित्यानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा और संसारानुप्रेक्षा । शुक्लध्यान चार प्रकारका कहा गया है० – पृथकत्ववितर्कसविचार, एकत्ववितर्काविचार, सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति और समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपत्ति । इस शुक्लध्यानके चार लक्षण कहे गए हैं०—अव्यथ, असम्मोह, विवेक और व्युत्सर्ग । शुक्लध्यानके चार आलम्बन कहे गए हैं०—क्षान्ति (क्षमा), मुक्ति (निर्लोभता), आर्जव (सरलता) और मार्दव (नम्रता) । शुक्लध्यानकी चार अनुप्रेक्षाएँ कही गई हैं०—अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा, विपरिणामानुप्रेक्षा, अशुभानुप्रेक्षा और अपायानुप्रेक्षा ॥३०८॥

×········ का निरन्तर विचार। १. शारीरिक एवं मानसिक दुःखोंका चिन्तन । २. कर्मफल का विचार करना । ३. लोकाकार चिंतन । ४. भगवान् की आज्ञामें रुचि होना । ५. स्वाभाविक रुचि होना । ६. साधुके उपदेशसे रुचि होना । ७. सूत्रको बार-बार दुहराना । ८. एकत्व भावना ।

देवोंकी स्थिति चार प्रकारकी कही गई है०—देव (सामान्य), देवस्नातक (प्रधान), देवपुरोहित और देवप्रज्वलन (स्तुतिपाठक) ॥३०९॥

संवास चार प्रकारका कहा गया है०—एक देवका एक देवीके साथ संवास। एक देवका छवि[१] के साथ संवास, छविका देवीके साथ संवास और छविका छविके साथ संवास ॥३१०॥

कषाय चार कही गई हैं, जैसे—क्रोध कषाय, मान०, माया० और लोभ कषाय। ये कषाय नारकसे लेकर यावत् वैमानिक तक को होती हैं। क्रोध चतुष्प्रतिष्ठित कहा गया है०—आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित, तदुभयप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। इसी प्रकार नैरयिकसे लेकर यावत् वैमानिक तक। इसी प्रकार यावत् लोभ वैमानिक तक जानना। क्रोधकी उत्पत्ति चार कारणोंसे होती है०—क्षेत्रको लेकर, वस्तु०, शरीर० और उपधि के कारण। इसी प्रकार नारकी से लेकर यावत् वैमानिक तक। इसी प्रकार यावत् लोभ वैमानिक तक। क्रोध चार प्रकारका कहा गया है०—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानी क्रोध, प्रत्याख्यानसंबंधी क्रोध और संज्वलन क्रोध। इसी प्रकार यावत् लोभ वैमानिक तक। क्रोध चार प्रकारका कहा गया है०—आभोगनिर्वतित, अनाभोग (अज्ञान)-निर्वर्तित, उपशान्त और अनुपशान्त। इसी प्रकार·····यावत् लोभ यावत् वैमानिक तक ॥३११॥

जीवोंने चार कारणोंसे पहले अष्टकर्म प्रकृतियोंका उपार्जन किया है०—क्रोध, मान, माया और लोभ। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक। इसी प्रकार करते हैं, करेंगे। इस प्रकार तीन दंडक। संचय किया ३। बंध किया ३। उदीरणा की ३। वेदन किया ३। निर्जरा की ३। यावत् वैमानिक तक एक २ पद में तीन २ दंडक कहने चाहिएँ यावत् निर्जरा करेंगे ॥३१२॥

चार प्रतिमाएँ कही गई हैं०—समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेक-प्रतिमा और व्युत्सर्गप्रतिमा। चार प्रतिमाएँ······—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा। चार प्र०······—क्षुद्रिकामोकप्रतिमा, महतिका०, यवमध्या और वज्रमध्या ॥३१३॥

चार अस्तिकाय अजीवकाय कहे गए हैं ०—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति-काय, आकाशास्तिकाय लौर पुद्गलास्तिकाय। चार अस्तिकाय अरूपिकाय···—धर्मा०, अधर्मा०, आकाशा० और जीवास्तिकाय ॥३१४॥

फल चार प्रकारके कहे गए हैं ०—एक वह फल जो अपक्व होता हुआ आम[२] के समान किंचित् मधुर होता है। दूसरा वह······पके फल जैसा अत्यन्त मधुर होता है। तीसरा वह जो पका हुआ होकर आम जैसा किंचित् मीठा होता

१. औदारिकशरीरी। २. अपक्व फल।

है और चौथा वह फल जो पक जाने पर पके फल जैसा उत्कृष्ट मधुर होता है। इसी प्रकार चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं०—आम-मधुर फल समान यावत् पक्वपक्वफल के समान ॥३१५॥

सत्य चार प्रकार का कहा गया है०—काय ऋजुकता१, भाषऋजुकता, भावऋजुकता, और अविसंवादनायोग२। मृषावाद चार प्रकार का कहा गया है०—कायाऽनृजुकता, भाषाऽनृजुकता, भावाऽनृजुकता और विसंवादनायोग ॥३१६॥

चार प्रकारका प्रणिधान३ कहा गया है—मनःप्रणिधान, वाक्प्रणिधान, कायप्रणिधान और उपकरणप्रणिधान। इसी प्रकार नारक पंचेंदियसे लेकर यावत् वैमानिक तक। सुप्रणिधान चार प्रकारका होता है०—मनः सु० यावत् उपकरण सुप्रणिधान। यह संयत मनुष्योंको होता है। दुष्प्रणिधान चार·····
·····—मनोदुष्प्रणिधान यावत् उपकरण०। इसी प्रकार पंचेंद्रियसे लेकर यावत् वैमानिक तक जानना ॥३१७॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—आपातभद्रक४ संवासभद्रक५, संवास-भद्रक नो आपात भद्रक, आपातभद्रक भी संवासभद्रक भी, नो आ० नो सं०। चार पुरुषजात कहे गए हैं०—जो अपना अवद्य-पाप देखता है, पर का नहीं। जो दूसरोंका अवद्य देखता है अपना नहीं। जो अपना भी दूसरोंका भी अवद्य देखता है, और जो अपना और दूसरोंका अवद्य नहीं देखता। चार पुरुष०·········—जो अपने अवद्यका उदीरण करता है पर के अवद्य का नहीं ४। चार पुरुष०······—जो अपने अवद्य को उपशमित करता है परके अवद्य को नहीं ४। चार पुरुषजात······—एक वह जो किसी कार्यमें उत्साह सहित होकर स्वयं प्रवृत्ति करता है, परन्तु दूसरेको प्रवृत्त नहीं करता४। इसी प्रकार एक वह जो दूसरोंको वन्दना करता है स्वयं दूसरोंसे वन्दित नहीं होना चाहता४। इसी प्रकार 'सत्कार करता है' 'सम्मान करता है' ४। इसी प्रकार वाचना, पृच्छा, परिपृच्छा और व्याकरण (निर्णय) का अनुलक्ष करके ४-४ भाँगे समझने चाहिएँ। चार पुरुपजात कहे गए हैं०—कोई ऐसा होता है जो सूत्रधर होता है, अर्थधर नहीं होता। एक अर्थधर होता है, सूत्रधर नहीं होता। एक सूत्रधर भी होता है, अर्थधर भी। एक सूत्रधर भी नहीं होता, अर्थधर भी नहीं होता ॥३१८॥

---

१. सरलता। २. प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना।

३. लगाना अथवा अमुक विषय में जोड़ना। ४. आकस्मिक मिलन में दर्शन, आलाप आदि द्वारा सुखदायक। ५. सहवास।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके चार लोकपाल कहे गये हैं ०—सोम, यम, वरुण और वैश्रवण। इसी प्रकार बलिके भी सोम……ये चार लोकपाल कहे गये हैं। धरणके लोकपालों में कालपाल, कोलपाल, शैलपाल और शंखपाल ये चार……। इसी तरह भूतानन्दके चार……—कालपाल ४। वेणुदेव के चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष। वेणुदालि के चित्र ४। हरिकान्तके प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त और सुप्रभकान्त। हरिसहके प्रभ……। अग्निशिख के तेज, तेजशिख, तेज:कान्त और तेज:प्रभ। अग्निमाणवकके तेज……। पूर्णके रूप, रूपांश, रूपकान्त एवं रूपप्रभ। वशिष्ट के रूप……। जलकान्तके जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ। जलप्रभके जल……। अमितगतिके त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहविक्रमगति और सिंहगति। अमितवाहनके क्षिप्र०……। वेलम्ब के काल, महाकाल, अंजन और रिष्ट। प्रभञ्जन के काल……। घोषके आवर्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त और महानन्दिकावर्त। महाघोषके आवर्त……। शक्रके सोम, यम, वरुण और वैश्रवण। ईशानके सोम……। इसी तरहसे एकान्तरित करके यावत् अच्युत तक लोकपाल कह लेना चाहिये ॥३१९॥

वायुकुमार चार प्रकारके कहे गये हैं०—काल, महाकाल, वेलम्ब और प्रभञ्जन। देव चार प्रकार के कहे गए हैं०—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और विमानवासी (वैमानिक) ॥३२०॥

प्रमाण चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, काल० और भाव० ॥३२१॥

दिक्कुमारी महत्तरिकाएं चार प्रकारकी कही गई हैं०—रूपा, रूपांशा, सुरूपा और रूपावती। विद्युतकुमारी मह०…—चित्रा, चित्रकनका, शतेरा और सौत्रामणि ॥३२२॥

देवेन्द्र देवराज शक्रकी मध्यम परिषदामें देवोंकी चार पल्योपमकी स्थिति कही गई है। देवेन्द्र देवराज ईशानकी मध्यम परिषदामें देवियोंकी चार पल्यो० …॥३२३॥

संसार चार प्रकारका कहा गया है०—द्रव्यसंसार, क्षेत्रसंसार, कालसंसार, भावसंसार ॥३२४॥ दृष्टिवाद चार प्रकारका कहा गया है०—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत और अनुयोग ॥३२५॥

प्रायश्चित्त चार प्रकारका कहा गया है०—ज्ञान प्रायश्चित्त, दर्शन प्रायश्चित्त, चारित्र० और व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त[1]। प्रायश्चित्त चार०...—प्रतिसेवना प्रायश्चित्त, संयोजना०, आरोपणा और प्रतिकुञ्चना० ॥३२६॥

काल चार प्रकारका कहा गया है०—प्रमाणकाल, यथायुष्क निर्वृत्तिकाल,

---

१. गीतार्थ द्वारा दिया गया।

मरणकाल और अद्धाकाल१ ॥३२७॥ पुद्‌गलपरिणाम चार प्रकारका कहा है। जैसे-वर्णपरिणाम, गन्धपरिणाम, रसपरिणाम और स्पर्शपरिणाम ॥३२८॥

भरत-ऐरवत क्षेत्रमें पूर्व-पश्चिम (प्रथम-अन्तिम) तीर्थङ्करोंको छोड़कर बीचके २२ तीर्थङ्करोंने चातुर्याम धर्मकी स्थापना की है। वह चातुर्याम धर्म इस प्रकारसे है—समस्त प्राणातिपातसे विरति, समस्त मृषावादसे विरति, समस्त अदत्तादानसे विरति एवं धर्मोपकरणके सिवाय समस्त परिग्रहसे विरति। समस्त महाविदेहोंमें अर्हन्त-भगवन्तोंने जो चातुर्याम धर्मकी पन्नापना की है, वह चातुर्याम धर्म पूर्वोक्त समस्त प्राणातिपात आदिसे विरमण रूप ही है ॥३२९॥

दुर्गतियां चार कही गई हैं, जैसे—नैरयिक दुर्गति, तिर्यग्योनिक०, मनुष्य० और देवदुर्गति। सुगतियां चार कही गई हैं०—सिद्धसुगति, देवसुगति, मनुष्य० और सुकुलप्रत्यायाति२। चार दुर्गत कहे गए हैं०—नैरयिकदुर्गत, तिर्यग्योनिक०, मनुष्य० और देव०। चार सुगत कहे गए हैं०—सिद्धसुगत, यावत् सुकुलप्रत्यायात ॥३३०॥

प्रथम समय जिनके चार कर्मांश क्षीण होते हैं०—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायिक। उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शनको धारण करने वाले अर्हन्त जिन केवली चार कर्मांशोंका वेदन करते हैं०—वेदनीय, आयुष्क, नाम और गोत्र। प्रथम समय सिद्धके चार कर्मांश एक साथ क्षीण होते हैं०—वेदनीय, आयुष्क, नाम और गोत्र ॥३३१॥

चार कारणोंसे हास्यकी उत्पत्ति होती है०—हास्यजनक भाण्ड-विदूषक आदि जनोंकी चेष्टाको देखकर, हास्यजनक भाषाका प्रयोग कर, हास्यजनक वचनको सुनकर, किसी वातको याद करके ॥३३२॥

अन्तर चार प्रकारका कहा गया है। जैसे-काष्ठान्तर, पक्ष्मान्तर३, लोहान्तर और प्रस्तरान्तर४। इसी प्रकारसे पुरुषका और स्त्रीका अन्तर चार प्रकार का है०—काष्ठान्तर समान यावत् प्रस्तरान्तर समान ॥३३३॥

चार भृतक कहे गए हैं०—दिवसभृतक५, यात्राभृतक, उच्चताभृतक६ और कव्वाडभृतक७ ॥३३४॥ चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं०—संप्रकटप्रतिसेवी नो प्रच्छन्नप्रतिसेवी, प्रच्छन्नप्रतिसेवी नो संप्रकटप्रतिसेवी, संप्रकटप्रतिसेवी भी प्रच्छन्नप्रतिसेवी भी, नो संप्रकटप्रतिसेवी नो प्रच्छन्नप्रतिसेवी ॥३३५॥

---

१. समय आवलिका आदि रूप। २. उत्तम कुलमें जन्म लेना।
३. रोम। ४. पत्थर। ५. दिहाड़ी पर रक्खा गया नौकर।
६. वेतन पर रक्खा हुआ। ७. ठेके पर रक्खा हुआ।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके जो लोकपाल सोमराज हैं उनकी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं०—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा। इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रवणकी भी। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके लोकपाल जो सोमराज हैं उनकी चार अग्रम०···—मित्रगा, सुभद्रा, विद्युता और अशनी। इसी प्रकार यम वैश्रवण और वरुणकी भी। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज जो धरण हैं उनके लोकपाल जो कालपाल महाराज हैं उनकी चार अग्र०···—अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना। इसी तरह यावत् शंखपालकी। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्दके लोकपाल महाराज कालपाल हैं। उनकी चार अग्रमहिषियां हैं—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना। इसी प्रकार यावत् शैलपालकी। इसी प्रकार सभी दक्षिणेन्द्र लोकपालोंकी यावत् घोष तक भूतानन्दके समान। इसी तरह यावत् महाघोषके लोकपालोंकी। पिशाचेन्द्र पिशाचराज कालकी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं०—कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना। इसी प्रकार महाकालकी भी। भूतेन्द्र-भूतराज सुरूपकी भी चार अग्रमहिषियां हैं, जैसे—रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा। ऐसे ही प्रतिरूपकी भी। यक्षेन्द्र-यक्षराज पूर्णभद्रकी चार अग्र०···—पुत्रा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका। इसी प्रकार माणिभद्रकी भी। राक्षसेन्द्र राक्षसराज भीमकी चार अग्र०···—पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा। इसी तरह महाभीमकी भी। किन्नरेन्द्र किन्नरराज किन्नर की चार अग्र०···—अवतंसा, केतुमति, रतिसेना, रतिप्रभा। इसी प्रकार किंपुरुषकी भी। किंपुरुषेन्द्र-किंपुरुषराज सत्पुरुषकी चार अग्र०···—रोहिणी, नवमिका, ह्री और पुष्पावती। इसी प्रकार महापुरुषकी भी। महोरगेन्द्र महोरगराज अतिकायकी चार अग्र०···—भुजगा, भुजगावली, महाकच्छा और स्फुटा। इसी तरह महाकायकी भी। गन्धर्वेन्द्र गन्धर्वराज गीतरतिकी चार अग्र०···—सुघोषा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती। इसी प्रकार गीतयशकी भी। ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्रकी चार अग्र०···—चन्द्रप्रभा, ज्योत्सनाभा, अर्चिमाली, प्रभङ्करा। इसी प्रकार सूर्यकी भी। अङ्गारक नामक महाग्रहकी चार अग्र०···—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता। इसी प्रकार सभी महाग्रहोंकी यावत् भावकेतुकी। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजकी चार अग्र०···—रोहिणी, मदना, चित्रा, सोमा। इसी प्रकार यावत् वैश्रवणकी। देवेन्द्र देवराज ईशानके लोकपाल सोम महाराजकी चार अग्र०···—पृथिवी, रात्रि, रजनी, विद्युत्। ऐसे ही यावत् वरुणकी ।।३३६।।

गोरस विकृतियां चार कही गई हैं०—दूध, दही, घी, मक्खन। स्नेह विकृतियां चार हैं०—तेल, घी, वसा, नवनीत। चार महाविकृतियां वर्जनीय हैं०—मधु, मांस, मद्य और मक्खन ।।३३७।।

चार कूटागार कहे गए हैं, एक कूटागार ऐसा होता है जो प्राकार आदिसे वेष्टित होता है और द्वार आदि भी जिसके बन्द रहते हैं। एक······द्वार आदि जिसके बन्द नहीं होते। एक···वेष्टित नहीं होता···जिसके द्वार आदि बन्द रहते हैं। एक···वेष्टित नहीं होता न उसके द्वार आदि ही बन्द होते हैं। इसी तरह से चार प्रकारके पुरुषजात कहे गए हैं०—गुप्त गुप्त, गुप्त अगुप्त, अगुप्त गुप्त और अगुप्त अगुप्त। चार कूटागारशालाएं कही गई हैं०—गुप्ता गुप्तद्वारा, गुप्ता अगुप्तद्वारा, अगुप्ता गुप्तद्वारा, अगुप्ता अगुप्तद्वारा। इसी प्रकार चार स्त्रियां कही गई हैं०—गुप्ता गुप्तेन्द्रिया, गुप्ता अगुप्तेन्द्रिया ४॥३३८॥

अवगाहना चार प्रकारकी कही गई है०—द्रव्याऽवगाहना, क्षेत्राऽवगाहना, कालाऽवगाहना, भावाऽवगाहना ॥३३९॥ चार प्रज्ञप्तियां अङ्गबाह्य कही गई हैं०—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ॥३४०॥

॥ चौथे स्थानका पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चतुर्थ स्थानक—द्वितीय उद्देशक

चार प्रतिसंलीन[1] कहे गए हैं०—क्रोध प्रतिसंलीन, मान०, माया० और लोभ०। चार अप्रतिसंलीन कहे गए हैं०—क्रोध अप्रतिसंलीन यावत् लोभ अप्रतिसंलीन। चार प्रतिसंलीन···—मनःप्रतिसंलीन, वचन०, काय० और इन्द्रिय०। चार अप्रतिसंलीन कहे गए हैं०—मनोऽप्रतिसंलीन यावत् इन्द्रिय अप्रतिसंलीन ॥३४१॥

पुरुष चार कहे गए हैं—दीन-दीन, दीन-अदीन, अदीन दीन और अदीन अदीन। पुरुषजात चार हैं—दीन दीनपरिणत, दीन अदीनपरिणत, अदीन दीनपरिणत, अदीन अदीनपरिणत। पुरुषजात चार कहे गए हैं०—दीन दीनरूप, दीन अदीनरूप, अदीन दीनरूप, और अदीन अदीनरूप। चार पुरुषजात हैं—दीन दीन मन वाला, दीन अदीन मन वाला, अदीन दीन मन वाला, और अदीन अदीन मन वाला। इसी प्रकार दीन संकल्प वाला, दीन प्रज्ञावाला, दीन दृष्टि वाला, दीन शीलाचार वाला, दीन व्यवहार वाला ४-४ भाँगे। पुरुषजात चार कहे गए हैं०—दीन दीन पराक्रम वाला, दीन अदीन पराक्रम वाला ४। इसी प्रकार सबके ४ भाँगे कहने चाहिएं। पुरुषजात चार कहे गए हैं—दीन दीन वृत्ति वाला ४। इसी प्रकार दीन जाति वाला, दीन भाषी, दीनाऽवभाषी। पुरुषजात चार कहे गए हैं—दीन दीनसेवी ४। इसी प्रकार दीन पर्याय ४, दीन परिवार ४। सर्वत्र ४ भाँगे ॥३४२॥

---

१. विफल करने वाला अथवा निरोध करने वाला।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके जो लोकपाल सोमराज हैं उनकी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं०—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा। इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रवणकी भी। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके लोकपाल जो सोमराज हैं उनकी चार अग्रम०···—मित्रगा, सुभद्रा, विद्युता और अशनी। इसी प्रकार यम वैश्रवण और वरुणकी भी। नागकुमारेन्द्र नागकुमार-राज जो धरण हैं उनके लोकपाल जो कालपाल महाराज हैं उनकी चार अग्र०··· —अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना। इसी तरह यावत् शंखपालकी। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्दके लोकपाल महाराज कालपाल हैं। उनकी चार अग्रमहिषियां हैं—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना। इसी प्रकार यावत् शैलपालकी। इसी प्रकार सभी दक्षिणेन्द्र लोकपालोंकी यावत् घोष तक भूतानन्दके समान। इसी तरह यावत् महाघोषके लोकपालोंकी। पिशाचेन्द्र पिशाचराज कालकी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं०—कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना। इसी प्रकार महाकालकी भी। भूतेन्द्र-भूतराज सुरूपकी भी चार अग्रमहिषियां हैं, जैसे—रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा। ऐसे ही प्रतिरूपकी भी। यक्षेन्द्र-यक्षराज पूर्णभद्रकी चार अग्र०···—पुत्रा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका। इसी प्रकार माणिभद्रकी भी। राक्षसेन्द्र राक्षसराज भीमकी चार अग्र०···—पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा। इसी तरह महाभीमकी भी। किन्नरेन्द्र किन्नरराज किन्नर की चार अग्र०···—अवतंसा, केतुमति, रतिसेना, रतिप्रभा। इसी प्रकार किंपुरुषकी भी। किंपुरुषेन्द्र-किंपुरुषराज सत्पुरुषकी चार अग्र०···—रोहिणी, नवमिका, ह्री और पुष्पावती। इसी प्रकार महापुरुषकी भी। महोरगेन्द्र महोरगराज अतिकायकी चार अग्र०···—भुजगा, भुजगावती, महाकच्छा और स्फुटा। इसी तरह महाकायकी भी। गन्धर्वेन्द्र गन्धर्वराज गीत-रतिकी चार अग्र०···—सुघोषा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती। इसी प्रकार गीतयशकी भी। ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्रकी चार अग्र०···—चन्द्रप्रभा, ज्योत्सनाभा, अर्चिमाली, प्रभङ्करा। इसी प्रकार सूर्यकी भी। अङ्गारक नामक महाग्रहकी चार अग्र०···—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता। इसी प्रकार सभी महाग्रहोंकी यावत् भावकेतुकी। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महा-राजकी चार अग्र०···—रोहिणी, मदना, चित्रा, सोमा। इसी प्रकार यावत् वैश्रवणकी। देवेन्द्र देवराज ईशानके लोकपाल सोम महाराजकी चार अग्र०···—पृथिवी, रात्रि, रजनी, विद्युत्। ऐसे ही यावत् वरुणकी ॥३३६॥

गोरस विकृतियां चार कही गई हैं०—दूध, दही, घी, मक्खन। स्नेह विकृतियां चार हैं०—तेल, घी, वसा, नवनीत। चार महाविकृतियां वर्जनीय हैं०—मधु, मांस, मद्य और मक्खन ॥३३७॥

है,तथा जिसके समस्त अङ्ग अपने प्रमाण लक्षणसे युक्त होते हैं, ऐसा वह गज भद्र कहा गया है ॥१॥३४५॥

बहुत वड़े चंचल मोटे बालोंसे जिसकी चमड़ी युक्त होती है, कुंभस्थल जिसका विशाल होता है, पुच्छका मूलभाग जिसका स्थूल होता है, नख-दांत और बाल जिसके स्थूल होते हैं और आंखें जिसकी सिंह की आंखोंके समान श्वेत-रक्त वाली होती हैं, ऐसा हाथी मन्द कहा गया है ॥२॥३४६॥

जो शरीरसे पतला, कृशकण्ठयुक्त, पतले चर्म, दांत, नख, केश वाला होता है। जो डरपोक- त्रस्त (जिसके कान भयसे स्तब्ध हो जाते हैं) उद्वेगयुक्त त्रसन स्वभाव वाला होता है, ऐसा गज 'मृग' कहा गया है ॥३॥३४७॥

भद्रादि हाथियोंके भद्रत्वादि गुणोंको थोड़े २ रूपमें अपनेमें धारण करता है, रूप व स्वभावसे जो संकीर्ण होता है उसे'संकीर्ण' जानना चाहिए ॥४॥३४८॥

भद्र हाथी शरद ऋतुमें मदोन्मत्त (मदमस्त) होता है, मन्द हाथी वसन्त में, मृग हाथी हेमन्तमें और सङ्कीर्ण हाथी छहों ऋतुओंमें मदोन्मत्त होता है ॥५॥३४९॥

चार विकथाएँ कही गई हैं०—स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राज-कथा। स्त्रीकथा चार प्रकारकी है—स्त्रियोंकी जातिकी कथा, स्त्रियोंके कुलकी कथा, स्त्रियोंके रूपकी कथा और स्त्रियोंके नेपथ्य (वेष) की कथा। भक्तकथा चार प्रकार की कही गई है— भक्तके आवाप (शाक घृत आदि) की कथा, भोजन के निर्वाप (पक्वापक्व) की कथा, भक्तके आरम्भ (अग्नि आदिक) की कथा, भक्तके निष्ठान (द्रव्यव्यय) की कथा। देशकथा चार प्रकारकी कही गई है—देशविधि कथा, देशविकल्प (कूप भवन निर्माण आदि) कथा, देशच्छन्द (गम्यागम्य) कथा, देशनेपथ्य कथा। राजकथा चार प्रकारकी कही गई है—राजा की अतियान (नगर प्रवेश) कथा, राजाकी निर्याण (वहिर्गमन) कथा, राजाकी बलवाहन कथा और राजा की कोष्ठागार कोष कथा ॥३५०॥

धर्मकथा चार प्रकारकी कही गई है ०—आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी। आक्षेपणी कथा चार······—आचाराक्षेपणी, व्यवहाराक्षेपणी, प्रज्ञप्त्याक्षेपणी और दृष्टिवादाक्षेपणी। विक्षेपणी कथा चार प्रकार······–जो कथा पहले अपने सिद्धान्तके गुणोंको दिखाते हुए अन्य मतके दोषोंको प्रकट करते हुए कही जाती है १। जो कथा पहले परसिद्धान्तगत दोषोंको प्रकट करते हुए अपने सिद्धान्तके गुणोंको प्रकाशित करते हुए कही जाती है २। जो कथा सम्यग्वाद और मिथ्यावादको प्रकट करती है ३। जो कथा नास्तिकवादका खंडन कर आस्तिकवादको स्थापित करती है ४। संवेदनी कथा चार······—इहलोक दनी, परलोक०,आत्मशरीर सं० और परशरीर०। निर्वेदनी कथा चार प्रकार

चार प्रकारके पुरुष कहे हैं वे इस प्रकार से हैं—आर्य नामवाला है और आर्य है ४। चार प्रकार के पुरुष···—आर्य नाम वाला आर्य परिणत है ४। इसी प्रकार आर्य रूप वाला, आर्य मन वाला, आर्य संकल्प वाला, आर्य प्रज्ञा वाला, आर्य दृष्टि वाला, आर्य शील वाला, आर्य व्यवहार वाला, आर्य पराक्रम वाला, आर्य वृत्ति वाला, आर्य जाति०, आर्य भाषा०, आर्यविभाषी, आर्यसेवी, आर्य पर्यायवाला, आर्य परिवार वाला, इस प्रकार १७ आलापक होते हैं। जैसे दीनके साथके आलापक कहे हैं वैसे ही आर्यके साथ भी कहने चाहिएँ। पुरुषजात चार कहे गए हैं०—आर्य आर्य भाव वाला, आर्य अनार्य भाव वाला, अनार्य आर्य भाव वाला और अनार्य अनार्य भाव वाला ॥३४३॥

वृषभ चार प्रकार के कहे गए हैं—जातिसंपन्न, कुलसंपन्न, बलसंपन्न और रूपसंपन्न। इसी प्रकारसे पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं—जातिसंपन्न यावत् रूपसंपन्न। पुनः बैल चार प्रकार के कहे गए हैं—जातिसंपन्न नो कुलसंपन्न, कुलसंपन्न नो जातिसंपन्न, जातिसंपन्न भी कुलसंपन्न भी और नो जातिसंपन्न नो कुलसंपन्न। इसी प्रकारसे पुरुष भी चार प्रकारके कहे गए हैं—जातिसंपन्न नो कुलसंपन्न, यावत् नो जातिसंपन्न नो कुलसंपन्न। वृषभ चार प्रकारके कहे गए हैं०— जातिसंपन्न नो बलसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी······जातिसंपन्न नो बलसंपन्न ४। चार प्रकारके वृषभ··· —जातिसंपन्न नो रूपसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी ·········। चार प्रकारके वृषभ ··· —कुलसंपन्न नो बलसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी·······। चार प्रकारके वृषभ··· —कुलसंपन्न नो रूपसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी···। चार प्रकारके वृषभ··· —बलसंपन्न नो रूपसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी·······॥३४४॥

हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं ० —भद्र, मन्द, मृग और सङ्कीर्ण। इसी प्रकार पुरुष भी·······। हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं ० — भद्र भद्र मन वाला, भद्र मन्द मन वाला, भद्र मृग मन वाला, और भद्र संकीर्ण मन वाला। इसी प्रकार पुरुष भी······। चार प्रकारके हाथी कहे गए हैं—मन्द और भद्र मन वाला, मन्द मन्द मन वाला, मन्द मृग मन वाला और मन्द संकीर्ण मन वाला। इसी प्रकार पुरुष भी······। हाथी चार प्रकारके कहे गए हैं—मृग भद्र मन वाला, मृग मन्द मन वाला, मृग मृग मन वाला, मृग सङ्कीर्ण मन वाला। इसी प्रकार पुरुष भी ·····। हाथी चार प्रकारके कहे गए हैं—सङ्कीर्ण भद्र मन वाला, सङ्कीर्ण मन्द मन वाला, सङ्कीर्ण मृग मन वाला, सङ्कीर्ण सङ्कीर्ण मन वाला। इसी तरह पुरुष भी ·····। गाथा—जिसके नेत्र मधुगुटिका जैसे पीले होते हैं, स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर रूपसे क्रमशः जिसकी पूंछ दीर्घ दीर्घतर तथा सुन्दरता भरी होती

है,तथा जिसके समस्त अङ्ग अपने प्रमाण लक्षणसे युक्त होते हैं, ऐसा वह गज भद्र कहा गया है ॥१॥३४५॥

बहुत वड़े चंचल मोटे बालोंसे जिसकी चमड़ी युक्त होती है, कुंभस्थल जिसका विशाल होता है, पुच्छका मूलभाग जिसका स्थूल होता है, नख-दांत और बाल जिसके स्थूल होते हैं और आंखें जिसकी सिंह की आंखोंके समान श्वेत-रक्त वाली होती हैं, ऐसा हाथी मन्द कहा गया है ॥२॥३४६॥

जो शरीरसे पतला, कृशकण्ठयुक्त, पतले चर्म, दांत, नख, केश वाला होता है। जो डरपोक- त्रस्त (जिसके कान भयसे स्तब्ध हो जाते हैं) उद्वेगयुक्त त्रसन स्वभाव वाला होता है, ऐसा गज 'मृग' कहा गया है ॥३॥३४७॥

भद्रादि हाथियोंके भद्रत्वादि गुणोंको थोड़े २ रूपमें अपनेमें धारण करता है, रूप व स्वभावसे जो संकीर्ण होता है उसे'संकीर्ण' जानना चाहिए ॥४॥३४८॥

भद्र हाथी शरद ऋतुमें मदोन्मत्त (मदमस्त) होता है, मन्द हाथी वसन्त में, मृग हाथी हेमन्तमें और सङ्कीर्ण हाथी छहों ऋतुओंमें मदोन्मत्त होता है ॥५॥३४९॥

चार विकथाएँ कही गई हैं०—स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राज-कथा। स्त्रीकथा चार प्रकारकी है—स्त्रियोंकी जातिकी कथा, स्त्रियोंके कुलकी कथा, स्त्रियोंके रूपकी कथा और स्त्रियोंके नेपथ्य (वेष) की कथा। भक्तकथा चार प्रकार की कही गई है— भक्तके आवाप (शाक घृत आदि) की कथा, भोजन के निर्वाप (पक्वापक्व) की कथा, भक्तके आरम्भ (अग्नि आदिक) की कथा, भक्तके निष्ठान (द्रव्यव्यय) की कथा। देशकथा चार प्रकारकी कही गई है—देशविधि कथा, देशविकल्प (कूप भवन निर्माण आदि) कथा, देशच्छन्द (गम्यागम्य) कथा, देशनेपथ्य कथा। राजकथा चार प्रकारकी कही गई है—राजा की अतियान (नगर प्रवेश) कथा, राजाकी निर्याण (वहिर्गमन) कथा, राजाकी वलवाहन कथा और राजा की कोष्ठागार कोष कथा ॥३५०॥

धर्मकथा चार प्रकारकी कही गई है ०—आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी। आक्षेपणी कथा चार······—आचाराक्षेपणी, व्यवहाराक्षेपणी, प्रज्ञप्त्याक्षेपणी और दृष्टिवादाक्षेपणी। विक्षेपणी कथा चार प्रकार······—जो कथा पहले अपने सिद्धान्तके गुणोंको दिखाते हुए अन्य मतके दोषोंको प्रकट करते हुए कही जाती है १। जो कथा पहले परसिद्धान्तगत दोषोंको प्रकट करते हुए अपने सिद्धान्तके गुणोंको प्रकाशित करते हुए कही जाती है २। जो कथा सम्यग्वाद और मिथ्यावादको प्रकट करती है ३। जो कथा नास्तिकवादका खंडन कर आस्तिकवादको स्थापित करती है ४। संवेदनी कथा चार······—इहलोक संवेदनी, परलोक०,आत्मशरीर सं० और परशरीर०। निर्वेदनी कथा चार प्रकार

की······—इस लोकमें किये हुए पापकर्म इस लोक में दुःखदायी होते हैं। इस लोक में······परलोक में दुःखदायी······। परलोक में······इस लोकमें······। परलोकमें······परलोकमें······। इस लोकमें किए हुए शुभकर्म इस लोकमें शुभ फलदायक होते हैं। इस······परलोकमें······। इस प्रकार ४ भांगे उसी तरह ॥३५१॥

चार पुरुषजात कहे गये हैं ०—कृश कृश, कृश दृढ़, दृढ़ कृश और दृढ़ दृढ़। चार पुरुषजात······—कृश कृश शरीर वाला, कृश दृढ़ शरीर वाला, दृढ़ कृश शरीर वाला तथा दृढ़ दृढ़ शरीर वाला। चार पुरुष०······—जैसे कृश-शरीर वाले किसी एक पुरुषको ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, दृढ़ शरीर वाले पुरुष को नहीं। दृढ़ शरीर वाले किसी एक पुरुषको ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं कृश शरीरवाले पुरुषको नहीं। किसी एक कृश शरीर वाले पुरुषको भी ज्ञान, दर्शन उत्पन्न होते हैं तथा दृढ़ शरीर वाले पुरुषको भी······। किसी एक कृश-शरीर वाले को भी ज्ञान दर्शन उत्पन्न नहीं होते और दृढ़ शरीर वाले पुरुषको भी ज्ञान दर्शन उत्पन्न नहीं होते ॥३५२॥

चार कारणों से साधु साध्वियोंको इस समयमें अतिशेष ज्ञान-दर्शन उत्पत्ति होनेके योग्य होने पर भी उत्पन्न नहीं होते हैं ०—बार २ स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा करने से, विवेक एवं व्युत्सर्गसे भली भांति अपनी आत्माको भावित न करने से, पूर्वरात्र[1] और अपररात्र[2] में धर्म-जागरणा न करने से, प्रासुक, एषणीय, उञ्छ जो कि अनेक घरोंसे गृहीत होता है, उसकी सम्यक् गवेषणा न करने से। इन चार कारणोंसे······। चार कारणोंसे······उत्पन्न होते हैं ०—······राजकथा न करनेसे,······भावित करनेसे,······धर्मजागरणा करने से,······गवेषणा करनेसे। इन चार कारणोंसे······उत्पन्न होते हैं ॥३५३॥

चार महाप्रतिपदाओंमें साधु-साध्वियोंको स्वाध्याय करना नहीं कल्पता ०—आषाढ़[3]की प्रतिपदा को, इन्द्रमह (आश्विन) की प्रतिपदाको, कार्तिक·········और सुग्रीष्म (चैत्र) की प्रतिपदाको। चार सन्ध्याओंमें साधु-साध्वियोंको स्वाध्याय करना नहीं कल्पता—प्रथमसन्ध्या[4]में, पश्चिम सन्ध्या[5]में, मध्याह्नमें और अर्धरात्र में। चार कालोंमें साधु-साध्वियोंको स्वाध्याय करना कल्पता है ०—पूर्वाह्न[6], अपराह्न[7], प्रदोष[8], प्रत्यूष[9] ॥३५४॥

---

१. रात का पहला पहर। २. रातका चौथा पहर। ३. पूर्णिमाके बाद आने वाली। ४. सूर्योदयके समय आधा मुहूर्त पहले आधा मुहूर्त बाद। ५. सूर्यास्त के समय आधा मुहूर्त पहले आधा मुहूर्त बाद। ६. पहला पहर। ७. दिन का अन्तिम पहर। ८. रात का पहला पहर। ९. रातका अन्तिम पहर।

लोकस्थिति चार प्रकार की कही गई है ०—आकाशप्रतिष्ठित वात, वात-प्रतिष्ठित उदधि, उदधिप्रतिष्ठित पृथिवी, पृथिवीप्रतिष्ठित त्रस स्थावर जीव ॥३५५॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं—कोई एक तथा१, कोई एक नो तथा२, कोई एक सौवस्तिक३ और कोई एक प्रधान ॥३५६॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं ०—एक आत्मान्तकर नो परान्तकर, कोई एक परान्तकर नो आत्मान्तकर, एक आत्मान्तकर भी परान्तकर भी, कोई नो आत्मान्तकर नो परान्तकर। पुरुष ०·······—कोई आत्मतम४ नो परतम, कोई परतम नो आत्मतम ४। पुरुष०······—कोई एक आत्मदम५ नो परदम, कोई परदम नो आत्मदम ४ ॥३५७॥

गर्हा चार प्रकारकी कही गई है ०—'अपने दोषको निवेदन करनेके लिए मैं गुरुके पास जाता हूं, या उनसे समुचित प्रायश्चित्त लेता हूं' १। 'मैं विशेष रूपसे अथवा विविध प्रकारोंसे गर्हणीय दोषोंको दूर करता हूं' २। "मैंने जो संयम विरुद्ध अतिचार आदि किये हैं वे सबके सब मिथ्या निष्फल हो जायँ" ऐसा विचार करना ३ तथा सेवित दोषोंके प्रति पश्चात्ताप करना ४॥३५८॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं ०—अपना निग्रह६ करने में समर्थ होता है दूसरे का नहीं, दूसरेका निग्रह करनेमें समर्थ होता है अपना नहीं, एक अपना और दूसरे का निग्रह करनेमें समर्थ होता है, कोई २ न अपना निग्रह करनेमें समर्थ होता है न दूसरे का ॥३५९॥

चार मार्ग कहे गए हैं ०—ऋजु ऋजु, ऋजु वक्र, वक्र ऋजु और वक्र वक्र। इसी प्रकार चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं ०—ऋजु ऋजु ४। मार्ग चार कहे गये हैं ०—क्षेम २, क्षेम अक्षेम, अक्षेम क्षेम और अक्षेम अक्षेम। इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकारके कहे गये हैं ०—क्षेम क्षेम ४। मार्ग चार कहे गये हैं ०—क्षेम क्षेमरूप, क्षेम अक्षेमरूप, अक्षेम क्षेमरूप और अक्षेम अक्षेमरूप। इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकारके कहे गए हैं ०—क्षेम क्षेमरूप ४॥३६०॥

शंख चार प्रकारके कहे गए हैं ०—वाम वामावर्त, वाम दक्षिणावर्त, दक्षिण वामावर्त, दक्षिण दक्षिणावर्त। इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं ०—वाम वामावर्त ४। धूम्रशिखाएँ चार प्रकारकी कही गई हैं ०—वामा वामावर्ता ४। इसी प्रकार चार स्त्रियां कही गई हैं—वामा वामावर्ता ४। अग्नि-

१. आज्ञाकारी। २. आज्ञा का उल्लंघन करने वाला। ३. स्तुतिकर्ता। ४. खेदयुक्त करने वाला। ५. वश में करने वाला। ६. निषेधक।

शिखाएँ चार·······—वामा वामावर्ता ४। इसी प्रकार चार स्त्रियां········। वायु-मण्डलिका चार प्रकारकी कही गई हैं०—वामा वामावर्ता ४। इसी प्रकार चार स्त्रियां······। चार वनखण्ड कहे गए हैं०—वाम वामावर्त ४। इसी प्रकार चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं ···॥३६१॥

चार कारणोंसे साधु साध्वीसे वार्तालाप करते हुए जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं करता–(अन्य व्यक्तिके अभावमें) रास्ता पूछता हुआ, मार्ग बताता हुआ, अशनादिक चार प्रकार आहार देता हुआ और दिलाता हुआ ॥३६२॥

तमस्कायके चार नाम कहे गए हैं०–तम, तमस्काय, अन्धकार और महान्धकार। तमस्कायके चार और नाम कहे गए हैं०–लोकान्धकार, लोकतम, देवान्धकार और देवतम। पुनश्च तमस्काय········—वातपरिघ, वातपरिघक्षोभ, देवारण्य और देवव्यूह। तमस्काय चार कल्पोंको आवृत करके ठहरता है०—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र ॥३६३॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—संप्रकटप्रतिसेवी, प्रच्छन्नप्रतिसेवी, प्रत्युत्पन्ननंदी१, निःसरणनंदी२ ॥३६४॥

सेना चार कही गई है०–एक जेत्री नो पराजेत्री, दूसरी पराजेत्री नो जेत्री, तीसरी जेत्री भी और पराजेत्री भी, चौथी नो जेत्री नो पराजेत्री। इसी तरह चार पुरुषजात कहे गए हैं०—जेता नो पराजेता ४। सेना चार कही गई है०–जेत्री जयति३, जेत्री पराजयति, पराजेत्री जयति, पराजेत्री पराजयति। इसी तरहसे चार पुरुषजात होते हैं०—जेता जयति ४॥३६५॥

राजियां४ चार कही गई हैं०—पर्वतराजि, पृथिवीराजि, वालुकाराजि, उदकराजि। इसी प्रकार चार प्रकारका क्रोध कहा गया है०—पर्वतराजिसमान यावत् उदकरेखा समान। पर्वतराजीके समान अनन्तानुबन्धी क्रोधमें प्रविष्ट हुआ जीव यदि मरता है तो वह नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है। पृथिवीराजीके समान अप्रत्याख्यानक्रोध······तो वह तिर्यंच गतिमें उत्पन्न होता है। वालुकाराजीके समान प्रत्याख्यान क्रोध ·····तो वह मनुष्यगतिमें उत्पन्न होता है। उदकराजीके समान संज्वलनक्रोध······तो वह देवगतिमें उत्पन्न होता है ॥३६६-१॥

स्तम्भ चार कहे गए हैं०—शैल(पत्थर)स्तम्भ, अस्थिस्तम्भ, दारु-(लकड़ी) स्तम्भ, तिनिशलता (तृण)स्तम्भ। इसी प्रकारसे चार प्रकारका मान कहा गया है०—शैलस्तम्भ समान मान यावत् तिनिशलतास्तम्भ समान मान।

---

१. वस्त्रादि लाभमें आनन्दित होने वाला। २. गच्छादि-निर्गमनसे आनन्दित होने वाला। ३. जीतती है। ४. रेखाएं।

शैलस्तम्भसमान मान वाला जीव मरकर नरकगतिमें यावत् तिनिशलतास्तम्भ-समान मान वाला जीव मरकर देवगतिमें जाता है ॥३६६-२॥

वक्र चार कहे गए हैं०—वाँसकी जड़रूप वक्रता, मेषसींगरूप वक्रता, गोमूत्रकी रेखारूप वक्रता, अवलेखनिका (वांसकी शलाका)१ केतन। इसी प्रकार चार प्रकारकी माया कही गई है०—वंशीमूलकेतनसमान यावत् अव-लेखनिकाकेतनसमान। वंशीमूलकेतन समान माया वाला जीव मरकर नरकमें जाता है यावत् अवलेखनिकाकेतन समान मायी जीव देवगतिमें जाता है ॥३६७॥

वस्त्र चार प्रकारके कहे गए हैं०—कृमि रंगसे रंगा हुआ, कर्दम (कीचड़) रागरक्त, खञ्जन (कज्जल) रागरक्त, हल्दीके रंगसे रंगा हुआ। इसी प्रकार चार प्रकारका लोभ कहा गया है०—कृमिरागरक्तवस्त्रसमान यावत् हरिद्रा‌राग-रक्तवस्त्रसमान। कृमिरागरक्तवस्त्र समान लोभी जीव मरकर नरकमें जाता है, यावत् हरिद्रा० जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है ॥३६८॥

संसार चार प्रकारका कहा गया है०—नैरयिकसंसार यावत् देवसंसार। चार प्रकारका आयु कर्म कहा गया है०—नैरयिक आयु यावत् देवायु। भव चार कहे हैं०—नैरयिकभव यावत् देवभव ॥३६९॥

आहार चार प्रकारका कहा गया है०—अशन, पान, खादिम और स्वा-दिम। आहार चार......—उपस्कार२संपन्न, उपस्कृतसंपन्न३, स्वभावसंपन्न और पर्युषित४ संपन्न ॥३७०॥

वन्ध चार प्रकारका कहा गया है०—प्रकृतिवन्ध, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेशवन्ध। उपक्रम चार प्रकारका कहा गया है०—बन्धोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशमनोपक्रम, परिणामोपक्रम। वन्धनोपक्रम चार प्रकार...—प्रकृतिवन्धनो-पक्रम, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेश०। उदीरणोपक्रम चार........—प्रकृत्युदीरणो-पक्रम, स्थि०, अनुभावो०, प्रदेशो०। उपशमनोपक्रम चार...—प्रकृत्युपशमनो-पक्रम यावत् प्रदेशोपशमनोपक्रम। विपरिणामोपक्रम चार...—प्रकृतिविपरि-णामोपक्रम, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेश०। अल्पवहुत्व चार......—प्रकृत्यल्प-वहुत्व यावत् प्रदेशा०। संक्रम चार.........—प्रकृतिसंक्रम यावत् प्रदेश०। निधत्त चार......—प्रकृतिनिधत्त यावत् प्रदेशनिधत्त। निकाचित चार......—प्रकृति-निकाचित, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेश० ॥३७१॥

चार प्रकारके एकक कहे गए हैं०—द्रव्यएकक, मातृकाएकक५, पर्याय-

१.... का छोलन। २. छोंक दिया हुआ। ३. पकाया हुआ। ४. बासी।
५. उप्पण्णेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा, 'अ-आ आदि अक्षर'।

शिखाएँ चार·······—वामा वामावर्ता ४। इसी प्रकार चार स्त्रियां·········। वायु-मण्डलिका चार प्रकारकी कही गई हैं०—वामा वामावर्ता ४। इसी प्रकार चार स्त्रियां······। चार वनखण्ड कहे गए हैं०—वाम वामावर्त ४। इसी प्रकार चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं ···॥३६१॥

चार कारणोंसे साधु साध्वीसे वार्तालाप करते हुए जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं करता—(अन्य व्यक्तिके अभावमें) रास्ता पूछता हुआ, मार्ग बताता हुआ, अशनादिक चार प्रकार आहार देता हुआ और दिलाता हुआ ॥३६२॥

तमस्कायके चार नाम कहे गए हैं०—तम, तमस्काय, अन्धकार और महा-न्धकार। तमस्कायके चार और नाम कहे गए हैं०—लोकान्धकार, लोकतम, देवान्धकार और देवतम। पुनश्च तमस्काय·········—वातपरिघ, वातपरिघक्षोभ, देवारण्य और देवव्यूह। तमस्काय चार कल्पोंको आवृत करके ठहरता है०—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र ॥३६३॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—संप्रकटप्रतिसेवी, प्रच्छन्नप्रतिसेवी, प्रत्युत्प-न्ननंदी१, निःसरणनंदी२ ॥३६४॥

सेना चार कही गई है०—एक जेत्री नो पराजेत्री, दूसरी पराजेत्री नो जेत्री, तीसरी जेत्री भी और पराजेत्री भी, चौथी नो जेत्री नो पराजेत्री। इसी तरह चार पुरुषजात कहे गए हैं०—जेता नो पराजेता ४। सेना चार कही गई है०—जेत्री जयति३, जेत्री पराजयति, पराजेत्री जयति, पराजेत्री पराजयति। इसी तरहसे चार पुरुषजात होते हैं०—जेता जयति ४॥३६५॥

राजियां४ चार कही गई हैं०—पर्वतराजि, पृथिवीराजि, वालुकाराजि, उदकराजि। इसी प्रकार चार प्रकारका क्रोध कहा गया है०—पर्वतराजिसमान यावत् उदकरेखा समान। पर्वतराजीके समान अनन्तानुबन्धी क्रोधमें प्रविष्ट हुआ जीव यदि मरता है तो वह नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है। पृथिवीराजीके समान अप्रत्याख्यानक्रोध······तो वह तिर्यंच गतिमें उत्पन्न होता है। वालुकाराजीके समान प्रत्याख्यान क्रोध ·····तो वह मनुष्यगतिमें उत्पन्न होता है। उदकराजीके समान संज्वलनक्रोध······तो वह देवगतिमें उत्पन्न होता है ॥३६६-१॥

स्तम्भ चार कहे गए हैं०—शैल(पत्थर)स्तम्भ, अस्थिस्तम्भ, दारु-(लकड़ी) स्तम्भ, तिनिशलता (तृण)स्तम्भ। इसी प्रकारसे चार प्रकारका मान कहा गया है०—शैलस्तम्भ समान मान यावत् तिनिशलतास्तम्भ समान मान।

---

१. वस्त्रादि लाभमें आनन्दित होने वाला। २. गच्छादि-निर्गमनसे आनन्दित होने वाला। ३. जीतती है। ४. रेखाएं।

शैलस्तम्भसमान मान वाला जीव मरकर नरकगतिमें यावत् तिनिशलतास्तम्भ-समान मान वाला जीव मरकर देवगतिमें जाता है ॥३६६-२॥

वक्र चार कहे गए हैं०—बाँसकी जड़रूप वक्रता, मेषसींगरूप वक्रता, गोमूत्रकी रेखारूप वक्रता, अवलेखनिका (बांसकी शलाका)१ केतन। इसी प्रकार चार प्रकारकी माया कही गई है०—वंशीमूलकेतनसमान यावत् अव-लेखनिकाकेतनसमान। वंशीमूलकेतन समान माया वाला जीव मरकर नरकमें जाता है यावत् अवलेखनिकाकेतन समान मायी जीव देवगतिमें जाता है ॥३६७॥

वस्त्र चार प्रकारके कहे गए हैं०—कृमि रंगसे रंगा हुआ, कर्दम (कीचड़) रागरक्त, खञ्जन (कज्जल) रागरक्त, हल्दीके रंगसे रंगा हुआ। इसी प्रकार चार प्रकारका लोभ कहा गया है०—कृमिरागरक्तवस्त्रसमान यावत् हरिद्राराग-रक्तवस्त्रसमान। कृमिरागरक्तवस्त्र समान लोभी जीव मरकर नरकमें जाता है, यावत् हरिद्रा० जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है ॥३६८॥

संसार चार प्रकारका कहा गया है०—नैरयिकसंसार यावत् देवसंसार। चार प्रकारका आयु कर्म कहा गया है०—नैरयिक आयु यावत् देवायु। भव चार कहे हैं०—नैरयिकभव यावत् देवभव ॥३६९॥

आहार चार प्रकारका कहा गया है०—अशन, पान, खादिम और स्वा-दिम। आहार चार.....—उपस्कार२संपन्न, उपस्कृतसंपन्न३, स्वभावसंपन्न और पर्युषित४ संपन्न ॥३७०॥

बन्ध चार प्रकारका कहा गया है०—प्रकृतिबन्ध, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेशबन्ध। उपक्रम चार प्रकारका कहा गया है०—बन्धोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशमनोपक्रम, परिणामोपक्रम। बन्धनोपक्रम चार प्रकार...—प्रकृतिबन्धनो-पक्रम, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेश०। उदीरणोपक्रम चार.......—प्रकृत्युदीरणो-पक्रम, स्थि०, अनुभावो०, प्रदेशो०। उपशमनोपक्रम चार...—प्रकृत्युपशमनो-पक्रम यावत् प्रदेशोपशमनोपक्रम। विपरिणामोपक्रम चार...—प्रकृतिविपरि-णामोपक्रम, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेश०। अल्पबहुत्व चार......—प्रकृत्यल्प-बहुत्व यावत् प्रदेशा०। संक्रम चार.........—प्रकृतिसंक्रम यावत् प्रदेश०। निधत्त चार......—प्रकृतिनिधत्त यावत् प्रदेशनिधत्त। निकाचित चार......—प्रकृति-निकाचित, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेश० ॥३७१॥

चार प्रकारके एकक कहे गए हैं०—द्रव्यएकक, मातृकाएकक५, पर्याय-

१.... का छोलन। २. छौंक दिया हुआ। ३. पकाया हुआ। ४. बासी।
५. उप्पण्णेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा, 'अ-आ आदि अक्षर'।

एकक१ और संग्रहएकक२ । कति३-बहु चार प्रकारके कहे गए हैं०—द्रव्यकर्ा मातृकाकति, पर्यायकति और संग्रहकति । चार प्रकारके सर्व कहे गए हैं०—नाम सर्वक, स्थापनासर्वक, आदेशसर्वक४ और निरवशेषसर्वक५ ॥३७२॥

मानुषोत्तर पर्वतकी चारों दिशाओंमें चार कूट हैं०—रत्न, रत्नोच्चय सर्वरत्न, रत्नसंचय ॥३७३॥

जम्बूद्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्रोंमें अतीत उत्सर्पिणीमें सुषमसुषमाका में चार सागरोपमकोडाकोडी का काल था । जंबू०······इस वर्तमान अवसर्पिणी सुषम० चार·······। इस जंबू०······आगामी उत्सर्पिणीमें सुषम०······चार···· काल होगा । जंबूद्वीप नामके इस द्वीपमें देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर चा अकर्मभूमियां कही गई हैं ०—हेमवत, ऐरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष चार वृत्तवैताढ्य पर्वत कहे गये हैं ०—शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती माल्यवत्पर्याय । वहां चार महर्द्धिक देव यावत् पल्योपमकी स्थिति वाले रह हैं ०—स्वाती, प्रभास, अरुण और पद्म । जंबूद्वीपमें महाविदेह क्षेत्र चार प्रका का कहा गया है ०-पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु । समस्त निष और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चार सौ योजन ऊँचे हैं और उद्वेध (भूमिगत विस्तार) से चार सौ गव्यूति (कोस) प्रमाण हैं। जम्बूद्वीपमें मन्दरपर्वतकी पूर्वदिशामें स्थित सीता महानदीके उत्तरी किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं ०—चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिन०, एकशैल । जंबू०······पश्चिमदिशामें शीता महानदीके दक्षिणी किनारे पर चार······—त्रिकूट, वैश्रवणकूट, अंजन मातञ्जन । जंबू०······पश्चिम······शीतोदा महानदीके दक्षिणी······चार व०······—अंकावती, पक्ष्मावती, आशीविष और सुखावह । इसी शीतोदा महानदीके उत्तरीतट पर चार व०······-चन्द्रपर्वत, सूर्य०, देव०, नाग० । जंबूद्वीपके मन्दरपर्वतकी चारों विदिशाओंमें चार व०······—सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन, माल्यवान । जंबूद्वीपमें महाविदेह क्षेत्रमें जघन्य चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव, चार वासुदेव उत्पन्न हुए, होते हैं, और आगे भी होंगे । जंबूद्वीपके मन्दर पर्वत पर चार वन हैं ०—भद्रशालवन, नन्दन०, सौमनस०, पण्डकवन । जम्बूद्वीपमें मन्दर पर्वत पर चार वन हैं ०—भद्रशालवन, नन्दन०, सौमनस०, पण्डकवन । जम्बूद्वीपमें मंदर पर्वत पर स्थित पण्डकवनमें चार अभिषेकशिलाएँ हैं—पाण्डुकम्बलशिला, अतिपाण्डु०, रक्तकम्बलशिला, अतिरक्त० । मन्दरकी चूलिका विष्कम्भसे ऊपर चार योजनकी कही गई है । इसी तरहसे धातकीखंड द्वीपके पूर्वार्धमें कालसे लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक का सब पाठ जानें । इसी तरह यावत् पुष्करवरद्वीपके पाश्चात्यार्धमें भी जंबूद्वीपका-

१. धर्म । २. समुदाय । ३. कई । ४. व्यवहार । ५. समस्त ।

वश्यक कालसे लेकर चूलिका तक समझें। तात्पर्य यह कि धातकीखंड और पुष्करवरार्धमें इनके पूर्व अपर पार्श्वमें भी पूर्वोक्त रूपसे समझें। जंबूद्वीपके चार द्वार कहे गए हैं ०—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित। ये द्वार विष्कम्भ की अपेक्षा चार योजन प्रमाण और प्रवेशकी अपेक्षा भी इतने ही कहे गए हैं। इनमें चार महर्द्धिक देव यावत् एक पल्योपम स्थिति वाले रहते हैं—विजय, वैजयन्त……॥३७४॥

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सुमेरु पर्वतकी दक्षिण दिशामें क्षुद्रहिमवान नाम का वर्षधर पर्वत है। उसकी चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र को तीन-तीन सौ योजन तक अवगाहित करके चार अन्तरद्वीप कहे गए हैं ०—एकोरुक द्वीप, आभाषिक०, वैषाणिक० और लांगूलिक द्वीप। उन द्वीपों में चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं ०—एकोरुक, आभाषिक……। उन द्वीपोंकी चारों विदिशाओं में लवणसमुद्रको चार-चार सौ योजन तक अवगाहित करके दूसरे और चार अन्तरद्वीप कहे गए हैं ०—हयकर्णद्वीप, गजकर्ण०, गोकर्ण०, शष्कुलिकर्ण०। इन द्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं—हयकर्ण……। इन द्वीपों……पाँच-पांच सौ योजन……करके और चार……—आदर्शमुखद्वीप, मेढ्मुख०, अयोमुख०, गोमुख०। उनमें चार प्रकारके मनुष्य ···—आदर्शमुख···। उन द्वीपों······छ छ सौ योजन……—अश्वमुखद्वीप, हस्तिमुख० सिंह०, व्याघ्रमुखद्वीप। उनमें……। उन द्वीपों……सात सात सौ योजन……—अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, अकर्ण, कर्णपावरणद्वीप। उनमें द्वीपके नाम जैसे गुण वाले मनुष्य वसते हैं। उन द्वीपों……आठ आठ सौ योजन……—उल्कामुख०, मेघमुख, विद्युन्मुख, विद्युद्दंत०। उनमें मनुष्य कह लेने चाहिएं। उन द्वीपों……नौ नौ सौ योजन……—घनदन्तद्वीप, लष्टदन्त०, गूढदन्त० और चौथा शुद्धदन्त०। उनमें……। जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें मन्दरपर्वतकी उत्तर दिशामें वर्तमान शिखरी वर्षधर पर्वतकी चार विदिशाओंमें लवणसमुद्रको अवगाहन करके तीन तीन सौ योजन···चार अन्तरद्वीप कहे गए हैं०—एकोरुकद्वीप··· शेष सारा कथन यावत् शुद्धदन्त तक पूर्ववत् समझें ॥३७५॥

जम्बूद्वीप नामके द्वीपकी बाह्य वेदिकान्तसे चारों दिशाओंमें लवणसमुद्र को ६५-६५ हजार योजन प्रमाण लांघकर वहुविस्तृत घड़ेके जैसे आकार वाले चार पाताल कलश हैं०—वडवामुख, केतुक, यूपक और ईश्वर। उनमें चार देव महर्द्धिक यावत् पल्योपमस्थिति वाले रहते हैं ०—काल, महाकाल, वेलम्ब, प्रभञ्जन ॥३७६॥

जम्बूद्वीपकी वाह्यवेदिकाके अन्तसे चारों दिशाओंमें ४२-४२ हजार योजन लवणसमुद्रको उल्लंघन करके चार वेलन्धर नागराजोंके चार आवासपर्वत

कहे गए हैं०—गोस्तूप, उदकभास, शङ्ख और उदकसीम। उन पर चार देव महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाले रहते हैं०—गोस्तूप, शिवक, शङ्ख और मनःशिलक। जम्बू०······चारों विदिशाओंसे······चार अनुवेलन्धर नागराजों के चार आवास०······—कर्कोटक, विद्युत्प्रभ, कैलाश और अरुणप्रभ। उन पर चार देव······—कर्कोटक, कर्दमक, कैलास और अरुणप्रभ ॥३७७॥

लवणसमुद्रमें चार चन्द्रमा प्रकाश करते थे, करते हैं और करेंगे। चार सूर्य तपे हैं, तपते हैं और तपेंगे। चार कृत्तिका यावत् चार भरणी, चार अग्नि, यावत् चार यम। चार अंगारक यावत् चार भावकेतु ॥३७८॥

लवण समुद्रके चार द्वार कहे गए हैं०—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित। द्वार सम्बन्धी और सब कथन जम्बूद्वीप द्वारोंकी तरह जानना। ॥३७९॥

धातकीखण्डद्वीप चक्रवाल विष्कम्भकी अपेक्षा चार लाख योजनका विस्तारवाला कहा गया है ॥३८०॥

जम्बूद्वीप द्वीपके बाहर चार भरत, चार ऐरवत, इसी प्रकार द्वितीय स्थानक के तृतीय उद्देशकके समान चतुःस्थानरूप सारा वर्णन जानें यावत् चार मंदर चार मंदरचूलिकाएं ॥३८१॥

चक्रवाल विष्कम्भ वाले नन्दीश्वर द्वीपके बीच चार दिशाओंमें चार अञ्जनगिरि पर्वत हैं ०—पौरस्त्य अञ्जनक पर्वत, दाक्षिणात्य०, पाश्चात्य० और औदीच्य०। ये चारों ८४-८४ हजार योजन ऊँचाई वाले हैं। उनका उद्वेध एक हजार योजन है, मूलमें उनका विष्कम्भ दस हजार योजन है तथा मात्रा २ से घटते-घटते ऊपर इनका विष्कम्भ एक हजार योजनका है। मूल प्रदेशमें प्रत्येक पर्वत परिधिका विस्तार ३१६२३ योजनका है। तथा ऊपरी भागमें प्रत्येककी परिधि ३१६६ योजन प्रमाण है। इस तरह ये पर्वत मूलमें विस्तीर्ण, मध्यमें संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं। गोपुच्छाकार सर्व अञ्जन(कृष्णरत्न)-मय स्फटिकवत् निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उन अञ्जनक पर्वतोंकी चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां कही गई हैं। उन प्रत्येक पुष्करिणीकी चारों दिशाओंमें चार वनखण्ड हैं। पूर्व दिशामें अशोकवन, दक्षिणमें सप्तपर्णवन, पश्चिममें चम्पकवन, उत्तरमें आम्रवन हैं। इन अञ्जनपर्वतोंमें जो अञ्जन-पर्वत पूर्व दिशामें है, उसकी चारों दिशाओंमें चार नन्दा पुष्करिणियां हैं—नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना। प्रत्येक पुष्करिणीकी चारों दिशाओंमें तीन-तीन सोपान पंक्तियां चमत्कारी शिल्पकलासे युक्त हैं। इन त्रिसोपान प्रतिरूपकोंके आगे चार तोरण पूर्वादि दिशामें हैं। और उन प्रत्येक की चारों दिशाओंमें चार वनखंड कहे गए हैं। पूर्व दिशामें अशोकवन यावत् उत्तर में

आम्रवन। इन पुष्करिणियोंके बहुमध्यदेश भागमें चार दधिमुख पर्वत हैं। ये पर्वत ६४ हजार योजन ऊँचे, एक हजार योजन गहरे, आकारसे पल्यङ्क जैसे, दस हजार योजन चौड़े, एक समान हैं। इनकी परिधि ३१६२३ योजन है। ये पर्वत सर्वरत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। शेष अंजनक पर्वतोंके समान सारा वर्णन जानना चाहिए यावत् उत्तरमें आम्रवन। उनमें जो दक्षिणकी ओर अञ्जन पर्वत है उसकी चारों दिशाओंमें चार नन्दा पुष्करिणियां कही गई हैं०—भद्रा, विशाला, कुमुदा, पुण्डरीकिणी। शेष उसी प्रकार दधिमुख पर्वतके समान यावत् वनखण्ड तक। उनमें जो पश्चिम······—नन्दिषेणा, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना। शेष······। उनमें जो उत्तर······—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता। शेष······वनखण्ड तक। चक्रवाल विष्कम्भ वाले वलयाकार नन्दीश्वर द्वीपके बहुमध्यदेश भागमें चारों विदिशाओंमें चार रतिकरपर्वत१ कहे गए हैं०—ईशान, आग्नेय, नैऋत, वायव्य०। वे रतिकरपर्वत १० हजार योजन ऊँचे, उद्वेधसे एक हजार योजन गहरे, सब के सब समान हैं। झल्लरी२ जैसे आकार वाले हैं। इनका विष्कम्भ १० हजार योजनका है, परिधि ३१६२३ योजन है। वे सब सर्वरत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। उनमें जो रतिकरपर्वत उत्तर पौरस्त्य-ईशान कोणमें है, उसकी चारों दिशाओंमें देवेन्द्र-देवराज ईशान की चार कृष्णादिक अग्रमहिषियोंकी चार राजधानियां जम्बूद्वीपके बराबर हैं। इन राजधानियोंके नाम नन्दोत्तरा, नन्दा, उत्तरकुरु, देवकुरु। कृष्णाकी-कृष्ण-राजी०, रामा०, रामरक्षिता०। तथा जो····· अग्निकोणमें है········ देवराज शक्रकी चार पद्मादिक अग्रमहिषियोंकी···—सुमना, सौमनसा, अर्चिमालिनी, मनोरमा। पद्मा की—शिवा०, शची०, अञ्जू०। तथा जो·········नैऋत कोणमें ······चार राज०·········—भूता, भूतावतंसा, गोस्तूपा, सुदर्शना। अमलाकी-अप्सरा०, नवमिका० रोहिणीकी। जो······वायुकोणमें····· देवराज ईशानकी चार अग्र०······—रत्ना, रत्नोच्चया, सर्वरत्ना, रत्नसंचया। वसुकी वसुगुप्ता०, वसुमित्रा० वसुन्धराकी ॥३८२॥

सत्य चार प्रकारका कहा गया है०—नाम—सत्य, स्थापना—सत्य, द्रव्य-सत्य, भावसत्य ॥३८३॥

आजीविकोंके मतमें चार प्रकार का तप कहा है०—उग्रतप, घोरतप, रसनिर्यूहणता३, रसनेन्द्रियप्रतिसंलीनता ॥३८४॥

संयम चार प्रकारका है०—मनःसंयम, वाक्संयम, कायसंयम और उप-करणसंयम। त्याग चार प्रकारका होता है०—मनस्त्याग, वाक्त्याग, कायत्याग,

---

१. देवोंके क्रीडा स्थान। २. वाद्यविशेष। ३······परित्याग।

उपकरणत्याग। अकिञ्चनताके चार भेद हैं०—मनोऽकिञ्चनता, वाक्अकिञ्चनता, कायाऽकिञ्चनता, उपकरणाऽकिञ्चनता ॥३८५॥

॥ चौथे स्थानका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

चतुर्थ स्थानक—तृतीयोद्देशक

जल चार प्रकारके कहे गए हैं ० —कर्दमोदक१, खञ्जनोदक२, बालुकोदक३ और शैलोदक४। भाव चार प्रकार का कहा गया है० —कर्दमोदक समान यावत् शैलोदक समान। कर्दमोदक समान भाव में अनुप्रविष्ट हुआ जीव यदि कालवश होता है तो वह नरकमें उत्पन्न होता है यावत् शैलोदक समान भावमें अनुप्रविष्ट जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है ॥३८६॥

पक्षी चार प्रकारके कहे गए हैं ० —कोई पक्षी ऐसा होता है, जिसका शब्द तो आनन्ददायक होता है पर वह स्वयं सुन्दर आकार वाला नहीं होता। कोई पक्षी···जिसका रूप सुन्दर होता है पर शब्द आनन्ददायक नहीं होता। कोई······रूप भी सुन्दर होता है और शब्द भी आनन्ददायक होता है। कोई पक्षी न बोलने में सुन्दर होता है न देखनेमें। इसी प्रकार पुरुषजात चार हैं० —कोई पुरुष············न देखने में ॥३८७॥

चार प्रकारके पुरुष कहे गए हैं०—कोई "मैं प्रीति करूँ" ऐसा निश्चय करके प्रीति करता है। कोई······ करके भी प्रीति नहीं करता। कोई "मैं अप्रीति करूँ" ऐसा निश्चय करके भी अप्रीति नहीं करता। कोई······· करके अप्रीति ही करता है। पुरुषजात चार हैं० —कोई अपने प्रति प्रीति करता है, परके प्रति नहीं। कोई पर के प्रति प्रीति करता है, अपने प्रति नहीं ४। पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं० —कोई "अपने स्नेह को परके चित्तमें प्रविष्ट कराऊँ" ऐसा निश्चय करके परचित्त में अपने स्नेह को स्थापित करता है। कोई············स्थापित नहीं करता। कोई "परचित्त में अप्रीति प्रविष्ट कराऊँ" निश्चय करके भी प्रीति को प्रविष्ट करता है। कोई······निश्चय न करके उसके चित्तमें अपनी अप्रीति ही प्रविष्ट करता है। पुरुषजात चार·········० —कोई अपने चित्तमें प्रीतिको प्रविष्ट करता है दूसरेके नहीं ४ ॥३८८॥

चार प्रकारके वृक्ष कहे गए हैं० —पत्तोंसे युक्त, फूलों से युक्त, फलोंसे युक्त, छायासे युक्त। इसी प्रकार चार पुरुष होते हैं० —पत्रयुक्त वृक्ष समान यावत् छायायुक्त वृक्ष समान ॥३८९॥

---

१. कीचड़ प्रधान। २. कज्जल०। ३. बालू। ४. कंकर।

भार उठाने वाले पुरुषके लिए चार विश्राम कहे गए हैं० —जहाँ वह एक कंधेसे दूसरे कंधे पर रखता है, वह पहला विश्राम। जहाँ वह मल-मूत्रका त्याग करता है, वह दूसरा विश्राम। जहाँ वह कहीं ठहर जाता है ३। गन्तव्य स्थान पर पहुंच कर भार उतार देता है ४। इसी प्रकार श्रावकके भी चार विश्राम कहे हैं० —पहला विश्राम जब वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, अनर्थदण्डविरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास को स्वीकार करता है। दूसरा विश्राम जब वह सामायिक देशावकाशिक का सम्यक् रीतिसे पालन करने लगता है। तीसरा विश्राम जब वह चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथियोंमें पौषधका पूर्णरूपसे पालन करता है। चौथा विश्राम जब वह मरणकाल संबंधिनी अपश्चिम संलेखना को धारण कर लेता है, भक्तपानका प्रत्याख्यान कर देता है और अपने कालकी आकाङ्क्षारहित होकर पादपोपगमन "संथारा" वाला होता है ॥३९०॥

चार पुरुषजात कहे गए हैं०—उदितोदित, उदिताऽस्तमित१, अस्तमितोदित, अस्तमितास्तमित। चातुरन्त चक्रवर्ती भरत नरेश उदितोदित थे। चातुरन्त चक्रवर्ती उदितास्तमित थे। हरिकेश नामके अनगार अस्तमितोदित थे। ब्रह्मदत्त कालसौकरिक (कसाई) अस्तास्तमित था ॥३९१॥

युग्म चार कहे गए हैं०—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापर, कल्यौज। नैरयिकोंके चार युग्म होते हैं०—कृत० ४। इसी तरह असुरकुमारोंसे लेकर यावत् स्तनितकुमार तक, पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक—वायुकायिकों के.........सबके नैरयिकों के समान ॥३९२॥

शूर चार प्रकारके होते हैं०—क्षमाशूर, तपःशूर, दानशूर और युद्धशूर। इनमें क्षान्तिशूर अर्हन्त भगवान होते हैं, तपःशूर साधु होते हैं, दानशूर वैश्रवण हैं, युद्धशूर वासुदेव होते हैं ॥३९३॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं ०—उच्च उच्चच्छन्दवाला२, उच्च नीचच्छन्द वाला, नीच उच्चच्छन्दवाला, एवं नीच नीचच्छन्दवाला ॥३९४॥

असुरकुमारोंमें चार लेश्याएँ कही गई हैं०—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों में। इसी प्रकार पृथिवीकायिकों, अप्कायिकों, वनस्पतिकायिकों, वाणव्यन्तरों सबमें असुरकुमारों के समान ॥३९५॥

---

१. उदित=अभ्युदयसंपन्न, अस्तमित=अ० विहीन। २. विचार।

यान चार कहे गए हैं० —युक्त युक्त, युक्ताऽयुक्त, अयुक्तयुक्त, अयुक्ताऽयुक्त। इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं०—युक्त युक्त ४। यान चार……—युक्त युक्तपरिणत, युक्ताऽयुक्तपरिणत, अयुक्त युक्तपरिणत, अयुक्ताऽयुक्त परिणत। इसी प्रकार पुरुष भी…… । यान चार…… —युक्त युक्तरूप, युक्त अयुक्तरूप ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। यान चार……… —युक्त युक्त शोभा वाले ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। युग्य१ चार कहे गए हैं० —युक्त युक्त ४। इसी प्रकार पुरुष भी ……। इसी प्रकार जैसे यान के चार आलापक कहे उसी प्रकार युग्यके साथ भी चार आलापक कहने चाहिएँ। प्रतिपक्ष उसी प्रकार पुरुषजात यावत् युक्त शोभा वाले। सारथी चार प्रकारके होते हैं ० —कोई सारथि रथ में अश्वादिकोंको संलग्न करता (जोड़ता) है परन्तु उन्हें रथ से अलग नहीं करता। कोई……अश्वादिकों को अलग करता है परन्तु उन्हें जोड़ता नहीं। कोई जोड़ता भी है अलग भी करता है। कोई न योजयिता, न वियोजयिता होता है। इसी प्रकार पुरुष भी…………न योजियिता२, न वियोजयिता३ होता है। चार प्रकार के अश्व कहे गए हैं ०—युक्त युक्त ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। इसी प्रकार युक्तपरिणत, युक्तरूप, युक्तशोभासंपन्न, सबके प्रतिपक्ष पुरुषजात जानने चाहिएँ। हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं० —युक्त युक्त ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। इस प्रकार जैसे अश्वोंका कहा, उसी प्रकार गजोंका भी कहना चाहिए। प्रतिपक्ष पुरुषजात उसी प्रकार। युग्याचर्या४ चार कही गई हैं० —पथियायी नो उत्पथयायी, उत्पथयायी नो पथियायी, पथियायी भी उत्पथयायी भी और नो पथियायी नो उत्पथयायी। इसी प्रकार पुरुष भी……॥३६६॥

चार प्रकार के पुष्प कहे गए हैं०—कोई पुष्प केवल रूपसंपन्न होता है, गन्धसंपन्न नहीं। कोई फूल केवल गन्धसंपन्न ही होता है, रूपसंपन्न नहीं। कोई पुष्प रूपसंपन्न भी होता है, गन्धसंपन्न भी। कोई न रूपसंपन्न होता है, न गन्धसंपन्न। इसी प्रकार पुरुषजात भी चार प्रकार के कहे गए हैं ०—कोई रूपसंपन्न होता है, पर शीलसंपन्न नहीं ४॥३६७॥

पुरुषजात चार प्रकार के कहे गए हैं० —जातिसंपन्न नो कुलसंपन्न, कुलसंपन्न नो जातिसंपन्न ४। पुरुष…… —जातिसंपन्न नो बलसंपन्न, बलसंपन्न नो जातिसंपन्न ४। इसी प्रकार जाति और रूपके संयोगसे ४ आलापक, जाति

---

१. वृषभादि। २. शुभ प्रवृत्ति में लगाने वाला। ३. अनुचित प्रवृत्ति से हटाने वाला। ४. जाने का स्वभाव।

और श्रुतके योगसे ४ आ० । इसी प्रकार जाति और शील, जाति और चरित्र, कुल और बल, कुल और रूप, कुल और श्रुत, कुल और शील, कुल और चरित्र के संयोगसे ४-४ भांगे कहने चाहिएँ। पुरुष चार······ —बलसंपन्न नो रूप-संपन्न ४। इसी प्रकार बलसं० और श्रुतसंपन्न ४। बल० और शील० ४। बल० और चरित्र० ४। पुरुष चार······ —रूपसंपन्न नो श्रुतसंपन्न ४। इसी प्रकार रूप० शील० ४। रूप० चरित्र० ४। पुरुष चार······ —श्रुतसंपन्न नो शील-संपन्न ४। इसी प्रकार श्रुत० चरित्र० ४। पुरुष चार······ —शीलसंपन्न नो चारित्रसंपन्न ४। ये २१ भाँगे कहने चाहिएँ ॥३९८॥

फल चार प्रकार के हैं—आमलक१मधुर, मृद्वीक२ मधुर, क्षीर३मधुर, खण्डमधुर। इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं०—आमलक मधुर फल समान, यावत् खण्ड मधुर फल समान ॥३९९॥

पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं०—आत्मवैया वृत्यकर४ नो परवैयावृत्य-कर ४। पुरुष चार······ —कोई दूसरों की वैयावृत्य करता है, परन्तु दूसरोंसे वैयावृत्य नहीं करवाता। कोई दूसरोंसे वैयावृत्य कराता है, परन्तु स्वयं नहीं करता ४ ॥४००॥

पुरुष चार कहे गए हैं ०—कोई पुरुष अर्थकर५ होता है मानकर नहीं। कोई अभिमानी होता है, अर्थकर नहीं। कोई अर्थकर भी होता है, मानकर भी। कोई न अर्थकर होता है, न मानकर। पुरुष चार···—कोई गणार्थकर६ हो··· मानकर नहीं ४। पुरुष चार······—कोई गणसंग्रहकर७ होता है, मानकर नहीं४। पुरुष चार······ —कोई गणशोभाकर८ होता है, मानकर नहीं ४। पुरुष चार··· ···—कोई गणशोधिकर९ होता है, मानकर नहीं ४ ॥४०१॥

पुरुष चार······ —कोई वेष को छोड़ता है, धर्मको नहीं। कोई धर्मको छोड़ता है, वेष नहीं। कोई दोनों को छोड़ देता है। कोई धर्म और वेष दोनों को नहीं छोड़ता। पुरुष चार······ —कोई धर्म (जिनाज्ञा) का परित्याग कर देता है पर गच्छमर्यादा नहीं ४। पुरुष······ —कोई पुरुष धर्मप्रिय होता है, परन्तु दृढ़-धर्मा नहीं। कोई दृढ़धर्मा होता है, परन्तु धर्मप्रिय नहीं। कोई प्रियधर्मा भी होता है दृढ़धर्मा भी। कोई न प्रियधर्मा होता है न दृढ़धर्मा ॥४०२॥

आचार्य चार कहे गए हैं०—कोई प्रव्राजनाचार्य१० होता है, उपस्थापना-चार्य११ नहीं। कोई उपस्थापनाचार्य होता है, प्रव्राजनाचार्य नहीं। कोई प्र० होता

१. आंवला। २. दाख (किशमिश)। ३. दूध। ४. सहायता (सेवा)।
५. हितकर अहितपरिहारक। ६. गणहितसाधक। ७. गच्छार्थ द्रव्यसे आहारादि, भाव से ज्ञानादि संग्रहकर्ता। ८. गच्छ की शोभा बढ़ाने वाला। ९. शुद्धि करने वाला। १०. दीक्षा देने वाला।
११. छेदोपस्थानीय चरित्र (बड़ी दीक्षा) देने वाला।

है उ० भी। कोई न प्र० होता है न उ०। आचार्य चार कहे······—कोई उद्देशनाचार्य१ होता है, वाचनाचार्य नहीं ४। यावत् धर्माचार्य समस्त पद जानना चाहिए ॥४०३॥

अन्तेवासी२ चार होते हैं० —कोई प्रव्राजान्तेवासी३ होता है, पर उपस्थापनान्तेवासी नहीं ४। यावत् धर्मान्तेवासी। अन्तेवासी चार······—कोई उद्देशनान्तेवासी होता है, परन्तु वाचनान्तेवासी नहीं ४ ॥४०४॥

निर्ग्रन्थ चार प्रकारके कहे गए हैं०—कोई रात्निक (दीक्षा ज्येष्ठ) श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा महती क्रिया वाला, परीषहोंको सहनेमें असमर्थ, समिति पालन रहित धर्मका अनाराधक होता है। कोई······निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिया वाला, परीषहोंको सहनेमें धीर, समितिसंपन्न, धर्मका आराधक होता है। कोई दीक्षा में लघु श्रमण······ महाकर्मा············। कोई दीक्षामें लघु······अल्पकर्मा······ आराधक होता है। साध्वियां चार प्रकारकी कही गई हैं ०—दीक्षा में बड़ी साध्वी ४ इसी प्रकार। श्रमणोपासक चार प्रकारके कहे गए हैं०—रात्निक४ श्रमणोपासक महाकर्मा ४ उसी प्रकार। इसी प्रकार चार प्रकार की श्राविका जानना ॥४०५॥

श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गए हैं०—कोई श्रमणोपासक माता-पिताके समान होता है। कोई भाईके······। कोई मित्र······। कोई सपत्नी५ के समान होता है। श्रमणोपासक चार······—कोई श्रमणोपासक आदर्श६ के समान होता है। कोई पताका७······। कोई···ठूंठ८······। कोई······ खरकण्टक९······॥४०६॥

श्रमण भगवान् महावीरके श्रमणोपासकों की सौधर्मकल्पमें अरुणाभ विमानमें चार पल्योपम की स्थिति कही गई है ॥४०७॥

किसी देवलोकमें उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोकमें शीघ्र आनेकी इच्छा करता हुआ इन चार कारणोंसे शीघ्र यहां नहीं आ सकता०—देवलोकोत्पन्न देव वहाँके कामभोगोंमें मूर्छित—मोहंगत, गृद्ध-ग्रथित१०—अध्युपपन्न११ हो जाता है, अतः मनुष्यसंबंधी कामभोगोंको वह आदर दृष्टिसे नहीं देखता है।

---

१. अंगादि सूत्रोंके पढ़ने का अधिकार देने वाला। २. शिष्य। ३. दीक्षित।

४. व्रतग्रहण पर्याय से ज्येष्ठ। ५. सौत। ६. शीशे के समान दृश्य—उपदिष्ट ग्रहण करने वाला। ७···के समान चंचल।

८···के समान न झुकने वाला। ९. तीक्ष्ण काँटों से भरपूर बबूल आदि की टहनी जिससे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो १०. ग्रस्त। ११. तल्लीन।

ये मेरे कामके हैं ऐसा उन्हें नहीं मानता है। इनसे मेरा प्रयोजन सिद्ध होगा, ऐसी बुद्धि उनमें नहीं करता। ये पुनः मुझे मिलें, ऐसी भावना नहीं करता और न उनमें स्थितिका विकल्प ही करता है१। देवलोकोत्पन्न······अध्युपपन्न हो जाता है तब उसके हृदयका मानुषिक प्रेम नष्ट हो जाता है और देवलोक संबंधी प्रेम प्रविष्ट हो जाता है२।······है, तब उसे ऐसा विचार आता है, "अब जाऊँगा, थोड़ी देर बाद जाऊँगा" तब तक उसके अल्पायु वाले इष्ट जन मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं३।······तब उसे मनुष्यगन्ध प्रतिकूल बिल्कुल अमनोज्ञ जान पड़ती है। वह गन्ध मनुष्य लोक से ऊपर ४-५ सौ १ योजन तक ऊँची पहुंचती है जो उन्हें रुचती नहीं, इससे देव यहाँ नहीं आते ४। इन चार कारणों से······नहीं आ सकता ॥४०८॥

किसी देवलोक·········शीघ्र यहां आ सकता है०— ······कामभोग में अमूर्छित यावत् अतल्लीन होता हुआ ऐसा विचार करता है—मनुष्यभवमें जब मैं था तबके मेरे वहां आचार्य हैं, उपाध्याय हैं, प्रवर्तक हैं, स्थविर हैं, गणी हैं, गणधर हैं, गणावच्छेदक हैं, मैंने जो ऐसी अनुपम देवर्द्धि देवद्युति प्राप्तकी है, अभिसमन्वागत२ की है सो यह उन्हीं का सब प्रभाव है। अतः उचित है कि मैं चलूं और उनकी वन्दना करूं यावत् उनकी पर्युपासना करूं१। ······ऐसा विचार करता है—कि मनुष्यभवमें ज्ञानी हैं, तपस्वी हैं और अति दुष्कर २ कारक३ साधुजन हैं अतः······पर्युपासना करूं २।······कि मेरे मनुष्यभवके सम्बन्धी माता यावत् पुत्रवधू हैं, इसलिए मैं उनके पास जाऊं, वे मेरी ऐसी इस प्रत्यक्षभूत दिव्य देवर्द्धिको एवं दिव्य देवद्युतिको कि जिसे मैंने उपलब्ध-प्राप्त की है, अभिसमन्वागत की है देखें३।······मनुष्यभवके मित्र हैं, सुहृद्जन हैं, सहायक हैं, साङ्गतिक हैं, उन्होंने हमारे साथ वायदा किया था, कि जो कोई भी हममें देवलोकसे पहले चवे वह प्रतिबोधनीय४ है। इन चार कारणोंसे······आ सकता है ॥४०९॥

इन चार कारणोंसे लोकमें अन्धकार५ हो०—अरिहंतोंके मोक्ष जाने पर, अर्हत्प्रज्ञप्त धर्मका विच्छेद होने पर, पूर्वगत ज्ञानका विच्छेद होने पर, अग्नि (दीपक-बिजली आदि) का विच्छेद होने पर। इन चार कारणोंसे लोकमें प्रकाश होता है०—अरिहंतोंके जन्म होने पर, उनके दीक्षा लेने पर, केवलज्ञान होने पर, अरिहंतोंके निर्वाण प्राप्त करने पर। इसी प्रकार देवान्धकार६ देवो-

१. युगलियोंकी अपेक्षा चार सौ, कर्मभूमिकी अपेक्षा पांच सौ। २. भोग्यावस्था को प्राप्त। ३. कठिनातिकठिन तपस्या करने वाले। ४. प्रतिबोध देने योग्य। ५. द्रव्य और भाव से। ६. देवलोक में अन्धकार।

द्योत, देवसमूहका एकत्र होना, एकके बाद एकका आना, देवोंका कोलाहल भी। चार कारणोंसे देवेन्द्र मनुष्यलोकमें आते हैं…जैसे तीसरे स्थानमें कहा यावत् लोकान्तिक देव मनुष्यलोकमें आते हैं—अरिहंतोंके जन्म लेने पर यावत् अरिहंतोंके मोक्ष जाने पर ॥४१०॥

चार दुःखशय्याएं कही गई हैं। उनमें यह पहली दुःखशय्या है—जैसे कोई मनुष्य मुण्डित होकर, घरबार छोड़कर, साधु बन जाता है। तत्पश्चात् वह निर्ग्रन्थ प्रवचनमें शङ्कायुक्त होता है, फलमें संशययुक्त…, बुद्धिभेदयुक्त हो जाता है। विपरीत ज्ञान वाला होकर वह निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, उसमें रुचि नहीं करता। उस पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि न करता हुआ अपने मनको विविध विषयोंमें ले जाता है। ऐसी स्थितिमें धर्मभ्रष्ट होकर वह संसारमें ही परिभ्रमण करने वाला होता है, यह प्रथम दुःखशय्या है। दूसरी दुःखशय्या इस प्रकार है—जैसे……बन जाता है। पर वह अपने लाभसे सन्तुष्ट नहीं होता, परके लाभकी आशा करता है, उसकी चाहना करता है, प्रार्थना०, अभिलाषा रखता है, ऐसा करता हुआ वह अपने मनको……यह दूसरी दुःखशय्या है। तीसरी……—जैसे……है। पर वह दिव्य मनुष्य सम्बन्धी कामभोगोंकी आशा करता है, यावत् अभिलाषा रखता है। ऐसा……। यह तीसरी दुःखशय्या है। चौथी……—……वह विचार करता है, कि जब मैं गृहस्थावस्थामें था, उस समय शरीरको दबवाता था, मलवाता था, तैलादिकी मालिश कराता था, पानीसे उसे खूब अच्छी तरह नहलाता था, अब जबसे मैं साधु बन गया हूं तबसे न तो मुझे दबवाने का मौका मिलता है, यावत् न नहलानेका मौका मिलता है। इस तरहसे वह संवाह आदिकी आशा करता है……। यह चौथी ……॥४११॥

सुखशय्याएँ भी चार कही गई हैं, उनमें यह प्रथम सुखशय्या है—जैसे……। तत्पश्चात् वह निर्ग्रन्थ प्रवचनमें शंका नहीं करता, यावत् रुचि करता है।……रुचि करता हुआ अपने मनको विविध विषयोंमें नहीं ले जाता। ऐसी……भ्रष्ट नहीं होता न ही वही संसार में……यह प्रथम सुखशय्या है। दूसरी सुखशय्या……—जैसे……सन्तुष्ट होता है, परके लाभकी आशा नहीं करता, यावत् अभिलाषा नहीं रखता। ऐसा करता हुआ वह अपने मनको…… नहीं ले जाता।……न ही वह संसारमें……यह दूसरी……। तीसरी……—जैसे……है। वह दिव्य……आशा नहीं करता यावत् अभिलाषा नहीं रखता। ऐसा……यह तीसरी……। चौथी……—……वह विचार करता है, कि जब हृष्ट१, आरोग्यसंपन्न, शक्तिमान्, तद्भवमोक्षगामी अरिहंत भगवान अन्यतर, उदार, कल्याणकर, विपुल, प्रयत्नसंपन्न, अत्यधिक आदरभावसे स्वीकार किये

गए, महाप्रभावयुक्त, कर्मक्षयके कारणभूत, तपःकर्मोको अंगीकार करते हैं, तो क्यों मैं आभ्युपगमिकी२ एवं औपक्रमिकी३ वेदनाको समभावसे न सहूं,क्रोधादिको दूर करके, दीनता दरसाए विना क्यों न सहूं। क्यों न उसे सहन करनेके लिये डटा रहूं—निश्चल रहूं। यदि मैं ऐसा नहीं करूंगा तो एकान्ततः पापका भागी बनूंगा, और यदि मैं समभावसे सहूंगा यावत् निश्चल रहूंगा, तो एकान्त रूप से मेरे कर्मोंकी निर्जरा होगी। यह चौथी सुखशय्या है ।।४१२।।

चार अवाचनीय कहे गये हैं०—अविनीत, विकृतिप्रतिबद्ध, तीव्रक्रोधी और मायी। चार वाचनाके योग्य कहे गए हैं ०—विनीत, घी आदि विगयमें अनासक्त, उपशान्तक्रोधी और अमायी ।।४१३।।

पुरुषजात चार कहे गये हैं०—आत्मम्भरि नो परभर, परभर नो आत्मम्भरि, आत्मभर भी परभर भी, नो आत्मम्भरि नो परभर ।।४१४।।

पुरुष चार······—दुर्गत-दुर्गत नाम वाला, दुर्गत सुगत नाम वाला, सुगत-दुर्गत नाम वाला और सुगत सुगत नाम वाला। पुरुष ४······—दुर्गत दुर्व्रत, दुर्गत सुव्रत, सुगत दुर्व्रत और सुगत सुव्रत। पुरुष चार······दुर्गत दुष्प्रत्यानन्द, दुर्गत सुप्रत्यानन्द ४। पुरुष ४······—दुर्गत दुर्गतिगामी, दुर्गत सुगतिगामी ४। पुरुष चार······—दुर्गत दुर्गतिङ्गत, दुर्गत-सुगतिङ्गत ४ ।।४१५।।

पुरुष चार······—तमस्तमस्वरूप, तमो ज्योतिःस्वरूप, ज्योतिस्तमः-स्वरूप ज्योतिज्योतिःस्वरूप। पुरुष······—तमस्तमोबल, तमोज्योतिबल, ज्योतिस्तमोबल और ज्योतिज्योतिबल। पुरुष······—तमो तमोबलप्रज्वलन, तमो ज्योतिबलप्रज्वलन ४ ।।४१६।।

पुरुष चार······—परिज्ञातकर्मा नो परिज्ञातसंज्ञ, परिज्ञातसंज्ञ नो परि-ज्ञातकर्मा, परिज्ञातकर्मा भी परिज्ञातसंज्ञ भी और नो परिज्ञातकर्मा नो परिज्ञात-संज्ञ। पुरुष चार···—परिज्ञातकर्मा नो परिज्ञातगृहावास, परिज्ञातगृहावास नो परिज्ञातकर्मा ४। पुरुष चार······—परिज्ञातसंज्ञ नो परिज्ञातगृहावास, परि-ज्ञातगृहावास नो परिज्ञातसंज्ञ ४ ।।४१७।।

पुरुष ४······—इहार्थ नो परार्थ, परार्थ नो इहार्थ ४। पुरुष चार······—एकसे वर्द्धमान, एकसे हीयमान, एकसे वर्द्धमान दो से हीयमान ४ ।।४१८।।

कन्थक४ चार प्रकारके कहे गये हैं—आकीर्ण५ आकीर्ण, आकीर्ण खलुङ्क६,

---

१. वेदनाओं के आने पर भी प्रसन्न रहने वाले। २. केशलुञ्चनादि। ३. रोगजन्य वेदना। ४. अश्व। ५. जातिमान् ६. अड़ियल।

खलुङ्क आकीर्ण, खलुङ्क खलुङ्क। इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं—आकीर्ण आकीर्ण ४। कन्थक चार……—आकीर्ण आकीर्ण रूप से विहारी, आकीर्ण खलुङ्क रूपसे विहारी, खलुङ्क आकीर्ण रूपसे विहारी, खलुङ्क खलुङ्क रूपसे विहारी। इसी प्रकार पुरुष भी……। कन्थक चार……—जातिसंपन्न नो कुलसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। कन्थक चार……—जातिसपन्न नो वलसपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। कन्थक चार……—जातिसंपन्न नो रूपसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। कन्थक चार……—जातिसंपन्न नो जयसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी। इसी प्रकार कुलसंपन्न और वलसंपन्न, कुलसंपन्न और रूपसंपन्न, कुलसंपन्न और जयसंपन्न, वलसंपन्न और रूपसंपन्न, वलसंपन्न और जयसंपन्न प्रत्येकसे चतुर्भङ्गी वना लेनी चाहिए। प्रतिपक्ष दार्ष्टान्तिरूप पुरुषजात कहना चाहिये। कन्थक चार……—रूपसंपन्न नो जयसंपन्न ४। इसी प्रकार पुरुष भी……॥४१९॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं—सिंहरूपसे निकलकर सिंहरूपसे विहार करने वाला, सिंहरूपसे निकलकर शृगालरूपसे विहार करने वाला, शृगालरूपसे निकल कर सिंहरूपसे विहार करने वाला, और शृगालरूपसे निकलकर शृगालरूपसे विहार करने वाला ॥४२०॥

लोकमें ये चार पदार्थ प्रमाणकी अपेक्षा समान कहे गए हैं०—अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप नामक द्वीप, पालक यान विमान और सर्वार्थसिद्ध महाविमान। *लोकमें ये चार ……समान, सप्रतिदिक्*[1] *और समान पार्श्व वाले कहे गए हैं०—* सीमन्तक नरक, समयक्षेत्र, उडु विमान और सिद्धशिला ॥४२१॥

ऊर्ध्वलोकमें चार दो शरीर वाले कहे गए हैं०—पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और उदार त्रसप्राण। अधोलोकमें चार दो शरीर वाले……। इसी प्रकार तिर्यग्लोकमें भी समझना चाहिए ॥४२२॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—ह्री सत्व[2] वाला, ह्री मनःसत्व वाला, चल सत्व वाला और स्थिर सत्व वाला ॥४२३॥ शय्याप्रतिमा चार कही गई है। वस्त्रप्रतिमा चार…। पात्रप्रतिमा ४…। स्थानप्रतिमा चार…॥४२४॥

चार शरीर जीवस्पृष्ट कहे गए हैं०—वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। चार शरीर कार्मण शरीरसे मिले हुए कहे गए हैं०—औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस ॥४२५॥

यह लोक चार अस्तिकायरूप द्रव्योंसे व्याप्त कहा गया है०—धर्मास्तिकायसे, अधर्मास्ति०, जीवास्ति० और पुद्गलास्ति०। उत्पद्यमान चार वादर-

---

१. समान विदिशा वाले। २. लज्जासे स्थिरता या वल वाला।

कायोंसे यह लोक स्पृष्ट कहा गया है०—पृथिवीकायिकोंसे, अप्कायिकोंसे, वायु० और वनस्पति०। प्रदेश परिमाणकी अपेक्षा चार पदार्थ आपसमें तुल्य कहे गए हैं०—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, एक जीव। चार (कायों) का शरीर सुदृश्य१ नहीं होता०—पृथिवीकायिकोंका, अप्का०, तेउ०, वनस्पतिकायिकोंका ॥४२६॥

चार इन्द्रियोंके विषय इन्द्रियोंके साथ स्पृष्ट होकर ग्राह्य होते हैं०—श्रोत्रेन्द्रियार्थ, घ्राणेन्द्रियार्थ, जिह्वेन्द्रियार्थ और स्पर्शेन्द्रियार्थ ॥४२७॥

चार कारणोंसे जीव और पुद्गल बाह्य लोकान्तसे अलोकमें जानेके लिए समर्थ नहीं होते हैं०—गतिका अभाव, गतिसाधक कारणका अभाव, स्निग्धरहित और लोकानुभाव२ ॥४२८॥

ज्ञात३ चार प्रकारका कहा गया है०—आहरण, आहरणतद्देश, आहरणतद्दोष और उपन्यासोपनय। इनमें आहरण चार प्रकार···—अपाय, उपाय, स्थापनाकर्म और प्रत्युत्पन्नविनाशी। आहरणतद्देश चार···—अनुशिष्ट, उपालंभ, पृच्छा और निश्रावचन। आहरणतद्दोष चार······—अधर्मयुक्त, प्रतिलोम, आत्मोपनीत और दुरुपनीत। उपन्यासोपनय भी चार······—तद्वस्तुक, तदन्यवस्तुक, प्रतिनिभ और हेतु ॥४२९॥

हेतु चार प्रकारका कहा गया है०—यापक, स्थापक, व्यंसक और लूषक। अथवा हेतु चार प्रकार······—प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य, आगम। अथवा हेतु चार······—अस्ति तत् अस्ति असौ हेतुः, अस्ति तत् नास्त्यसौ हेतुः, नास्ति तत् अस्त्यसौ हेतुः और नास्ति तत् नास्त्यसौ हेतुः ॥४३०॥ संख्यान चार प्रकारका है०—परिकर्म, व्यवहार, रज्जु और राशि ॥४३१॥

अधोलोकमें ये चार चीजें अन्धकार करती हैं०—नरक, नारकी, पापकर्म और अशुभ पुद्गल। तिर्यग्लोकमें ये चार वस्तुएं प्रकाश करती हैं०—चन्द्रमा, सूर्य, (चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि) मणि और अग्नि। ऊर्ध्वलोकमें ये चार······—देव, देवियां, विमान और (मणिरचित) अलंकार ॥४३२॥

॥चौथे स्थानका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

१. देखने योग्य। २. मर्यादा। ३. दृष्टान्त। ४. प्रकर्ष रूपसे भोगादिकके निमित्त एक देशसे दूसरे देशको जाने वाला अथवा आरम्भ परिग्रहसे विस्तार को प्राप्त होने वाला। ५. उत्पन्न करने वाला।

चतुर्थ स्थानक—चतुर्थोद्देशक

चार प्रसर्पक४ कहे गए हैं०—इनमें एक प्रसर्पक जीव ऐसा होता है जो अनुत्पन्न भोगोंका उत्पादक होता है। एक…जो पूर्वोत्पन्न शब्दादिरूप भोगोंके अविप्रयोग (रक्षण)के लिए एक देशसे दूसरे देशमें जाता है। एक…जो शब्दादि भोगों द्वारा होने वाले सुखविशेषोंका उत्पादयिता५ होता हुआ एक देश……। कोई एक प्रसर्पक……जो पूर्वोत्पन्न सुखोंके संरक्षणके लिए एक देश…॥४३३॥

नैरयिकोंका चार प्रकारका आहार कहा गया है०–अङ्गारोपम१, मुर्मुरोपम२, शीतल३, हिमशीतल४। तिर्यंचोंका आहार चार प्रकारका कहा गया है०—कङ्कोपम५, विलोपम६, पाणमांसोपम७ और पुत्रमांसोपम८। मनुष्योंका आहार चार प्रकारका होता है०—अशन, पान, खादिम तथा स्वादिम। देवोंका आहार चार प्रकारका होता है०–प्रशस्त वर्ण वाला, प्रशस्त गन्ध वाला, प्रशस्त रस वाला और प्रशस्त स्पर्श वाला ॥४३४॥

आशीविष चार प्रकारके होते हैं०–वृश्चिक जात्याशीविष९, मण्डूक०, उरग० और मनुष्य०। हे भदन्त ! वृश्चिकजात्याशीविषके विषका विषय कितना कहा गया है ? वृश्चिकजात्याशीविष अर्द्ध भरत क्षेत्र प्रमाण शरीरको अपने विषसे विषरूपमें परिणत कर सकता है, विनाश करनेकी शक्तिसे युक्त कर सकता है। परन्तु यह कथन उसके विषकी शक्तिको प्रकट करनेके लिए कहा गया है, न ऐसा आज तक किया है, न करते हैं, न करेंगे। मण्डूकजात्याशीविषपृच्छा। मण्डूकजात्याशीविष भरतक्षेत्र प्रमाण………। उरगजात्याशीविषपृच्छा। उरग० जम्बूद्वीप प्रमाण………। मनुष्यजात्याशीविषपृच्छा। मनुष्य० समयक्षेत्र प्रमाण……॥४३५॥

व्याधि चार प्रकारकी कही गई है०—वातजन्यव्याधि, पित्त०, कफ० और सन्निपात०। चिकित्सा चार…… –वैद्य, औषधियां, रोगी और सेवा करने वाला। चार चिकित्सक कहे गए हैं०–कोई अपनी चिकित्सा करता है, दूसरेकी नहीं। कोई दूसरेकी चिकित्सा करता है, अपनी नहीं। कोई स्व पर दोनोंकी चिकित्सा करता है। कोई न अपनी चिकित्सा करता है, न दूसरेकी ॥४३६॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०–एक घाव स्वयं करने वाला होता है, पर घावको स्पर्श नहीं करता। एक घावको स्पर्श करता है, पर घाव नहीं करता।

---

१. अल्पकाल तक दाह करने वाला। २. बड़ी देर तक दाहक करीषाग्निवत्। ३. ठंडा। ४. बर्फके समान ठंडा। ५. सुख भक्ष्य सुपरिणामी। ६. जिसका स्वाद न मिले। ७. चांडाल मांसवत् अशुभ। ८. अशुभतर। ९. जन्मसे विषधर। १०. मलहम पट्टी करने वाला।

एक घाव भी करता है, उसका स्पर्श भी। एक न व्रणकर होता है, न व्रणपरि-मर्शी। पुरुष चार···—एक व्रणकर होता है परन्तु व्रणसंरक्षी१० नहीं होता। एक व्रणसंरक्षी होता है, पर व्रणकर नहीं होता ४। पुरुष चार···—एक व्रणकर होता है, पर व्रणसंरोही नहीं होता। एक व्रणसंरोही होता है, परन्तु व्रणकर नहीं होता ४ ॥४३७॥

व्रण चार प्रकारके कहे गए हैं०—कोई व्रण भीतर ही भीतर दुःख देता है, बाहर नहीं। कोई व्रण ऊपरी स्थानमें वेदनाकारक होता है, भीतर नहीं ४। इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकारके कहे गए हैं०—कोई पुरुप अन्तःशल्य वाला होता है, वहिःशल्य वाला नहीं। कोई वहिःशल्य वाला होता है, अन्तःशल्य वाला नहीं ४। व्रण चार प्रकारके कहे गए हैं०—अन्तर्दुष्ट नो वहिर्दुष्ट, वहिर्दुष्ट नो अन्तर्दुष्ट, अन्तर्दुष्ट भी और वहिर्दुष्ट भी, और न अन्तर्दुष्ट नो वहिर्दुष्ट। इसी प्रकार चार तरहके पुरुष कहे गए हैं······॥४३८॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—श्रेयान् श्रेयान१, श्रेयान् पापीयान्२, पापीयान् श्रेयान् और पापीयान्२। पुरुष चार······—श्रेयान् श्रेयान्के समान, श्रेयान् पापीयान्के समान ४। पुरुष४······—श्रेयान् अपनेको श्रेष्ठ मानता है, अथवा लोगों द्वारा माना जाता है। श्रेयान् अपनेको पापी मानता···४। पुरुष ४ ···—श्रेष्ठ-श्रेष्ठके समान माना जाता है। श्रेष्ठ पापीके समान माना जाता है ४॥४३९॥

पुरुपजात चार कहे गए हैं०—कोई प्रवचनोपदेशक होता है, पर शासन३ का प्रभावक नहीं होता। कोई प्रभावक होता है, पर आख्यायक४ नहीं होता ४। पुरुष चार······—कोई आख्यायक होता है, पर उन्छजीविकासम्पन्न५ नहीं होता। कोई एषणादि निरत होता है, पर वह प्रवचनोपदेशक नहीं होता ४ ॥४४०॥

वृक्षविकुर्वणा चार प्रकारकी कही गई है०—प्रवालरूप, पत्ररूप, पुष्परूप, फलरूप ॥४४१॥ वादिसमवसरण चार कहे गए हैं०—क्रियावादीका, अक्रिया०, अज्ञानिक० और वैनयिक०। नारकियोंके चार वादिसमवसरण कहे गए हैं······ पूर्ववत्। इसी प्रकार असुरकुमारोंके यावत् स्तनितकुमारोंके। इसी प्रकार विकलेन्द्रियको छोड़कर यावत् वैमानिक तक ॥४४२॥

मेघ चार प्रकारके कहे गए हैं०—कोई मेघ गर्जता है, पर बरसता नहीं। कोई वरसता है, गर्जता नहीं। कोई गर्जता भी है, वरसता भी। कोई न गर्जता

---

१. प्रशस्तभाव वाला। २. पापी। ३. सूत्रार्थका विवेचक (दूसरा अर्थ)। ४. उपदेशक। ५. एषणादि दोप टालकर भिक्षा ग्रहण करने वाला।

है, न बरसता है। इसी प्रकार चार तरहके मनुष्य कहे गए हैं……। मेघ चार …—कोई मेघ गरजता है, पर चमकता नहीं। कोई चमकता है पर गरजता नहीं ४। इसी प्रकार चार तरहके पुरुष………। मेघ चार………—कोई मेघ बरसता है, पर चमकता नहीं। कोई चमकता नहीं, पर बरसता है ४। इसी प्रकार चार तरहके पुरुष……। मेघ चार……—कोई मेघ समय पर बरसता है, बिना अवसरके नहीं। कोई असमय बरसता है, समय पर नहीं ४। इसी प्रकार…पुरुष……। मेघ चार……—कोई मेघ खेतमें बरसने वाला होता है, खेतसे भिन्न प्रदेशमें नहीं ४। इसी प्रकार पुरुष भी……। मेघ चार……—कोई मेघ धान्यादि अंकुरोंका उत्पन्न करने वाला होता है, पर उनका संपादयिता* नहीं होता। कोई मेघ धान्यादिका संपादयिता होता है, पर उगाने वाला नहीं ४। इसी प्रकार चार तरहके माता-पिता कहे गए हैं०—कोई जन्मदाता होते हैं, पर गुणोंसे युक्त करने वाले नहीं होते ४। मेघ चार प्रकारके कहे गए हैं०—देशवर्षी नो सर्ववर्षी ४। इसी प्रकार चार तरहके राजा होते हैं०—देशाधिपति नो सर्वाधिपति ४। मेघ चार प्रकारके कहे गए हैं०—पुष्कलावर्त, पर्जन्य, जीमूत और जिह्म। पुष्कलावर्त महामेघ एक बार बरसने पर दस हजार वर्ष तक भूमिको भावित२ करता है। पर्जन्य……एक हजार वर्ष…। जीमूत……दस वर्ष……। जिह्म नामक महामेघ अनेक बार बरसने पर एक वर्ष तक पृथिवीको भावित करता है नहीं भी करता, क्योंकि इसका जल रूक्ष होता है ॥४४३॥

करंडक× चार प्रकार के होते हैं० —श्वपाककरंडक१, वेश्याकरण्डक२, गृहपतिकरण्डक३ और राजकरण्डक४। इसी प्रकार से आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं ०—श्वपाककरण्डक समान यावत् राजकरण्डक समान ॥४४४॥

वृक्ष चार प्रकारके कहे गये हैं ०—साल सालपर्याय५, साल एरंडपर्याय६, एरण्ड सालपर्याय और एरण्ड एरण्डपर्याय। इसी प्रकार चार तरह के आचार्य कहे गये हैं७………। वृक्ष चार………—साल सालपरिवार वाला ४। गाथा—जैसे सालद्रुमोंके बीचमें कोई एक वृक्षराज होता है। उसी प्रकार कोई आचार्य

---

*आर्द्र, धान्यादि निष्पत्तिमें समर्थ। ×बांस निर्मित पात्र विशेष।

१. चांडालके टोकरे के समान कूड़ा वगैरह रक्खे जाने के कारण अत्यन्त असार। २. लाख आदि निर्मित आभूषण रक्खे जाने से कुछ सार वाला। ३. मणि-स्वर्णाभूषण— ,, ,, सारतर। ४. रत्नादिक से भरा हुआ होने के कारण सारतम। ५. घनी छाया आदि साल वृक्ष गुण युक्त। ६. अल्प छाया वाला। ७. आचार्य-विशिष्ट ज्ञानगुण संपन्न……के समान।

स्वयं सुन्दर होता है उसके शिष्य भी गुणसंपन्न होते हैं। एरंडोंके बीचमें जैसे सालद्रुमराज होता है। उसी प्रकार कोई आचार्य तो सुन्दर होता है परन्तु उसके शिष्य सुन्दर नहीं होते। जिस प्रकार साल वृक्षोंके बीचमें एरण्ड होता है, इसी प्रकार कोई आचार्य असुन्दर होता है, पर उसके शिष्य सुन्दर होते हैं। जैसे एरण्डोंके बीचमें एरण्ड ही द्रुमराज होता है, उसी प्रकार कोई आचार्य स्वयं भी असुन्दर होता है, उसके शिष्य भी असुन्दर होते हैं ॥४४५॥

मत्स्य चार प्रकारके कहे गये हैं ०—अनुस्रोतचारी1, प्रतिस्रोतचारी2, अन्तचारी3 और मध्यचारी। इसी प्रकार चार तरहके भिक्षाक4 कहे गये हैं ······ ॥४४६॥

चार प्रकार के गोले कहे गये हैं ०—मोमका गोला, लाखका गोला, काठका गोला और मिट्टीका गोला। इसी प्रकार पुरुष चार तरह के हैं—मोमके गोलेके समान यावत् मिट्टीके गोलेके समान। चार प्रकारके गोले······—लोहे का गोला, पीतल ०, ताँबे० और शीशेका गोला। इसी प्रकार पुरुष चार तरह के हैं—लोहे के गोलेके समान१ यावत् शीशेके गोलेके समान। गोले चार प्रकार के······—चांदी का गोला, सोने का गोला, रत्न० और वज्रका गोला।] इसी प्रकार पुरुष······—चांदीके गोलेके समान२ यावत् वज्रके गोलेके समान ॥४४७॥

पत्र चार प्रकारके कहे गए हैं—असि (खड्ग रूप) पत्र३, करपत्र४, क्षुर५ और कदम्बचीरिकापत्र ६। इसी प्रकार पुरुष चार······ —असिपत्र समान यावत् कदम्ब० समान ॥४४८॥

कट७ चार प्रकारके कहे गए हैं—गुम्बकट८, विदलकट९, चर्मकट, कम्बल-कट। इसी प्रकार पुरुष चार······—गुम्बकट समान यावत् कम्बल० × ॥४४९॥

चौपाये चार प्रकारके कहे गए हैं ०—एक खुरवाले१०, दो खुर वाले११,

---

1. प्रवाहके अनुरूप चलने वाला। 2. प्रवाहके प्रतिकूल चलने वाला। 3. पार्श्व भागमें चलने वाला। 4. भिक्षाशील साधु। १. गुरु, गुरुतर, गुरुतम और अत्यन्त गुरु आरम्भ द्वारा कर्मभार उपार्जित करने वाले। २. अल्प-गुण-ज्ञान—समृद्धि वाले, अधिक-अधिकतर-अधिकतम गुणज्ञानसमृद्धि वाले। ३. धार। ४. करोंत। ५. उस्तरा। ६. नाममात्र शस्त्र विशेष। ७. चटाई। ८. तृण विशेष निर्मित। ९. बांस की पंचोंसे बना हुआ। × जिनका प्रतिबन्ध गुर्वादिकोंमें अल्प, बहु, बहुतर और बहुतम हो। १०. घोड़े आदि। ११. गाय आदि।

है, न बरसता है। इसी प्रकार चार तरहके मनुष्य कहे गए हैं······। मेघ चार ···—कोई मेघ गरजता है, पर चमकता नहीं। कोई चमकता है पर गरजता नहीं ४। इसी प्रकार चार तरहके पुरुष·········। मेघ चार·········—कोई मेघ बरसता है, पर चमकता नहीं। कोई चमकता नहीं, पर बरसता है ४। इसी प्रकार चार तरहके पुरुष······। मेघ चार······—कोई मेघ समय पर बरसता है, बिना अवसरके नहीं। कोई असमय बरसता है, समय पर नहीं ४। इसी प्रकार···पुरुष······। मेघ चार······—कोई मेघ खेतमें बरसने वाला होता है, खेतसे भिन्न प्रदेशमें नहीं ४। इसी प्रकार पुरुष भी······। मेघ चार······—कोई मेघ धान्यादि अंकुरोंका उत्पन्न करने वाला होता है, पर उनका संपादयिता* नहीं होता। कोई मेघ धान्यादिका संपादयिता होता है, पर उगाने वाला नहीं ४। इसी प्रकार चार तरहके माता-पिता कहे गए हैं०—कोई जन्मदाता होते हैं, पर गुणोंसे युक्त करने वाले नहीं होते ४। मेघ चार प्रकारके कहे गए हैं०—देशवर्षी नो सर्ववर्षी ४। इसी प्रकार चार तरहके राजा होते हैं०—देशाधिपति नो सर्वाधिपति ४। मेघ चार प्रकारके कहे गए हैं०—पुष्कलावर्त, पर्जन्य, जीमूत और जिह्म। पुष्कलावर्त महामेघ एक बार बरसने पर दस हजार वर्ष तक भूमिको भावित२ करता है। पर्जन्य······एक हजार वर्ष···। जीमूत······दस वर्ष······। जिह्म नामक महामेघ अनेक बार बरसने पर एक वर्ष तक पृथिवीको भावित करता है नहीं भी करता, क्योंकि इसका जल रूक्ष होता है ॥४४३॥

करंडक× चार प्रकार के होते हैं० —श्वपाककरंडक१, वेश्याकरण्डक२, गृहपतिकरण्डक३ और राजकरण्डक४। इसी प्रकार से आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं ०—श्वपाककरण्डक समान यावत् राजकरण्डक समान ॥४४४॥

वृक्ष चार प्रकारके कहे गये हैं ०—साल सालपर्याय५, साल एरंडपर्याय६, एरण्ड सालपर्याय और एरण्ड एरण्डपर्याय। इसी प्रकार चार तरह के आचार्य कहे गये हैं७·········। वृक्ष चार·········—साल सालपरिवार वाला ४। गाथा—जैसे सालद्रुमोंके बीचमें कोई एक वृक्षराज होता है। उसी प्रकार कोई आचार्य

---

*आर्द्र, धान्यादि निष्पत्तिमें समर्थ। ×बांस निर्मित पात्र विशेप।

१. चांडालके टोकरे के समान कूड़ा वगैरह रक्खे जाने के कारण अत्यन्त असार। २. लाख आदि निर्मित आभूपण रक्खे जाने से कुछ सार वाला। ३. मणि-स्वर्णाभूपण— ,, ,, सारतर। ४. रत्नादिक से भरा हुआ होने के कारण सारतम। ५. घनी छाया आदि साल वृक्ष गुण युक्त। ६. अल्प छाया वाला। ७. आचार्य-विशिष्ट ज्ञानगुण संपन्न······के समान।

स्वयं सुन्दर होता है उसके शिष्य भी गुणसंपन्न होते हैं। एरंडोंके बीचमें जैसे सालद्रुमराज होता है। उसी प्रकार कोई आचार्य तो सुन्दर होता है परन्तु उसके शिष्य सुन्दर नहीं होते। जिस प्रकार साल वृक्षोंके बीचमें एरण्ड होता है, इसी प्रकार कोई आचार्य असुन्दर होता है, पर उसके शिष्य सुन्दर होते हैं। जैसे एरण्डोंके बीचमें एरण्ड ही द्रुमराज होता है, उसी प्रकार कोई आचार्य स्वयं भी असुन्दर होता है, उसके शिष्य भी असुन्दर होते हैं ॥४४५॥

मत्स्य चार प्रकारके कहे गये हैं ०—अनुस्रोतचारी1, प्रतिस्रोतचारी2, अन्तचारी3 और मध्यचारी। इसी प्रकार चार तरहके भिक्षाक4 कहे गये हैं ...... ॥४४६॥

चार प्रकार के गोले कहे गये हैं ०—मोमका गोला, लाखका गोला, काठका गोला और मिट्टीका गोला। इसी प्रकार पुरुष चार तरह के हैं—मोमके गोलेके समान यावत् मिट्टीके गोलेके समान। चार प्रकारके गोले......—लोहे का गोला, पीतल ०, ताँबे० और शीशेका गोला। इसी प्रकार पुरुष चार तरह के हैं—लोहे के गोलेके समान१ यावत् शीशेके गोलेके समान। गोले चार प्रकार के......—चांदी का गोला, सोने का गोला, रत्न० और वज्रका गोला। इसी प्रकार पुरुष......—चांदीके गोलेके समान२ यावत् वज्रके गोलेके समान ॥४४७॥

पत्र चार प्रकारके कहे गए हैं—असि (खड्ग रूप) पत्र३, करपत्र४, क्षुर५ और कदम्बचीरिकापत्र ६। इसी प्रकार पुरुष चार......—असिपत्र समान यावत् कदम्ब० समान ॥४४८॥

कट७ चार प्रकारके कहे गए हैं—शुम्बकट८, विदलकट९, चर्मकट, कम्बल-कट। इसी प्रकार पुरुष चार......—शुम्बकट समान यावत् कम्बल० × ॥४४९॥

चौपाये चार प्रकारके कहे गए हैं ०—एक खुरवाले१०, दो खुर वाले११,

---

1. प्रवाहके अनुरूप चलने वाला। 2. प्रवाहके प्रतिकूल चलने वाला। 3. पार्श्व भागमें चलने वाला। 4. भिक्षाशील साधु। १. गुरु, गुरुतर, गुरुतम और अत्यन्त गुरु आरम्भ द्वारा कर्मभार उपार्जित करने वाले। २. अल्प-गुण-ज्ञान—समृद्धि वाले, अधिक-अधिकतर-अधिकतम गुणज्ञानसमृद्धि वाले। ३. धार। ४. करोंत। ५. उस्तरा। ६. नाममात्र शस्त्र विशेष। ७. चटाई। ८. तृण विशेष निर्मित। ९. वांस की पंचोंसे बना हुआ। × जिनका प्रतिबन्ध गुर्वादिकोंमें अल्प, बहु, बहुतर और बहुतम हो। १०. घोड़े आदि। ११. गाय आदि।

गंडीपद१ वाले और नखयुक्त पद वाले२। पक्षी चार प्रकारके कहे गये हैं०— चर्मपक्षी३, लोम पक्षी४, समुद्गकपक्षी५ और विततपक्षी६। चार प्रकारके क्षुद्रप्राणी कहे गये हैं ०—द्वीन्द्रिय, तेइंद्रिय, चौइन्द्रियजीव और संमूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ॥४५०॥

पक्षी चार प्रकार के कहे गए हैं ०—एक गिरनेके स्वभाव वाला होता है, उड़नेके स्वभाव वाला नहीं। एक उड़ने के स्वभाव वाला होता है, गिरनेके स्वभाव वाला नहीं। एक गिरने के स्वभाववाला भी होता है, उड़नेके स्वभाव वाला भी। एक न पतनशील होता है, न परिव्रजनशील। इसी प्रकार साधु भी चार प्रकार के कहे गए हैं ०—भिक्षा के लिये जाता तो है पर परिभ्रमण नहीं करता ४ ॥४५१॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं ०—निष्कृष्ट २, निष्कृष्ट अनिष्कृष्ट ४। पुरुष चार······—निष्कृष्ट निष्कृष्टात्मा, निष्कृष्ट अनिकृष्टात्मा ४। पुरुष चार······—बुध बुध, बुध अबुध ४। पुरुष चार······बुध बुधहृदय, अबुध बुधहृदय ४। पुरुष चार······ — आत्मानुकम्पक नो परानुकम्पक, परानुकम्पक नो आत्मानुकम्पक ४ ॥४५२॥

संवास चार प्रकारका कहा गया है०—दिव्य, आसुर, राक्षस और मानुष। संवास चार······ —कोई देव देवीके साथ संवास करता है। कोई देव असुरी ···। कोई असुर देवीके साथ संवास करता है। कोई असुर असुरी······। संवास चार··· —कोई देव देवी······। कोई देव राक्षसी······। कोई राक्षस देवी······। कोई राक्षस राक्षसी···। संवास चार······—कोई देव देवी···। कोई देव मानुषी ······। कोई मनुष्य देवी···। कोई मनुष्य मानुषी···। संवास चार···— कोई असुर असुरी···। कोई असुर राक्षसी···४। संवास चार···कोई असुर असुरी···। कोई असुर मानुषी···४। संवास चार··· —कोई राक्षस राक्षसी···। कोई राक्षस मानुषी···४ ॥४५३॥

चार प्रकार का अपध्वंस७ कहा गया है०—आसुर, आभियोग, साम्मोह८ और दैवकिल्विष। चार कारणों से जीव असुरताके साधनभूत कर्मो का उपार्जन करते हैं०—कोप-शीलता से, कलहशीलता से, संसक्ततप९, निमित्त१० से आजीविका करने से। चार कारणों से जीव आभियोग्यता (भृत्यपना) के साधन···— आत्मोत्कर्ष११से, दूसरों की निन्दा करनेसे, भूतिकर्म१२ से, कौतुक करनेसे। चार

---

१. घनसमान पैर वाले हाथी आदि। २. सिंह आदि। ३. चमगादड़ वगैरह। ४. हंस आदि। ५. सम्पुटाकार पंख वाले। ६. फैले हुए पंखों वाले। पिछले दोनों अढ़ाई द्वीप के बाहर पाए जाते हैं। ७. चारित्रफल का विनाश। ८. मूढ़ात्मा मिथ्यादृष्टि देव। ९. आहार,उपधि,शय्या आदिमें प्रतिबद्धभाव विशेषसे तपश्चरण करना। १०. ज्योतिष आदि। ११. अपनी प्रशंसा। १२. मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग।

कारणों से जीव संमोहता के लिए कर्मबन्ध करता है०—कुमार्ग का उपदेश देने से, मोक्षार्थी के मार्गमें विघ्न डालने से, कामभोगों की अभिलाषा करने से, ऋद्धि आदि की इच्छा से निदान करनेसे। चार कारणों से जीव देवकिल्विषता* के लिए कर्म बांधता है०—अरिहन्तों की निन्दा करने से, अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म की निन्दा करने से, आचार्य उपाध्याय की निन्दा करने से, और चतुर्विध संघ की निन्दा करने से ॥४५४॥

प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है०—इहलोकप्रतिबद्ध१, परलोक-प्रतिबद्ध, उभयलोकप्रतिबद्ध, अप्रतिबद्ध। प्रव्रज्या चार··· —आगे होने वाली वस्तुओं की प्राप्ति की चाहना से युक्त, पीछे की वस्तुओं में प्रतिबद्ध, उभयतः-प्रतिबद्ध, अप्रतिबद्ध। प्रव्रज्या चार··· —अवपात२प्रव्रज्या, आख्यात३प्रव्रज्या, सङ्गर४ प्रव्रज्या और५ विहगगति ०। प्रव्रज्या चार··· — व्यथा उत्पन्न कराकर, दूसरी जगह ले जाकर, प्रतिज्ञा वचन करवा कर अथवा कार्य छुड़वा कर, घृतादि का भोजन करवा कर। प्रव्रज्या चार··· —नटखादिता६, भटखादिता७, सिंह-खादिता८ और शृगालखादिता९। खेती चार प्रकार की कही गई है० —उप्ता — गेहूं आदि की तरह बोई जाने वाली, पर्युप्ता—एक स्थान से उखाड़ कर धान की तरह दूसरे स्थानमें रोपी जाने वाली, निन्दिता —विजातीय तृण घास वगैरह उखाड़कर शोधित की जाने वाली, परिनिन्दिता—दो तीन बार विजातीय···। इसी प्रकार प्रव्रज्या चार···— उप्ता—जिसमें सामायिकका आरोपण किया जाय। पर्युप्ता —जिसमें महाव्रतों का ···। निन्दिता—जिसमें मूल-प्रायश्चित्त देकर महा-व्रतोंका । अथवा एक ही बार अतिचारों की आलोचनाकी जाय। परिनिन्दिता —जिसमें पुनः २ अतिचारों की आलोचना की जाय। प्रव्रज्या चार···—धान्य पुञ्जित समान-बिल्कुल शुद्ध स्वभाव वाली, धान्य विरेल्लित१० समान—अतिचार दूषित होने पर अल्पप्रायश्चित आदि द्वारा पुनः शुद्ध। धान्य विक्षिप्त समान—कूड़ा करकट वाला अनाज जिसमें रूप आदिकी अपेक्षा हो, इसी प्रकार प्रायश्चित की अपेक्षा वाली, धान्यसंकर्षित१ समान, बहुतर कालमें प्राप्त होने योग्य स्वभाव वाली ॥४५५॥

---

* नीच जातिके देव। १. इस लोकके लिए। २. सुगुरुकी सेवासे प्राप्त होने वाली। ३. धर्मोपदेशसे···। ४. संकेतसे ···। ५. घरबार छोड़कर देशान्तरमें दीक्षा लेना अथवा पिताके दीक्षित होने पर पुत्र द्वारा भी दीक्षा ग्रहण करना। ६. नटकी तरह वैराग्यरहित धर्मकथादिसे प्राप्त भोजनादि का सेवन करना। ७. वीरकी तरह बल दिखाकर प्राप्त······। ८. सिंह की तरह शौर्यातिशय से प्राप्त······। ९. शृगाल की तरह नीचवृत्ति से प्राप्त भोजनादि का सेवन करना। १०. शुद्ध किया हुआ बिखरा अनाज।

संज्ञाएँ चार प्रकार की कही गई हैं० —आहारसंज्ञा२, भयसंज्ञा, मैथुन-संज्ञा और परिग्रहसंज्ञा। चार कारणों से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है०—पेट खाली हो जाने पर, क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से, आहारकथा श्रवण जनित बुद्धिसे, आहारार्थके चिंतवन से। चार कारणों से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है०—बलहीन होनेसे, भयवेदनीय कर्मके उदयसे, भयकी बात सुनने व भयङ्कर पदार्थो को देखने से जनित बुद्धि से और इहलोकादि सम्बन्धी भयरूप अर्थ के विचार से। चार कारणों से मैथुनसंज्ञा··· —शरीरमें मांस व खून की वृद्धि होने से, मोहनीय कर्म के उदय से, तत्संबंधी कथाश्रवण जनित बुद्धिसे और तदर्थ चिन्तवनसे। चार कारणोंसे परिग्रहसंज्ञा··· —रात-दिन पदार्थों का संग्रह करते रहने से, लोभ वेदनीय कर्मके उदयसे, तज्जनित बुद्धि से, तदर्थ बार २ चिन्तवनसे ॥४५६॥

काम चार प्रकारके कहे गए हैं०—शृंगार, करुण, बीभत्स और रौद्र। शृंगार३ रूप काम देवों को होते हैं। करुण४ काम मनुष्यों को होते हैं। बीभत्स५ काम तिर्यञ्चयोनिकों के होते हैं और रौद्र६-दारुण काम नैरयिकों के होते हैं ॥४५७॥

जल चार प्रकार के कहे गए हैं०—कोई जल तुच्छ होता है, परन्तु स्वच्छ होने से उसका मध्यस्वरूप उपलब्धि योग्य होता है। तुच्छ गंभीर, गहरा छिछला, गहरा गहरा। इसी प्रकार चार तरह के पुरुष कहे हैं०—तुच्छ तुच्छहृदय, तुच्छ गंभीरहृदय ४। उदक चार प्रकार के कहे गए हैं०—छिछला छिछला दिखाई देने वाला, छिछला गहरा दिखाई देने वाला४। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष···। समुद्र चार प्रकारके कहे गए हैं०—उत्तान उत्तानोदधि, उत्तान गंभीरोदधि ४। इसी प्रकार चार तरह के पुरुष कहे गए हैं०—तुच्छ तुच्छहृदय ४। समुद्र चार·····तुच्छ तुच्छ दिखाई देने वाला, तुच्छ गहरा दिखाई देने वाला ४। इसी प्रकार पुरुष भी चार······। तुच्छ २······, तुच्छ गंभीर दिखाई देने वाला ४॥४५८॥

तैरने वाले चार प्रकार के होते हैं०—कोई "मैं समुद्र में तैरूँ" ऐसा विचार करके समुद्र में तैरता है, कोई·········गोप्पद७ में तैरता है। कोई "मैं गोप्पद में तैरूँ" ऐसा विचार करके समुद्र में तैरता है। कोई······गोप्पद में तैरता है। तैराक चार······—कोई समुद्रको तैरकर शक्ति ह्रास से समुद्र में दुःखी होता है। कोई समुद्रको तैरकर गोप्पद में दुःखी होता है ४ ॥४५९॥

---

१. खेतमें से खलिहानमें लाया गया अनाज जिसमें बहुत अधिक कूड़ा कर-कट हो। २. अभिलाषा। ३. अत्यन्त मनोज्ञ। ४. क्षणभंगुर और शोकस्वभावी ५. निन्दनीय। ६. क्रोधरूप। ७. गोखुर परिमित जलयुक्त जलाशय।

कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं—पूर्ण१ पूर्ण२, पूर्ण तुच्छ, तुच्छ पूर्ण, तुच्छ तुच्छ। इसी प्रकार पुरुष भी......। कुम्भ चार......—पूर्ण पूर्ण दिखाई देने वाला, पूर्ण तुच्छ दिखाई देने वाला ४। इसी प्रकार पुरुष भी ४ ...। कुंभ चार......—पूर्ण पूर्णरूप३, पूर्ण तुच्छरूप ४। इसी प्रकार पुरुष भी...... ।

कुम्भ चार......—पूर्ण प्रियार्थ४, पूर्ण अपदल५, तुच्छ प्रियार्थ, तुच्छ अपदल। इसी प्रकार पुरुष भी......पूर्ण परोपकार परायण, पूर्ण परोपकारके प्रति अयोग्य ४। कुम्भ चार......—कोई कुम्भ जलादिसे भरा होता है पर छिद्रसहित होनेसे टपकता है। कोई ...... पर छिद्ररहित होने से नहीं चूता। कोई कुम्भ थोड़े से जलादि...चूता है। कोई......नहीं चूता। इसी प्रकार पुरुष चार......—कोई पूर्ण होता है और श्रुत या धनको औरोंको देता है। कोई...... नहीं देता। कोई तुच्छ६......देता है।......नहीं देता। कुम्भ चार......—भिन्न (फूटा हुआ), जर्जरित७, परिस्रावी८, अपरिस्रावी९। इसी तरह से चरित्र भी चार प्रकार का होता है०—भिन्न (मूलप्रायश्चित्त की प्राप्ति से खण्डित), (छेदादि प्राप्ति से) जर्जरित, परिस्रावी (सूक्ष्म अतिचारयुक्त), अपरिस्रावी (निरतिचार)। कुम्भ चार...मधुकुम्भ मधुपिधान (ढक्कन), मधुकुम्भ विषपिधान, विषकुम्भ मधुपिधान, विषकुम्भ विषपिधान। इसी प्रकार पुरुष भी......। जिस पुरुषका हृदय पापरहित और कलुषताहीन होता है और जिह्वा जिसकी मधुरभाषिणी होती है वह पुरुष मधुकुम्भ मधुपिधान के समान कहा गया है। जिस......होता है पर जिसकी जिह्वा कटुकभाषिणी होती है वह पुरुष मधुकुम्भ विषपिधान......। जिसका हृदय कलुषता से भरा होता है, परन्तु जो मीठा बोलता है, वह पुरुष विषकुम्भ मधुपिधान......। जिसका...... होता है और जीभ भी जिसकी कटुभाषिणी होती है वह पुरुष विषपिधान वाले विषकुम्भ के समान कहा गया है ॥४६०॥

उपसर्ग चार प्रकारके कहे गए हैं०—दिव्य, मानुष, तिर्यग्योनिक और आत्मसंचेतनीय१०। दिव्य उपसर्ग चार...—हास११ प्राद्वेष१२ वैमर्श१३ और

---

१. प्रमाणसंपन्न। २. घृतादि से भरा हुआ। ३. सुन्दर आकृति वाला। ४. स्वर्णादिमय सारसम्पन्न होने से प्रीतिके लिए। ५. खराब मिट्टी आदिका बना हुआ अथवा स्वल्प पका हुआ होनेसे असार। ६. अल्पधन या श्रुतवाला। ७. बहुत पुराना। ८. टपकने वाला। ९. न चूने वाला। १०. अपने द्वारा किया जाने वाला। 'आत्मसंवेदनीय' पाठान्तर। ११. हंसी से उत्पन्न होने वाले। १२. प्रद्वेष से...। १३. धैर्य परीक्षा करनेके लिए किए जाने वाले।

पृथग्विमात्र१। मनुष्य-सम्बन्धी उपसर्ग चार···—हास, प्राद्वेष, वैमर्श और कुशीलप्रतिसेवनक१। तिर्यंचों द्वारा कृत उपसर्ग चार···—भयसे उत्पन्न होने वाले, प्राद्वेष, आहारके निमित्त, संतान और स्थानकी रक्षाके लिए। आत्मसंवेदनीय उपसर्ग चार···—घट्टनक३, प्रपतनक४, स्तम्भनक५ और श्लेषणक६ ॥४६१॥

कर्म चार प्रकारका कहा गया है०—शुभ शुभ, शुभ अशुभ, अशुभ शुभ और अशुभ अशुभ। कर्म चार······—शुभ शुभ विपाक७ वाला, शुभ अशुभ विपाक वाला, अशुभ शुभ विपाक वाला और अशुभ अशुभ विपाक वाला। कर्म चार···—प्रकृतिकर्म, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेशकर्म ॥४६२॥

संघ चार प्रकारका कहा गया है०—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ॥४६३॥ बुद्धि चार प्रकारकी होती है०—औत्पत्तिकी८, वैनयिकी९, कार्मिका१० और पारिणामिकी११। मति चार प्रकारकी होती है०—अवग्रहमति, ईहा०, अवाय० और धारणा०। अथवा मति चार···—अरञ्जरोदक१२ समान,१३विदरोदक०, सर उदक समान और सागरोदक समान ॥४६४॥

चार प्रकारके संसारी जीव कहे गए हैं०—नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव। समस्त जीव चार प्रकारके कहे गए हैं०—मनोयोगी, वाग्योगी, काययोगी और अयोगी। अथवा समस्त जीव चार···—स्त्री वेद वाले, पुरुष०, नपुंसक० और अवेदक। अथवा समस्त जीव चार···—चक्षुदर्शनी, अचक्षु०, अवधि० और केवलदर्शनी। अथवा स० जीव चार···—संयत, असंयत, संयतासंयत और नोसंयतनोअसंयत ॥४६५॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—मित्र-मित्र, मित्र-अमित्र, अमित्र-मित्र और अमित्र-अमित्र। पुरुषजात चार···—मित्र-मित्ररूप, मित्र-अमित्ररूप ४ भांगे ॥४६६॥ पुरुषजात चार···—मुक्त-मुक्त, मुक्त-अमुक्त ४। पु० चार···—मुक्त-मुक्तरूप, अमुक्त मुक्तरूप ४ ॥४६७॥

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च चार गतिमें जाने वाले और चार गतिसे आने वाले कहे

---

१. जिनमें हास्यादि सभी हों। २. कुशील सेवनके लिए दिए जाने वाले उपसर्ग। ३. टक्कर होना। ४. स्वयं गिर पड़ना। ५. स्तम्भित हो जाना। ६. अंगों में वातादि अथवा पक्षाघात से सुषुप्ति आ जाना। ७. परिणाम। ८. स्वाभाविक। ९. गुरु-सेवासे प्राप्त होने वाली। १०. काम करते २ होने वाली। ११. वयानुभवसे होने वाली। १२. घड़ेके पानीके समान अल्पता एवं अस्थिरता वाली। १३. नदी आदिके तट पर किया गया खड्डा या कूप आदि जलका स्थान विशेष।

गए हैं०—पंचेन्द्रिय तिर्यंच पं० ति० में उत्पन्न होता हुआ नारयिकोंसे, तिर्यंचसे, मनुष्यसे अथवा देवोंमें से आकर उत्पन्न होता है, और वही पं० तिर्यंचपनेको छोड़ता हुआ नारकी यावत् देवमें जाता है। मनुष्य भी चारगतिक और चार-आगतिक कहे गए हैं। इसी प्रकार मनुष्योंका भी समझना चाहिए ॥४६८॥

दो-इन्द्रिय जीवोंकी विराधना न करने वाला जीव चार प्रकारका संयम करता है०—वह उन्हें जिह्वाजनित सुखसे वंचित नहीं करता। तथा जिह्वामय दुःखसे युक्त नहीं करता। इसी प्रकार वह उन्हें स्पर्शजनित सुख···। तथा स्पर्शमय दुःख···। दो-इन्द्रिय···विराधना करने वाला···असंयम करता है०—वह··· वंचित करता है तथा·· युक्त करता है।······स्पर्शजनित सुखसे वंचित करता है तथा ···युक्त करता है ॥४६९॥

सम्यग्दृष्टि नैरयिकोंकी चार क्रियाएं कही गई हैं०—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यान क्रिया। सम्यग्दृष्टि असुरकुमारोंकी चार····इसी प्रकार। ऐसे ही विकलेन्द्रियको छोड़कर यावत् वैमानिक तक ॥४७०॥

चार कारणोंसे जीव विद्यमान गुणोंका नाश करता है०—क्रोध से, प्रतिनिवेश (अहङ्कार) से, अकृतज्ञता से और मिथ्यात्वाभिनिवेश[1] से। जीव चार कारणोंसे परके असत् गुणोंको प्रकाशित करता है और उन्हें बढ़ा चढ़ाकर कहता है, वे चार कारण ये हैं०—अभ्यासप्रत्यय[2], परच्छन्दानुवर्तन[3], कार्य-हेतु, उपकारीके उपकारका बदला चुकानेके लिए। नैरयिकोंके चार कारणोंसे शरीरकी उत्पत्ति होती है०—क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक। नैरयिकोंका शरीर चार कारणोंसे निर्वर्तित कहा गया है०—क्रोधसे निर्वर्तित यावत् लोभसे निर्वर्तित। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक। धर्मके चार द्वार कहे गए हैं०—क्षमा, निर्लोभता, सरलता और नम्रता ॥४७१॥

जीव चार कारणोंसे नरकायुका बन्ध करते हैं०—महारम्भता से, महापरिग्रहता से, पंचेन्द्रियवध से, मांसाहार से। जीव चार कारणोंसे तिर्यंचायुका बन्ध करते हैं०—मायावी होने से, दूसरोंको ठगने से, झूठ बोलने से, कूट तोल कूट मान से। चार कारणोंसे जीव मनुष्यायुका बन्ध करता है०—सरल स्वभावी होने से, प्रकृतिका विनीत होने से, दयालु होने से, अमत्सरिकता[4] से। चार कारणोंसे जीव देवायुका बन्ध करते हैं०—सराग संयमके पालन से, संयमासंयमके पालन से, अज्ञान तप करने से और अकाम निर्जरा से ॥४७२॥

---

१. आग्रह। २. स्वभावसे चारणवत्। ३. दूसरोंकी देखा देखी प्रशंसा करना। ४. ईर्ष्यारहितता।

पृथग्विमात्र१। मनुष्य-सम्बन्धी उपसर्ग चार···— हास, प्राद्वेष, वैमर्श और कुशीलप्रतिसेवनक१। तिर्यंचों द्वारा कृत उपसर्ग चार···—भयसे उत्पन्न होने वाले, प्राद्वेष, आहारके निमित्त, संतान और स्थानकी रक्षाके लिए। आत्मसंवेदनीय उपसर्ग चार···—घट्टनक३, प्रपतनक४, स्तम्भनक५ और श्लेषणक६ ॥४६१॥

कर्म चार प्रकारका कहा गया है०—शुभ शुभ, शुभ अशुभ, अशुभ शुभ और अशुभ अशुभ। कर्म चार······—शुभ शुभ विपाक७ वाला, शुभ अशुभ विपाक वाला, अशुभ शुभ विपाक वाला और अशुभ अशुभ विपाक वाला। कर्म चार···—प्रकृतिकर्म, स्थिति०, अनुभाव०, प्रदेशकर्म ॥४६२॥

संघ चार प्रकारका कहा गया है०—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ॥४६३॥ बुद्धि चार प्रकारकी होती है०—औत्पत्तिकी८, वैनयिकी९, कार्मिकी१० और पारिणामिकी११। मति चार प्रकारकी होती है०—अवग्रहमति, ईहा०, अवाय० और धारणा०। अथवा मति चार···—अरञ्जरोदक१२ समान, १३विदरोदक०, सर उदक समान और सागरोदक समान ॥४६४॥

चार प्रकारके संसारी जीव कहे गए हैं०—नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव। समस्त जीव चार प्रकारके कहे गए हैं०—मनोयोगी, वाग्योगी, काययोगी और अयोगी। अथवा समस्त जीव चार···—स्त्री वेद वाले, पुरुष०, नपुंसक० और अवेदक। अथवा समस्त जीव चार···—चक्षुदर्शनी, अचक्षु०, अवधि० और केवलदर्शनी। अथवा स० जीव चार···—संयत, असंयत, संयतासंयत और नोसंयतनोअसंयत ॥४६५॥

पुरुषजात चार कहे गए हैं०—मित्र-मित्र, मित्र-अमित्र, अमित्र-मित्र और अमित्र-अमित्र। पुरुषजात चार···—मित्र-मित्ररूप, मित्र-अमित्ररूप ४ भांगे ॥४६६॥ पुरुषजात चार···—मुक्त-मुक्त, मुक्त-अमुक्त ४। पु० चार···—मुक्त-मुक्तरूप, अमुक्त मुक्तरूप ४ ॥४६७॥

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च चार गतिमें जाने वाले और चार गतिसे आने वाले कहे

---

१. जिनमें हास्यादि सभी हों। २. कुशील सेवनके लिए दिए जाने वाले उपसर्ग। ३. टक्कर होना। ४. स्वयं गिर पड़ना। ५. स्तम्भित हो जाना। ६. अंगों में वातादि अथवा पक्षाघात से सुषुप्ति आ जाना। ७. परिणाम। ८. स्वाभाविक। ९. गुरु-सेवासे प्राप्त होने वाली। १०. काम करते २ होने वाली। ११. वयानुभवसे होने वाली। १२. घड़ेके पानीके समान अल्पता एवं अस्थिरता वाली। १३. नदी आदिके तट पर किया गया खड्डा या कूप आदि जलका स्थान विशेष।

गए हैं०—पंचेन्द्रिय तिर्यच पं० ति० में उत्पन्न होता हुआ नारयिकोंसे, तिर्यंचसे, मनुष्यसे अथवा देवोंमें से आकर उत्पन्न होता है, और वही पं० तिर्यचपनेको छोड़ता हुआ नारकी यावत् देवमें जाता है। मनुष्य भी चारगतिक और चार-आगतिक कहे गए हैं। इसी प्रकार मनुष्योंका भी समझना चाहिए ।।४६८।।

दो–इन्द्रिय जीवोंकी विराधना न करने वाला जीव चार प्रकारका संयम करता है०—वह उन्हें जिह्वाजनित सुखसे वंचित नहीं करता। तथा जिह्वामय दुःखसे युक्त नहीं करता। इसी प्रकार वह उन्हें स्पर्शजनित सुख···। तथा स्पर्श-मय दुःख···। दो–इन्द्रिय···विराधना करने वाला···असंयम करता है०—वह··· वंचित करता है तथा·· युक्त करता है।······स्पर्शजनित सुखसे वंचित करता है तथा ···युक्त करता है ।।४६९।।

सम्यग्दृष्टि नैरयिकोंकी चार क्रियाएं कही गई हैं०—आरम्भिकी, पारि-ग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यान क्रिया। सम्यग्दृष्टि असुरकुमारोंकी चार ···इसी प्रकार। ऐसे ही विकलेन्द्रियको छोड़कर यावत् वैमानिक तक ।।४७०।।

चार कारणोंसे जीव विद्यमान गुणोंका नाश करता है०—क्रोध से, प्रति-निवेश (अहङ्कार) से, अकृतज्ञता से और मिथ्यात्वाभिनिवेश१ से। जीव चार कारणोंसे परके असत् गुणोंको प्रकाशित करता है और उन्हें वढ़ा चढ़ाकर कहता है, वे चार कारण ये हैं०—अभ्यासप्रत्यय२, परच्छन्दानुवर्तन३, कार्य-हेतु, उप-कारीके उपकारका वदला चुकानेके लिए। नैरयिकोंके चार कारणोंसे शरीरकी उत्पत्ति होती है०—क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक। नैरयिकोंका शरीर चार कारणोंसे निर्वर्तित कहा गया है०—क्रोधसे निर्वर्तित यावत् लोभसे निर्वर्तित। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक। धर्मके चार द्वार कहे गए हैं०—क्षमा, निर्लोभता, सरलता और नम्रता ।।४७१।।

जीव चार कारणोंसे नरकायुका वन्ध करते हैं०—महारम्भता से, महा-परिग्रहता से, पंचेन्द्रियवध से, मांसाहार से। जीव चार कारणोंसे तिर्यचायुका वन्ध करते हैं०—मायावी होने से, दूसरोंको ठगने से, झूठ वोलने से, कूट तोल कूट मान से। चार कारणोंसे जीव मनुष्यायुका वन्ध करता है०—सरल स्वभावी होने से, प्रकृतिका विनीत होने सें, दयालु होने से, अमत्सरिकता४ से। चार कारणोंसे जीव देवायुका वन्ध करते हैं०—सराग संयमके पालन से, संयमासंयम के पालन से, अज्ञान तप करने से और अकाम निर्जरा से ।।४७२।।

---

१. आग्रह। २. स्वभावसे चारणवत्। ३. दूसरोंकी देखा देखी प्रशंसा करना। ४. ईर्ष्यारहितता।

वाद्य चार प्रकारके कहे गए हैं०—तत१, वितत२, घन३ और शुषिर४। नाट्य चार प्रकारका कहा गया है०—अञ्चित, रिभित, आरभट और भसोल। गेय चार प्रकारका कहा गया है०—उत्क्षिप्तक, पत्रक, मन्दक और रोविन्दक। माला चार प्रकारकी कही गई है०—ग्रन्थिम५, वेष्टिम६, पूरिम७ और संघातिम८। अलङ्कार चार प्रकारका कहा गया है०—केशालङ्कार, वस्त्रालङ्कार, माल्यालङ्कार और आभरणालङ्कार। अभिनय चार प्रकारका कहा गया है०—दार्ष्टान्तिक, पादांशुक, सामन्तोपनिपातिक और लोकमध्यावसित९ ॥४७३॥

सनत्कुमार एवं माहेन्द्र इन दो कल्पोंमें विमान चार वर्ण वाले कहे गए हैं०—नीले, लाल, पीले और सफेद। महाशुक्र और सहस्रार कल्पोंमें देवोंके भवधारणीय शरीर उत्कृष्टसे चार रत्निप्रमाण१० ऊंचाई वाले कहे गए हैं ॥४७४॥ उदकगर्भ चार प्रकार के कहे गए हैं०—ओस, धुन्ध, हिमकण, अत्यन्त उष्ण जलकण। उदक गर्भ चार·····—हैमक११, अभ्रसंस्तृत१२, शीतोष्ण और पंचरूपिक१३। हैमक जलगर्भ माघ मासमें, अभ्रसंस्तृत फाल्गुनमें, शीतोष्ण चैत्रमें, पञ्चरूपिक जलगर्भ वैशाखमें होते हैं। मानुषी गर्भ चार प्रकार के कहे गए हैं०—स्त्रीरूप, पुरुषरूप, नपुंसकरूप और बिम्बरूप। जब पुरुषका वीर्य अल्प होता है और स्त्रीका रज शुक्रकी अपेक्षा अधिक होता है तो कन्या उत्पन्न होती है। यदि रज कम और वीर्य अधिक होता है तो लड़का होता है। रज और वीर्यके समान परिमाणमें होने पर नपुंसक होता है। और जब स्त्रीका ओज वायुके प्रकोपसे स्थिर हो जाता है तब गर्भाशयमें मांसपिण्डरूप बिम्ब उत्पन्न होता है ॥४७५॥

उत्पादपूर्वकी चार चूलिकावस्तु कही गई हैं। काव्य चार प्रकारका कहा गया है०—गद्य, पद्य, कथ्य और गेय ॥४७६॥ नैरयिकोंके चार समुद्घात कहे गए हैं०—वेदनासमुद्घात, कषाय०, मारणान्तिक० और वैक्रिय०। इसी प्रकार वायुकायिकोंके भी ॥४७७॥

अर्हन्त अरिष्टनेमिके उत्कृष्ट चार सौ चतुर्दश पूर्वधर जिन न होते हुए भी जिनके समान, सर्वाक्षरसंयोगवेत्ता- सर्वज्ञकी तरह यथार्थप्ररूपक थे। श्रमण

---

१. ढोल वीणा आदि। २. पटह आदि। ३. झालर घंटा आदि। ४. छिद्र वाले शंख बांसुरी आदि। ५. डोरेसे गूंथी जाने वाली। ६. वेष्टनसे निवृत्त मुकुटवत्। ६. छिद्रोंमें फूलोंसे भरी हुई। ८. फूलोंके नालोंको मिलाकर बनाई जाने वाली। ९. 'नाट्य एवं अभिनय' के लिए नाट्यशास्त्र देखें। १०. हाथ। ११. तुषार- पात रूप। १२. मेघाडम्बर रूप। १३. गर्जना, विद्युत्, जल, वात और मेघ इन पांचों रूप वाले।

भगवान् महावीरकी देव मनुष्य एवं असुरोंसे युक्त सभामें अपराजित चार सौ वादियोंकी उत्कृष्ट वादी-सम्पत्ति थी ।।४७८।।

नीचे के चार कल्प अर्द्ध--चन्द्राकार कहे गए हैं०—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र । मध्यके चार कल्प प्रतिपूर्ण चन्द्राकार हैं०—ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार । ऊपरके चार कल्प अर्द्धचन्द्राकार हैं०—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ।।४७९।।

चार समुद्र भिन्न २ रस वाले कहे गए हैं०—लवणोद, वरुणोद, क्षीरोद[१] और घृतोद । आवर्त चार प्रकार के कहे गए हैं०—खरावर्त[२], उन्नतावर्त[३], गूढावर्त[४] और आमिषावर्त[५] । इसी प्रकार चार कषाय कही गई हैं०—खरावर्त समान क्रोध, उन्नतावर्त समान मान, गूढावर्त समान माया और आमिषावर्त समान लोभ । खरावर्त समान क्रोध में अनुप्रविष्ट हुआ जीव यदि कालगत होता है तो वह नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है, इसी प्रकार उ० मान, गू० माया और आमिषावर्त लोभ में अनु०.......नैरयिकों... ...।।४८०।।

अनुराधा नक्षत्र, पूर्वाषाढा० और उत्तराषाढा० ये तीन नक्षत्र चार २ ताराओं वाले हैं ।।४८१।।

जीवों ने चार स्थान निर्वतित पुद्गलों का पाप कर्म रूपसे चयन किया है, करते हैं और करेंगे । ०—नैरयिक निर्वतित यावत् देव० । इसी प्रकार अशुभ कर्मप्रकृति का उपचय[६] किया है...। इसी प्रकार बन्ध, उदीरणा, वेदन और निर्जराके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए ।।४८२।।

चार प्रदेशों वाले स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं । चार प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त...। चार समयस्थिति वाले पुद्गल...। चतुर्गुण कृष्ण पुद्गल अनन्त यावत् चतुर्गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गए हैं ।।४८३।।

।। चौथे स्थान का चौथा उद्देशक समाप्त ।।

।।चतुर्थ स्थानक समाप्त ।।

---

१. दूध के समान जल वाला । २. तेज भँवर । ३. ऊपर उठने वाला ववंडर । ४. गेंद के डोरे या लकड़ी की गांठ आदि का । ५. बाज़ आदि पक्षियों का शिकार के लिए झपट्टा मारना । ६. बारम्बार पुद्गलोंका ग्रहण करना ।

पञ्चम स्थानक—प्रथम उद्देशक

पांच महाव्रत कहे गए हैं०—सर्वथा प्राणातिपात से विरति यावत् सर्वथा परिग्रह से विरति। पांच अणुव्रत कहे गए हैं०—स्थूल प्राणातिपात से विरति, स्थूल मृषावादसे विरति, स्थूल अदत्तादानसे विरति, स्वदारसंतोष, इच्छापरिमाण ।।४८४।।

वर्ण पांच होते हैं०—काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। रस पांच होते हैं०—तीखा यावत् मीठा। कामगुण पांच होते हैं०—शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श। जीव पांच स्थानोंमें आसक्त होते हैं०—शब्द में यावत् स्पर्शमें। इसी प्रकार राग करते हैं, मोहित होते हैं, गृद्ध होते हैं, उनमें एकचित्त होते हैं। पांच स्थानोंमें जीव विनिघातको प्राप्त होता है०—शब्दमें ५। पांच स्थान अपरिज्ञात१ होने पर जीव के अहित, दुःख, असामर्थ्य, अकल्याण के लिए होते हैं एवं अनानुगामिकता२ के लिए होते हैं०—शब्द यावत् स्पर्श। पांच स्थान सुपरिज्ञात होनें पर जीवके हित, सुख, सामर्थ्य, कल्याण तथा आनुगामिकताके लिए होते हैं०—शब्द यावत् स्पर्श। पांच स्थान अपरिज्ञात होने पर दुर्गतिगमन के लिए होते हैं०—शब्द···। पांच स्थान परिज्ञात होनें पर सुगति······।।४८५।।

पांच कारणोंसे जीव दुर्गतिमें जाते हैं०—प्राणातिपातसे यावत् परिग्रहसे। पांच कारणोंसे जीव सुगति प्राप्त करते हैं०—प्राणातिपात-विरमण से यावत् परिग्रहविरमणसे ।।४८६।।

पांच प्रतिमाएँ कही गई हैं०—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरप्रतिमा ।।४८७।।

पांच स्थावरकाय कहे गए हैं०—इन्द्र स्थावरकाय, ब्रह्म०, शिल्प०, सम्मति और प्राजापत्य०। पांच स्थावरकायाधिपति कहे गए हैं०—इन्द्र स्थावरकायाधिपति यावत् प्राजापत्य० ।।४८८।।

पांच कारणोंसे उत्पन्न होने वाला अवधिदर्शन अपने उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें चलायमान हो सकता है०—अल्पसत्त्वसहित भूमि को देखकर, कुन्थुराशि से पृथिवी को व्याप्त देखकर, अत्यधिक विशालकाय महोरग३ को देखकर, अथवा महर्द्धिक यावत् महासौख्ययुक्त देव को देखकर। अथवा नगरोंमें गड़े हुए या रक्खे हुए, पुराने, अत्यधिक विशाल, जिनके स्वामी नष्ट हो चुके हों, उनकी वंश परम्परा में भी कोई न हो, जिनके गोत्र में भी कोई न हो, इसी प्रकार जिन

---

१. जिनका स्वरूप मालूम न हो अथवा 'अप्रत्याख्यात' जिनका त्याग किया गया हो। २. परभव में साथ न जाने के लिए। ३. सर्पकी एक जाति।

स्वामी उच्छिन्न·· जो ग्राम, खान, नगर, खेट१, कुत्सित नगर में, मडम्ब२ द्रोण-मुख३ पट्टन४, आश्रम, संवाह५, संनिवेश, तीन कोने वाले मार्गमें, त्रिक६, चत्वर७,चतुर्मुख राजमार्गके पथमें, नगरकी नालियोंमें, तालाव, श्मशान, शून्या-गार, गुफा, शान्तिगृह, शैलगृह, बैठक, भवनगृहमें गड़े हुए या रक्खे हुए हों ऐसे निधानों को देखकर उत्पन्न होने वाला अवधिदर्शन···। इन पांच कारणों से उत्पन्न होने वाला······॥४८६॥

पांच कारणोंसे उत्पन्न होने वाला केवल—ज्ञान-दर्शन प्रथम···क्षुभित नहीं होता०—अल्प सत्त्व0·········॥४९०॥

नैरयिकोंके शरीर पांच वर्ण, पांच रस वाले कहे गए हैं०—काला ५, तीखा५। इसी प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक तक ॥४९१॥

पांच शरीर कहे गए हैं०—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। औदारिक शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाला कहा गया है···यावत् मधुर। इसी प्रकार यावत् कार्मण शरीर। स्थूलाकार समस्त शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श वाले होते हैं ॥४९२॥

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों का मार्ग पांच कारणों से दुर्गम होता है०—कठिनाईसे कहा जाने वाला, दुर्विभाज्य वस्तु तत्व को विभागशः संस्थापन करना जिसमें दुःशक्य हो, दुर्दर्श८, दुस्तितिक्ष९, दुरनुचर१०। पांच कारणोंसे मध्यम जिनोंका मार्ग सुगम होता है०—स्वाख्येय, सुविभाज्य, सुदर्श, सुतितिक्ष और सुअनुचर ॥४९३॥

श्रमण भगवान महावीर ने साधुओं के लिए पांच स्थान सर्वदा फलकी अपेक्षा वर्णित किए हैं, नामकी अपेक्षा कीर्तित किए हैं, स्पष्ट१ वाणीसे कहे हैं, नित्य वे प्रशंसित किए हैं और कर्त्तव्य रूपसे माने हैं०—क्षमा, निर्लोभता, सरलता, नम्रता, लघुता। श्रमण ········—सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्म-चर्यवास ॥४९४॥

---

१. धूलि प्राकार से परिवेष्टित स्थान। २. चारों ओर अढ़ाई २ योजन तक वसतिरहित स्थान। ३. जिसमें जलपथ एवं स्थलपथ दोनों हों। ४. जिस में एक पथ हो। ५. [illegible]तादि का मध्य भाग। ६. जहां तीन रास्ते मिलते हों। ७. अनेक [illegible] स्थान। ८. कठिनाई से दिखाया जाने वाला। ९. कठिनाई [illegible]। १०. कठिनाई से पालन किया जाने

पञ्चम स्थानक—प्रथम उद्देशक

पांच महाव्रत कहे गए हैं०—सर्वथा प्राणातिपात से विरति यावत् सर्वथा परिग्रह से विरति। पांच अणुव्रत कहे गए हैं०—स्थूल प्राणातिपात से विरति, स्थूल मृषावादसे विरति, स्थूल अदत्तादानसे विरति, स्वदारसंतोष, इच्छापरिमाण ॥४८४॥

वर्ण पांच होते हैं०—काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। रस पांच होते हैं०—तीखा यावत् मीठा। कामगुण पांच होते हैं०—शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श। जीव पांच स्थानोंमें आसक्त होते हैं०—शब्द में यावत् स्पर्शमें। इसी प्रकार राग करते हैं, मोहित होते हैं, गृद्ध होते हैं, उनमें एकचित्त होते हैं। पांच स्थानोंमें जीव विनिघातको प्राप्त होता है०—शब्दमें ५। पांच स्थान अपरिज्ञात१ होने पर जीव के अहित, दुःख, असामर्थ्य, अकल्याण के लिए होते हैं एवं अनानुगामिकता२ के लिए होते हैं०—शब्द यावत् स्पर्श। पांच स्थान सुपरिज्ञात होने पर जीवके हित, सुख, सामर्थ्य, कल्याण तथा आनुगामिकताके लिए होते हैं०—शब्द यावत् स्पर्श। पांच स्थान अपरिज्ञात होने पर दुर्गतिगमन के लिए होते हैं०—शब्द···। पांच स्थान परिज्ञात होने पर सुगति······॥४८५॥

पांच कारणोंसे जीव दुर्गतिमें जाते हैं०—प्राणातिपातसे यावत् परिग्रहसे। पांच कारणोंसे जीव सुगति प्राप्त करते हैं०—प्राणातिपात-विरमण से यावत् परिग्रहविरमणसे ॥४८६॥

पांच प्रतिमाएँ कही गई हैं०—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरप्रतिमा ॥४८७॥

पांच स्थावरकाय कहे गए हैं०—इन्द्र स्थावरकाय, ब्रह्म०, शिल्प०, सम्मति और प्राजापत्य०। पांच स्थावरकायाधिपति कहे गए हैं०—इन्द्र स्थावरकायाधिपति यावत् प्राजापत्य० ॥४८८॥

पांच कारणोंसे उत्पन्न होने वाला अवधिदर्शन अपने उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें चलायमान हो सकता है०—अल्पसत्त्वसहित भूमि को देखकर, कुन्थुराशि से पृथिवी को व्याप्त देखकर, अत्यधिक विशालकाय महोरग३ को देखकर, अथवा महर्द्धिक यावत् महासौख्ययुक्त देव को देखकर। अथवा नगरोंमें गड़े हुए या रक्खे हुए, पुराने, अत्यधिक विशाल, जिनके स्वामी नष्ट हो चुके हों, उनकी वंश परम्परा में भी कोई न हो, जिनके गोत्र में भी कोई न हो, इसी प्रकार जिनके

---

१. जिनका स्वरूप मालूम न हो अथवा 'अप्रत्याख्यात' जिनका त्याग न किया गया हो। २. परभव में साथ न जाने के लिए। ३. सर्पकी एक जाति।

स्वामी उच्छिन्न… जो ग्राम, खान, नगर, खेट१, कुत्सित नगर में, मडम्ब२ द्रोण-मुख३ पट्टन४, आश्रम, संवाह५, संनिवेश, तीन कोने वाले मार्गमें, त्रिक६, चत्वर७, चतुर्मुख राजमार्गके पथमें, नगरकी नालियोंमें, तालाव, श्मशान, शून्यागार, गुफा, शान्तिगृह, शैलगृह, बैठक, भवनगृहमें गड़े हुए या रक्खे हुए हों ऐसे निधानों को देखकर उत्पन्न होने वाला अवधिदर्शन…। इन पांच कारणों से उत्पन्न होने वाला……॥४८६॥

पांच कारणोंसे उत्पन्न होने वाला केवल—ज्ञान-दर्शन प्रथम…क्षुभित नहीं होता०—अल्प सत्त्व०………॥४६०॥

नैरयिकोंके शरीर पांच वर्ण, पांच रस वाले कहे गए हैं०—काला ५, तीखा५। इसी प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक तक ॥४६१॥

पांच शरीर कहे गए हैं०—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। औदारिक शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाला कहा गया है…यावत् मधुर। इसी प्रकार यावत् कार्मण शरीर। स्थूलाकार समस्त शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श वाले होते हैं ॥४६२॥

प्रथम और अन्तिम तीर्थकरों का मार्ग पांच कारणों से दुर्गम होता है०—कठिनाईसे कहा जाने वाला, दुर्विभाज्य वस्तु तत्व को विभागशः संस्थापन करना जिसमें दुःशक्य हो, दुर्दर्श८, दुस्तितिक्ष६, दुरनुचर१०। पांच कारणोंसे मध्यम जिनोंका मार्ग सुगम होता है०—स्वाख्येय, सुविभाज्य, सुदर्श, सुतितिक्ष और सुअनुचर ॥४६३॥

श्रमण भगवान महावीर ने साधुओं के लिए पांच स्थान सर्वदा फलकी अपेक्षा वर्णित किए हैं, नामकी अपेक्षा कीर्तित किए हैं, स्पष्ट१ वाणीसे कहे हैं, नित्य वे प्रशंसित किए हैं और कर्त्तव्य रूपसे माने हैं०—क्षमा, निर्लोभता, सरलता, नम्रता, लघुता। श्रमण ………—सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्यवास ॥४६४॥

---

१. धूलि प्राकार से परिवेष्टित स्थान। २. चारों ओर अढ़ाई २ योजन तक वसतिरहित स्थान। ३. जिसमें जलपथ एवं स्थलपथ दोनों हों। ४. जिस में एक पथ हो। ५. पर्वतादि का मध्य भाग। ६. जहां तीन रास्ते मिलते हों। ७. अनेक मार्गों का संगम स्थान। ८. कठिनाई से दिखाया जाने वाला। ६. कठिनाई से सहा जाने वाला। १०. कठिनाई से पालन किया जाने वाला।

श्रमण ···पांच स्थान ·····—उत्क्षिप्तचरक१, निक्षिप्तचरक२, अन्तचरक३, प्रान्तचरक४, एवं रूक्षचरक।···पांच स्थान······—अज्ञातचरक५, अन्नग्लायक-चर६, मौनचर७, संसृष्टकल्पिक८, तज्जात९संसृष्टकल्पिक । पांच स्थान··· —औपनिधिक१०, शुद्धैषणिक, संख्यादत्तिक, दृष्टलाभिक, पृष्ठलाभिक। ···पांच स्थान···—आचामाम्लिक११, विगयरहित, पौर्वाह्णिक१, परिमितपिण्ड२—पातिक, भिन्नपिण्ड३पातिक। ···पांच स्थान······—अरसाहार, विरसाहार, अन्ताहार, प्रान्ताहार, रूक्षाहार ।···पांच स्थान······—अरसजीवी, विरस०, अन्त०, प्रान्त०, रूक्ष०। ···पांच स्थान······—कायोत्सर्ग, उत्कट४ आसन से बैठना, प्रतिमा धारण करना, वीरासनसे बैठना, निषद्या०५।···पांच स्थान···—दण्डायतिक६,लगण्डशायी७,आतापक८,अपावृतक९, और अकण्डूयक१० ॥४६५॥

पांच स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा महापर्यवसान ११वाला होता है०—अग्लान होकर आचार्यकी वैयावृत्य करता हुआ, इसी प्रकार उपाध्याय०, स्थविर०, तपस्वि०, रोगी की···। पांच स्थानों से श्रमण······ — ग्लानिरहित नवदीक्षित की वैयावच्य करता हुआ, कुल०, गण०, संघ०, साधर्मिक···॥४६६॥

पांच कारणोंसे साधु अपने साम्भोगिक१२ साधुको विसाम्भोगिक१३ करते हुए जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता०—प्रायश्चित्त स्थान का सेवन करनें पर, सक्रिय स्थान सेवन करके आलोचना न करने पर, प्रदत्त प्रायश्चितको प्रारम्भ न करने पर, प्रायश्चित को पूर्ण रूप से पालन न करने पर, स्थविरकल्पिक साधुओं के स्थिति प्रकल्प्यों के "स्थविर महाराज मेरा क्या कर लेंगे" यह सोच कर वार-वार अतिक्रमण करने पर। श्रमण निर्ग्रन्थ इन पांच कारणोंसे साधर्मिक को

---

१. पाक-भाजन से दूसरे बर्तनमें रक्खे गए आहार के लिए अभिग्रहधारी साधु। २. नीचे रक्खे हुए आहार···। ३. निस्सार आहार···। ४. बासी भोजन···। ५. अज्ञात कुलों से आहार···। ६. दूसरों द्वारा त्यक्त आहार···। ७. मौन रखकर गोचरी लाने वाला। ८. सने हुए हाथों से आहार···। ९. अभिग्रहित द्रव्य से सने हुए बर्तन से आहार···। १०. भोजन करने के लिए बैठे हुए व्यक्ति से आहार···। ११. आयंबिल।

१. पूर्वाह्ण में ही भिक्षा के लिए जाना। २. परिमित आहार लेना। ३. खण्ड२ आहार लेना।४. 'उकड़ू'। ५. आसन विशेष। ६. दण्डासन करना। ७. वक्रकाष्ठवत् आसन से सोना। ८. आतापना लेना। ९, वस्त्ररहित व अल्प वस्त्र वाला। १०. खाज होनेपर भी शरीर न खुजलाना। ११. बृहत्कर्मक्षयकारी। १२. एक साथ बैठकर आहार करने वाला। १३. आहार पानी अलग······

पाराञ्चित1 करते हुए जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता०—कुल में रहते हुए कुल के भेद2 के लिए प्रयत्नशील रहने पर, गण में……, आचार्य आदि की हिंसा करनेके अवसरकी प्रतीक्षा करने वाले को, आचार्य आदिके अपमानके मौके या दोषोंकी गवेषणा करने वाले को, वार-वार अंगुष्ठकुड्यप्रश्नादि3 का प्रयोग करने पर। आचार्य और उपाध्यायके गणमें पांच कलह उत्पन्न करने वाले कारण कहे गए हैं०—आचार्य उपाध्याय गण में भली भांति आज्ञा व धारणा का प्रयोक्ता4 नहीं होता। आचार्य……गण में पर्याय ज्येष्ठके अनुसार वन्दना आदि कृतिकर्मका सम्यक् रीतिसे प्रयोक्ता नहीं होता। आचार्य उ० जिन सूत्रभेदोंको जानता है उनको वह यदि समय-समय पर अच्छी तरहसे अपने शिष्योंको नहीं पढ़ाता। आचार्य उ० गणमें रोगी, नवदीक्षितकी वैयावच्चके प्रति सम्यग्रूपेण प्रयत्नशील नहीं होता। आचार्य उपाध्याय विना पूछे ही क्षेत्रान्तरमें जाता है या कोई कार्य करता है पूछ कर नहीं। आचार्य…पांच कलह न उत्पन्न……—आ० ……प्रयोक्ता होता है२। ……शिष्योंको पढ़ाता है।……प्रयत्नशील होता है। ……पूछकर करता है विना पूछे नहीं ।।४६७।।

निषद्या पांच प्रकार की कही गई हैं०—उत्कुटुका१, गोदोहिका२, समपादपुता३, पर्यङ्का४ और अर्द्धपर्यङ्का५ ।।४६८।। पांच आर्जव स्थान कहे गए हैं०—साधु सरलता, सम्यग् विनय, सम्यग् लघुता, उत्तम क्षमा, सुन्दर निर्लोभता ।।४६९।।

ज्योतिष्कदेव पांच प्रकार के कहे गए हैं०—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा ।।५००।। देव पांच…— भव्यद्रव्य६देव, नरदेव७, धर्मदेव८, देवाधिदेव९ और भावदेव१० ।।५०१।। परिचारणा पाँच प्रकार की कही गई है०—कायपरिचारणा११, स्पर्श०, रूप०, शब्द और मनःपरिचारणा ।।५०२।।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं०—

---

1. दसवां प्रायश्चित—वेश ले लेना। 2. तोड़-फोड़। 3. निमित्त-शास्त्र। 4. पालन कराने वाला। १. उकड़ू आसन। २. जिस आसन से गाय दुही जाती है। ३. जिस आसन में दोनों पैर व दोनों पुत (अधोभाग) समान रूपसे भूमिको स्पर्श करे। ४. पद्मासन। ५. अर्द्धपद्मासन। ६. भावी देवता। ७ चक्रवर्ती आदि। ८. मुनि। ९. अर्हन्त। १०. देवपर्याय में स्थित। ११. कुशीलसेवन।

काली, रात्रि, रजनी, विद्युत् और मेघा। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि की पांच अग्र०......—शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा और मदना ॥५०३॥

असुरकुमारेन्द्र असुरकुमारराज चमर की पांच सांग्रामिक सेनाएं और पाँच सेनापति कहे गए हैं। पैदल सेना, अश्वसेना, कुञ्जरानीक, महिपानीक और रथसेना। पदाति का द्रुम, हयदल का अश्वराज सौदाम, हाथियों की सेना का हस्तिराज कुन्थु, भैंसोंकी सेनाका लोहिताक्ष, रथसेनाका किन्नर अधिपति है। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि की पाँच सांग्रा०......। पदातिका महाद्रुम, हयदल का अश्वराज महासौदाम, गजसेनाका हस्तिराज मालंकार, महिषानीक का महालोहिताक्ष, रथसेना का किंपुरुष अधिपति है। नागकुमारेन्द्र नागकुमार-राज धरणकी पांच सांग्रा०......। उनके अधिपति क्रमशः भद्रसेन, यशोधर, सुदर्शन, नीलकण्ठ और आनन्द हैं। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की पांच.........। उनके अधिपति क्रमशः दक्ष, सुग्रीव, सुविक्रम, नीलकण्ठ और नन्दोत्तर हैं। सुपर्णेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदेव की पाँच...... । जैसे धरण का कहा वैसे ही वेणुदेव का जानें। वेणुदालिक का भूतानन्दके समान। समस्त दक्षिणके यावत् घोप तक धरणके समान। सभी उत्तर के यावत् महाघोष तक भूतानन्दवत्। देवेन्द्र देवराज शक्र की पांच सांग्रा०......। पैदल यावत् वृषभ-सेना। उनके अधिपति क्रमशः हरिणैगमैपी, अश्वराज वायु, हस्तिराज ऐरावण, माठर और दामर्द्धि हैं। देवेन्द्र देवराज ईशानकी पाँच......। उनके अधिपति क्रमशः लघुपराक्रम, अश्वराज महावायु, हस्तिराज पुष्पदन्त, महामाठर रथानी-काधिपति, महादामर्द्धि हैं। शक्रके समान सभी दक्षिणात्य इन्द्रोंका यावत् आरण तक, जैसे ईशानका कहा वैसे सभी उत्तरके इन्द्रोंका यावत् अच्युत तक जानना। देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यन्तर परिषदाके देवोंकी स्थिति पाँच पल्योपम प्रमाण कही गई है। देवेन्द्र देवराज ईशानकी आभ्यन्तर परिषदाकी देवियोंकी स्थिति पाँच पल्यो०......॥५०४॥

प्रतिघात पाँच प्रकारका कहा गया है ०— गतिप्रतिघात, स्थिति०, वन्धन०, भोग० और वलवीर्य-पुरुपकार—पराक्रमप्रतिघात ॥५०५॥ पांच प्रकारके आजीव कहे गए हैं०—जात्याजीव, कुलाजीव, कर्माजीव, शिल्पाजीव और लिङ्गाजीव[१] ॥५०६॥ राजा के पांच चिन्ह कहे गए हैं०—तलवार, छत्र, मुकुट, जूते और चामर ॥५०७॥

पांच कारणोंसे छद्मस्थ उदयमें आए हुए परीसह उपसर्गोंको अच्छी तरह क्षमा धारण करके, दीनतारहित होकर सहता है, उनका अविचलित भावसे

---

१. वेशसे आजीविका करने वाला।

सामना करता है०—वह सोचता है कि इस पुरुषके कर्मोंका उदय है, जिससे उन्मत्त होकर यह पुरुष मुझे गाली देता है, मेरी हंसी करता है, वस्त्र पात्रादि जवर्दस्ती छुड़ाता है, मुझे झिड़कता है, बांधता है, रोकता है, छेदन करता है या मारता है अथवा उपद्रव करता है, वस्त्र-पात्र-कम्वल-पादप्रोञ्छन का छेदन-भेदन करता है, अथवा चुराता है। यह पुरुष यक्षाधिष्ठित है जिससे यह मुझे गाली······चुराता है। मेरे पूर्वभव के कर्मोंका उदय है जिससे···चुराता है। वह सोचता है—"यदि मैं इन-इन उपसर्गों को भली भांति नहीं सहता, क्षमा धारण नहीं करता, दीनता दिखाता हूं, अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित होता हूं तो मुझे एकान्ततः पापका उपार्जन होगा।" "यदि मैं···भली भांति सहता हूं यावत् विचलित नहीं होता तो मेरे कर्मोंकी एकान्ततः निर्जरा होगी।" इन पांच कारणों से छद्मस्थ······॥५०८॥

पाँच कारणोंसे केवली उदयमें आए हुए······"यह पुरुष क्षिप्तचित्त[1] है जिससे यह मुझे गाली······चुराता है। यह पु० दृप्त[2]चित्त है······। यह पु० यक्षा०······। मेरे पूर्वभवके······। यदि मैं······विचलित नहीं होऊंगा तो मुझे देखकर दूसरे श्रमण निर्ग्रन्थ उदयमें आए हुये परीसहोपसर्गों को भली भाँति सहेंगे यावत् विचलित नहीं होंगे। इन पांच कारणोंसे केवली······॥५०९॥

पांच हेतु कहे गए हैं०—हेतु को नहीं जानता, हेतु को नहीं देखता, हेतु पर सम्यक् श्रद्धा नहीं रखता, हेतु को प्राप्त नहीं करता, हेतुसे अज्ञानमरण मरता है। पाँच हेतु···—हेतु से नहीं जानता······हेतुसे अज्ञानमरण मरता है। पाँच हेतु······—हेतुको जानता है यावत् हेतुसे छद्मस्थमरण मरता है। पांच हेतु···—हेतुसे······छद्मस्थमरण······। पाँच अहेतु कहे······—अहेतु को नहीं जानता यावत् अहेतु से छद्मस्थमरण······। पाँच अहेतु···—अहेतुसे······छ० म०······। पाँच अहेतु······—अहेतुको जानता है, यावत् अहेतु केवलीमरण मरता है। पाँच अहेतु······—अहेतुसे······यावत् अहेतुसे केवलिमरण मरता है॥५१०॥

केवली के पांच सर्वोत्कृष्ट कहे गए हैं०—अनुत्तरज्ञान, अनुत्तरदर्शन, अनुत्तर-चरित्र, अनुत्तर तप, अनुत्तरशक्ति॥५११॥

पद्मप्रभ अरिहंत पांच चित्रानक्षत्र वाले हुए हैं०—वे चित्रानक्षत्रमें चवकर गर्भमें आए, चित्रामें जन्मे, चित्रामें घरबार छोड़कर दीक्षित हुए, उन्हें चित्रामें अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, सर्वप्रतिपूर्ण केवलवरज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ, चित्रामें मोक्ष गए। पुष्पदन्त अर्हन्त पांच मूलनक्षत्र वाले थे०—मूल नक्षत्र में चवकर······इस अभिलाप से ये गाथाएं समझनी चाहिएँ। पद्मप्रभका चित्रा,

---

१. पागल। २. पुत्रजन्मादिसे अहङ्कारयुक्त चित्त वाला।

पुष्पदन्तका मूल, शीतलनाथका पूर्वापाढा, विमलनाथका उत्तराभाद्रपद । अनंतनाथका रेवती, धर्मनाथका पुष्य, शान्तिनाथका भरणी, कुन्थुनाथ का कृतिका, अरनाथका रेवती, मुनिसुव्रतका श्रवण, नमिका अश्विनी, नेमिनाथका चित्रा, पार्श्वनाथका विशाखा और भगवान् महावीरका उत्तराफाल्गुनी में च्यवन ५ समझना चाहिए। शेष आचारांग के समान ।।५१२।।

।। पाँचवें स्थानका पहला उद्देशक समाप्त ।।

पञ्चम स्थानक द्वितीय उद्देशक

साधु-साध्वियोंको ये उद्दिष्ट१, गणित२, व्यञ्जित३, पाँच महार्णववाली४ महानदियां एक महीने में दो या तीन वार उतरना या नावादि से पार करना नहीं कल्पता०—गंगा, जमुना, सरयू, ऐरावती और मही। पाँच कारणोंसे कल्पता है ०—राजा आदि का भय होने पर, अकाल पड़ने पर, अथवा किसीके द्वारा पानी में ढकेल दिए जाने पर, बाढ़ आने पर, अनार्यों द्वारा आक्रमण होने पर। साधु साध्वियों को प्रथम प्रावृट्५ में एक गांव से दूसरे गांव में विचरण करना नहीं कल्पता। पांच कारणों से कल्पता है०—राजा आदि······पूर्ववत्। वर्षाकाल में एक स्थान पर ठहरे हुए साधु-साध्वियों को एक गांव से दूसरे गाँव······। पांच कारणों से कल्पता है ०—ज्ञान के लिए, दर्शन०, चरित्र०, आचार्य उपाध्याय६ द्वारा आवश्यक कार्य के लिए भेजे जाने पर, बाहर रहे हुए आचार्य उपाध्याय की सेवा के लिए ।।५१३।।

पांच अनुद्घातिक७ कहे गए हैं ०—हस्तकर्म करने वाले, कुशील सेवन करने वाले, रात्रिभोजन करने वाले, शय्यातर का आहार ग्रहण करने वाले, राज-पिण्ड८ का उपभोग करने वाले। पाँच कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ राजाके अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं करता ०—कोई नगर चारों ओर से गुप्त हो९, जिसके दरवाजे बन्द हो रहे हों, जिसके कारण साधु आहार पानीके लिए नगरसे बाहर जानेमें व नगरप्रवेश करनेमें असमर्थ हों, ऐसी दशा में सूचना देने के लिए साधु राजाके अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है। प्रातिहारिक–प्रयोजनवश लाकर के वापस देने योग्य चौकी, तख्त, शय्या, संस्तारक वापिस करने के लिए साधु······। यदि कोई दुष्ट घोड़ा अथवा हाथी

---

१. सामान्यतया कही हुई। २. गिनी हुई। ३. प्रगट की हुई। ४. अगाध जल वाली। ५. चातुर्मास। ६·········के कालधर्म प्राप्त होने पर। ७. गुरु प्रायश्चित के योग्य। ८. आहार। ९. चारदीवारी से।

आ रहा हो तो उससे बचनेके लिए साधु······। यदि कोई उसे जबर्दस्ती भुजासे पकड़कर ले जावे तो साधु ······। अथवा आराम या उद्यानस्थित मुनिराज के चारों ओर अन्तःपुर के लोग (उपदेशादि सुनने के लिए) घेरकर बैठ जायं। इन पांच कारणों से श्रमण······॥५१४॥

पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ सहवास न करती हुई भी गर्भवती हो सकती है०—कोई वस्त्रहीन स्त्री यदि उस स्थान पर बैठ जाय जहां पुरुष-शुक्र विद्यमान हो, और वह उन शुक्र-कणों को ग्रहण कर ले। शुक्र पुद्गलसे गीला वस्त्र यदि योनि में प्रविष्ट हो जाय, अथवा वह स्वयं शुक्र पुद्गलोंको प्रविष्ट करे अथवा दूसरा कोई शुक्र पुद्गलोंको प्रविष्ट करावे। अथवा शुद्धि करते समय जल में पतित शुक्र पुद्गल यदि योनि में प्रविष्ट हो जायं। इन पांच कारणोंसे स्त्री······। पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ सहवास करती हुई भी गर्भवती नहीं होती०—अप्राप्तयौवना, गतयौवना, जन्म से बांझ, रोगग्रस्त, शोक आदि से युक्त। इन पाँच कारणोंसे स्त्री······। पांच कारणों से······गर्भवती नहीं होती०—जिसका रज सदा प्रवाहित हो, जिसे ऋतुधर्म न हो, जिसके गर्भाशय का छिद्र[१] बन्द हो गया हो, जिसका गर्भाशय गर्भधारण करने की शक्तिसे रहित हो, अनङ्ग-प्रतिसेवनी। इन पांच कारणों से ···। पांच कारणोंसे······नहीं होती०—जो वीर्यपातके बाद भी रत रहती है, जिसके योनिदोषसे पतित वीर्य पुद्गल नष्ट हो जाते हैं, जिसका पित्त शोणित निकल गया हो तब बीज अंकुरित नहीं होता, किसी देवता या औषधि द्वारा जिसकी गर्भधारण शक्तिका निरोध कर दिया गया हो, पूर्वजन्म में किए हुए कर्मके प्रभाव से। इन पाँच ····· नहीं होती ॥५१५॥

पांच कारणों से साधु-साध्वी एक जगह कायोत्सर्ग करते हुए, बैठते हुए, बिस्तर करते हुए, स्वाध्याय करते हुए, जिनाज्ञाके विराधक नहीं होते ०—जैसे कितनेक साधु-साध्वी किसी विशाल, ग्रामरहित, मनुष्योंके आवागमनरहित, लम्बे रास्ते वाली, भयंकर गहन अटवीमें पहुंच जाते हैं ऐसी अवस्थामें एक जगह·········। साधु साध्वी यदि विहार करते हुए ग्राम, नगर यावत् राजधानी में पहुंचें, किसी को उपाश्रय मिले, किसी को स्थान न मिले, ऐसी अवस्थामें·········। साधु साध्वी यदि किसी नागकुमारावासमें या सुपर्णकुमारावासमें[२] इकट्ठे ठहर जाते हैं ऐसी······। यदि कहीं चोर लुटेरे साध्वियोंके वस्त्रादि लूटना चाहते हों ऐसी ·। यदि कहीं बदमाश साध्वियोंका शील भंग करना चाहते हों ऐसी अवस्था में······। इन पांच कारणों से साधु-साध्वी······। पांच

१. रोगादिसे। २. और जगह न मिलने पर अथवा जहां बदमाशों का डर हो।

कारणोंसे अचेलक× साधु वस्त्रसहित साध्वियोंके साथ रहता हुआ जिनाज्ञाका अतिक्रमण नहीं करता ०—अनवहित चित्त वाला अचेलक साधु साधुओंके अभाव में वस्त्रसहित ····· । इसी प्रकार हर्षादिसे उन्मत्त हुआ, यक्षाविष्ट, उन्मादप्राप्त, साध्वी द्वारा दीक्षित किया हुआ अचेलक ····।।५१६।।

आस्रवद्वार पांच कहे गए हैं ०—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग । पांच संवरद्वार कहे गए हैं०—सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषायिता और अयोगिता । दण्ड पांच ····—अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड, हिंसादण्ड, अकस्मात्-दण्ड और दृष्टिविपर्यासदण्ड । क्रियाएँ पांच कही गई हैं ०—आरम्भिकी, पारि-ग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया और मिथ्यादर्शनप्रत्यया । मिथ्या-दृष्टि नैरयिकोंकी पांच क्रियाएँ कही गई हैं०—आरंभिकी यावत् मिथ्या० । इसी प्रकार सबकी निरन्तर यावत् मिथ्यादृष्टि वैमानिक तक केवल विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि नहीं कहे जाते शेष पूर्ववत् । क्रियाएँ ५······ कायिकी, आधि-करणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातक्रिया । नैरयिकोंके पांच क्रियाएँ इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक। क्रियाएँ पांच·········—दृष्टिका१, पृष्टिका२, प्रातीतिकी, सामन्तोपनिपातिकी, स्वाहस्तिकी । इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक तक । क्रियाएँ ५·······—नैसृष्टिकी, आज्ञापनिका, वैदारणिका, अनाभोगप्रत्यया एवं अनवकाङ्क्षाप्रत्यया । इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक । क्रियाएँ पांच······—प्रेमप्रत्यया, द्वेषप्रत्यया, प्रयोगक्रिया, समुदानक्रिया और ऐर्यापथिकी क्रिया । ये केवल मनुष्योंको होती हैं शेष जीवोंको नहीं ।।५१७।।

परिज्ञा३ पांच प्रकारकी कही गई हैं ०—उपधिपरिज्ञा, उपाश्रयपरिज्ञा, कषाय०, योग० और भक्तपानपरिज्ञा ।।५१८।।

व्यवहार पांच प्रकारका कहा गया है ०—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत । *जहां आगम१ हो वहां उसीसे व्यवहार चलाना चाहिए, यदि वहां आगम न हो तो फिर जिस प्रकारका वहां श्रुत२ हो उससे व्यवहार चलाना चाहिए । इसी प्रकार यावत् जैसा वहां जीत३ व्यवहार हो उससे व्यवहार चलाना चाहिए । इन पांच से व्यवहार चलाना चाहिए, आगमसे यावत् जीत से··· । यह भगवन् ! किस लिए कहा ? श्रमण निर्ग्रन्थ आगमबलसंपन्न होते हैं । इस पांच प्रकार के व्यवहारको जब २ जहां २ तब २ वहां २ अनिश्रितोपाश्रित४

× वस्त्ररहित अथवा अल्पवस्त्रवाला । १. दृष्टिजा । २. स्पृष्टिका । ३. कल्प्याकल्प्य-ज्ञान ।

*प्रायश्चितदाताको १. केवलज्ञान से पूर्व-ज्ञान तक । २. छेदसूत्रादि । ३. परम्परा । ४. रागद्वेषादि रहित ।

होकर सम्यक् प्रकारसे व्यवहार चलाता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है ॥५१९॥

संयतमनुष्योंके सुप्त अवस्थामें पांच जागृत१ होते हैं ०—शब्द यावत् स्पर्श। असंयत मनुष्योंके सुप्त अथवा जागृत अवस्थामें पांच जागृत कहे गए हैं ०—शब्द यावत् स्पर्श ॥५२०॥

पांच कारणोंसे जीव कर्मरजको ग्रहण करते हैं ०—प्राणातिपातसे यावत् परिग्रह से। पांच कारणों से जीव कर्मरजको क्षय करते हैं ०—प्राणातिपात-विरमणसे यावत् परिग्रहविरमण से। पंचमासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी साधुको पांच दत्तियां भोजनकी और पांच दत्तियां पानीकी लेनी कल्पती हैं ॥५२१॥

पांच प्रकारका उपघात२ कहा गया है ०—उद्गमोपघात, उत्पादनोपघात, एषणोपघात, परिकर्मोपघात और परिहरणोपघात। पाँच प्रकारकी विशुद्धि कही गई है ०—उद्गमविशुद्धि, उत्पादन०, एषणा०, परिकर्म०, परिहरण०। पांच कारणों से जीव दुर्लभबोधिताके कारणभूत कर्मका बन्ध करता है ०—अरिहंतकी निन्दा करता हुआ, अर्हत्प्ररूपित धर्मकी निन्दा करता हुआ, आचार्य उपाध्याय की……, चतुर्विध संघकी……, विपक्वतपोब्रह्मचर्य३ वाले देवोंकी निन्दा करता हुआ। पांच कारणोंसे जीव सुलभवोधित्वको प्राप्त करते हैं०—अर्हन्तोंकी स्तुति करने से यावत्—देवोंकी प्रशंसा करनेसे ॥५२२॥

पांच प्रतिसंलीन४ कहे गए हैं०—श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीन यावत् स्पर्शेन्द्रिय०। पांच अप्रतिसंलीन……—श्रोत्रेन्द्रिय० यावत् स्पर्शेन्द्रिय०। पांच प्रकारका संवर कहा गया है ०—श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय०। पांच प्रकार का असंवर ……—श्रोत्रेन्द्रिय० यावत् स्पर्शेन्द्रिय० ॥५२३॥

पांच प्रकारका संयम……—सामायिकसंयम, छेदोपस्थानिक०, परिहार-विशुद्धिक०, सूक्ष्मसंपराय०, यथाख्यात०। एकेन्द्रिय जीवोंका समारम्भ न करने से पाँच प्रकारका संयम होता है ०—पृथ्वीकायिकसंयम यावत् वनस्पति०। एकेन्द्रिय……समारम्भ करने से……असंयम……—पृथ्वीकायिकअसंयम यावत् वनस्पति०। पंचेन्द्रियजीवोंका समारम्भ न करनेसे… पांच……—संयम……—श्रोत्रेद्रियसंयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय०। पंचेन्द्रिय……समारम्भ करनेसे पांच……असंयम……—श्रोत्रेन्द्रियअसंयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय०। सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्वों का समारम्भ न करनेसे पांच……संयम—……एकेन्द्रियसंयम यावत् पंचेन्द्रिय०। सर्व……समारम्भ करनेसे पांच……असंयम……—एकेन्द्रियअसंयम यावत् पंचेन्द्रिय० ॥५२४॥

---

१. कर्मवन्ध के कारण। २. अशुद्धता। ३. तप एवं ब्रह्मचर्यके द्वारा देवत्व-प्राप्त। ४. इन्द्रियोंको वशमें करने वाले।

पांच प्रकारके तृणवनस्पतिकायिक कहे गए हैं ०—अग्रबीज1, मूलबीज2, पर्वबीज3, स्कन्धबीज4, बीजरूप5 ॥५२५॥

आचार पांच प्रकारका कहा गया है ०—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। आचार-प्रकल्प पांच प्रकारका कहा गया है०—मासिक उद्घातिक१, मासिक अनुद्घातिक२, चातुर्मासिक उ०, चातु० अनु०, और आरोपणा३। आरोपणा पांच प्रकार की कही गई है ०—प्रस्थापिता४, स्थापिता५, कृत्स्ना६, अकृत्स्ना और हाडहडा७ ॥५२६॥

जंबूद्वीप द्वीपके मेरुपर्वतकी पूर्वदिशामें सीता महानदीके उत्तर में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गए हैं ०—माल्यवान्, चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल। जंबू······सीता······दक्षिण में······—त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अंजन, मायाञ्जन और सौमनस। जंबू······मेरु······पश्चिम में सीतोदा······दक्षिण में पांच व०······—विद्युत्प्रभ, अङ्कावती, पद्मावती, आशीविष और सुखावह। जंबू······सीतोदा······उत्तर में पांच व०······—चन्द्रपर्वत, सूर्य०, नाग०, देव० और गन्धमादन०। जंबू······मेरु पर्वतकी दक्षिणदिशामें देवकुरुमें पांच महाह्लद कहे······—निषधद्रह, देवकुरु०, सूर०, सुलस० और विद्युत्प्रभ०। जंबू······ मेरुके उत्तरमें उत्तरकुरुमें पांचद्रह ······—नीलवत्०, उत्तरकुरु०, चन्द्र०, ऐरावण० और माल्यवद् ह्लद। समस्त वक्षस्कार पर्वत सीतोदा महानदियोंकी ओर और मेरु पर्वतकी तरफ पांच सौ योजन ऊँचे हैं और भूमिके अन्दर गहराई में पांचसौ गव्यूति (दो कोस) प्रमाण हैं। धातकीखंड द्वीपके पूर्वार्धमें मेरुपर्वतके पूर्वमें सीता-महानदीके उत्तरमें पांच व०······—माल्यवान्······। इस प्रकार जैसे जंबूद्वीप के प्रकरणमें कहा उसी प्रकार यावत् पुष्करवरद्वीपार्द्धपश्चिमार्द्धमें वक्षस्कार और द्रह व० पर्वतों की ऊँचाई कहनी चाहिए। समयक्षेत्रमें पांच भरत और पांच ऐरवत······जैसे चौथे स्थानके दूसरे उद्देशकमें कहा वैसे ही यहां भी कहना यावत् पांच मेरु पांच मेरुचूलिकाएँ, केवल-इषुकार नहीं हैं ॥५२७॥

कौशल देशोत्पन्न ऋषभदेव अर्हन्त पांच सौ धनुष ऊँचे थे। चातुरन्तचक्रवर्ती भरत राजा पांच सौ ······। बाहुबली अनगार भी······। ब्राह्मी आर्या एवं सुन्दरी भी इतनी ही ऊँची थीं। पांच कारणोंसे सोया हुआ जीव जागृत हो ०—शब्दसे, स्पर्श०, भोजनपरिणाम०, निद्राक्षयसे और स्वप्नदर्शनसे। पांच कारणों

---

1. कोरण्टक आदि। 2. कमलकन्द आदि 3. गन्ना बांस आदि। 4. शल्लकी आदि। 5. बड़ आदि।

१. लघु। २. गुरु। ३. सतत ६ मास तक का प्रायश्चित्त। ४. जिसमें अनेक प्रायश्चित्तों के होने पर किसी एक की प्रस्थापना की जाय। ५. गुरु-सेवा के बाद प्रायश्चित करना। ६. पूर्ण। ७. अपराध का तत्काल प्रायश्चित्तारोपण।

से श्रमण निर्ग्रन्थ साध्वीको सहायता देता हुआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता०—यदि किसी साध्वीको कोई पशु-उद्धत बैल आदि या पक्षीजातिक गीध आदि चोट पहुंचाए वह गिर पड़े उठ न सके तो अन्य साध्वीके अभावमें उसे सहारा देता हुआ साधु जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता। यदि किसी साध्वीका दुर्ग अथवा विषम स्थानमें पैर फिसल जाय अथवा गिर पड़े तो अन्य......। यदि कोई साध्वी जलसहित कीचड़ में, पङ्क, पनक, शैवाल में अथवा जलप्रवाहमें फँस जाय, गिर पड़े तो.........। साधु साध्वीको नाव पर चढ़ाता हुआ या उतारता हुआ जिनाज्ञा......। क्षिप्तचित्त, दृप्तचित्त, यक्षाविष्ट, उन्मादप्राप्त, उपसर्गप्राप्त, क्लेशयुक्त, प्रायश्चित्तयुक्त यावत् यावज्जीव भक्तपानका प्रत्याख्यान करने वाली, जिसे चोर आदिका भय हो, ऐसी साध्वी को सहारा देता हुआ साधु जिनाज्ञा .... ॥५२८॥

आचार्य, उपाध्यायके गणमें पांच अतिशय कहे गए हैं०—आचार्योपाध्याय उपाश्रयके अंदर पैरोंको झटकता हुआ, प्रस्फोट या प्रमार्जन करता हुआ जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। आचार्य... ...अंदर उच्चार और प्रस्रवण बाधाका निवारण करता हुआ जिनाज्ञा......। आचार्य उपाध्याय चाहे वैयावृत्य करे या न करे वह जिनाज्ञा......। आचार्य......अंदर एक या दो रात अकेला रहता हुआ जिनाज्ञा... ...। आचार्य ... उपाश्रयके बाहर एक या दो रात......। पांच कारणोंसे आचार्योपाध्यायका गणापक्रमण१ कहा गया है०—यदि आचार्य उपाध्याय गणमें आज्ञा और धारणाका सम्यक् प्रयोग नहीं करता। यदि आ० उ० गणमें पर्यायज्येष्ठके अनुसार वन्दन-विनयका प्रयोक्ता नहीं होता। यदि आचार्य उ० जिन सूत्रार्थोंको जानता है उन्हें यथावसर सम्यक्रूपसे शिष्योंको नहीं पढ़ाता। यदि आ० उ० गणमें स्थित होता हुआ अपने गच्छकी अथवा दूसरे गच्छकी साध्वी पर आसक्त हो जाता है। यदि आचार्य एवं उपाध्यायके सुहृत् जन अथवा स्वजन गणसे बाहर हो गये हों तो उन्हें वापस धर्ममें स्थिर करनेके लिये गच्छसे बाहर होना कहा गया है। ऋद्धि वाले मनुष्य पांच प्रकारके कहे गए हैं०—अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और भावितात्मा अनगार ॥५२९॥

॥ पांचवें स्थानका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

१. निर्गमन।

पांचवां स्थानक—तृतीय उद्देशक

पांच अस्तिकाय कहे गए हैं०—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। धर्मास्तिकाय, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित अरूपी, अजीव, अवस्थित१ लोकद्रव्य है। वह संक्षेपत: पांच प्रकार का कहा गया है०—द्रव्यकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है, क्षेत्रकी अपेक्षा लोकप्रमाणमात्र, कालकी अपेक्षा कभी नहीं था ऐसा नहीं, वर्तमानमें भी ऐसा नहीं कि यह न हो और भविष्यत्‌कालमें भी ऐसा नहीं होगा कि यह न हो—था, है और रहेगा। ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है। भावसे अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, गुणसे गमन गुण वाला है। अधर्मास्तिकाय अवर्ण० इसी प्रकार केवल गुणसे स्थिति गुण वाला है। आकाशास्तिकाय इसी प्रकार विशेष-क्षेत्रसे लोकालोक प्रमाण, गुणसे अवगाहना गुण वाला। शेष उसी प्रकार। जीवास्तिकाय इसी प्रकार केवल—द्रव्यसे जीवास्तिकाय अनन्त द्रव्य, अरूपी, शाश्वत और गुणसे उपयोग गुण वाला है शेष उसी प्रकार। पुद्गलास्तिकाय पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श वाला, रूपी, अजीव, शाश्वत अवस्थित यावत् द्रव्यसे पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य, क्षेत्रसे लोकप्रमाणमात्र, कालसे यावत् नित्य, भावसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाला, गुणसे ग्रहण२ गुण वाला है ॥५३०॥

पांच गतियां कही गई हैं०—नरकगति, तिर्यंच०, मनुष्यगति, देवगति, सिद्धिगति। पांच इन्द्रियार्थ३ कहे गए हैं०—श्रोत्रेन्द्रियार्थ यावत् स्पर्शेन्द्रियार्थ। पांच मुण्ड कहे गए हैं०—श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड यावत् स्पर्शेन्द्रिय०। अथवा पांच मुण्ड ······—क्रोधमुण्ड४, मानमुण्ड, माया०, लोभ०, सिर० ॥५३१॥

अधोलोकमें पांच बादर हैं०—पृथिवीकायिक, अप्०, वायु०, वनस्पति० तथा उदार स्थूल त्रस प्राणी। ऊर्ध्वलोकमें पांच बादर ··ये ही, तिर्यग्लोकमें पाँच बादर······—एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय। बादर तेजस्कायिक पाँच प्रकारके कहे गए हैं०—अङ्गार, ज्वाला, मुर्मुर५, अर्चि६ और अलात७। बादर वायुकायिक पांच प्रकारके हैं०—पूर्वकी हवा, पश्चिम०, दक्षिण०, उत्तर० और विदिग्वात। अचित्त वायुकायिक पांच······—आक्रान्त, ध्मात, पीड़ित, शरीरानुगत और सम्मूर्च्छिम ॥५३२॥

निर्ग्रन्थ पांच प्रकार······—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नात। पुलाक पांच······—ज्ञानपुलाक, दर्शन०, चरित्र०, लिङ्गपुलाक, पांचवां यथा-

---

१. सदा स्थायी। २. सडन पडन धर्म वाला। ३. इन्द्रियों के विषय। ४. क्रोधका त्यागी। ५. भस्मसहित अग्निकण। ६. अच्छिन्नमूल अग्निशिखा। ७. अर्द्धदग्ध काष्ठ।

सूक्ष्मपुलाक। वकुश पांच·······—आभोगवकुश, अनाभोग०, संवृत०, असंवृत०, पांचवां यथासूक्ष्मवकुश। कुशील पांच·······—ज्ञानकुशील, दर्शन०, चरित्र०, लिङ्ग०, पांचवां यथासूक्ष्मकुशील। निर्ग्रन्थ पांच·······—प्रथमसमय निर्ग्रन्थ, अप्रथम०, चरमसमय०, अचरम०, पाँचवां यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ। स्नात पांच···—अच्छवि, अशवल, अकर्मांश, संशुद्धज्ञानदर्शनधर, अर्हन् जिन केवली अपरिस्रावी ॥५३३॥

साधु साध्वियोंको पांच प्रकारके वस्त्र धारण करने व आसेवन करने कल्पते हैं०—ऊनी, अलसीका, सनसे बना हुआ, सूती, तिरीट नामक वृक्षकी छालका बना हुआ। साधु···पांच···रजोहरण···—ऊनी, औष्ट्रि, सनका, वल्वज तृणका, पांचवां मूंजका ॥५३४॥

धर्माचरण करने वाले को पांच नेश्रायस्थान* कहे गए हैं०—षट्काय, गण, राजा, गृहस्थ, शरीर। निधि पांच कही गई हैं०—पुत्रनिधि, मित्र०, शिल्प०, धन० और धान्य०। शौच× पांच प्रकारका कहा गया है०—पृथिवी शौच, अप्०, तेजःशौच, मन्त्र० और ब्रह्म०। पांच स्थानोंको छद्मस्थ सर्व भावसे नहीं जानता देखता०—धर्मास्तिकायको, अधर्मा०, आकाशा०, अशरीरप्रतिबद्ध जीव और परमाणुपुद्गलको। इन्हींको उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली सर्वभावसे जानते देखते हैं धर्मा० यावत् परमाणु०। अधोलोकमें सातवीं नरकमें पांच बहुत बड़े महानरक कहे······—काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान। ऊर्ध्वलोकमें पांच अतिविशाल अनुत्तर महाविमान······—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध ॥५३५॥

पुरुषजात पांच कहे गए हैं०—ह्रीसत्व१, ह्रीमनःसत्व२, चलसत्व, स्थिर-सत्व और उदयनसत्व३। मत्स्य पांच प्रकारके कहे गए हैं०—अनुस्रोतचारी४, प्रतिस्रोतचारी५, अन्त०६, मध्य० और सर्व०।

इसी प्रकार पाँच प्रकारके भिक्षु···—अनुस्रोत०७ यावत् सर्वचारी। वनी-पक८ पाँच···—अतिथिवनीपक, कृपण०९, ब्राह्मण०, श्व० और श्रमण०। पांच स्थानोंसे अचेलक प्रशस्त होता है०—अल्पप्रतिलेखन, द्रव्य एवं भावसे लघुता

---

*संयमका उपकारक। × शुद्धि। १. लज्जावश स्थिर रहने वाला। २. लज्जावश केवल मनसे स्थिर। ३. प्रवर्द्धमान सत्त्व वाला। ४. प्रवाहके अनुकूल चलने वाला। ५. प्रवाहके प्रतिकूल ···। ६. पार्श्वमें चलने वाला। ७. जाते समय भिक्षा लेने वाला। प्रति०—लौटता हुआ भिक्षा लेने वाला। ८. याचक। ९. अपनी दरिद्रता प्रकट करते हुए दान लेने वाला।

विश्वासोत्पादक वेश, अनुज्ञात तप, विपुल इन्द्रियनिग्रह। पांच प्रकारके उत्कट[१] कहे गए हैं०—दण्डोत्कट, राज्योत्कट, स्तैन्योत्कट[२], देशोत्कट और सर्वोत्कट। समितियाँ पांच……—ईर्यासमिति, भाषा० यावत् परिष्ठापनिकासमिति। ॥५३६॥

पांच प्रकारके संसारसमापन्नक[३] जीव कहे गए हैं०—एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय। एकेन्द्रिय पंचगतिक पंचागतिक कहे गए हैं०—एकेन्द्रिय एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता हुआ एकेन्द्रियसे यावत् पंचेन्द्रियसे आकर उत्पन्न हो सकता है। वही एकेन्द्रिय एकेन्द्रियत्वको छोड़ता हुआ एकेन्द्रिय यावत् पञ्चेन्द्रिय में उत्पन्न हो सकता है। द्वीन्द्रिय पंचगतिक पंचागतिक इसी प्रकार, इस तरह यावत् पंचेन्द्रिय पंचगतिक पंचागतिक…यावत् उत्पन्न हो सकता है ॥५३७॥

समस्त जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं०—क्रोधकषायी यावत् लोभ०, अकषायी। अथवा समस्त जीव पांच……—नारकी यावत् देव, सिद्ध। हे भगवन्! मटर, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, बाल, कुलथी, राजमाष, चौला, अरहर और काला चना; कोष्ठागार में भरकर रक्खे हुए इन धान्योंकी जैसे शालिका कहा यावत् कितने समय तक उत्पादनशक्ति रहती है? हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पांच वर्ष, उसके बाद उत्पादनशक्ति म्लान हो जाती है, यावत् उसके बाद प्ररोहणशक्ति का विनाश कहा गया है ॥५३८॥

संवत्सर पांच……—नक्षत्रसंवत्सर, युग०, प्रमाण०, लक्षण० और शनैश्चर०। युगसंवत्सर पांच…—चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र और अभिवर्द्धित। प्रमाण संवत्सर पाँच…—नक्षत्र, चन्द्र, ऋतु, आदित्य और अभिवर्द्धित। लक्षणसंवत्सर पाँच…—कृत्तिकादि नक्षत्र समतासे कार्तिकी पौर्णमासी आदि तिथिके साथ जिसमें सम्बन्ध करते हैं, जिसमें छहों ऋतुएं समान रूपसे परिणमती हैं, जिसमें न अधिक सर्दी होती है न गर्मी, जिसमें पानी बहुत होता है वह नक्षत्र संवत्सर कहलाता है। जिसमें चन्द्रमा सभी पौर्णमासियों से योग करता है, जिसमें विषम चाल वाले नक्षत्र होते हैं, जिसमें अत्युष्ण अथवा अतिशीत होता है, तथा जो बहुत जल वाला होता है, वह चन्द्रसंवत्सर कहा गया है। जिसमें वृक्ष विषमताको प्राप्त होते हैं, अकालमें भी फूल फल देते हैं, जिसमें वृष्टि अच्छी तरह नहीं होती, उसे कार्मण (ऋतु) संवत्सर कहते हैं। जिसमें सूर्य पृथिवी, उदक, फूल, फलोंको रस-स्निग्धता देता है, थोड़ी वर्षा से भी जिसमें अन्न अच्छा उत्पन्न होता है, उसे आदित्य……। जिसमें सूर्यके तेजसे तप्त काल-क्षण, लव, दिवस, ऋतु परिणमित होती है, वायुसे उड़ाई गई धूल स्थलोंको पूरित कर देती है, उसे अभिवर्द्धित……॥५३९॥

---

१. प्रबल, 'उत्कल'=प्रवृद्ध। २. चोरी। ३. संसारी।

जीवका निर्याणमार्ग१ पाँच प्रकार का कहा गया है०—पैरोंसे, जांघोंसे, छातीसे, शिरसे, सारे अंगोंसे। पैरोंसे निकलने वाला जीव नरकगामी होता है, जंघाओंसे ······तिर्यञ्चगामी···। छाती से···मनुजगामी···। शिर से·· देवगामी······। सारे अंगोंसे······सिद्धपदगामी ······। छेदन२ पांच प्रकार का कहा गया है० —उत्पादच्छेदन, व्ययच्छेदन, बन्धच्छेदन, प्रदेशच्छेदन और द्विधाकारकच्छेदन३। आनन्तर्य४ पांच······—उत्पाद आनन्तर्य, व्यय०, प्रदेशा०, समया०, सामान्यानन्तर्य। अनन्तक पाँच······—नामानन्तक, स्थापना०, द्रव्या०, गणना० और प्रदेशानन्तक। अथवा अनन्तक पांच··· — एकतोऽनन्तक, उभयतोऽनन्तक, देशविस्तारानन्तक, सर्वविस्तारानन्तक, शाश्वतानन्तक ॥५४०॥

ज्ञान पांच···—मतिज्ञान, श्रुत०, अवधि०, मनःपर्यय० और केवलज्ञान। ज्ञानावरणीय कर्म पांच···—मतिज्ञानावरणीय यावत् केवल०। स्वाध्याय पाँच ···—वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा। प्रत्याख्यान पांच ···—श्रद्धानशुद्ध, विनय०, अनुभाषणा०, अनुपालना० और भावशुद्ध। प्रतिक्रमण पांच···—आस्रवद्वारप्रतिक्रमण५, मिथ्यात्वप्रतिक्रमण, कषायप्रतिक्रमण, योग०६ और भाव०७। पांच कारणोंसे श्रुतकी वाचना देनी चाहिए०—शिष्यजन श्रुतसंग्रह करें इसलिए, धर्म पुष्टिके लिए, निर्जराके लिए, "मुझे सूत्रोंका विशेष ज्ञान होगा," सूत्र परम्परा विच्छिन्न न हो इसलिए। पांच कारणोंसे सूत्र सीखे०—ज्ञानके लिए, दर्शन०, चरित्र०, मिथ्यात्व—कदाग्रह दूर करनेके लिए, "यथावस्थित८ भावोंको जान जाऊंगा" इसलिए। सौधर्म, ईशान कल्पोंके विमान पाँच वर्णों वाले कहे गये हैं०—काले यावत् सफेद। सौधर्म······पांच सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पोंके देवोंके भवधारणीय शरीर उत्कृष्ट पांच रत्नि९ ऊंचे······। नैरयिक जीवों ने पांच वर्ण, पांच रस वाले पुद्गलोंका बन्ध किया, करते हैं, और करेंगे०—काले यावत् श्वेत, तीखे यावत् मीठे, इसी प्रकार यावत् वैमानिक ॥५४१॥

जम्बूद्वीपमें मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें गंगा महानदी में पांच महानदियां मिलती हैं०—यमुना, सरयू, आदी, कोशी और मही। जंबू०···दक्षिण दिशामें सिन्धु महानदीमें पांच···—शतद्रू, विपाशा, वितस्ता, ऐरावती और चन्द्रभागा। जंबू०···उत्तरमें रक्ता म०······—कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, महातीरा। जंबू···उत्तरमें रक्तावती म०······—इन्द्रा, इन्द्रसेना, सुषेणा, वारिषेणा और महाभोगा ॥५४२॥

---

१. बाहर निकलने का रास्ता। २. विभजन अथवा विरह। ३. दो भाग करना, 'द्विधारच्छेदन' पाठान्तर। ४. निरन्तर होना। ५. पीछे हटना। ६. अशुभ योग। ७. अशुभ०। ८. यथार्थ। ९. हाथ।

पांच तीर्थंकरों ने कुमारकाल* में ही दीक्षाग्रहण की०—वासुपूज्य, मल्लि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वीरप्रभु। चमरचंचा राजधानी में पांच सभाएं कही गई हैं०—सुधर्मा सभा, उपपात०, अभिषेक०, अलङ्कारिक०, व्यवसाय०। प्रत्येक इन्द्रस्थानमें पांच पांच सभाएं···—सुधर्मा० यावत् व्यवसाय०। पाँच नक्षत्र पांच ताराओं वाले कहे गए हैं०—धनिष्ठा, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त और विशाखा। जीवों ने पांच स्थान निर्वतित पुद्गलोंका पापकर्मरूपसे चयन किया, करते हैं और करेंगे०—एकेन्द्रियनिर्वतित यावत् पंचेन्द्रिय०। इसी तरह उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेद तथा निर्जराके सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। पाँच प्रदेशों वाले पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं। पांच प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त यावत् पाँच गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त······॥५४३॥

॥ पांचवें स्थानका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

॥ पञ्चम स्थानक समाप्त ॥

छठा स्थानक

छः गुणोंसे युक्त साधु गण धारण करने योग्य होता है०—श्रद्धि१ पुरुषजात, सत्य०, मेधावी०, वहुश्रुत०, शक्तिमत्पु० और अल्पाधिकरण०२। छः कारणोंसे साधु साध्वीको सहारा देता हुआ जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं करता०—क्षिप्तचित्त यावत् उपसर्गप्राप्त, कलह करती हुई३ ॥५४४॥

साधर्मिकको कालगत जानकर ६ स्थानोंका आचरण करते हुए साधु-साध्वी जिनाज्ञा···—अन्दरसे वाहर निकालते हुए, वाह्यप्रदेशसे वहुत दूर ले जाते हुए, विलाप आदि न करके उपेक्षाभाव धारण करते हुए, रात भर शवके पास बैठते हुए, मृत व्यक्तिके कुटुम्वियोंको सूचना देते हुए, मौन भावसे परिष्ठापनामें साथ जाते हुए ॥५४५॥

६ स्थानोंको छद्मस्थ सर्वभावसे नहीं जानता देखता०—धर्मास्तिकायको यावत् परमाणुपुद्गलको, शव्दको। इन्हें उत्पन्नज्ञानदर्शन अर्हन्त जिन यावत् सर्वभावसे जानते देखते हैं—······॥५४६॥

छह स्थानोंको करनेकी समस्त जीवोंमें ऋद्धि, द्युति-माहात्म्य, यश, वल-वीर्य-पौरुष-पराक्रम (शक्ति) नहीं है०—जीवको अजीव करने की, अजीवको जीव करने की, एक समयमें दो भाषाएं वोलने की, अपनी इच्छानुसार कृतकर्म

---

*विना राज्याभिषेक हुए। १. श्रद्धाशील। २. कलह न करने वाला।
३. ···को रोकता हुआ।

का वेदन करने या न करने की, परमाणु पुद्गलका छेदन भेदन करने या अग्नि द्वारा जलाने की, लोकान्तसे बाहर जाने की ॥५४७॥

जीवनिकाय ६ कहे गए हैं०—पृथिवीकायिक यावत् त्रसकायिक ॥५४८॥ तारारूप ग्रह ६······—शुक्र, बुध, बृहस्पति, मंगल, शनैश्चर एवं केतु ॥५४९॥ संसारी जीव छह प्रकारके कहे गए हैं०—पृथिवीकायिक यावत् त्रस० ॥५५०॥ पृथिवीकायिक षट्गतिक और षट्आगतिक कहे······—पृथिवीकायिक पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होता हुआ पृथिवीकायिकों यावत् त्रस० से आकर उत्पन्न हो सकता है। वही पृथिवीकायिकत्व छोड़ता हुआ पृथिवीकायिक यावत् त्रसकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकता है। अप्कायिक भी षट्गतिक षट्आगतिक इसी प्रकार यावत् त्रसकायिक ॥५५१॥

समस्त जीव ६ प्रकारके कहे गए हैं०—मतिज्ञानी यावत् केवलज्ञानी, अज्ञानी ॥५५२॥ अथवा समस्त······—एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय, अनीन्द्रिय ॥५५३॥ अथवा······—औदारिकशरीरी, वैक्रिय०, आहारक०, तैजस०, कार्मण०, अशरीरी ॥५५४॥ तृणवनस्पतिकायिक ६ प्रकारके कहे गए हैं०—अग्रबीज यावत् बीजरुह, संमूर्च्छिम ॥५५५॥

६ स्थान सब जीवोंको सुलभ नहीं होते०—मनुष्य भव, आर्य क्षेत्रमें जन्म, सुकुलोत्पत्ति, केवलीप्रज्ञप्तधर्मश्रवणता, श्रुतका श्रद्धान, श्रद्धा-प्रतीति-रुचि किए हुए का कायासे भली भाँति आचरण ॥५५६॥ इन्द्रियार्थ ६ कहे गए हैं०—श्रोत्रेन्द्रियार्थ यावत् स्पर्शेन्द्रियार्थ, नोइन्द्रियार्थ* ॥५५७॥

संवर छह प्रकारका कहा गया है०—श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय०, नोइन्द्रिय० ॥५५८॥ असंवर ६···—श्रोत्रेन्द्रियअसंवर यावत् स्पर्श०, नोइन्द्रिय० ॥५५९॥ सात१ छः प्रकारका कहा गया है०—श्रोत्रेन्द्रियसात यावत् नोइन्द्रिय० ॥५६०॥ असात२ छ······—श्रोत्रेन्द्रियअसात यावत् नोइन्द्रिय० ॥५६१॥

प्रायश्चित्त ६······—आलोचनार्ह३, प्रतिक्रमणार्ह, तदुभयार्ह, विवेकार्ह४, व्युत्सर्गार्ह और तपोऽर्ह ॥५६२॥ मनुष्य ६ प्रकारके कहे गए हैं०—जम्बूद्वीपग, धातकीखण्डद्वीपपूर्वार्द्धग, धा० पश्चिमार्द्धग, पुष्करवरद्वीपपूर्वार्द्धग, पु० पश्चिमार्द्धग एवं अन्तरद्वीपग। अथवा मनुष्य ६······—संमूर्च्छिम मनुष्य-कर्मभूमिग, अकर्मभूमिग, अन्तरद्वीपग, गर्भव्युत्क्रान्तिक—कर्मभूमिग ३ ॥५६३॥

ऋद्धिधारी मनुष्य ६ प्रकारके होते हैं०—अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण और विद्याधर ॥५६४॥ अनृद्धिमान् प्राणी ६······—हैमवर्तक, हैरण्य०, हरिवर्षग, रम्यक०, कुरुवासी और अन्तरद्वीपग ॥५६५॥ अवसर्पिणी ६

---

* 'मन'। १. सुख। २. दुःख। ३. आलोचनाके योग्य। ४. सदोष आहार परठना।

प्रकारकी कही गई है०—दुःषमदुषमा यावत् सुसमसुषमा। उत्सर्पिणी ६···—सुषमसुषमा यावत् दुःषमदुषमा ॥५६६॥

जंबूद्वीपके भरत और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीके सुषमसुषमा नामक आरेमें मनुष्य ६ हजार धनुष ऊंचे और ६ अर्द्ध पल्योपमकी उत्कृष्ट आयु वाले थे ॥५६७॥ जंबू ··क्षेत्रमें इस अवसर्पिणीके सुषमसुषमा···इसी प्रकार ॥५६८॥

जंबू ·····आगामी उत्सर्पिणी·····यावत् ६ अर्द्धपल्योपम·····आयु वाले होंगे ॥५६९॥ जंबूद्वीपमें देवकुरु और उत्तरकुरुमें मनुष्य ६ हजार धनुष ऊंचे और ६ अर्द्ध·····वाले कहे गए हैं ॥५७०॥ इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीपके पूर्वार्धमें चार आलापक यावत् पुष्करवरद्वीपपश्चिमार्द्धमें चार आलापक कहने चाहिएं ॥५७१॥ संहनन ६ प्रकारका कहा गया है०—वज्रऋषभनाराचसंहनन, ऋषभनाराच०, नाराच०, अर्द्धनाराच०, कीलिका०, सेवार्त्त० ॥५७२॥

संस्थान ६······—समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज, वामन और हुंडक ॥५७३॥ अनात्मभाव वाले जीवके लिए ६ स्थान अहित, अशुभ यावत् अनानुगामिकताके लिए होते हैं०—पर्याय, परिवार, श्रुत, तप, लाभ और पूजा-सत्कार ॥५७४॥ आत्मवान् जीवके लिए ६स्थान हित यावत् आनुगामिकता ···—पर्याय यावत् पूजा-सत्कार ॥५७५॥ आर्य मनुष्य ६ प्रकारके कहे गए हैं०—अम्बष्ठ, कलन्द, वैदेह,वैदिक, हारिक एवं चुचुना। ये ६इभ्यजातियां हैं ॥५७६॥

कुलार्य मनुष्य ६······—उग्र, भोग, राजन्य, ऐक्ष्वाक, ज्ञात और कौरव्य ॥५७७॥ लोकस्थिति ६ प्रकारकी कही गई है०—आकाशप्रतिष्ठित वात, वात-प्रतिष्ठित उदधि, उदधिप्रतिष्ठित पृथिवी, पृथिवीप्रतिष्ठित त्रस स्थावर जीव, जीव० अजीव और कर्म प्र० जीव ॥५७८॥ दिशाएं ६ कही गई हैं०—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे ॥५७९॥

६ दिशाओंसे जीवोंकी गति होती है०—पूर्व यावत् अधोदिशासे। इसी प्रकार आगति, उत्पत्ति, आहार, वृद्धि, हानि, विकुर्वणा, गतिपर्याय, समुद्घात, कालसंयोग१, दर्शनाभिगम२, ज्ञानाभिगम, जीवाभिगम, अजीवाभिगम। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की एवं मनुष्योंकी गत्यादिक जानना ॥५८०॥

६ कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ आहारको ग्रहण करता हुआ जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं करता०—क्षुधावेदना को शांत करने के लिए, सेवा के लिए, ईर्यासमितिका पालन करने के लिए, संयम का···, प्राणोंकी रक्षा के लिए, छठा धर्मचिन्तन के लिए। ६ कारणों आहार का परित्याग करता हुआ···—ज्वरादि रोगसे ग्रस्त होने पर, उपसर्ग आने पर, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, प्राण के हेतु, तपश्चरण निमित्त, अंतिम संलेखना करते हुए ॥५८१॥

---

१. सूर्यादिके प्रकाश का सम्बन्ध। २. 'प्राप्ति'।

६ कारणोंसे जीव उन्मादको प्राप्त होता है०—अर्हन्तों की निन्दा करनेसे, अर्हत्प्ररूपित धर्मकी निन्दा करनेसे, आचार्योपाध्याय की···, चतुर्विध संघ की····, यक्षावेशसे, मोहनीयकर्म के उदयसे ।।५८२।।

प्रमाद ६ प्रकार का कहा गया है०—मद (मान) प्रमाद, निद्रा०, विपय०, कषाय०, द्यूत० और प्रतिलेखना० ।।५८३।।

प्रमाद-प्रतिलेखना ६ प्रकार की गई है०—आरभटा, सम्मर्दा, मोशली, प्रस्फोटना, व्याक्षिप्ता और वेदिका। अप्रमादप्रतिलेखना····—अर्नतित, अवलित, अननुवन्धि, अमोशली, षट्पुरिमा नवखोट और प्राणी प्राण विशोधन ।।५८४।।

लेश्याएँ ६ कही गई हैं०—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में ६ लेश्याएँ······। इसी प्रकार मनुष्य एवं देवोंमें भी ।।५८५।।

देवेन्द्र देवराज शक्र के सोम महाराजकी ६ पट्टदेवियां कही गई हैं ।।५८६।।

देवेन्द्र······यम महाराजकी ६········· ।।५८७।। देवेन्द्र-देवराज ईशानकी मध्यम परिषदामें देवों की ६ पल्योपमकी स्थिति कही गई है ।।५८८।।

६ दिक्कुमारी महत्तरिकाएँ कही गई हैं०—रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकान्ता और रूपप्रभा। छह विद्युत्कुमारी मह०···—आला, शक्रा, शतेरा, सौदामनी, इन्द्रा और घनविद्युत् ।।५८९।।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की ६ अग्रमहिषियां कही गई हैं०—आला···६। नाग० भूतानन्द की ६ अग्र०··· —रूपा···६। सभी दक्षिणाधिपतियोंकी यावत् घोष की धरण के समान। सभी उत्तराधिपतियों की यावत् महाघोष की भूतानन्द के समान ।।५९०।।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के छः हजार सामानिक देव कहे गए हैं। इसी प्रकार भूतानन्दके यावत् महाघोष के ।।५९१।।

अवग्रहमति ६ प्रकारकी कही गई है०—शीघ्र जानना, बहुत पदार्थों को जानना, बहुत प्रकार से जानना, निश्चित रूप से अवग्रह करना, बिना हेतु के जानना, असंदिग्ध रूपसे जानना ।।५९२।। ईहामति ६···—क्षिप्रग्राहिणी ईहा, बहु० यावत् असंदिग्ध० ।।५९३।।

अवायमति ६······—क्षिप्रग्राही अवाय यावत् असंदिग्ध०। धारणा छह···—बहुग्राहिणी धारणा१, बहुविध०, अतीत०, दुर्द्धर०, अनिश्रित०, असंदिग्ध० ।।५९४।।

१.'धारिणी'।

वाह्य तप ६ प्रकार का कहा गया है०—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता ॥५९५॥ आभ्यंतर तप ६……—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ॥५९६॥

विवाद ६ प्रकार…—कालक्षेप करके पुनः विवाद करना, अवसर पाकर स्वयं जाकर विवाद करना, अनुकूल करके विवाद करना, प्रतिकूल…, मध्यस्थ की सेवा करके…, मध्यस्थ को अपने पक्ष में करके…॥५९७॥

क्षुद्र प्राणी ६ प्रकार के कहे गए हैं०—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संमूर्च्छिम तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय, तेजस्कायिक और वायुकायिक ॥५९८॥

गोचरी ६ प्रकार की कही गई है०—पेटा१, अर्धपेटा, गोमूत्रिका, पतङ्ग-वीथिका२, शम्बूकावर्ता३, जाकर लौटना ॥५९९॥

जंबूद्वीपके मेरुपर्वत के दक्षिणमें इस रत्नप्रभा नामक पृथिवी (नरक) में ६ अति निकृष्ट महानरक कहे गए हैं०—लोल, लोलुप, उदग्ध, निर्दग्ध, जरक और प्रजरक ॥६००॥

चौथी पङ्कप्रभा पृथिवी में ६ अपक्रान्त नरकावास कहे…—आर, वार, मार, रोर, रोरुक और खाडखड ॥६०१॥ ब्रह्मलोक कल्प में ६ विमान प्रस्तट४ कहे०—अरज, विरज, नीरज, निर्मल, वितिमिर और विशुद्ध ॥६०२॥

ज्योतिपेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्रके ये ६ नक्षत्र पूर्वसेव्य हैं, समक्षेत्र तथा तीस मुहूर्त्त वाले हैं० – पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल और पूर्वाषाढा ॥६०३॥

ज्योतिषेन्द्र…ये ६ नक्षत्र रात्रिसेव्य हैं, अपार्ध ५ क्षेत्र एवं १५ मुहूर्त्त वाले हैं०—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा ॥६०४॥

ज्यो०…६ नक्षत्र उभयसेव्य६, डेढ़ क्षेत्र वाले, और ४५ मुहूर्त्त वाले हैं०—रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ॥६०५॥ अभिचंद्र कुलकर ६ सौ धनुष ऊँचे थे ॥६०६॥ चातुरन्त चक्रवर्ती भरत ६ लाख पूर्व तक महाराजा रहे ॥६०७॥

---

१. पेटी की तरह मोहल्ले के चार भाग करके भिक्षा के लिए भ्रमण करना। २. बीच २ में घरों को छोड़कर भिक्षा……। ३. 'शंख'। ४. बीच का खाली भाग। ५. समक्षेत्र की अपेक्षा आधा। ६. पूर्व और ऊपर दोनों ओर से।

पुरुषश्रेष्ठ पार्श्वनाथ अर्हन्त की देव-मनुज-असुर-परिषदामें अपराजित ६०० वादियोंकी सम्पत् थी ॥६०८॥ वासुपूज्य भगवान् ६ सौ पुरुषोंके साथ मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए ॥६०९॥ चन्द्रप्रभ अरिहन्त ६ मास तक छद्मस्थ रहे ॥६१०॥ तेइंद्रिय जीवोंका समारंभ न करने से ६ प्रकारका संयम होता है ०— घ्राणमय सुखसे वियुक्त नहीं करता, घ्राणमय दुखसे युक्त नहीं करता, जिह्वा-मय सुखसे……, इसी प्रकार स्पर्शमयसे भी ॥६११॥

तेइन्द्रिय……समारम्भ करने से ६ प्रकारका असंयम……—घ्राणमय…… वियुक्त करता है, घ्रा० दुखसे युक्त करता है यावत् स्पर्शमय दुःखसे युक्त करता है ॥६१२॥

जम्बूद्वीपमें ६ अकर्मभूमियां कही गई हैं ०—हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु और उत्तरकुरु ॥६१३॥ जंबूद्वीपमें ६ वर्ष कहे गए हैं ०— भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यकवर्ष ॥६१४॥

जंबू० ६ वर्षधर पर्वत……—क्षुद्र हिमवान्, महा०, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी ॥६१५॥ जंबूद्वीपके मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें ६ कूट…… —क्षुद्रहिमवत्कूट, वैश्रवण०, महाहिमवत्कूट, वैडूर्य०, निषध०, रुचक० ॥६१६॥

जंबू० के मन्दर……उत्तर……—नीलवत्कूट, उपदर्शन०, रुक्मि०, मणिकाञ्चन०, शिखरि०, तिगिच्छि० ॥६१७॥ जंबूद्वीपमें ६ महाद्रह……— पद्महृद, महापद्म०, तिगिच्छि०, केशरि०, महापुण्डरीक०, पुण्डरीक० ॥६१८॥

उनमें ६ देवियां महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपमस्थिति वाली रहती हैं०—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ॥६१९॥

जंबू० मन्दर० की दक्षिण दिशामें ६ महानदियां कही गई हैं०—गङ्गा, सिन्धु, रोहिता, रोहितांशा, हरि और हरिकान्ता ॥६२०॥ जंबू० मंदर……… उत्तर…… —नरकान्ता, नारीकान्ता, सुवर्णकूला, रुक्मकूला, रक्ता, रक्तवती ॥६२१॥

जंबू० मंदर…… पूर्व दिशामें सीता महानदीके दोनों तटों पर ६ अन्तर-नदियाँ……—ग्रहावती, द्रहावती, पङ्कवती, तप्तजला, मत्त०, उन्मत्त० ॥६२२॥

जंबू० मंदर……पश्चिम……शीतोदा महानदी……—क्षीरोदा, सिंहश्रोता, अन्तर्वाहिनी, ऊर्मिमालिनी, फेन०, गम्भीर० ॥६२३॥

धातकीखण्डके पूर्वार्धमें ६ अकर्मभूमियां कही गई हैं०—हेमवत…… जैसे जंबूद्वीपमें कहा उसी प्रकार नदियां यावत् अन्तरनदियाँ यावत् पुष्करवरद्वीप-पश्चिमार्द्धमें कहना चाहिए ॥६२४॥

वाह्य तप ६ प्रकार का कहा गया है०—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता ॥५९५॥ आभ्यंतर तप ६……—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ॥५९६॥

विवाद ६ प्रकार…—कालक्षेप करके पुनः विवाद करना, अवसर पाकर स्वयं जाकर विवाद करना, अनुकूल करके विवाद करना, प्रतिकूल…, मध्यस्थ की सेवा करके…, मध्यस्थ को अपने पक्ष में करके…॥५९७॥

क्षुद्र प्राणी ६ प्रकार के कहे गए हैं०—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संमूर्च्छिम तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय, तेजस्कायिक और वायुकायिक ॥५९८॥

गोचरी ६ प्रकार की कही गई है०—पेटा१, अर्धपेटा, गोमूत्रिका, पतङ्ग-वीथिका२, शम्बूकावर्ता३, जाकर लौटना ॥५९९॥

जंबूद्वीपके मेरुपर्वत के दक्षिणमें इस रत्नप्रभा नामक पृथिवी (नरक) में ६ अति निकृष्ट महानरक कहे गए हैं०—लोल, लोलुप, उदग्ध, निर्दग्ध, जरक और प्रजरक ॥६००॥

चौथी पङ्कप्रभा पृथिवी में ६ अपक्रान्त नरकावास कहे…—आर, वार, मार, रोर, रोरुक और खाडखड ॥६०१॥ ब्रह्मलोक कल्प में ६ विमान प्रस्तट४ कहे०—अरज, विरज, नीरज, निर्मल, वितिमिर और विशुद्ध ॥६०२॥

ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्रके ये ६ नक्षत्र पूर्वसेव्य हैं, समक्षेत्र तथा तीस मुहूर्त्त वाले हैं० – पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल और पूर्वाषाढा ॥६०३॥

ज्योतिषेन्द्र…ये ६ नक्षत्र रात्रिसेव्य हैं, अपार्ध ५ क्षेत्र एवं १५ मुहूर्त्त वाले हैं०—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा ॥६०४॥

ज्यो०…६ नक्षत्र उभयसेव्य६, डेढ़ क्षेत्र वाले, और ४५ मुहूर्त्त वाले हैं०—रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ॥६०५॥ अभिचंद्र कुलकर ६ सौ धनुष ऊँचे थे ॥६०६॥ चातुरन्त चक्रवर्ती भरत ६ लाख पूर्व तक महाराजा रहे ॥६०७॥

---

१. पेटी की तरह मोहल्ले के चार भाग करके भिक्षा के लिए भ्रमण करना। २. वीच २ में घरों को छोड़कर भिक्षा……। ३. 'शंख'। ४. वीच का खाली भाग। ५. समक्षेत्र की अपेक्षा आधा। ६. पूर्व और ऊपर दोनों ओर से।

पुरुषश्रेष्ठ पार्श्वनाथ अर्हन्त की देव-मनुज-असुर-परिषदामें अपराजित ६०० वादियोंकी सम्पत् थी ।।६०८।। वासुपूज्य भगवान् ६ सौ पुरुषोंके साथ मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए ।।६०९।। चन्द्रप्रभ अरिहन्त ६ मास तक छद्मस्थ रहे ।।६१०।। तेइंद्रिय जीवोंका समारंभ न करने से ६ प्रकारका संयम होता है ०—घ्राणमय सुखसे वियुक्त नहीं करता, घ्राणमय दुखसे युक्त नहीं करता, जिह्वा-मय सुखसे······, इसी प्रकार स्पर्शमयसे भी ।।६११।।

तेइन्द्रिय······समारम्भ करने से ६ प्रकारका असंयम·······—घ्राणमय······ वियुक्त करता है, घ्रा० दुखसे युक्त करता है यावत् स्पर्शमय दुःखसे युक्त करता है ।।६१२।।

जम्बूद्वीपमें ६ अकर्मभूमियां कही गई हैं ०—हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु और उत्तरकुरु ।।६१३।। जंबूद्वीपमें ६ वर्ष कहे गए हैं ०—भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यकवर्ष ।।६१४।।

जंबू० ६ वर्षधर पर्वत·······—क्षुद्र हिमवान्, महा०, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी ।।६१५।। जंबूद्वीपके मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें ६ कूट····—क्षुद्रहिमवत्कूट, वैश्रवण०, महाहिमवत्कूट, वैडूर्य०, निषध०, रुचक० ।।६१६।।

जंबू० के मन्दर······उत्तर······—नीलवत्कूट, उपदर्शन०, रुक्मि०, मणिकाञ्चन०, शिखरि०, तिगिच्छि० ।।६१७।। जंबूद्वीपमें ६ महाद्रह·······—पद्मह्लद, महापद्म०, तिगिच्छि०, केशरि०, महापुण्डरीक०, पुण्डरीक० ।।६१८।।

उनमें ६ देवियां महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपमस्थिति वाली रहती हैं०—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ।।६१९।।

जंबू० मन्दर० की दक्षिण दिशामें ६ महानदियां कही गई हैं०—गङ्गा, सिन्धु, रोहिता, रोहितांशा, हरि और हरिकान्ता ।।६२०।। जंबू० मंदर········· उत्तर······ —नरकान्ता, नारीकान्ता, सुवर्णकूला, रुक्मकूला, रक्ता, रक्तवती ।।६२१।।

जंबू० मंदर····· पूर्व दिशामें सीता महानदीके दोनों तटों पर ६ अन्तर-नदियाँ······—ग्रहावती, द्रहावती, पङ्कवती, तप्तजला, मत्त०, उन्मत्त० ।।६२२।।

जंबू० मंदर······पश्चिम······शीतोदा महानदी······—क्षीरोदा, सिंहश्रोता, अन्तर्वाहिनी, ऊर्मिमालिनी, फेन०, गम्भीर० ।।६२३।।

धातकीखण्डके पूर्वार्धमें ६ अकर्मभूमियां कही गई हैं०—हेमवत······जैसे जंबूद्वीपमें कहा उसी प्रकार नदियां यावत् अन्तरनदियाँ यावत् पुष्करवरद्वीप-पश्चिमार्द्धमें कहना चाहिए ।।६२४।।

६ ऋतुएँ कही गई हैं०—प्रावृट्१, वर्षारात्र, शरत्, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म ॥६२५॥ ६ अवमरात्र२ कहे गए हैं०—तृतीय३पर्व में, सातवें४······, ११वें५······, १५वें६······, १९ वें७······, २३ वें८······॥६२६॥ ६अतिरात्र९ ·········—आषाढ १० शुक्लपक्ष, भाद्रपद०, कार्तिक०, पौष०, फाल्गुन०, वैशाख० ॥६२७॥ मतिज्ञानका अर्थावग्रह ६ प्रकारका कहा गया है०—श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह यावत् नोइन्द्रिय० ॥६२८॥ अवधिज्ञान ६ प्रकारका कहा गया है०—आनुगामिक, अनानुगामिक, वर्द्धमानक, हीयमानक, प्रतिपाति, अप्रतिपाति ॥६२९॥

साधु साध्वियोंको ये ६ वचन बोलने नहीं कल्पते०—मृषावचन११, हीलित०, अपमानजनक०, कठोर०, गृहस्थ१२वचन, शान्त हुआ कलह जिससे पुनः भड़क उठे ऐसे वचन ॥६३०॥ कल्प1के ६ प्रस्तार कहे गए हैं०—प्राणातिपात-विरमणव्रतभंग का झूठा आरोप लगाने पर, मृषावाद·········, अदत्तादान ···, ब्रह्मचर्यव्रतके भंग होनेका झूठा·······, किसी साधु पर असत्यरूप से नपुंसक होनेका झूठा·······, किसी······दास होने······। इस तरह इन साध्वाचारके षट् प्रस्तारोंको2 रत्नाधिकमें दोषारोपण करने वाला साधु दोष प्रमाणित करनेमें असफल होने पर स्वयं प्रायश्चित्त-प्रस्तारका पात्र होता है ॥६३१॥

कल्पके ६ परिमन्थु3 कहे गए हैं०—कौकुचिक4 संयमका परिमन्थु, वाचाल सत्यवचनका विनाशक, चक्षुलोलुप ऐर्यापथिकी का०, तितिणिक5 एषणा-गोचरी का०, इच्छालोभिक मुक्तिमार्गका०, लोभवश निदान करने वाला मोक्षमार्ग का०। सर्वत्र भगवानने अनिदानताकी प्रशंसा की है ॥६३२॥ कल्पस्थिति ६प्रकारकी कही गई है०—सामायिक कल्पस्थिति, छेदोपस्थापनीय०, निर्विशमान०, निर्विष्ट०, जिनकल्पस्थिति, स्थविर० ॥६३३॥

---

१. आसाढ़ और श्रावण में। इसी प्रकार प्रत्येक ऋतु २ मास की। २. १४ दिन का पक्ष। ३. आषाढ़ कृष्ण पक्ष में। ४. भाद्रपद······। ५. कार्तिक ······।६. पौष·········।७. फाल्गुन······। ८. वैशाख·········। ९. दिनवृद्धि। १०. चौथा, आठवां, १२वां, १६वां, २०वां, २४वां पर्व। ११. जन्म कर्मोद्घाटक—हे दासीपुत्र इत्यादि। १२. हे पुत्र! मामा! इत्यादि। 1. साध्वाचार। 2. मास लघु आदिसे लेकर पाराञ्चित तक के प्रायश्चित रचना विशेषों को। 3. विनाशक। 4. भाण्डकी तरह कुचेष्टा करने वाला। 5. भिक्षादि न मिलने पर चिढ़ने वाला।

श्रमण भगवान महावीर, निर्जल षष्ठभक्त× करके मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए ।।६३४।। श्रमण भगवान महावीरको निर्जल षष्ठ भक्त करने पर अनन्त अनुत्तर यावत् केवलवरज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ ।।६३५।। श्रमण ··· निर्जल षष्ठभक्त से सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए ।।६३६।। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पोंमें विमान ६ सौ योजन ऊँचे कहे गए हैं ।।६३७।।

सनत्कुमार·········देवों के भवधारणीय शरीर उत्कृष्ट से ६ रत्नि ऊँचे ·······।।६३८।। भोजन परिणाम ६ प्रकारका कहा गया है ०—मनोज्ञ, रसिक, प्रीणनीय, बृंहणीय, दीपनीय और दर्पणीय ।।६३९।। ६ प्रकारका विष-परिणाम कहा गया है ०—दष्ट, भुक्त, निपतित, मांसानुसारी, शोणितानुसारी, अस्थिमज्जानुसारी ।।६४०।। प्रष्ट* छ प्रकार का कहा गया है ०—संशयपृष्ट, व्युद्ग्रह०, अनुयोगी, अनुलोम, तथाज्ञान, अतथाज्ञान ।।६४१।। चमरचञ्चा राजधानी उत्कृष्टसे ६ मास तक उपपातरहित कही गई है ।।६४२।। प्रत्येक इन्द्र-स्थान उत्कृष्ट··· ··कहा गया है ।।६४३।। अधःसप्तमी पृथिवी उत्कृष्ट ······ कही गई है ।।६४४।। सिद्धिगति उत्कृष्ट······।।६४५।। आयु—वन्ध छ प्रकारका कहा गया है०—जातिनाम निधत्तायु, गति०, स्थिति०, अवगाहना०, प्रदेश०, अनुभाव० ।।६४६।। नैरयिकोंका आयुवन्ध छ·······—जाति० यावत् अनुभाव, इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक ।।६४७।।

नारकी नियमसे अपनी आयुके ६ मास शेष रहने पर परभवकी आयुका वन्ध करते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार, असंख्यात वर्षकी आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी नियमसे······। असं०·········संज्ञी मनुष्य नियम से······। वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक नारकियोंके समान जानें ।।६४८।। भाव ६ प्रकारके कहे गए हैं०—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक, सन्निपातिक ।।६४९।। प्रतिक्रमण ६ प्रकारका कहा गया है ०—उच्चार१प्रतिक्रमण, प्रस्रवण०, इत्वरिक०२, यावत्कथिक०३, यत्किञ्चित्४ मिथ्या०, स्वापनान्तिक० ।।६५०।। कृत्तिका नक्षत्र ६ तारों वाला कहा गया है ।।६५१।। अश्लेषा ··· ···।।६५२।। जीवोंने ६ स्थान निर्वर्तित पुद्गलोंका पाप-कर्मके रूपमें चयन किया, करते हैं, करेंगे०—पृथिवीकाय-निर्वर्तित यावत् त्रसकाय०। इसी प्रकार उपचय, वन्ध, उदीरणा, वेदना तथा निर्जरा समझें ।।६५३।।

× वेला। * प्रश्न। १. वहिर्भूमि से आकर की जाने वाली ऐर्या-पथिकी। २. दैवसिक—३. महाव्रत भक्तपरिज्ञादि यावज्जीविक। ४. रात्रिक 'मिच्छामि दुक्कडं' देना।

षट्प्रदेशिक पुद्गल[1] अनन्त कहे गए हैं ॥६५४॥ षट्प्रदेशावगाढ पु०……॥६५५॥ ६ समय स्थिति वाले पु०……॥६५६॥ ६ गुण काले यावत् ६ गुण रूक्ष पु०……॥६५७॥

॥ छठा स्थान (अध्ययन) समाप्त ॥

सप्तम स्थानक

गणापक्रमण[2] सात प्रकारका कहा गया है०—"मैं समस्त धर्मका अभिलाषी हूं, हमारे गणमें बहुश्रुतका अभाव है अतः दूसरे गणमें जाना चाहता हूं। कितनीक धर्मसंबंधी बातोंमें रुचि रखता हूं वे यहां नहीं प्राप्त होतीं। कितनीक …… रुचि नहीं रखता वे यहां प्राप्त होती हैं अतः……। मुझे समस्त धर्मो पर सन्देह है, उनका निराकरण …… यहां नहीं हो सकता, अतः …। मुझे कितनीक बातों पर सन्देह है, कितनीक पर नहीं। उनका निराकरण…। सर्वधर्मज्ञान दूसरोंको देना चाहता हूं। यहां ग्रहण करने वाला कोई नहीं, अतः ……। मैं कुछ ज्ञान दूसरोंको……कुछ नहीं। यहां ग्रहण……। भदन्त ! मैं एकलविहारप्रतिमा अङ्गीकार करके विचरना चाहता हूं" ॥६५८॥

विभंगज्ञान ७ प्रकारका कहा गया है०—एकदिशालोकाभिगम, पंचदिशा०, क्रियावरण जीव, मुदग्र जीव, अमुदग्र जीव, रूपी जीव, "सब वस्तुएं जीवस्वरूप हैं" ऐसा। उनमें से यह पहला विभङ्गज्ञान है—जब तथाविध श्रमण अथवा माहणको विभङ्गज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर अथवा ऊर्ध्व दिशाको यावत् सौधर्म कल्पको देखता है, तो वह विचारता है कि मुझे अतिशय ज्ञान एवं दर्शन उत्पन्न हुआ है, लोक एक ही दिशामें है। कितनेक श्रमण अथवा ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—कि पांच दिशाओंमें लोककी उपलब्धि है, जो ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं। यह प्रथम विभङ्गज्ञान है। द्वितीय विभङ्ग ज्ञान—जब …… लोक पांच दिशाओंमें है। कितनेक …… कि लोक एक ही दिशा में है, जो ऐसा………। यह दूसरा विभङ्गज्ञान है। तृतीय विभङ्गज्ञान—जब………तब वह प्राणातिपात करते हुए, झूठ बोलते हुए, चोरी करते हुए, मैथुन सेवन करते हुए, परिग्रह करते हुए, रात्रिभोजन करते हुए जीवोंको देखता है, परन्तु क्रियमाण पापकर्मको नहीं देखता। तो वह विचारता ……… उत्पन्न हुआ है कि जीव क्रियावरण वाला है। कितनेक ……कि जीव क्रियावरण वाला नहीं है, जो ऐसा……। यह तीसरा

१. स्कन्ध। २. गणसे जाना।

विभङ्गज्ञान है। चतुर्थ विभङ्गज्ञान—जब ······ तब वह देवोंको बाह्याभ्यन्तर पुद्‌गलोंको ग्रहण करके, उन्हें स्पर्श-स्पन्दित-विकसित करके कभी एक रूपसे कभी नाना रूपसे विक्रिया करके उत्तरविक्रियामें कुछ काल तक स्थित देखता है, तो वह विचारता ······ कि जीव बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्‌गलोंसे रचित शरीर वाला* है। कितनेक ······ कि जीव अमुदाग्र है जो ऐसा···। यह चौथा विभङ्ग-ज्ञान है। पांचवां विभङ्गज्ञान—जब···तब······पुद्‌गल विना ग्रहण किए ही उत्पत्ति क्षेत्र स्थित पुद्‌गलोंको उत्पत्ति कालमें ही ग्रहण करके उन्हें ······ कि जीव अमुदाग्र है। कितनेक ······ कि जीव मुदाग्र है, जो ऐसा ······। यह पांचवां विभंग-ज्ञान है। छठा विभंगज्ञान जब ··· तब ······ ग्रहण करके व ग्रहण किए बिना ······ स्थित देखता है तो वह ······ जीव रूपी है। कितनेक ······ कि जीव अरूपी है। जो ऐसा······। यह छठा विभंगज्ञान है। सातवां विभंगज्ञान जब ······ तब वह पुद्‌गलकायको मन्द वायुसे हिलते हुए, विशेष रूपसे कांपते हुए, एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुंचते हुए, ऊपरसे नीचे गिरते हुए, एकको दूसरेसे मिलते हुए, उस २ भावको परिणमते हुए देखकर विचारता है—कि मुझे ······ उत्पन्न हुआ है, ये सब प्रत्यक्षभूत पुद्‌गलजात जीवस्वरूप हैं। कितनेक ······ जीव और अजीव भिन्न २ हैं जो ऐसा···। उसे ये चार जीवनिकाय भली भाँति ज्ञात नहीं होते०— पृथ्वीकाय, अप्०, तैजस०, वायु०। इन चार जीवनिकायोंकी विभंगज्ञानवश हिंसा करता है। यह सातवां विभंगज्ञान है ॥६५९॥

योनिसंग्रह१ सात प्रकारका कहा गया है०—अण्डज, पोतज२, जरायुज३, रसज४, संस्वेदिम५, संमूर्छिम, उद्भिज६। अण्डज सप्तगतिक सप्तागतिक कहे गए हैं०—अण्डज अण्डजोंमें उत्पन्न होता हुआ, अण्डजोंमें से अथवा पोतजोंमें से यावत् उद्‌भिजोंमें से आकर उत्पन्न हो सकता है। वही अण्डज अण्डजत्वको छोड़ता हुआ अण्डजके रूपमें पोतज यावत् उद्‌भिजके रूपमें उत्पन्न हो सकता है। पोतज सप्तगतिक सप्तागतिक, इसी प्रकार सातोंकी गति आगति कहनी चाहिए यावत् उद्भिज्ज तक ॥६६०॥

आचार्य एवं उपाध्यायके गणमें सात संग्रहस्थान कहे गये हैं०—आचार्यो-पाध्याय गणमें भली भाँति आज्ञा व धारणाका प्रयोक्ता होता है। इसी प्रकार जैसे पंचमस्थानमें कहा यावत् आ० पूछकर क्षेत्रान्तरमें जाता है या कोई कार्य

---

*मुदाग्र। १. उत्पत्तिस्थान विशेषोंसे जीवोंका समूह। २. गर्भवेष्टन रहित उत्पन्न होने वाले—खरगोश, नेवला, चूहा आदि। ३. गर्भवेष्टन युक्त···—मनुष्य, गाय, भैंस आदि। ४. विकृत मधुर आदि रसमें उत्पन्न होने वाले। ५. पसीनेसे उत्पन्न होने वाले जूं—लीख वगैरह। ६. भूमिको भेदकर उत्पन्न होने वाले—शलभ आदि।

करता है, विना पूछे नहीं । आ० उ० गणमें अलब्ध वस्त्रपात्रादिकोंका एषणा शुद्धिसे उपार्जक होता है । आ० उ० पूर्वगृहीत उपकरणोंका प्रयत्नपूर्वक रक्षण करता है । उनके रक्षणमें असावधान नहीं होता ।।६६१।।

आचार्य एवं उपाध्यायके······सात असंग्रहस्थान···—···प्रयोक्ता नहीं होता । इसी प्रकार यावत उपकरणोंका प्रयत्नपूर्वक रक्षण नहीं करता ।।६६२।। सात पिण्डैषणा कही गई हैं ।।६६३।।

सात पानैषणा······।।६६४।। सात अवग्रहप्रतिमा······।।६६५।। सात सप्तैकक कहे गए हैं ।।६६६।। सात महाध्ययन१······।।६६७।।

सात सप्ताह में समाप्त होने वाली भिक्षु प्रतिमा ४९ दिन रात में १९६ दत्तियोंके ग्रहणसे यथासूत्र (यथार्थ) यावत् आराधित होती है ।।६६८।।

अधोलोकमें सात पृथिवियां कही गई हैं। सात घनोदधि कहे गए हैं। सात घनवात······। सात तनुवात······। सात अवकाशान्तर······। इन सात अवकाशान्तरों पर सात तनुवात प्रतिष्ठित हैं । इन सात तनुवातों पर सात घन-वात······। ······घनवातों पर सात घनोदधि······। इन सात घनोदधियों पर पटलकपृथुलाकार२ सात पृथिवियाँ कही गई हैं०—पहली यावत् सातवीं । इन सातों पृथिवियोंके सात नाम हैं०—घर्मा, वंशा, शैला, अञ्जना, रिष्टा, मघा, माघवती । इनके ·····सात गोत्र कहे गए हैं०—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुका-प्रभा, पंकप्रभा, धूम्रप्रभा, तमा, तमस्तमा ।।६६९।।

वादरवायुकायिक सात प्रकारके कहे गए हैं०—पूर्वका वायु, पश्चिम०, दक्षिण०, उत्तर०, ऊपर, नीचे०, विदिशा० ।।६७०।। संस्थान सात······—दीर्घ, ह्रस्व, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र, पृथुल, परिमण्डल ।।६७१।।

भयस्थान सात कहे गए हैं०—इहलोक भय, परलोक०, ३आदान०, अक-स्मात०, आजीविका०, मरण०, ४अश्लोक० ।।६७२।।

सात स्थानों से छद्मस्थ जाने जाते हैं०—प्राणातिपात करनेसे, झूठ बोलने से, अदत्तादान ग्रहण करनेसे, शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गन्धका उपभोग करने से, आदर सत्कारकी अनुमोदना करनेसे, अमुक कार्यको 'सावद्य' बताकर उन्हीं का सेवन करनेसे, यथावादी तथाकारी न होनेसे ।।६७३।।

सात स्थानोंसे केवली जाने······—प्राणातिपात न करनेसे यावत् यथा-वादी५ तथाकारी होने से ।।६७४।।

---

१. सूत्रकृताङ्ग द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन । २. 'चंगेरी' फूल रखने का भाजन विशेष अथवा छत्रातिछत्र । ३. चोरी आदि का डर । ४. बदनामी । ५. जैसा कहे वैसा करने वाला ।

सात मूल गोत्र कहे गए हैं०—काश्यप, गौतम, वत्स, कौत्स, कौशिक, मांडव्य, वाशिष्ठ। जो काश्यप हैं, वे सात प्रकारके कहे गए हैं०—काश्यप१, शाण्डिल्य, गौल, वाल, मुञ्जतृण, पर्वप्रेक्षकी, वर्षकृष्ण। जो गौतम हैं वे सात हैं··—गौतम, गार्ग्य, भारद्वाज, आङ्गिरस, शर्कराभ, भास्कराभ, उदगर्त्ताभ। जो वत्स······—वत्स, आग्नेय, मैत्रेय, स्वामिलिन्, शैलकज, अस्थिषेण, वीत-कश्म। जो कौत्स······—कौत्स, मौद्गल्यायन, पिङ्गलायन, कौडिन्य, मण्डलिन, हारीत, सोमक। जो कौशिक······—कौशिक, कात्यायन, शालङ्कायन, गौलि-कायन, पक्षिकायन, आग्नेय, लोहित। जो माण्डव्य······—माण्डव्य, आरिष्ट, सम्मुक्त, तैल, ऐलापत्य, काण्डिल्य, खारायण। जो वाशिष्ठ······—वाशिष्ठ, उञ्जायन, जारेकृष्ण, व्याघ्रापत्य, कौण्डिल्य, संज्ञिन, पाराशर ॥६७५॥

सात मूलनय कहे गए हैं०—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, सम-भिरूढ और एवंभूत ॥६७६॥ स्वर२ सात कहे गए हैं०—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद (१)। इन सात स्वरोंके सात स्वर-स्थान ··—षड्ज स्वरका स्थान जिह्वाका अग्रभाग, ऋषभका वक्षस्थल, गान्धार का कण्ठ, मध्यमका जिह्वाका मध्यभाग, पंचमस्वरका नासिका, 'धैवतका दंतोष्ठ, निषादका स्थान मूर्धा है (२-३)। सात स्वर जीवनिश्रित३··· — मोर षड्ज स्वरमें बोलता है। मुर्गा ऋषभ···। हंस गान्धार···। मेष४ मध्यम···। वसन्तके समय कोयल पंचम···। सारस धैवत···। क्रौंच५ निषाद···(४-५)। सात स्वर-अजीवनिश्रित···—मृदङ्गसे षड्ज स्वर निकलता है। गोमुखीसे ऋषभ···। शंख से गान्धार···। झल्लरीसे मध्यम ···। चमड़ेसे मढ़ी हुई दर्दरिकासे पंचम स्वर···। पटहसे धैवत···। महाभेरीसे निषाद···(६-७)। इन सात स्वरोंके सात स्वर-लक्षण कहे गए हैं०—षड्जस्वरसे मनुष्य आजीविकाको प्राप्त करता है, उसका किया हुआ काम नष्ट नहीं होता। उसके गाएँ (पशुधन), मित्र, पुत्र भी होते हैं। वह स्त्रियोंका प्रिय होता है। ऋषभ स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्य, धन, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, अलंकार, शयन६ को प्राप्त करता है और सुन्दर स्त्रियोंका पति व सेनापति होता है। गान्धार स्वर वाला गीतोंकी योजना करनेमें कुशल, कला-विद्, श्रेष्ठ आजीविका वाला, काव्यरचना कुशल, कर्त्तव्यशील होता है, अथवा सकल शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञाता होता है। मध्यमस्वरसे संपन्न जीव सुखजीवी होते हैं, खाते पीते हैं, और दूसरोंको देते हैं। पंचम स्वरसे युक्त पृथ्वीपति, शूरवीर,

१. 'ते'। २. ध्वनिविशेष। ३. आश्रित। ४. भेड़। ५. 'हाथी' पाठान्तर। ६. पल्यङ्क आदि।

संग्रहशील, अनेक गणोंके नायक होते हैं। धैवत स्वर वाले कलहप्रिय, शिकारी, मृग तथा शूकरका शिकार करने वाले, मछलियाँ पकड़ने व मारने वाले होते हैं। निषाद स्वर वाले चाण्डाल, मौष्टिक* अधम जातिके, पापपरायण, गोघातक, चोर होते हैं (८-१४)। इन सात स्वरोंके तीन ग्राम कहे गये हैं०—षड्जग्राम, मध्यम०, गान्धार०। षड्ज ग्रामकी सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं०—मंगी, कौरवीया, हरि, रजनी, सारकान्ता, सारसी और शुद्धषड्जा (१५)। मध्यम ग्रामकी सात···—उत्तरमन्दा, रजनी, उत्तरा, उत्तरासमा, समवक्रान्ता, सौवीरा और अभीरु (१६)। गान्धार ग्रामकी सात···—नन्दी, क्षुद्रिका, पूरिमा, शुद्धगान्धारा, उत्तरगान्धारा, सुष्ठुतरायामा, उत्तरायत्ता कोटिमा (१७-१८)। ये सात स्वर कहांसे उत्पन्न होते हैं? गेयके कितनें प्रकार हैं? गेयके कितने काल प्रमाण वाले उच्छ्वास होते हैं? गेयके कितने आकार होते हैं? (१९)। सातों स्वर नाभिसे उत्पन्न होते हैं। गीतकी योनि रोदन है। जितने समयमें १ वृत्तपाद समाप्त होता है उतने ही समय प्रमाण गीतमें उच्छ्वास होते हैं। गीतके आकार तीन होते हैं। प्रारम्भमें मृदु गीत ध्वनिसे उसे प्रारम्भ करते हैं, मध्यमें ऊंचा चढ़ाते हैं, अन्तमें फिर उसे मन्दध्वनिसे समाप्त करते हैं। ये मृदु, तार और मन्द गीतके तीन आकार हैं (२०-२१)। गीतमें ६ दोष, आठ गुण, तीन वृत्त एवं दो भणितियाँ होती हैं। जो मनुष्य इनका यथावत् ज्ञाता होगा वही सुशिक्षित गायक नाट्यशाला में सफल गायक सिद्ध होगा (२२)। भयसे युक्त होकर गाना, जल्दी २ गाना, ह्रस्व स्वर से गाना, बेताल गाना, काकस्वरसे गाना, नाकमें गाना ये गीतके ६ दोष हैं। इनका त्याग करके गाना चाहिए (२३)। पूर्ण रागसे भावित होकर गाना, स्वर विशेषोंसे अलंकृत करके गाना, व्यक्त, सुस्वरसे गाना, मधुर स्वर०, सम और सुकुमार ये गीतके ८ गुण हैं। गीत उरः१कण्ठशिरःप्रशस्त, मृदुरिभितपदबद्ध होता है। समताल प्रत्युत्क्षेप२ सप्त स्वर सीभर३ होता है। निर्दोष, सारयुक्त, हेतुयुक्त उपमा आदि अलङ्कारोंसे युक्त, उपनीत४, अनुप्रासयुक्त, मित और मधुर गीत गाने योग्य होता है (२४-२६)। सम५, अर्द्धसम६ और विषम७ ये वृत्तके तीन प्रकार हैं। चौथा वृत्त उपलब्ध नहीं होता

---

*. मुष्टिसे प्रहार करने वाले। १. उरस्थानमें जब स्वर विशाल हो वह उरःप्रशस्त। इसी प्रकार शेष भी। २. पदप्रक्षेप। ३. जिस गीतमें अक्षरादिकोंके साथ सात स्वर सम होते हैं। ४. उपसंहार। ५. जिसके चारों चरणोंमें समान अक्षर हों। ६. जिसमें पहले तीसरे और दूसरे चौथे चरणोंमें समान अक्षर हों। ७. जिसके चारों चरणोंमें विषमता हो।

है (२७)। संस्कृत और प्राकृत ये दोनों ऋषियों द्वारा कही गई, प्रशस्त भाषाएँ हैं। ये षड्ज स्वर समूहमें गाई जाती हैं (२८)। कैसी स्त्री मधुर स्वरसे गाती है? कैसी खर और रूक्ष ...? कैसी शास्त्रोक्त विधिसे गाती है? कैसी मन्थर स्वरसे...? कैसी द्रुत ...? कैसी विकृत स्वरसे ...? श्यामा स्त्री मधुर स्वरसे गाना गाती है। काली ...खर और रूक्ष ...। गोरी स्त्री शास्त्रोक्त विधिसे गाती है। कानी स्त्री विलम्ब स्वरसे....। अंधी स्त्री जल्दी २ गाती है। कपिला स्त्री विस्वर से गाती है (२९-३०)। तंत्रीसम, ताल०, पाद०, लय०, गह०, निश्वासोच्छ्-वाससम, सञ्चारसम ये ७ स्वर हैं (३१)। सात स्वर, तीन ग्राम, २१ मूर्च्छनाएँ तथा ४९ तानें हैं (३२)॥६७७॥

॥ स्वरमण्डल समाप्त ॥

कायक्लेश सात प्रकारका कहा गया है०—कायोत्सर्ग, उकड़ू बैठना, प्रतिमा धारण करना, वीरासनसे बैठना, निषद्यासे[1] बैठना, दण्डासन करना, लगण्डशायी ॥६७८॥ जंबूद्वीपमें सात वर्ष क्षेत्र कहे गए हैं०—भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, महाविदेह ॥६७९॥

जंबू० सात वर्षधर पर्वत .....—क्षुद्र हिमवान्, महा०, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी, मन्दर ॥६८०॥ जंबूद्वीपमें सात महानदियां पूर्वाभिमुखी होकर लवणसमुद्रमें मिलती हैं०—गंगा, रोहिता, ह्री, सीता, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रक्ता ॥६८१॥ जंबू०.........पश्चिमाभिमुखी होकर.........—सिन्धु, रोहि-तांशा, हरिकान्ता, सीतोदा, नारीकान्ता, रुक्मकूला और रक्तवती ॥६८२॥

धातकीखण्डद्वीप पूर्वार्धमें सात वर्ष क्षेत्र......भरत यावत् महाविदेह। धातकी० सात वर्षधर पर्वत......— क्षुद्रयावत् मन्दर । धातकी० सात महानदियाँ पूर्वाभिमुखी कालोद समुद्रमें मिलती हैं०—गङ्गा यावत् रक्ता । धातकी०......पश्चिमाभिमुखी.........—सिंधु यावत् रक्तवती । धातकीखण्डपश्चिमार्द्धमें सात वर्ष-क्षेत्र इसी प्रकार केवल पूर्वाभिमुखी लवण समुद्रमें मिलती हैं। पश्चिमाभिमुखी कालोदमें। शेष उसी प्रकार॥६८३॥

पुष्करवरद्वीपपूर्वार्धमें सात वर्ष क्षेत्र उसी प्रकार केवल-पूर्वाभिमुखी पुष्करोद समुद्रमें मिलती हैं । पश्चिमाभिमुखी कालोदमें। शेष उसी प्रकार। इसी प्रकार पश्चिमार्ध में भी केवल—पूर्वाभिमुखी कालोद समुद्र में मिलती हैं। पश्चिमाभिमुखी पुष्करोदमें । सर्वत्र वर्षक्षेत्र, वर्षधर पर्वत और नदियां कहनी चाहिएँ ॥६८४॥

जम्बूद्वीप भारतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणीकाल में सात कुलकर हुए हैं०—मित्रदाम, सुदामा, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, विमलघोष, सुघोष, महाघोष॥६८५॥

१. आसन विशेष।

जंबू······इस अवसर्पिणी में···—विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान, अभिचन्द्र, प्रसेनजित, मरुदेव और नाभि। इन सात कुलकरों की सात भार्याएँ हुई हैं ०—चन्द्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुकान्ता, श्रीकान्ता एवं मरुदेवी ॥६८६॥

जंबू०······आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे०—मित्रवाहन, सुभौम, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, दत्त, सूक्ष्म और सुबन्धु ॥६८७॥

विमलवाहन कुलकर के समय में सात प्रकारके वृक्ष उपभोग्य रूपसे काममें आए—मत्ताङ्गक, भृङ्ग, चित्राङ्ग, चित्ररस, मण्यङ्ग, अनग्न और कल्पवृक्ष ॥६८८॥ दण्डनीति सात प्रकार की कही गई है ०—हक्कार, माकार, धिक्कार, परिभाषा१, मण्डल२बन्ध, चारक३, छविच्छेद४ ॥६८९॥

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजाके सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गए हैं ०—चक्ररत्न, छत्र०, चर्म०, दण्ड०, असि०, मणि०, काकिणी० ॥६९०॥ प्रत्येक······सात पंचेन्द्रिय रत्न······—सेनापतिरत्न, ५गाथापति०, ६वर्द्धकि०, पुरोहित०, स्त्री०, अश्व०, हस्ति० ॥६९१॥

इन सात स्थानोंसे दुषमकाल की उत्कर्षावस्था जाने०—अकालमें वर्षा होना, समय पर वर्षा न होना, असाधुओंकी पूजा होना, साधुओं की पूजा न होना, गुरुजनों में लोगों का मिथ्याभाव रखना, मानसिक दुःख, वाचिक दुःखका होना ॥६९२॥

सात···सुषमकाल···—अकाल में वृष्टि न होना यावत् गुरुजनों में श्रद्धाभाव, मानसिक सुख, वाचिक० ॥६९३॥ संसारी जीव सात प्रकार के कहे गए हैं०—नारकी, तिर्यंच, तिर्यंचिनियाँ, मनुष्य, मानुषी, देव, देवियां ॥६९४॥

आयुभेद७ सात प्रकार का कहा गया है०—अध्यवसान८, निमित्त९, आहार, वेदना१०, पराघात, स्पर्श११, आनप्राण१२ ॥६९५॥

समस्त जीव सात प्रकारके कहे गए हैं०—पृथिवीकायिक, अप्०, तेजस्०, वायु०, वनस्पति०, त्रस०, अकायिक। अथवा समस्त······—कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ल०, अले० ॥६९६॥

---

१. अपराधी पर कुपित होकर कहना 'अमुक काम मत करो'। २. निर्दिष्ट क्षेत्र में अपराधी को रोक रखना। ३. जेल। ४. अङ्गोपाङ्ग छेदन। ५. कोष्ठागार का अधिकारी। ६. सारथी-रथकार। ७. जीवनका विनाश। ८. राग-स्नेह भय आदि। ९. दण्ड-शस्त्रादि। १०. हृदयशूल आदि। ११. सर्पदंश आदि। १२. श्वासोच्छ्वास निरोध।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जो कि सात धनुष ऊंचा था, सात सौ वर्ष की उत्कृष्ट आयु पालकर काल करके नीचे सातवीं पृथिवी में अप्रतिष्ठान नरकमें नारकी रूपसे उत्पन्न हुआ ।।६९७।।

मल्ली अर्हन्त ने स्वयं सातवें अन्य ६ राजाओंके साथ घरबार छोड़कर दीक्षा ली०—मल्ली विदेहराजवरकन्या, अयोध्याधिपति प्रतिबुद्ध, अङ्गराज चन्द्रच्छाय, कुणालाधिपति रुक्मी, काशीराज शंख, कुरुराज अदीनशत्रु, पांचाल-राज जितशत्रु ।।६९८।।

दर्शन सात प्रकारका कहा गया है०—सम्यग्दर्शन, मिथ्या०, सम्यग्-मिथ्या०, चक्षु०, अचक्षु०, अवधि०, केवल० ।।६९९।। छद्मस्थवीतराग मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंको छोड़कर सात कर्म-प्रकृतियों का वेदन करता है०—ज्ञाना-वरणीय, दर्शना०, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ।।७००।।

सात स्थानोंको छद्मस्थ सर्वभावसे नहीं जानता देखता०—धर्मास्तिकाय यावत् शब्द, गन्ध ।।७०१।। इन्हींको उत्पन्नज्ञान० यावत् जानता देखता है०—धर्मास्तिकाय यावत् गन्ध ।।७०२।।

श्रमण भगवान् महावीर वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले और समचतुरस्र-संस्थान वाले थे । उनके शरीरकी ऊंचाई सात हाथ थी ।।७०३।।

सात-विकथाएं कही गई हैं०—स्त्रीकथा, भक्त०, देश०, राज०, मृदुकारु-णिकी, दर्शनभेदनी और चरित्रभेदनी ।।७०४।।

आचार्य उपाध्यायके गणमें सात अतिशय कहे गए हैं०—आचार्य उपा-ध्याय उपाश्रयके अन्दर······इस प्रकार जैसे पाँचवें स्थान में कहा यावत् उपा-श्रयके बाहर एक अथवा दो रात रहता हुआ जिनाज्ञाका अतिक्रमण नहीं करता, उपकरणातिशेष[१], भक्तपानातिशेष ।।७०५।।

सात-प्रकारका संयम कहा गया है०—पृथिवीकायिकसंयम यावत् त्रस०, अजीवकाय० ।।७०६।। सात······असंयम···—पृथिवी० असंयम, यावत त्रस०, अजीव० ।।७०७।।

सात··· आरम्भ···—पृथिवी०, यावत् अजीव० । इसी प्रकार अनारम्भ, संरम्भ, असंरम्भ, समारम्भ, असमारम्भ जानना । यावत् अजीवकाय असमारम्भ ।।७०८।।

भदन्त ! अलसी, कुसुम्भ (धान्यविशेष), कोदों, कांगणी, रालक[२],

---

१. शेष साधुओंकी अपेक्षा वस्त्रादि में विशेषता । २. कांगनी का ही एक भेद ।

वक्रा, द्विधातोवक्रा, एकतः खा, द्विधातः खा, चक्रवाला और अर्द्धचक्रवाला। ॥७२९॥

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गए हैं०—पादातानीक, पीठानीक, कुंजरानीक, महिषानीक, रथानीक, नाट्यानीक, गन्धर्वानीक। द्रुम पैदल चलने वाली सेना का सेनापति है। इस प्रकार जैसे पांचवें स्थानमें कहा यावत् किन्नर रथानीकाधिपति है, रिष्ट नाट्यानीकाधिपति और गीतरति गन्धर्वानीकाधिपति है। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके सात अनीक ······ यावत् गन्धर्वानीक महाद्रुम पैदल ··· यावत् किंपुरुष रथा०, महारिष्ट नाट्या० और गीतयश गन्धर्वा०। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके सात अ० यावत् गन्धर्वा०। रुद्रसेन पैदल ··यावत् आनन्द रथा०, नन्दन नाट्या०, तेतली गन्धर्वा०। भूतानन्द के सात यावत् गन्धर्वा०। दक्ष पैदल ··· यावत् नन्दोत्तर रथा०, रति नाट्या०, मानस गन्धर्वा०। इसी प्रकार यावत् घोष-महाघोष का जानना चाहिए। देवेन्द्र देवराज शक्रके सात यावत् गन्धर्वा०। हरिणैगमेषी पैदल ··· यावत् माठर रथा०, श्वेत नाट्या०, तुम्बुरु गन्धर्वा०। देवेन्द्र देवराज ईशानके सात यावत् गन्धर्वा०। लघुपराक्रम पैदल ··यावत् महाश्वेत नाट्या०, रत गन्धर्वा०। शेष जैसे पंचम स्थानमें कहा इसी प्रकार यावत् अच्युत तक जानना ॥७३०-७३१॥

असुरेन्द्र असुरकुमारराजके द्रुम पादातानीकाधिपतिकी सात कक्षाएं[1] कही गई हैं०—प्रथमा कक्षा यावत् सप्तमी कक्षा। ····प्रथम कक्षामें ६४ हजार देव कहे गए हैं। जितने प्रथम कक्षामें उससे दुगने दूसरीमें, उससे दुगुने तीसरीमें इसी प्रकार जितने छठी कक्षामें उससे दुगुने सातवीं कक्षामें। इसी प्रकार बलिके भी केवल—महाद्रुम, ६० हज़ार देव, शेष उसी प्रकार। धरण के भी इसी प्रकार केवल देव २८ हजार शेष उसी प्रकार। जैसे धरण का कहा इसी प्रकार यावत् महाघोष का जानना। केवल पादातानीकाधिपति अन्य हैं, जो पहले कहे गए हैं ॥७३२॥

देवेन्द्र देवराज शक्रके हरिणैगमेषी पादा० की सात कक्षाएँ···—प्रथमा कक्षा····इस प्रकार जैसे चमर का कहा वैसे ही यावत् अच्युत तक जानना। केवल पादातानीकाधिपतियों के नाम भिन्न २ हैं। जो पहले कहे जा चुके हैं। देवोंका परिमाण इस प्रकार है—शक्रके पा० ह० की प्रथम कक्षामें ८४००० देव, ईशान ·· ८०००० देव। देवोंकी संख्या क्रमशः इस गाथासे जानें, ८४ हजार, ८०-७२-७०-६०-५०-४०-३०-२०—दस हजार। यावत् अच्युत ··· लघुपराक्रम

---

१. पदातिसेनापंक्ति।

कोद्रूषक१, सन, सरसों और मूलाके बीज कोष्ठागारमें यावत् सीलबन्द करके रक्खे हों तो इन सबकी अंकुरोत्पादक शक्ति कितने काल तक रहती है? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट सात वर्ष तक, उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, यावत् उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाती है ।।७०९।।

बादर अप्कायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्षकी कही गई है ।।७१०।। तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की······।।७११।। चौथी पंकप्रभा ·····जघन्यस्थिति सात सागरोपम···।।७१२।। देवेन्द्र देवराज शक्रके (लोकपाल) वरुण महाराजकी सात अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ।।७१३।।

देवेन्द्र देवराज ईशानके (लोकपाल) सोममहाराज की सात अ०······ ।।७१४।। देवेन्द्र······ यम ······ ।।७१५।। देवेन्द्र देवराज ईशान की आभ्यन्तर परिषदास्थित देवोंकी स्थिति सात पल्योपमकी कही गई है ।।७१६।। देवेन्द्र देवराज शक्रकी आ०······।।७१७।। देवेन्द्र दे० शक्रकी अग्रमहिषियों की स्थिति सात प०······।।७१८।।

सौधर्मकल्पमें परिगृहीत२ देवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सात प०···।।७१९।। सारस्वत, आदित्य लोकान्तिक देवोंके सात देव प्रधान हैं और सात सौ देव हैं ।।७२०।। गर्दतोय और तुषित···और सात हजार देव हैं ।।७२१।।

सनत्कुमार कल्पमें देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपमकी कही गई है ।।७२२।। माहेन्द्रकल्प में···सात सागरोपमसे कुछ अधिक··· ।।७२३।। ब्रह्मलोक-कल्पमें देवोंकी जघन्य स्थिति सात सा०··· ।।७२४।। ब्रह्मलोक एवं लान्तककल्पों में विमान सात सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं ।।७२५।।

भवनवासी देवोंके भवधारणीय शरीर उत्कृष्ट सात हाथ ऊंचे··· । इसी तरह व्यन्तरों और ज्योतिष्क देवोंके भी जानने चाहिएं। सौधर्म और ईशान-कल्पोंमें देवोंके भव० शरीर सात हाथ··· ।।७२६।। नन्दीश्वर द्वीपके भीतर सात द्वीप कहे गए हैं०—जंबूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करवर, वरुणवर, क्षीरवर, घृतवर, क्षोदवर ।।७२७।।

नन्दी० ··· सात समुद्र··· —लवण, कालोद, पुष्करोद, वरुणोद, क्षीरोद, घृतोद, क्षोदोद३ ।।७२८।। श्रेणियां४ सात कही गई हैं०—ऋज्वायता, एकतो-

---

१. कोदों का एक भेद । २. भार्यारूपसे स्वीकृत । ३. जिसका जल गन्ने जैसा मीठा है । ४. जीव-पुद्गलसंचाराश्रयभूताकाशप्रदेशपंक्ति ।

वक्रा, द्विधातोवक्रा, एकतः खा, द्विधातः खा, चक्रवाला और अर्द्धचक्रवाला। ॥७२९॥

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गए हैं०—पादातानीक, पीठानीक, कुंजरानीक, महिषानीक, रथानीक, नाट्यानीक, गन्धर्वानीक। द्रुम पैदल चलने वाली सेना का सेनापति है। इस प्रकार जैसे पांचवें स्थानमें कहा यावत् किन्नर रथानीकाधिपति है, रिष्ट नाट्यानीकाधिपति और गीतरति गन्धर्वानीकाधिपति है। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके सात अनीक······यावत् गन्धर्वानीक महाद्रुम पैदल···यावत् किंपुरुष रथा०, महारिष्ट नाट्या० और गीतयश गन्धर्वा०। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके सात अ० यावत् गन्धर्वा०। रुद्रसेन पैदल ··यावत् आनन्द रथा०,नन्दन नाट्या०, तेतली गन्धर्वा०। भूतानन्द के सात यावत् गन्धर्वा०। दक्ष पैदल···यावत् नन्दोत्तर रथा०, रति नाट्या०, मानस गन्धर्वा०। इसी प्रकार यावत् घोष-महाघोष का जानना चाहिए। देवेन्द्र देवराज शक्रके सात यावत् गन्धर्वा०। हरिणैगमेषी पैदल···यावत् माठर रथा०, श्वेत नाट्या०, तुम्बुरु गन्धर्वा०। देवेन्द्र देवराज ईशानके सात यावत् गन्धर्वा०। लघुपराक्रम पैदल···यावत् महाश्वेत नाट्या०, रत गन्धर्वा०। शेष जैसे पंचम स्थानमें कहा इसी प्रकार यावत् अच्युत तक जानना ॥७३०-७३१॥

असुरेन्द्र असुरकुमारराजके द्रुम पादातानीकाधिपतिकी सात कक्षाएं[१] कही गई हैं०—प्रथमा कक्षा यावत् सप्तमी कक्षा। ····प्रथम कक्षामें ६४ हजार देव कहे गए हैं। जितने प्रथम कक्षामें उससे दुगने दूसरीमें, उससे दुगुने तीसरीमें इसी प्रकार जितने छठी कक्षामें उससे दुगुने सातवीं कक्षामें। इसी प्रकार बलिके भी केवल—महाद्रुम, ६० हजार देव, शेष उसी प्रकार। धरण के भी इसी प्रकार केवल देव २८ हजार शेष उसी प्रकार। जैसे धरण का कहा इसी प्रकार यावत् महाघोष का जानना। केवल पादातानीकाधिपति अन्य हैं, जो पहले कहे गए हैं ॥७३२॥

देवेन्द्र देवराज शक्रके हरिणैगमेषी पादा० की सात कक्षाएँ···—प्रथमा कक्षा····इस प्रकार जैसे चमर का कहा वैसे ही यावत् अच्युत तक जानना। केवल पादातानीकाधिपतियों के नाम भिन्न २ हैं। जो पहले कहे जा चुके हैं। देवोंका परिमाण इस प्रकार है—शक्रके पा० ह० की प्रथम कक्षामें ८४००० देव, ईशान·· ८०००० देव। देवोंकी संख्या क्रमशः इस गाथासे जानें, ८४ हजार, ८०-७२-७०-६०-५०-४०-३०-२०—दस हजार। यावत् अच्युत···लघुपराक्रम

१. पदातिसेनापंक्ति।

की प्रथम कक्षामें दस हजार देव हैं, यावत् जितनी छठी कक्षामें हैं उससे दूने सातवीं कक्षा में॥७३३॥

सात प्रकारका वचनविकल्प कहा गया है०—आलाप१, अनालाप२, उल्लाप३, अनुल्लाप४, संलाप५, प्रलाप६ और विप्रलाप७ ॥७३४॥ विनय सात प्रकार का कहा गया है०—ज्ञान विनय०, दर्शन०, चरित्र०, मनो०, वचन०, काय०, लोकोपचार विनय ॥७३५॥

प्रशस्तमनोविनय सात···—अपापक, असावद्य, अक्रिय, निरुपक्लेश, अनास्रवकर, अक्षपिकर८, अभूताभिसंक्रमण९ ॥७३६॥ अप्रशस्त मनोविनय सात···—पापक, सावद्य, सक्रिय, सोपक्लेश, आस्रवकर, क्षपिकर, भूताभिसंक्रमण ॥७३७॥ प्रशस्त वचनविनय सात·····—अपापक असावद्य यावत् अभूताभिसंक्रमण ॥७३८॥

अप्रशस्त वचनविनय सात···—पापक यावत् भूताभिसंक्रमण ॥७३९॥

प्रशस्त कायविनय सात···—उपयोग (यतना) से चलना, यतना से खड़े होना, यतना से वैठना, यत्ना से सोना, यत्ना से कर्दम आदि का एक बार उल्लंघन करना, ······बार २ उल्लंघन करना, यतना से समस्त इन्द्रियोंको शुभ व्यापारमें लगाना ॥७४०॥ अप्रशस्त कायविनय सात···—अयतनासे चलना यावत् अशुभ व्यापारमें लगाना ॥७४१॥

लोकोपचारविनय सात···—अभ्यासवर्तित्व1, परच्छन्दानुवर्तित्व2, कार्यहेतु3, कृत प्रतिकृतिता4, आत्मगवेषणता, देशकालज्ञता5, सव प्रयोजनोंमें अप्रतिलोमता6 ॥७४२॥

समुद्‌घात सात कहे गए हैं०—वेदना समुद्‌घात, कषाय०, मारणान्तिक०, वैक्रिय०, तैजस०, आहारक०, केवलि०। मनुष्योंके सात समु०···इसी प्रकार॥७४३॥

श्रमण भगवान् महावीरके तीर्थमें सात प्रवचननिह्नव कहे गए हैं०—वहुरत,

---

१. कम वोलना। ३. कुत्सित भाषण करना। ३. काकु से वर्णन करना। ४. वारम्वार वोलना। ५. परस्पर वातचीत करना। ६. अनर्थक भाषण करना। ७. अनेक प्रकारका प्रलाप। ८. स्व और पर को कष्ट न पहुंचाने वाली विचारधारा। ९. जिस विचारधारासे प्राणियोंका उपमर्दन न हो।

1. आचार्यदि के पास रहना। 2. उनके अभिप्रायानुसार आचरण करना। 3. किसी कार्य के लिए। 4. वदला चुकाने के लिए। 5. बीमार की सेवा करना। 6. अप्रतिकूलता।

जीवप्रदेशिक, अव्यक्तिक, सामुच्छेदिक, द्वैक्रिय, त्रैराशिक, अबद्धिक। इन सात प्रवचननिह्नवोंके सात धर्माचार्य थे०—जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गंग, षडूलक-रोहगुप्त, गोष्ठामाहिल। इन सात प्र०···सात-उत्पत्तिनगर थे०—श्रावस्ती, ऋषभपुर, श्वेताम्बिका, मिथिला, उलुकातीर, अंतरंजिका, दशपुर ॥७४४॥

सातावेदनीय कर्मका अनुभाव सात प्रकारका कहा गया है०—मनोज्ञ शब्द, मनोज्ञ रूप यावत् मनोज्ञ स्पर्श, मनःसुख१, वचनसुख ॥७४५॥ असातावेदनीय ······—अमनोज्ञ शब्द यावत् वचनदुःखता ॥७४६॥ मघा नक्षत्र सात तारों वाला कहा गया है ॥७४७॥

अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक कहे गए हैं०—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती। अश्विनी आदि··· दक्षिणद्वारिक······—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु। पुष्यादिक सात···पश्चिमद्वारिक······—पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा। स्वात्यादिक···उत्तरद्वारिक···—स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा ॥७४८॥

जंबूद्वीपमें सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गए हैं०—सिद्ध, सौमनस, मंगलावती, देवकुरु, विमल, काञ्चन, विशिष्टकूट ॥७४९॥

जंबू० गन्धमादन······—सिद्ध, गन्धमादन, गन्धिलावती, उत्तरकुरु, स्फटिक, लोहिताक्ष, आनन्दन ॥७५०॥

दो-इन्द्रिय जीवोंकी सात लाख जातिकुलकोटि योनि प्रमुख कही गई हैं ॥७५१॥

जीवोंने ७ स्थान निर्वर्तित पुद्गलोंका पापकर्मरूपसे चय किया, करते हैं और करेंगे०—नैरयिक-निर्वर्तित यावत् देव०, इसी प्रकार यावत् निर्जरा ॥७५२॥ सात प्रदेशों वाले स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं ॥७५३॥ सात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल यावत् सातगुण रूक्ष पुद्गल अनन्त ···॥७५४॥

॥ सातवाँ स्थान समाप्त ॥

—०—

१. 'शुभता' पाठा०।

अष्टम स्थानक

आठ गुणोंसे सम्पन्न साधु एकलविहारप्रतिमा अंगीकार करके विचरने योग्य होता है०—श्रद्धावान्, सत्यवादी, मेधावी, बहुश्रुत, शक्तिमान्, कलहरहित, धृतिमान्, वीर्यसम्पन्न* ।।७५५।।

योनिसंग्रह आठ प्रकारका कहा गया है०—अण्डज यावत् उद्भिज्ज, औपपातिक। अण्डज अष्टगतिक अष्टआगतिक होते हैं०—अण्डज अण्डजोंमें उत्पन्न होता हुआ अण्डजोंसे यावत् औपपातिकोंसे आकर उत्पन्न होता है। वही अण्डज अण्डजत्व को छोड़ता हुआ अण्डज रूपसे यावत् औपपातिक रूपसे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार पोतज और जरायुज भी। शेष जीवों में अष्टगतिकता, अष्ट-आगतिकता नहीं ।।७५६।।

जीवोंने अतीतकालमें आठकर्म प्रकृतियोंका उपार्जन किया, करते हैं और करेंगे०—ज्ञानावरणीय, दर्शना०, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय। नैरयिक जीवोंने आ०...... । इस प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक तक २४... । जीवोंने ...... उपचय किया ३ इसी प्रकार। इसी प्रकार चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा ये ६ चौवीस दण्डकोंमें कहने चाहिएं ।।७५७।।

आठ कारणोंसे मायी माया१ का सेवन करके आलोचना, प्रतिक्रमण नहीं करता यावत् प्रायश्चित अंगीकार नहीं करता०—मैंने अतिचार किया, करता हूं, करूंगा, मेरी अकीर्ति होगी, मेरा अवर्णवाद२ होगा, मेरा मान घट जाएगा, मेरी कीर्ति३ घट जाएगी, मेरा यश४ घट जाएगा। आठ कारणोंसे......आलोचना, प्रतिक्रमण करता है यावत् अंगीकार करता है०—मायी का यह लोक गर्हित५ होता है। उपपात गर्हित होता है६। आयाति७ गर्हित होती है। जो मायी माया करके यावत् अंगीकार नहीं करता उसे आराधना नहीं होती। जो मायी एक भी माया करके यावत् अंगीकार करता है वह आराधक होता है। जो बहुत बार माया......नहीं करता वह आराधक नहीं होता। जो बहुत बार......अंगीकार करता है वह आराधक होता है। मेरे आचार्य अथवा उपाध्यायको जब अतिशयित ज्ञानदर्शन उत्पन्न हो जाएगा तब वे मुझे जान जाएँगे कि यह मायावी है। इन आठ कारणोंसे......। जैसे लोहे-ताम्बे-शीशे-चाँदी-सोने की खान भीतर ही भीतर प्रज्वलित होती रहती है। जैसे तिल की अग्नि, तुष०, भूसे०,

---

*उत्साही। १. प्रधान अतिचार आदि। २. निन्दा। ३. समस्त दिशा व्याप्त। ४. एकदिशा व्याप्त। ५. निन्दित। ६. किल्विषक आदि देवों में जन्मके कारण। ७. देव से अगला भव।

सरकण्डे०, पत्तों० भीतर……। जैसे शुण्डिकालिच्छ१, भाण्डिकालिच्छ२ अथवा गोलिकालिच्छ३, कुम्भारका आवाँ, नलियों को पकाने का स्थान, ईंटोंका भट्ठा, गन्नेके रसको पकाने वाली भट्ठी, लुहार की भट्ठी भीतर बाहर गर्म रहती है और अग्नि जैसी हो जाती है, किंशुक के फूलके समान लाल, प्रचुर अग्निपिण्डों को बाहर निकालने वाली, प्रचुर अग्निशिखाओं को बार-बार छोड़ने वाली व बिखेरने वाली भीतर……। इसी प्रकार मायी माया करके भीतर ही भीतर पश्चात्तापरूपी अग्नि में जलता रहता है। जब कोई दूसरोंसे कुछ कहता है तो मायी समझता है कि यह मुझ पर शंका कर रहा है।

मायी माया करके आलोचना प्रतिक्रमण नहीं करता और काल करके४ किसी देवलोक में देवरूपसे उत्पन्न होता है०—अमहर्द्धिकोंमें यावत् अदूरंगामियों में, अचिरस्थितिकोंमें। वह वहां देव होता है—अमहर्द्धिक यावत् अचिरस्थितिक। वहां जो उसकी बाह्य आभ्यन्तर परिषदा होती है,वह भी उसका आदर नहीं करती,उसे अपना स्वामी नहीं मानती,तथा महान् व्यक्तियोंके योग्य आसनसे उसे उपनिमंत्रित नहीं करती। जब वह बोलने लगता है, तो ४-५ देव बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं—"हे देव ! अब तुम अधिक मत बोलो।" तत्पश्चात् वह उस देव-लोकसे आयुक्षय, भवक्षय, स्थितिक्षय होने पर च्यव कर इसी मनुष्य भवमें जो ये कुल हैं०—अन्तकुल५, प्रान्तकुल६, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षाककुल अथवा कृपणकुल७। इनमें से किसी एक कुलमें पुरुष रूपसे उत्पन्न होता है—कुरूप, दुर्वर्णवाला,दुर्गन्धयुक्त, कुत्सित प्रकृतिसे युक्त,कुत्सित स्पर्श वाला, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, मन को अत्यन्त अनिष्ट, हीन स्वर वाला, दीन०, अनिष्ट०, अकान्त०, अप्रिय०, अमनोज्ञ०, अमनाम०, अनुपादेय वचन वाला। उसकी जो बाह्य……… उपनिमन्त्रित नहीं करती।……हे आर्यपुत्र ! … …मत बोलो।

जो मायी माया करके आलोचना प्रतिक्रमण करता है…. वह देवों में उत्पन्न होता है—महर्द्धिकों यावत् चिरस्थितिकों में। वह वहाँ महा२ऋद्धि यावत् सुखसे युक्त, हारसे सुशोभित वक्षस्थल वाला, वलयाकार८ कंकण—केयूर—युक्त भुजा वाला, कुण्डल—कर्णाभरणसे सुशोभित कपोल—कर्ण वाला, विविध हस्ताभरणों ९, विविध वस्त्राभरणों वाला, विचित्र माला मुकुट वाला, माङ्गलिक वस्त्रधारी, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य लिप्त शरीर वाला, प्रलम्बमान वन-मालाधारी, प्रकाशमान शरीर वाला, दिव्य रूप से, दिव्य वर्ण से, दिव्य गंध से,

---

१. आसव बनाने की भट्ठी। २. बर्तन……। ३. गोलियां……।
४. व्यन्तरादिक। ५. वरुट छिम्पक आदि। ६. चाण्डाल आदि। ७. रंक।
८. आभरण विशेषों। ९. मुद्रिकादि।

दिव्य रस से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संघात से, दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया से, दिव्य तेज से, दिव्य लेश्या से युक्त दशों दिशाओं को उद्योतित, प्रभासित करता हुआ, अतिशय रूपसे प्रभासित करता हुआ, विशाल अविच्छिन्न नाट्य गीत वादित्र—तन्त्री१ तल२ ताल३ त्रुटित४ घन मृदंग५के पटु प्रवादित६ रवपूर्वक दिव्यभोगों को भोगता रहता है। वहां जो उसकी बाह्य ········उसका आदर करती है यावत् आसन से उसे उपनिमन्त्रित करती है। जब वह····· —हे देव! आप और कहिए और कहिए। तत्पश्चात्···– कुल हैं—आढ्य यावत् बहुजन द्वारा अपरिभूत। इनमें से······ उत्पन्न होता है—सुरूप, सुन्दर वर्ण—गन्ध—रस–स्पर्श वाला, इष्ट, कान्त यावत् मनाम, अहीनस्वर यावत् मनामस्वर, आदेय वचन वाला होता है। वहां जो उसकी बाह्य········उपनिमन्त्रित करती है। जब वह········ —हे आर्यपुत्र! आप···॥७५८॥

संवर आठ प्रकार का कहा गया है०—श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय०, मनःसंवर, वचनसंवर, कायसंवर। असंवर आठ···—श्रोत्रेन्द्रियअसंवर यावत् कायअसंवर॥७५९॥

स्पर्श आठ कहे गए हैं०—कर्कश, मृदु, भारी, हलका, ठंडा, गर्म, चिकना, रूक्ष॥७६०॥

लोकस्थिति आठ प्रकार की कही गई है०—आकाशप्रतिष्ठित वात···छठे स्थान के समान यावत् कर्मप्रतिष्ठित जीव, जीवसंगृहीत अजीव, कर्मसंगृहीत जीव॥७६१॥

गणि७सम्पदा आठ प्रकार की कही गई है०—आचारसम्पत्, श्रुत०, शरीर०, वचन०, वाचना०, मति०, प्रयोग०, आठवीं संग्रहपरिज्ञा॥७६२॥ प्रत्येक महानिधि अष्ट चक्र प्रतिष्ठित आठ योजन ऊँची कही गई है॥७६३॥

समितियां आठ कही गई हैं०—ईर्यासमिति, भाषा०, एषणा०, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणा०, उच्चारप्रस्रवणखेलजल्लसिङ्घाणपरिष्ठापनिका०, मनोगुप्ति, वाग्गुप्ति, कायगुप्ति॥७६४॥

आठ गुणोंसे युक्त अनगार आलोचना सुनने योग्य होता है०—आचारों का ज्ञाता, अतिचारोंके प्रकारका निर्णायक, व्यवहारवान्, लज्जा दूर करने वाला, शुद्धि करने वाला, अपरिस्रावी८, प्रदत्त प्रायश्चितका पालन कराने वाला, अपायदर्शी९॥७६५॥

---

१. वीणा। २. हस्तताल। ३. कांसे आदिकी आवाज। शंख बांसुरी आदि। ५. तबला। ६. चतुर पुरुष द्वारा बजाये गए। ७. आचार्य। ८. आलोचक के दोषों को दूसरों से न कहने वाला। ९. अनालोचनाजनित दोषोंका दिग्दर्शन कराने वाला।

आठ गुणोंसे युक्त साधु अपने दोषोंकी आलोचना करने योग्य होता है०—जातिसंपन्न, कुल०, विनय०, ज्ञान०, दर्शन०, चरित्र०, क्षमाशील, इन्द्रियनिग्रह करने वाला ।।७६६।।

आठ प्रकार का प्रायश्चित (अपराध) कहा गया है०—आलोचनार्ह१, प्रतिक्रमणार्ह, तदुभयार्ह, विवेकार्ह, व्युत्सर्गार्ह, तपार्ह, छेदार्ह, मूलार्ह ।।७६७।।

मद के आठ भेद कहे गए हैं०—जातिमद, कुल०, वल०, रूप०, तप०, श्रुत०, लाभ०, ऐश्वर्य० ।।७६८।।

अक्रियावादी आठ कहे गए हैं०—एकवादी, अनेक०, मित०, निर्मित०, सात०, समुच्छेद०, नित्य०, न सन्ति परलोकवादी ।।७६९।।

महानिमित्त आठ प्रकार का कहा गया है०—भौम, औत्पात, स्वप्न, आन्तरीक्ष, आङ्ग, स्वर, लक्षण, व्यंजन ।।७७०।।

वचनविभक्ति आठ प्रकार की कही गई है०—निर्देश (कर्ता) में प्रथमा, उपदेशन (कर्म) में द्वितीया, करणमें तृतीया, संप्रदानमें चतुर्थी, अपादानमें पंचमी, सम्वन्धमें षष्ठी२, अधिकरणमें सप्तमी, संवोधनमें अष्टमी। "वह यह अथवा मैं" यह निर्देशमें प्रथमा विभक्ति हुई है। "इसको पढ़ो, उसको करो" यह उपदेशन में द्वितीया···। "उसके द्वारा ले जाया गया, मेरे द्वारा किया गया" यह करणमें तृतीया ।"हन्दि! नमः स्वाहायै" यह संप्रदानमें चतुर्थी···। "वहां से हटाओ, यहां से लो" यह अपादानमें पंचमी···। "उसका इसका गए हुएका" यह सम्वन्ध में षष्ठी···। "इस आधार, काल, भाव में" यह अधिकरणमें सप्तमी···। "हे युवन्" आमन्त्रण में अष्टमी···।।७७१।।

आठ स्थानों को छद्मस्थ सर्वभावसे नहीं जानता देखता०—धर्मास्तिकाय यावत् गन्ध को, वात को ।।७७२।।

आयुर्वेद आठ प्रकारका कहा गया है०—कौमारभृत्य, कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्यहत्या, जङ्गोली, भूतविद्या, क्षारतन्त्र, रसायन ।।७७३।।

देवेन्द्र देवराज शक्र की आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं०—पद्मा, शिवा, सती, अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी ।।७७४।।

देवेन्द्र देवराज ईशानकी आठ अग्र०·····—कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुन्धरा ।।७७५।। देवेन्द्र देवराज शक्रके (लोकपाल) सोम महाराजकी आठ ···। देवेन्द्र···ईशान···वैश्रवण महाराजकी आठ···।।७७६-७७७।। महाग्रह आठ कहे गए हैं०—चन्द्र, सूर्य, शुक्र, वुध, वृहस्पति, मंगल, शनैश्चर और केतु ।।७७८।।

१.···के योग्य। २. 'स्वस्वामि···'।

तृणवनस्पतिकायिक आठ प्रकारके·····—मूल, कन्द, स्कन्द, त्वक्१, शाखा, प्रवाल२, पत्र, पुष्प ।।७७९।। चौइंद्रिय जीवोंका समारम्भ न करनेसे आठ प्रकार का संयम होता है०—चक्षुमय सुखसे उसे वियुक्त नहीं करता, चक्षुमय दुःखसे संयुक्त नहीं करता। इसी प्रकार यावत् स्पर्शमय सुख·····, स्पर्शमय दुःख··· ।।७८०।। चौंद्रिय समारम्भ करनेसे आठ प्रकारका असंयम·····—चक्षुमय सुख···· वियुक्त करता है, चक्षुमय दुःखसे संयुक्त करता है। इसी प्रकार यावत् स्पर्शमय सुखसे·········।।७८१।।

सूक्ष्म आठ कहे गए हैं०—प्राणसूक्ष्म३, पनक०४, बीजसूक्ष्म, हरितसूक्ष्म, पुष्प०, अण्ड०, लयन०५, स्नेह०६ ।।७८२।। चातुरन्तचक्रवर्ती राजा भरतके आठ पुरुषयुग अन्तररहित सिद्ध यावत् सर्वदुःखोंसे रहित हुए हैं०—आदित्ययश, महायश, अतिबल, महाबल, तेजोवीर्य, कीर्त्तवीर्य, दण्ड०, जल० ।।७८३।।

पुरुषादानीय अर्हन्त पार्श्वनाथके आठ गण और आठ गणनायक हुए हैं०—शुभ, शुभघोष, वशिष्ट, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र, यश ।।७८४।। दर्शन आठ प्रकारका कहा गया है०—सम्यग्दर्शन, मिथ्या०, मिश्र०, चक्षु०, अचक्षु०, अवधि०, केवल०, स्वप्न० ।।७८५।।

उपमाकाल आठ प्रकारका···—पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गलपरिवर्त, अतीताद्धा, अनागताद्धा, सर्वाद्धा।।७८६।। अर्हन्त अरिष्टनेमिके यावत् आठवें पुरुषयुग तक युगान्त७कर भूमि कही गई है। दो वर्षकी केवली-पर्याय बाद अनेक साधु मोक्ष गए ।।७८७।। श्रमण भगवान् महावीरने आठ राजाओंको मुण्डित यावत् प्रव्रजित किया०—वीराङ्गद, वीरयश, संजय, ऐणेयक राजर्षि, श्वेत, शिव, उदायन तथा शङ्ख काशिवर्द्धन ।।७८८।।

आहार आठ प्रकारका कहा गया है०—मनोज्ञ—अशन, पान, खादिम, स्वादिम, अमनोज्ञ-अशन ४ ।।७८९।। सनत्कुमार माहेन्द्र कल्पोंके ऊपर ब्रह्मलोक कल्पमें रिष्टविमान प्रस्तरमें अखाड़े जैसी समचौकोर आकार वाली आठ कृष्णराजियाँ८ कही गई हैं०—पूर्वमें दो कृष्णराजियाँ, दक्षिणमें···, पश्चिम····, उत्तर·····। पूर्व दिशाकी भीतरी कृष्णराजि दक्षिण दिशाकी बाहिरी कृष्णराजिको स्पर्शती है। दक्षिण·· भी० कृ० पश्चिम···· बा० कृ०···। पश्चिम···भी० कृ० उत्तर बा० कृ०···। उत्तर···भी० कृ० पूर्व···बा० कृ०·····। पूर्व पश्चिमकी बाहिरी दो कृष्णराजियाँ षट्कोण वाली हैं। उत्तर दक्षिण·········तिकोण हैं।

---

१. छाल। २. अंकुर। ३. चलने पर ही दिखाई देने वाला प्राणी। ४. पांच रंगकी काई। ५. कीटिकानगरादि। ६. वर्फ धुंध आदि। ७. मोक्ष। ८. कृष्णपुद्गलपंक्तियां।

तथा समस्त भीतरी कृष्णराजियाँ चौकोर हैं। इन आठ कृष्णराजियोंके आठ नाम कहे गए हैं०—कृष्णराजि, मेघराजि, मेघ, मेघवती, वातपरिघा, वातप्रतिक्षोभ, देवपरिघ, देवप्रतिक्षोभ। इन आठ कृष्णराजियोंके आठ अवकाशान्तरोंमें आठ लोकान्तिक विमान कहे गए हैं०—अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभङ्कर, चन्द्राभ, सूर्याभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्नेयाभ। इन आठ लोकान्तिक विमानोंमें आठ प्रकारके लोकान्तिक देव रहते हैं०—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और आग्नेय। इन आठों लोकान्तिक देवोंकी अजघन्यमनुत्कृष्ट आठ सागरोपमकी स्थिति कही गई है ॥७९०॥

आठ धर्मास्तिकायके मध्यप्रदेश कहे गए हैं। आठ अधर्मा०...... । आठ आकाशा०......। आठ जीवके...... ॥७९१॥ महापद्म अर्हन्त आठ राजाओंको मुण्डित यावत् दीक्षित करेंगे०—पद्म, पद्मगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पद्मध्वज, धनुर्ध्वज, कनकरथ, भरत ॥७९२॥

कृष्ण वासुदेवकी आठ पट्टरानियाँ अर्हन्त अरिष्टनेमिके पास मुण्डित यावत् दीक्षित हुईं, सिद्ध यावत् सर्वदुःखोंसे रहित हुईं०—पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुषीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी ॥७९३॥

वीर्यप्रवाद पूर्वकी आठ वस्तुएँ[१] तथा आठ चूलिकावस्तुएँ कही गई हैं ॥७९४॥ गतियाँ आठ कही गई हैं०—नरकगति, तिर्यच, मनुष्य०, देव०, सिद्धि०, गुरु०[२], प्रणोदन०[३], प्राग्भार०[४] ॥७९५॥ गंगा, सिंधु, रक्ता, रक्तवती देवियोंके द्वीप आठ २ योजन आयाम विष्कम्भ[५] से कहे गए हैं ॥७९६॥

उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख, विद्युत्दन्त द्वीप आयामविष्कम्भसे आठ २ सौ योजन कहे गए हैं ॥७९७॥ कालोदसमुद्र चक्रवालविष्कम्भ[६] की अपेक्षा आठ लाख योजनका कहा गया है ॥७९८॥ अभ्यन्तर पुष्करार्ध चक्रवाल......। इसी प्रकार बाह्यपुष्करार्ध भी ॥७९९॥ प्रत्येक चातुरन्तचक्रवर्ती राजाका काकिणी रत्न भारमें आठ सुवर्णप्रमाण[७], ६ तल, १२ कोने, ८ कोनोंके विभागों वाला, एरणके आकारका होता है ॥८००॥

मगध देशके योजनका प्रमाण आठ हजार धनुषका कहा गया है ॥८०१॥ जम्बू सुदर्शना आठ योजन ऊंचा बहुमध्यदेश भागमें आठ योजन विष्कम्भ वाला कुछ अधिक आठ योजन सर्वाग्र[८] से कहा गया है ॥८०२॥ कूटशाल्मली आठ

---

१. अध्ययन। २. स्वाभाविक। ३. प्रेरणासे। ४. बोझके कारण झुककर गति नाववत्। ५. लम्बाई—चौड़ाई। ६. चक्रवत् गोलाकार विस्तार। ७. ५ रत्ती-एक कर्ममाषक, १६ कर्ममाषक-एक सुवर्ण। ८. सर्वप्रमाण।

योजन ""इसी प्रकार ॥८०३॥ तिमिस्रगुफा आठ योजन ऊँची कही गई है ॥८०४॥ खण्डप्रपातगुफा आठ योजन......॥८०५॥

जम्बूद्वीपस्थित मन्दर पर्वतकी पूर्व दिशामें सीता महानदीके दोनों तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत कहे गए हैं०—चित्रकूट, पद्म०, नलिन०, एकशैल, त्रिकूट, वैश्रमण०, अञ्जन, मातञ्जन ॥८०६॥ जंबू०......पश्चिममें सीतोदा महानदी ....—अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविष, सुखावह, चन्द्रपर्वत, सूर्य०, नागपर्वत, देव० ॥८०७॥

जंबू०......पूर्वमें सीता महानदीके उत्तरमें आठ २ चक्रवर्ती-विजय कहे गए हैं०—कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त यावत् पुष्कलावर्त ॥८०८॥ जंबू० मंदर ...पूर्वमें सीता महानदीके दक्षिणमें......—वत्स, सुवत्स यावत् मङ्गलावती ॥८०९॥ जंबू० मंदर...पश्चिममें सीतोदा महानदीके दक्षिण में......—पक्ष्म यावत् सलिलावती ॥८१०॥ ......सी० म० के उत्तरमें......—वप्र, सुवप्र, यावत् गन्धिलावती ॥८११॥ जंबू० मन्दर...पूर्वमें सीता महानदीके उत्तरमें आठ राजधानियाँ कही गई हैं०—क्षेमा, क्षेमपुरी यावत् पुण्डरीकिणी ॥८१२॥ जंबू०........सी० म० के दक्षिणमें.......—सुषीमा, कुण्डला यावत् रत्नसंचया ॥८१३॥

जंबू० मन्दर० पश्चिममें सीतोदा महानदीके दक्षिणमें......—अश्वपुरी यावत् वीतशोका ॥८१४॥........सीतोदा म० के उत्तरमें...—विजया, वैजयन्ती यावत् अयोध्या ॥८१५॥ जंबू० मन्दर० पूर्वमें सीता महानदीके उत्तरमें (...राजधानियोंमें) उत्कृष्ट आठ अर्हन्त, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव—आठ वासुदेव उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे ॥८१६॥

जंबू० मन्दर० पूर्वमें सी० म० के दक्षिणमें उत्कृष्ट.... इसी प्रकार ॥८१७॥ जंबू०.....पश्चिममें सीतोदा म० के दक्षिणमें.....पूर्ववत् । इसी प्रकार उत्तरमें भी ॥८१८॥ जंबू० मंदर० पूर्वमें सीता० म० के उत्तरमें आठ दीर्घवैताढ्य, आठ तिमिस्रगुफा, आठ खण्डप्रपातगुफा, आठ कृतमालकदेव, आठ नृत्यमालक०, आठ गङ्गाकुण्ड, आठ सिंधु०, आठ गंगा, आठ सिन्धु, आठ ऋषभकूटपर्वत, आठ ऋषभकूटदेव कहे गए हैं। जंबू० मंदर० पूर्वमें सीता म० के दक्षिण में आठ दीर्घ वै० इसी प्रकार यावत् आठ ऋषभकूट देव...। केवल यहां रक्ता, रक्तवती नदियाँ और उन्हींके कुण्ड जानने चाहिएँ ॥८१९॥

जंबू० मंदर० पश्चिममें सीतोदा म० के दक्षिणमें आठ दीर्घ वै० यावत् आठ सिन्धु यावत् आठ ऋषभकूट देव...।...सीतोदा म० के उत्तरमें आठ दीर्घ वै० यावत् आठ नाट्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तावतीकुण्ड, आठ

रक्ता यावत् आठ ऋषभकूटदेव······।।८२०।। मन्दरचूलिका बहुमध्य देशभागमें विष्कम्भकी अपेक्षा आठ योजनकी कही गई है ।।८२१।।

धातकीखण्डद्वीपके पूर्वार्धमें धातकीवृक्ष आठ योजन ऊँचा, बहुमध्यदेश-भागमें आठ योजन विष्कम्भ वाला, कुछ अधिक आठ योजन सर्वाग्रसे कहा गया है। इसी प्रकार धातकीवृक्षसे लेकर मंदरचूलिका तकका समस्त वर्णन जम्बूद्वीपके समान कहना चाहिए। इसी प्रकार पश्चिमार्द्धमें भी महाधातकीवृक्षसे लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक ।।८२२।।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपपूर्वार्धमें पद्मवृक्षसे लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक और पु० पश्चिमार्धमें महापद्मवृक्ष से लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक जानें ।।८२३।। जंबू० मन्दर पर्वतके भद्रशालवनमें आठ दिग्हस्तिकूट[1] कहे गए हैं०—पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अञ्जनगिरि, कुमुद, पलाशक, अवतंस, आठवां रोचनगिरि ।।८२४।।

इस जम्बूद्वीपकी जगती[2] आठ योजन ऊँची तथा मध्यभागमें विष्कम्भ की अपेक्षा आठ योजनकी कही गई है ।।८२५।। जंबू०मन्दर पर्वतके दक्षिणमें महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर आठ कूट गए हैं०—सिद्ध, महाहिमवान्, हिमवान्, रोहित, ह्रीकूट, हरिकान्त, हरिवर्ष और वैडूर्यकूट ।।८२६।। जंबू० मंदर० उत्तरमें रुक्मि वर्षधर पर्वत पर आठ कूट······—सिद्ध, रुक्मी, रम्यक्, नरकान्त, बुद्धि, रुक्मकूट, हैरण्यवत और मणिकाञ्चन ।।८२७।।

जंबू० मन्दर० पूर्वमें रुचक० आठ कूट······—रिष्ट, तपनीय, काञ्चन, रजत, दिशासौवस्तिक, प्रलम्ब, अञ्जन और अञ्जनपुलक। उनमें आठ दिक्कुमारी—महत्तरिकाएँ महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाली रहती हैं०—नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता ।।८२८।।

जंबू० मन्दर० दक्षिणमें रुचकवर० आठ कूट·········—कनक, काञ्चन, पद्म, नलिन, शशि, दिवाकर, वैश्रवण एवं वैडूर्य। उनमें आठ दि० ····—समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा ।।८२९।।

जंबू० मन्दर० पश्चिममें रुचकवर० आठ कूट·······—स्वस्तिक, अमोह, हिमवान्, मन्दर, रुचक, रुचकोत्तम, चन्द्र और सुदर्शन। उनमें आठ दि० ·······—

---

१. चारों दिशाओंमें हस्तिके आकार वाले। २. वेदिका की आधारभूत पाली।

रक्ता यावत् आठ ऋषभकूटदेव······॥८२०॥ मन्दरचूलिका बहुमध्य देशभागमें विष्कम्भकी अपेक्षा आठ योजनकी कही गई है ।।८२१।।

धातकीखण्डद्वीपके पूर्वार्धमें धातकीवृक्ष आठ योजन ऊँचा, बहुमध्यदेशभागमें आठ योजन विष्कम्भ वाला, कुछ अधिक आठ योजन सर्वाग्रसे कहा गया है। इसी प्रकार धातकीवृक्षसे लेकर मंदरचूलिका तकका समस्त वर्णन जम्बूद्वीपके समान कहना चाहिए। इसी प्रकार पश्चिमार्द्धमें भी महाधातकीवृक्षसे लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक ।।८२२।।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपपूर्वार्धमें पद्मवृक्षसे लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक और पु० पश्चिमार्धमें महापद्मवृक्ष से लेकर यावत् मन्दरचूलिका तक जानें ।।८२३।। जंबू० मन्दर पर्वतके भद्रशालवनमें आठ दिग्हस्तिकूट१ कहे गए हैं०—पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अञ्जनगिरि, कुमुद, पलाशक, अवतंस, आठवां रोचनगिरि ।।८२४।।

इस जम्बूद्वीपकी जगती२ आठ योजन ऊँची तथा मध्यभागमें विष्कम्भ की अपेक्षा आठ योजनकी कही गई है ।।८२५।। जंबू०मन्दर पर्वतके दक्षिणमें महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर आठ कूट गए हैं०—सिद्ध, महाहिमवान्, हिमवान्, रोहित, ह्लीकूट, हरिकान्त, हरिवर्ष और वैडूर्यकूट ।।८२६।। जंबू० मंदर० उत्तरमें रुक्मि वर्षधर पर्वत पर आठ कूट······—सिद्ध, रुक्मी, रम्यक्, नरकान्त, बुद्धि, रुक्मकूट, हैरण्यवत और मणिकाञ्चन ।।८२७।।

जंबू० मन्दर० पूर्वमें रुचक० आठ कूट······—रिष्ट, तपनीय, काञ्चन, रजत, दिशासौवस्तिक, प्रलम्ब, अञ्जन और अञ्जनपुलक। उनमें आठ दिक्कुमारी—महत्तरिकाएँ महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाली रहती हैं०—नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता ।।८२८।।

जंबू० मन्दर० दक्षिणमें रुचकवर० आठ कूट·········—कनक, काञ्चन, पद्म, नलिन, शशि, दिवाकर, वैश्रवण एवं वैडूर्य। उनमें आठ दि० ····—समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा ।।८२९।।

जंबू० मन्दर० पश्चिममें रुचकवर० आठ कूट·······—स्वस्तिक, अमोह, हिमवान्, मन्दर, रुचक, रुचकोत्तम, चन्द्र और सुदर्शन। उनमें आठ दि० ······—

१. चारों दिशाओंमें हस्तिके आकार वाले। २. वेदिका की आधारभूत पाली।

इलादेवी, सुरा०, पृथिवी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, सीता और आठवीं भद्रा ॥८३०॥ जंबू० मन्दर० उत्तरमें रुचकवर० आठ कूट⋯– रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न, रत्नसंचय, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित। उन पर आठ दि०⋯⋯—अलम्बुषा, मितकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सर्वगा, श्री और ह्री ॥८३१॥

आठ अधोलोकमें रहने वाली दिक्कुमारिमहत्तरिकाएँ कही गई हैं०—भोगङ्करा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा, वलाहका। आठ ऊर्ध्वलोक⋯⋯—मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधरा, विचित्रा, पुष्पमाला, अनिन्दिता ॥८३२॥

इन आठ कल्पों में तिर्यञ्च एवं मनुष्य देवरूपसे उत्पन्न होते हैं०—सौधर्म यावत् सहस्रार ॥८३३॥ इन आठ कल्पोंमें आठ इन्द्र कहे गए हैं०—शक्र यावत् सहस्रार ॥८३४॥ इन आठ इन्द्रोंके आठ पारियानिक[1] विमान कहे गए हैं०—पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्दावर्त, कामरस, प्रीतिमान और विमल ॥८३५॥

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा ६४ दिन रात में २८८ भिक्षाओंसे यथासूत्र यावत् अनुपालित होती है ॥८३६॥ संसारी जीव आठ प्रकारके कहे गए हैं०—प्रथमसमयनैरयिक, अप्रथम० इसी प्रकार यावत् अप्रथमसमयदेव ॥८३७॥ समस्त जीव आठ⋯⋯—नारकी, तिर्यञ्च, तिर्यचिनी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी, सिद्ध ॥८३८॥ अथवा सर्व जीव आठ⋯⋯—मतिज्ञानी यावत् केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुत०, विभंगज्ञानी ॥८३९॥

संयम आठ प्रकारका कहा गया है०—प्रथमसमय-सूक्ष्मसंपराय-सरागसंयम, अप्रथमस०, प्रथमसमयवादरसंयम, अप्रथम० वा०, प्रथमसमय-उपशान्तकषाय—वीतरागसंयम, अप्रथम० उ०, प्रथमसमयक्षीणकषायवीतरागसंयम, अप्रथम० क्षी० ॥८४०॥

पृथिवियां आठ कही गई हैं०—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी और ईषत्प्राग्भारा ॥८४१॥ ईषत्प्राग्भारा पृथिवीका बहुमध्यदेशभागीय आठ योजन प्रमाणक्षेत्र उतना ही स्थूल कहा गया है ॥८४२॥

ईषत्प्राग्भारा पृथिवीके आठ नाम हैं०—ईषत्, ईषत्प्राग्भारा, तनु, तनु-तनु, सिद्धि, सिद्धालय, मुक्ति और मुक्तालय ॥८४३॥ साधु पुरुषोंको आठ स्थानोंमें भली भांति पुरुषार्थ, प्रयत्न और पराक्रम करना चाहिए और उनमें कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए—अश्रुत[2] धर्मोंका भली भांति श्रवण करनेके लिए प्रयत्न करना

---

१. पांचों कल्याणक व वंदनार्थ उपयोग में आने वाले विमान। २. नहीं सुने हुए।

चाहिए। श्रुतधर्मोंको मनमें अच्छी तरहसे जमाने एवं धारण करने·········। पापकर्मोंको संयमसे न करनेका प्रयत्न······। तपसे पूर्वोपार्जित कर्मोंकी निर्जरा एवं विशुद्धिके लिए प्र०······। शिष्य समुदायकी वृद्धिके लिए······। नवदीक्षित को आचार गोचर विधि सिखानेमें प्रयत्नशील होना चाहिए। रोगी की ग्लानि-रहित सेवा करनेमें प्रयत्न०·········। साधर्मिकोंमें कलह होने पर रागद्वेषसे रहित होकर बिना पक्षपातके मध्यस्थभावसे "ये मेरे साधर्मिक कलह-क्रोध-तू तू मैं २ से रहित कैसे हों" यह सोचकर कलहको शान्त करने में······।।८४४।।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पोंमें विमान आठ सौ योजन ऊँचे कहे गए हैं।।८४५।। अर्हन्त अरिष्टनेमि की सदेवमनुजासुर परिषदामें वादमें अपराजित आठ सौ वादियोंकी उत्कृष्ट वादिसम्पत् थी।।८४६।।

केवलिसमुद्घात आठ समयकी स्थिति वाला कहा गया है०—प्रथम समय में जीवप्रदेशसंघातको ज्ञानाभोगसे दण्ड जैसा करते हैं, द्वितीय समयमें उसी दण्डको लोकान्तगामी कपाट जैसा करते हैं। तृतीय समयमें उसी कपाटको लो० मन्थान[1]के समान करते हैं। चौथे समयमें वे आत्मप्रदेशों द्वारा समग्रलोक को पूरित करते हैं। पांचवें······आत्मप्रदेशोंको संकुचित करते हैं। छठे समयमें मन्थान को······। सातवें समयमें कपाटका दण्डमें संकोच करते हैं। आठवें······ दण्डका संकोच······।।८४७।।

श्रमण भगवान् महावीरकी आठ सौ अनुत्तरोपपातिक[2] देवगतिरूप कल्याण-प्राप्त यावत् भविष्यमें मोक्षाधिकारिणी उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक(शिष्य)-संपत् थी।।८४८।। व्यन्तर देव आठ प्रकारके कहे गए हैं०—पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व।।८४९।।

इनके आठ (आवास) वृक्ष कहे गए हैं०—पिशाचोंका कदम्ब, यक्षोंका वट, भूतोंका तुलसी, राक्षसोंका कण्डक, किन्नरोंका अशोक, किंपुरुषोंका चम्पक, भुजङ्गों का नागवृक्ष और गन्धर्वोका तिन्दुक।।८५०।।

इस रत्नप्रभा पृथिवीके बहुसमरमणीय भूमि भागसे आठ सौ योजन ऊपर सूर्य–विमान किसी बाधाके विना गति करता है।।८५१।।

आठ नक्षत्र चन्द्रके साथ प्रमर्द[3]योगसे युक्त होते हैं०—कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा।।८५२।।

जंबूद्वीपके द्वार आठ योजन ऊँचे कहे गए हैं। सभी द्वीप समुद्रोंके द्वार······।।८५३।। पुरुषवेदनीय कर्म की बन्धस्थिति जघन्य आठ वर्षकी कही गई है।।८५४।। यशःकीर्ति नाम कर्मकी बंधस्थिति जघन्य आठ

१. रई। २. अनुत्तरविमान में उत्पन्न होने वाली। ३. स्पर्श।

मुहूर्त……॥८५५॥ उच्चगोत्रकर्मकी भी इसी प्रकार ॥८५६॥ तेइन्द्रिय जीवों की आठ लाख जातिकुल योनि प्रमुख कही गई हैं ॥८५७॥ जीवोंने आठ स्थान निर्वर्तित पुद्गलोंका चयन किया, करते हैं, और करेंगे ०—प्रथमसमयनैरयिक निर्वर्तित यावत् अप्रथमसमयदेवनिर्वर्तित, इसी प्रकार उपचाय यावत् निर्जरा ॥८५८॥

आठ प्रदेशवाले स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं ॥८५९॥ आठ प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त……॥८६०॥ यावत् आठगुण रूक्ष पुद्गल अनन्त……॥८६१॥

॥ आठवां स्थान समाप्त ॥

नवम स्थानक

नव कारणोंसे साधु साम्भोगिक को विसाम्भोगिक करते हुए जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं करता०—आचार्य प्रत्यनीक१ को, उपाध्याय०, स्थविर०, कुल०, गण०, संघ०, ज्ञान०, दर्शन०, चरित्र० ॥८६२॥

नव ब्रह्मचर्य (प्रतिपादक अध्ययन२) कहे गए हैं०—शस्त्रपरिज्ञा, लोक-विजय यावत् उपधानश्रुत, महापरिज्ञा ॥८६३॥

नव ब्रह्मचर्यगुप्तियां३ कही गई हैं०—स्त्री, पशु, पण्डक से रहित शयना-सनों४ का सेवन करना, स्त्रीकथा न कहना, स्त्रीके आसन पर न बैठना, स्त्रियों के मनोहर एवं मनोरम अंगोपांगोंका अवलोकन–चिन्तन न करना, सरस आहार न करना, परिमाणसे अधिक आहार न करना, पूर्वभुक्त भोगोंका स्मरण न करना, शब्द, रूप, एवं प्रशंसामें आसक्त न होना, सुखमें आसक्त न होना ॥८६४॥

नव ब्रह्मचर्यअगुप्तियां०—…पंडकसहित …, स्त्री कथा कहना,……पर बैठना,……चिन्तन करना, सरस आहार करना, अतिमात्रा में आहार करना, ……स्मरण करना,……आसक्त होना, सातासुखमें प्रतिबद्ध होना ॥८६५॥

अभिनन्दन अरिहन्तसे सुमति जिनेन्द्र ९ लाख सागरोपम कोटि के बाद उत्पन्न हुए ॥८६६॥

नौ तत्वभूत पदार्थ कहे गए हैं०—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष ॥८६७॥

संसारी जीव नौ प्रकारके कहे गए हैं०—पृथिवीकायिक यावत् वनस्पति०, द्वीन्द्रिय यावत् पञ्चेन्द्रिय ॥८६८॥

पृथिवीकायिक नौगतिक नौआगतिक कहे……—पृथिवीकायिक पृथिवी-

---

१. विरोधी। २. आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध में। ३. वाड़। ४. स्थान आदिकों।

कायिकोंमें उत्पन्न होता हुआ पृथिवीकायिकों से यावत् पंचेन्द्रियोंसे आकर उत्पन्न हो सकता है। वह पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकत्वको छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिक रूपसे यावत् पंचेन्द्रियरूपसे उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार अप्कायिक भी यावत् पंचेन्द्रिय तक ॥८६९॥

सर्व जीव नौ प्रकार के···—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, नैरयिक, पंचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्य, देव, सिद्ध ॥८७०॥

अथवा सर्व······—प्रथमसमयनैरयिक, अप्रथम० यावत् अप्रथमसमयदेव, सिद्ध ॥८७१॥

सर्व जीवोंकी अवगाहना नौ प्रकार की कही गई है०—पृथिवीकायिक-अवगाहना, अप्० यावत् वनस्पति०, द्वीन्द्रियावगाहना, त्रीन्द्रि०, चौइन्द्रि०, पंचेन्द्रिया० ॥८७२॥

नौ स्थानोंसे जीवोंने संसारमें परिभ्रमण किया, करते हैं और करेंगे०—पृथिवीकायिक रूपसे, यावत् पञ्चेन्द्रियरूपसे ॥८७३॥

नौ कारणोंसे रोगोत्पत्ति होती है०—अधिक भोजन करना, कुपथ्य आहार करना, वहुत सोना, बहुत जागना, मलनिरोध, पेशाबको रोकना, बहुत दूर तक चलना, प्रकृति के विरुद्ध भोजन करना, काम विकारका उत्पन्न होना ॥८७४॥

दर्शनावरणीय कर्म ९ प्रकार का कहा गया है०—निद्रा, निद्रानिद्रा१, प्रचला२, प्रचलाप्रचला३, स्त्यानगृद्धि४, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षु०, अवधि०, केवल० ॥८७५॥

अभिजित् नक्षत्र कुछ अधिक ९ मुहूर्त्त तक चन्द्रमाके साथ योग करता है ॥८७६॥ अभिजित् आदि ९ नक्षत्र चन्द्रके उत्तर भागमें योग करते हैं०—अभिजित् श्रवण धनिष्ठा यावत् भरणी ॥८७७॥

इस रत्नप्रभा पृथिवीके बहुसमरमणीय भूमि भाग से नौ सौ योजन ऊपर दूर तारामण्डल भ्रमण करता है ॥८७८॥

जंबूद्वीपमें नौ योजन प्रमाण वाले मत्स्य पहले प्रविष्ट हुए, होते हैं, और होंगे ॥८७९॥

इस जम्वूद्वीपके भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में नौ वलदेव-वासुदेवोंके पिता हुए हैं०—प्रजापति, ब्रह्मा, रुद्र, सोम, शिव, महासिंह, अग्निशिख, दशरथ और वसुदेव। यहांसे आगे जैसे समवायमें कहा सारा वर्णन जानना चाहिए, यावत् ९वें वलदेव आगामी भव में सिद्ध होंगे ॥८८०॥

---

१. वड़ी मुश्किलसे जागना। २. वैठे-वैठे या खड़े-खड़े सोना। ३. चलते-चलते सोना। ४. नींद में ही भारी काम कर डालना।

इस ··आगामी उत्सर्पिणीमें नौ···पिता होंगे, नव बलदेव-वासुदेवोंकी माताएँ होंगी, इसी प्रकार सारा वर्णन समवायांगके समान जानना, यावत् महा-भीम एवं सुग्रीव तक। ये सब कीर्तिप्रधान वासुदेवोंके प्रतिवासुदेव होंगे। सभी चक्रयोधनशील होंगे एवं वासुदेवके द्वारा प्रतिनिर्वतित अपने चक्र द्वारा मारे जायेंगे ॥८८१॥

चौड़ाईकी अपेक्षा प्रत्येक महानिधि नौ योजनकी कही गई है। प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजाकी नौ महानिधियां कही गई हैं०—नैसर्प, पाण्डुक, पिङ्गलक, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक एवं महानिधि शंख(१)। नैसर्पमें ग्राम, आकर, नगर, पत्तन, द्रोणमुख, मडम्ब, स्कन्धावार और गृहोंकी स्थापना होती है (२)। गिन कर दिए जाने योग्य गणिम पदार्थका–मुद्रा आदि का, बीजोंका, मान, उन्मान, प्रमाणका ज्ञान तथा धान्य एवं बीजोंकी उत्पत्ति, पाण्डुक महानिधिमें कही गई है (३)। पुरुषों, स्त्रियों, घोड़ों एवं हाथियोंकी समस्त आभरणविधि पिङ्गल महानिधिमें···· (४)। सर्वरत्न महानिधिमें चक्रवर्तीके श्रेष्ठ १४ रत्न उत्पन्न होते हैं, ७ एकेन्द्रिय और ७ पंचेन्द्रिय (५)। महा-पद्म महानिधिमें रंगे हुये तथा धोये हुये समस्त प्रकारके वस्त्रोंकी एवं सर्वप्रकारकी रचनाओं१की निष्पत्ति(उत्पत्ति) कही गई है(६)। काल महानिधिमें, अगले तीन वर्षोंमें होने वाली, पिछले तीन वर्षोंमें हुई २ घटनाओं एवं वर्तमान संबंधी शुभ अशुभ कालका बोध होता है। तथा १०० प्रकार२ के शिल्प एवं प्रजाके हितकर कृषि वाणिज्य आदि कर्म होते हैं (७)। महाकाल निधिमें लोहे, रांगे, शीशे, चांदी, सोने, मणि, मोती, स्फटिक एवं मूंगे आदिकी खानोंकी उत्पत्ति होती है (८)। माणवक महानिधिमें योद्धाओंकी, कवचोंकी, शस्त्रोंकी, समस्त युद्धनीति एवं दण्डनीतिकी······(९)। शंख म० में नाट्यविधि, नाटकविधि, चतुर्विध काव्य तथा समस्त वाद्योंकी······(१०)। ये महानिधियाँ चक्राष्टकके मध्यमें स्थित, आठ योजन ऊंची, नौ योजन विस्तृत एवं बारह योजन लम्बी, मंजूषा-कार३ एवं गंगा महानदीके उद्गम द्वारमें होती हैं। वैडूर्यमणि निर्मित कपाट-युक्त, सुवर्णमय, अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण, शशि, सूर्य एवं चक्रके चिह्नोंसे युक्त, समतल, जूआ जैसी गोल एवं लम्बी होती हैं (११-१२)। ये महानिधियाँ सदृश नाम वाले, पल्योपमस्थिति वाले देवताओंके निवासस्थान रूप हैं। ये अक्रेय एवं देवाधिपत्यसे युक्त हैं। ये नौ महानिधियाँ अत्यधिक धन, रत्नसमूहसे समृद्ध होती हैं, और सभी चक्रवर्तियोंके आधीन होती हैं (१३-१४) ॥८८२॥

विकृतियाँ नौ कही गई हैं०—दूध, दही, मक्खन, घी, तैल, गुड़, मधु, मद्य

---

१. शुक मयूर आदिके चित्र रूप। २. घट-लोह-चित्र-वस्त्र एवं नापितोंके २०-२० प्रकारके शिल्प। ३. पेटी जैसो।

एवं मांस ॥८८३॥ यह औदारिक शरीर नौ छिद्रोंसे परिस्रवित१ होता है०—दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो नासिकाद्वार, मुख, मूत्रेन्द्रिय एवं गुदा ॥८८४॥ पुण्य नौ प्रकारका कहा गया है०—अन्नपुण्य, पान०, २लयन०, शयन०, वस्त्र०, मनःपुण्य, वचन०, काय०, नमस्कार० ॥८८५॥

पापबन्धके ९ कारण कहे गये हैं०—प्राणातिपात, मृषावाद यावत् परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ ॥८८६॥ पापश्रुतप्रसंग नौ प्रकारका कहा गया है०—उत्पात, निमित्त, मन्त्र, आख्यायक, चैकित्सक, कला, आवरण, अज्ञान और मिथ्याप्रवचन ॥८८७॥ नौ नैपुणिक३ कहे गये हैं०—संख्यान, निमित्त, कायिक, पुराण, परिहस्तिक, परपण्डित, वादिक, भूतिकर्म, चिकित्सक ॥८८८॥

श्रमण भगवान महावीरके ९ गण थे०—गोदासगण, उत्तरबलिस्सह०, उद्देह०, चारण०, उडडुवादिक०, विश्ववादिक०, कामर्द्धिक०, मानव०, कोटिक० ॥८८९॥ श्रमण भगवान महावीरने श्रमण निर्ग्रन्थोंकी भिक्षा ९ कोटि विशुद्ध कही है०—जीवोंकी हिंसा न करे, न करावे, न करते हुए को अच्छा जाने। न भोजन स्वयं पकावे, न पकवावे, न पकाते हुए को अच्छा जाने। न स्वयं खरीदे, न खरीदवावे, न खरीदते को अच्छा जाने ॥८९०॥

देवेन्द्र देवराज ईशानके लोकपाल वरुण महाराजकी नौ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ॥८९१॥ देवेन्द्र······ईशानकी अग्रमहिषियोंकी स्थिति ९ पल्योपमकी कही गई है ॥८९२॥ ईशान कल्पमें देवियोंकी स्थिति उत्कृष्टसे नौ प०··· ॥८९३॥ नौ देवनिकाय कहे गये हैं०—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट ॥८९४॥

अव्याबाध लोकान्तिक देवोंके नौ मुख्य देव और ९००देव हैं। इसी प्रकार आग्नेय, एवं रिष्टोंके भी ॥८९५-८९६॥ नौ ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ४ कहे गए हैं ०— ५ हेट्ठिम २ ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, हेट्ठिममध्यम०, हेट्ठिमउपरितन०, मध्यमाधस्तन०, मध्यममध्यम०, मध्यमोपरितन०, उपरितनाधस्तन०, उपरितनमध्यम०, उपरितनोपरितन० ॥८९७॥ इन नौ ग्रैवेयक विमान प्रस्तटोंके नौ नाम हैं०—भद्र, सुभद्र, सुजात, सौमनस, प्रियदर्शन, सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध और यशोधर ॥८९८॥

आयु परिणाम ९ प्रकारका कहा गया है०—गतिपरिणाम, गतिबन्धन०, स्थिति०, स्थितिबन्धन०, ऊर्ध्वगौरव०६, अधो०, तिर्यग०, दीर्घगौरव०, ह्रस्व०

---

१. बहता। २. स्थान। ३. चतुर आचार्य आदि। ४. विशेषरचना-समूह। ५. अधस्तन। ६. गमन।

॥८९९॥ नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा ८१ दिनरातमें और ४०५ दत्तियोंमें यथासूत्र यावत् आराधित होती है ॥९००॥ प्रायश्चित नौ प्रकारका कहा गया है०—आलोचनार्ह यावत् मूलार्ह, अनवस्थाप्यार्ह१ ॥९०१॥

जंबूद्वीपस्थित मन्दर पर्वत की दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्रमें दीर्घ वैताढ्य पर नौ कूट कहे गए हैं०—सिद्ध, भरत, खण्डक, माणि, वैताढ्य, पूर्ण, तिमिस्र-गुफा, भरत और वैश्रवण ॥९०२॥ जंबू०······द० दिशामें निषध वर्षधर पर्वत पर ९······—सिद्ध, निषध, हरिवर्ष, विदेह, ह्री, धृति, शीतोदा, अपरविदेह, रुचक ॥९०३॥ जंबू० मं० पर्वतके नन्दन वनमें ९ कूट······—नन्दन, मन्दर, निषध, हिमवान्, रजत, रुचक, सागरचित्र, वज्र एवं बलकूट ॥९०४॥

जंबू० के माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर नौ······—सिद्ध, माल्यवान, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, शीता, पूर्णनामा, हरिसहकूट ॥९०५॥

जंबू० के कक्ष दीर्घ वैताढ्य पर नौ······—सिद्ध, कच्छ, खण्डक, माणि, वैताढ्य, पूर्ण, तिमिस्रगुफा, कच्छ, वैश्रवण ॥९०६॥ जंबू० सुकक्ष······—सिद्ध, सुकक्ष यावत् ति०, सुकच्छ और वैश्रवण ॥९०७॥

इसी प्रकार यावत् पुष्करावती दीर्घ वैताढ्य पर, वत्स दी० यावत् मंगला-वती दीर्घ वैताढ्य पर जानना चाहिए ॥९०८॥ जंबू० के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत पर······—सिद्ध, विद्युत, देवकुरु, पद्म, कनक, स्वस्तिक, शीतोदा, सजल, हरिकूट ॥९०९॥ जंबू० पक्ष्म दीर्घ०······—सिद्ध, पद्म, खंडक, माणी इसी प्रकार यावत् सलिलावती दीर्घ वै०। इसी प्रकार वप्र दी० यावत् गंधिलावती दी० पर नौ······—सिद्ध, गंधिल, खण्डक, माणि, वैताढ्य, पूर्ण, तिमिस्रगुहा, गन्धिलावती और वैश्रवण। इस प्रकार सभी दीर्घ वैताढ्यों में दो कूट समान नाम वाले और बाकी पूर्ववत् ॥९१०॥

जंबू० मन्दर० के उत्तरमें नीलवान् वर्षधर पर्वत पर नौ कूट······—सिद्ध, नीलवान्, विदेह, सीता, कीर्ति, हरिकान्ता, अपरविदेह, रम्यककूट और उपदर्शन ॥९११॥

जंबू० मं० उत्तरमें ऐरवत दीर्घ वैताढ्य पर ९·········—सिद्ध, रत्न, खंडक, माणि, वैताढ्य, पूर्ण, तिमिस्रगुहा, ऐरवत और वैश्रवण ॥९१२॥

पुरुषोंमें श्रेष्ठ पार्श्वनाथ अर्हन्त वज्रऋषभनाराच संहनन वाले, सम-चतुरस्रसंस्थान वाले, नौ हाथ ऊँचे थे ॥९१३॥

श्रमण भगवान महावीर के तीर्थ में नौ जीवों ने तीर्थंकर नाम गोत्र कर्मका बन्ध किया०—श्रेणिक, सुपार्श्व, उदायी, पोट्टिल अणगार, दृढ़ायु, शंख, शतक, श्राविका सुलसा और रेवती ने ॥९१४॥

१. तपस्या कराकर व्रतोंका आरोपण करना

हे आर्यो ! ये कृष्ण वासुदेव, (बल)राम बलदेव, पेढालपुत्र उदक, पोट्टिल, शतक गाथापति, दारुक निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थीपुत्र–सत्यकि, श्राविका वृद्ध-अम्बड परिव्राजक, एवं पार्श्वापत्यीया सुपार्श्वा आर्यिका ये सब आगामी उत्सर्पिणी में चतुर्याम धर्मकी प्ररूपणा करके सिद्धि को प्राप्त करेंगे यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ।।६१५।।

हे आर्यो ! यह श्रेणिक राजा भिम्भसार काल मासमें काल करके इस रत्नप्रभा पृथिवीके सीमन्तक नरकमें ८४ हजार वर्षकी स्थितिवाले नैरयिकोंमें नारकी रूपसे उत्पन्न होगा। वहां वह नारकी होगा—काला, काला दिखाई देने वाला यावत् वर्णसे परमकृष्ण। वहां वह उज्ज्वल१ यावत् असह्य वेदना का अनुभव करेगा। तत्पश्चात् वह उस नरकसे निकलकर आगामी उत्सर्पिणीमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वैताढ्यगिरिकी तलहटीमें पुण्ड्र जनपदमें शतद्वार नगरमें संमुचि कुलकरकी भद्रा भार्याकी कुक्षिमें पुत्ररूपसे जन्म ग्रहण करेगा। तब वह भद्रा भार्या नौ महीने साढ़े सात दिनके बाद सुकुमार हाथ पैर वाले, अहीन प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर वाले लक्षण व्यंजन यावत् सुरूप वाले पुत्रको जन्म देगी। जिस रात्रिमें वह पुत्र होगा, उस रात्रिमें शतद्वार नगरमें भीतर बाहर भाराग्र प्रमाणसे, अनेक कुम्भ परिमाणसे, पुंजरूपसे, पद्मवर्षा और रत्नवर्षा होगी। तब उस दारकके माता-पिता ११ वां दिन बीतने पर १२ वें दिन इस प्रकार का गौण-गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे कि जब हमारा यह पुत्र हुआ तो शतद्वार नगरमें भीतर······रत्नवर्षा हुई इसलिए हमारे इस पुत्रका नाम महापद्म ऐसा होना चाहिए। यह सोच कर वे उसका नाम महापद्म रक्खेंगे। तब उसके माता-पिता आठ वर्षसे अधिक का हुआ जानकर उसका बड़े ठाठसे राज्याभिषेक करेंगे। वह वहां का राजा होगा—महाहिमवान्, मलय, मन्दर······२यावत् राज्य करता हुआ विचरेगा।

तब उस महापद्मके किसी समय महर्द्धिक यावत् महासुखशाली दो देव सेनाके कार्यसंवाहक होंगे०—पूर्णभद्र और माणिभद्र। तब उस शतद्वार नगरमें अनेक राजेश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठि, सेनापति एवं सार्थवाह आदि एक दूसरेको बुलाकर कहेंगे–"क्योंकि हमारे महापद्म राजाके महर्द्धिक यावत् महासुखशाली दो देव सेना के कार्यसंवाहक हैं, अतः हमारे महापद्म राजाका दूसरा नाम देवसेन होना चाहिए। तब उस महापद्म का दूसरा नाम होगा देवसेन। तब कुछ समय बाद उस देवसेन राजाके यहां सफेद शंखतल जैसा निर्मल चार दांत वाला हस्तिरत्न उत्पन्न होगा।

१. दुःखसे जलती हुई। २. इत्यादि राजा का वर्णन औपपातिक सूत्रमें देखें।

तब वह उस सफेद·····हस्तिरत्न पर सवार होकर शतद्वार नगरके बीचों-बीच रास्ते से बार २ आएगा, जाएगा। तब·····कहेंगे—क्योंकि हमारे देवसेन राजाके श्वेत यावत् हस्तिरत्न उत्पन्न हुआ है अतः देवानुप्रिय ! हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन होना चाहिए। तब उसका तीसरा नाम होगा विमलवाहन।

तब वे विमलवाहन राजा तीस वर्ष तक घर में रहकर, माता-पिताके देवत्व प्राप्त होने पर, गुरु ज्येष्ठ जनद्वारा अभ्यनुज्ञात होकर संबुद्ध हुए शरद ऋतु में अनुत्तर मोक्षमार्गमें लगनेके लिए जीतकल्पिक लोकान्तिक देवों द्वारा उन इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, उदार, कल्याण-स्वरूप, धन्य, शिव, मंगल विधायक श्रीयुक्त ऐसी वाणीसे बार २ अभिनंद्य-मान एवं अभिस्तूयमान होते हुए नगरसे बाहर सुभूमिभाग नामक उद्यान में पहुंचेंगे एवं एक देवदूष्य लेकर मुण्डित यावत् प्रव्रजित होंगे। उन भाग्यशाली मुनिके ऊपर कुछ अधिक १२ वर्ष तक जो कोई भी उपसर्ग आएँगे—दिव्य, मनुष्य-कृत अथवा तिर्यचकृत, उन सबको वे अच्छी तरह सहन करेंगे, उनके ऊपर जरा भी क्रोध न करते हुए, दीनता न दिखाते हुए, अडिग भावसे उन्हें सहेंगे।

वे ईर्यासमितिवान् होंगे, भाषासमित यावत् ब्रह्मचारी होंगे, निर्ममत्व, अकिंचन, छिन्नग्रन्थ, उपलेपरहित, शास्त्रोक्तभावनासे भरे हुए, वे कांस्यपात्रीकी तरह मुक्ततोय* होंगे यावत् घृतादि आहुति प्रदीप्त अग्निकी तरह तेजसे प्रदीप्त होते हुए विचरेंगे। कांस्य, शंख, जीव, गगन, वायु, शारद सलिल, पुष्करपत्र, कूर्म, विहग, खग्गिविषाण, भारण्ड, कुंजर, वृषभ, सिंह, नगराज, सागर इव अक्षोभ, चन्द्र, सूर्य, कनक, वसुन्धरा एवं सुहुताग्निवत्। उस विहार अवस्थामें उन्हें कोई प्रतिबन्ध न होगा। वह प्रतिबन्ध चार प्रकार का कहा गया है। अण्डज१, पोतज२, अवग्रहिक३, प्रग्रहिक४। वे जिस २ दिशा में जानेको सोचेंगे उस२ दिशामें अप्रतिबद्ध होकर शुचिभूत हुए, लघुभूत हुए, परिग्रहरहित हुए, संयम एवं तपसे आत्माको भावित करते हुए विचरेंगे।

अनुत्तर ज्ञानसे, अनुत्तर—दर्शन—चारित्र—आलय—विहार—आर्जव—मार्दव—लाघव—क्षमा—निर्लोभता—गुप्ति एवं सत्य, संयम, तपोगुणकी सम्यक् आरा-

---

*जैसे आचारांगमें कहा। १. हंस मोर आदि पक्षी (पशु) सम्बन्धी। २. हाथ आदि अथवा पोतक बालक (मनुष्यसम्बन्धी)। ३. वसति, पीठ फलकादि संबंधी। ४. उपकरण-संबंधी।

घनाके फलभूत निर्वाण मार्गसे अपनी आत्माको भावित करते हुए भगवान् विमल-वाहनको ध्यानान्तरिक में वर्त्तमान हो जाने पर अनन्त, अनुत्तर,निर्व्याघात यावत् केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्न होगा। तब वे भगवान अर्हन्त जिन होंगे,केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर देव मनुष्य असुर सहित लोककी पर्यायोंको जानेंगे, देखेंगे। सर्व-लोकमें सब जीवोंकी आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, तर्कको, मनोमानसिक, भुक्तकृत–प्रतिसेवितको, प्रकट-गुप्त-कर्मको अर्हन्त अर्हत्पदभोक्ता उस २ कालमें मन, वचन, कायजोगमें वर्तते हुए समस्तलोकके सब जीवोंके सब भावों को जानते, देखते हुए विचरेंगे।

तब वे भगवान् उस अनुत्तर केवलज्ञानदर्शनसे देव.........लोकको जानते देखते हुए श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए भावनासहित पांच महाव्रत व छ जीवनिकायधर्मका उपदेश देते हुए विचरेंगे। हे आर्यो! जैसे मैंने श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए प्रमादयोग रूप एक आरम्भ स्थान कहा है उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण......एक आरम्भ स्थानकी प्रज्ञापना करेंगे। हे...... लिए......दो प्रकारका बंधन कहा है ०—रागबंधन, द्वेषबंधन। उसी प्रकार महापद्म......दो बधनोंकी......। हे......तीन द०ड कहे हैं०—मनदण्ड, वचन-द०ड, कायदण्ड। उसी प्रकार महापद्म......तीन दण्डों की......। इसी प्रकार चार कषाय—क्रोधकषाय ४, पांच कामगुण–शब्द ५, छ जीवनिकाय–पृथिवी-काय यावत् त्रसकाय, सात भयस्थान, आठ मदस्थान, नव ब्रह्मचर्यगुप्तियां, दसविध श्रमणधर्म, यावत् ३३ आशातनाएँ समझनी चाहिएँ। हे......लिए स्थविरकल्प, जिनकल्प, मुण्डभाव, अस्नान, दन्तवन न करना, छत्र न रखना, जूते न पहनना, भूमिशय्या, फलक०, काष्ठ०, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास परगृह-प्रवेश यावत् ल०धावल०धवृत्ति कही है, इसी प्रकार महापद्म......।

हे...लिए आधार्कामिक,औद्देशिक यावत् हरितभोजन निषिद्ध किया है इसी प्रकार महापद्म...। हे......पांच महाव्रत वाला प्रतिक्रमण सहित अचेलक धर्म कहा है इसी प्रकार.....। हे आर्यो! जैसे मैंने पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत वाला वारह प्रकारका श्रावक धर्म कहा है इसी प्रकार......। हे......लिए शय्यातरपिण्ड व राजपिण्डका निषेध किया है इसी प्रकार...... ।

हे आर्यो! जैसे मेरे नौ गण ११ गणधर हैं, इसी प्रकार महापद्म अर्हन्तके भी नौ गण ११ गणधर होंगे। हे आर्यो! जैसे मैं तीस वर्ष घर में रहकर दीक्षित यावत् प्रव्रजित होकर १२ वर्ष १३ पक्ष छद्मस्थ-पर्याय पालकर, १३ पक्ष कम ३० वर्ष केवलिपर्याय पालकर, ४२ वर्ष श्रमणपर्याय पालकर, ७२ वर्ष सर्वायु पालकर सिद्ध होऊँगा, यावत् सब

दु:खोंका अन्त करूंगा। इसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी तीस······यावत् अन्त करेंगे। जो शील समाचार अर्हन्त तीर्थंकर भगवान् महावीरका है वही अर्हन्त महापद्मका भी जानें ॥६१६॥

॥ महापद्मचरित्र समाप्त ॥

नौ नक्षत्र चन्द्रके पृष्ठभागमें स्थित कहे गए हैं०—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुष्य, हस्त और चित्रा ॥६१७॥ आनत, प्राणत, आरण एवं अच्युत कल्पोंमें विमान नौ सौ योजन ऊँचे कहे गए हैं ॥६१८॥ विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुप ऊंचे थे ॥६१९॥ कोशलदेशजात ऋषभ अर्हत नें इस अवसर्पिणीके नौ सागरोपम कोटाकोटि वीतने पर तीर्थ प्रवर्ताया१ ॥६२०॥ घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त एवं शुद्धदन्त अन्तरद्वीप आयाम विष्कम्भकी अपेक्षा नौ २ सौ योजनके कहे गए हैं ॥६२१॥

शुक्र महाग्रहकी ९ वीथियाँ २ कही गई हैं०—हयवीथि, गज०, नाग०, वृषभ०, गो०, उरग०, अज०, मृग०, वैश्वानर० ॥६२२॥ नोकषाय वेदनीयकर्म नौ प्रकारका कहा गया है०—स्त्रीवेद, पुरुष०, नपुंसक०, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा ॥६२३॥ चौइन्द्रिय जीवोंकी ९ लाख जातिकुलकोटियोनि-प्रमुख कही गई हैं ॥६२४॥

भुजपरिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचोंकी ९ लाख······॥६२५॥ जीवोंने नौ स्थानोंसे पुद्गलोंका पापकर्म रूपसे संग्रह किया, करते हैं और करेंगे०—पृथिवीकायनिर्वर्तित यावत् पंचेन्द्रिय०। इसी प्रकार उपचय यावत् निर्जरा ॥६२६-६२७॥ नौ प्रदेशों वाले स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं ॥६२८॥ नौ प्रदेशा-वगाढ़ पुद्गल अनन्त······॥६२९॥ यावत् ९ गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गए हैं ॥६३०॥

॥ नौवां स्थान समाप्त ॥

—०—

दशम स्थानक

लोकस्थिति दस प्रकार की कही गई है०—जीव बार २ मरकर वहाँ २ बार २ उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार पहली लोकस्थिति कही गई है१। जीवों को सदा पापकर्म का बंध होता रहता है···२। जीवोंके द्वारा सदा मोहनीय पापकर्म किया जाता है···३। न ऐसा हुआ है, न होता है, न होगा, कि जीव अजीव हो जायें, अथवा अजीव जीव हो जायें···४। न···कि त्रस प्राणियोंका

१. चतुर्विध संघकी स्थापनाकी। २. मार्ग।

दुःखोंका अन्त करूंगा। इसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी तीस······यावत् अन्त करेंगे। जो शील समाचार अर्हन्त तीर्थकर भगवान् महावीरका है वही अर्हन्त महापद्मका भी जानें ॥९१६॥

॥ महापद्मचरित्र समाप्त ॥

नौ नक्षत्र चन्द्रके पृष्ठभागमें स्थित कहे गए हैं०—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुष्य, हस्त और चित्रा ॥९१७॥ आनत, प्राणत, आरण एवं अच्युत कल्पोंमें विमान नौ सौ योजन ऊँचे कहे गए हैं ॥९१८॥ विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे ॥९१९॥ कोशलदेशजात ऋषभ अर्हत ने इस अवसर्पिणीके नौ सागरोपम कोटाकोटि बीतने पर तीर्थ प्रवर्ताया१ ॥९२०॥ घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त एवं शुद्धदन्त अन्तरद्वीप आयाम विष्कम्भकी अपेक्षा नौ २ सौ योजनके कहे गए हैं ॥९२१॥

शुक्र महाग्रहकी ९ वीथियाँ २ कही गई हैं०—हयवीथि, गज०, नाग०, वृषभ०, गो०, उरग०, अज०, मृग०, वैश्वानर० ॥९२२॥ नोकषाय वेदनीयकर्म नौ प्रकारका कहा गया है०—स्त्रीवेद, पुरुष०, नपुंसक०, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा ॥९२३॥ चौइन्द्रिय जीवोंकी ९ लाख जातिकुलकोटियोनि-प्रमुख कही गई हैं ॥९२४॥

भुजपरिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचोंकी ९ लाख······॥९२५॥ जीवोंने नौ स्थानोंसे पुद्गलोंका पापकर्म रूपसे संग्रह किया, करते हैं और करेंगे०—पृथिवीकायनिर्वतित यावत् पंचेन्द्रिय०। इसी प्रकार उपचय यावत् निर्जरा ॥९२६-९२७॥ नौ प्रदेशों वाले स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं ॥९२८॥ नौ प्रदेशा-वगाढ़ पुद्गल अनन्त······॥९२९॥ यावत् ९ गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गए हैं ॥९३०॥

॥ नौवां स्थान समाप्त ॥

—०—

दशम स्थानक

लोकस्थिति दस प्रकार की कही गई है०—जीव बार २ मरकर वहाँ २ बार २ उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार पहली लोकस्थिति कही गई है१। जीवों को सदा पापकर्म का बंध होता रहता है···२। जीवोंके द्वारा सदा मोहनीय पापकर्म किया जाता है···३। न ऐसा हुआ है, न होता है, न होगा, कि जीव अजीव हो जायें, अथवा अजीव जीव हो जायें···४। न···कि त्रस प्राणियोंका

१. चतुर्विध संघकी स्थापनाकी। २. मार्ग।

व्युच्छेद हो जाय, स्थावर रह जायँ, अथवा स्थावरों का व्युच्छेद हो जाय केवल त्रस रह जायँ···५। न···कि लोक अलोक हो जाय, अलोक लोक हो जाय···६। न···कि लोक अलोकमें प्रविष्ट हो जाय, अलोक लोकमें प्रविष्ट हो जाय··७। जहाँ तक लोक है वहाँ तक जीव हैं। जहाँ तक जीव हैं वहां तक लोक है···८। जहाँ तक जीवों और पुद्गलों की गतिपर्याय है वहाँ तक लोक है। जहाँ तक लोक है वहाँ तक जीवों···गतिपर्याय है। ··९। समस्त लोकान्तों में अवद्धपार्श्व-स्पृष्ट पुद्गल रूक्ष रूपसे परिणत होते हैं, जिससे जीव और पुद्गल लोकान्तसे बाहर जानेमें समर्थ नहीं होते··· १०॥६३१॥

शब्द १० प्रकार का कहा गया है०—निर्हारी1, पिण्डिम2, रूक्ष3, भिन्न, जर्जरित, दीर्घ, ह्रस्व, पृथक्त्व, काकली4, किंकिणी ॥६३२॥

भूतकालिक इन्द्रियार्थ दस कहे गए हैं०—कइयों ने एक देशसे शब्दोंको सुना, कइयोंने पूर्णरूपसे शब्दोंको सुना। कइयोंने···रूपोंको देखा, कइयोंने सर्वसे रूपों को देखा। इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श यावत् कइयोंने सर्वसे स्पर्शो का अनुभव किया ॥६३३॥

वर्तमानकालिक इं०···—कई एक देशसे शब्दोंको सुनते हैं, कई सर्व से शब्दों को सुनते हैं। इसी प्रकार यावत् स्पर्शोंको···। भविष्यत्कालिक···—कई··· सुनेंगे, कई सर्वसे···इसी प्रकार यावत् कई सर्वसे स्पर्शोका अनुभव करेंगे ॥६३४॥

१० कारणोंसे अच्छिन्न पुद्गल चलायमान होता है०—खाया जाता हुआ···, (जठराग्नि से) परिणतिको प्राप्त होता हुआ······,उच्छ्वस्यमान१···;, निश्श्वस्यमान२···,वेद्यमान३···, निर्जीर्यमाण४···, विक्रियमाण५····,परिचार्यमाण६···, यक्षाविष्ट···, वायुसे प्रेरित होने पर पुद्गल····॥६३५॥

१० कारणोंसे क्रोध की उत्पत्ति होती है०—अमुक व्यक्ति ने मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गन्धों का अपहरण किया१। अमुक व्यक्ति ने मुझे अमनोज्ञ···एवं गन्ध समर्पित किए२। अमुक···मनोज्ञ···का अपहरण करता है३। अमुक···अमनोज्ञ···समर्पित करता है४। अमुक···मनोज्ञ···अपहरण करेगा५। अमुक···अमनोज्ञ···समर्पित करेगा६। अमुक ···· अपहरण किया, करता है, करेगा ७। अमुक···समर्पित किए, करता है, करेगा८। अमुक···मनोज्ञामनोज्ञ···

---

1. घोषयुक्त घंटे आदिका। 2. घोषरहित ढोल आदि का। 3. काकवत्। 4. सूक्ष्म कण्ठसे गाई गई गीतध्वनि। कोयल की तरह।

१. ऊपर को सांस लेते हुए। २. नीचे को श्वास निकालते हुए। ३. अनुभव किया जाता हुआ। ४. निर्जरित (क्षीण)होता हुआ। ५. विकुर्वणा किया जाता हुआ। ६. विषयसेवन करते हुए।

अपहरण किया.........। अमुक...मनोज्ञामनोज्ञ समर्पित...९। मैं तो आचार्य उपाध्यायसे अच्छा बर्ताव करता हूं, परन्तु वे मेरे से अच्छा व्यवहार नहीं करते१० ॥९३६॥

संयम १० प्रकार का कहा गया है०—पृथिवीकायिकसंयम यावत् वनस्पतिकायिकसंयम, द्वीन्द्रियसंयम, त्रीन्द्रियसंयम, चतुरिन्द्रियसंयम, पंचेन्द्रिय-संयम, अजीवकायसंयम ॥९३७॥

असंयम१०...—पृथिवीकायिकअसंयम यावत् अजीविकायअसंयम ॥९३८॥

संवर १० प्रकार...—श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवर, मनःसंवर, वाक्संवर, कायसंवर, उपकरणसंवर, सूचीकुशाग्रसंवर ॥९३९॥

असंवर १०.....—श्रोत्रेन्द्रियअसंवर यावत् सूचीकुशाग्रअसंवर ॥९४०॥

दस कारणोंसे व्यक्ति अहंमन्य होकर अहंकारी होता है०—जातिमदसे. कुल०, यावत् ऐश्वर्यमदसे। "नागकुमार एवं सुपर्णकुमार* मेरे पास बार२ आते हैं।" "साधारण पुरुषोंकी अपेक्षा मुझे श्रेष्ठ और अधिक ज्ञान-दर्शन की प्राप्ति हुई है" यह विचार करके ॥९४१॥

समाधि १० प्रकार की कही गई है०—प्राणातिपात विरमण१, मृषावाद०, अदत्तादान०, कुशीलसेवन०, परिग्रह०, ईर्यासमिति, भाषा०, एषणा०, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति, उच्चारप्रस्रवणश्लेष्म-जल्लशिङ्घाणपरिष्ठापनिका-समिति ॥९४२॥

असमाधि १०...—प्राणातिपात यावत् परिग्रह, ईर्याअसमिति यावत् उच्चार० असमिति ॥९४३॥

प्रव्रज्या १० प्रकार की...—छन्दा२, रोषा३, परिद्यूना४, स्वप्ना५, प्रतिश्रुता६, स्मारणिका७ रोगिणिका८, अनादृता९, देवसंज्ञप्ति१०, वत्सानु-बंधिका११ ॥९४४॥

श्रमणधर्म १० प्रकार का कहा गया है०—क्षमा, निर्लोभता, सरलता, नम्रता, लघुता, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्यवास ॥९४५॥

वैयावृत्य (सेवा) १० प्रकार की कही गई है०—आचार्यवैयावृत्य, उपाध्याय०, स्थविर०, तपस्वी०, ग्लान० १२, शैक्ष० १३, कुल०, गण०, संघ०, सार्धमिक० ॥९४६॥

---

*देवता। १. विरति। २. अपने या पराये अभिप्रायवश। ३. क्रोधसे। ४. गरीबी से। ५. स्वप्न से। ६. प्रतिज्ञावश। ७. स्मरण से। ८. रोग से। ९. अनादर के कारण। १०. देवकृत प्रतिबोधन से। ११. पुत्रस्नेह वश धारण की जाने वाली। १२. रोगी। १३. नवदीक्षित।

जीवपरिणाम १० प्रकार का कहा गया है०—गति परिणाम, इन्द्रिय०, कषाय०, लेश्या०, योग०, उपयोग०, ज्ञान०, दर्शन०, चरित्र०, वेदना० ॥९४७॥ अजीव परिणाम १०···—बन्धन परिणाम, गति०, संस्थान०, भेद०, वर्ण०, गन्ध०, रस०, स्पर्श०, अगुरुलघु०, शब्द० ॥९४८॥

आन्तरीक्षिक[1] अस्वाध्यायिक १० प्रकार···—उल्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत्, निर्घात[2], यूपक[3], यक्षादीप्त[4], धूमिका[5], मिहिका[6], रजउद्घात[7] ॥९४९॥

औदारिक शरीर संबंधी अस्वाध्याय १०···—हड्डी, मांस, खून[8], जहां गन्दगी हो, श्मशानके पास, चन्द्रग्रहणमें, सूर्यग्रहणमें, राजा आदिकोंके मरण होने पर, राजाओंमें आपसमें युद्ध होने पर, उपाश्रयमें मृतक होने पर ॥९५०॥

पंचेन्द्रिय जीवों का समारम्भ न करनेसे १० प्रकार का संयम होता है०—श्रोत्रेन्द्रियके सुखसे वियुक्त नहीं करता। श्रो० दुःखसे संयुक्त नहीं करता। इसी प्रकार यावत् स्पर्शमय दुःखसे संयुक्त नहीं करता। इसी प्रकार असंयम भी कहना चाहिए ॥९५१॥

सूक्ष्म १० कहे गए हैं०—प्राणसूक्ष्म यावत् स्नेह०, गणित०, भङ्ग० ॥९५२॥

जंबू० मन्दर० दक्षिणमें गंगा एवं सिन्धु महानदीमें १० महानदियाँ मिलती हैं०—यमुना, सरयू, आदी, कोसी, मही, सिन्धु, विवत्सा, विभासा, ऐरावती और चन्द्रभागा ॥९५३॥

जंबू···उत्तरमें रक्ता एवं रक्तवती म०······—कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, तीरा, महातीरा, इन्द्रा, इन्द्रसेना, वारिषेणा, महाभोगा ॥९५४॥

जंबूद्वीपस्थित भरत[9]वर्षमें दस राजधानियां कही गई हैं०—चम्पा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, हस्तिनापुर, काम्पिल्य, मिथिला, कौशाम्बी, राजगृह ॥९५५॥

इन दस राजधानियोंमें १० राजा मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए०—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, महापद्म, हरिषेण और जय ॥९५६॥

जंबूद्वीपस्थित सुमेरुपर्वत एक हजार योजन भूमिके भीतर, १० हजार योजन चौड़ा, ऊपर (पण्डक वनमें) एक हजार योजन, सर्वप्रमाणकी अपेक्षा दश गुणित दस हजार[10] योजनका है ॥९५७॥ जंबूद्वीपके मन्दर पर्वतके बहुमध्यदेश-भागमें इस रत्नप्रभा पृथिवीके ऊपर नीचेके क्षुल्लक प्रतरोंमें आठ प्रदेशिक रुचक

---

१. आकाशसम्बन्धी। २. व्यन्तरकृत महागर्जना। ३. सन्ध्याचन्द्रप्रभा। ४. एक दिशामें बीच २ में होने वाला विद्युत्वत् प्रकाश। ५. धुंध। ६. कुहरा। ७. धूल छा जाना। ८. जहां ये पड़े हों। ९. भारत। १०. एक लाख।

कहा गया है, जिसमे ये दस दिशाएँ बनती हैं०—पूर्व, पूर्व-दक्षिण, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, पश्चिमोत्तर, उत्तर, उत्तरपश्चिम, ऊर्ध्व१, अध: ॥६५८॥

इन १० दिशाओंके १० नाम कहे गये हैं०—ऐन्द्री, आग्नेयी, यामी, नैऋर्ती, वारुणी, वायव्य, सौम्य,ऐशानी, विमला, तमा ॥६५६॥ लवण समुद्रका गोतीर्थविरहित२ क्षेत्र दस हजार योजनका कहा गया है ॥६६०॥ लवण समुद्रकी उदकवेला १० हजार योजनकी कही गई है ॥६६१॥ सभी महापाताल गंभीरता की अपेक्षा एक २ लाख योजनके कहे गए हैं। मूल भागमें उनका विष्कम्भ १० हजार योजनका है। एक २ प्रदेश वाली श्रेणीके बहुमध्यदेशभागमें एक लाख योजन विस्तारवाले कहे गये हैं। ऊपर मुखमूल३में १० हजार योजन विस्तार ······। उन महापातालोंकी भित्तियाँ सर्ववज्रमय सर्वत्र सम और एक हजार योजनकी मोटाई वाली हैं। सभी छोटे पाताल उद्वेध४से १००० योजन, मूलमें विष्कम्भकी अपेक्षा १०० योजन, बहुमध्यदेशभागमें दोनों तरफ एक २ प्रदेशकी वृद्धिसे एक हजार योजन विष्कम्भ वाले, मुखप्रदेशमें सौ योजन वि० वाले कहे गये हैं। उन क्षुद्रपातालकलशोंकी भित्तियाँ·····और दस योजन मोटाई वाली कही गई हैं ॥६६२॥

धातकीखण्डके मेरुपर्वत उद्वेधसे एक हजार योजन, भूमि पर कुछ कम दस हजार योजन विष्कम्भ वाले, ऊपर एक हजार योजन विष्कम्भ वाले कहे गये हैं ॥६६३॥ पुष्करवरद्वीपार्धके मेरु इसी प्रकार ॥६६४॥ सभी वृत्तवैताढ्य पर्वत एक हजार योजन ऊँचे, एक हजार गाउ५ भूमिके अन्दर, सर्वत्र सम पल्यंक-संस्थान६संस्थित एक हजार योजन विष्कम्भ वाले कहे गये हैं ॥६६५॥

जम्बूद्वीपमें १० क्षेत्र कहे गये हैं०—भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु और उत्तरकुरु ॥६६६॥

मानुषोत्तर पर्वत मूलमें विष्कम्भकी अपेक्षा एक हजार २२ योजनका कहा गया है ॥६६७॥ सभी अंजनक पर्वत उद्वेधकी अपेक्षा एक हजार योजन, मूलमें विष्कम्भकी अपेक्षा दस हजार योजन, ऊपर एक हजार योजन विष्कम्भ वाले कहे गये हैं ॥६६८॥ सभी दधिमुख पर्वत गहराईकी अपेक्षा एक हजार योजन प्रमाण हैं। सर्वत्र सम हैं। उनका आकार पलंग जैसा है। उनका विस्तार १० हजार योजनका है ॥६६९॥

सभी रतिकर पर्वत दस २ हजार योजनके ऊँचे कहे गये हैं। उनका उद्वेध

---

१. ऊपर-नीचे। २. 'सम'। गोतीर्थ-गाय-आदिकोंकी तालाब आदिमें उतरनेकी भूमि। ३. मुखप्रदेश। ४. गहराई। ५. दो कोस। ६. पलंग।

एक हजार गव्यूत१का है। वे सर्वत्र सम हैं। उनका आकार झालर जैसा है और विष्कम्भ दस हजार योजनका है ॥९७०॥ रुचकवर पर्वत उद्वेधकी अपेक्षा एक हजार योजनका है। मूलमें उसका विष्कम्भ दस हजार योजनका है। ऊपर उसका विष्कम्भ एक ह० यो०का है। इसी तरह कुण्डलवरद्वीप भी ॥९७१॥

द्रव्यानुयोग १० प्रकारका कहा गया है०--द्रव्यानुयोग, मातृकानुयोग, एकार्थिकानुयोग, करणानुयोग, अर्पितानर्पित, भाविताभावित, बाह्याबाह्य, शाश्वताशाश्वत, तथाज्ञान, अतथाज्ञान ॥९७२॥ असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर का तिगिच्छिकूट उत्पातपर्वत मूलमें एक हजार २२ योजन विष्कम्भ वाला है ॥९७३॥ असु०······चमरके (लोकपाल) सोम महाराजका सोमप्रभ उत्पातपर्वत १००० योजन ऊंचा, उद्वेधकी अपेक्षा १००० गाउ, मूलमें एक हजार योजन विष्कम्भ वाला कहा गया है ॥९७४॥

असुर०······चमरके······ यम महाराजका यमप्रभ उत्पातपर्वत इसी प्रकार। इसी तरह वरुण एवं वैश्रवणका भी जानें ॥९७५॥ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिका रुचकेन्द्र उत्पातपर्वत मूलमें एक हजार २२ योजन विष्कम्भ वाला कहा गया है ॥९७६॥ वै०······बलिके (लो०) सोमका इसी प्रकार, जैसे चमर के लोकपालोंके उत्पात प० कहे उसी प्रकार बलिके भी कहना ॥९७७॥

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणका धरणप्रभ उत्पातपर्वत एक हजार योजनकी ऊँचाई वाला है। उसका उद्वेध एक हजार योजनका है। मूलमें उसका विष्कम्भ भी एक ह० यो०······॥९७८॥ नाग०····· धरणके लोकपाल कालवाल महाराजका महाकालप्रभ उत्पातपर्वत एक हजार योजन ऊँचाई वाला इसी प्रकार, इसी प्रकार यावत् शंखवालका। इसी प्रकार भूतानन्दका भी। उसके लोकपालोंका धरणके समान। इसी प्रकार यावत् लोकपालसहित स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए। सभीके उत्पातपर्वत सदृश नाम वाले हैं ॥९७९॥

देवेन्द्र देवराज शक्रका शक्रप्रभ उत्पातपर्वत १० हजार योजनकी ऊँचाई वाला है। उसका उद्वेध १० हजार गाउ है। मूलमें १० हजार योजन विष्कम्भ वाला कहा गया है ॥९८०॥ देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजका ······जैसे शक्रका कहा वैसे सभी लोकपालोंके और यावत् अच्युत तक सभी इन्द्रोंके उत्पातपर्वत जानने चाहिएँ। सबका प्रमाण एक है ॥९८१॥

बादर वनस्पतिकायिक जीवोंकी शरीरावगाहना उत्कृष्टसे १ हजार योजनकी कही गई है ॥९८२॥जलचर पंचेन्द्रियतिर्यंचोंकी शरीरावगाहना······। उर.परिसर्पस्थलचर–पंचेन्द्रियतिर्यंचोंकी इसी प्रकार ॥९८३॥ संभवनाथ अरिहन्त

१. दो कोस।

से अभिनन्दन अर्हन्त १० लाख सागरोपम कोटि बीतने पर उत्पन्न हुए ॥९८४॥ अनन्त १० प्रकारका कहा गया है०—नामानन्तक, स्थापना०, द्रव्य०, गणना०, प्रदेश०, एकतोऽनन्तक, द्विधातोऽनन्तक, देशविस्तारानन्तक, सर्व० और शाश्वतानन्तक ॥९८५॥

उत्पाद पूर्वकी दस वस्तुएँ* कही गई हैं ॥९८६॥ अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की दस चूलिकावस्तुएँ···॥९८७॥ प्रतिसेवना १० प्रकारकी कही गई है०—दर्प, प्रमाद, विस्मृति, आतुर, आपत्ति, शङ्कित, सहसाकार, भय, प्रद्वेप, विमर्श ॥९८८॥ आलोचनादोष १० प्रकारके कहे गए हैं०—आकम्प्य१, अनुमान्य२, यद्दृष्टा३, बादर४, सूक्ष्म, छन्न५, शब्दाकुलक६, बहुजन, अव्यक्त, तत्सेवी७ ॥९८९॥ दस गुणोंसे सम्पन्न साधु अपने दोषोंकी आलोचना करनेके योग्य होता है०—जातिसंपन्न, कुल० जैसे आठवें ठाणेमें कहा यावत् क्षान्त, दान्त, अमायी, अपश्चादनुतापी ॥९९०॥

दस······साधु आलोचना सुनने योग्य होता है०—आचारवान् यावत् अपायदर्शी, प्रियधर्मा, दृढ़धर्मा ॥९९१॥ प्रायश्चित १० प्रकारका कहा गया है०—आलोचनार्ह यावत् अनवस्थाप्यार्ह, पाराञ्चिकार्ह ॥९९२॥

मिथ्यात्व १० दस प्रकार का कहा गया है०—अधर्म में धर्मबुद्धि रखना, धर्म में अधर्मबुद्धि रखना, उन्मार्गको सन्मार्ग मानना, सन्मार्ग को उन्मार्ग मानना, अजीवको जीव मानना, जीव को अजीव मानना, असाधु को साधु मानना, साधु को असाधु मानना, अमुक्त को मुक्त मानना, मुक्त को अमुक्त मानना ॥९९३॥

चन्द्रप्रभ अर्हन्त १० लाख पूर्वका सर्वायुष्क पालन करके सिद्ध यावत् सर्वदुःखों से रहित हुए ॥९९४॥

धर्मनाथ अरिहन्त दस लाख वर्षका स०·········॥९९५॥

नमि अर्हन्त १० हजार वर्ष का·········॥९९६॥

पुरुषसिंह वासुदेव १० लाख वर्षका सर्वायुष्क पालकर छठी तमा नाम की पृथिवी में नारक रूपसे उत्पन्न हुआ ॥९९७॥

नेमिनाथ अर्हन्त १० धनुष ऊंचे थे, वे एक हजार वर्षका सर्वायुष्य पालकर सिद्ध·····॥९९८॥

---

*अध्ययनविशेप। १.गुरुको अपने अनुकूल करके आलोचना करना। २.यह आचार्य मृदु दण्ड देगा ऐसा अनुमान करके उसके पास आ० करना। ३. आचार्य द्वारा दृष्ट दोषोंकी ही आ० करना। ४. स्थूल दोषोंकी आलोचना करना। ५. स्वयं सुने दूसरा नहीं इस ढंगसे आलोचना करना। ६. जोर २ से। ७. उन्हीं दोषोंको सेवन करने वालेके पास आ० करना।

कृष्ण वासुदेव दस धनुष·····पालकर तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए ॥९९९॥ भवनवासी देव १० प्रकारके कहे गए हैं०—असुरकुमार यावत् स्तनित-कुमार ॥१०००॥

इन १० प्रकारके भवनवासी देवोंके १० (आवास) वृक्ष कहे गए हैं०—अश्वत्थ, सप्तपर्ण, शाल्मलि, उदुम्बर, शिरीष, दधिपर्ण, वञ्जल, पलाश, वप्रातक एवं कर्णिकार ॥१००१॥

सुख १० प्रकार का कहा गया है०—आरोग्य, दीर्घ आयु, समृद्धिसे युक्तता, इच्छित काम-भोग, सन्तोष, आवश्यकतानुसार वस्तुकी प्राप्ति, शुभ भोग, प्रव्रज्या और अनाबाधरूप मोक्ष सुख ॥१००२॥

उपघात १०······—उद्‌गमोपघात, उत्पादनोपघात जैसे पाँचवें ठाणे में कहा यावत्परिहरणोपघात, ज्ञानोपघात, दर्शनोपघात, चारित्रोपघात, अप्रीतिको-पघात, संरक्षणोपघात ॥१००३॥

विशुद्धि दस प्रकारकी कही गई है०—उद्‌गमविशुद्धि यावत् संरक्षणविशुद्धि ॥१००४॥ संक्लेश दस प्रकारका कहा गया है०—उपधिसंक्लेश, उपाश्रय०, कषाय०, भक्तपान०, मनःसं०, वचन०, काय०, ज्ञान०, दर्शन०, चारित्र० ॥१००५॥ असंक्लेश दस······—उपधिअसंक्लेश यावत् चारित्र० ॥१००६॥ बल दस···—श्रोत्रेन्द्रियबल यावत् स्पर्शेन्द्रियबल, ज्ञानबल, दर्शन०, चारित्र०, तपो०, वीर्य० ॥१००७॥

सत्य दस···—जनपद सत्य, सम्मत०, स्थापना०, नाम०, रूप०, प्रतीत्य०, व्यवहार०, भाव०, योग० और औपम्य सत्य ॥१००८॥ मृषावाद दस······—क्रोध१, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, हास्य, भय, आख्यायिका एवं उपघात२-निश्रित ॥१००९॥ सत्यमृषा दस···—उत्पन्नमिश्रक, विगत०, उत्पन्नविगत०, जीव०, अजीव०, जीवाजीव०, अनन्त०, ३परीत०, ४अद्धा०, अद्धाद्धा० ॥१०-१०॥ दृष्टिवादके दस नाम कहे गए हैं०—दृष्टिवाद, हेतुवाद, भूत०, तत्त्व०, सम्यग्वाद, धर्म०, भाषाविचय, पूर्वगत, अनुयोगगत और सर्व प्राण, भूत, जीव, सत्त्व सुखावह ॥१०११॥

शस्त्र दस प्रकारका कहा गया है०—अग्निशस्त्र, विष०, लवण०, स्नेह०, क्षार०, अम्ल०, दुष्प्रयुक्तमनःशस्त्र, दु० वचनशस्त्र, दु० कायचेष्टाशस्त्र और अविरति० ॥१०१२॥

---

१. के वश। २. अघातकको घातक कहना। ३. अनन्तकाययुक्त प्रत्येक राशिको प्रत्येक वनस्पति कहना। ४. काल।

दोष १०···—तज्जातदोष, मतिभङ्ग०, प्रशास्तृ०, परिहार०, स्वलक्षण०, कारण०, हेतु०, संक्रमण०, निग्रह०, वस्तुदोष ॥१०१३॥

विशेष दोष दस···—वस्तुदोष०, तज्जात०, दोष१, एकार्थिक०, कारण०, प्रत्युत्पन्न०, नित्य०, अधिक०, आत्माके द्वारा किया गया०, परोपनीत० ॥१०१४॥

वाक्यार्थ की अपेक्षारहित सूत्र का व्याख्यान रूप अनुयोग दस प्रकारका कहा गया है०—चकार, माकार, अपिकार, 'से' कार२, सायंकार३, एकत्व, पृथक्त्व, संयूथ, संक्रामित४, भिन्न ॥१०१५॥

दान १० प्रकार का कहा गया है०—अनुकंपा दान, संग्रह०, भय०, कारुण्य०, लज्जा०, गौरव०, अधर्म०, धर्म०, भविष्यमें बदलेकी आशासे, कृत०५ ॥१०१६॥

गति १० प्रकार की कही गई है०—नरकगति, नरकविग्रह०, तिर्यग्गति, तिर्यग्विग्रहगति यावत् सिद्धि०, सिद्धिविग्रहगति ॥१०१७॥

मुण्ड दस प्रकारके कहे गए हैं०—श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड यावत् स्पर्शेन्द्रियमुण्ड, क्रोधमुण्ड यावत् लोभमुण्ड और दसवाँ शिरोमुण्ड ॥१०१८॥

संख्या-गिनती १० प्रकार की कही गई है०—परिकर्म, व्यवहार, रज्जु, राशि, कलासवर्ण, यावत्तावत्, वर्ग, घन, वर्गावर्ग और कल्प ॥१०१९॥

प्रत्याख्यान १० प्रकार का कहा गया है०—अनागत, अतिक्रान्त, कोटी-सहित, नियन्त्रित, सागार, अनागार, परिमाणकृत, निरवशेष, संकेत और अद्धा-प्रत्याख्यान ॥१०२०॥

समाचारी १० प्रकार की कही गई है०—इच्छा-मिथ्या—तथाकार, आवश्यक, नैषेधिकी, आप्रच्छना, प्रतिपृच्छा, छन्दना, निमंत्रणा और उपसंपत् ॥१०२१॥

श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थावस्था की अन्तिम रात्रिमें इन दस महा-स्वप्नों को देखकर प्रतिबुद्ध हुए०—एक विशाल, अति भयंकर, क्रोधसे धमधमाते हुए, दर्पयुक्त, ताड़के समान ऊँचे पिशाचको अपने पराक्रमसे परास्त किया हुआ देखा१। एक श्वेत पंखों वाले पुरुषजातीय कोयल को देखा२। एक विविध वर्णोंसे युक्त पंखों वाले नर कोकिल को देखा३। सर्व रत्नमय दो सुन्दर मालाएँ देखीं४। एक सफेद रंग का गायोंका झुण्ड देखा५। एक पद्मसरोवर देखा जिसमें चारों ओर कमल खिले हुए थे६। सातवें महास्वप्नमें गुरु एवं लघु सहस्रों तरंगोंसे युक्त विशाल समुद्रको भुजाओंसे पार किया हुआ देखा७। आठवें महास्वप्नमें उन्होंने

---

१. मतिभंग आदि ८ दोष। २. अर्थ 'से भिक्खू वा०'। ३. 'सेयं मे अहिज्जिउं'। ४. विभक्ति आदि शब्दपरिवर्तन। ५. "इसने मेरा अमुक कार्य किया है" इस भावना से।

तेजसे जाज्वल्यमान सूर्यको देखा८ । नौवें···हरिवैडूर्य जैसी कान्ति वाली अपनी आंतोंसे मानुषोत्तर पर्वतको आवेष्टित और परिवेष्टित देखा९ । दसवें···सुमेरु पर्वतकी चोटी पर श्रेष्ठ सिंहासन पर अपने को बैठा हुआ देखा१० । श्रमण भगवान् महावीर ने जो एक विशाल······देखा उसका फल यह हुआ कि उन्होंने मोहनीय कर्मको जड़मूलसे विध्वंस कर दिया१ । श्रमण······जो एक श्वेत···देखा ····कि वे शुक्लध्यान ध्याते हुए विचरे२ । श्रमण···जो एक रंग-बिरंगे पंखों वाले·········कि उन्होंने स्वसमयपरसमययुक्त अद्भुत द्वादशाङ्ग गणिपिटकका सामान्य रूपसे कथन किया, प्रज्ञापन प्ररूपण किया, तत्तत्सूत्र निर्दिष्ट प्रत्युपेक्षणादि क्रियाओं का प्रदर्शन—निदर्शन किया, एवं समस्त नय एवं युक्तियों द्वारा उसका उपदर्शन किया०—आचारांग यावत् दृष्टिवाद का३ । श्रमण····· जो सर्वरत्नमय······कि उन्होंने दो प्रकारका धर्म कहा०—आगारधर्म१, अनगारधर्म४। श्रमण······जो एक सफेद······कि उन्होंने चतुर्विध संघ की स्थापना की०—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका५ । श्रमण·········जो एक पद्मस०·····कि उन्होंने चार प्रकारके देवोंकी प्रज्ञापना की०—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक६ । श्रमण·····जो सातवें महास्वप्न में····· कि उन्होंने अनादि अनन्त अपार चतुर्गति वाले विशाल संसार समुद्रको पार किया७ । श्रमण···जो आठवें ······ कि उन्हें अनन्त अनुत्तर यावत् ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ८ । श्रमण····· ······जो नौवें ·········कि देव-मनुष्य—असुर लोकमें उनकी उत्कृष्ट कीर्ति—यश शब्द—श्लोक गाए जाते हैं२ कि "श्रमण भगवान् महावीर ऐसे हैं···९।" श्रमण··· दसवें······कि उन्होंने देव, मनुज एवं असुरयुक्त परिषदामें केवलीप्रज्ञप्त३ धर्म का सामान्य रूप से कथन किया, यावत् उपदर्शन किया १०॥१०२२॥

सराग सम्यग्दर्शन १० प्रकारका कहा गया है०—निसर्गरुचि, उपदेश०, आज्ञा०, सूत्र०, बीज०, अभिगम०, विस्तार०, क्रिया०, संक्षेप०, धर्मरुचि ॥१०२३॥

संज्ञाएँ १० कही गई हैं०—आहारसंज्ञा, भय०, मैथुन०, परिग्रह०, क्रोध० यावत् लोभ०, लोक०, ओघ० । नारकियोंको दस संज्ञाएँ होती हैं पूर्ववत् । इसी प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक तक ॥१०२४॥

नारकी १० प्रकारकी वेदनाका अनुभव करते हैं०—शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, कंडू४, परतन्त्रता, भय, शोक, जरा, व्याधि ॥१०२५॥

१० स्थानोंको छद्मस्थ सर्वभावसे नहीं जानता देखता०—धर्मास्तिकाय यावत् वायु, यह जिन होगा या नहीं, यह सर्व दुःखोंका अन्त करेगा या नहीं।

---

१. गृहस्थ । २. प्रशंसा होती है । ३. पूर्ववर्ति तीर्थकरोक्त । ४. खुजली ।

इन्हींको उत्पन्न ज्ञानदर्शनधर अरिहन्त भगवान् जानते देखते हैं, यावत् यह सर्व दुःखोंका·······॥१०२६॥

दस दशा१ कही गई हैं ०—कर्मविपाकदशा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, आचारदशा, प्रश्नव्याकरणदशा, बन्धदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा एवं संक्षेपिक दशा ॥१०२७॥ कर्मविपाक२दशाके १० अध्ययन कहे गए हैं ०—मृगापुत्र, उज्झितक३, अभग्न, शकट, बृहस्पति, नन्दिषेण, शौर्यदत्त, उदुम्बर, देवदत्ता, अञ्जू ॥१०२८॥

उपासकदशाके १० अ०······—आनन्द, कामदेव, गाथापति चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, गाथापति कुण्डकौलिक, शकडालपुत्र, महाशतक, नन्दिनी-पिता, शालेयिका पिता ॥१०२९॥ अन्तकृतदशाके दश अध्ययन कहे गए हैं ०—गौतम, समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, काम्पिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित, विष्णु ॥१०३०॥ अनुत्तरोपपातिक दशाके दस··· ···· —ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, पेल्लक, रामपुत्र, चन्द्रिक, पुष्टिमातृक, पेढालपुत्र अणगार, पोट्टिल, वेहल्ल ॥१०३१॥ आचार४दशा के दस······—बीस असमाधिस्थान, २१ शवल दोष, ३३ आशातना, आठ प्रकारकी गणिसंपत्, १० चित्तसमाधिस्थान, ११ उपासकप्रतिमा, १२ भिक्षुप्रतिमा, पर्युषणाकल्प, ३० मोहनीयस्थान, आयति-स्थान ॥१०३२॥

प्रश्न व्याकरणदशाके १०······—उपमा, संख्या, ऋषिभाषित, आचार्य०, महावीर०, क्षौमकप्रश्न, कोमल०, आदर्श०, अंगुष्ठ०, बाहु०५ ॥१०३३॥

बंधदशाके दस······—बन्ध, मोक्ष, देवर्द्धि, दशारमण्डल, आचार्य विप्रति-पत्ति, उपाध्याय०, भावना, विमुक्ति, साता, कर्म ॥१०३४॥ द्विगृद्धिदशा······—वात६, विवात, उपपात, सुक्षिप्त कृत्स्न, ४२ स्वप्न, ३० महास्वप्न, ७२ सर्व-स्वप्न, हार, राम, गुप्त ॥१०३५॥ दीर्घदशा······—चन्द्र, सूर्य, शुक्र, श्रीदेवी, प्रभावती, द्वीपसमुद्रोपपत्ति, बहुपुत्री, मन्दर, स्थविर सम्भूतविजय, पक्ष्मोच्छ्वा-सनिःश्वास ॥१०३६॥

संक्षेपिकदशा······—क्षुद्रिकाविमान–प्रविभक्ति, महती वि०, अंगचूलिका, वर्ग०, विवाहचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, वेलन्धरोपपात, वैश्रवणोपपात ॥१०३७॥ १० सागरोपमकोटाकोटि काल उत्सर्पिणीका कहा

१. दश अध्ययन युक्त-अवस्था प्रतिपादक शास्त्र। २. दुःखविपाक सूत्र। ३. मूलपाठस्थित भिन्न नाम वाचनान्तरकी अपेक्षा जानना। एवं सर्वत्र। ४. दशाश्रुतस्कन्ध। ५. ये विच्छिन्न हो गए हैं। वर्तमान प्रश्नव्याकरण में पांच आस्रवद्वार अध्ययन व पांच संवर० मिलते हैं। ६. 'वाद' पाठान्तर।

गया है इतना ही अवसर्पिणीका ॥१०३८॥ नारकी १० प्रकार के कहे गए हैं०—अनन्तरोपपन्न, परम्परोपपन्न, अनन्तरावगाढ़, परम्परावगाढ़, अनन्तराहारक, परम्पराहारक, अनन्तरपर्याप्त, परम्परपर्याप्त, चरम, अचरम। इसी प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक ॥१०३९॥

चौथी पंकप्रभा पृथिवीमें १० लाख नरकावास कहे गए हैं॥१०४०॥ रत्नप्रभापृथिवी में नारकियोंकी जघन्य स्थिति १० हजार वर्षकी कही गई है ॥१०४१॥ चौथी पंकप्रभा पृथिवी में नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति १० सागरोपमकी…… ॥१०४२॥

पांचवीं धूमप्रभा पृ० में ना० की जघन्य स्थिति १० सागरोपम की ……॥१०४३॥ असुरकुमारोंकी जघन्य स्थिति १०हजार वर्षकी……॥१०४४॥ इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारोंकी। बादर वनस्पतिकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति १० हजार वर्षकी……॥१०४५॥

वाणव्यन्तरदेवोंकी जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की……॥१०४६॥ ब्रह्मलोक कल्पमें देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति १० सागरोपम की……१०४७॥ लान्तक कल्पमें देवोंकी जघन्य स्थिति १० सागरोपमकी……॥१०४८॥ १० कारणोंसे जीव भावी कल्याणके लिए कर्म 1करते हैं०—अनिदानता, 2दृष्टिसम्पन्नता, योगवाहिकता, क्षान्तिक्षमणता3, जितेन्द्रियता, अमायिकता, अपार्श्वस्थता, सुश्रामण्यता, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनोद्भावनता4 ॥१०४९॥ आशंसा5प्रयोग १० प्रकारका कहा गया है०—इहलोकाशंसाप्रयोग, परलोका०, द्विधातोलो०, जीविता०, मरणा०, कामा०, भोगा०, लाभा०, पूजा०, सत्कारा० ॥१०५०॥ धर्म १० प्रकारका कहा गया है ०—ग्रामधर्म, नगर०, राष्ट्र०, पाषण्डधर्म, कुल०, गण०, संघ०,श्रुत०, चारित्र०, अस्तिकाय०॥१०५१॥ १० स्थविर कहे गए हैं०—ग्रामस्थविर, नगर०, राष्ट्र०, प्रशास्तृ०, कुल०, गण०, संघ०, जाति०, श्रुत०, पर्याय०॥१०५२॥

पुत्र १० प्रकारके कहे गए हैं०—आत्मज१, क्षेत्रज२, दत्तक, विनयित३, औरस४, मौखर५, शौण्डीर६, संवर्द्धित, औपयाचित७, धर्मान्तेवासी॥१०५३॥ केवलीके १० अनुत्तर८ कहे गए हैं०—अनुत्तर ज्ञान, अ० दर्शन, अ० चरित्र,

---

1. अच्छी तरह। 2. 'सम्यग्' 3. शांति-क्षमा। 4. प्रवचनकी प्रभावना करना। 5. इच्छा। १. पिता द्वारा उत्पन्न होने वाला। २. माता द्वारा पाण्डववत्। ३. शिष्य। ४. जिसमें पुत्रवत् स्नेह हो। ५. मीठी बोली से अपने को पुत्ररूपसे प्रकट करने वाला। ६. हार जाने पर विजयीको पिता तुल्य मानने वाला। ७. देवाराधनसे प्राप्त। ८. सर्वोत्कृष्ट।

अ० तप, अ० वीर्य, अ० क्षमा, अ० निर्लोभता, अ० आर्जव, अ० मार्दव, अ० लाघव ॥१०५४॥

*समयक्षेत्रमें १० कुरु कहे......—पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु। उनमें विशालातिविशाल १० महाद्रुम कहे.........—जम्बू सुदर्शना, धातकीवृक्ष, महाधातकीवृक्ष, पद्मवृक्ष, महापद्मवृक्ष और पांच कूटशाल्मली। उन पर १० महर्द्धिक यावत् देव रहते हैं०—अनादृत जम्बूद्वीपाधिपति, सुदर्शन, प्रियदर्शन, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, पांच गरुड़ वेणुदेव ॥१०५५॥

१० स्थानोंसे दुषमाका आगमन जानें०—अकालवृष्टि, समय पर वर्षा न होना, असाधुओंकी पूजा, साधुजनोंका आदर न होना, माता-पिता आदि गुरुजनोंके प्रति लोगोंका विनयरहित होना, अमनोज्ञ शब्द यावत् अमनोज्ञ स्पर्श ॥१०५६॥

१० स्थानोंसे सुषमा......—अकाल वृष्टि न होना, उसी प्रकार दुषमाका उल्टा जानना चाहिए यावत् मनोज्ञ स्पर्श ॥१०५७॥ सुषमसुषमा कालमें १० प्रकारके वृक्ष उपभोग्य रूपसे उत्पन्न होते हैं०—मत्ताङ्गक१, भृताङ्ग२, त्रुटिताङ्ग३, दीपाङ्ग४, ज्योतिरङ्ग५, चित्राङ्ग६, चित्ररस७, मण्याङ्ग८, गेहाकार९, अनग्न१० ॥१०५८॥

जम्बूद्वीपस्थित भरत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीमें १० कुलकर हुए०—शतज्ज्वल, शतायु, अनन्तसेन, अमितसेन, तर्कसेन, भीमसेन, महाभीमसेन, दृढ़रथ, दशरथ, शतरथ ॥१०५९॥ जंबू०...आगामी उत्सर्पिणीमें १० कुलकर होंगे०—सीमङ्कर, सीमंधर, क्षेमङ्कर, क्षेमंधर, विमलवाहन, संमुचि, प्रतिश्रुत, दशधनु, दृढ़धनु, शतधनु ॥१०६०॥

जंबूद्वीपस्थित मन्दर पर्वतके पूर्वमें सीता महानदीके दोनों तटों पर १० वक्षस्कार पर्वत कहे गए हैं०—माल्यवान्, चित्रकूट यावत् सौमनस ॥१०६१॥ जंबू० मंदर० के पश्चिममें सीतोदा महानदीके दोनों......—विद्युत्प्रभ यावत् गन्धमादन। इसी प्रकार धातकीखण्डके पूर्वार्द्धमें भी वक्षस्कार पर्वत कहने चाहिएँ, यावत् पुष्करवरद्वीप पश्चिमार्द्ध में ॥१०६२॥

दस कल्प इन्द्रों द्वारा अधिष्ठित कहे गए हैं०—सौधर्म यावत् सहस्रार,

---

*ढाई द्वीप। १. सुखद रसदाता। २. पात्रदाता। ३. चतुर्विध वाद्योंके कारणभूत। ४. दीपकके समान प्रकाश करने वाले। ५. बादराग्नि जैसी सौम्य वस्तुदाता। ६. अनेक प्रकारकी मालाएँ देने वाले। ७. मनोज्ञ रसदाता। ८. मणिमय आभरण प्रदाता। ९. भवनदाता। १०. वस्त्रदाता।

प्राणत और अच्युत। इन दस कल्पोंमें १० इन्द्र कहे······—शक्र, ईशान यावत् अच्युत। इन १० इन्द्रोंके १० परियानिक विमान······—पालक, पुष्पक यावत् विमलवर, सर्वतोभद्र ॥१०६३॥ दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा १०० रातदिनोंमें ५५० भिक्षाओंसे यथासूत्र यावत् आराधित होती है ॥१०६४॥

संसारी जीव १० प्रकारके कहे गए हैं०—प्रथमसमयैकेन्द्रिय, अप्रथमसमयैकेन्द्रिय इसी प्रकार यावत् अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय ॥१०६५॥ समस्त जीव दस ······—पृथिवीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय, अनीन्द्रिय ॥१०६६॥ अथवा समस्त······—प्रथमसमयनैरयिक, अप्रथम० यावत अप्रथमसमयदेव, प्रथमसमयसिद्ध, अप्रथमसमयसिद्ध ॥१०६७॥

शतायु पुरुषकी दश दशाएँ कही गई हैं०—बाला१, क्रीडा२, मन्दा३, बला४, प्रज्ञा५, हायनी६, प्रपञ्चा७, प्राग्भारा८, मृङ्मुखी९, स्वापनी१० ॥१०६८॥ तृणवनस्पतिकायिक १० प्रकारके कहे गए हैं०—मूल, कन्द यावत् पुष्प, फल और बीज ॥१०६९॥ समस्त दिशाओंमें विद्याधर (नगर) श्रेणियां विष्कम्भ की अपेक्षा १०-१० योजनकी कही गई हैं ॥१०७०॥

समस्त···आभियोगिक श्रेणियाँ विष्कम्भ······॥१०७१॥ ग्रैवेयक विमान् १० सौ अर्थात् एक हजार योजन ऊँचे कहे गए हैं ॥१०७२॥ १० कारणोंसे तेजोलेश्यायुक्त श्रमण तद्युक्त उपसर्गकारीको भस्म कर देता है०—यदि कोई उपसर्गकारी तथारूप श्रमण ब्राह्मणकी महती आशातना करता है, तब वह अत्यन्त कुपित होकर उसके उपर तेजोलेश्या छोड़ता है। वह उस उपसर्गकारीको पीड़ित करके तेजोलेश्यासहित उसे भस्म कर देती है। यदि·····तब उसका पक्षपाती देव अत्यन्त···········। यदि·····तब वह और उसका पक्षपाती देव दोनों अत्यन्त कुपित होकर उपसर्गकर्ताके विनाशका निश्चय करके तेजोलेश्या छोड़ते हैं। उस ···· उसे भस्म कर देते हैं। यदि······छोड़ता है तब उस आशातनाकारी पुरुषके शरीर पर फफोले (छाले) हो जाते हैं। जब वे फूटते हैं तो उसे···· भस्म कर देते हैं। यदि तब उसका पक्षपाती देव······ फफोले ······। यदि······दोनों··· फफोले ····। यदि ·····छोड़ता है···फफोले ·····फूटते हैं तो उनके स्थान पर दूसरे और छोटे २ फफोले हो जाते हैं। जब वे भस्म कर

१. बचपन। २. खेलनेकी उमर। ३. भोग भोगनेमें समर्थ। ४. शक्तिशाली। ५. समर्थ बुद्धि वाला। ६. जिस अवस्थामें इन्द्रियशक्ति क्षीण होने लगे। ७. चिकना कफ़ निकालना बार २ खांसना। ८. शरीरका कुछ २ झुक जाना, झुर्रियाँ पड़ना। ९. मृत्युमुखी। १०. नींद पर नींद आने वाली दशा।

अ० तप, अ० वीर्य, अ० क्षमा, अ० निर्लोभता, अ० आर्जव, अ० मार्दव, अ० लाघव ।।१०५४।।

*समयक्षेत्रमें १० कुरु कहे……—पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु। उनमें विशालातिविशाल १० महाद्रुम कहे………—जम्बू सुदर्शना, धातकीवृक्ष, महाधातकीवृक्ष, पद्मवृक्ष, महापद्मवृक्ष और पांच कूटशाल्मली। उन पर १० महर्द्धिक यावत् देव रहते हैं०—अनादृत जम्बूद्वीपाधिपति, सुदर्शन, प्रियदर्शन, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, पांच गरुड़ वेणुदेव ।।१०५५।।

१० स्थानोंसे दुषमाका आगमन जानें०—अकालवृष्टि, समय पर वर्षा न होना, असाधुओंकी पूजा, साधुजनोंका आदर न होना, माता-पिता आदि गुरु-जनोंके प्रति लोगोंका विनयरहित होना, अमनोज्ञ शब्द यावत् अमनोज्ञ स्पर्श ।।१०५६।।

१० स्थानोंसे सुषमा……—अकाल वृष्टि न होना, उसी प्रकार दुषमाका उल्टा जानना चाहिए यावत् मनोज्ञ स्पर्श ।।१०५७।। सुषमसुषमा कालमें १० प्रकारके वृक्ष उपभोग्य रूपसे उत्पन्न होते हैं०—मत्ताङ्गक१, भृताङ्ग२, त्रुटिताङ्ग३, दीपाङ्ग४, ज्योतिरङ्ग५, चित्राङ्ग६, चित्ररस७, मण्याङ्ग८, गेहाकार९, अनग्न१० ।।१०५८।।

जम्बूद्वीपस्थित भरत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीमें १० कुलकर हुए०—शतज्ज्वल, शतायु, अनन्तसेन, अमितसेन, तर्कसेन, भीमसेन, महाभीमसेन, दृढ़रथ दशरथ, शतरथ ।।१०५९।। जंबू०…आगामी उत्सर्पिणीमें १० कुलकर होंगे०—सीमङ्कर, सीमंधर, क्षेमङ्कर, क्षेमंधर, विमलवाहन, संमुचि, प्रतिश्रुत, दशधनु, दृढ़धनु, शतधनु ।।१०६०।।

जंबूद्वीपस्थित मन्दर पर्वतके पूर्वमें सीता महानदीके दोनों तटों पर १० वक्षस्कार पर्वत कहे गए हैं०—माल्यवान्, चित्रकूट यावत् सौमनस ।।१०६१।। जंबू० मंदर० के पश्चिममें सीतोदा महानदीके दोनों……—विद्युत्प्रभ यावत् गन्धमादन। इसी प्रकार धातकीखण्डके पूर्वार्द्धमें भी वक्षस्कार पर्वत कहने चाहिएँ, यावत् पुष्करवरद्वीप पश्चिमार्द्ध में ।।१०६२।।

दस कल्प इन्द्रों द्वारा अधिष्ठित कहे गए हैं०—सौधर्म यावत् सहस्रार,

---

*ढाई द्वीप। १. सुखद रसदाता। २. पात्रदाता। ३. चतुर्विध वाद्योंके कारणभूत। ४. दीपकके समान प्रकाश करने वाले। ५. बादराग्नि जैसी सौम्य वस्तुदाता। ६. अनेक प्रकारकी मालाएँ देने वाले। ७. मनोज्ञ रसदाता। ८. मणिमय आभ-रण प्रदाता। ९. भवनदाता। १०. वस्त्रदाता।

करेंगे०—प्रथमसमयैकेन्द्रियनिर्वातित यावत् अप्रथमसमयपंचेन्द्रियनिर्वातित। इसी प्रकार उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा ॥१०८५॥ दश प्रदेशिक-स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं ॥१०८६॥ दश प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त ····॥१०८७॥

दस समयकी स्थिति वाले पुद्गल ······। दसगुण काले पुद्गल अनन्त ···· ॥१०८८॥ इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शसे जानना चाहिए, यावत् दसगुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गए हैं ॥१०८९॥

॥ दसवाँ स्थान समाप्त ॥

॥ स्थानाङ्गसूत्र समाप्त ॥

देते हैं। ये तीन आलापक कहने चाहिएँ। यदि कोई तथारूप श्रमण ब्राह्मणकी महती आशातना करता हुआ उनके ऊपर तेजोलेश्या छोड़ देता है। तो वह तेजोलेश्या उनके ऊपर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं दिखलाती, केवल उनके समीप तक आती है, उनकी प्रदक्षिणा करके ऊपर आकाशमें उड़ जाती है, और उनके तेजसे प्रतिहत होकर वापस लौट आती है एवं प्रक्षेप्ताके शरीरको बहुत बुरी तरह जलाती हुई उस उपसर्गकारीको भस्म कर देती है। जैसे गोशालक मंखलीपुत्रकी तेजोलेश्या ॥१०७३॥

१अछेरे १० कहे गए हैं०—उपसर्ग१, गर्भहरण२, स्त्रीतीर्थ३, अभाविता४ परिषत्, कृष्णका अपरकङ्का५ (जाना), चन्द्र सूर्यका साक्षात् अवतरण, हरिवंश कुलोत्पत्ति, चमरोत्पात६, अष्टशत७सिद्ध, असंयतपूजा ८। ये दश आश्चर्य अनन्तकालके बाद इस अवसर्पिणीमें हुए ॥१०७४॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीका रत्नकाण्ड १० सौ योजन मोटा कहा गया है ॥१०७५॥ इस······वज्रकाण्ड दस सौ······इसी प्रकार वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अञ्जन, अंजनपुलक, र[illegible], जातरूप, अङ्क, स्फटिक, रिष्ट। रत्नके समान सोलहों कहने चाहिएँ ॥१[illegible] सभी द्वीपसमुद्र उद्वेधकी अपेक्षा १-१ हजार योजनके कहे गए हैं ॥१[illegible]

लंकर हुए०—

सभी महाद्रह उद्वेधकी अपेक्षा १०-१० योजन···॥१०७८॥ सेन, दृढ़रथ, कुण्ड गहराईकी अपेक्षा दस····· ॥१०७९॥ शीता शीतोदा महा[illegible] र होंगे०— प्रवेश स्थानमें दस २ योजन गहरी हैं ॥१०८०॥ कृत्तिका नक्षत्र[illegible] दशधनु, मण्डल९ से दसवें मण्डलमें भ्रमण करता है ॥१०८१॥ अनुराधा नक्ष[illegible] न्तर मण्डलसे दसवें······॥१०८२॥

र १०

दस नक्षत्र श्रुतज्ञान्की वृद्धि करने वाले कहे गए हैं०—मृगशिर[illegible] १॥ पुष्य, तीनों पूर्वा, मूल, अश्लेषा, हस्त, चित्रा ॥१०८३॥ चतुष्पद स्[illegible]वत, पंचेन्द्रियतिर्यचोंकी १० लाख जातिकुलकोटियोनि प्रमुख कही गई हैं। इस प्रकार उरःपरिसर्प स्थलचर० की भी ॥१०८४॥

जीवोंने १० स्थानोंसे पुद्गलोंको पापकर्म रूपसे ग्रहण किया, करते हैं और

---

१. भगवान् महावीरको केवली अवस्थामें। २. वीरप्रभुका। ३. मल्लीनाथ। ४. केवलज्ञानके बाद भगवान् महावीरका प्रथम उपदेश निष्फल जाना। ५. 'यात्रा'। ६. असुरकुमारराज चमरका सौधर्म कल्पमें जाना। ७. भगवान् ऋषभके तीर्थमें उत्कृष्ट अवगाहनाधारी १०८ मुनियोंका एक समयमें सिद्ध होना। ८. इस अवसर्पिणीमें। ९. चन्द्रसंचरण मार्गविशेप।

से बन्ध एक है। कर्ममुक्त आत्माओंकी सामान्य विवक्षासे मोक्ष एक है। जीवरूप नौकामें इन्द्रियरूप छिद्रोंसे कर्मरूप जलका संचय आस्रव है, वह सामान्य विवक्षासे एक है। जीवरूप नौकामें इन्द्रियरूप छिद्रोंसे आते हुए कर्मरूप जलको रोकना संवर है, वह सामान्य विवक्षासे एक है। अशुभकर्मोदय जन्य मानसिक-कायिक-पीड़ा वेदना है, वह सामान्य विवक्षासे एक है। कर्मक्षयरूप निर्जरा सामान्यतया एक है ॥३॥

जम्बूद्वीपका आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई चौड़ाई) एक लाख योजनका है। सातवीं नरकके मध्य अप्रतिष्ठान नरकावासका आयाम विष्कम्भ एक लाख योजनका है। सौधर्मेन्द्रके अभियोगिक पालकदेव द्वारा विकुर्वित पालक यान विमानका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजनका है। सर्वार्थसिद्ध विमानका आयामविष्कम्भ एक लाख योजनका है। आर्द्रा नक्षत्रका एक तारा है। चित्रा नक्षत्रका एक तारा है। स्वाति नक्षत्रका एक तारा है ॥४॥

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

समवायांग

.........हे आयुष्मान् साधक ! जम्बू ! मैंने उन भगवान महावीरसे इस प्रकार सुना है ॥१॥

[श्रुतधर्म प्रवर्तक चतुर्विध संघ संस्थापक स्वयंबुद्ध पुरुषोत्तम पुरुष-सिंह पुरुष-वर-पुण्डरीक पुरुष-वर-गंधहस्ति लोकोत्तम लोकनाथ लोकहितकर लोक-प्रदीप लोकप्रद्योतक अभयदाता ज्ञानचक्षु-दाता मोक्षमार्ग-दाता [निर्देशक] शरण-दाता जीवनदाता [जीवदयावान] धर्मप्ररूपक धर्मदेशक धर्मनायक धर्मसारथी धर्म-चतुर्दिक्-चक्रवर्ती अप्रतिपाति सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन धारक मायारहित जिन और ज्ञापक [रागद्वेष विजेता और अन्य साधकोंके विजायक], संसार समुद्र उत्तीर्ण और तारक, नवतत्व बुद्ध और बोधक, कर्म-मुक्त और मोचक, सर्वज्ञ सर्व-दर्शी, सुखद अचल अरुज अनंत अक्षय अव्याबाध अपुनरावर्तक सिद्ध स्थानके साधक श्रमण भगवान महावीरने इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटककी प्ररूपणा की यथा:—

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, विवाहप्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद ॥२॥

इनमें चतुर्थ अंग समवायांगका यह अर्थ कहा है यथा :—]

पहला समवाय

चैतन्यगुणकी अपेक्षासे आत्मा एक है। अनुपयोग लक्षणकी अपेक्षासे अनात्मा (जड़ पदार्थ) एक है। अप्रशस्त योगोंका प्रवृत्तिरूप व्यापार (हिंसा) एक होनेसे दंड एक है। प्रशस्तयोगोंका प्रवृत्तिरूप व्यापार अदंड (अहिंसा) एक है। योगों (मन वचन काया) की प्रवृत्तिरूप क्रिया एक है। योगनिरोधरूप अक्रिया एक है। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्योंका आधारभूत लोकाकाश एक है। धर्मास्ति-काय आदि द्रव्योंका अभावरूप अलोकाकाश एक है। पदार्थोंकी गतिमें सहायक-रूप स्वभावसे धर्मास्तिकाय एक है। पदार्थोंकी स्थितिमें सहायकरूप स्वभावसे अधर्मास्तिकाय एक है। शुभयोगरूप प्रवृत्तिके एक होनेसे पुण्य एक है। अशुभ-योगरूप प्रवृत्तिके एक होनेसे पाप एक है। कर्मबद्ध आत्माओंकी विवक्षा

से बन्ध एक है। कर्ममुक्त आत्माओंकी सामान्य विवक्षासे मोक्ष एक है। जीवरूप नौकामें इन्द्रियरूप छिद्रोंसे कर्मरूप जलका संचय आस्रव है, वह सामान्य विवक्षासे एक है। जीवरूप नौकामें इन्द्रियरूप छिद्रोंसे आते हुए कर्मरूप जलको रोकना संवर है, वह सामान्य विवक्षासे एक है। अशुभकर्मोदय जन्य मानसिक-कायिक-पीड़ा वेदना है, वह सामान्य विवक्षासे एक है। कर्मक्षयरूप निर्जरा सामान्यतया एक है॥३॥

जम्बूद्वीपका आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई चौड़ाई) एक लाख योजनका है। सातवीं नरकके मध्य अप्रतिष्ठान नरकावासका आयाम विष्कम्भ एक लाख योजनका है। सौधर्मेन्द्रके अभियोगिक पालकदेव द्वारा विकुर्वित पालक यान विमानका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजनका है। सर्वार्थसिद्ध विमानका आयामविष्कम्भ एक लाख योजनका है। आर्द्रा नक्षत्रका एक तारा है। चित्रा नक्षत्रका एक तारा है। स्वाति नक्षत्रका एक तारा है॥४॥

इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वीके कुछ नारकोंकी स्थिति एक पल्योपमकी है। इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वीके नारकोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपमकी है। शर्कराप्रभा नामक पृथ्वीके नारकोंकी जघन्य स्थिति एक सागरोपमकी है। असुरकुमार देवोंमें से कुछ देवोंकी स्थिति एक पल्योपमकी है। असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक सागरोपमकी है। असुरेन्द्रको छोड़कर कुछ भवनपति देवोंकी स्थिति एक पल्योपमकी है। असंख्यवर्षोंकी आयुवाले कुछ गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियोंकी स्थिति एक पल्योपमकी है। असंख्यवर्षोंकी आयु वाले कुछ गर्भज मनुष्योंकी स्थिति एक पल्योपमकी है। वाणव्यंतर देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपमकी है। ज्योतिषी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम अधिक एक लाख वर्षकी है। सौधर्म कल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति एक पल्योपम की है। सौधर्म कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति एक सागरोपमकी है। ईशान कल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपमकी है। ईशान कल्पके कुछ देवों की स्थिति एक सागरोपमकी है। सागर सुसागर सागरकान्त भव मनु मानुषोत्तर और लोकहित विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति ए

दूसरा समवाय

दंड दो प्रकारका है यथा—स्वपरहितके लिए की जाने वाली हिंसा अर्थदंड है। स्वपरअहितके लिए की जाने वाली अथवा व्यर्थ की जाने वाली हिंसा अनर्थदंड है। राशि दो प्रकारकी है यथा–जीव राशि, अजीव राशि। वन्धन दो प्रकारका है यथा–राग वन्धन, द्वेप वन्धन। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके २ तारे हैं। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके २ तारे हैं। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके २ तारे हैं। उत्तराभाद्रपद नक्षत्रके २ तारे हैं ॥६॥

रत्नप्रभा नामक पृथ्वीके कुछ नारकोंकी स्थिति दो पल्योपमकी है। शर्कराप्रभा नामक द्वितीय पृथ्वीके कुछ नारकोंकी स्थिति दो सागरोपमकी है। असुरकुमार देवोंमें से कुछ देवोंकी स्थिति दो पल्योपमकी है। असुरेन्द्रको छोड़ कर शेष भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम दो पल्योपमकी है। असंख्यात वर्षकी आयु वाले कुछ संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रियोंकी स्थिति दो पल्योपमकी है। असंख्यात वर्षकी आयु वाले कुछ गर्भज मनुष्योंकी स्थिति दो पल्योपमकी है। सौधर्म कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति दो पल्योपमकी है। ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति दो पल्योपमकी है। सौधर्मकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपमकी है। ईशान कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपमकी है। सनत्कुमार कल्प के देवोंकी जघन्य स्थिति दो सागरोपमकी है। माहेन्द्रकल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपमकी है। शुभ शुभकान्त शुभवर्ण शुभलेश्य शुभगंध शुभस्पर्श वाले सौधर्मावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपमकी होती है ॥७॥

शुभ-यावत्-सौधर्मावतंसक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे दो पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। शुभ-यावत्-सौधर्मावतंसक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा दो हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दो भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ॥८॥

तीसरा समवाय

दंड (हिंसा) तीन प्रकारके हैं, यथा–मनदंड, वचनदंड, कायदंड। तीन गुप्तियां हैं, यथा–मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। शल्य तीन प्रकारके हैं, यथा-माया शल्य, निदान शल्य, मिथ्यादर्शन शल्य। गर्व तीन प्रकारके हैं, यथा–ऋद्धि गर्व, रस गर्व, साता गर्व। विराधना तीन प्रकारकी है, यथा–ज्ञान विराधना, दर्शन विराधना, चारित्र विराधना। मृगशिर नक्षत्रके तीन तारे हैं। पुष्य नक्षत्र के तीन तारे हैं। ज्येष्ठा नक्षत्रके तीन तारे हैं। अभिजित नक्षत्रके तीन तारे हैं। श्रवण नक्षत्रके तीन तारे हैं। अश्विनी नक्षत्रके तीन तारे हैं। भरणी नक्षत्रके तीन तारे हैं ॥९॥

रत्नप्रभापृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति ३ पल्योपम की है। शर्कराप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है। वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकोंकी जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति तीन पल्योपमकी है। असंख्य वर्षकी आयुवाले संज्ञी तिर्यचपंचेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है। असंख्य वर्षकी आयुवाले गर्भज मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति तीन पल्योपमकी है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति तीन सागरोपम की है। आभंकर-प्रभंकर-चंद्र-चंद्रावर्त-चंद्रप्रभ-चंद्रकान्त-चंद्रवर्ण-चद्रलेश्य-चंद्रध्वज-चंद्रशृंग-चंद्रश्रेष्ठ-चंद्रकूट—चंद्रोत्तरावतंसक-विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की होती है ॥१०॥

आभंकर-यावत्-चंद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे तीन पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। आभंकर-यावत् चंद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा तीन हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीन भव करके सिद्ध-यावत् सर्व दुःखों का अंत करेंगे ॥११॥

चौथा समवाय

कषाय चार प्रकारके हैं, यथा-क्रोध, मान, माया, लोभ। ध्यान चार प्रकार के हैं, यथा—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। विकथा चार प्रकार की हैं, यथा—स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा, राज कथा। संज्ञा चार प्रकारकी हैं, यथा—आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा। वन्ध चार प्रकारका है, यथा—प्रकृति वन्ध, स्थिति वन्ध, अनुभाग वन्ध, प्रदेश वन्ध। योजन चार गाउ (कोस) का कहा गया है ॥१२॥

अनुराधा नक्षत्र के चार तारे हैं। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के चार तारे हैं। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चार तारे हैं ॥१३॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति चार पल्योपम की है। वालुकाप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति चार सागरोपम की है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति चार पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम की है। सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्पके कुछ देवों की स्थिति चार सागरोपमकी है। कृष्टि-सुकृष्टि-कृष्टिकावर्त-कृष्टिप्रभ-कृष्टियुक्त-कृष्टिवर्ण — कृष्टिलेश्य-कृष्टिध्वज-कृष्टिशृंग-कृष्टिकूट-व कृष्ट्युत्तरावतंसक-विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपमकी होती है ॥१४॥

कृष्टि-यावत्-कृष्ट्युत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे चार पक्ष से स्वासोच्छ्वास लेते हैं। कृष्टि-यावत्-कृष्ट्युत्तरावतंसक-विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा चार हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चार भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥१५॥

पांचवाँ समवाय

क्रिया पांच प्रकारकी हैं, यथा—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातिकी। महाव्रत पांच प्रकारके हैं, यथा—सर्वथा प्राणातिपात विरमण, सर्वथा मृषावाद विरमण, सर्वथा अदत्तादान विरमण, सर्वथा मैथुन विरमण, सर्वथा परिग्रह विरमण। कामगुण पांच प्रकारके हैं, यथा—शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श। आस्रवद्वार पाँच प्रकारके हैं, यथा—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग। संवर पाँच प्रकार के हैं, यथा—सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय, अयोग। निर्जरा स्थान पांच प्रकारके हैं, यथा-प्राणातिपात-विरति, मृषावाद विरति, अदत्तादान विरति, मैथुन विरति, परिग्रह विरति। समिति पांच प्रकारकी हैं, यथा—ईर्यासमिति, भाषा-समिति, एषणासमिति, आदानभांडमात्रनिक्षेपणासमिति, उच्चार–प्रस्रवण—श्लेष्म—नासिकामल–शरीर का मैल—परिष्ठापनिकासमिति। अस्तिकाय पांच प्रकारके हैं, यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय ॥१६॥

रोहिणी नक्षत्रके पांच तारे हैं। पुनर्वसु नक्षत्रके पांच तारे हैं। हस्त नक्षत्र के पांच तारे हैं। विशाखा नक्षत्रके पांच तारे हैं। धनिष्ठा नक्षत्रके पांच तारे हैं ॥१७॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति पांच पल्योपमकी है। वालुकाप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति पांच सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति पांच पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवों की स्थिति पांच पल्योपम की है। सनतकुमार और माहेन्द्र कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति पांच सागरोपमकी है। वात-सुवात-वातावर्त-वातप्रभ-वातकांत-वातवर्ण-वातलेश्य-वातध्वज-वातशृंग-वातश्रेष्ठ-वातकूट-वातोत्तरावतंसक सूर-सुसूर-सूरावर्त-सूरप्रभ-सूरकान्त--सूरवर्ण-सूरलेश्य-सूरध्वज-सूरशृंग—सूरश्रेष्ठ—सूरकूट—सूरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति पांच सागरोपम की होती है ॥१८॥

वात-यावत्-सूरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे पांच पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। वात-यावत्-सूरोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न

होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा पांच हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पांच भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ॥१९॥

छठा समवाय

लेश्या छः प्रकारकी है, यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या। जीवनिकाय छः प्रकारके हैं, यथा—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय। बाह्य तप छः प्रकारके हैं, यथा—अनशन, ऊनोदरिका, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, संलीनता। आभ्यंतर तप छः प्रकारके हैं, यथा—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, उत्सर्ग। छाद्मस्थिक समुद्घात छः प्रकारके हैं, यथा—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, वैक्रियसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात। अर्थावग्रह छः प्रकारके हैं, यथा—श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, चक्षुइन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, रसनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह ॥२०॥

कृत्तिका नक्षत्रके छः तारे हैं। अश्लेषा नक्षत्रके छः तारे हैं ॥२१॥

रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति छः पल्योपमकी है। वालुकाप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति छः सागरोपम की है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति छः पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति छः पल्योपमकी है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति छः सागरोपम की है। स्वयंभू-स्वयंभूरमण-घोष-सुघोष-महाघोष-कृष्टिघोष-वीर-सुवीर-वीरगति-वीरश्रेणिक-वीरावर्त-वीरप्रभ-वीरकांत-वीरवर्ण-वीरलेश्य-वीरध्वज-वीरशृंग-वीरश्रेष्ठ-वीरकूट-वीरोत्तरावतंसक-विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति छः सागरोपमकी होती है ॥२२॥

स्वयंभू-यावत्-वीरोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे छः पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। स्वयंभू-यावत्-वीरोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा छः हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छः भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥२३॥

सातवां समवाय

भयस्थान सात प्रकारके हैं, यथा—इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय, मरण भय, अपयश भय। समुद्घात सात प्रकारके हैं, यथा—वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात,

वैक्रिय समुद्घात, तेजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात। श्रमण भगवान महावीर सात हाथ ऊंचे थे। इस जम्बूद्वीपमें सात वर्षधर पर्वत हैं, यथा—लघुहिमवन्त, महाहिमवंत, निषध, नीलवंत, रुक्मी, शिखरी, मंदराचल। इस जम्बूद्वीपमें सात क्षेत्र हैं, यथा—भरत, हेमवंत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक्वर्ष, ऐरण्यवत, ऐरवत। क्षीणमोह वीतराग मोहनीयको छोड़कर सात कर्म प्रकृतियों की वेदना करते हैं ॥२४॥

मघा नक्षत्रके सात तारे हैं। कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशामें द्वार वाले हैं। मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशामें द्वार वाले हैं। अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशामें द्वार वाले हैं। धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशामें द्वार वाले हैं ॥२५॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सात पल्योपमकी है। वालुकाप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सात सागरोपमकी है। पंकप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी जघन्य स्थिति सात सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति सात पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति सात पल्योपमकी है। सनत्कुमार कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है। माहेन्द्र कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपमकी है। ब्रह्मलोक कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपमकी है। सम-सम-प्रभ-महाप्रभ-प्रभास-भासुर-विमल-कंचनकूट और सनत्कुमारावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपमकी है ॥२६॥

सम-यावत्-सनत्कुमारावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे सात पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। सम-यावत्-सनत्कुमारावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा सात हजार वर्षसे होती है। कुछ ऐसे भवसिद्धिक जीव हैं जो सात भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥२७॥

आठवाँ समवाय

मदस्थान आठ हैं, यथा—जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपमद, श्रुतमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद। प्रवचनमाता आठ हैं, यथा—ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-भांड-मात्र-निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिकासमिति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। व्यंतर देवोंके आवासवृक्ष आठ योजनके ऊंचे हैं। जंबूद्वीपके सुदर्शन वृक्ष आठ योजनके ऊंचे हैं। गरुड़ावास कूटशाल्मली वृक्ष आठ योजनके ऊंचे हैं। जम्बूद्वीप की जगती आठ योजन ऊंची है। केवलीसमुद्घातके आठ समय होते हैं, यथा—प्रथम समयमें आत्मप्रदेशोंकी दण्ड रचना। द्वितीय समयमें आत्मप्रदेशोंकी कपाट

रचना। तृतीय समयमें आत्मप्रदेशोंकी मथानी रचना। चतुर्थ समयमें मथानीके अन्तरालोंकी पूर्ति। पंचम समयमें मथानीके अन्तरालोंका संहरण। छठे समयमें मथानीका संहरण। सातवें समयमें कपाटका संहरण। आठवें समयमें दंडका संहरण। पश्चात् आत्मा शरीरस्थ होती है। प्रख्यातपुरुष अरहंत पार्श्वनाथके आठ गण और गणधर थे, यथा–शुभ-शुभघोष-वशिष्ठ-ब्रह्मचारी-सोम-श्रीधर-वीरभद्र-यश। चंद्रके साथ प्रमर्द योग करने वाले आठ नक्षत्र हैं, यथा–कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा ॥२८॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति आठ पल्योपमकी है। पंकप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति आठ सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति आठ पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति आठ पल्योपमकी है। ब्रह्मलोक कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति आठ सागरोपमकी है। अर्चि-अर्चिमाली-वैरोचन-प्रभंकर-चंद्राभ-सूर्याभ-सुप्रतिष्ठाभ-अग्निच्चाभ-रिष्टाभ-अरुणाभ-अरुणोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपमकी होती है ॥२९॥

अर्चि-यावत्-अरुणोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे आठ पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। अर्चि-यावत्-अरुणोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा आठ हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो आठ भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥३०॥

नौवाँ समवाय

ब्रह्मचर्यकी गुप्तियां नौ हैं, यथा—स्त्री, पशु और नपुंसकके संसर्गसे युक्त स्थान या आसनके उपयोग करनेका निषेध। स्त्रीकथा कहनेका निषेध। स्त्रीसमूहमें बैठनेका निषेध। स्त्रीकी मनोहर मनोरम इन्द्रियोंको देखनेका तथा चिंतनका निषेध। प्रचुर घृतादियुक्त विकारवर्धक आहार करनेका निषेध। अधिक भोजन करनेका निषेध। स्त्रीके साथ की हुई कामक्रीड़ाके स्मरणका निषेध। स्त्रीके शब्द-रूप-गंध-रस और स्पर्शकी प्रशंसा करनेका निषेध। कायिक सुखोंमें आसक्त होनेका निषेध। ब्रह्मचर्य-अगुप्तियाँ नौ हैं, यथा—पूर्वकथित नौ गुप्तियों से विपरीत आचरण करना। आचारांगके प्रथम ब्रह्मचर्य श्रुतस्कन्धके नौ अध्ययन हैं, यथा—शस्त्र-परिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, आवंति, धूत, विमोहायन, उपधान-श्रुत, महापरिज्ञा। प्रख्यात पुरुष अरहन्त पार्श्वनाथ नौ हाथ ऊंचे थे ॥३१॥

अभिजित् नक्षत्रका चंद्रके साथ योगकाल कुछ अधिक नव मुहूर्तका है। अभिजित् आदि नौ नक्षत्रोंका चन्द्रके साथ उत्तर दिशासे योग होता है, यथा—

अभिजित् श्रवण-यावत्-भरणी। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके अतिसम रमणीय भूभाग मे नौ सौ योजनकी अव्यवहित ऊचाई पर तारा गति करते हैं ।।३२।।

जंबूद्वीपमें नौ योजन प्रमाण वाले मत्स्य प्रवेश करते थे, करते हैं और करेंगे। विजयद्वारके प्रत्येक पार्श्वभागमें नौ नौ भौम नगर हैं। व्यंतर देवोंकी सुधर्मा-सभा नौ योजनकी ऊची है। दर्शनावरणकर्मकी नौ प्रकृतियाँ हैं, यथा—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षु-दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।।३३।।

रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति नौ पल्योपमकी है। पंकप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति नौ सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति नौ पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति नौ पल्योपमकी है। ब्रह्मलोककल्पके कुछ देवोंकी स्थिति नौ सागरोपमकी है। पक्ष्म-सुपक्ष्म-पक्ष्मावर्त-पक्ष्मप्रभ-पक्ष्मकांत-पक्ष्मवर्ण-पक्ष्मलेश्य - पक्ष्मध्वज - पक्ष्मशृंग-पक्ष्मश्रेष्ठ-पक्ष्मकूट-पक्ष्मोत्तरावतंसक सूर्य-सुसूर्य-सूर्यावर्त-सूर्यप्रभ-सूर्यकान्त-सूर्य-वर्ण-सूर्यलेश्य-सूर्यध्वज-सूर्यशृंग - सूर्यश्रेष्ठ - सूर्यकूट - सूर्योत्तरावतंसक रुचिर-रुचिरावर्त-रुचिरप्रभ - रुचिरकांत-रुचिरवर्ण-रुचिरलेश्य-रुचिरध्वज--रुचिरशृंग-रुचिरश्रेष्ठ - रुचिरकूट-रुचिरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति नौ सागरोपमकी होती है ।।३४।।

पक्ष्म-यावत्-रुचिरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे नौ पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पक्ष्म-यावत्-रुचिरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा नौ हजार वर्षमे होती है। कुछ भव-सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो नौ भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ।।३५।।

दसवां समवाय

श्रमण धर्म दस प्रकारके हैं, यथा—क्षांति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्यवास। मन के समाधिस्थान दस हैं, यथा-अपूर्व धर्म-जिज्ञासा से। अपूर्व स्वप्नदर्शन से। पूर्वजन्मकी स्मृति होने से। अपूर्व दिव्य ऋद्धि, दिव्य कान्ति और दिव्य देवानुभाव के दर्शन से। अपूर्व अवधिज्ञान के उत्पन्न होने से। अपूर्व अवधिदर्शन के उत्पन्न होने से। अपूर्व मनःपर्यवज्ञान के उत्पन्न होने से। केवलज्ञान उत्पन्न होने से। केवलदर्शन उत्पन्न होने से। अपूर्व पंडितमरण से ।। मेरु पर्वत के मूल का विष्कंभ दस हजार योजन का है। अर्हन्त अरिष्टनेमी दस धनुष के ऊंचे थे। कृष्ण वासुदेव दस धनुष के ऊँचे थे। राम बलदेव दस धनुष के ऊंचे थे। ज्ञान की वृद्धि करने वाले दस नक्षत्र

हैं, यथा-मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, अश्लेषा, हस्त, चित्रा। अकर्मभूमिज मनुष्योंके उपभोग के लिए दस कल्पवृक्ष होते हैं, यथा-मत्तांगक, भृंगांगक, त्रुटितांग, दीप-शिख, ज्योति, चित्रांग, चित्ररस, मण्यंग, गेहाकार, अनग्न ॥३६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति दस पल्योपम की है। पंकप्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं। पंकप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। धूमप्रभा पृथ्वीके नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है। असुरकुमार देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। असुरेन्द्र को छोड़कर शेष भवनपति देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति दस पल्योपम की है। प्रत्येक वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की है। व्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति दस पल्योपम की है। ब्रह्मलोककल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। लांतककल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है। घोष सुघोष महाघोष नंदीघोष सुस्वर मनोरम रम्य रम्यक रमणीय मंगलावर्त और ब्रह्मलोकावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की होती है ॥३७॥

घोष-यावत्-ब्रह्मलोकावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे दस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। घोष-यावत्-ब्रह्मलोकावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा दस हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥३८॥

ग्यारहवाँ समवाय

उपासक की ग्यारह प्रतिमाएं हैं, यथा-दर्शन श्रावक। कृत व्रतकर्म। कृत सामायिक। पौषधोपवास निरत। दिन में ब्रह्मचर्य का पालन और रात्रि में मैथुन सेवन का परिमाण। दिन और रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन, अस्नान, रात्रि भोजन विरति, कच्छ परिधान परित्याग। मुकुट त्याग। सचित्त परित्याग। आरम्भ परित्याग। प्रैष्य परित्याग। उद्दिष्ट भक्त परित्याग। श्रमणभूत ॥ लोकान्त से अव्यवहित ग्यारह सौ ग्यारह योजन दूरी पर ज्योतिष-चक्र प्रारम्भ होता है। जम्बूद्वीपमें मेरुपर्वतसे अव्यवहित ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूरी पर ज्योतिपचक्र प्रारम्भ होता है। श्रमण भगवान महावीरके ग्यारह गणधर थे, यथा-इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मंडितपुत्र, मौर्यपुत्र,

अभिजित् श्रवण-यावत्-भरणी। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके अतिसम रमणीय भूभाग से नौ सौ योजनकी अव्यवहित ऊंचाई पर तारा गति करते हैं ॥३२॥

जंबूद्वीपमें नौ योजन प्रमाण वाले मत्स्य प्रवेश करते थे, करते हैं और करेंगे। विजयद्वारके प्रत्येक पार्श्वभागमें नौ नौ भौम नगर हैं। व्यंतर देवोंकी सुधर्मा-सभा नौ योजनकी ऊंची है। दर्शनावरणकर्मकी नौ प्रकृतियाँ हैं, यथा—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षु-दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ॥३३॥

रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति नौ पल्योपमकी है। पंकप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति नौ सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति नौ पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति नौ पल्योपमकी है। ब्रह्मलोककल्पके कुछ देवोंकी स्थिति नौ सागरोपमकी है। पक्ष्म-सुपक्ष्म-पक्ष्मावर्त-पक्ष्मप्रभ-पक्ष्मकांत-पक्ष्मवर्ण-पक्ष्मलेश्य - पक्ष्मध्वज - पक्ष्मशृंग-पक्ष्मश्रेष्ठ-पक्ष्मकूट-पक्ष्मोत्तरावतंसक सूर्य-सुसूर्य-सूर्यावर्त-सूर्यप्रभ-सूर्यकान्त-सूर्य-वर्ण-सूर्यलेश्य-सूर्यध्वज-सूर्यशृंग - सूर्यश्रेष्ठ - सूर्यकूट - सूर्योत्तरावतंसक रुचिर-रुचिरावर्त-रुचिरप्रभ - रुचिरकांत-रुचिरवर्ण-रुचिरलेश्य-रुचिरध्वज--रुचिरशृंग-रुचिरश्रेष्ठ - रुचिरकूट-रुचिरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति नौ सागरोपमकी होती है ॥३४॥

पक्ष्म-यावत्-रुचिरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे नौ पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पक्ष्म-यावत्-रुचिरोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा नौ हजार वर्षसे होती है। कुछ भव-सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो नौ भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ॥३५॥

दसवां समवाय

श्रमण धर्म दस प्रकारके हैं, यथा—क्षांति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्यवास। मन के समाधिस्थान दस हैं, यथा-अपूर्व धर्म-जिज्ञासा से। अपूर्व स्वप्नदर्शन से। पूर्वजन्मकी स्मृति होने से। अपूर्व दिव्य ऋद्धि, दिव्य कान्ति और दिव्य देवानुभाव के दर्शन से। अपूर्व अवधिज्ञान के उत्पन्न होने से। अपूर्व अवधिदर्शन के उत्पन्न होने से। अपूर्व मनःपर्यवज्ञान के उत्पन्न होने से। केवलज्ञान उत्पन्न होने से। केवलदर्शन उत्पन्न होने से। अपूर्व पंडितमरण से ॥ मेरु पर्वत के मूल का विष्कंभ दस हजार योजन का है। अर्हन्त अरिष्टनेमी दस धनुष के ऊंचे थे। कृष्ण वासुदेव दस धनुष के ऊँचे थे। राम बलदेव दस धनुष के ऊंचे थे। ज्ञान की वृद्धि करने वाले दस नक्षत्र

हैं, यथा-मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, अश्लेषा, हस्त, चित्रा। अकर्मभूमिज मनुष्योंके उपभोग के लिए दस कल्पवृक्ष होते हैं, यथा-मत्तांगक, भृंगांगक, त्रुटितांग, दीप-शिख, ज्योति, चित्रांग, चित्ररस, मण्यंग, गेहाकार, अनग्न ॥३६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नेरयिकोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति दस पल्योपम की है। पंकप्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं। पंकप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। धूमप्रभा पृथ्वीके नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है। असुरकुमार देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। असुरेन्द्र को छोड़कर शेष भवनपति देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति दस पल्योपम की है। प्रत्येक वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की है। व्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति दस पल्योपम की है। ब्रह्मलोककल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। लांतककल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है। घोष सुघोष महाघोष नंदीघोष सुस्वर मनोरम रम्य रम्यक रमणीय मंगलावर्त और ब्रह्मलोकावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की होती है ॥३७॥

घोष-यावत्-ब्रह्मलोकावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे दस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। घोष-यावत्-ब्रह्मलोकावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा दस हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥३८॥

ग्यारहवाँ समवाय

उपासक की ग्यारह प्रतिमाएं हैं, यथा-दर्शन श्रावक। कृत व्रतकर्म। कृत सामायिक। पौषधोपवास निरत। दिन में ब्रह्मचर्य का पालन और रात्रि में मैथुन सेवन का परिमाण। दिन और रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन, - अस्नान, रात्रि भोजन विरति, कच्छ परिधान परित्याग। मुकुट त्याग। सचित्त परित्याग। आरम्भ परित्याग। प्रैष्य परित्याग। उद्दिष्ट भक्त परित्याग। श्रमणभूत ॥ लोकान्त से अव्यवहित ग्यारह सौ ग्यारह योजन दूरी पर ज्योतिष-चक्र प्रारम्भ होता है। जम्बूद्वीपमें मेरुपर्वतसे अव्यवहित ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूरी पर ज्योतिषचक्र प्रारम्भ होता है। श्रमण भगवान महावीरके ग्यारह गणधर थे, यथा-इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मंडितपुत्र, मौर्यपुत्र,

अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य, प्रभास। मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे हैं। नीचे के तीन ग्रैवेयक देवोंके एकसौ ग्यारह विमान हैं। मेरु पर्वतके पृथ्वीतलके विष्कम्भसे शिखरतल का विष्कम्भ ऊंचाई की अपेक्षा ग्यारह भाग हीन है ॥३९॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है। धूमप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की है। कुछ असुर-कुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है। लांतककल्प के कुछ देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की है। ब्रह्म सुब्रह्म ब्रह्मावर्त ब्रह्मप्रभ ब्रह्मकांत ब्रह्मवर्ण ब्रह्मलेश्य ब्रह्मध्वज ब्रह्मशृंग ब्रह्मश्रेष्ठ ब्रह्मकूट ब्रह्मोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति ग्यारह सागरोपम की होती है ॥४०॥

ब्रह्म-यावत्-ब्रह्मोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे ग्यारह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। ब्रह्म-यावत्-ब्रह्मोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा ग्यारह हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो ग्यारह भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अंत करेंगे ॥४१॥

बारहवाँ समवाय

भिक्षु प्रतिमाएँ बारह हैं, यथा-एकमासिका भिक्षुप्रतिमा। द्विमासिका भिक्षुप्रतिमा। त्रिमासिका भिक्षुप्रतिमा। चतुर्मासिका भिक्षुप्रतिमा। पंचमासिका भिक्षुप्रतिमा। छः मासिका भिक्षुप्रतिमा। सप्तमासिका भिक्षुप्रतिमा। प्रथमा सप्त अहोरात्रिका भिक्षुप्रतिमा। द्वितीया सप्त अहोरात्रिका भिक्षुप्रतिमा। तृतीया सप्त अहोरात्रिका भिक्षुप्रतिमा। एक अहोरात्रिका भिक्षुप्रतिमा। एक रात्रिका भिक्षुप्रतिमा॥ श्रमणों के बारह व्यवहार हैं, यथा-उपधि, श्रुत, भक्त-पान, अंजलिप्रग्रह, दान, निमंत्रण, अभ्युत्थान, कृतिकर्म, वैयावृत्य, समवसरण-संमिलन, संनिषद्या, कथाप्रबंध। द्वादशावर्त वंदना, यथा-दो बार अर्ध नमन, चार बार मस्तक नमन, त्रिगुप्त, द्विप्रवेश, एक निष्क्रमण। विजया राजधानी का आयाम-विष्कम्भ बारह लाख योजन का है। राम बलदेव बारह सौ वर्ष का आयु पूर्ण करके देवगति को प्राप्त हुए। मेरु पर्वत की चूलिका के मूलका विष्कम्भ बारह योजन का है। जंबूद्वीप की वेदिका के मूल का विष्कम्भ बारह योजन का है। सर्व जघन्य रात्रि बारह मुहूर्त की होती है। सर्व जघन्य दिन बारह मुहूर्त का होता है। सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपर की स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर जाने पर ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी है। ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम हैं, यथा-ईषत्, ईषत् प्राग्भारा, तनु, तनुतरा, सिद्धि, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्तालय, ब्रह्म, ब्रह्मावतंसक, लोकप्रतिपूरणा, लोकाग्रचूलिका ॥४२॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बारह पल्योपम की है। धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बारह सागरोपम की है। कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति बारह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति बारह पल्योपम की है। लांतककल्प के कुछ देवों की स्थिति बारह सागरोपम की है। माहेन्द्र माहेन्द्रध्वज कंबु कंबुग्रीव पुंख सुपुंख महापुंख पुंड सुपुंड महापुंड नरेन्द्र नरेन्द्रकांत नरेन्द्रावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम की होती है ॥४३॥

माहेन्द्र-यावत्-नरेन्द्रावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे बारह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। माहेन्द्र-यावत्-नरेन्द्रावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेने की इच्छा बारह हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बारह भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अंत करेंगे ॥४४॥

तेरहवाँ समवाय

तेरह क्रियास्थान हैं, यथा- अर्थदंड, अनर्थदंड, हिंसादंड, अकस्मात् दंड, दृष्टिविपर्यास दंड, मृषावाद हेतुक दंड, अदत्तादान हेतुक दंड, अध्यात्मिक दंड, मित्रद्वेष हेतुक दंड, माया हेतुक दंड, लोभ हेतुक दंड, ईर्यापथ हेतुक दंड। सौधर्म और ईशानकल्प में तेरह विमान प्रस्तट हैं। सौधर्मावतंसक विमान का आयाम-विष्कम्भ साढ़े तेरह लाख योजन का है। ईशानावतंसक विमान का आयाम-विष्कम्भ साढ़े तेरह लाख योजन का है। जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की साढ़े तेरह लाख कुलकोटी है। प्राणायु पूर्व के तेरह वस्तु हैं। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तेरह योग हैं, यथा-सत्य मन प्रयोग, मृषा मन प्रयोग, सत्यामृषा मन प्रयोग, असत्यामृषा मन प्रयोग, सत्य वचन प्रयोग, मृषा वचन प्रयोग, सत्यमृषा वचन प्रयोग, असत्यामृषा वचन प्रयोग, औदारिक शरीर काय प्रयोग, औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग, वैक्रिय शरीर काय प्रयोग, वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग, कार्मण शरीर काय प्रयोग। एक योजन के इकसठ भागों में से तेरह भाग कम करने पर जितना रहे उतना सूर्यमंडल है ॥४५॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेरह पल्योपम की है। धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेरह सागरोपम की है। कुछ असुर-कुमार देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की है। लांतककल्प के कुछ देवों की स्थिति तेरह सागरोपम की है। वज्र सुवज्र वज्रावर्त वज्रप्रभ वज्रकांत वज्रवर्ण वज्रलेश्य

वज्ररूप वज्रश्रृंग वज्रश्रेष्ठ वज्रकूट वज्रोत्तरावतंसक वइर वइरावर्त वइरकांत वइरवर्ण वइरलेश्य वइररूप वइरश्रृंग वइरश्रेष्ठ वइरकूट वइरोत्तरावतंसक लोक लोकावर्त लोकप्रभ लोककांत लोकवर्ण लोकलेश्य लोकरूप लोकश्रृंग लोकश्रेष्ठ लोककूट लोकोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम की होती है ।।४६।।

वज्र-यावत्-लोकोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे तेरह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । वज्र-यावत्-लोकोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा तेरह हजार वर्ष से होती है । कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेरह भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अंत करेंगे ।।४७।।

चौदहवाँ समवाय

चौदह भूतग्राम हैं, यथा-सूक्ष्म अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, बादर पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञीपंचेन्द्रिय अपर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त । चौदह पूर्व हैं, यथा-उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद पूर्व, अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व, सत्यप्रवाद पूर्व, आत्मप्रवाद पूर्व, कर्मप्रवाद पूर्व, प्रत्याख्यान पूर्व, विद्यानुप्रवाद पूर्व, अवंध्य पूर्व, प्राणायु पूर्व, क्रियाविशाल पूर्व, बिन्दुसार पूर्व । अग्रायणीय पूर्व के चौदह वस्तु हैं । श्रमण भगवान महावीर के चौदह हजार श्रमणोंकी संपदा कही गई है । कर्मविशुद्धि मार्गणाकी अपेक्षा चौदह जीवस्थान हैं, यथा-मिथ्यादृष्टि, सास्वादान सम्यग्दृष्टि, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, विरताविरत, प्रमत्त संयत, अप्रमत्तसंयत, निवृत्ति बादर, अनिवृत्ति बादर, सूक्ष्म संपराय, उपशान्त मोह, क्षीण मोह, सयोगी केवली, अयोगी केवली । भरत और ऐरवत की जीवा का आयाम चौदह हजार चार सौ इकहत्तर एक योजन के उन्नीस भागों में से छः भाग का है । प्रत्येक चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं, यथा-स्त्री रत्न, सेनापति रत्न, गाथापति रत्न, पुरोहित रत्न, वार्धकी रत्न, अश्व रत्न, हस्ति रत्न, खड्ग रत्न, दंड रत्न, चक्र रत्न, छत्र रत्न, चर्म रत्न, मणि रत्न, काकणी रत्न । जंबूद्वीप में चौदह महानदियां पूर्व पश्चिम से लवण समुद्र में मिलती हैं, यथा- गंगा, सिन्धु, रोहिता, रोहितांशा, हरि, हरिकांता, सीता, सीतोदा, नरकांता, नारीकांता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तवती ।।४८।।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौदह पल्योपम की है । धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौदह सागरोपम की है । कुछ असुर-

कुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की है। लांतककल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की है। महाशुक्रकल्प के देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की है। श्रीकांत श्रीमहित श्रीसोमनस लांतक कापिष्ठ महेन्द्र महेन्द्रकान्त महेन्द्रोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की होती है ॥४९॥

श्रीकान्त-यावत्-महेन्द्रोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे चौदह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। श्रीकान्त-यावत्-महेन्द्रोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा चौदह हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौदह भव करके सिद्ध-यावत-सर्व दुःखों का अंत करेंगे ॥५०॥

पंद्रहवाँ समवाय

पंद्रह परमाधार्मिक देव हैं, यथा-अंब अंबरिस श्याम सबल रुद्र उपरुद्र काल महाकाल असिपत्र धनु कुंभ बालुक वैतरिणी खरस्वर महाघोष। भगवान नमिनाथ पंद्रह धनुष के ऊँचे थे। ध्रुवराहु कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रतिदिन चंद्रकला के पंद्रहवें भाग को आवृत करता है। यथा-प्रतिपदा को एक पंद्रहवां भाग आवृत करता है, द्वितीया को दो पंद्रहवें भाग आवृत करता है, तृतीया को तीन पंद्रहवें भाग आवृत करता है, -यावत्-अमावस्या को पंद्रह भाग आवृत करता है। ध्रुवराहु शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रतिदिन चंद्रकला के पंद्रहवें भाग को अनावृत करता है। यथा- प्रतिपदा को एक पंद्रहवां भाग अनावृत करता है, द्वितीया को दो पंद्रहवें भाग अनावृत करता है, तृतीया को तीन पंद्रहवें भाग अनावृत करता है, -यावत्-पूर्णिमा को पंद्रहभागों को अनावृत करता है। छः नक्षत्र चंद्र के साथ पंद्रह मुहूर्त पर्यंत योग करते हैं, यथा—शतभिषक्, भरणि, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा। चैत्र तथा आश्विन में पंद्रह मुहूर्त का दिन होता है और पंद्रह मुहूर्त की रात्रि होती है। विद्यानुप्रवाद पूर्व के पंद्रह वस्तु हैं। मनुष्य के पंद्रह योग हैं। यथा-सत्य मन प्रयोग, मृषा मन प्रयोग, सत्य-मृषा मन प्रयोग, असत्यामृषा मन प्रयोग, सत्य वचन प्रयोग, असत्य वचन प्रयोग, सत्य-मृषा वचन प्रयोग, असत्यामृषा वचन प्रयोग, औदारिक शरीर काय प्रयोग, औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग, वैक्रिय शरीर काय प्रयोग, वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग, आहारक शरीर काय प्रयोग, आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोग, कार्मण शरीर काय प्रयोग ॥५१॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकों की स्थिति पंद्रह पल्योपम की है। धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पंद्रह सागरोपम की है। कुछ असुर-कुमार देवों की स्थिति पंद्रह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति पंद्रह पल्योपम की है। महाशुक्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति पंद्रह सागरोपम की है। नंद सुनंद नंदावर्त नंदप्रभ नंदकाँत नंदवर्ण नंदलेश्य नंदध्वज नंदशृंग नंदश्रेष्ठ नंदकूट नंदोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह सागरोपम की होती है ॥५२॥

नंद-यावत्-नंदोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे पंद्रह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नंद-यावत्-नंदोत्तरावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेने की इच्छा पंद्रह हजार वर्ष से होती है। कुछ भव-सिद्धिकजीव ऐसे हैं जो पंद्रह भव करके सिद्ध-यावत् सर्व दुःखों का अंत करेंगे ॥५३॥

सोलहवाँ समवाय

सूत्रकृतांगके सोलहवें अध्ययनका नाम गाथा षोडशक है यथा—समय, वैतालीय, उपसर्ग-परिज्ञा, स्त्री-परिज्ञा, नरक-विभक्ति, महावीर-स्तुति, कुशील-परिभाषित, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवसरण, याथातथिक, ग्रंथ, यमकीय, गाथा षोडशक। कषाय सोलह हैं, यथा—अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ॥ मेरु पर्वतके सोलह नाम हैं, यथा—मंदर, मेरु, मनोरम, सुदर्शन, स्वयंप्रभ, गिरिराज, रत्नोच्चय, प्रियदर्शन, लोकमध्य, लोकनाभि, अर्थ, सूर्यावर्त, सूर्यावरण, उत्तर, दिगादि, अवतंसक। पुरुषोंमें प्रख्यात पार्श्वनाथ अरिहंतकी उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा सोलह हजार थी। आत्म-प्रवाद पूर्वके सोलह वस्तु हैं। चमरेन्द्र और वलेन्द्रके अवतारिकालयनोंका आयाम-विष्कम्भ सोलह हजार योजनका है। लवण समुद्रके मध्यभागमें वेलाकी वृद्धि सोलह हजार योजनकी है ॥५४॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सोलह पल्योपमकी है। धूमप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सोलह सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति सोलह पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति सोलह पल्योपमकी है। महाशुक्र कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति सोलह सागरोपमकी है। आवर्त व्यावर्त नंदावर्त महानंदावर्त अंकुश अंकुशप्रलंब भद्र सुभद्र महाभद्र सर्वतोभद्र भद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपमकी होती है ॥५५॥

आवर्त-यावंत्-भद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे सोलह पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। आवर्त-यावत्-भद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा सोलह हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सोलह भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ।।५६।।

सत्तरहवाँ समवाय

सत्तरह प्रकारके असंयम हैं, यथा—पृथ्वीकाय असंयम, अप्काय असंयम, तेजस्काय असंयम, वायुकाय असंयम, वनस्पतिकाय असंयम, द्वीन्द्रिय असंयम, त्रीन्द्रिय असंयम, चतुरिन्द्रिय असंयम, पंचेन्द्रिय असंयम, अजीवकाय असंयम, प्रेक्षा असंयम, उपेक्षा असंयम, अपहृत्य असंयम, अप्रमार्जना असंयम, मन असंयम, वचन असंयम, काय असंयम। सत्तरह प्रकारका संयम है, यथा—पृथ्वीकाय संयम, अप्काय संयम, तेजस्काय संयम, वायुकाय संयम, वनस्पतिकाय संयम, द्वीन्द्रिय संयम, त्रीन्द्रिय संयम, चतुरिन्द्रिय संयम, पंचेन्द्रिय संयम, अजीवकाय संयम, प्रेक्षा संयम, उपेक्षा संयम, अपहृत्य संयम, प्रमार्जना संयम, मन संयम, वचन संयम, काय संयम। मानुषोत्तर पर्वतकी ऊंचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की है। सर्व वेलंधर और अनुवेलंधर नागराजोंके आवास पर्वतोंकी ऊंचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजनकी है। लवणसमुद्रके पेंदेसे ऊपरकी सतहकी ऊंचाई सत्रह योजनकी है। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके सम भूभागसे कुछ अधिक सत्तरह हजार योजनकी ऊंचाई पर जंघाचारण और विद्याचारण मुनियोंकी तिरछी गति कही है। चमर असुरेन्द्रके तिगिच्छकूट उत्पात पर्वतकी ऊंचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजनकी है। बलि असुरेन्द्रके रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत………। मरण सत्तरह प्रकारका है, यथा—आवीचि मरण, अवधि मरण, आत्यन्तिक मरण, वलाय मरण, वशार्त मरण, अंतशल्य मरण, तद्भव मरण, बाल मरण, पंडित मरण, बाल-पंडित मरण, छद्मस्थ मरण, केवली मरण, वैहायश मरण, गृद्धपृष्ठ मरण, भक्तप्रत्याख्यान मरण, इंगित मरण, पादपोपगमन मरण। सूक्ष्म संपराय भावमें वर्तमान सूक्ष्म सांपरायिक भगवानके सत्रह कर्मप्रकृतियोंका बन्ध होता है, यथा—आभिनिबोधिक ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यवज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, साता वेदनीय, यशोकीर्ति नाम, उच्च गोत्र, दानांतराय, लाभांतराय, भोगान्तराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय ।।५७।।

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सत्तरह पल्योपमकी है। धूमप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सत्रह सागरोपमकी है। तमः-

प्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति सत्रह पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति सत्तरह पल्योपमकी है। महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति सत्रह सागरोपमकी है। सहस्रार कल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपमकी है। सामान सुसामान महासामान···पद्म महापद्म···कुमुद महाकुमुद··· नलिन महानलिन···पौंडरीक महापौंडरीक···शुक्ल महाशुक्ल···सिंह सिंहकांत सिंहवीर्य भाविय विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी स्थिति सत्तरह सागरोपमकी होती है ॥५८॥

सामान-यावत्-भाविय विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे सत्रह पक्षमें श्वासोच्छ्वास लेते हैं। सामान-यावत्-भाविय विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी आहार लेनेकी इच्छा सत्तरह हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो सत्रह भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥५९॥

अठारहवाँ समवाय

ब्रह्मचर्य अठारह प्रकारका है, यथा—औदारिक मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी काम-भोगोंका स्वयं मनसे सेवन न करना, मनसे अन्यद्वारा सेवन न करवाना, सेवन करते हुएका मनसे अनुमोदन न करना, स्वयं वचनसे सेवन न करना, वचनसे अन्यद्वारा सेवन न करवाना, सेवन करते हुएका वचनसे अनुमोदन न करना, स्वयं कायासे सेवन न करना, कायासे अन्य द्वारा सेवन न करवाना, सेवन करते हुएका कायासे अनुमोदन न करना, देव सम्बन्धी काम-भोगोंका स्वयं मनसे सेवन न करना, मनसे अन्य द्वारा सेवन न करवाना, सेवन करते हुएका मनसे अनुमोदन न करना, स्वयं वचनसे सेवन न करना, वचनसे अन्य द्वारा सेवन न करवाना, सेवन करते हुएका वचनसे अनुमोदन न करना, स्वयं कायासे सेवन न करना, कायासे अन्य द्वारा सेवन न करवाना, सेवन करते हुएका कायासे अनुमोदन न करना। अरहंत अरिष्टनेमिकी उत्कृष्ट श्रमणसम्पदा अठारह हजार थी। श्रमण भगवान महावीरके अनुयायी बाल वृद्ध श्रमणोंके आचार स्थान अठारह हैं। यथा-छः व्रतोंका पालन, छः कायकी रक्षा, अकल्प्य वस्त्र-पात्र आदिका निषेध, गृहस्थका भाजन, पल्यंक, निषद्या, स्नान, और शरीरकी शुश्रूषाका त्याग। चूलिका सहित आचारांग भगवंतके अठारह हजार पद हैं। ब्राह्मी लिपिका लेखन अठारह प्रकारका है, यथा—ब्राह्मी, यावनी, दोपपुरिका, खरोष्ट्री, खरशाविका, पहारातिका, उच्चतरिका, अक्षरपृष्टिका, भोगवतिका, वैनकिया, निह्नविका, अंकलिपि, गणितलिपि, गंधर्वलिपि, आदर्शलिपि, माहेश्वरीलिपि, दामलिपि, बोलिंदिलिपि। अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्वके अठारह वस्तु हैं। धूमप्रभा पृथ्वीका

विस्तार एक लाख अठारह हजार योजनका है। पौष और आषाढ़ मासमें एक दिन उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तका होता है। तथा एक रात्रि अठारह मुहूर्तकी होती है ।।६०।।

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति अठारह पल्योपमकी है। तमःप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अठारह सागरोपम की है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति अठारह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशान-कल्प के कुछ देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की है। सहस्रारकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपमकी है। प्रानत कल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति अठारह सागरोपमकी है। काल सुकाल महाकाल…… अंजन रिष्ट शाल समान द्रुम महाद्रुम विशाल सुशाल पद्म पद्मगुल्म कुमुद कुमुदगुल्म नलिन नलिनगुल्म पौंडरीक पौंडरीकगुल्म सहस्रारावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति अठारह सागरोपम की होती है ।।६१।।

काल-यावत्-सहस्रारावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे अठारह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। काल-यावत्-सहस्रारावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा अठारह हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अठारह भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अंत करेंगे ।।६२।।

उन्नीसवाँ समवाय

ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययन हैं, यथा—उत्क्षिप्तज्ञात, संघाटक, अंड, कूर्म, सेलक, तुंब, रोहिणी, मल्ली, माकंदी, चंद्रिका, दावदव, उदकज्ञात, मंढक, तेतली, नंदीफल, अवरकंका, आकीर्ण, सुंसुमा, पुंडरीकज्ञात। जम्बूद्वीपमें सूर्य ऊँचे तथा नीचे उन्नीस सौ योजन ताप पहुंचाते हैं। शुक्रमहाग्रह पश्चिम दिशा में उदय होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ योग करके पश्चिम दिशा में अस्त होता है। जम्बूद्वीप के गणित में कला का परिमाण एक योजन का उन्नीसवां भाग है। उन्नीस तीर्थंकर गृहवास को छोड़कर मुंडित हुए अर्थात्—उन्होंने राज्यभोगकर अनगार प्रव्रज्या स्वीकार की ।।६३।।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की है। तमःप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उन्नीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति उन्नीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके छ देवोंकी स्थिति उन्नीस पल्योपम की है। आनतकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति न्नीस सागरोपमकी है। प्रानतकल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम ी है। आनत-प्रानत-नत-विनत-घन-सुसिर-इंद-इंदकांत—इंद्रोत्तरावतंसक विमान जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति उन्नीस सागरोपम की होती है ।।६४।।

आनत-यावत्-इंद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे उन्नीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। आनत-यावत्-इंद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी आहार लेनेकी इच्छा उन्नीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उन्नीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥६५॥

बीसवां समवाय

बीस असमाधिस्थान हैं, यथा—शीघ्र शीघ्र चलना, प्रमार्जन किए बिना चलना, अच्छी तरह प्रमार्जन किए बिना चलना, बहुत बड़े स्थान में ठहरना तथा बहुत बड़े आसन पर बैठना, अधिक ज्ञानादि गुण सम्पन्न श्रमण का तिरस्कार करना, स्थविर श्रमणोंको पीड़ा पहुंचाना, प्राणीमात्रको पीड़ा पहुंचाना, क्षण क्षण में क्रोध करना, अत्यंत क्रोध करना, पीठ पीछे निन्दा करना, बारंबार निश्चयवाली भाषा बोलना, नया क्लेश उत्पन्न करना, उपशांत क्लेश को पुनः उभारना, मलिन हाथ पैरों से भिक्षा ग्रहण करना, अथवा भिक्षाके लिए जाना, अकालमें स्वाध्याय करना, कलह करना, रात्रिमें उच्चस्वर से बोलना, कलह करके गच्छ में फूट डालना, सूर्यास्त समय तक भोजन करना, एषणा किए बिना आहार लेना। भगवान मुनिसुव्रत बीस धनुष ऊँचे थे। सर्व घनोदधि का विस्तार बीस हजार योजन का है। प्राणत कल्पेन्द्रके बीस हजार सामानिक देव हैं। नपुंसकवेदनीय कर्म की बंधस्थिति बीस सागरोपम कोटाकोटी की है। प्रत्याख्यान पूर्वके बीस वस्तु हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर बीस सागरोपम कोटाकोटीका कालचक्र है ॥६६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बीस पल्योपमकी है। तमःप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति बीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति बीस पल्योपम की है। प्राणतकल्प के देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपमकी है। आरणकल्प के देवोंकी जघन्य स्थिति बीस सागरोपमकी है। सात विसात सुविसात सिद्धार्थ उत्पल भित्तिल तिगिच्छ दिशासौवस्तिक प्रलंब रुचिर पुष्प सुपुष्प पुष्पावर्त पुष्पप्रभ पुष्पकांत पुष्पवर्ण पुष्पलेश्य पुष्पध्वज पुष्पशृंग पुष्पश्रेष्ठ पुष्पोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति बीस सागरोपमकी होती है ॥६७॥

सात-यावत्-पुष्पोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे बीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। सात-यावत्-पुष्पोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा बीस हजार वर्षसे होती है। कुछ

भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ॥६८॥

इक्कीसवाँ समवाय

सबल दोष इक्कीस हैं, यथा—हस्तकर्म करना, मैथुन सेवन करना, रात्रि-भोजन करना, आधाकर्म आहार लेना, सागारिक पिंड खाना, औद्देशिक एवं क्रीत आहार लेना, बार-बार प्रत्याख्यान तोड़कर भोजन करना, छः मास में एक गण से दूसरे गण में जाना, एक मासमें तीन बार पानीका प्रवाह लांघना, एक मासमें तीन बार मायाचार करना, राजपिंड खाना, जानबूझ कर जीवहिंसा करना, जानबूझ कर मृषावाद बोलना, जानबूझ कर बिना दी हुई वस्तु लेना, जानबूझकर सचित्त पृथ्वी पर बैठना या शयन करना, सचित्त शिलापर अथवा घुन वाले काष्ठ पर बैठना या शयन करना, जीव, प्राण, हरित, उत्तिंग, पनक, दग, मृत्तिका, तथा जाले वाली भूमि पर सोना या बैठना, जानबूझकर मूल, कंद, त्वचा, प्रवाल, पुष्प, फल, हरित आदि का भोजन करना, एक वर्षमें दस बार पानीका प्रवाह लांघना, एक वर्ष में दस बार मायाचार करना, सचित जलसे गीले हाथ द्वारा अशनादि लेना ॥६९॥

मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियां क्षय हो गई हैं ऐसे निवृत्तिबादर गुण-स्थानमें वर्तमान श्रमणके मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता रहती है, यथा-अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, हास्य, अरति, रति, भय, शोक, जुगुप्सा॥ प्रत्येक अवसर्पिणी का पांचवां दुषमा और छठा दुषम-दुषमा आरा इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष का है। प्रत्येक उत्स-र्पिणी का पहला दुषमा और दूसरा दुषम-दुषमा आरा इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष का है ॥७०॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की है। तमःप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति इक्कीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति इक्कीस पल्योपमकी है। आरणकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपमकी है। अच्युतकल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपमकी है। श्रीवत्स श्रीदामगंड माल्य कृष्टि चापोन्नत आरणा-वतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति इक्कीस सागरोपमकी होती है ॥७१॥

श्रीवत्स-यावत्-आरणावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे इक्कीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। श्रीवत्स—यावत्—आरणावतंसक विमान

आनत-यावत्-इंद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे उन्नीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। आनत-यावत्-इंद्रोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा उन्नीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उन्नीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥६५॥

बीसवां समवाय

बीस असमाधिस्थान हैं, यथा—शीघ्र शीघ्र चलना, प्रमार्जन किए बिना चलना, अच्छी तरह प्रमार्जन किए बिना चलना, बहुत बड़े स्थान में ठहरना तथा बहुत बड़े आसन पर बैठना, अधिक ज्ञानादि गुण सम्पन्न श्रमण का तिरस्कार करना, स्थविर श्रमणोंको पीड़ा पहुंचाना, प्राणीमात्रको पीड़ा पहुंचाना, क्षण क्षण में क्रोध करना, अत्यंत क्रोध करना, पीठ पीछे निन्दा करना, बारंबार निश्चयवाली भाषा बोलना, नया क्लेश उत्पन्न करना, उपशांत क्लेश को पुनः उभारना, मलिन हाथ पैरों से भिक्षा ग्रहण करना, अथवा भिक्षाके लिए जाना, अकालमें स्वाध्याय करना, कलह करना, रात्रिमें उच्चस्वर से बोलना, कलह करके गच्छ में फूट डालना, सूर्यास्त समय तक भोजन करना, एषणा किए बिना आहार लेना। भगवान मुनिसुव्रत बीस धनुष ऊँचे थे। सर्व घनोदधि का विस्तार बीस हजार योजन का है। प्राणत कल्पेन्द्रके बीस हजार सामानिक देव हैं। नपुंसकवेदनीय कर्म की बंधस्थिति बीस सागरोपम कोटाकोटी की है। प्रत्याख्यान पूर्वके बीस वस्तु हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर बीस सागरोपम कोटाकोटीका कालचक्र है ॥६६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बीस पल्योपमकी है। तमःप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति बीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति बीस पल्योपम की है। प्राणतकल्प के देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपमकी है। आरणकल्प के देवोंकी जघन्य स्थिति बीस सागरोपमकी है। सात विसात सुविसात सिद्धार्थ उत्पल भित्तिल तिगिच्छ दिशासौवस्तिक प्रलंब रुचिर पुष्प सुपुष्प पुष्पावर्त पुष्पप्रभ पुष्पकांत पुष्पवर्ण पुष्पलेश्य पुष्पध्वज पुष्पशृंग पुष्पश्रेष्ठ पुष्पोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति बीस सागरोपमकी होती है ॥६७॥

सात-यावत्-पुष्पोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे बीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। सात-यावत्-पुष्पोत्तरावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनको आहार लेनेकी इच्छा बीस हजार वर्षसे होती है। कुछ

भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो वीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ।।६८।।

इक्कीसवां समवाय

सवल दोप इक्कीस हैं, यथा—हस्तकर्म करना, मैथुन सेवन करना, रात्रि-भोजन करना, आधाकर्म आहार लेना, सागारिक पिंड खाना, औद्देशिक एवं क्रीत आहार लेना, बार-बार प्रत्याख्यान तोड़कर भोजन करना, छः मास में एक गण से दूसरे गण में जाना, एक मासमें तीन वार पानीका प्रवाह लांघना, एक मासमें तीन बार मायाचार करना, राजपिंड खाना, जानबूझ कर जीवहिंसा करना, जानबूझ कर मृषावाद बोलना, जानबूझ कर बिना दी हुई वस्तु लेना, जानबूझकर सचित्त पृथ्वी पर बैठना या शयन करना, सचित्त शिलापर अथवा घुन वाले काष्ठ पर बैठना या शयन करना, जीव, प्राण, हरित, उत्तिंग, पनक, दग, मृत्तिका, तथा जाले वाली भूमि पर सोना या बैठना, जानबूझकर मूल, कंद, त्वचा, प्रवाल, पुष्प, फल, हरित आदि का भोजन करना, एक वर्षमें दस वार पानीका प्रवाह लांघना, एक वर्ष में दस वार मायाचार करना, सचित जलसे गीले हाथ द्वारा अशनादि लेना ।।६९।।

मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियां क्षय हो गई हैं ऐसे निवृत्तिवादर गुण-स्थानमें वर्तमान श्रमणके मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता रहती है, यथा-अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ । प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ । संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ । स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, हास्य, अरति, रति, भय, शोक, जुगुप्सा ।। प्रत्येक अवसर्पिणी का पांचवां दुपमा और छठा दुपम-दुपमा आरा इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष का है । प्रत्येक उत्स-र्पिणी का पहला दुषमा और दूसरा दुषम-दुषमा आरा इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष का है ।।७०।।

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की है । तमःप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति इक्कीस सागरोपमकी है । कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपमकी है । सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति इक्कीस पल्योपमकी है । आरणकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपमकी है । अच्युतकल्पके देवोंकी जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपमकी है । श्रीवत्स श्रीदामगंड माल्य कृष्टि चापोन्नत आरणा-वतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति इक्कीस सागरोपमकी होती है ।।७१।।

श्रीवत्स-यावत्-आरणावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे इक्कीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं । श्रीवत्स—यावत्—आरणावतंसक विमान

में जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी आहार लेनेकी इच्छा इक्कीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥७२॥

बाईसवाँ समवाय

परीषह बाईस हैं, यथा-क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह, दंश-मशक परीषह, अचेल परीषह, अरति परीषह, स्त्री परीषह, चर्या परीषह, निषद्या परीषह, शय्या परीषह, आक्रोश परीषह, वध परीषह, याचना परीषह, अलाभ परीषह, रोग परीषह, तृणस्पर्श परीषह, जल्ल परीषह, सत्कार-पुरस्कार परीषह, प्रज्ञा परीषह, अज्ञान परीषह, दर्शन परीषह। दृष्टिवादके बाइस सूत्र छिन्न छेद नयवाले हैं और वे स्वसमयके सूत्रोंकी परिपाटीमें हैं। दृष्टिवादके बाईस सूत्र अछिन्न छेद नयवाले हैं और वे आजीवक सूत्रोंकी परिपाटीमें हैं। दृष्टिवादके बाईस सूत्र तीन नयवाले हैं और वे त्रैराशिक सूत्रोंकी परिपाटीमें हैं। दृष्टिवादके बाईस सूत्र चार नयवाले हैं और वे स्वसमयके सूत्रों की परिपाटीमें हैं। पुद्गल परिणाम बाईस प्रकार का है, यथा—कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्लवर्ण परिणाम। सुगंध, दुगंध परिणाम। तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुर रस परिणाम। कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, अगुरुलघु, गुरुलघु स्पर्श परिणाम ॥७३॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बाईस पल्योपमकी है। तमःप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी जघन्य स्थिति बाईस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति बाईस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति बाईस पल्योपमकी है। अच्युतकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपमकी है। प्रथम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति बाईस सागरोपमकी है। महित-विश्रुत-विमल-प्रभास-वनमाल-अच्युतावतंसक-विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति बाईस सागरोपमकी होती है ॥७४॥

महित-यावत्-अच्युतावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे बाईस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। महित-यावत्-अच्युतावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी आहार लेनेकी इच्छा बाईस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बाईस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥७५॥

तेईसवाँ समवाय

सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन हैं, यथा-समय, वैतालिक, उपसर्ग—परिज्ञा, नरक—विभक्ति, महावीर-स्तुति, कुशील-परिभासित, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग,

समवसरण, आख्यातहित, ग्रंथ, यमतीत, गाथा, पुण्डरीक, क्रियास्थान, आहार-परिज्ञा, अप्रत्याख्यान—क्रिया, अनगारश्रुत, आर्द्रकीय, नालंदीय। जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें इस अवसर्पिणीमें तेईस जिन भगवन्तोंको सूर्योदयके समय केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ था। जम्बूद्वीपमें इस अवसर्पिणीमें तेईस तीर्थंकर पूर्व-भवमें ग्यारह अंगके ज्ञाता थे, यथा-अजित-यावत्-वर्धमान, अरहंत ऋषभदेव चौदह पूर्वके ज्ञाता थे। जम्बूद्वीपमें इस अवसर्पिणीमें तेईस तीर्थंकर पूर्वभवमें मांडलिक राजा थे, अरहंत ऋषभ कौशलिक पूर्वभवमें चक्रवर्ती थे ॥७६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तेईस पल्योपम की है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तेईस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति तेईस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तेईस पल्योपमकी है। नीचेके मध्यम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति तेईस सागरोपमकी है। सबसे नीचेके ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति तेईस सागरोपमकी है ॥७७॥

वे ग्रैवेयक देव तेईस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन ग्रैवेयक [illegible] आहार लेनेकी इच्छा तेईस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक [illegible] जो तेईस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥७८॥

चौबीसवाँ समवाय

में जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी आहार लेनेकी इच्छा इक्कीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ।।७२।।

बाईसवाँ समवाय

परीषह बाईस हैं, यथा-क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह, दंश-मशक परीषह, अचेल परीषह, अरति परीषह, स्त्री परीषह, चर्या परीषह, निषद्या परीषह, शय्या परीषह, आक्रोश परीषह, वध परीषह, याचना परीषह, अलाभ परीषह, रोग परीषह, तृणस्पर्श परीषह, जल्ल परीषह, सत्कार-पुरस्कार परीषह, प्रज्ञा परीषह, अज्ञान परीषह, दर्शन परीषह। दृष्टिवादके बाइस सूत्र छिन्न छेद नयवाले हैं और वे स्वसमयके सूत्रोंकी परिपाटीमें हैं। दृष्टिवादके बाईस सूत्र अछिन्न छेद नयवाले हैं और वे आजीवक सूत्रोंकी परिपाटीमें हैं। दृष्टिवादके बाईस सूत्र तीन नयवाले हैं और वे त्रैराशिक सूत्रोंकी परिपाटीमें हैं। दृष्टिवादके बाईस सूत्र चार नयवाले हैं और वे स्वसमयके सूत्रों की परिपाटीमें हैं। पुद्गल परिणाम बाईस प्रकार का है, यथा–कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्लवर्ण परिणाम। सुगंध, दुगंध परिणाम । तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुर रस परिणाम। कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, अगुरुलघु, गुरुलघु स्पर्श परिणाम ।।७३।।

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बाईस पल्योपमकी है। तमःप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी जघन्य स्थिति बाईस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति बाईस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति बाईस पल्योपमकी है। अच्युतकल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपमकी है। प्रथम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति बाईस सागरोपमकी है। महित-विश्रुत-विमल-प्रभास-वनमाल-अच्युतावतंसक-विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति बाईस सागरोपमकी होती है ।।७४।।

महित-यावत्-अच्युतावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे बाईस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। महित-यावत्-अच्युतावतंसक विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी आहार लेनेकी इच्छा बाईस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बाईस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ।।७५।।

तेईसवाँ समवाय

सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन हैं, यथा-समय, वैतालिक, उपसर्ग—परिज्ञा, नरक–विभक्ति, महावीर-स्तुति, कुशील-परिभासित, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग,

समवसरण, आख्यातहित, ग्रंथ, यमतीत, गाथा, पुण्डरीक, क्रियास्थान, आहार-परिज्ञा, अप्रत्याख्यान—क्रिया, अनगारश्रुत, आर्द्रकीय, नालंदीय। जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें इस अवसर्पिणीमें तेईस जिन भगवन्तोंको सूर्योदयके समय केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ था। जम्बूद्वीपमें इस अवसर्पिणीमें तेईस तीर्थंकर पूर्व-भवमें ग्यारह अंगके ज्ञाता थे, यथा-अजित-यावत्-वर्धमान, अरहंत ऋषभदेव चौदह पूर्वके ज्ञाता थे। जम्बूद्वीपमें इस अवसर्पिणीमें तेईस तीर्थंकर पूर्वभवमें मांडलिक राजा थे, अरहंत ऋषभ कौशलिक पूर्वभवमें चक्रवर्ती थे ॥७६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तेईस पल्योपम की है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तेईस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति तेईस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तेईस पल्योपमकी है। नीचेके मध्यम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति तेईस सागरोपमकी है। सबसे नीचेके ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति तेईस सागरोपमकी है ॥७७॥

वे ग्रैवेयक देव तेईस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन ग्रैवेयक देवोंको आहार लेनेकी इच्छा तेईस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेईस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ॥७८॥

चौबीसवाँ समवाय

देवाधिदेव चौबीस हैं, यथा-ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंदप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्धमान। लघु हिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वतोंकी जीवाका आयाम चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन तथा एक योजनके अड़तीसवें भागसे कुछ अधिक है। देवताओंके चौबीस स्थान इन्द्रवाले हैं, शेष अहमिन्द्र अर्थात इंद्र और पुरोहित रहित हैं।

उत्तरायणमें रहा हुआ सूर्य चौबीस अंगुल प्रमाण प्रथम प्रहरकी छाया करके पीछे मुड़ता है। महानदी गंगा और सिंधुका प्रवाह कुछ अधिक चौबीस कोशका चौड़ा है। महानदी रक्ता और रक्तवतीका प्रवाह कुछ अधिक चौबीस कोशका चौड़ा है ॥७९॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति चौबीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति चौबीस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति चौबीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति चौबीस पल्योपमकी है। ऊपरके प्रथम ग्रैवेयक देवोंकी स्थिति

चौबीस सागरोपमकी है। नीचेके मध्यम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी स्थिति चौबीस सागरोपमकी है ॥८०॥

वे देव चौबीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंको आहार लेनेकी इच्छा चौबीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौबीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥८१॥

पच्चीसवाँ समवाय

प्रथम और अंतिम तीर्थंकरोंके पांच महाव्रतोंकी पच्चीस भावनाएँ हैं, यथा—प्रथम महाव्रतकी पांच भावनाएँ—ईर्यासमिति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति, प्रकाश वाले पात्रमें भोजन करना, आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणसमिति। द्वितीय महाव्रतकी पांच भावनाएँ—विवेकपूर्वक बोलना, क्रोध, लोभ, भय और हास्यका त्याग। तृतीय महाव्रतकी पांच भावनाएँ—आवासकी आज्ञा लेना, आवासकी सीमा जानना, आवासकी आज्ञा स्वयं लेना, साधर्मिकके आवासका परिभोग भी आज्ञा लेकर करना, सबके लिए लाये हुए आहारका परिभोग गुरु आदिकी आज्ञा लेकर करना। चतुर्थ महाव्रतकी पांच भावनाएँ—स्त्री पुरुष या नपुंसक अधिष्ठित शय्या या आसनका त्याग करना, स्त्रीकथा न करना, स्त्रीकी इन्द्रियों को न देखना, पूर्वकृत कामक्रीड़ाका स्मरण न करना, विकारवर्द्धक आहार न करना। पंचम महाव्रतकी पांच भावनाएँ—पांचों इन्द्रियोंके विषयों पर ममत्व न करना॥ मल्लिनाथ अरिहंत पच्चीस धनुष ऊँचे थे। सर्व दीर्घ वैताढ्य पर्वत पच्चीस योजन ऊँचे हैं, तथा भूमिमें पच्चीस कोश ऊँडे हैं। शर्कराप्रभा पृथ्वीमें पच्चीस लाख नरकावास हैं। चूलिकासहित आचारांग भगवंतके पच्चीस अध्ययन हैं। यथा—शस्त्र-परिज्ञा, लोक-विजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, आवंति, धूत, विमोह, उपधान-श्रुत, महापरिज्ञा। पिंडैषणा, शय्या, ईर्या, भाषा-अध्ययन, वस्त्रैषणा, पात्रैषणा, अवग्रह-प्रतिमा, सप्त-सप्तैकका, भावना, विमुक्ति। (अंतिम विमुक्ति अध्ययन निशीथ अध्ययन सहित पच्चीसवां है) ॥ संक्लिष्ट परिणाम वाले अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय नामकर्मकी उत्कृष्ट पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है। यथा—तिर्यंचगतिनाम, विकलेन्द्रियजातिनाम, औदारिकशरीर-नाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम, हुंडक संस्थान नाम, औदारिक शरीरांगोपांग नाम, सेवार्तसंघयणनाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, तिर्यंचआनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, त्रसनाम, बादरनाम, अप-र्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, अस्थिरनाम, अशुभनाम, दुर्भगनाम, अनादेयनाम, अयशकीर्तिनाम, निर्माण-नामकर्म। महानदी गंगा-सिंधुका मुक्तावली हारकी आकृति वाला पच्चीस कोसका विस्तृत प्रवाह पूर्व-पश्चिम दिशामें घटमुखसे अपने अपने कुंडमें पड़ता है। महानदी रक्ता-रक्तवतीका मुक्तावली हारकी

आकृति वाला पच्चीस कोशका विस्तृत प्रवाह पूर्व-पश्चिम दिशामें घटमुखसे अपने अपने कुंडमें पड़ता है। लोकबिंदुसार पूर्वकी पच्चीस वस्तु हैं ॥८२॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति पच्चीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति पच्चीस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति पच्चीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति पच्चीस पल्योपमकी है। नीचेके मध्यम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपमकी है। ऊपरके प्रथम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति पच्चीस सागरोपमकी होती है ॥८३॥ वे देव पच्चीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा पच्चीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे होते हैं जो पच्चीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥८४॥

छब्बीसवाँ समवाय

दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहारके छब्बीस उद्देशन–काल हैं। अभवसिद्धिक जीवोंके मोहनीय कर्मकी छब्बीस प्रकृतियां सत्तासे होती हैं, यथा–मिथ्यात्वमोहनीय, सोलह कषाय, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा ॥८५॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति छब्बीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति छब्बीस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति छब्बीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशान कल्पके कुछ देवोंकी स्थिति छब्बीस पल्योपमकी है। मध्यम मध्यम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपमकी है। नीचेके मध्यम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति छब्बीस सागरोपमकी होती है ॥८६॥

वे देव छब्बीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा छब्बीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छब्बीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥८७॥

सत्ताइसवाँ समवाय

अनगार के सत्ताइस गुण हैं, यथा- प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमग, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह, चक्षुइन्द्रिय निग्रह, घ्राणेन्द्रिय निग्रह, रसनेन्द्रिय निग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, क्रोध, मान, माया, और लोभका त्याग, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमा, विरागता, मन, वचन और काया का निरोध, ज्ञान, दर्शन और चरित्र से संपन्नता, वेदना सहन करना, मरणांत कष्ट सहन करना। जम्बूद्वीपमें अभिजित् को छोड़कर सत्ताइस नक्षत्रोंसे व्यवहार होता है। नक्षत्रमास सत्ताइस अहोरात्रि

का होता है। सौधर्म और ईशानकल्पके विमानोंकी भूमि सत्ताइस योजनकी मोटी है। वेदक सम्यक्त्वके बंधसे विरत जीवके सत्तामें मोहनीयकर्मकी सत्ताइस उत्तर प्रकृतियां रहती हैं। श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन सूर्य सत्ताइस अंगुल प्रमाणसे पौरुषी छाया करके दिनको छोटा और रात्रिको वड़ी करता हुआ गति करता है ॥८८॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सत्ताइस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति सत्ताइस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति सत्ताइस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति सत्ताइस पल्योपमकी है। ऊपरके मध्यम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति सत्ताइस सागरोपमकी है। मध्यम मध्यम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति सताइस सागरोपमकी होती है ॥८९॥

वे देव सत्ताइस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा सत्ताइस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्ताइस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥९०॥

अट्ठाइसवाँ समवाय

आचारप्रकल्प अट्ठाइस प्रकारका है, यथा- एक मासकी आरोपणा, एक मास और पांच दिनकी आरोपणा, एक मास और दस दिनकी आरोपणा, एक मास और पंद्रह दिनकी आरोपणा, एक मास और वीस दिनकी आरोपणा, एक मास और पचीस दिनकी आरोपणा, इसी प्रकार दो, तीन और चार मास की आरोपणा, उपघातिका आरोपणा, अनुपघातिका आरोपणा, कृत्स्ना आरोपणा, अकृत्स्ना आरोपणा। कुछ भवसिद्धिक जीवोंके सत्तामें मोहनीय कर्मकी अट्ठाइस प्रकृतियां रहती हैं, यथा- सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्व वेदनीय, सम्यग्मिथ्यात्व वेदनीय, सोलह कषाय, नव नो कपाय। आभिनिवोधिक ज्ञान अट्ठाइस प्रकारका है, यथा- श्रोतेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षुइन्द्रिय अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह, नोइन्द्रिय अर्थावग्रह, श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, चक्षु०, घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, रसनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, श्रोत्रेन्द्रिय ईहा, चक्षुइन्द्रिय ईहा, घ्राणेन्द्रिय ईहा, रसनेन्द्रिय ईहा, स्पर्शनेन्द्रिय ईहा, नोइन्द्रिय ईहा, श्रोत्रेन्द्रिय अवाय, चक्षुइन्द्रिय अवाय, घ्राणेन्द्रिय अवाय, रसनेन्द्रिय अवाय, स्पर्शनेन्द्रिय अवाय, नोइन्द्रिय अवाय। श्रोत्रेन्द्रिय धारणा, चक्षुइन्द्रिय धारणा, घ्राणेन्द्रिय धारणा, रसनेन्द्रिय धारणा, स्पर्शनेन्द्रिय धारणा, नोइन्द्रिय धारणा। ईशान कल्पमें अट्ठाइस लाख विमान हैं। देवगति वांधनेवाले जीवके नामकर्मकी अट्ठाइस उत्तरप्रकृतियोंका वन्ध होता

है, यथा- देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रिय शरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस,स्पर्श, देवानुपूर्वी, अगुरु-लघु, उपघात, पराघात, उश्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, (स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, आदेय, अनादेय) इनमें से एक-एक का बन्ध,सुभग, सुस्वर, यशो-कीर्ति, निर्माण नामकर्म। इसी प्रकार नरकगति बांधनेवाले जीवके भी नामकर्मकी अट्ठाइस उत्तर कर्मप्रकृतियोंका वन्ध होता है, यथा-अप्रशस्त विहायोगति, हुंडक संस्थान, अस्थिर, दुर्भग, दुस्वर, अशुभ, अनादेय, अयश-कीर्ति। शेष पूर्वोक्त प्रकृतियां ॥९१॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति अट्ठाइस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति अट्ठाइस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति अट्ठाइस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति अट्ठाइस पल्योपमकी है। ऊपरके प्रथम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति अट्ठाइस सागरोपमकी है। ऊपरके मध्यम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति अट्ठाइस सागरोपमकी होती है॥९२॥

वे देव अट्ठाइस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा अट्ठाइस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अट्ठाइस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥९३॥

उनत्तीसवाँ समवाय

पापश्रुत उनत्तीस प्रकार का है, यथा- भूमि, उत्पात, स्वप्न, आकाश, शरीर, स्वर, व्यंजन, लक्षण, ये आठ निमित्तशास्त्र हैं। भूमिशास्त्र तीन प्रकार का है, यथा- सूत्र, वृत्ति, वार्तिक। इस प्रकार प्रत्येक शास्त्र तीन प्रकारका है। विकथानुयोग, विद्यानुयोग, मंत्रानुयोग, योगानुयोग। अन्यतीर्थिकों द्वारा प्रवर्तित योग॥ आषाढ़ मास उनत्तीस अहोरात्रिका होता है। इसी प्रकार भाद्रपद मास, कार्तिक मास, पौष मास, फाल्गुन मास, वैशाख मास। चंद्रमास का एक दिन उनत्तीस मुहूर्तका होता है। प्रशस्त अध्यवसायवाला सम्यग्-दृष्टि भव्यजीव तीर्थंकर नाम सहित नामकर्मकी उनत्तीस उत्तर कर्मप्रकृतियोंका वन्ध करके अवश्य वैमानिक देवोंमें उत्पन्न होता है ॥९४॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति उनत्तीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति उनत्तीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति उनत्तीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति उनत्तीस पल्योपमकी है। ऊपरके मध्यम ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति उनत्तीस सागरोपमकी है। ऊपरके प्रथम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति उनत्तीस सागरोपमकी होती है ॥९५॥

वे देव उनत्तीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा उनत्तीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उनत्तीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दु.खोंका अन्त करेंगे ॥९६॥

तीसवाँ समवाय

मोहनीय स्थान तीस हैं, यथा- जो किसी त्रस प्राणीको पानीमें डुबोकर मारता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो किसी त्रस प्राणीको तीव्र अशुभ अध्यवसायसे मस्तकके गीला चमड़ा बांधकर मारता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो किसी त्रस प्राणीको मुंह बांध करके मारता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो किसी त्रस प्राणीको अग्निके धुएँसे मारता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो किसी त्रस प्राणीके मस्तक का छेदन करके मारता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो किसी त्रस प्राणीको छलसे मारकर हसता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो मायाचार करके तथा असत्य बोलकर अपने अनाचारको छिपाता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो अपने दुराचारको छिपाकर दूसरे पर कलंक लगाता है, वह महामोहनीयकर्म बांधता है। जो कलह बढ़ाने के लिए जानता हुआ मिश्र भाषा बोलता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो पति पत्नीमें मतभेद पैदा करता है तथा उन्हें मार्मिक वचनोंसे झेंपा देता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। स्त्रीमें आसक्त व्यक्ति यदि अपने आपको कुंवारा कहे तो महामोहनीय कर्म बांधता है। अत्यंत कामुक व्यक्ति यदि अपने आपको ब्रह्मचारी कहे तो महामोहनीय कर्म बांधता है। जो चापलूसी करके अपने स्वामीको ठगता है वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो जिनकी कृपासे समृद्ध बना है वह यदि ईर्ष्यासे उनके ही कार्योमें विघ्न डालता है तो महामोहनीय कर्म बांधता है। जो अपने उपकारीकी हत्या करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो प्रसिद्ध पुरुषकी हत्या करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो प्रमुख पुरुषकी हत्या करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो संयमीको पथभ्रष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो महान् पुरुषोंकी निन्दा करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो न्याय-मार्गकी निन्दा करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो आचार्य उपाध्याय एवं गुरुकी निन्दा करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो आचार्य उपाध्याय एवं गुरुका अविनय करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो अबहुश्रुत होते हुए भी अपने-आपको बहुश्रुत कहता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो तपस्वी न होते हुए भी अपने-आपको तपस्वी कहता है, वह महामोहनीयकर्म बांधता है। जो अस्वस्थ आचार्य आदि की सेवा नहीं करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो आचार्य आदि कुशास्त्र का प्ररूपण करते हैं,

वे महामोहनीय कर्म बांधते हैं। जो आचार्य आदि अपनी प्रशंसाके लिये मंत्रादि का प्रयोग करते हैं वे महामोहनीय कर्म बांधते हैं। जो इहलोक और परलोकमें भोगोपभोग पानेकी अभिलाषा करता है वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो देवताओंकी निन्दा करता है या करवाता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है। जो असर्वज्ञ होते हुए भी अपने आपको सर्वज्ञ कहता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥९७॥

मंडितपुत्र गणधर तीस वर्ष तक श्रमण जीवनमें रहकर सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। एक अहोरात्रके तीस मुहूर्त होते हैं, मुहूर्तोंके नाम, यथा-रौद्र, शक्त, मित्र, वायु, सुपीत, अभिचंद्र, माहेन्द्र, प्रलंब, ब्रह्म, सत्य, आनन्द, विजय, विश्वसेन, प्राजापत्य, उपशम, ईशान, तष्ट, भावितात्मा, वैश्रवण, वरुण, शत-ऋषभ, गंधर्व, अग्निवैश्यायन, आतप, आवर्त, तष्टवान, भूमहान, ऋषभ, सर्वार्थ-सिद्ध, राक्षस। अरहंत अरनाथ तीस धनुष ऊँचे थे। सहस्रार देवेन्द्रके तीस हजार सामानिक देव हैं। अरहंत पार्श्वनाथ तीस वर्ष गृहवासमें रहकर प्रव्रजित हुए थे। श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष गृहवासमें रहकर प्रव्रजित हुए थे। रत्नप्रभा पृथ्वीमें तीस लाख नरकावास हैं ॥९८॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तीस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति तीस पल्योपम की है। सबसे ऊपरवाले ग्रैवेयक देवोंकी जघन्य स्थिति तीस सागरोपमकी है। ऊपरके मध्यम ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति तीस सागरोपमकी होती है ॥९९॥

वे देव तीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा तीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ॥१००॥

इकत्तीसवाँ समवाय

सिद्धों के इकत्तीस गुण हैं, यथा—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका क्षय, श्रुतज्ञानावरणका क्षय, अवधिज्ञानावरणका क्षय, मनःपर्यवज्ञानावरणका क्षय, केवलज्ञानावरणका क्षय, चक्षुदर्शनावरणका क्षय, अचक्षुदर्शनावरणका क्षय, अवधि-दर्शनावरणका क्षय, केवलदर्शनावरणका क्षय, निद्राका क्षय, गाढ़ निद्राका क्षय, प्रचलाका क्षय, प्रचला-प्रचला का क्षय, स्त्यानर्धि निद्राका क्षय, साता वेदनीयका क्षय, असाता वेदनीयका क्षय, दर्शन मोहनीयका क्षय, चारित्र मोहनीयका क्षय, नरकायुका क्षय, तिर्यंच आयुका क्षय, मनुष्यायुका क्षय, देवायुका क्षय, उच्च गोत्रका क्षय, नीचगोत्रका क्षय, शुभ नामका क्षय, अशुभ

नामका क्षय, दानांतरायका क्षय, लाभांतरायका क्षय, भोगांतरायका क्षय, उप-भोगांतरायका क्षय, वीर्यान्तरायका क्षय ॥१०१॥

पृथ्वीतल पर मेरुकी परिधि कुछ कम इकत्तीस हजार, छ सौ, तेईस योजनकी है। सूर्य अंतिम बाह्य मंडल में जब गति करता है, तब भरतक्षेत्रमें रहे हुए मनुष्यको इकत्तीस हजार, आठ सौ, इकत्तीस तथा एक योजनके साठ भागोंमें से तीस भाग जितनी दूरी से सूर्यदर्शन होता है। अधिकमास कुछ अधिक इकत्तीस अहोरात्रका होता है। सूर्यमास कुछ न्यून इकत्तीस अहोरात्रका होता है ॥१०२॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति इकत्तीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति इकत्तीस सागरोपमकी है। कुछ असुर-कुमार देवोंकी स्थिति इकत्तीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति इकत्तीस पल्योपमकी है। विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी जघन्य स्थिति इकत्तीस सागरोपमकी होती है। सबसे ऊपरके ग्रैवेयक विमानोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी स्थिति इकत्तीस सागरोपमकी होती है ॥१०३॥

वे इकत्तीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उनकी आहार लेनेकी इच्छा इकत्तीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इकत्तीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥१०४॥

बत्तीसवाँ समवाय

योगसंग्रह बत्तीस हैं, यथा—आलोचना करना, आलोचनाका अन्यसे कथन न करना, आपत्ति आने पर भी धर्ममें दृढ़ रहना, सहायताकी अपेक्षा किए विना निस्पृह होकर तप करना, शिक्षा ग्रहण करना, शृंगार न करना, किसीको अपने तपकी जानकारी न देना, तथा पूजा प्रतिष्ठाकी कामना न करना, लोभ न करना, परीषह सहन करना, सरलता रखना, पवित्र विचार रखना, सम्यग्दृष्टि रखना, प्रसन्न रहना, पंचाचारका पालन करना, विनम्र होना, धैर्य रखना, वैराग्यभाव रखना, छल कपटका त्याग करना, प्रत्येक धार्मिक क्रिया विधिपूर्वक करना, नवीन कर्मोंका बन्ध न होने देना, अपने दोषोंकी शुद्धि करना, सर्व कामनाओंसे विरत होना, मूलगुण विषयक प्रत्याख्यान करना, उत्तरगुण विषयक प्रत्याख्यान करना, द्रव्य एवं भावसे व्युत्सर्ग करना, प्रमाद छोड़ना, शास्त्रोक्त समाचारीका पालन करना, शुभ ध्यान करना, मरणांत कष्ट आने पर भी धर्ममें दृढ़ रहना, सर्व विषय वासनाओंका त्याग करना, दोषोंका प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना, अन्तिम समयमें संलेखना करके पंडित मरणसे मरना ॥१०५॥

देवेन्द्र बत्तीस हैं, यथा-भवनपति देवोंके बीस, ज्योतिषी देवोंके दो, वैमानिक देवों के दस। कुन्थुनाथ अरहन्तके बत्तीस सौ बत्तीस सामान्य केवली थे। सौधर्मकल्पमें बत्तीस लाख विमान हैं। रेवती नक्षत्रके बत्तीस तारे हैं। नृत्य बत्तीस प्रकारका है ॥१०६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बत्तीस पल्योपमकी है। तमस्तमा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति बत्तीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति बत्तीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्पके कुछ देवोंकी स्थिति बत्तीस पल्योपम की है। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी स्थिति बत्तीस सागरोपमकी होती है। वे देव बत्तीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा बत्तीस हजार वर्षसे होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बत्तीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे ॥१०७॥

तेतीसवाँ समवाय

आशातना तेतीस हैं, यथा ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके आगे चलना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बराबर चलना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके पीछे भिड़कर चलना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके आगे खड़े होना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बराबर खड़े होना, ज्ञानादि गुणों में जो अधिक हों उनके पीछे भिड़कर खड़े होना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके आगे बैठना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बराबर बैठना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके पीछे भिड़कर बैठना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके पहले शुचि करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके पहले आलोचना करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके वचन अनसुने कर देना, तथा उत्तर न देना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके पूर्व किसीसे बातचीत करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनसे पहले किसी अन्यके सामने अशनादिकी आलोचना करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनसे पहले किसी अन्य को अशनादि दिखाना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनसे पहले किसी अन्य को अशनादि का निमन्त्रण देना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उन्हें पूछे बिना अन्य को इच्छानुसार प्रचुर आहार देना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनसे पूर्व इच्छानुसार आहार जल्दी जल्दी खाना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बुलाने पर न जाना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके समक्ष मर्यादासे अधिक बोलना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बुलाने पर विनयरहित उत्तर देना,

ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बुलाने पर अपने स्थानसे ही उत्तर देना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके प्रति असभ्य वचन कहना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके आदेशोंकी अवहेलना करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनकी धर्मकथामें अन्यमनस्क रहना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनकी भूल निकालना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनकी कथा भंग करना, या स्वयं कथा कहना, ज्ञानादि गुणों में जो अधिक हों उनकी धर्मपरिषद भंग करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनकी धर्मपरिषद् में अपना गौरव दिखलाना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके शय्या संस्तारक को पैर लगाना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके शय्या संस्तारक पर खड़े होना, बैठना या शयन करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके आसनसे ऊंचे आसन पर खड़े होना, बैठना या शयन करना, ज्ञानादि गुणोंमें जो अधिक हों उनके बराबर आसन पर खड़ा होना, बैठना या शयन करना। चमरेन्द्रकी चमरचंचा राजधानीके प्रत्येक द्वारके बाहर तेतीस-तेतीस भौम नगर हैं। महाविदेह क्षेत्रका विष्कम्भ कुछ अधिक तेतीस हजार योजनका है। सूर्य बाह्य अन्तिम मंडलसे जब पूर्व तृतीय मंडलमें गति करता है, तब जम्बूद्वीप में रहे हुए मनुष्यको कुछ न्यून तेतीस हजार योजन दूरसे सूर्य-दर्शन होता है ॥१०८॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वीके कुछ नैरयिकोंकी स्थिति तेतीस पल्योपम की है। तमस्तमा पृथ्वीके काल, महाकाल, रौर और महारौर नरकावासोंमें उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपमकी है। अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिकोंकी अजघन्योत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपमकी है। कुछ असुरकुमार देवोंकी स्थिति तेतीस पल्योपमकी है। सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवोंकी स्थिति तेतीस पल्योपमकी है। विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपमकी होती है। सर्वार्थसिद्ध महाविमानमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी अजघन्योत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है ॥१०९॥

वे देव तेतीस पक्षसे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवोंकी आहार लेनेकी इच्छा तेतीस हजार वर्ष से होती है। कुछ भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेतीस भव करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंका अंत करेंगे ॥११०॥

चौतीसवाँ समवाय

जिनातिशय चौतीस हैं, यथा-मस्तकके केश, दाढ़ी, मूंछ, रोम और नखों का मर्यादासे अधिक न बढ़ना, शरीरका स्वस्थ एवं निर्मल रहना, रक्त और मांसका गायके दूधके समान श्वेत रहना, पद्मगंधके समान श्वासोच्छ्वासका सुगंधित होना, आहार और शौच क्रियाका प्रच्छन्न होना, तीर्थंकर देवके आगे आकाशमें

धर्मचक्र रहना, उनके ऊपर तीन छत्र रहना, दोनों ओर श्रेष्ठ चंवर रहना, आकाशके समान स्वच्छ स्फटिक मणिका बना हुआ पादपीठ वाला सिंहासन होना, तीर्थंकर देवके आगे आकाशमें इन्द्रध्वजका चलना, जहां जहां अरहंत भगवंत ठहरते हैं या बैठते हैं वहां वहां उसी क्षण पत्र, पुष्प, और पल्लवसे सुशोभित छत्र, ध्वज, घंट एवं पताका सहित अशोक वृक्षका उत्पन्न होना, कुछ पीछे मुकुटके स्थान पर तेजोमंडल का होना तथा अन्धकार होने पर दस दिशाओं में प्रकाश होना, जहां जहां पधारें वहां वहांके भूभागका समतल होना, जहां जहां पधारें वहां वहां कंटकोंका अधोमुख होना, जहां जहां पधारें वहां वहां ऋतुओं का अनुकूल होना, जहां जहां पधारें वहां वहां संवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यंत क्षेत्रका शुद्ध हो जाना, मेघ द्वारा रज का उपशान्त होना, जानुप्रमाण देवकृत पुष्पों की वृष्टि होना एवं पुष्पोंके डंठलोंका अधोमुख होना, अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध, एवं स्पर्श का न रहना, मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध एवं स्पर्शका प्रगट होना, योजन पर्यन्त सुनाई देने वाला हृदयस्पर्शी स्वर होना, अर्धमागधी भाषामें उपदेश करना, उस अर्धमागधी भाषाका उपस्थित आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, और सरिसृपोंकी भाषामें परिणत होना तथा उन्हें हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी प्रतीत होना, पूर्वभवके वैरानुबन्धसे बद्ध देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किंनर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व और महोरगका अरहंतके समीप प्रसन्नचित्त होकर धर्म सुनना, अन्यतीर्थिकों का नत मस्तक होकर वंदना करना, अरहंतके समीप आकर अन्यतीर्थिकोंका निरुत्तर होना, जहां जहां अरहंत भगवंत पधारें वहां वहां पच्चीस योजन-पर्यंत चूहे आदिका उपद्रव न होना, प्लेग आदि महामारीका उपद्रव न होना, स्व-सेना का विप्लव न करना, अन्य राज्यकी सेनाका उपद्रव न होना, अधिक वर्षा न होना, वर्षा का अभाव न होना, दुर्भिक्ष न होना, पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियों का उपशान्त होना ॥१११॥

जम्बूद्वीपमें चौतीस चक्रवर्ती-विजय हैं, यथा- महाविदेहमें बत्तीस, भरतमें एक, एरवतमें एक। जम्बूद्वीपमें चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं। जम्बूद्वीपमें उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। चमरेन्द्रके चौतीस लाख भवनावास हैं। पहली, पांचवीं, छठी और सातवीं इन चार पृथ्वियोंमें चौतीस लाख नरकावास हैं ॥११२॥

पैंतीसवाँ समवाय

सत्य-वचनातिशय पैंतीस हैं। संस्कारयुक्त भाषा, उदात्त स्वर, ग्राम्य दोष रहित भाषा, गम्भीर स्वर, प्रतिध्वनियुक्त स्वर, सरल भाषा, रुचिकर भाषा, अल्पशब्द और अधिक अर्थ, पूर्वापर विरोध रहित, शिष्ट भाषा, असंदिग्ध

भाषा, स्पष्ट भाषा, हृदयग्राही भाषा, देश-कालानुरूप अर्थ, तत्वानुरूप व्याख्या, सम्बद्ध व्याख्या, पद और वाक्योंका सापेक्ष होना, विषयका यथार्थ प्रतिपादन, भाषा माधुर्य, मर्मका कथन न करना, धर्म सम्बद्ध प्रतिपादन, विशिष्ट शब्दार्थका प्रतिपादन, परनिन्दा और आत्मप्रशंसा रहित कथन, श्लाघनीय भाषा, कारक, काल, वचन, लिंग आदिके विपर्यास रहित भाषा, आकर्षक भाषा, अश्रुतपूर्व व्याख्या, धाराप्रवाह कथन, विभ्रम, विक्षेप, रोष, भय, लोभ आदि दोष रहित भाषा, एक ही विषयका विविध प्रकारसे प्रतिपादन, विशिष्टतायुक्त भाषा, वर्ण-पद और वाक्योंका अलग-अलग प्रतीत होना, ओजयुक्त भाषा, खेदरहित कथन, तत्वार्थकी सम्यक् सिद्धि। अरहंत कुंथुनाथ पैंतीस धनुष ऊंचे थे। दत्त वासुदेव पैंतीस धनुष ऊंचे थे। नन्दन बलदेव पैंतीस धनुष ऊंचे थे। दूसरी और चौथी इन दो पृथ्वियोंमें पैंतीस लाख नरकावास हैं ।।११३।।

छत्तीसवां समवाय

उत्तराध्ययनके छत्तीस अध्ययन हैं, यथा- विनयश्रुत, परीषह, चातुरंगीय, असंस्कृत, अकाम-मरणीय, पुरुष-विद्या, औरभ्रीय, कापिलीय, नमि-प्रव्रज्या, द्रुम-पत्रक, बहुश्रुत-पूजा, हरिकेशीय, चित्त-संभूत, इषुकारीय, सभिक्षुक, समाधिस्थान, पाप-श्रमणीय, संयतीय, मृगचर्या, अनाथ-प्रव्रज्या, समुद्रपालीय, रहनेमीय, गौतम-केशीय, समितीय, यज्ञीय, समाचारी, खलुंकीय, मोक्षमार्गगति, अप्रमाद, तपो-मार्ग, चरण-विधि, प्रमादस्थान, कर्मप्रकृति, लेश्या-अध्ययन, अनगार-मार्ग, जीवाजीवविभक्ति। चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊंची है। श्रमण भगवान महावीरके छत्तीस हजार आर्या थी। चैत्र तथा आश्विन मासमें एक दिन पौरुषी छायाका प्रमाण छत्तीस अंगुलका होता है ।।११४।।

सैंतीसवाँ समवाय

अरहंत कुंथुनाथके सैंतीस गणधर थे। हेमवंत और हेरण्यवतकी जीवाका आयाम सैंतीस हजार, छ सौ, चौहत्तर योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से कुछ अधिक सोलह भागका है। विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजिता-इन सब राजधानियोंके प्राकारोंकी ऊँचाई सैंतीस योजनकी है। क्षुद्रिका-विमान-प्रविभक्तिके प्रथम वर्गमें सैंतीस उद्देशनकाल हैं। कार्तिक कृष्णा सप्तमीके दिन सूर्य सैंतीस अंगुल प्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है ।।११५।।

अड़तीसवाँ समवाय

प्रसिद्ध पुरुष अरहंत पार्श्वनाथके उत्कृष्ट अड़तीस हजार आर्या थी। हेमवत और हैरण्यवतकी जीवाके धनुपृष्ठकी परिधि अड़तीस हजार, सात सौ, चालीस योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से कुछ न्यून दसभागकी है।

मेरुपर्वतके द्वितीय कांड की ऊँचाई अड़तीस हजार योजनकी है। क्षुद्रिका-विमान-प्रविभक्तिके द्वितीय वर्गमें अड़तीस उद्देशनकाल हैं ॥११६॥

उनतालीसवाँ समवाय

अरहंत नमिनाथ के उनतालीस सौ अवधिज्ञानी थे। समयक्षेत्रमें उनतालीस कुलपर्वत हैं, यथा—तीस वर्षधर पर्वत, पांच मेरु पर्वत, चार इषुकार पर्वत। दूसरी, चौथी, पांचवीं, छठी, और सातवीं—इन पांच पृथ्वियोंमें उनतालीस लाख नरकावास हैं। ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयु—इन चार मूलकर्म प्रकृतियोंकी उनतालीस उत्तरकर्मप्रकृतियां हैं ॥११७॥

चालीसवाँ समवाय

अरहंत अरिष्ट—नेमिनाथकी चालीस हजार आर्या थी। मेरुचूलिका चालीस योजन ऊँची है। अरहंत शांतिनाथ चालीस धनुष ऊँचे थे। भूतानन्द नागकुमारेन्द्रके चालीस लाख भवनावास हैं। क्षुद्रिका-विमान-प्रविभक्तिके तृतीय वर्गमें चालीस उद्देशनकाल हैं। फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सूर्य चालीस अंगुल प्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है। इसी प्रकार कार्तिक पूर्णिमाके दिन भी। महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमानावास हैं ॥११८॥

इकतालीसवाँ समवाय

अरहंत नमिनाथकी इकतालीस हजार आर्या थी। चार पृथ्वियोंमें इकतालीस हजार नरकावास हैं, यथा—रत्नप्रभा, पंकप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमाप्रभा। महालिकाविमानप्रविभक्तिके प्रथम वर्गमें इकतालीस उद्देशनकाल हैं ॥११९॥

बयालीसवाँ समवाय

श्रमण भगवान महावीर कुछ अधिक बयालीस वर्षका श्रामण्यपर्याय पालकर सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंसे रहित हुए। जम्बूद्वीपके पूर्वी चरमान्तसे गोस्तूप आवास पर्वतके चरमान्तका अव्यवहित अंतर बयालीस हजार योजनका है। इसी प्रकार दकभास, शंख और दकसीम पर्वतका अंतर भी है। कालोद समुद्रमें बयालीस चंद्र और बयालीस सूर्य त्रिकालवर्ती हैं। सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पकी उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्षकी है। नामकर्म बयालीस प्रकारका है, यथा—गति नाम, जाति नाम, शरीर नाम, शरीरांगोपांग नाम, शरीरबंधन नाम, शरीर संघातन नाम, संघयण नाम, संस्थान नाम, वर्ण नाम, गंध नाम, रस नाम, स्पर्श नाम, अगुरुलघु नाम, उपघात नाम, पराघात नाम, आनुपूर्वी नाम, उच्छ्वास नाम, आतप नाम, उद्योत नाम, विहग गति नाम, त्रस नाम, स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण शरीर नाम, प्रत्येक शरीर नाम, स्थिर नाम, अस्थिर

नाम, शुभ नाम, अशुभ नाम, सुभग नाम, दुर्भग नाम, सुस्वर नाम, दुस्वर नाम, आदेय नाम, अनादेय नाम, यश-कीर्ति नाम, अयश-कीर्ति नाम, निर्माण नाम, तीर्थकर नाम। लवण समुद्रकी आभ्यंतर वेलाको बयालीस हजार नाग देवता धारण करते हैं। महाविमानप्रविभक्तिके द्वितीय वर्गमें बयालीस उद्देशनकाल हैं। प्रत्येक अवसर्पिणीके पांचवें छठे आरेका काल बयालीस हजार वर्षका है। प्रत्येक उत्सर्पिणीके पहले दूसरे आरेका काल बयालीस हजार वर्षका है ॥१२०॥

तेतालीसवाँ समवाय

कर्मविपाकके तेतालीस अध्ययन हैं। पहली, चौथी और पांचवीं इन तीन पृथ्वियोंमें तेतालीस लाख नरकावास हैं। जम्बूद्वीपके पूर्वी चरमान्तसे गोस्तूप आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्तका अव्यवहित अंतर तेतालीस हजार योजनका है। इसी प्रकार दकभास, शंख और दकसोम पर्वतके चरमान्तका अन्तर है। महालिकाविमानप्रविभक्तिके तृतीय वर्गमें तेतालीस उद्देशनकाल हैं ॥१२१॥

चौवालीसवाँ समवाय

देवलोक च्युत ऋषियों द्वारा भासित-ऋषि-भासित आगमके चौवालीस अध्ययन हैं। अरहंत विमलनाथके पश्चात् चौवालीस युगपुरुष शिष्य प्रशिष्य सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंसे रहित हुए। धरण नागेन्द्रके चौवालीस लाख भवन हैं। महालिकाविमानप्रविभक्तिके चौथे वर्गमें चौवालीस उद्देशनकाल हैं ॥१२२॥

पैंतालीसवाँ समवाय

समयक्षेत्रका आयाम-विष्कम्भ पैंतालीस लाख योजनका है। सीमंतक नरकावासका आयाम-विष्कम्भ पैंतालीस लाख योजनका है। इसी प्रकार उडु विमानका आयाम-विष्कम्भ है। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीका आयाम-विष्कम्भ भी इतना ही है। अरहंत धर्मनाथ पैंतालीस धनुष ऊंचे थे। मेरुपर्वतसे लवणसमुद्रका अव्यवहित अंतर चारों दिशाओंमें पैंतालिस-पैंतालिस हजार योजनका है। डेढ़ क्षेत्रवाले सभी नक्षत्र चन्द्रके साथ पैंतालीस मुहूर्तका योग करते थे, करते हैं और करेंगे। वे नक्षत्र ये हैं, यथा—तीन उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद), पुनर्वसु, रोहिणी, विशाखा। महालिकाविमानप्रविभक्तिके पांचवें वर्गमें पैंतालीस उद्देशनकाल हैं ॥१२३॥

छियालीसवाँ समवाय

दृष्टिवादके छियालीस मातृकापद हैं। ब्राह्मी लिपिके छियालीस मातृकाक्षर हैं। वायुकुमारेन्द्र प्रभंजनके छियालीस लाख भवनावास हैं ॥१२४॥

सैंतालीसवाँ समवाय

सूर्य सर्वप्रथम आभ्यंतर मण्डलमें जब गति करता है तब यहां रहे मनुष्य को सैंतालीस हजार, दो सौ, त्रेसठ योजन तथा एक योजनके साठ भागोंमें से इक्कीस भाग दूरीसे सूर्यदर्शन होता है। स्थविर अग्निभूति सैंतालीस वर्ष गृहवासमें रहकर मुंडित एवं प्रव्रजित हुए ॥१२५॥

अड़तालीसवाँ समवाय

प्रत्येक चक्रवर्तीके अड़तालीस हजार पट्टण कहे गए हैं। अरहंत धर्मनाथ के अड़तालीस गण और अड़तालीस गणधर थे। सूर्यविमानका विष्कम्भ एक योजनके इकसठ भागोंमें से अड़तालीस भाग जितना है ॥१२६॥

उनचासवां समवाय

सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा उनचास अहोरात्रिमें एक सौ छियानवे दात आहार लेकर सूत्रोक्त विधिसे आराधित होती है। देवकुरु और उत्तरकुरुके मनुष्य उनचास अहोरात्रिमें युवा हो जाते हैं। त्रीन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति उनचास अहोरात्रिकी होती है ॥१२७॥

पचासवाँ समवाय

अरहंत मुनिसुव्रतकी पचास हजार आर्या थी। अरहंत अनंतनाथ पचास धनुष ऊँचे थे। पुरुषोत्तम वासुदेव पचास धनुष ऊँचे थे। सर्व दीर्घ वैताढ्य पर्वतोंके मूलका विष्कम्भ पचास योजनका है। लांतक कल्पमें पचास हजार विमान हैं। सर्व तिमिस्रगुफा और खंडप्रपात गुफाओंका आयाम पचास पचास योजनका है। सर्व कांचनग पर्वतोंके शिखरका विष्कम्भ पचास-पचास योजन का है ॥१२८॥

इक्कावनवाँ समवाय

नव ब्रह्मचर्य अध्ययनोंके इक्कावन उद्देशनकाल हैं। चमरेन्द्रकी सुधर्मा सभाके इक्कावन सो स्तम्भ हैं। बलीन्द्रकी सुधर्मा सभाके इक्कावन सौ स्तम्भ हैं। सुप्रभ बलदेव इक्कावन लाख वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। दर्शनावरण और नामकर्म इन दो कर्मोंकी इक्कावन उत्तर कर्म प्रकृतियां हैं ॥१२९॥

बावनवाँ समवाय

मोहनीयकर्मके बावन नाम हैं, यथा—क्रोध, कोप, रोस, द्वेष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, चांडिक्य, भंडन, विवाद, मान, मद, दर्प, स्तम्भ, आत्मोत्कर्ष, गर्व, पर-परिवाद, आक्रोश, अपकर्ष, उन्नत, उन्नाम, माया, उपधि, निकृति, वलय, ग्रहण, नम, कल्क, कुरुक, दम्भ, कट, जिह्म, किल्विष, अनादरता, गूहनता,

वंचनता, परिकुंचनता, सातियोग, लोभ, इच्छा, मूर्छा, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, नन्दी, राग। गोस्तूप आवासपर्वतके पूर्वी चरमान्तसे वड़वामुख पाताल-कलशके पश्चिमी चरमान्तका अव्यवहित अन्तर बावन हजार योजनका है। इसी प्रकार दकभास और केतुक, शंख और यूपक, दगसीम और ईश्वरका अंतर जानना। ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय इन तीन मूलकर्मप्रकृतियोंकी बावन उत्तरकर्मप्रकृतियां हैं। सौधर्म, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन देवलोकोंमें बावन लाख विमानावास हैं ॥१३०॥

त्रेपनवाँ समवाय

देवकुरु और उत्तरकुरुकी जीवाका आयाम त्रेपन हजार योजनका है। महाहिमवंत और रुक्मी वर्षधर पर्वतकी जीवाका आयाम त्रेपन हजार, नौ सौ, इकतीस योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से छ भाग जितना है। श्रमण भगवान महावीरके त्रेपन साधु एक वर्षकी दीक्षा-पर्यायवाले होकर अनुत्तर विमानमें देव हुए। सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्पकी उत्कृष्ट स्थिति त्रेपन हजार वर्ष की है ॥१३१॥

चौपनवां समवाय

भरत और ऐरवत क्षेत्रमें प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणीमें चौपन-चौपन उत्तम पुरुष उत्पन्न होते हैं, हुए हैं, और होंगे, यथा—चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलदेव और नव वासुदेव। अरहंत अरिष्टनेमिनाथ चौपन अहोरात्र की छद्मस्थ पर्यायके पश्चात् जिन हुए यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हुए। श्रमण भगवान महावीरने एक दिनमें एक आसनसे चौपन प्रश्नोंके उत्तर कहे थे। अरहंत अनंतनाथके चौपन गण और गणधर थे ॥१३२॥

पचपनवां समवाय

अरहंत मल्लिनाथ पचपन हजार वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। मेरुपर्वतके पश्चिमी चरमान्तसे विजयद्वारके पश्चिमी चरमान्तका अव्यवहित अन्तर पचपन हजार योजनका है। इसी प्रकार वैजयन्त, जयन्त और अपराजित द्वारका अन्तर है। श्रमण भगवान महावीर अन्तिम रात्रिमें पचपन अध्ययन कल्याण-फल-विपाकके और पचपन अध्ययन पाप-फल-विपाकके कहकर सिद्ध-यावत्-सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। प्रथम और द्वितीय इन दो पृथ्वियोंमें पचपन लाख नरकावास हैं। दर्शनावरणीय, नाम और आयु इन तीन मूलकर्मप्रकृतियोंकी पचपन उत्तर कर्मप्रकृतियां हैं ॥१३३॥

छप्पनवाँ समवाय

जम्बूद्वीपमें छप्पन नक्षत्रोंने चन्द्रके साथ योग किया, करते हैं, और करेंगे। अरहंत विमलनाथके छप्पन गण और छप्पन गणधर थे ॥१३४॥

सत्तावनवां समवाय

आचारांग-चूलिकाको छोड़कर तीन गणिपिटकोंके सत्तावन अध्ययन हैं, यथा—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग। गोस्तूप आवास पर्वतके पूर्वी चरमान्तसे वलयामुख पाताल कलशके मध्यभागका अव्यवहित अंतर सत्तावन हजार योजन का है। इसी प्रकार दकभास और केतुक, शंख और यूपक, दकसीम और ईश्वर का अन्तर है। अरहंत मल्लिनाथके सत्तावन सौ अवधिज्ञानी मुनि थे। महा-हिमवंत और रुक्मी-वर्षधर-पर्वतोंकी जीवाके धनुपृष्ठकी परिधि सत्तावन हजार, दो सौ, तिरानवे योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से दस भाग जितनी है ॥१३५॥

अट्ठावनवां समवाय

पहली, दूसरी और पांचवीं इन तीन पृथ्वियोंमें अट्ठावन लाख नरका-वास हैं। ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम, और अंतराय इन पांच मूलकर्म-प्रकृतियोंकी अट्ठावन उत्तरकर्मप्रकृतियां हैं। गोस्तूप आवासपर्वतके पश्चिमी चरमान्तसे वलयामुख पाताल कलशके मध्यभागका अव्यवहित अंतर अट्ठावन हजार योजनका है। इसी प्रकार शेष तीन दिशाओंका अन्तर है ॥१३६॥

उनसठवां समवाय

चंद्र संवत्सरकी प्रत्येक ऋतु उनसठ अहोरात्रिकी होती है। अरहंत संभवनाथ उनसठ हजार पूर्व गृहवासमें रहकर मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए। अरहंत मल्लिनाथके उनसठ सौ अवधिज्ञानी मुनि थे ॥१३७॥

साठवां समवाय

प्रत्येक मंडलमें सूर्य साठ साठ मुहूर्त पूरे करता है। लवणसमुद्रके अग्रोदक को साठ हजार नागदेव धारण करते हैं। अरहंत विमलनाथ साठ धनुष ऊँचे थे। वलीन्द्रके साठ हजार सामानिक देव हैं। ब्रह्म देवेन्द्रके साठ हजार सामानिक देव हैं। सौधर्म और ईशान इन दो कल्पोंमें साठ लाख विमानावास हैं ॥१३८॥

इकसठवाँ समवाय

पांच संवत्सरवाले युगके इकसठ ऋतुमास हैं। मेरुपर्वतके प्रथम कांड की ऊंचाई इकसठ हजार योजनकी है। चंद्र-मंडलका समांश एक योजनके इकसठ

विभाग करने पर (४५ समांश) होता है। इसी प्रकार सूर्य-मंडलके समांश भी होते हैं।।१३९।।

बासठवाँ समवाय

पांच संवत्सरवाले युगकी वासठ पूर्णिमाएं और वासठ अमावस्याएं होती हैं। अरहंत वासुपूज्यके वासठ गण और वासठ गणधर थे। शुक्लपक्षमें चन्द्र वासठ भाग प्रतिदिन वढ़ता है। कृष्णपक्षमें चन्द्र उतना ही प्रतिदिन घटता है सौधर्म और ईशानकल्पके प्रथम प्रस्तटकी प्रथम आवलिका एवं प्रत्येक दिशामें वासठ-वासठ विमान हैं। सर्व वैमानिक देवोंके वासठ विमान प्रस्तट हैं ।।१४०।

त्रेसठवाँ समवाय

अरहंत ऋषभ कौसलिक त्रेसठ लाख पूर्व राज्यपद भोगकर मुंडित एवं प्रव्रजित हुए। हरिवर्ष और रम्यक्वर्षके मनुष्य त्रेसठ अहोरात्रिमें युवा हो जाते हैं। निषध पर्वत पर त्रेसठवां सूर्य-मंडल है। इसी प्रकार नीलवंत पर्वत पर भी उतने ही सूर्य-मंडल हैं ।।१४१।।

चौंसठवाँ समवाय

अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चौंसठ अहोरात्रि में दो सौ अठ्यासी दात आहारकी लेकर सूत्रानुसार पूर्ण की जाती है। चौंसठ लाख असुरकुमारावास हैं। चमरेन्द्रके चौंसठ हजार सामानिक देव हैं। सभी दधिमुख पर्वत पालाके आकार वाले हैं अतः उनका विष्कम्भ सर्वत्र समान है, उनकी ऊंचाई चौंसठ हजार योजनकी है। सौधर्म, ईशान और ब्रह्मलोक इन तीन कल्पोंमें चौंसठ लाख विमानावास हैं। सभी चक्रवर्तियोंका मुक्ता-मणिमय हार महामूल्यवान एवं चौंसठ लड़ियों वाला होता है ।।१४२।।

पैंसठवाँ समवाय

जम्वूद्वीपमें सूर्यके पैंसठ मंडल हैं। स्थविर मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष गृहवासमें रहकर मुंडित-यावत्-प्रव्रजित हुए। सौधर्मावतंसक विमानकी प्रत्येक दिशामें पैंसठ-पैंसठ भौम नगर हैं ।।१४३।।

छासठवाँ समवाय

दक्षिणार्ध मनुष्यक्षेत्रमें छासठ चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे। दक्षिणार्ध मनुष्यक्षेत्रमें छासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। उत्तरार्ध मनुष्यक्षेत्रमें छासठ चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे।। उत्तरार्ध मनुष्यक्षेत्रमें छासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। अरहंत श्रेयांसनाथके छासठ गण और छासठ गणधर थे। आभिनिवोधिकज्ञानकी उत्कृष्ट स्थिति छासठ सागरोपमकी है ।।१४४।।

सड़सठवाँ समवाय

पांच संवत्सरवाले युगके सड़सठ ऋतुमास होते हैं। हेमवत और एरण्यवत की वाहाका आयाम सड़सठ सौ पचपन योजन, तथा एक योजनके तीन भाग जितना है। मेरुपर्वतके चरमान्तसे गौतमद्वीपके पूर्वी चरमान्तका अव्यवहित अंतर सड़सठ हजार योजनका है। सभी नक्षत्रोंके सीमाविष्कम्भका समांश एक योजनके सड़सठ भागोंमें विभाजित करने पर होता है ॥१४५॥

अड़सठवाँ समवाय

धातकीखंड द्वीपमें अड़सठ चक्रवर्तीविजय और उनकी अड़सठ राजधानियां हैं। उत्कृष्ट अड़सठ तीर्थंकर हुए हैं, होते हैं और होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी। पुष्करार्धद्वीपमें अड़सठ चक्रवर्ती-विजय, राजधानियाँ, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव ऊपरके तीन सूत्रोंके अनुसार हैं। अरहंत विमलनाथके अड़सठ हजार श्रमण उत्कृष्ट थे ॥१४६॥

उनहत्तरवाँ समवाय

समयक्षेत्रमें मेरुको छोड़कर उनहत्तर वर्ष और वर्षधर पर्वत हैं, यथा-पैंतीस वर्ष, तीस वर्षधर पर्वत, चार इषुकारपर्वत। मेरु पर्वतके पश्चिमी चरमान्तसे गौतमद्वीपके पश्चिमी चरमान्तका अव्यवहित अंतर उनहत्तर हजार योजनका है। मोहनीयकर्मको छोड़कर शेष सात मूलकर्मप्रकृतियोंकी उनहत्तर उत्तरकर्मप्रकृतियां हैं ॥१४७॥

सत्तरवां समवाय

श्रमण भगवान महावीर वर्षा ऋतुका एक मास और बीस रात्रि व्यतीत होने पर और सत्तर दिन-रात शेष रहने पर वर्षावास रहे। प्रसिद्ध पुरुष अरहंत पार्श्वनाथ सत्तर वर्षका श्रामण्यपर्याय पालकर सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। अरहंत वासुपूज्य सत्तर धनुष ऊँचे थे। मोहनीय कर्मकी स्थति अवाधा काल सात हजार वर्ष छोड़कर सत्तर कोटा-कोटी सागरोपमकी है। माहेन्द्र देवेन्द्र के सत्तर हजार सामानिक देव हैं ॥१४८॥

इकहत्तरवां समवाय

चौथे चन्द्र संवत्सरकी हेमन्त ऋतुके इकहत्तर अहोरात्रि व्यतीत होने पर सर्व बाह्य मण्डलसे सूर्य पुनरावृत्ति करता है। वीर्यप्रवाद पूर्वके इकहत्तर प्राभृत हैं। अरहंत अजितनाथ इकहत्तर लाख पूर्व गृहवासमें रहकर मुंडित हुए यावत् प्रव्रजित हुए। इसी प्रकार सगर चक्रवर्ती भी इकहत्तर लाख पूर्व गृहवासमें रहकर मुंडित हुए यावत् प्रव्रजित हुए ॥१४९॥

बहत्तरवाँ समवाय

सुवर्णकुमारावास बहत्तर लाख हैं। लवणसमुद्रकी वाह्यवेलाको बहत्तर हजार नागदेव धारण करते हैं। श्रमण भगवान महावीर वहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। स्थविर अचलभ्राता बहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। पुष्करार्ध द्वीपमें बहत्तर चन्द्र प्रकाश करते थे, करते हैं और करेंगे, तथा बहत्तर सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। प्रत्येक चक्रवर्तीके बहत्तर हजार श्रेष्ठ पुर होते हैं। कलाएं बहत्तर हैं,यथा-लेख, गणित, रूप, नाट्य, गीत, वाद्य, स्वरविज्ञान, पुष्करविज्ञान, तालविज्ञान, द्यूत, वार्ताविज्ञान, सुरक्षाविज्ञान, पासा क्रीड़ा, कुम्भ-कला, अन्न-विधि, पान-विधि, वस्त्र-विधि, शयन-विधि, छन्द-रचना, प्रहेलिका, मागधिका, गाथा-रचना, श्लोक-रचना, गंधयुक्ति, मधुसिक्थ, आभरण-विधि, तरुणी-प्रतिकर्म, स्त्री-लक्षण, पुरुप-लक्षण, हय-लक्षण, गज-लक्षण, गोण-लक्षण, कुर्कुट-लक्षण, मेंढा-लक्षण, चक्र-लक्षण, छत्र-लक्षण, दण्ड-लक्षण, असि-लक्षण, मणि-लक्षण, काकिणी-लक्षण, चर्म-लक्षण, चन्द्र-लक्षण, सूर्य-चरित, राहु-चरित, ग्रह-चरित, सौभाग्यकर, दौर्भाग्यकर, विद्या-विज्ञान, मंत्र-विज्ञान, रहस्य-विज्ञान, वस्तु-विज्ञान, सैन्य-विज्ञान, युद्धविद्या, व्यूहरचना, प्रतिव्यूहरचना, स्कंधावार-विज्ञान, नगर-निर्माण-कला, वस्तुप्रमाण, स्कन्धावार-निर्माणकला, वास्तु-विधि, नगर-निवास, इपदर्थ, असि-कला, अश्व-शिक्षा, हस्ती-शिक्षा, धनुर्वेद, हिरण्य-पाक, सुवर्ण-पाक, मणि-पाक, धातु-पाक, बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टि-युद्ध, यष्टियुद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धा-तियुद्ध, सूत्रखेड़, नालिकाखेड़, वर्तखेड़, धर्मखेड़, चर्मखेड़, पत्रछेदनकला, कंटक-छेदनकला, संजीवनी विद्या, शकुनरुत। सम्मूर्च्छिम खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रियकी उत्कृष्ट स्थिति वहत्तर हजार वर्षकी है ॥१५०॥

तिहत्तरवां समवाय

हरिवर्ष और रम्यक्वर्षकी जीवाका आयाम तिहत्तर हजार, नौ-सौ, एक योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से साढ़े सत्रह भाग जितना है। विजय वलदेव तिहत्तर हजार वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए ॥१५१॥

चौहत्तरवां समवाय

स्थविर अग्निभूति गणधर चौहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। निपध पर्वतके तिगिच्छ द्रहसे सीतोदा महानदीकी उत्तर दिशा की ओर चौहत्तर सौ योजन वहकर चार योजन लम्बी वज्रमय जिह्वासे पचास योजन चौड़े वज्रमय तल वाले कुंडमें महा घटमुखसे मुक्तावली हारकी आकृति

वाला प्रवाह महाशब्द करता हुआ गिरता है। इसी प्रकार सीता नदीके दक्षिण की ओरके प्रवाहका वर्णन है। चौथी पृथ्वीको छोड़कर शेप छः पृथ्वियोंमें चौहत्तर लाख नरकावास हैं ॥१५२॥

पचहत्तरवां समवाय

अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के पचहत्तर सौ सामान्य केवली थे। अरहंत शीतलनाथ पचहत्तर हजार पूर्व गृहवासमें रहकर मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हुए। अरहंत शांतिनाथ पचहत्तर हजार वर्ष गृहवासमें रहकर मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हुए ॥१५३॥

छिहत्तरवां समवाय

विद्युत्कुमारावास छिहत्तर लाख हैं। इसी प्रकार द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन छः युगलके छिहत्तर छिहत्तर लाख भवन हैं ॥१५४॥

सतहत्तरवां समवाय

भरत चक्रवर्ती सतहत्तर लाख पूर्व कुमार पदमें रहनेके पश्चात् राज्यपद को प्राप्त हुए। अंग वंशके सतहत्तर राजा मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए। गर्दतोय और तुषित देवोंका सतहत्तर हजार देवोंका परिवार है। प्रत्येक मुहूर्तके सतहत्तर लव होते हैं ॥१५५॥

अठहत्तरवां समवाय

शक्र देवेन्द्रके वैश्रमण लोकपाल सुवर्णकुमार और दीपकुमारके अठहत्तर लाख भवनावासोंका आधिपत्य अग्रेसरत्व स्वामित्व भर्तृत्व महाराज्यत्व एवं सेनानायकके रूपमें रहकर आज्ञाका पालन करवाते हैं। स्थविर अकंपित अठहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। उत्तरायणसे लौटता हुआ सूर्य प्रथम मंडलसे उनतालिसवें मंडल पर्यन्त एक मुहूर्तके इकसठवें अठहत्तर भाग प्रमाण दिन तथा रात्रिको वढ़ाकर गति करता है। इसी प्रकार दक्षिणायनसे लौटता हुआ सूर्य भी······ गति करता है ॥१५६॥

उन्नासीवाँ समवाय

वड़वामुख पातालकलशके नीचेके चमरान्तसे रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचेके चमरान्तका अव्यवहित अन्तर उन्नासी हजार योजनका है। इसी प्रकार केतुक, यूपक और ईश्वर पाताल कलशोंका अंतर भी है। छठी पृथ्वीके मध्य भागसे छठे घनोदधिके नीचेके चरमान्तसे अव्यवहित अंतर उन्नासी हजार योजनका है ॥१५७॥

बहत्तरवाँ समवाय

सुवर्णकुमारावास बहत्तर लाख हैं। लवणसमुद्रकी बाह्यवेलाको बहत्तर हजार नागदेव धारण करते हैं। श्रमण भगवान महावीर बहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। स्थविर अचलभ्राता बहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। पुष्करार्ध द्वीपमें बहत्तर चन्द्र प्रकाश करते थे, करते हैं और करेंगे, तथा बहत्तर सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। प्रत्येक चक्रवर्तीके बहत्तर हजार श्रेष्ठ पुर होते हैं। कलाएं बहत्तर हैं,यथा-लेख, गणित, रूप, नाट्य, गीत, वाद्य, स्वरविज्ञान, पुष्करविज्ञान, तालविज्ञान, द्यूत, वार्ताविज्ञान, सुरक्षाविज्ञान, पासा क्रीड़ा, कुम्भ-कला, अन्न-विधि, पान-विधि, वस्त्र-विधि, शयन-विधि, छन्द-रचना, प्रहेलिका, मागधिका, गाथा-रचना, श्लोक-रचना, गंधयुक्ति, मधुसिक्थ, आभरण-विधि, तरुणी-प्रतिकर्म, स्त्री-लक्षण, पुरुष-लक्षण, हय-लक्षण, गज-लक्षण, गोण-लक्षण, कुर्कुट-लक्षण, मेंढा-लक्षण, चक्र-लक्षण, छत्र-लक्षण, दण्ड-लक्षण, असि-लक्षण, मणि-लक्षण, काकिणी-लक्षण, चर्म-लक्षण, चन्द्र-लक्षण, सूर्य-चरित, राहु-चरित, ग्रह-चरित, सौभाग्यकर, दौर्भाग्यकर, विद्या-विज्ञान, मंत्र-विज्ञान, रहस्य-विज्ञान, वस्तु-विज्ञान, सैन्य-विज्ञान, युद्धविद्या, व्यूहरचना, प्रतिव्यूहरचना, स्कंधावार-विज्ञान, नगर-निर्माण-कला, वस्तुप्रमाण, स्कन्धावार-निर्माणकला, वास्तु-विधि, नगर-निवास, इषदर्थ, असि-कला, अश्व-शिक्षा, हस्ती-शिक्षा, धनुर्वेद, हिरण्य-पाक, सुवर्ण-पाक, मणि-पाक, धातु-पाक, बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टि-युद्ध, यष्टियुद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध, सूत्रखेड़, नालिकाखेड़, वर्तखेड़, धर्मखेड़, चर्मखेड़, पत्रछेदनकला, कंटक-छेदनकला, संजीवनी विद्या, शकुनरुत। सम्मूर्च्छिम खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रियकी उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्षकी है ॥१५०॥

तिहत्तरवां समवाय

हरिवर्ष और रम्यक्वर्षकी जीवाका आयाम तिहत्तर हजार, नौ-सौ, एक योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से साढ़े सत्रह भाग जितना है। विजय बलदेव तिहत्तर हजार वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए ॥१५१॥

चौहत्तरवां समवाय

स्थविर अग्निभूति गणधर चौहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। निषध पर्वतके तिगिच्छ द्रहसे सीतोदा महानदीकी उत्तर दिशा की ओर चौहत्तर सौ योजन बहकर चार योजन लम्बी वज्रमय जिह्वासे पचास योजन चौड़े वज्रमय तल वाले कुंडमें महा घटमुखसे मुक्तावली हारकी आकृति

वाला प्रवाह महाशब्द करता हुआ गिरता है। इसी प्रकार सीता नदीके दक्षिण की ओरके प्रवाहका वर्णन है। चौथी पृथ्वीको छोड़कर शेष छः पृथ्वियोंमें चौहत्तर लाख नरकावास हैं ॥१५२॥

पचहत्तरवां समवाय

अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के पचहत्तर सौ सामान्य केवली थे। अरहंत शीतलनाथ पचहत्तर हजार पूर्व गृहवासमें रहकर मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हुए। अरहंत शाँतिनाथ पचहत्तर हजार वर्ष गृहवासमें रहकर मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हुए ॥१५३॥

छिहत्तरवां समवाय

विद्युत्कुमारावास छिहत्तर लाख हैं। इसी प्रकार द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन छः युगलके छिहत्तर छिहत्तर लाख भवन हैं ॥१५४॥

सतहत्तरवां समवाय

भरत चक्रवर्ती सतहत्तर लाख पूर्व कुमार पदमें रहनेके पश्चात् राज्यपद को प्राप्त हुए। अंग वंशके सतहत्तर राजा मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए। गर्दतोय और तुषित देवोंका सतहत्तर हजार देवोंका परिवार है। प्रत्येक मुहूर्तके सतहत्तर लव होते हैं ॥१५५॥

अठहत्तरवां समवाय

शक्र देवेन्द्रके वैश्रमण लोकपाल सुवर्णकुमार और दीपकुमारके अठहत्तर लाख भवनावासोंका आधिपत्य अग्रेसरत्व स्वामित्व भर्तृत्व महाराज्यत्व एवं सेनानायकके रूपमें रहकर आज्ञाका पालन करवाते हैं। स्थविर अकंपित अठहत्तर वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। उत्तरायणसे लौटता हुआ सूर्य प्रथम मंडलसे उनतालिसवें मंडल पर्यन्त एक मुहूर्तके इकसठवें अठहत्तर भाग प्रमाण दिन तथा रात्रिको बढ़ाकर गति करता है। इसी प्रकार दक्षिणायनसे लौटता हुआ सूर्य भी······ गति करता है ॥१५६॥

उन्नासीवाँ समवाय

वड़वामुख पातालकलशके नीचेके चमरान्तसे रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचेके चमरान्तका अव्यवहित अन्तर उन्नासी हजार योजनका है। इसी प्रकार केतुक, यूपक और ईश्वर पाताल कलशोंका अंतर भी है। छठी पृथ्वीके मध्य भागसे छठे घनोदधिके नीचेके चरमान्तसे अव्यवहित अंतर उन्नासी हजार योजनका है ॥१५७॥

अस्सीवां समवाय

अरहंत श्रेयांस अस्सी धनुप ऊंचे थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी धनुप ऊंचे थे। अचल वलदेव अस्सी धनुप ऊंचे थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी लाख वर्ष पर्यन्त राज्य पद पर रहे। अप्बहुल काण्डकी चौड़ाई अस्सी हजार योजनकी है। ईशान देवेन्द्रके अस्सी हजार सामानिक देव हैं। जम्बूद्वीपमें एक सौ अस्सी योजन जाने पर (उत्तार दिशामें) सर्वप्रथम आभ्यंतर मंडलमें सूर्योदय होता है ॥१५८॥

इक्यासीवाँ समवाय

नव-नवमिका भिक्षुप्रतिमाकी इक्यासी अहोरात्रिमें चार सौ पांच आहार की दात लेकर सूत्रानुसार आराधना की जाती है। अरहंत कुंथुनाथके इक्यासी सौ मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे। विवाह-प्रज्ञप्तिके इक्यासी महायुग्मशतक हैं ॥१५९॥

बयासीवाँ समवाय

जम्बूद्वीपमें एक सौ बयासीवें सूर्यमण्डलमें सूर्य दो बार गति करता है, यथा—जम्बूद्वीपसे बाहर निकलते समय तथा प्रवेश करते समय। श्रमण भगवान महावीरका बयासी अहोरात्रिके पश्चात् एक गर्भसे दूसरे गर्भमें संहरण हुआ। महाहिमवन्त वर्षधर पर्वतके ऊपरके चरमान्तसे सौगन्धिक काण्डके नीचेके चरमान्तका अव्यवहित अन्तर बयासी सौ योजनका है। इसी प्रकार रुक्मी पर्वत के ऊपरी चरमांतसे सौगंधिक काण्डके नीचेके चरमान्तका अंतर है ॥१६०॥

तिरासीवां समवाय

श्रमण भगवान महावीरका बयासी अहोरात्रि बीतने पर तिरासीवीं रात्रि में देवानन्दाकी कुक्षिसे त्रिशलाकी कुक्षिमें संहरण हुआ। अरहंत शीतलनाथके तिरासी गण और तिरासी गणधर थे। स्थविर मंडितपुत्र तिरासी वर्षकी आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। अरहंत कौसलिक ऋषभदेव तिरासी लाख पूर्व गृहवासमें रहकर मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए। भरत चक्रवर्ती तिरासी लाख पूर्व गृहवासमें रहकर जिन हुए यावत् सर्वज्ञ सवदर्शी हुए ॥१६१॥

चौरासीवां समवाय

नरकावास चौरासी लाख हैं। अरहंत कौसलिक ऋषभदेव चौरासी लाख पूर्वका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। इसी प्रकार भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी भी सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। अरहंत श्रेयांसनाथ चौरासी लाख वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। त्रिपृष्ठ वासुदेव चौरासी लाख वर्षका आयु पूर्ण करके अप्रतिष्ठान नामक नरकमें नैरयिक रूपमें उत्पन्न हुआ। शक्रेन्द्रके चौरासी हजार सामानिक देव हैं। सर्व बाह्य मन्दर पर्वतोंकी ऊँचाई चौरासी चौरासी हजार योजनकी है। सर्व अंज-

नकपर्वतोंकी ऊंचाई चोरासी चोरासी हजार योजनकी है। हरिवर्ष और रम्यक्-वर्षकी जीवाके धनुपृष्ठकी परिधि चौरासी हजार सोलह योजन तथा एक योजन के उन्नीस भागोंमें से चार भाग जितनी है। पंकबहुल काण्डके ऊपरके चरमांतसे नीचेके चरमांतका अव्यवहित अंतर चौरासी लाख योजनका है। विवाहप्रज्ञप्ति (भगवती) के चौरासी हजार पद हैं। नागकुमारावास चौरासी लाख हैं। प्रकीर्णक चौरासी हजार हैं। प्रमुख जीवयोनियाँ चौरासी लाख हैं। पूर्वसे शीर्षप्रहेलिका पर्यंत पूर्व अंकसे उत्तरका अंक चौरासी लाखसे गुणित है। अरहत ऋषभदेवके चौरासी हजार श्रमण थे। सर्व वैमानिक देवोंके विमान चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस हैं ॥१६२॥

पिचासीवां समवाय

चूलिकासहित आचारांग भगवन्तके पचासी उद्देशनकाल हैं। धातकीखण्डके मेरुपर्वत पचासी हजार योजन ऊँचे हैं। रुचक मांडलिक पर्वत पचासी हजार योजन ऊँचे हैं। नंदनवनके नीचेके चरमांतसे सौगंधिक काण्डके नीचेके चरमांतका अव्यवहित अंतर पचासी सौ योजनका है ॥१६३॥

छियासीवां समवाय

अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के छियासी गण और छियासी गणधर थे। अरहंत सुपार्श्वनाथके छियासी सौ वादी मुनि थे। दूसरी पृथ्वीके मध्यभागसे दूसरे घनोदधिके नीचेके चरमांतका अव्यवहित अंतर छियासी हजार योजनका है ॥१६४॥

सत्तासीवाँ समवाय

मेरुपर्वतके पूर्वी चरमान्तसे गोस्तूप आवासपर्वतके पश्चिमी चरमान्तका अव्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजनका है। मेरुपर्वतके दक्षिणी चरमांतसे दगभास आवास पर्वतके उत्तरी चरमांतका अव्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजनका है। इसी प्रकार मेरुपर्वतके पश्चिमी चरमांतसे शंख आवासपर्वतके पूर्वी चरमांतका अव्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजनका है। इसी प्रकार मेरुपर्वतके उत्तरी चरमांतसे दगसीम आवास पर्वतके दक्षिणी चरमांतका अव्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजनका है। प्रथम और अन्तिमको छोड़कर शेष छः मूल कर्मप्रकृतियोंकी सत्तासी उत्तरकर्मप्रकृतियां हैं। महाहिमवंत कूटके ऊपर के चरमांतसे सौगंधिक काण्डके नीचेके चरमांतका अव्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजनका है। इसी प्रकार रुक्मीकूटके ऊपरके चरमांतसे सौगंधिक काण्ड के नीचेके चरमांतका अन्तर है ॥१६५॥

अठासीवां समवाय

प्रत्येक चंद्र-सूर्यके अठासी अठासी ग्रहका परिवार है। दृष्टिवादके अठासी सूत्र हैं, नन्दीसूत्रके अनुसार। मेरुपर्वतके पूर्वी चरमांतसे गोस्तूप आवासपर्वतके पूर्वी चरमांतका अव्यवहित अंतर अठासी हजार योजनका है। शेष तीन दिशाओं का अन्तर भी इसी प्रकार है। उत्तरायणसे दक्षिणायनकी ओर लौटता हुआ सूर्य प्रथम छः मास पूर्ण करके चौवालीसवें मंडलमें गया हुआ एक मुहूर्तके इकसठवें अठासी भाग दिनको घटाकर एवं रात्रिको बढ़ाकर गति करता है। दक्षिणायन से उत्तरायणकी ओर लौटता हुआ सूर्य द्वितीय छः मास पूर्ण करके चौवालीसवें मंडलमें गया हुआ एक मुहूर्तके इकसठवें अठासी भाग रात्रिको घटाकर एवं दिन को बढ़ाकर गति करता है ॥१६६॥

नवासीवां समवाय

अरहंत कौसलिक ऋषभदेव इस अवसर्पिणीके तृतीय सुषम-दुषमा कालके अन्तिम भागमें नवासी पक्ष शेष रहने पर काल धर्मको प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। श्रमण भगवान महावीर इस अवसर्पिणीके चतुर्थ दुषम-सुषमा काल के अंतिम भागमें नवासी पक्ष शेष रहने पर काल धर्मको प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। हरिषेण चक्रवर्ती नवासी सौ वर्ष महाराजा रहे। अरहंत शांतिनाथकी आर्या उत्कृष्ट नवासी हजार थी ॥१६७॥

नब्बेवां समवाय

अरहंत शीतलनाथकी ऊंचाई नव्वे धनुषकी थी। अरहंत अजितनाथके नव्वे गण और नव्वे गणधर थे। इसी प्रकार अरहंत शांतिनाथके नव्वे गण और गणधर थे। स्वयंभू वासुदेवका दिग्विजयकाल नव्वे वर्षका था। सर्ववृत्तवैताढ्य पर्वतोंके शिखरके ऊपरसे सौगन्धिक काण्डके नीचेके चरमान्तका अव्यवहित अंतर नव्वे सौ योजनका है ॥१६८॥

एक्कानवेवां समवाय

दूसरेकी वैयावृत्य करनेकी प्रतिज्ञाएं एक्कानवें हैं। कालोदसमुद्रकी परिधि कुछ अधिक एक्कानवें लाख योजनकी है। अरहन्त कुंथुनाथके एक्कानवें सौ अवधिज्ञानी मुनि थे। आयु और गोत्रको छोड़कर शेष छः मूल कर्मप्रकृतियोंकी एक्कानवें उत्तर कर्मप्रकृतियां हैं ॥१६९॥

बानवेवां समवाय

पड़िमाएं बानवें हैं। स्थविर इन्द्रभूति बानवें वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। मेरुपर्वतके मध्यभागसे गोस्तूप आवासपर्वतके

पश्चिमी चरमान्तका अव्यवहित अन्तर बानवें हजार योजनका है । इसी प्रकार चार आवासपर्वतोंका अन्तर भी है ॥१७०॥

तिरानवेवां समवाय

अरहन्त चन्द्रप्रभके तिरानवें गण और तिरानवें गणधर थे । अरहन्त शांतिनाथके तिरानवें सौ चौदहपूर्वी मुनि थे । तिरानवेवें मंडलमें रहा हुआ सूर्य आभ्यन्तर मंडलकी ओर जाता हुआ तथा बाह्य मंडलकी ओर आता हुआ समान अहोरात्रको विषम करता है ॥१७१॥

चौरानवेवां समवाय

निषध और नीलवंत पर्वतकी जीवाका आयाम चौरानवें हजार एक सौ छप्पन योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें से दो भाग जितना है । अरहन्त अजितनाथके चौरानवें सौ अवधिज्ञानी मुनि थे ॥१७२॥

पंचानवेवां समवाय

अरहन्त सुपार्श्वनाथके पंचानवें गण और पंचानवें गणधर थे । जंबूद्वीपके चरमान्तसे चारों दिशाओंमें लवणसमुद्रमें पंचानवें-पंचानवें हजार योजन अन्दर जाने पर चार महापाताल कलश हैं, यथा—वड़वामुख, केतुक, यूप और ईश्वर । लवणसमुद्रके मध्यभागसे किनारेकी ओर पंचानवें-पंचानवें प्रदेश गहराई में कम हैं, लवणसमुद्रके किनारेसे मध्यभागकी ओर पंचानवें-पंचानवें प्रदेश ऊंचाईमें कम हैं । अरहन्त कुंथुनाथ पंचानवें हजार वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए । स्थविर मौर्यपुत्र पंचानवें वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए ॥१७३॥

छियानवेवां समवाय

प्रत्येक चक्रवर्तीके छियानवें-छियानवें करोड़ ग्राम हैं । वायुकुमारके छानवें लाख भवन हैं । व्यवहारके उपयोगी दंड छानवें अंगुलका होता है । इसी प्रकार धनुष, नालिका, युग, अक्ष और मुसलका प्रमाण है । आभ्यन्तर मंडलमें जब सूर्य होता है तब पहला मुहूर्त छानवें अंगुलकी छायाका होता है ॥१७४॥

सत्तानवेवां समवाय

मेरुपर्वतके पश्चिमी चरमान्तसे गोस्तूप आवासपर्वतके पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अंतर सत्तानवें हजार योजन है । इसी प्रकार शेष तीन दिशाओं का अन्तर भी है । आठ मूल कर्मप्रकृतियोंकी सत्तानवें उत्तर कर्मप्रकृतियां हैं । हरिषेण चक्रवर्ती कुछ कम सत्तानवें सौ वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हुए ॥१७५॥

अठानवेवाँ समवाय

नंदनवनके ऊपरके चरमान्तसे पाण्डुकवनके नीचेके चरमान्तका अव्यवहित अन्तर अठानवें हजार योजनका है। मंदरपर्वतके पश्चिमी चरमान्तसे गोस्तूप आवासपर्वतके नीचेके चरमान्तका अव्यवहित अन्तर अठानवें हजार योजनका है। इसी प्रकार शेष तीन दिशाओंका अन्तर भी है। दक्षिणार्ध भरतके धनुपृष्ठ का आयाम कुछ न्यून अठानवें हजार योजनका है। उत्तर दिशामें प्रथम छः मास पूर्ण करता हुआ सूर्य उनचासवें मंडलमें एक मुहूर्तके इकसठवें अठानवें भाग दिनकी हानि और रात्रिकी वृद्धि करता हुआ गति करता है। दक्षिण दिशामें द्वितीय छः मास पूर्ण करता हुआ सूर्य उनचासवें मंडलमें एक मुहूर्तके इकसठवें अठानवें भाग रात्रिकी हानि और दिनकी वृद्धि करता हुआ गति करता है। रेवती से ज्येष्ठा पर्यंत उन्नीस नक्षत्रोंके अठानवें तारे हैं ॥१७६॥

निनानवेवां समवाय

मंदरपर्वतकी ऊँचाई निनानवें हजार योजनकी है। नंदनवनके पूर्वी चरमान्तसे पश्चिमी चरमान्तका अव्यवहित अन्तर निन्यानवें सौ योजनका है। इसी प्रकार दक्षिणी चरमान्तसे उत्तरी चरमान्तका अव्यवहित अन्तर निन्यानवें सौ योजनका है। उत्तरदिशाके प्रथम सूर्यमंडलका आयाम-विष्कम्भ निन्यानवें हजार योजनका है। दूसरे सूर्यमंडलका आयाम-विष्कम्भ कुछ अधिक निनानवें हजार योजनका है। तृतीय सूर्यमंडलका आयाम-विष्कम्भ कुछ अधिक निन्यानवें हजार योजन का है। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके अंजनकाण्ड के नीचेके चरमान्तसे व्यन्तरों के भोमेयविहारोंके ऊपरी चरमान्तका अव्यवहित अंतर निनानवें सौ योजनका है ॥१७७॥

सौवां समवाय

दस-दसमिका भिक्षुप्रतिमाकी एक सौ अहोरात्रिमें पांच सौ दात आहार लेकर सूत्रानुसार आराधना की जाती है। शतभिषा नक्षत्रके एक सौ तारे हैं। अरहन्त सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) एक सौ धनुष ऊँचे थे। प्रसिद्ध पुरुष अरिहन्त पार्श्वनाथ एक सौ वर्षकी आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। इसी प्रकार स्थविर सुधर्मा भी मुक्त हुए। सर्व दीर्घ वैताढ्यपर्वत सौ-सौ कोस ऊँचे हैं। सर्व लघु हिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वत सौ-सौ योजन ऊँचे हैं तथा सौ-सौ कोस जमीनमें गहरे हैं। सर्व कांचनग पर्वत सौ-सौ योजन ऊँचे हैं, सौ-सौ कोस पृथ्वीमें गहरे हैं, और उनके मूलका विष्कम्भ सौ-सौ योजनका है ॥१७८॥

डेढ़सौवां समवाय—अरहन्त चन्द्रप्रभ डेढ़ सौ धनुष ऊंचे थे। आरणकल्पमें डेढ़ सौ विमान हैं। इसी प्रकार अच्युतकल्पमें भी हैं ॥१७९॥

दोसौवां समवाय—अरहन्त सुपार्श्वनाथ दो सौ धनुष ऊँचे थे। सर्व महा-हिमवंत और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो-दो सौ योजन ऊंचे हैं और दो-दो सौ कोस जमीनमें गहरे हैं। जम्बूद्वीपमें दो सौ कांचनग पर्वत हैं ॥१८०॥

ढाईसौवां समवाय—अरहन्त पद्मप्रभ ढाई सौ धनुष ऊंचे थे। असुर-कुमारोंके प्रासाद ढाई सौ योजन ऊंचे हैं ॥१८१॥

तीनसौवां समवाय—अरहन्त सुमतिनाथ तीन सौ धनुष ऊंचे थे। अरहन्त अरिष्टनेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमार रहकर मुंडित हुए यावत् प्रव्रजित हुए। वैमानिक देवोंके विमानोंके प्राकार तीन-तीन सौ योजन ऊंचे हैं। श्रमण भगवान महावीरके तीन सौ चौदहपूर्वी मुनि थे। सिद्धगति प्राप्त पांच सौ धनुषकी अव-गाहनावाले चरमशरीरी जीवोंके जीवप्रदेशों की अवगाहना कुछ अधिक तीन सौ धनुषकी है ॥१८२॥

साढ़ेतीनसौवां समवाय—प्रसिद्ध पुरुष अरहंत पार्श्वनाथ के साढ़े तीन सौ चौदहपूर्वी मुनि थे। अरहंत अभिनन्दन साढ़े तीन सौ धनुष ऊंचे थे ॥१८३॥

चारसौवां समवाय—

अरहत संभवनाथ चार सौ धनुष ऊंचे थे। सर्व निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वत चार सौ योजन ऊंचे तथा चार सौ कोस भूमिमें गहरे हैं। निषध और नील-वंत वर्षधर पर्वतके समीप सभी वक्षस्कार पर्वत चार सौ यौजन ऊंचे तथा चार सौ कोस भूमिमें गहरे हैं। आनत और प्रानत इन दो कल्पोंमें चार सौ विमान हैं। देव, मनुष्य और असुरलोकों से वाद में पराजित न होने वाले चार सौ वादी मुनि श्रमण भगवान महावीरके थे ॥१८४॥

साढ़ेचारसौवां समवाय—अरहंत अजितनाथ साढ़े चार सौ धनुष ऊंचे थे। सगर चक्रवर्ती साढ़े चार सौ धनुष ऊंचे थे ॥१८५॥

पांचसौवां समवाय—

शीता और शीतोदा महानदी तथा मेरु पर्वतके समीप सभी वक्षस्कार पर्वत पाँचसौ पांचसौ योजन ऊँचे और पांचसौ-पांचसौ कोस भूमिमें गहरे हैं। सभी वर्षधरकूट पर्वत पांचसौ पांचसौ योजन ऊंचे तथा उनके मूलका विष्कम्भ पांचसौ पांचसौ योजनका है। अरहन्त कौशलिक ऋषभदेव पांचसौ धनुष ऊंचे थे। भरत चक्रवर्ती पांचसौ धनुष ऊंचे थे। मेरु पर्वतके समीप सोमनस, गंधमादन, विद्युत्प्रभ और माल्यवंत पर्वतोंकी ऊंचाई पांचसौ पांचसौ योजनकी है तथा पांचसौ पांचसौ कोस भूमिमें गहरे हैं। हरि, हरिस्सहकूटको छोड़कर सभी वक्षस्कार पर्वतकूट पांचसौ-पांचसौ योजन ऊंचे हैं तथा उनके मूलका आयाम-विष्कम्भ पांचसौ-पांचसौ योजनका है। वलकूट पर्वतको छोड़कर सभी नंदनकूट पर्वत पांचसौ-पांचसौ योजन ऊंचे० तथा उनके मूलका आयाम-विष्कम्भ पांचसौ पांचसौ योजनका है।

सौधर्म और ईशानकल्पमें सभी विमान पांचसौ-पांचसौ योजन ऊंचे हैं ॥१८६॥

छःसौवां समवाय—

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्पमें सभी विमान छः सौ योजन ऊंचे हैं। लघु हिमवंतकूटके ऊपर के चरमान्तसे लघु हिमवंत वर्षधर पर्वतके समभूमितलका अव्यवहित अन्तर छः सौ योजनका है। इसी प्रकार शिखरीकूटसे उसके सम-भूमितलका अन्तर है। देव, मनुष्य और असुरलोकोंसे वाद में पराजित न होने वाले छः सौ वादी मुनियोंकी उत्कृष्ट संपदा अरहन्त पार्श्वनाथके थी। अभिचंद कुलकर छः सौ धनुष ऊंचे थे। अरहंत वासुपूज्य छः सौ पुरुषोंके साथ मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए ॥१८७॥

सातसौवां समवाय—

ब्रह्म और लांतककल्पमें सभी विमान सात सौ योजन ऊंचे हैं। श्रमण भगवान महावीरके सात सौ शिष्य केवली हुए थे। श्रमण भगवान महावीरके सात सौ वैक्रियलब्धिसंपन्न मुनि थे। अरहन्त अरिष्टनेमि कुछ कम सात सौ वर्ष केवली-पर्यायमें रहकर सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए। महा हिमवंतकूटके ऊपरके चरमान्तसे महाहिमवंत वर्षधर पर्वतके समभूभागका अव्यवहित अन्तर सात सौ योजनका है। इसी प्रकार रुक्मीकूटके ऊपरके चरमान्तसे रुक्मी वर्षधर पर्वतके समभूभागका अन्तर है ॥१८८॥

आठसौवां समवाय—महाशुक्र और सहस्रार इन दो कल्पोंमें सभी विमान आठ सौ योजन ऊंचे हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके प्रथम काण्डमें आठ सौ योजनमें व्यन्तर देवोंके भौमेय विहार हैं। श्रमण भगवान महावीरके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होने वाले कल्याणकारी गति स्थिति वाले एवं भविष्यमें निर्वाण प्राप्त करने वाले आठ सौ अनुत्तरोपपातिक मुनियोंकी संपदा थी। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके अतिसम रमणीय भूभागसे आठ सौ योजनकी ऊंचाई पर सूर्य गति करता है। देव, मनुष्य और असुरलोकोंसे वादमें पराजित न होने वाले आठ सौ वादी मुनियोंकी उत्कृष्ट संपदा अरहन्त अरिष्टनेमिकी थी ॥१८९॥

नौसौवां समवाय—आनत, प्रानत, आरण और अच्युत इन चार कल्पोंमें सभी विमान नौ-सौ-नौ सौ योजनके ऊंचे हैं। निषधकूटके शिखरके ऊपरसे निषध वर्षधर पर्वतके सम भूभागका अव्यवहित अन्तर नौ सौ योजनका है। इसी प्रकार नीलवंतकूटके शिखरसे नीलवंत वर्षधर पर्वतके सम भूभागका अन्तर है। विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके अतिसम रमणीय भूभागसे नौ सौ योजनकी ऊंचाई पर सर्वोच्च तारा गति करता है। निषध पर्वतके शिखरसे इस रत्नप्रभा पृथ्वीके प्रथम काण्डके मध्यभागका अव्यव-हित अंतर नौ सौ योजनका है। इसी प्रकार नीलवंत वर्षधर पर्वतके शिखरसे इस रत्नप्रभा पृथ्वीके प्रथम काण्डके मध्यभागका अन्तर है ॥१९०॥

एकहजारवां समवाय—सभी ग्रैवेयक विमान एक एक हजार योजन ऊंचे हैं। सभी यमकपर्वत एक-एक हजार योजन ऊंचे, एक-एक हजार कोस भूमिमें गहरे हैं और उनके मूलका आयाम-विष्कम्भ एक-एक हजार योजनका है। इसी प्रकार चित्र, विचित्रकूट पर्वतोंका परिमाण है। वृत्तवैताढ्य पर्वत एक-एक हजार योजन ऊंचे, एक-एक हजार कोस भूमिमें गहरे और उनके मूलका विष्कम्भ एक-एक हजार योजनका है तथा वे पालाके आकारसे स्थित हैं। वक्षस्कारकूटोंको छोड़कर सभी हरि, हरिस्सह कूटपर्वत एक-एक हजार योजन ऊँचे हैं और उनके मूलका विष्कम्भ एक-एक हजार योजनका है। इसी प्रकार नंदनकूटको छोड़कर सभी बलकूट पर्वतोंका परिमाण है। अरहन्त अरिष्टनेमी एक हजार वर्षका आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए थे। अरहन्त पार्श्वनाथके एक हजार शिष्य केवलज्ञानी हुए थे। अरहन्त पार्श्वनाथके एक हजार अंतेवासी कालधर्मको प्राप्त होकर सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए थे। पद्मद्रह और पुंडरीकद्रहका आयाम एक एक हजार योजनका है ॥१९१॥

ग्यारहसौवां समवाय—अनुत्तरोपपातिक देवोंके विमान ग्यारह सौ योजन ऊंचे हैं। अरहन्त-पार्श्वनाथके ग्यारह सौ शिष्य वैक्रेयलब्धि वाले थे ॥१९२॥

दोहजारवां समवाय—महापद्म और महापुंडरीकद्रहका आयाम दो दो हजार योजनका है ॥१९३॥

तीनहजारवां समवाय—इस रत्नप्रभा पृथ्वीके वज्रकाण्डके ऊपरके चरमान्तसे लोहिताक्षकाण्डके नीचे चरमान्तका अव्यवहित अंतर तीन हजार योजन का है॥१९४॥

चारहजारवां समवाय—तिगिच्छद्रह और केसरीद्रहका आयाम चार चार हजार योजनका है॥१९५॥

पांचहजारवां समवाय—भूतलमें मेरुपर्वतके मध्यभागमें रुचकनाभिसे चारों दिशाओंमें मेरुपर्वतका अव्यवहित अंतर पांच-पांच हजार योजनका है ॥१९६॥

छः हजारवां समवाय—सहस्रार कल्पमें छः हजार विमान हैं ॥१९७॥

सातहजारवां समवाय—इस रत्नप्रभा पृथ्वीके रत्नकाण्डके ऊपरके चरमान्तसे पुलककाण्डके नीचेके चरमान्तका अव्यवहित अन्तर सात हजार योजनका है ॥१९८॥

आठहजारवां समवाय—हरिवर्ष और रम्यक्वर्षका विस्तार कुछ अधिक आठ हजार योजनका है ॥१९९॥

नौहजारवां समवाय—पूर्व और पश्चिममें समुद्रका स्पर्श करती हुई दक्षिणार्ध भरतक्षेत्रकी जीवा का आयाम नौ हजार योजनका है। अरहन्त अजितनाथके कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी थे।

दसहजारवां समवाय—पृथ्वीतल में मेरुपर्वतका विष्कम्भ दस हजार योजनका है।

एकलाखवां समवाय—जम्बूद्वीपका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजनका है।

दोलाखवां समवाय—लवणसमुद्रका चक्रवाल विष्कम्भ दो लाख योजनका है ॥२००॥

तीनलाखवां समवाय—अरहन्त पार्श्वनाथकी तीन लाख, सत्ताइस हजार उत्कृष्ट श्राविका संपदा थी ॥२०१॥

चारलाखवां समवाय—धातकीखंडका चक्रवाल विष्कम्भ चार लाख योजनका है ॥२०२॥

पांचलाखवां समवाय—लवणसमुद्रके पूर्वी चरमान्तसे पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पांच लाख योजनका है ॥२०३॥

छःलाखवां समवाय—भरत चक्रवर्ती छः लाख पूर्व राज्यपद पर रहकर मुंडित हुए यावत् प्रव्रजित हुए ॥२०४॥

सातलाखवां समवाय—जम्बूद्वीपकी पूर्व वेदिकाके चरमान्तसे धातकीखंडके पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर सात लाख योजनका है ॥२०५॥

आठलाखवां समवाय—माहेन्द्रकल्पमें आठ लाख विमान हैं ॥२०६॥

नौलाखवां समवाय—अनुक्त या विच्छिन्न प्रतीत होता है ॥२०७॥

दसलाखवां समवाय—पुरुषसिंह वासुदेव दस लाख वर्षका आयु पूर्ण करके पांचवीं पृथ्वीमें नैरयिकरूपमें उत्पन्न हुए ॥२०८॥

एककरोड़वां समवाय—श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकरभवसे पूर्व छट्ठे पोट्टिलके भवमें एक करोड़ वर्षका श्रामण्य-जीवन पालकर सहस्रार कल्पमें सर्वार्थविमानमें देवरूपमें उत्पन्न हुए ॥२०९॥

एककोटा-कोटिवां समवाय—भगवान ऋषभदेव और अन्तिम भगवान महावीर वर्धमानका अव्यवहित अन्तर एक कोटा-कोटि सागरोपमका है ॥२१०॥

द्वादशांग गणिपिटक कहा गया है। वह इस प्रकार है—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अंतकृद्दशांग, अनुत्तरोपपातिकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद। वह आचारांग कैसा है? आचारांगमें निश्चय करके आचार-ज्ञानाचारादि पांच आचार, गोचर—भिक्षाग्रहणविधि, विनय-गुरु शुश्रूषारूप, वैनयिक—विनयसे होने वाले कर्मक्षयादि फल, स्थान-कायोत्सर्ग, बैठना और सोना, गमन-विचारभूमि आदिमें जाना, चंक्रमण-रोगादि कारणसे यतनापूर्वक फिरना, प्रमाण-भक्त, पान, उपधि आदिकी मर्यादा, योगयोजन—स्वाध्याय-प्रतिलेखना आदि क्रियामें मन, वचन, कायाके योगोंको लगाना, भाषा—समिति-गुप्ति, वसति-उपधि—वस्त्रादि, भक्त-अशनादि, पान-तन्दुलादिका धोवन अथवा गरम पानी,

इनके सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादन दोष, दश एषणाके दोष इन बयालीस दोषोंकी विशुद्धिसे शुद्ध आहारका ग्रहण करना, अशुद्धका विवेक, महाव्रत, अभिग्रहविशेष अनशनादि बारह प्रकार का तप-उपधान, उक्त सब बातोंका प्रशस्तरूपसे कथन किया है। वह आचार संक्षेपसे पांच प्रकारका है, वह इस प्रकार है—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। आचारांगमें संख्यात वाचना हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, संख्यात वेष्टक—छन्द हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं। वह आचारांग अंगकी अपेक्षा प्रथम अंग है, इसके दो श्रुतस्कंध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं, पचासी उद्देशनकाल हैं, पचासी समुद्देशनकाल हैं, अठारह हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्यायें हैं, असंख्यात त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं, उपरोक्त ये सभी जिनोक्त जीवादि पदार्थ, जो कि द्रव्यार्थिक नयसे शाश्वत,पर्यायार्थिक नय से अनित्य हैं, सूत्रमें ग्रथित हैं,निर्युक्ति, हेतु और उदाहरण से युक्त हैं, ये सब इसमें सामान्य और विशेष रूपसे, वचनपर्याय अथवा नामादि भेद से, स्वरूप प्रदर्शन पूर्वक, उपमेय भाव आदि से कहे हैं। परानुकम्पा तथा भव्य जीवोंके कल्याणके लिए निश्चयपूर्वक वार वार कहे हैं। उपनय और निगमनसे अथवा सकल नयोंसे शिष्योंको समझाए गए हैं। जो इस आचारांगका सम्यक् भाव सहित अध्ययन करता है, वह इसमें कथित क्रिया का सम्यक् अनुष्ठान करनेसे आत्मस्वरूप हो जाता है। इसको पढ़कर सब पदार्थका ज्ञाता हो जाता है। इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला विविध विषयका ज्ञाता हो जाता है, अर्थात् स्वसमय परसमय में निपुण होता है। इस प्रकार इस सूत्रमें व्रत, श्रमणधर्म, संयम आदि की, पिण्डविशुद्धि, समिति आदि की प्ररूपणा, सामान्य विशेष रूपसे की है। वचन पर्याय···से, परानुकम्पा···वार २ की है। उपनय···शिष्यों को परिचित कराया गया है। यह आचारांग ···है ॥२११॥

हे भदन्त ! सूत्रकृतांग का क्या स्वरूप है ? सूत्रकृतांग में स्वसिद्धान्त सूचित किया है, अर्थात् उनकी प्ररूपणा की है, परसिद्धान्तकी प्ररूपणा की है, स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त······, जीवों की···, अजीवों की···, जीव—अजीव की ··, लोक की···, अलोक की···, लोक और अलोक की प्ररूपणा की है। सूत्रकृतांग में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नौ तत्वों का प्ररूपण किया है। तथा कुत्सित सिद्धान्तवालोंके पदार्थोंके अयथार्थ बोधके श्रवणसे उत्पन्न-मोहसे मोहित मति वाले, कुसमयके संसर्गसे अथवा स्वाभाविक रूपसे वस्तुतत्वके प्रति संशयवाले, नवदीक्षित श्रमणके पापकर मलिनमति गुणको निर्मल करनेके लिए तथा एक सौ अस्सी क्रियावादी, चौरासी अक्रियावादी, सड़सठ(६७) अज्ञानवादी, और बत्तीस वैनयिकवादी, इन तीन सौ

त्रेसठ (३६३) पाखंडियोंके मतोंका सूत्रकृतांगमें खंडन करके स्वसिद्धान्त स्थापित किया है। तथा परमत निराकरणके लिए और स्वमतकी स्थापनाके लिए दिए गए अनेक प्रकारके दृष्टान्तवचनों और हेतुवचनोंसे परमतकी निस्सारता और स्वमत की अखण्डनीयताको सम्यक्प्रकारसे प्रकट करने वाले, विज्ञेय जीवादि पदार्थोंका सुगमतासे बोध हो—इस हेतुसे अनेक प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन तथा 'इस पदका यही अर्थ है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक जो व्याख्यान इन दोनों गुणोंसे विशिष्ट, मोक्षपथ—सम्यग्दर्शनादिमें प्राणियोंके प्रवर्तक, दोपरहित और गुणसहित, अतिशय अज्ञान रूप अंधकारके वश प्राणियोंको दुर्गम तत्त्वमार्गमें प्रवेश करते हुए प्रकाशक होनेके कारण यह प्रदीप सदृश, मोक्षपदप्राप्ति अथवा सुदेवत्व और सुमानुषत्व प्राप्ति रूप श्रेष्ठ प्रासाद के सोपान सदृश, तथा वादियों द्वारा सर्वथा अखंडनीय सूत्र और अर्थ इस अंग में कहे गए हैं। सूत्रकृतांगमें परिमित वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोग द्वार········निर्युक्तियां हैं। यह अंग की अपेक्षा दूसरा अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं, तेईस अध्ययन हैं, ३३ उद्देशनकाल हैं, तेंतीस समुद्देशनकाल हैं, पदपरिमाण की अपेक्षा ३६ हजार पद हैं। संख्यात अक्षर······हैं। जो इस सूत्रकृतांग का अच्छी तरह·············है ॥२१२॥

स्थानांग का क्या स्वरूप है ? स्थानांग में स्वसमयकी स्थापनाकी है, परसमयोंकी स्थापना···, स्वसमय और परसमय की···, जीव की···, अजीव की ···, जीव-अजीव दोनों की···, लोक की···, अलोक की ··, लोक-अलोक दोनों की ····, स्थानाङ्ग में जीवादिक पदार्थोंके द्रव्य गुण, क्षेत्र, काल और पर्याय स्थापित किए हैं। स्थानांगमें हिमवान् आदि पर्वत, गंगा आदि महानदियाँ, लवण आदि समुद्र, सूर्य, असुर आदिके भवन, चन्द्रादिकोंके विमान, सुवर्ण आदिकी खानें, सामान्य नदियां, चक्रवर्ती आदिकोंकी नैसर्प आदि निधियां, पुरुषोंके भेद, षडज आदि सात स्वर, तारागणों का संचरण, इन सब पदार्थोंकी प्ररूपणा स्थानाङ्ग में है। एक प्रकार की वक्तव्यता, दो स्थान से लगाकर यावत् दश स्थान तककी वक्तव्यता की है। जीव पुद्गलों की और लोकस्थायी धर्मास्तिकायादिक द्रव्यों की प्ररूपणा की है। स्थानाङ्गमें संख्यात वाचनाएँ···संख्यात निर्युक्तियां हैं, संख्यात संग्रहणियाँ हैं। अंग की अपेक्षा यह तीसरा अंग है, इसका एक श्रुतस्कंध है, दश अध्ययन हैं, इक्कीस उद्देशनकाल हैं, इक्कीस समुद्देशनकाल हैं, इसमें बहत्तर हजार पद हैं। संख्यात अक्षर ··हैं। जो इस स्थानांग को अच्छी तरह········· है। यह स्थानांग······॥२१३॥

हे भदन्त ! समवायांगका क्या स्वरूप है ? समवायांगमें स्वसमय सूचित किए हैं, परसमय······, स्वसमय परसमय······यावत् लोक और अलोकके भाव सूचित किए हैं। समवायांगमें एकसे लगाकर सौ तक यावत् करोड़ा-करोड़ तक

कितनेक पदार्थोंकी एक संख्याके क्रमसे वृद्धि कही है और द्वादशांगरूप गणिपिटक का पर्याय-परिमाण कहा है, एकादि शत पर्यन्त स्थानोंमें तत्तत्संख्यक पदार्थ वर्णित हैं, आचारांग आदि बारह भेदोंसे विस्तृत, देवादिसे माननीय तथा षड्जीव-निकायरूप लोकके हित करने वाले श्रुतज्ञानका संक्षेपसे प्रत्येक स्थान और प्रत्येक अंगमें अनेक प्रकारका व्यवहार कथन किया है। समवायांग सूत्रमें नाना प्रकारके जोव और अजीवका विस्तारपूर्वक वर्णन है, और भी अनेक प्रकारके जीवा-जीवादिक भाव इस समवायांगमें वर्णित हैं। नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देवोंका आहार, उच्छ्वास निश्वास, लेश्या, नरकावासादिकी संख्या, आयतप्रमाण, विष्क-म्भविस्तार तथा परिधिप्रमाण, उपपात, च्यवन तथा अवगाहना, अवधि, वेदना, विधान, नरकादिकके भेद, उपयोग, योग, इन्द्रिय, कषाय इन सबका समवायांग सूत्रमें वर्णन है। अनेक प्रकारकी जीवयोनियोंका ज्ञान कराया गया है। मंदरादिक पर्वतोंके विस्तार, ऊँचाई, परिधिका प्रकोण तथा विशेष प्रकारकी विधियाँ कही हैं। कुलकर, तीर्थंकर, गणधरों, समस्त भरतके स्वामी चक्रवर्तियों, वासुदेव और बलदेवोंका वर्णन······है। भरतादि क्षेत्रोंके पूर्व २ की अपेक्षा उत्तर २ की अधिकताका समवायांग सूत्रमें वर्णन किया गया है। ये पूर्वोक्त पदार्थ और इस तरहके अन्य भी पदार्थ इस समवायांगमें विस्तारसे कहे हैं। समवायाङ्ग सूत्रमें वाचनाएँ संख्यात हैं यावत् अंगकी अपेक्षा यह चौथा अंग है, यह एक अध्ययना-त्मक है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, एक उद्देशनकाल है, एक समुद्देशनकाल है, पद परिमाणकी अपेक्षा इस अंगमें एक लाख ४४ हजार पद हैं। इसमें संख्यात अक्षर हैं··· । यह समवायका स्वरूप है ॥२१४॥

हे भगवन् ! व्याख्याप्रज्ञप्ति अर्थात् भगवती सूत्रका क्या स्वरूप है ? हे गौतम ! व्याख्याप्रज्ञप्तिमें स्वसमयका स्वरूप है, परसमय······, स्वसमय पर-समय दोनोंका······, जीव······, अजीव······, जीवाजीव दोनोंका······, लोक··· ···, अलोक···, लोकालोकका··· । विविध संशयोंसे युक्त अनेक प्रकारके देवों, नरेन्द्रों और राज-ऋषियोंसे अपने संशयको दूर करने के लिए पूछे गए प्रश्न तथा जिन भगवान् द्वारा विस्तारपूर्वक प्रतिपादित उत्तर, जो कि द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश, परिणाम, यथास्तिक भाव, अनुगमसंहिता आदि व्याख्यानके प्रकार अथवा उद्देश, निर्देश, निर्गमन आदि द्वार, निक्षेप, नय, प्रमाण, आनुपूर्वी आदि द्वारा विविध प्रकारसे स्पष्टतया प्रकाशित हैं, वे विषय लोक और अलोकके प्रकाशक हैं, तथा विशाल संसार समुद्रके तिराने में (पार कराने में) समर्थ हैं, इन्द्रादिक द्वारा प्रसंशित हैं, भव्य जीवोंके हृदय द्वारा अभिनन्दित हैं, अज्ञान-पाप इन दोनोंका विनाश करने वाले हैं, अच्छी तरह निर्णीत एवं दीप-

तुल्य अर्थात् सभी तत्वोंके प्रकाशक तथा ईहा वितर्क मति-निश्चय और औत्पात्तिकी आदि चार प्रकारकी बुद्धिको बढ़ाने वाले हैं, इस प्रकार छत्तीस हजार व्याकरण-बोधक सूत्रार्थ जो कि अनेक भेद वाला है, शिष्योंका हितकारी और गुणदायक है, उसका इस अंगमें व्याख्यान है। भगवती सूत्रमें संख्यात वाचनाएँ हैं······संख्यात निर्युक्तियां हैं। अंगोंकी अपेक्षा यह पांचवां अंग अत्यन्त विशाल है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है। कुछ अधिक एक सौ अध्ययन हैं। इस अंगमें दश हजार उद्देशक हैं, दश हजार समुद्देशक हैं, छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं, पदपरिमाणकी अपेक्षा इसमें दो लाख अट्ठासी हजार पद हैं। इसमें संख्यात अक्षर······· हैं। यह व्याख्याप्रज्ञप्तिका स्वरूप है।

हे भदन्त! ज्ञाताधर्मकथाका क्या स्वरूप है? ज्ञाताधर्मकथांग-ज्ञात-उदाहरण प्रधान जो धर्मकथाएँ हैं इनमें मेघकुमार आदिके नगरों, उद्यानों, वनखण्डों, राजाओं, मातापिता, समवसरणों, धर्माचार्यो, धर्मकथाओं, ऐहलौकिक एवं पारलौकिक ऋद्धियों, भोगपरित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतपरिग्रह, उत्कृष्ट तपस्याओं, पर्यायों, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यानों, पादपोपगमनों, देवलोकगमनों, उत्तम कुलोंमें जन्म लेने, पुनर्बोधि-प्राप्ति, अंतक्रियाओं आदिका वर्णन है, यावत् ज्ञाताधर्मकथामें विनयमूलक-वर्धमानप्रभुके श्रेष्ठशासनमें प्रव्रजितोंका सत्रह प्रकारके सावद्यविरतिरूप संयमके पालन में हेतुभूत चित्तसमाधिरूप धैर्यसे, सद्असद् विवेक रूप बुद्धिसे और गृहीतव्रतोंके परिपालन करने में उत्साहरूप व्यवसायसे दुर्बल कातर बने हुओंकी प्ररूपणा इस अंगमें है। तप नियम उपधान रूपी रण-संग्राम तथा कठिनाईसे वहन करने योग्य भार इन दोनोंसे हारे हुए अतएव शक्तिरहित होनेसे संयमकी आराधना करनेमें सामर्थ्यसे वर्जितोंका इसमें वर्णन है। तथा क्षुत्पिपासा आदि असह्य परीषहसे पराजित तथा सामर्थ्यहीन अतएव तप संयमकी आराधनामें रुके हुए, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्गसे निकले हुएका वर्णन है। विषयसुखकी तुच्छ आशावश उत्पन्न दोषोंसे मूर्च्छित, चारित्र, ज्ञान और दर्शनकी विराधना करनेसे विविध प्रकारके साधुके मूल गुण और उत्तरगुणोंकी विराधनासे साररहित होनेसे शून्य बने हुओंका वर्णन है। संसारमें अनंत क्लेशसे युक्त जो नारक, तिर्यंच, कुमनुष्य, कुदेवमें जन्मरूप दुर्गति भव हैं उनकी अनेक परम्पराका विस्तार इस अंगमें कहा है। परीषह कषाय रूप सैन्यको जीतने वाले तथा धैर्य रूप धन वाले, संयमको उत्साहपूर्वक निरन्तर पालनेके निश्चय वाले धीरोंका वर्णन है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप योगोंको आराधित करने वाले तथा मायादि शल्यरहित, अतिचार रहित मोक्षमार्गके संमुख अर्थात् उस पर चलने वालोंका कथन है। अनुपम देवजन्मके जो विमान सम्बन्धी वैमानिक सुख उनका·····, तथा देवलोकसंबंधी अति प्रशस्त अनेक मनवांछित भोगोंको

बहुत काल तक भोग कर वहांसे देवलोकका आयु संपूर्ण कर वहांसे चवे हुए फिर मोक्षमार्गको प्राप्त करने वाले उनका जैसे इनकी अन्त:क्रिया मुक्ति होती है उनका......, तथा मोक्षमार्गसे चलित देवों तथा मनुष्योंको स्वमार्गगमनमें दृढ़ता संपादन करनेके हेतुभूत बोधन-संयमकी आराधना कैसे करनी चाहिए और किस प्रकार संयमके मार्गसे पतन होता है, इसकी प्ररूपणा है। संयमकी आराधनामें गुण है और उसकी विराधनामें दोष है। इस प्रकारके दर्शक वाक्योंका इसमें कथन है। लोकमुनि-शुकपरिव्राजक आदि संन्यासी उदाहरणों तथा बोधजनक वाक्योंको सुन कर जरा मरणका नाश करने वाले, जिनशासनमें स्थित हुए अर्थात् आए, उनका इस अंगमें सविस्तर वर्णन है। संयमकी आराधना करने वाले, देवलोक जाकर लौटे हुए जैसे शाश्वत कल्याणकारी समस्त दु:खोंसे रहित मोक्षको प्राप्त करते हैं उनका...। ये सब पूर्वोक्त विषय तथा इसी प्रकारके अन्य विषय भी विस्तारसे इस अंगमें वर्णित हैं। ज्ञाताधर्मकथामें संख्यात वाचनाएँ......यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं। यह अंगकी अपेक्षा छठा अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्धमें उन्नीस अध्ययन हैं। वे अध्ययन संक्षेपसे दो प्रकारके हैं, जैसे कि—चरित्र (मेघकुमारादिके), कल्पित (तुम्ब आदिके)। धर्मकथाके दश वर्ग हैं। एक २ धर्मकथामें पांच २ सौ आख्यायिकाएं हैं। एक२ आख्यायिकामें पांच२ सौ उपाख्यायिकाएँ हैं। एक२ उपाख्यायिकामें पांच२ सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकाएँ हैं। इस प्रकारसे पूर्वापरकी संयोजना करने पर साढ़े तीन करोड़ कथाओंकी संख्या होती है, ऐसा भगवानने कहा है। प्रथम श्रुतस्कन्धमें उन्नीस उद्देशन काल हैं, उन्नीस समुद्देशनकाल हैं। पद परिमाणकी अपेक्षा पांच लाख छिहत्तर हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं...। यह ज्ञाताधर्मकथाका स्वरूप है ॥२१५॥

हे भदन्त ! उपासकदशांगका क्या स्वरूप है ? इसमें उपासकों—श्रावकोंकी उपासकत्व बोधक अवस्थाओंका वर्णन है। श्रावकोंके नगरोंका......पारलौकिक ऋद्धि विशेषोंका वर्णन है। उपासकोंके शील-सामायिक, देशावकाशिक, अतिथिसंविभागव्रत, विरमण—मिथ्यात्वादिसे निवृत्ति, तीन गुणव्रत, प्रत्याख्यान—त्याज्यका त्याग, पोषधोपवास इन सब बातोंका इसमें कथन है। श्रुत-परिग्रह का, उत्कृष्ट तपस्याओं, ग्यारह प्रतिमाओं अथवा कायोत्सर्ग, देवादिकृत उपद्रवों, संलेखना...... अन्तक्रियाओंका वर्णन है। इस उपासकदशामें श्रावकोंकी ऋद्धि विशेष, परीषद्—माता पिता आदि आभ्यन्तर सभा तथा दास दासी, मित्र आदि बाह्य परिषद्का, भगवान महावीरके पास विस्तारपूर्वक श्रुत चारित्र रूप धर्मका श्रवण करना, बोधिलाभ पाना, सद् असद् विवेक रूप अभिगम, सम्यक्त्वकी विशुद्धता, स्थिरता, श्रावकके मूल और उत्तरगुणोंके अतिचार, श्रावकपर्याय-

रूप स्थितिविशेष और भी अनेक प्रकारकी सम्यग्दर्शन आदि प्रतिमाएँ तथा प्रत्याख्यान विशेषरूप अभिग्रहका लेना और उसका पालन करना, देवादिकृत उपद्रवं का सहना, उपसर्गका अभाव ये सब विषय वर्णित हैं। तथा अनशनादि विचित्र तप, शील तथा व्रत, गुणव्रत, मिथ्यात्वादिसे विरक्ति, प्रत्याख्यान एवं पोषधोपवास ये सब कहे हैं। तपसे और रागादिकोंके जीतनेसे शरीर और कर्मके कृश करने रूप सर्वोत्कृष्ट—ऐसी मरणके लिए धारण की गई संलेखनाके सेवनसे अपने आपको भावित करके जो श्रावक अनेक भक्तोंका अनशन द्वारा छेदन करते हैं। उत्तम कल्पोंके श्रेष्ठ विमानोंमें उत्पन्न होकर उन सुर विमान रूपी उत्तम पुण्डरीकोंमें जैसे २ अनुपम सुखोंको भोगते हैं। क्रमशः उन उत्तम सुखोंके भोगने के अनन्तर वहां से आयु के समाप्त होते ही चवकर जिस तरह जिनशासनमें स्थित होते हैं। जिस तरहसे संयमसे प्रशस्त बोधिको प्राप्तकर तम-अज्ञान एवं रज-पापोत्पादक कर्म—इन दोनोंके समूहसे रहित बनते हुए सर्व दुःखोंसे रहित क्षयरहित मुक्ति स्थानको प्राप्त करते हैं, इन सब बातोंकी प्ररूपणा इस अंगमें है। इस तरह इस सूत्र में ये पूर्वोक्त विषय और इसी प्रकारके और भी दूसरे विषय विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किए गए हैं। इस उपासकदशा सूत्रमें संख्यात वाचनाएँ हैं......। यावत् संख्यात् संग्रहणियां हैं। यह अंग की अपेक्षा सातवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है, दश अध्ययन हैं, दश उद्देशनकाल हैं, दश समुद्देशनकाल हैं, पद परिमाणकी अपेक्षा संख्यात पद हैं। संख्यात अक्षर हैं......। यह उपासकदशाका स्वरूप है ॥२१६॥

हे भदन्त ! अन्तकृतदशा सूत्रका क्या स्वरूप है ? अन्तकृतदशामें अन्तकृत मुनियोंके नगरोंका......उत्कृष्ट तपस्याओंका, बारह प्रकारकी भिक्षु-प्रतिमाओंका, क्षमा, सरलता, मृदुता, सत्य सहित पवित्रता, सत्रह प्रकारका संयम, उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप, त्याग, पांच समिति तीन गुप्ति, अप्रमाद योगोंका उत्तम स्वाध्याय और ध्यान इन दोनोंके लक्षण ये सब विषय कहे हैं। सर्व विरति आदिरूप उत्तम संयमको प्राप्त करने वाले एवं परीषहोंको जीतने वाले मुनियोंके घातिक कर्मक्षय होने पर जिस प्रकार केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है, जितने वर्ष तक दीक्षापर्याय पाली, जिस प्रकारसे उन्होंने उसका पालन किया, जो मुनि जहां पादपोपगमन संथाराको धारण करके जितने भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके अज्ञान और मलिन कर्मसमूहसे रहित होकर कर्म का अन्त करते हुए सर्वोत्कृष्ट मोक्ष सुखको प्राप्त हुए। उन सब मुनियोंका और महासतियोंका इसमें वर्णन है। इस प्रकार इस सूत्रमें ये सब पूर्वोक्त विषय और इन्हीं विषयों जैसे और भी दूसरे विषय विस्तारके साथ वर्णित हैं। अन्तकृतदशामें संख्यात वाचनाएँ हैं यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं। यह अंगकी अपेक्षा आठवां अंग

है। इसमें एक श्रुतस्कंध है, प्रथमवर्ग की अपेक्षा दश अध्ययन हैं। आठ वर्ग हैं। दश उद्देशनकाल हैं, दश समुद्देशनकाल हैं (प्रथमवर्गकी अपेक्षा)। पदपरिमाणकी अपेक्षा संख्यात (तेईस) लाख (४० हजार) पद हैं। संख्यात अक्षर हैं····। यह अन्तकृतदशांगका स्वरूप है ॥२१७॥

हे भदन्त! अनुत्तरोपपातिक दशा का क्या स्वरूप है? अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्रमें अनुत्तरोपपातिक मुनियोंके नगरोंका····पर्यायोंका, भिक्षुप्रतिमाओंका, संलेखना·····पादपोपगमनों का, अनुत्तर विमानोंमें जन्मनेका, उत्तम कुलोंमें जन्म·········अन्तक्रियाओंका वर्णन है। इस अनुत्तरोपपातिकदशांग सूत्रमें तीर्थकरोंके सर्वोत्कृष्ट मगलभूत तथा जगतके हितकारक रूप तीर्थंकरोंके समवसरणोंका, उनके चौंतीस जिनातिशेषोंका, भगवान का शरीर निर्मल और सुगन्धित है ऐसे ३४ अतिशयोंका, जिन शिष्योंके श्रमण गणके मध्य श्रेष्ठ गन्धहस्तिके समान, अविचल कीर्ति वाले एवं स्थिर संयम वाले, परीषह सैन्यरूपी रिपुवलके ऊपर विजय प्राप्त करने वाले, अर्थात् सर्व प्रकारसे परीषहोंको जीतने वाले, तथा तपसे प्रकाशित हुए ऐसे चारित्रशील, ज्ञान एवं सम्यक्त्वमें श्रेष्ठ अनेक प्रकारके विस्तृत और प्रशंसनीय उत्तम क्षमादि सद्‌गुणों वाले तथा अनगार-महर्षि, अनगारके गुणोंसे संपन्न, तथा श्रेष्ठ तपस्यासे विशिष्ट ज्ञान एवं विशिष्ट–मन वचनकाय के व्यापारसे युक्त ऐसे जिनशिष्य गणधरों का भी वर्णन इसमें है। जिस प्रकारसे जगतका हितकारक जिन भगवानका शासन है यह विषय भी उसी प्रकारसे उसमें व्याख्यात है। तथा अनुत्तरोपातिक देवोंकी जैसी ऋद्धि विशेष है वह भी इसमें वर्णित है तथा देव, असुर और मनुष्यसम्वन्धी परिषदा जिस प्रकारसे भगवानके पास गई है यह बात भी इसमें उसी प्रकारसे स्पष्ट की गई है। जिस प्रकारसे भगवानकी सेवा भक्ति करते हैं। तीनों लोकोंके गुरु जिन-भगवान् अमर–वैमानिकदेव, नर–चक्रवर्ति आदि, असुर-भवनपति आदि, उपलक्षणसे व्यन्तर एवं ज्योतिषी देव–इन सवको जैसे धर्मका उपदेश करते हैं। जिन भगवान्‌के वचन सुन कर क्षीणप्रायः कर्मवाले (जिनकी भवस्थिति पक गई है) ऐसे भव्यलोग विषयोंसे विरक्त होकर जिस प्रकार उदार धर्मको अनेक प्रकारके तप और संयम पाते हैं उन सवका इसमें कथन है। वहुत वर्ष तक श्रुतचारित्र धर्मको सेवन करके ज्ञान-दर्शन–चारित्रको मन-वचन-कायासे आराधन करने वाले, जिनागमके अनुसार उपदेश देने वाले, जिनवरोंका मनसे ध्यान करके जहां पर जितने २ भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके समाधिको पाते हैं। उत्कृष्ट ध्यान-योगमें तत्पर होते हुए कालधर्म प्राप्त कर परमश्रेष्ठ मुनिजन जैसे अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए हैं। उन अनुत्तर विमानोंमें वे जैसे सर्वोत्कृष्ट देवलोक सम्वन्धी सुखोंको पाते हैं। यह सव विषय इस अंग में कहा है। उन अनुत्तर

विमानोंसे चवकर क्रमसे संयत होकर जिस प्रकार अन्तक्रिया करेंगे, अर्थात् मोक्ष में जावेंगे, उस प्रकार के विषयका प्रतिपादन इस अंगमें किया है। ये समस्त पूर्वोक्त विषय और इन्हीं विषयों जैसे और भी दूसरे विषय इस अंगमें विस्तारपूर्वक कहे हैं। इस अनुत्तरोपपातिक दशामें संख्यात वाचनाएँ········ यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं। अंगोंकी अपेक्षा यह नौवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है, दश अध्ययन हैं, तीन वर्ग हैं, दश उद्देशनकाल हैं, दश ही समुद्देशन-काल हैं। पद परिमाणकी अपेक्षा इसमें संख्यात–अर्थात् छियालीस-लाख अस्सी हजार पद हैं······। संख्यात अक्षर हैं···। यह अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्रका स्वरूप है ।।२१८।।

हे भगवन्! प्रश्नव्याकरण सूत्रका क्या स्वरूप है? प्रश्नव्याकरण सूत्रमें एक सौ आठ प्रश्न, एक सौ आठ अप्रश्न, १०८ ही प्रश्नाप्रश्न हैं। तथा स्तम्भन, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन आदि रूप जो विद्यातिशय हैं उनका, नागकुमार, सुपर्णकुमार तथा यक्ष आदिकों के साथ जो वास्तविक वातचीत होती है व हुई है वह सब विषय इसमे है। प्रश्नव्याकरण सूत्रमें स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त के प्रज्ञापक जो प्रत्येकवुद्ध हैं, उन प्रत्येकबुद्धोंने विविध अर्थ वाली भाषाओं द्वारा जिन प्रश्नोंका प्रतिपादन किया है उन प्रश्नोंके तथा आदर्श-औषधि आदि लब्धि-रूप अतिशय वाले, ज्ञानादिक गुण वाले, एवं रागादिकोंके उपशम वाले ऐसे अनेक प्रकारकी योग्यता वाले आचार्यजनोंने जिन प्रश्नोंका कथन किया है, उन प्रश्नोंके तथा वीर भगवान् के वचन-सिद्धान्तमें स्थित हुए महर्षिजनों ने विस्तारसे जिन प्रश्नोंको विविध विस्तारके साथ कहा है, तथा जगतके उपकारक दर्पण, अंगुष्ठ, वाहु, तलवार, मरकत आदि मणि, अतसी अथवा कपाससे निर्मित वस्त्र, सूर्य आदिसे जो प्रश्न सम्वन्ध रखते हैं। पूछे गए प्रश्नोंका उत्तर देने वाली जो विद्याएं हैं वे महाप्रश्न विद्याएं हैं। मन में स्थित (चिन्तित) प्रश्नोंका जो विद्याएं उत्तर देती हैं वे मनःप्रश्नविद्याएं हैं। इन दोनों प्रकारकी विद्याओंमें देवता सहायक होते हैं। साधकके साथ इन देवताओंका विविध अर्थ–प्रयोजनको लेकर आपसमें जो संवाद होता है सो यह मुख्य गुण जिन प्रश्नोंमें प्रकाशित होता है ऐसे प्रश्नोंके, तथा–जो प्रश्न लब्धिविशेषसे उत्पन्न हुए अपने अतिशय प्रभाव से मनुष्योंकी मतिको आश्चर्य में डाल देते हैं, ऐसे प्रश्नोंके तथा जो प्रश्न अनन्त-काल पूर्व शमदमशाली उत्तम और अन्य शास्ताओंकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट जिन भगवान्की सत्ता स्थापन करनेमें कारणभूत हैं—अर्थात् जिनके विना अतीतकाल में यदि जिन भगवान् न हुए होते तो ऐसे प्रश्नोंकी उपपत्ति ही नहीं वन सकती। इस तरह अन्यथानुपपत्तिसे अतीतकाल में जो जिन भगवान्की सत्ताके ख्यापक हैं ऐसे प्रश्नोंके, सूक्ष्म अर्थ वाला होनेसे वहुत ही कठिनाईसे समझने योग्य, सूत्र-वहुल होनेके कारण वहुत ही मुश्किलसे अध्ययन करने योग्य जो प्रवचन तत्व

हैं। जो समस्त सर्वज्ञोंको मान्य एवं अबुधजनोंके लिए बोधदाता हैं उनके साक्षात्प्रबोधक प्रश्नोंके प्रश्नविद्याओंके जिनवरप्रणीत जो अनेक प्रकारके गुण हैं, कि जिनसे वे शुभ और अशुभ सूचन आदि करने रूप गम्भीर अर्थ से भरे हुए हैं, इस अंगमें कहे गए हैं। प्रश्नव्याकरणमें संख्यात वाचनाएं…… यावत् संख्यात संग्रहणियाँ हैं। अंगकी अपेक्षा यह दशवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, पैंतालीस उद्देशनकाल हैं, पैंतालीस ही समुद्देशनकाल हैं। इसमें पद परिमाणकी अपेक्षा संख्यात–बयानवे लाख सोलह हजार पद हैं। संख्यात अक्षर हैं……। यह प्रश्नव्याकरणका स्वरूप है ॥२१९॥

विपाकश्रुतका क्या स्वरूप है ? इस विपाकश्रुत में सुकृत-पुण्यरूप, दुष्कृत-पापरूप कर्मोंका विपाकरूप फल कहा गया है। यह संक्षेपसे दो प्रकारका है। एक दुःखविपाक–दूसरा सुखविपाक। इनमें दुःखविपाकके दश अध्ययन हैं और सुखविपाकके दश अध्ययन हैं। हे भगवन् ! वह दुःखविपाक क्या है ? दुःखविपाकमें दुःखफल भोक्ताओंके नगरों……धर्म कथाओं, गौतम स्वामीका भिक्षाके लिए नगरमें जाना, संसारका विस्तार, दुःखों की परम्पराएँ, भवोपग्राही कर्मो के बंध होने पर होने वाली दुःखपरम्पराएं इस आगममें कही हैं। यही दुःखविपाक का स्वरूप है। सुखविपाकका क्या स्वरूप है ? सुखविपाकमें सुखफल भोगने वालों के नगरों……अंतक्रियाओं आदि का वर्णन है। दुःखविपाकमें प्राणिहिंसा, असत्य भाषण, चोरी करना, परस्त्री सेवन, इन पापकर्मो में आसक्ति रखना, महातीव्र कषाय, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति, प्राणातिपातादिकोंमें मन, वचन, काया को लगाना, इसी से अशुभ परिणामोंसे उपार्जित पाप कर्मोका पापानुभागफलविपाक-अशुभरस वाला फलोदय होता है। इसका इसमें वर्णन है। तथा नरकगतिमें और तिर्यच गतिमें अनेक प्रकारके दुःखोंकी सैकड़ों परम्परासे बंधे हुए जीवोंको मनुष्य-भवमें आने पर भी अवशिष्ट पापकर्मके उदयसे कैसे २ अशुभ रसवाले कर्मोदय होते हैं। इस विषयका वर्णन इस सूत्रमें है। खड्ग–आदि द्वारा छेदन किया जाना, अण्डकोशों का विनाश किया जाना, नाक, कान, ओष्ठ, अंगुष्ठ, हाथ, पैर और नखोंका छेदा जाना तथा जिह्वा का काटा जाना, तपी हुई लोहे की सलाइयों द्वारा आंखोंका फोड़ा जाना, बांस आदिकी लकड़ियों द्वारा आच्छादित किये जाकर अन्य हत्यारे पुरुषों द्वारा जीते जी जला दिया जाना, हाथीके पैरोंके नीचे दबा कर शरीरके अंग-उपांगोंका चूर २ करवा देना, शरीरका विदारित होना, वृक्षकी शाखाओं पर बांधकर औंधे लटका दिया जाना, शूलसे, लतासे-वेतोंसे, बांस आदिकी छोटी २ लकड़ी से, बड़े २ मजबूत डंडोंसे बहुत बुरी तरह पीटा जाना, लाठीसे सिरको फोड़ देना, गलाया हुआ रांगा गरम शीशा और उबलते हुए गर्म तेलसे शरीरका सींचा जाना, कुंभीपाक नामके पात्रमें पकाया जाना, ठंडके

समय शरीर पर वर्फ जैसा शीतल जल छिड़का २ कर उसमें कंपकंपी करवाना, रस्सियों अथवा शृंखलाओंमे शरीरको जकड़ कर बांध दिया जाना, भाले आदि शस्त्रोंसे शरीरका भेदा जाना, पापीके शरीरसे जीते जी चमड़ी-खालका निकलवा दिया जाना, दूसरोंको भयंकर हो इस प्रकारके अभिप्रायसे पापीजनके हाथोंको वस्त्रोंमे वेष्टित कर और उन पर तेल छिड़क कर उनका जलवा दिया जाना, इत्यादि असह्यदुःख, अतिशयदुःखोंका इसमें वर्णन है। वहुत प्रकारके दुःख-परम्परामे अनुवद्ध जीव पापी जीव अशुभ कर्मोंसे जव तक कि उनका पूरा फल भोग न हो तव तक नहीं छूट सकते। अव कैसे मुक्ति प्राप्त करते हैं वह कहते हैं—अहिंसक चित्तावृत्तिरूप धैर्यसे जिसनें मजबूतीके साथ अपनी कांछको वांध लिया है ऐसा व्यक्ति तपस्याके द्वारा निकाचित कर्मके सिवाय पाप कर्मका शोधन करता है।

दुःखविपाकके पश्चात् सुखविपाकमें शील-चित्त-समाधि अथवा ब्रह्म-चर्य, संयम, नियम, मूलगुण एवं उत्तरगुण, तप इन उक्त गुणोंसे युक्त, तप संयम के आराधक मुनियोंको दयायुक्त चित्तके प्रयोगसे तथा त्रिकालिक सुपात्रादिके लिए दान देनेकी बुद्धिसे विशुद्ध पानको, जो कि प्रयोगसे निर्दोष है, हित सुख और निःश्रेयसके प्रकृष्ट परिणाम वाली निश्चित मतिसे युक्त भव्यजन त्रैकालिक विशुद्ध भावयुक्त मनसे देकर जैसे निष्पादित करते हैं, वोधि-लाभको प्राप्त करते हैं वह विषय कहा गया है। जिस प्रकार संसारको अल्प करते हैं, वह विषय कहा गया है। यह संसार सागर कैसा है—नर, नरक, तिर्यंच एवं देवगतिमें जो जीवों का परिभ्रमण होता है वही इस संसाररूप सागरमें विशाल जल जन्तुओंका परिभ्रमण है। अरति, भय, विषाद, शोक एवं मिथ्यात्व रूपी पर्वतोंसे यह संसार समुद्र विकट है। अज्ञान रूपी गाढ़ अंधकारसे युक्त, विषय-धन-आशा-तृष्णा रूपी कर्दमसे युक्त होनेके कारण दुस्तर है। जरा मरण एवं ८४ लाख योनियाँ ही इस संसार सागरमें चंचल आवर्त्त हैं। सोलह प्रकारके क्रोध, मान आदि कषाय ही अतिशय भयंकर मकर ग्राहादिवत् हैं। अनादि, अनन्त ऐसे संसार सागरको भव्य जीव अल्प करते हैं। उसका वर्णन इसमें है। जिस प्रकारसे वे भव्य जीव देवोंमें वैमानिक देवोंकी आयुका वंध करते हैं तथा जैसे उत्कृष्ट सुरगण विमानोंके सुखों को भोगते हैं। उसके अनन्तर कालान्तरमें देवलोकसे चवकर इस मृत्युलोकमें ही मनुष्य भव पाकर जिस प्रकार आयु, शरीर, वर्ण, रूप, उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम जन्म, आरोग्य, औत्पत्त्यादिक बुद्धि, अपूर्व श्रुत ग्रहण करनेकी शक्ति रूप मेधा इन सबमें इतर जनोंकी अपेक्षा विशिष्टता प्राप्त करते हैं यह सव कहा गया है। तथा इनके मित्र जन, पिता-चाचा आदि स्वजन, धन-धान्यरूप-विभव, पुर, अन्तःपुर, कोष, कोष्ठागार, वल-सैन्य-वाहन आदि रूप समृद्धि ये सव

विशिष्ट प्रकारके होते हैं। विविध मणि, रत्न आदिकोंका ढेरका ढेर इनके पास रहता है। तथा अनेकविध काम-भोगोंसे जिनकी उत्पत्ति है, ऐसे विशिष्ट प्रकार के सुख इन्हें प्राप्त होते रहते हैं। यह सब विषय उत्कृष्ट सुखविपाक प्रगट करने वाले अध्ययनोंमें स्पष्ट किया है, जिनेन्द्र प्रभुने कहा है।

अविच्छिन्न परम्परासे अनुबद्ध हुए अशुभ और शुभकर्मोंका वहुविध शुभाशुभ कर्मफल तथा वैराग्यके हेतुभूत हैं, इस विपाकश्रुतमें कहे हैं। इसी प्रकारके और भी त्रिविध प्रकारके विषय इसमें विस्तारके साथ कहे हैं। विपाकश्रुतकी संख्यात वाचनाएँ···यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं। अंगकी अपेक्षा यह ग्यारहवाँ अंग है। इसमें बीस अध्ययन हैं, बीस उद्देशनकाल हैं, वीस ही समुद्देशनकाल हैं। पद परिमाणकी अपेक्षा इसमें संख्यात लाख पद हैं, इसमें संख्यात अक्षर हैं···, यह विपाकश्रुतका स्वरूप है ॥२२०॥

हे भगवन्! दृष्टिवादका क्या स्वरूप है? दृष्टिवादमें जीवाजीवादिक समस्त पदार्थोंकी प्ररूपणाकी गई है। वह संक्षेपसे पांच प्रकारका है। जैसे कि—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग, चूलिका। परिकर्मका स्वरूप कैसा है? परिकर्म सात प्रकारका है, तद्यथा–सिद्धश्रेणिकापरिकर्म, मनुष्यश्रे०, पृष्ठ०, अवगाहन०, उपसंपद्य०, विप्रजह०, और च्युताच्युत०। सिद्धश्रेणिका परिकर्म कैसा है? सिद्धश्रेणि० चौदह प्रकारका है—मातृकापद, एकार्थिकपद, पादौष्ठपद, आकाशपद, केतुभूत, शशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त, सिद्धबद्ध, यह सिद्ध० है। मनुष्यश्रे० कैसा है? मनुष्य० चौदह प्रकारका है। जैसे कि—मातृकापद यावत् नन्दावर्त तथा मनुष्यबद्ध। यह मनुष्य०। बाकी रहे हुए पृष्ठ० आदि ग्यारह ११ प्रकारके कहे गए हैं (मा० से लेकर प्रतिग्रह तक)। ये सात परिकर्म हैं, इनमें छः परिकर्म जैन-सिद्धान्त सम्मत हैं, सात परिकर्म आजीवक सम्मत हैं, छ परिकर्म चार नय वाले हैं, सात परिकर्म त्रैराशिक सम्मत हैं। इस प्रकार पूर्वापरके संकलनसे ये सात परिकर्म ८३ हो जाते हैं। इस प्रकार परिकर्मका निरूपण पूर्ण हुआ ॥२२१॥

सूत्र कैसे हैं? सूत्र ८८ प्रकारके कहे गए हैं। जैसे कि—ऋजुक, परिणतापरिणत, बहुभंगिक, विप्रत्ययिक, (वि(ज)नयचरित) अनंतर, परम्पर समान, संयूथ, (मास) संभिन्न, यथात्याग अथवा यथावाद, सौवस्तिक, नंदावर्त, वहुल, पृष्टापृष्ट, व्यावर्त्त, एवंभूत, द्विकावर्त्त, वर्त्तमानोत्पाद, समभिरूढ़, सर्वतोभद्र, प्रमाण, दुष्प्रतिग्रह। ये २२ सूत्र स्वसमयसूत्रपरिपाटीसे छिन्नच्छेदनयिक हैं। ये ही २२ सूत्र आजीवक सूत्रपरिपाटीके अनुसार अच्छिन्नच्छेदनयिक हैं। ये २२ सूत्र त्रैराशिक सूत्रपरिपाटीके अनुसार त्रिकनयिक हैं। तथा

ये २२ सूत्र जिनसिद्धान्त सूत्रपरिपाटीके अनुसार चार नय वाले हैं। इस प्रकार पूर्वापर जोड़नेसे अठासी सूत्र होते हैं ⋯। यह सूत्रका स्वरूप है ॥२२२॥

पूर्वगत १४प्रकारका है, जैसे कि—उत्पादपूर्व, अग्रेणीय, वीर्य, अस्तिनास्ति-प्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्यानुप्रवाद, अबन्ध्यपूर्व, प्राणायुपूर्व, क्रियाविशाल, लोकबिंदुसार।—

उत्पादपूर्व	में	दश	वस्तुएँ	हैं	तथा	चार	चूलिका—	वस्तुएँ	हैं।
अग्रेणीय०	,,	१४	,,	,,	,,	बारह	,,	,,	,,
वीर्यप्रवाद०	,,	८	,,	,,	,,	८	,,	,,	,,
अस्तिनास्ति०	,,	१८	,,	,,	,,	१०	,,	,,	,,
ज्ञानप्रवाद०	,,	१२	,,	,,					
सत्यप्रवाद०	,,	२	,,	,,					
आत्मप्रवाद०	,,	१६	,,	,,					
कर्मप्रवाद०	,,	३०	,,	,,					
प्रत्याख्यान०	,,	२०	,,	,,					
विद्यानुप्रवाद०	,,	१५	,,	,,					
अबंध्य०	,,	१२	,,	,,					
प्राणायु०	में	१३	,,	,,					
क्रियाविशाल०	,,	३०	,,	,,					
लोकबिंदुसार०	,,	२५	,,	,,					

क्रमशः पूर्वो में दश⋯⋯⋯२५ वस्तुएँ हैं। पहले चार पूर्वो में क्रमशः चार ⋯दश चूलिकावस्तुएँ हैं। शेष पूर्वोंमें चूलिका नहीं हैं। यह पूर्वगत का स्वरूप है ॥२२३॥

अनुयोग का क्या स्वरूप है? अनुयोग दो प्रकार का कहा गया है, जैसे—मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग। मूलप्रथमानुयोग क्या है? मूलप्रथमानुयोग में अर्हन्त भगवन्तोंके पूर्वजन्म, देवलोकगमन, आयु, च्यवन, जन्म, अभिषेक, श्रेष्ठ राजलक्ष्मी, शिविकाएँ, प्रव्रज्याएं, तपस्याएँ, भक्त, केवलज्ञानकी उत्पत्ति, तीर्थप्रवर्तन, संहनन, संस्थान, उच्चत्व, आयु, वर्णविभाग, शिष्य, गण, गणधर, साध्वी, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, समस्त श्रुतके पाठी, वादी, अनुत्तर विमानों में गमन, पादपोपगमन करके जितने सिद्ध हुए हैं वे, तथा जहां पर जितने भक्तोंका अनशन द्वारा छेदन करके कर्मोंका अन्त करने वाले जितने मुनिवरोत्तम अज्ञानरूपी कर्मरजसे रहित होते हुए अनुत्तर मुक्तिमार्गको प्राप्त हुए हैं वे सब यहां वर्णित हुए हैं। तथा इसी प्रकार के अन्यविषय मूलप्रथमानुयोगमें सामान्य विशेष रूपसे वर्णित किए गए हैं, प्रज्ञापित

हैं, प्ररूपित०, उपमान उपमेय भावादि द्वारा स्पष्ट किए गए हैं, परानुकम्पा१…
समझाए गए हैं। यह मूलप्रथमानुयोगका स्वरूप है। गण्डिकानुयोगका क्या स्वरूप है ? गंडिकानुयोग अनेक प्रकार का कहा गया है। जैसे कि—कुलकरगंडिका, तीर्थंकरगण्डिका, गणधरगंडिका, चक्रधरगंडिका, दशार्हगंडिका, बलदेव०, वासुदेव०, हरिवंश०, तपः कर्म०, चित्रान्तर०, उत्सर्पिणी०, अवसर्पिणी०, तथा अमर, नर, तिर्यंच, नरक गति गमन विविध पर्यटनानुयोग, इस तरह की अन्य गंडिकाएं भी……हैं। यह गंडिकानुयोग है ॥२२४॥

चूलिका क्या है ? पहले चार पूर्वोकी चूलिकाएँ हैं। बाकीके पूर्वोकी चूलिकाएँ नहीं हैं। यह चूलिका का स्वरूप है ॥२२५॥

दृष्टिवादकी सख्यात वाचनाएँ हैं………संख्यात संग्रहणियां हैं। अंगार्थ की अपेक्षा यह १२ वां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है। चौदह पूर्व हैं। संख्यात वस्तुएं हैं। संख्यात चूलवस्तुएँ हैं। संख्यात प्राभृत हैं। संख्यात प्राभृतप्राभृत हैं। संख्यात प्राभृतिकाएँ हैं। संख्यात प्राभृतप्राभृतिकाएँ हैं। पद परिमाण की अपेक्षा इसमें संख्यात लक्ष पद हैं। संख्यात अक्षर हैं…… यह दृष्टिवाद का स्वरूप है। यही द्वादशांग गणिपिटक है ॥२२६॥

इस द्वादशांगरूप गणिपिटक की आज्ञाकी विराधना करके अनंत जीवों ने भूतकालमें चारगति वाली संसाररूपी अटवीमें परिभ्रमण किया।……संख्यात जीव वर्तमान काल में…परिभ्रमण कर रहे हैं।……भविष्यत् कालमें अनन्त जीव……परिभ्रमण करेंगे।……आज्ञाकी आराधना करके अनन्त जीवोंने… अटवी पार की। इसी प्रकार वर्तमान कालमें०, इसी प्रकार भविष्यत् कालमें०।

द्वादशांग रूप गणिपिटक पहले कभी भी नहीं था ऐसी बात नहीं है, कभी नहीं ०, भविष्यत् कालमें नहीं रहेगा ऐसी०। यह गणिपिटक पहले भी था। वर्तमान में भी है। भविष्यमें भी रहेगा। इसलिए यह गणिपिटक अचल, ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित तथा नित्य है। जैसे धर्मास्तिकायादिक पांच द्रव्य कभी नहीं थे ऐसी बात नहीं है, कभी नहीं हैं ऐसी०, भविष्यत्कालमें नहीं होंगे०, पहले थे, अब हैं, आगे रहेंगे। ये अचल यावत् नित्य हैं। इस गणिपिटक रूप द्वादशांगमें अनन्त भाव, अनंत अभाव, अनंत—हेतु—अहेतु, कारण, अकारण, जीव, अजीव, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, सिद्ध, असिद्ध सामान्यसे प्रतिपादित किए गए हैं यावत् समझाए गए हैं। इस प्रकारके स्वरूप वाला यह गणिपिटक रूप द्वादशांग है ॥२२७॥

दो राशियाँ कही गई हैं। जैसे कि—जीवराशि, अजीवराशि। अजीवराशि दो प्रकारकी है, जैसे—रूपी अजीवराशि, अरूपी अजीवराशि। अरूपी अजीव-

१. देखो आचारांग का वर्णन।

राशिका क्या स्वरूप है ? अरूपी अजीवराशि दस प्रकारकी है। जैसे कि— धर्मास्तिकाय यावत् काल। रूपी अजीवराशि अनेक प्रकारकी है, यावत् अनुत्तरोपपातिकका क्या स्वरूप है ? अनुत्तरोपपातिक पांच प्रकारके कहे गए हैं। जैसे कि—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धिक। ये अनुत्तरोपपातिक हैं। इस प्रकार यह सब पंचेन्द्रिययुक्त संसारी जीवराशि है। नारकी जीव दो प्रकारके कहे गए हैं। जो इस तरहसे हैं–पर्याप्त और अपर्याप्त। इसी प्रकार वैमानिक तकका दंडक कहना चाहिए। इस रत्नप्रभा पृथिवीके कितने प्रमाण क्षेत्रको अवगाहित करके कितने नरकावास कहे गए हैं ? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथिवीकी जो एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटाई कही गई है, ऊपरके भागमें १ हजार योजन छोड़कर, नीचेका १ हजार योजन छोड़कर मध्य भागमें एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण स्थान है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख प्रमाण नरकावास हैं। यह जिनेन्द्रदेवने कहा है। ये नरकावास भीतर गोल हैं। बाहर चौकोर हैं, नरक अशुभ हैं, नरकमें अशुभ (अशाता) वेदना होती है। इस प्रकार सातों नरकोंका स्वरूप जानना चाहिए। वाहल्य प्रमाण जिस नरकमें जो घटित हो उस रीतिसे जानलें। क्रमशः प्रथम पृथिवीकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है। दूसरी…१ लाख ३२ हजार…। तीसरो …एक लाख २८ हजार। चौथी…१ लाख २० हजार…। पांचवीं…१ लाख १८ हजार, छठीकी एक लाख सोलह हजार और सातवींकी मोटाई एक लाख आठ हजार योजन है ॥१॥ प्रथम पृथिवीमें ३० लाख, द्वितीय…२५ लाख, तृतीय…१५ लाख, चतुर्थ…१० लाख, पांचवीं…३ लाख, छठी…५ कम एक लाख और सातवीं पृथिवीमें पांच नरकावास हैं। (कुल नरकावास ८४ लाख हैं।) ॥२॥ असुरकुमारोंके ६४ लाख, नागकुमारोंके ८४ लाख, सुपर्णकुमारोंके ७२ लाख, वायुकुमारोंके ९६ लाख, तथा द्वीपकुमार, दिक्कुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन छ युगलोंके बीचमें एक २ कुमारके ७२-७२ लाख भवन हैं। इन सबकी संख्या ७ करोड़ ७२ लाख है ॥३-४॥

प्रथम सुधर्म देवलोकमें ३२ लाख विमान हैं।
दूसरे ईशान ,, ,, २८ ,, ,, ,,।
तीसरे सनत्कुमार ,, ,, १२ ,, ,, ,,।
चतुर्थ माहेन्द्र ,, ,, ८ ,, ,, ,,। पांचवें ब्रह्मलोकमें ४ लाख, छठे लान्तक देवलोकमें ५० हजार, सातवें महाशुक्रमें ४० हजार, आठवें सहस्रार में ६ हजार विमान हैं। तथा नौवें दशवें आनत प्राणत देवलोकमें ४०० विमान हैं। ग्यारहवें बारहवें आरण अच्युत देवलोकमें ३०० विमान हैं तथा नौ ग्रैवेयकों में जो अधस्तन ग्रैवेयक हैं उनमें १११ विमान हैं। मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें १०७

विमान हैं। उपरितन तीन ग्रैवेयकोंमें १०० विमान हैं। अनुत्तर विमानोंमें पांच विमान हैं। इन विमानोंकी कुल संख्या ८४ लाख ९७वें हजार २३ है ॥५-६-७॥ (प्रथम,) द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम पृथिवीमें नरकावासोंकी संख्या पूर्वोक्त गाथाओंके अनुसार समझें। सप्तम पृथिवीके विषयमें पृच्छा। हे गौतम ! सातवीं पृथिवीकी मोटाई जो एक लाख आठ हजार योजनकी कही गई है उसमेंसे ऊपरके साढ़े बावन हजार योजनको छोड़ कर, नीचेके साढ़े……कर, बीचमें तीन हजार योजन प्रमाण जो क्षेत्र बचता है इस सातवीं पृथिवीमें नारकियोंके पांच उत्कृष्ट अतिविशाल महानरकावास हैं। जैसे कि—काल, महाकाल, रौरव, महारौरव, और पांचवां अप्रतिष्ठान। ये सब नरकावास बीचमें गोल हैं, अंतमें त्रिकोण हैं। तथा इनका तल भाग वज्रके छुरे जैसा है यावत् ये सब नरक अशुभ हैं। इन नरकोंमें अशुभ वेदनाएँ हैं ॥२२८॥

हे भदन्त ! असुरकुमारोंके आवास कितने हैं ? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथिवी की मोटाई जो एक लाख अस्सी हजार योजनकी कही है। ऊपरका एक हजार योजन छोड़ कर, नीचेका एक हजार योजन छोड़ कर, बीचका एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण क्षेत्र बचता है। इस रत्नप्रभा पृथिवीमें चौसठ लाख असुरकुमारोंके आवास हैं। वे आवासरूप भवन बाहर गोल हैं, भीतर चौकोर हैं। इनका नीचेका भाग कमलकी कर्णिकाका जैसा आकार होता है वैसे आकार वाला है। जमीनको खोदकर पालीरूप अन्तराल जिनका किया गया है, ऐसी खाई और परिघा जिनके विपुल एवं गंभीर मालूम होते हैं। इनके पासके प्रदेशमें अटारी हैं तथा आठ हाथ प्रमाण मार्ग हैं, तथा पुरद्वार, कपाट, तोरण बहिद्वार और प्रतिद्वार-अवान्तरद्वार हैं। ये सब भवन पाषाण प्रक्षेपक यंत्रोंसे, मुसलोंसे, भुसुंडियोंसे, शतघ्नियोंसे युक्त हैं। शत्रुसैन्य इनमें प्रवेश कर युद्ध नहीं कर सकता इस लिए ये अयोध्य हैं। अड़तालीस प्रकारकी रचना वाले कमरोंसे युक्त हैं। अड़तालीस प्रकारकी प्रशस्य वनमालासे युक्त हैं। इनकी भूमि लेप और उपलेपसहित है। गाढ़े गोशीर्ष चन्दन और सरसरक्तचन्दनके लेपसे इनकी भित्तियों पर पांच अंगुलियां और हथेलियां जैसे लगी हों वैसे मालूम होते हैं। इनके भीतर कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क और तुरुष्क लोबान इनके जलते हुए धूपसे भी अधिक सुगन्ध आती है। अच्छी २ श्रेष्ठ गंधोंसे ये बहुत अधिक सुगन्ध वाले हैं। सुगन्ध द्रव्यसे निष्पादित अगरबत्तीके समान, स्वच्छ, कोमल, चिकने, घृष्ट, शुद्ध, रजरहित, निर्मल, अंधकाररहित हैं। विशुद्ध, प्रकाशसंपन्न, प्रकाशकिरणयुक्त उद्योत सहित हैं। मनको प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप, प्रतिरूप हैं। इस प्रकार जिस तरह असुरकुमारोंके आवासोंका प्रमाण कहा है, उसी प्रकारसे नागकुमार आदि निकायके भवनादिकोंका वर्णन भी असुरकुमारावासोंकी भांति जानना चाहिए ॥२२९॥

हे भदन्त ! पृथ्वीकायके निवासस्थान कितने प्रकारके हैं ? हे गौतम ! पृथ्वी-कायिकोंके आवास असंख्यात हैं। एवं यावत् मनुष्य । हे भदन्त ! व्यंतरदेवोंके आवास कितने हैं ? इस रत्नप्रभा पृथिवीका जो रत्नमय काण्ड है ।...एक हजार योजनकी मोटाई है । ऊपरका एक सौ योजन छोड़ कर, नीचेका एक सौ योजन छोड़ कर बीचका जो आठ सौ योजनका क्षेत्र बचता है, उसमें व्यंतरदेवोंके नगररूप आवास हैं । ये आवास भूमिगत हैं, तिरछे लोकमें असंख्यात योजन तक हैं। इनकी संख्या लाखोंकी है । ये भौमेय व्यन्तरावास बाहर गोल हैं, भीतर चौकोर हैं । इनका वर्णन भवनवासियोंके आवासके समान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि ये व्यन्तरोंके नगर ध्वजाओंसे युक्त रहते हैं । सुरम्य, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप, प्रतिरूप हैं ॥२३०॥

हे भदन्त ! ज्योतिषी देवोंके विमानावास कितने कहे गए हैं ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभापृथिवीके बहुसमरमणीय भूमिभागसे सात सौ नव्वे योजन ऊपर जाकर जो क्षेत्र आता है, उसमें एक सौ दस योजनके बाहुल्यसे युक्त ज्योतिषदेव-संबंधी तिरछे प्रदेशमें ज्योतिषदेवोंके असंख्य ज्यौतिषिक विमानावास कहे गये हैं । ज्यौतिषिक विमानावास समस्त दिशाओंमें बड़े वेगसे फैलती हुई अपनी प्रभासे शुभ बने हुए हैं । अनेक प्रकारकी चन्द्रकान्त आदि मणियोंकी तथा कर्केतनादिक रत्नोंकी विशेष रचनासे ये अपूर्व शोभा वाले हैं । तथा पवनसे उड़ती हुई विजय-सूचक वैजयन्तियोंसे और साधारण पताकाओंसे एवं ऊपर २ स्थापित छत्रों से विस्तीर्ण छत्रोंसे युक्त हैं । बहुत ऊँचे हैं । इसी कारण ये अपने शिखरोंसे मानों आकाशतलको छू रहे हैं । इनकी खिड़कियोंके मध्य भागमें रत्न जड़े हुए हैं । घर के भीतरसे निकाली गई धूलि आदिके संसर्गसे रहित निर्मल वस्तुके समान शोभित हैं । इन विमानावासोंके लघु शिखर मणि और कनक के बने हैं । विकसित शत-दल वाले कमलोंके पत्तोंसे, तथा रत्नमय अर्ध चंद्रोंसे ये विमानावास विलक्षण-शोभा-सम्पन्न हैं । भीतर और बाहर नितान्त चिकने हैं । इनके आंगन सुवर्णकी रेती बिछाई हो ऐसे मालूम पड़ते हैं । इनका स्पर्श बड़ा ही सुखदायक है, इनका रूप शोभासहित है । प्रासादीय हैं, दर्शनीय, अभिरूप, प्रतिरूप हैं ॥२३१॥

हे भदन्त ! वैमानिक देवोंके आवास कितने हैं ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके बहुसमरमणीय भूमिभागसे ऊपर चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र एवं तारों को पार कर बहुत योजन, बहुत सैंकड़ों योजन, ब० हजारों यो०, अनेक लाखों योजन, अ० करोड़ों यो०, अ० कोटाकोटी यो०, तथा असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर दूर जाने पर वैमानिक देवोंके सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, महस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन बारह

देवलोकोंमें तथा नव ग्रैवेयकोंमें और पाँच अनुत्तर विमानोंमें चौरासी लाख सतानवें हजार तेईस विमान हैं ऐसा भगवान ने कहा है। इन विमानोंकी प्रभा सूर्य-प्रभाके समान है। इनकी कान्ति प्रकाशराशि वाले सूर्यके वर्ण जैसी है। स्वाभाविक रज से रहित हैं[1]।······सर्व रत्नमय हैं। स्वच्छ···। कीचड़ रहित हैं। इनकी कांति आवरण-उपघातसे रहित है। प्रकाशसंपन्न···प्रतिरूप हैं। हे भगवन ! सौधर्मकल्पमें कितने विमानावास कहे गए हैं ? हे गौतम ! सौधर्मकल्प में ३२ लाख विमानावास कहे गए हैं, इसी प्रकार ईशानादिमें क्रमशः अट्ठाइस-बारह-आठ-चार लाख, पचास-चालीस-छ-हजार, आनत प्राणतमें चार सौ, आरण अच्युतमें ३०० विमान हैं। इसी प्रकार पूर्वोक्त गाथाओंसे समझ लें ॥२३२॥

हे भदन्त ! नारक जीवोंकी कितने कालकी स्थिति है ? हे गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट३३सागरोपमकी। भ०! अपर्याप्तक नारक···?हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्तकी। पर्याप्तक नारक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहुर्त कम तेतीस सागरोपम है। इस रत्नप्रभा पृथिवीके नारक जीवोंकी इसी प्रकार यावत् विजय, वैजयन्त, अपराजित एवं सर्वार्थसिद्धके देवोंकी कितने काल की स्थिति है ? हे गौतम ! जघन्य इकत्तीस सागरोपम, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम; तथा सर्वार्थसिद्ध नामके अनुत्तरविमानमें जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की है ॥२३३॥

हे भदन्त ! शरीर कितने कहे गए हैं ?गौतम ! शरीर पांच प्रकारके हैं। वे इस प्रकार हैं--औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्मज। हे भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! पांच प्रकार का है। जैसे कि—एकेन्द्रिय औदारिक शरीर यावत् गर्भज मनुष्य पंचेंद्रिय औदारिक शरीर। हे भदन्त ! औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी···है ? हे गौतम ! जघन्य अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन प्रमाण है। इसी प्रकार जैसे औदारिक-अवगाहना-प्रमाण कहा है उसी प्रकार संस्थानादिके विषयमें सब जान लें यावत् युगलिक मनुष्य की अपेक्षा उत्कर्षसे मनुष्य-शरीरकी अवगाहना तीन कोश की है[2]।

हे भदन्त ! वैक्रिय शरीर कितने प्रकारका कहा गया है ?हे गौतम ! वैक्रिय शरीर दो प्रकारका·····है। एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर और पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर। इसी प्रकार सनत्कुमार देवोंसे लेकर अनुत्तर विमानवासी देवों तक के शरीर क्रमसे एक-एक रत्नि (हाथ) की परिहानि (न्यूनता) से जानने चाहिएँ। हे भगवन्! आहारक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम ! एक प्रकारका कहा

---

१. देखो सूत्र २२६। २. देखो प्रज्ञापना—सूत्र २१ वां पद।

गया है। यदि आहारक शरीर एक प्रकार का कहा गया है तो वह क्या मनुष्य का आहारक शरीर है या अमनुष्यका आ० ? हे गौतम ! मनुष्यका आहारक शरीर है, अमनुष्य का नहीं। यदि वह मनुष्य का आहारक······तो क्या गर्भज मनुष्य का है या संमूर्छिम मनुष्य का है ? हे गौतम ! वह आहारक शरीर गर्भज मनुष्य का है, संमूर्छिम मनुष्य का नहीं। यदि ग० म० का है तो क्या कर्मभूमिज ग० मनुष्यों का या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों का ? हे गौतम ! कर्मभू०, अकर्मभूमिज मनुष्यों का नहीं। यदि कर्मभूमिज० तो क्या संख्यातवर्षायु वाले, या असंख्यात वर्ष आयु वाले० ? गौतम ! सं०······,अ०······नहीं। यदि सं० वर्ष आयु वाले० तो क्या पर्याप्तक० या अपर्याप्तक० ? गौतम ! पर्याप्तक०, अपर्याप्तक० नहीं। यदि पर्याप्तक० तो क्या सम्यक्दृष्टि०, मिथ्यादृष्टि०, सम्यक्-मिथ्यादृष्टि० ? गौतम ! सम्यक्दृष्टि०, मिथ्यादृष्टि० तथा सम्यक्मि० के नहीं होता। यदि सम्यक्दृष्टि० तो क्या संयत०, असंयत०, संयतासंयत० ? गौतम ! संयत० के होता है, असंयत० संयतासंयत० के नहीं। यदि संयत० तो क्या प्रमत्तसंयत० अप्रमत्तसंयत० ? गौतम ! प्रमत्त०, अप्रमत्तसंयत० के नहीं। यदि प्रमत्त० तो क्या ऋद्धिप्राप्त० या ऋद्धिअप्राप्त० ? गौतम ! ऋद्धिप्राप्त० अनृद्धिप्राप्त के नहीं। यहाँ यह कथन संक्षेपसे किया गया है। अतः इस विषय में और भी जो वक्तव्य हो वह सम्बन्धित कर लेना चाहिए। यह आहारक शरीर समचतुरस्रसंस्थान वाला होता है। हे भदन्त ! आहारक शरीरकी अवगाहना कितनी कही गई है ? हे गौतम ! जघन्य कुछ कम रत्निप्रमाण अर्थात्—बद्धमुष्टि हस्तप्रमाण और उत्कृष्टसे पूर्णरत्निप्रमाण है। हे भगवन् ! तैजस शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम ! पाँच प्रकार का कहा गया है। एकेन्द्रिय तैजसशरीर, दोइंद्रिय०, तेइंद्रिय०, चौन्द्रिय० और पंचेन्द्रिय०, इसी प्रकार[1] यावत् हे भदन्त ! ग्रैवेयक देव जब मारणांतिक समुद्घात करते हैं तब उनके तैजस शरीरकी अवगाहना कितनी होती है ? हे गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्यकी अपेक्षा तो वह शरीर प्रमाणमात्र है तथा आयामसे—दैर्घ्य से जघन्यतः अधोलोक में विद्याधर श्रेणी पर्यन्त, उत्कर्षतः अधोलोकके ग्राम-पर्यन्त ऊपरकी ओर अपने विमानकी ध्वजापर्यन्त और तिरछी मनुष्यक्षेत्रपर्यन्त अवगाहना कही गयी है। इसी प्रकार यावत् अनुत्तरोपपातिक देवोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार यावत कर्मजशरीरके बारेमें भी कहना चाहिए। ॥२३४॥

अवधिज्ञान का भेद, विषय, संस्थान, अवधिज्ञानसे प्रकाशित क्षेत्रके अन्दर कौन जीव हैं ? अवधिज्ञानके बाहर कौन जीव हैं, देशरूप अवधिज्ञान, अवधि-

---

१. देखो प्रज्ञापना २१ वां पद।

ज्ञानकी वृद्धि और हानि तथा प्रतिपाती अवधिज्ञान और अप्रतिपाती अवधिज्ञान यह सब कहना चाहिए ।।१।।२३५।।

हे भदन्त ! कितने प्रकार का अवधिज्ञान कहा गया है ? हे गोतम ! अवधिज्ञान दो प्रकारका कहा गया है । भवप्रत्ययिक, क्षायोपशमिक । इस प्रकार सारा अवधिपद कहना चाहिए१ ।।२३६।।

शीत, उष्ण और शीतोष्ण ३ तथा द्रव्यवेदना, क्षेत्र०,काल० और भाव०४, शारीरिक वेदना, मानसिक० और शारीरिक-मानसिक वेदना ३, शातवेदना, अशात० और शाताशात० ३, तथा दुःखवेदना, सुख०, दुःख-सुखवेदना ३, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी २, निदा और अनिदा २, ऐसे वेदनाके सव २० भेद होते हैं । हे भदंत ! नारक जीव कौन सी वेदनाको भोगते हैं—क्या शीत वेदनाको०, उष्णवेदना को०, शीतोष्ण० ? हे गौतम ! नारक जीव शीतवेदना और उष्णवेदना इन दो वेदनाओं को भोगते हैं, परन्तु शीतोष्ण वेदनाको नहीं भोगते । इसी प्रकार समस्त वेदनापद२ कहना चाहिए ।।२३७।।

हे भगवन् ! लेश्या कितने प्रकार की है ? गौतम ! लेश्या छः प्रकारकी है । वे प्रकार ये हैं—कृष्णलेश्या, नील०, कापोत०, तेजो०, पद्म० और शुक्ल० । इसी प्रकार लेश्यापद३ कहना चाहिए ।।२३८।।

अनन्तराहार, आहाराभोगता, आहारानाभोगता तथा पुद्गलोंका नहीं जानना नहीं देखना । तथा अध्यवसान और सम्यक्त्व ।।१।। यह द्वार गाथा है । हे भदन्त ! नैरयिक अनन्तर आहार वाले होते हैं । इसके बाद उनके शरीर की रचना होती है । बाद में अंग और उपांग बनते हैं । फिर इन्द्रियादिकों का विभाग होता है । इसके अनन्तर शब्दादिक विषयोंका वे भोग करते हैं । बादमें वे वैक्रिय करने की शक्तिसे युक्त होते हैं क्या ? हाँ गौतम ! यह ऐसी ही बात है । इसी प्रकार आहारपद४ कहना चाहिए ।।२३९।।

हे भदन्त ! आयुबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम ! आयु बन्ध छह प्रकारका कहा गया है, जैसे कि—जातिनाम निधत्तायु, गति०, स्थिति०, प्रदेश०, अनुभाग०, अवगाहना० । इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों का जानना चाहिए ।।२४०।।

हे भगवन् ! नरकगतिमें कितने समय तक उपपात—नारकियोंकी उत्पत्ति का विरह रहता है ? हे गौतम ! कम से कम एक समय तक अधिक से अधिक

---

१. देखो प्रज्ञापना ३३वां पद ।

२. देखो प्रज्ञापना सूत्रका ३५ वां पद ।

३. ,, ,, ,, १७ वां पद । ४. देखो प्रज्ञापना ३४वां पद ।

१२ मुहूर्त तक। इसी तरह तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें भी उपपात का जघन्य और उत्कृष्टरूप से विरह जानना चाहिए। हे भदन्त ! सिद्धगतिमें कितने काल तक सिद्धिगमनका विरह कहा गया है ? हे गौतम ! जघन्य मे एक समय तक का उत्कृष्टसे छह मास तक का वि०······। इसी तरह से सिद्धगति को छोड़कर शेष चारों गतियोंके निस्सरण काल का विरह भी जानना चाहिए। हे भदंत ! इस रत्नप्रभा पृथिवीमें कितने काल तक नारक जीव उपपातसे रहित होते हैं ? इसी तरहसे उपपातदंडक और उद्वर्तनादंडक भी भणितव्य है। हे भगवन् ! नारक जीव जातिनामनिधत्तायुका बंध कितने आकर्षो द्वारा करते हैं ? हे गौतम ! जीव तीव्र आयुबंधके अध्यवसायसे १, मन्द आयु······दो आकर्षोसे, मन्दतर आयु······तीन······,मन्दतम······चार, पांच, छह, सात और आठ आकर्षोंसे जातिनामनिधत्तायुका बंध करता है। नौ आकर्षोंसे नहीं। इसी प्रकार शेष निधत्तायुओंके विषयमें भी यावत् वैमानिक तक समझें ।।२४१।।

हे भदन्त ! संहनन कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! संहनन छ प्रकार का कहा गया है। तद्यथा— वज्रऋषभनाराचसंहनन, ऋषभनाराच-संहनन, नाराचसंहनन, अर्द्धनाराचसंहनन, कीलिकासंहनन, सेवार्तसंहनन। हे भगवन! नारकी जीव क्या संहननयुक्त कहे गए हैं ? हे गौतम ! छ संहननोंमें से इनके एक भी संहनन नहीं होनें से ये असंहननी कहे गए हैं। इनके न हड्डी होती है, न ही शिराएँ, न स्नायुएँ होती हैं। तथा जो पुद्गल उन्हें सदा सामान्य रूपमें अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अग्राह्य, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम, अमनोभिराम होते हैं ऐसे वे पुद्गल उन नारक जीवोंके हड्डी आदि से रहित शरीर विशेष रूप से परिणत होते हैं। हे भगवन् ! असुरकुमार देवोंके शरीर किस संहननसे युक्त होते हैं ? हे गौतम ! छह संहननों ········तथा जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम एवं मनोऽभिराम होते हैं वे ही पुद्गल इनके अस्थ्यादिसे रहित शरीर विशेष रूपसे परिणमित होते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों के विषय में भी समझना चाहिए। हे भदंत ! पृथ्वीकायिक जीव किस संहनन युक्त कहे गए हैं ? हे गौतम ! ये सेवार्त्त संहननयुक्त कहे गए हैं। इसी प्रकार यावत् सम्मूर्च्छिमपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनी तक जानना चाहिए। गर्भजतिर्यंचोंके छहों संहनन होते हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्योंका सेवार्त संहनन होता है। गर्भज मनुष्योंका छह प्रकार का संहनन कहा गया है। जिस प्रकार असुरकुमार विना संहनन के होते हैं उसी प्रकार वाणव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिक देव भी विना संहनन के होते हैं ।।२४२।।

हे भगवन् ! संस्थान कितनें प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम ! संस्थान छह प्रकारका कहा गया है। वे प्रकार ये हैं —समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रो-

धपरिमंडलसंस्थान, सादिकसंस्थान, वामनसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, हुण्डक-संस्थान। हे भदन्त ! नारकों के कौनसा संस्थान होता है ? हे गौतम ! वे हुण्डकसंस्थानी कहे गए हैं। हे भदन्त ! असुरकुमारोंके कौन······? हे गौतम ! असुरकुमारदेवों के समचतुरस्रसंस्थान होता है। इसी तरह से यावत् स्तनित-कुमार तक जानें। पृथ्वीकायिक मसूर के जैसे संस्थान वाले कहे गए हैं। अप-कायिक जल बुद्बुद् के·········। तेजस्कायिक सूचीकलाप (भारा) के······। वायुकायिक जीव पताका······। वनस्पतिकायिक जीव अनेक संस्थान·········। दो-इन्द्रिय जीव, तेइन्द्रिय जीव, चतुरिन्द्रिय जीव और सम्मूर्च्छिम–पंचेन्द्रिय तिर्यंच हुण्डकसंस्थान वाले कहे गए हैं। गर्भज तिर्यच छहों संस्थान वाले होते हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुंडक संस्थान······। गर्भज मनुष्य छहों संस्थान··· । जैसे असुरकुमार समचतुरस्रसंस्थान वाले हैं उसी प्रकार व्यन्तर, ज्योतिषिक, और वैमानिक भी ॥२४३॥

हे भदन्त ! वेद कितने प्रकार का होता है ? हे गौतम ! वेद तीन प्रकार का होता है। जैसे कि—स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। हे भगवन ! क्या नारकजीव स्त्रीवेद वाले, पुरुषवेद वाले और नपुंसकवेद वाले कहे गए हैं ? हे गौतम ! नारकजीव न स्त्री० न पुरुष० किन्तु नपुंसकवेद वाले······। हे भदन्त ! असुरकुमार क्या स्त्री०३·········? हे गौतम ! असुरकुमार देव स्त्रीवेद और पुरुपवेद वाले ही होते हैं नपुंसकवेद वाले नहीं। इसी तरह यावत् स्तनितकुमोर। पृथ्वीकायिक, अप्०, तेजस्०, वायु०, वनस्पति०, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यचपंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्य ये सब नपुंसकवेद वाले होते हैं। गर्भज मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यंच तीनों वेदों वाले होते हैं। जैसे असुरकुमार वैसे ही व्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक भी स्त्री-वेद और पु०·········॥२४४॥

उस काल उस समय में कल्पसूत्र में जिस प्रकारसे समवसरण के विषयमें कथन किया गया है उसी प्रकार यावत् शिष्य–प्रशिष्यसहित सुधर्म स्वामी और दूसरे गणधर मोक्ष चले गए, यहाँ तक का ग्रहण करना चाहिए ॥२४५॥

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भारतवर्षमें तीसरे (अतीत) उत्सर्पिणी कालमें सात कुलकर हुए हैं। तद्यथा— मित्रदामन्, सुदामन्, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, विमल-घोष, सुघोप, सातवें महाघोष ॥१॥ जम्बूद्वीप······अवसर्पिणी कालमें दस कुलकर हुए हैं। जैसे कि—स्वयंजल, शतायु, अजितसेन, अनंतसेन,कार्यसेन, भीम-सेन, सातवें महाभीमसेन ॥२॥ दृढ़रथ, दशरथ और दशवें शतरथ। जम्बूद्वीप··· इस चालू अवसर्पिणी कालमें सात कुलकर हुए हैं। उनके नाम ये हैं—प्रथम विमलवाहन,२ चक्षुष्मान्, ३ यशोमान्, चतुर्थ अभिचंद्र, इसके बाद ५ वें प्रसेन-

जित्, ६ मरुदेव, ७ वें नाभिराय ।।३।। इन सात कुलकरोंकी सात स्त्रियाँ थीं। तद्यथा—चन्द्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुष्कान्ता, श्रीकान्ता और मरुदेवी। ये कुलकरोंकी पत्नियोंके नाम हैं ।।४।।२४६।।

जम्बूद्वीप……इस चालू…चौवीस तीर्थंकरोंके पिता हुए हैं। जैसे कि—नाभि, जितशत्रु, जितारि, संवर, मेघ, धर, प्रतिष्ठ, महासेन, क्षत्रिय सुग्रीव, दृढ़रथ, विष्णु, वसुपूज्य, क्षत्रिय कृतवर्मा, सिंहसेन, भानु, विश्वसेन, शूर, सुदर्शन, कुंभ, सुमित्र, विजय, समुद्रविजय, राजा अश्वसेन, और क्षत्रिय-सिद्धार्थ। तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों के ये पिता उत्तरोत्तर उत्कर्षता को प्राप्त हुए कुल रूप वंश वाले थे। मातृ-पितृसंबंधी वंश की निर्मलता से युक्त थे। सम्यग्दर्शनादि तथा दयादान आदि सद्गुणों से संपन्न थे ।।५-८।। जम्बूद्वीप……चौवीस तीर्थंकरोंकी माताएँ हुई है। जो इस प्रकार हैं—मरुदेवी, विजया, सेना, सिद्धार्था, मंगला, सुसीमा, पृथिवी, लक्ष्मणा, रामा, नन्दा, विष्णु, जया, श्यामा, सुयशा, सुव्रता, अचिरा, श्री, देवी, प्रभावती, पद्मा, वप्रा, शिवा, वामा और त्रिशला ये २४ तीर्थंकरोंकी माताएं हैं ।।९-१०।।२४७।।

जम्बूद्वीप………२४ तीर्थंकर हुए हैं। उनके नाम ये हैं—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि—पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान ।।२४८।।

इन २४ तीर्थंकरों के पूर्वभवसंबंधी २४ नाम थे। तद्यथा—वज्रनाभ, विमल, विमलवाहन, धर्मसिंह, सुमित्र, धर्ममित्र, सुदंरबाहु, दीर्घबाहु, जुगबाहु, लष्टबाहु, दत्त, इन्द्रदत्त, सुन्दर, माहेन्द्र, सिंहरथ, मेघरथ, रुक्मी, सुदर्शन, नन्दन, सिंहगिरि, अदीनशत्रु, शंख, सुदर्शन और नन्दन। ये अवसर्पिणी कालके तीर्थंकरों के पूर्वभव के नाम हैं ।।११-१४।।२४९।।

इन २४ तीर्थंकरोंकी २४ शिविकाएँ (पालकियां) थीं। तद्यथा—शिविका-सुदर्शना, सुप्रभा, सिद्धार्था, सुप्रसिद्धा, विजया, वैजयंती, जयन्ती, अपराजिता, अरुणप्रभा, चन्द्रप्रभा, सुरप्रभा, अग्निप्रभा, विमला, पंचवर्णा, सागरदत्ता, नाग-दत्ता, अभयकरा, निर्वृत्तिकरा, मनोरमा, मनोहरा, देवकुरा, उत्तरकुरा, विशाला और चन्द्रप्रभा ये शिविकाएँ सर्व जगतके वत्सल जिनवरों की थीं। समस्त ऋतुओं के सुखोंसे वे युक्त थीं, शुभ छायासे वे सब अन्वित थीं ।।१५-१८।।

पहले इन शिविकाओं को रोमकूप—हर्षसे युक्त मनुष्य लाकर के उपस्थित करते हैं अर्थात् उठाते हैं। बाद में उन शिविकाओं को असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र उठाते हैं। सुर और असुर से वंदित उन जिनेन्द्रों की शिविका को चल चपल कुंडलधारी देव जो कि अपनी इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणों को धारण

करने वाले होते हैं पूर्व की तरफ़ वहन करते (उठाते) हैं। नागकुमार देव दक्षिण पार्श्व में, असुरकुमार पश्चिम पार्श्व में और उत्तर पार्श्व में सुपर्णकमार नाम के भवनपति देव उस शिविका को वहन करते हैं ॥१९-२१॥
ऋषभदेव ने विनीता नगरी में, अरिष्टनेमि भगवान ने द्वारावतीमें, बाकीके २२ तीर्थंकरों ने अपने २ जन्म-स्थान में दीक्षा धारण की ॥२२॥

समस्त २४ तीर्थंकरोंने एक दूष्य वस्त्र धारण करके दीक्षा धारण की है। ये न अन्यलिंग (वेश) में न गृहस्थलिंग में और न शाक्यादि कुलिंगमें दीक्षित हुए, किन्तु तीर्थंकर रूप में ही दीक्षित हुए ॥२३॥

भगवान महावीर ने एकाकी दीक्षा धारण की। तथा पार्श्वनाथ भगवान और मल्लिनाथ जी ने तीन २ सौ के साथ दीक्षा धारण की। भगवान वासुपूज्यने छह सौ पुरुषों के साथ दीक्षा धारण की। उग्रवंश और भोगवंश के राजाओं और क्षत्रियों के चार हजार परिवार के साथ ऋषभदेव जी ने दीक्षा धारण की। बाकी तीर्थंकरों ने १-१ हजार परिवार के साथ दीक्षा धारण की ॥२४-२५॥

भगवान सुमतिनाथ ने विना उपवासके ही जिनदीक्षा धारण की। वासुपूज्य भगवान ने एक उपवास करके जिनदीक्षा धारण की। तथा पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ ने अष्टम (तीन उपवास) करके, बाकी तीर्थंकरोंने छट्ठ की तपस्या करके जिनदीक्षा धारण की ॥२६॥

इन २४ तीर्थंकरों को सर्वप्रथम भिक्षा देने वाले चौवीस हुए हैं, जैसे कि– श्रेयांस, ब्रह्मदत्त, सुरेन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, पद्म, सोमदेव, माहेन्द्र, सोमदत्त, पुष्य, पुनर्वसु, पूर्णानन्द, सुनंद, जय, विजय, धर्मसिंह, सुमित्र, वर्गसिंह, अपराजित, विश्वसेन, ऋषभसेन, दत्त, वरदत्त, धन और बहुल। ये क्रमशः २४ प्रथम भिक्षादाता हैं। इन्होंने प्रभु भक्तिवश विशुद्ध लेश्या युक्त होकर और दोनों हाथ जोड़ कर उस काल उस समयमें जिनेन्द्रों को आहारदान दिया था ॥२७-२९॥

लोक के नाथ ऋषभदेव ने एक वर्ष में प्रथम भिक्षा प्राप्त की। बाकी के २३ तीर्थंकरों ने दूसरे दिन भिक्षा प्राप्त की। लोकनाथ ऋषभदेव की प्रथम भिक्षा इक्षुरस की थी। शेष २३ तीर्थंकरों की प्रथम भिक्षा अमृतरस के समान खीर की थी। समस्त तीर्थंकरों ने जहां २ प्रथम भिक्षा ग्रहण की वहां २ शरीर प्रमाण द्रव्य की वर्षा हुई ॥३०-३२॥२५०॥

इन चौवीस तीर्थंकरोंके २४ ज्ञानवृक्ष—जिनके नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ वे वृक्ष थे। उनके नाम ये हैं—न्यग्रोध, सप्तवर्ण, शाल, प्रियक, प्रियंगु, छत्राभ, शिरीष, नागवृक्ष, माली, पिलंक्षुवृक्ष, तिन्दुक, पाटल, जम्बू, अश्वत्थ, दधिपर्ण, नंदीवृक्ष, तिलक, आम्रवृक्ष, अशोक, चंपक, बकुल, वेतस, धातकीवृक्ष और वर्द्धमान भगवानका सालवृक्ष ये जिनवरोंके ज्ञान-वृक्ष हैं। भगवान वर्द्धमान

का······वृक्ष ३२ धनुष ऊंचा था। समस्त ऋतुओंसे वह युक्त था। शोक उपद्रव आदिसे वह रहित था, तथा सालवृक्षोंसे वह घिरा हुआ था। ऋषभदेव भगवान का ज्ञानवृक्ष तीन कोसका ऊँचा था। बाकी तीर्थकरोंके······वृक्ष उनकी शरीरकी ऊँचाई से बारह गुनी ऊँचाई वाले थे। वे सब छत्रसहित थे, पताका, वेदिका और तोरण सहित थे। सुर, असुर और गरुल-सुपर्णकुमारोंसे ये सब जिनेन्द्रोंके ज्ञानवृक्ष सेवित थे ॥३३-३८॥२५१॥

इन चौवीस तीर्थकरोंके २४ प्रथम शिष्य थे। उनके नाम ये हैं—प्रथम ऋषभसेन, द्वितीय सिंहसेन, ३चारु, ४वज्रनाभ, ५चमर, ६सुव्रत, ७विदर्भ, ८दत्त, ९वराह, १०आनंद, ११गोस्तुभ, १२सुधर्मा, १३मन्दर, १४यश, १५अरिष्ट, १६चक्राभ, १७स्वयम्भू, १८कुम्भ, १९इन्द्र, २०कुम्भ, २१शुभ, २२वरदत्त, २३दत्त, और २४इन्द्रभूति। ये सब शिष्य उत्तरोत्तर उत्कर्षको प्राप्त हुए कुल रूप वंश वाले थे। मातृ पितृ सम्बन्धी वंशकी निर्मलतासे युक्त थे। तथा सम्यग्दर्शन आदि गुणोंसे विराजित थे। इस प्रकार तीर्थप्रवर्तक जिनेन्द्रदेवोंके ये प्रथम शिष्य थे ॥३९-४१॥२५२॥

इन चौवीस तीर्थकरोंकी २४ प्रथम शिष्या थीं। जैसे कि—ब्राह्मी, फल्गु, श्यामा, अजिता, काश्यपी, रति, सोमा, सुमना, वारुणी, सुलसा, धारणी, धरणि, धरणीधरा, पद्मा, शिवा, श्रुति, अञ्जुका, रक्षी, बंधुमती, पुष्पवती, अमिला, यक्षिणी, पुष्पचूला और चन्दना। ये आर्याएँ भावितात्मा थीं। उत्तरोत्तर······ विराजित थीं। ये तीर्थप्रवर्तक जिनेन्द्रदेवोंकी प्रथम शिष्याएँ थीं ॥४२-४४॥ ॥२५३॥

जम्बूद्वीप नामके इस द्वीपमें भारतवर्षमें इस अवसर्पिणी कालमें बारह चक्रवर्तियोंके पितृजन हुए हैं। उनके नाम इस प्रकारसे हैं—ऋषभ, सुमित्र, विजय, समुद्रविजय, अश्वसेन, विश्वसेन, शूर, सुदर्शन, कार्त्तवीर्य, पद्मोत्तर, महाहरि, राजा विजय, बारहवें ब्रह्म। ये चक्रवर्तियोंके पितृजनोंके नाम कहे हैं ॥४५-४६॥२५४॥ ·········चक्रवर्तियोंकी बारह माताएँ थीं। तद्यथा—सुमंगला, यशस्वती, भद्रा, सहदेवी, अचिरा, श्री देवी, तारा, ज्वाला, मेरा, वप्रा और अन्तिम चुल्लनी ॥२५५॥

·········बारह चक्रवर्ती हुए हैं। उनके नाम ये हैं—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुंथु, अर, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त ॥४७-४८॥ इन बारह चक्रवर्तियोंके बारह स्त्रीरत्न थे। जैसे कि—पहिली सुभद्रा, २भद्रा, ३सुनन्दा, ४जया, ५विजया, ६कृष्णश्री, ७सूरश्री, ८पद्मश्री, ९वसुन्धरा, १०देवी ११ लक्ष्मीवती और १२कुरुमती। ये चक्रवर्तियोंके स्त्रीरत्नों के नाम हैं ॥४९॥२५६॥

·········इस अ० कालमें नव बलदेवके और ९ वासुदेवके पिता हुए हैं। उनके नाम ये हैं—प्रजापति, ब्रह्मा, रुद्र, सोम, शिव, महासिंह, अग्निशिख, दशरथ और नौवें वसुदेव ॥५०॥ ·········वासुदेवकी माताएँ हुई हैं। उनके नाम ये हैं—मृगावती, उमा, पृथ्वी, सीता, अम्बिका, लक्ष्मीवती, शेषमती, कैकेयी, और नववीं देवकी ॥५१॥ ·········९ बलदेवकी माताएँ हुई हैं। तद्यथा—भद्रा, सुभद्रा, सुप्रभा, सुदर्शना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, नौवीं रोहिणी। ये नौ बलदेवोंकी माताएँ हैं ॥५२॥२५७॥

·········इस अ० कालमें नौ वासुदेव और बलदेव हुए हैं। तद्यथा—उत्तमपुरुष, तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिकोंके बल आदिकी अपेक्षा मध्यवर्ती होनेके कारण मध्यमपुरुष, प्रधानपुरुष, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, दीप्यमान शरीर वाले थे। कान्त, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप वाले थे। उनका स्वभाव बड़ा अच्छा था, हर एक प्राणी इनसे बिना झिझकके मिल सकता था। समस्त-जन उन्हें देखकर बहुत खुश होते थे। ओघ (स्वाभाविक) बल वाले थे। अधिक बलिष्ठ थे। उनका पराक्रम प्रशस्त था। निरुपद्रव आयु वाले होनेके कारण ये घातवर्जित थे। अपराजित थे। शत्रुओंके ये मर्दक थे। हजारों शत्रुओंका मान मथन करने वाले, नम्रीभूतके ऊपर सदा दयालु, मत्सर भावसे रहित, मन-वचन-कायकी चंचलता रहित, अकारण किसी पर कदापि न क्रोध करने वाले, परिमित-आनन्ददायक-भाषी, मित-मनोमुग्धकारी हास्यसे युक्त, गम्भीर-मधुर-प्रतिपूर्ण सत्यवचन वाले, शरणागतवत्सल, दीन हीन जनोंके रक्षक, वज्र स्वस्तिक और चक्र आदि चिह्न रूप लक्षणों तथा तिल, मसा आदि रूप व्यंजनोंके महर्द्धि लाभादि रूप गुणोंसे युक्त, मान, उन्मान और प्रमाणसे परिपूर्ण होनेके कारण यथोचित सन्निवेश सहित अंगयुक्त सुन्दर शरीर वाले, चंद्रमाके समान सौम्य आकार एवं कान्त प्रिय दर्शन वाले, अपकारियों पर भी क्रोध न करने वाले, उत्कृष्ट दण्ड-नीति वाले, गंभीर दिखलाई देने वाले थे। बलदेवोंकी पताकाएँ तालवृक्षके चिह्नोंसे, और वासुदेवोंकी ध्वजाएँ गरुड़के चिह्नोंसे युक्त होती हैं। बड़ेसे बड़े वीरों द्वारा न चढ़ाए जा सकने वाले धनुषोंको चढ़ाने वाले, विशिष्ट बलधारी, दुर्द्धर धनुर्धारी, धीर पुरुष, युद्धजनित कीर्तिप्रधान पुरुष, उच्च कुलीन, महारण-छिन्नभिन्नकर्ता, अर्द्धभरतस्वामी, सौम्य, राजवंशके तिलकके समान, अजित, अजितरथ, हाथोंमें हल, मुसल बाणधारी, शंख, चक्र, गदा और तलवारके धारक,श्रेष्ठ स्वभाव वाले, देदीप्यमान और शुभ्र अवयवोंसे युक्त, कौस्तुभ-मणि और मुकुटको धारण करने वाले, कुंडलोंकी चमकसे सदैव प्रकाशित मुख वाले, कमलके समान नेत्र वाले, छाती तक लटकते हुए एकावली हारको अपने कण्ठमें धारण करने वाले, श्रीवत्स स्वस्तिक चिह्न वाले, यशस्वी, सर्व-ऋतु-

संबंधी सुरभित कुसुमरचित विचित्र रचना वाली लम्बी २ सुहावनी मालाओंसे युक्त थे। इनके प्रत्येक अंग पृथक् २ अवस्थित एक सौ आठ शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे युक्त रहा करते थे अतः वे बड़े प्रशस्त और सुन्दर होते थे। मदोन्मत्त श्रेष्ठ गजराजके समान मनोहर विलास युक्त गति वाले, शरद ऋतु संबंधी मेघके समान तथा क्रौंच पक्षीके शब्द जैसा जिनकी दुंदुभियोंका निर्घोष था, नील-पीत रेशमी वस्त्र करधनीसे युक्त, सदा दीप्त प्रवर तेज वाले, मनुष्योंमें सिंहके समान, नरपति, नरेन्द्र और नरवृषभ कहलाते थे। देवराज इन्द्रके समान, राज्यलक्ष्मीके तेजसे बहुत अधिक देदीप्यमान, नीले और पीले वस्त्रोंको धारण करने वाले ऐसे दो २ राम और केशव आपसमें भाई २ थे। त्रिपृष्ठसे लेकर कृष्ण तक तो नौ वासुदेव हुए हैं। अचलसे लेकर राम तक नौ बलदेव हुए हैं ॥५३॥२५८॥

इन नौ बलदेव और वासुदेवोंके पूर्वभव सम्बन्धी नौ नाम थे। जैसे कि—विश्वभूति, प्रवर्तक, धनदत्त, समुद्रदत्त, ऋषिपाल, प्रियमित्र, ललितमित्र, पुनर्वसु और गंगदत्त। ये पूर्वभव सम्बन्धी नाम वासुदेवों के हैं। अब बलदेवोंके पूर्वभव के नाम यथाक्रम से कहूंगा। विश्वनन्दी, सुबंधु, सागरदत्त, अशोक, ललित, वाराह, धर्मसेन, अपराजित और राजललित ॥५४-५६॥२५९॥

इन ······ पूर्वभव में नव धर्माचार्य थे। तद्यथा-संभूत, सुभद्र, सुदर्शन, श्रेयांस, कृष्ण, गंगदत्त, सागर, समुद्र और नौवें द्रुमसेन। ये नौ धर्माचार्य इन कीर्तिपुरुष वासुदेवोंके पूर्वभव में हुए हैं ॥५७-५८॥२६०॥

इन नौ वासुदेवोंकी जहां उन्होंने निदान किया ऐसी नौ निदानभूमियां थीं। वे इस प्रकारसे हैं—मथुरा, कनकवास्तु, श्रावस्ती, पौतन, राजगृह, काकन्दी, कौशाम्बी, मिथिलापुरी और हस्तिनापुर ॥५९॥२६१॥

इन नौ वासुदेवोंके नौ निदान-कारण थे—गाय, यूप यावत् माता ॥६०॥ ॥२६२॥

इन नौ वासुदेवोंके नौ प्रतिशत्रु थे। जैसे कि—अश्वग्रीव यावत् जरासंघ। ये सब प्रतिवासुदेव वासुदेवोंके साथ चक्रसे युद्ध करते हैं और अन्तमें अपने उसी चक्रसे मारे जाते हैं। वासुदेवों में से एक-प्रथम वासुदेव सातवीं नरक में, पांच वासुदेव अर्थात् द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ वासुदेव छठी नरक में, एक-सातवें पांचवीं, एक-आठवें चौथी और नवमें वासुदेव तीसरी नरकमें गए हैं। जितने भी बलदेव होते हैं वे सब विना निदानके होते हैं। तथा जितने भी वासुदेव होते हैं वे सब निदान करके होते हैं। बलदेव ऊर्ध्वगामी और वासुदेव नरकगामी होते हैं। आठ बलदेव तो मोक्षगामी हुए हैं, एक ब्रह्मलोक कल्पमें गए हैं जो मनुष्यपर्याय पाकर आगामी कालमें मोक्ष जावेंगे ॥६१-६५॥२६३॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में ऐरवत क्षेत्रमें इस उत्सर्पिणी कालमें २४ तीर्थंकर

हुए। जैसे कि—१ चन्द्रानन, २ सुचन्द्र, ३ अग्निसेन, ४ नंदिसेन, ५ ऋषिदत्त, ६ व्रतधारी और ७ सोमचंद्र, मैं उनको नमस्कार करता हूं। तथा ८ युक्तिसेन, ९ अजितसेन, १० शिवसेन, ११ तत्वज्ञ देवशर्मा तथा १२ निक्षिप्तशस्त्र नामक जिनदेवको नमस्कार करता हूं। १३ असंज्वल, १४ जिनवृषभको मैं नमस्कार…। अमितज्ञानी १५ अनंतनाथको……। जिन्होंने कर्मरज का नाश कर दिया है—ऐसे १६ उपशान्तनामक जिनको मैं……। १७ गुप्तिसेनको……। १८ अतिपार्श्व, १९ सुपार्श्व और देवेश्वरवंदित २० मरुदेव जिनको मैं नमस्कार करता हूं। मोक्षप्राप्त…२१ श्याम० को, जितराग वाले २२ अग्निसेन को, क्षीणराग वाले २३ अग्निपुत्रको एवं रागद्वेष रहित होकर सिद्धिगति को प्राप्त हुए २४ वारिसेन जिनको मैं नमस्कार करता हूं ॥६६-७०॥२६४॥

इस जंबूद्वीप नामक द्वीप में आने वाले उत्सर्पिणीकाल में भारतवर्षमें सात कुलकर होंगे। जैसे कि—मितवाहन, सुभूम, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, दत्त, सूक्ष्म और सुबन्धु ये आगामी काल में होवेंगे ॥७१॥२६५॥……उ० काल में ऐरवत-क्षेत्रमें दस कुलकर होवेंगे। उनके नाम ये हैं—विमलवाहन, सीमंकर, सीमन्धर, क्षेमंकर, क्षेमंधर, दृढ़धनु, दशधनु, शतधनु, प्रतिश्रुति और सुमति ॥२६६॥

……भारतवर्ष में २४ तीर्थंकर होंगे। जैसे कि—महापद्म, सूरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, सर्वानुभूति, देवश्रुत, उदय, पेढालपुत्र, पोट्टिल, सप्तकीर्ति, मुनिसुव्रत, अमम, सर्वभावविद्, अर्हंत निष्कषाय, निष्पुलाक, निर्मम, चित्रगुप्त, समाधि, संवर, अनिवृत्ति, विजय, विमल, देवोपपात और अर्हत अनन्तविजय। ये पूर्वोक्त २४ तीर्थंकर भारतवर्षमें आगामीकाल में धर्मतीर्थ के उपदेशक केवली होंगे ॥७२-७६॥२६७॥

इन २४ तीर्थंकरों के पूर्वभव सम्बन्धी जो २४ नाम थे वे ये हैं—श्रेणिक, सुपार्श्व, उदय, अनगार पोट्टिल, दृढ़ायु, कार्तिक, शंख, नन्द, सुनन्द, शतक, देवकी, कृष्ण, सात्यकि, बलदेव, रोहिणी, सुलसा, रेवती, शतालि, भयालि, कृष्णद्वैपायन, नारद, अम्बड, दारुमृत और स्वातिबुद्ध। ये भावी तीर्थंकरों के पूर्वभवसम्बन्धी नाम हैं ॥७७-८०॥२६८॥

इन २४ तीर्थंकरों के चौबीस पिता होंगे और २४ माताएँ होंगी। इनके २४ प्रथम शिष्य, २४ प्रथम शिष्याएँ, चौबीस प्रथम भिक्षा-दाता, २४ ज्ञानवृक्ष होंगे ॥२६९॥

जम्बूद्वीप नाम के द्वीपमें भारतवर्षमें आगामी उत्सर्पिणीकालमें बारह चक्रवर्ती होंगे। जैसे कि—भरत, दीर्घदन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त, श्रीपुत्र, श्रीभूति, सप्तम श्री सोम, पद्म, महापद्म, विमलवाहन, विपुलवाहन और बारहवें वरिष्ठ। ये आगामीकाल में भरतक्षेत्र के अधिपति होंगे ॥८१-८२॥ इन चक्रवर्तियोंके १२ पिता, १२ माताएँ, बारह स्त्रीरत्न होंगे ॥२७०॥

.... उ० काल में ६ बलदेव — वासुदेवके पिता, नौ वासुदेवकी माताएं, ६ बलदेवकी माताएँ, नौ बलदेव-वासुदेवके मंडल (युगल) होंगे। उत्तम पुरुष .... (देखो सूत्र २५८) इसी तरह पूर्वोक्त वर्णन कहना चाहिए यावत् दो २ राम और केशव आपसमें भाई २ होंगे। उनके नाम इस प्रकार से होंगे—नन्द, नन्दमित्र, दीर्घबाहु, महाबाहु, अतिबल, महाबल, सातवें बलभद्र, द्विपृष्ठ और त्रिपृष्ठ। ये नाम आगामी काल में उत्पन्न होने वाले विष्णुओं-वासुदेवों के होंगे। जयन्त, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनंद, नंदन, पद्म और अन्तिम संकर्षण। ये नौ नाम आगामी काल में उत्पन्न होने वाले बलदेवों के होंगे ॥८३-८४॥२७१॥ इन नौ बलदेव और वासुदेवों के पूर्वभव संबंधी नौ नौ नाम होंगे, नौ धर्माचार्य, नौ निदानभूमियां, नव निदान कारण, नौ प्रतिशत्रु होंगे। तद्यथा—तिलक, लोहजंघ, वज्रजंघ, केशरी, प्रह्लाद, अपराजित, भीम, महाभीम, सुग्रीव। ये पूर्वोक्त प्रतिशत्रु कीर्तिपुरुष वासुदेवों के होंगे। ये सब युद्धमें चक्रसे लड़ेंगे और अन्तमें अपने उसी चक्रसे मारे जाएँगे ॥८५-८६॥२७२॥

जम्बूद्वीप नामके इस द्वीपमें ऐरवत क्षेत्र के अन्दर जो कि सातवां क्षेत्र है आगामी उत्सर्पिणीमें २४ तीर्थंकर होंगे। उनके नाम इस प्रकार हैं—सुमंगल, सिद्धार्थ, निर्वाण, महायश, धर्मध्वज, श्रीचंद्र, पुष्पकेतु, महाचंद, अर्हंत श्रुतसागर, सिद्धार्थ, पुण्यघोष, महाघोष, सत्यसेन, सूरसेन, महासेन, सर्वानंद, सुपार्श्व, सुव्रत, सुकोशल, अनन्तविजय, विमल, उत्तर, महाबल, देवानंद। ये ऐरवत क्षेत्र के भविष्यत्कालमें होने वाले तीर्थंकर कहे गए हैं। ये वहाँ आगामीकालमें धर्मतीर्थके उपदेशक होंगे ॥८७-६३॥२७३॥

बारह चक्रवर्ती होंगे। बारह चक्रवर्तियों के पिता, बारह माताएँ, बारह स्त्रीरत्न होंगे। नव बलदेव-वासुदेवों के पिता, नौ-नौ माताएँ, नौ दशार्हमंडल होंगे। तद्यथा—उत्तमपुरुष........................ यावत् भाई २ होंगे। नौ प्रति-वासुदेव होंगे। नो इनके पूर्व भवसम्बन्धी नाम, ६ धर्माचार्य, ६ निदानभूमियां, नौ निदान कारण, ऐरवत क्षेत्रमें आने वाले उत्सर्पिणी काल में होंगे—ऐसा कथन जानना चाहिए। इसी प्रकार भरत और ऐरवत दोनों में आगामी उत्सर्पिणी कालमें बलदेव और वासुदेव आदि इस प्रकारसे होंगे-ऐसा जानना चाहिए ॥२७४॥

यह शास्त्र जिन नामों द्वारा कहा जाता है। वे इस प्रकार हैं—कुलकरों के वंश का प्रतिपादक होने के कारण कुलकरवंश, इसी प्रकार तीर्थंकरवंश, गणधरवंश, चक्रवर्तीवंश, दशार्हवंश, ऋषि-यति-मुनिवंश, श्रुत, श्रुतांग, श्रुत-समास, श्रुतस्कंध, समवाय, इसका नाम संख्या ऐसा भी है। भगवान ने इस समवायांगको संपूर्ण रूपसे कहा है। यह एक ही अध्ययन है। ऐसा कहता हूं॥२७५॥

॥ चतुर्थ समवायांग-सूत्र समाप्त ॥